सद्धर्मपुण्डरीक

[मूल-सह हिन्दी-अनुवाद]

बौ. ६. ४३३

अनुवादक
डॉ० राममोहन दास

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

प्राक्कथन

महापरिनिर्वाण के बाद ही काश्यप, उपालि, आनन्द आदि प्रमुख शिष्यों ने राजगृह में महाराज अजातशत्रु के संरक्षण में एक बड़ा सम्मेलन किया, जिसमें बुद्ध के सारे उपदेशों का संग्रह कर लिया। यही पालि-त्रिपिटक के नाम से जाना जाता है। प्रायः एक शताब्दी बाद, प्रधान आचार्यों का इसी प्रकार का दूसरा सम्मेलन वैशाली में हुआ, जिसमें भिक्षुविनय के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये गये। फिर, महाराज अशोक के संरक्षण में पाटलिपुत्र में प्रमुख भिक्षु आचार्यों का तीसरा सम्मेलन हुआ, जिसमें दर्शन-सम्बन्धी उत्पन्न हुई कुछ भ्रान्तियाँ दूर कर ली गईं। इन तीन सम्मेलनों के क्रम में पालि-त्रिपिटक का स्वरूप पूर्ण हो गया। यह आज भी अविकल रूप से उपलब्ध है। इस साहित्य के आधार पर जिस धर्म का विकास और विस्तार हुआ, उसके नायक स्थविर (वृद्ध भिक्षु) हुआ करते थे। इसी कारण, इसका नाम 'स्थविरवाद' पड़ा।

अशोकपुत्र स्थविर महेन्द्र ने इस धर्म का प्रचार लंका में किया। बर्मा, थाइलैण्ड, कम्बोडिया और लावस--इन देशों में भी भिन्न-भिन्न मार्ग से आकर इसी स्थविरवादधर्म-परम्परा ने जनता के जीवन और आदर्श का निर्माण किया। धीरे-धीरे कालक्रम में भारतवर्ष में तो स्थविरवाद का लोप हो गया, किन्तु बाहर उक्त देशों में उसका बल बढ़ता ही गया।

पहली शताब्दी ई० पूर्व के आसपास बौद्धधर्म के इतिहास ने एक नया मोड़ लिया। देश के अनेकानेक मत-मतान्तरों के साथ उसका संघर्ष हुआ। इस सिलसिले में उसे अपने मौलिक स्वरूप की रक्षा करना कठिन हो गया। दूसरे धर्मों के अलौकिक देवत्व की भक्ति की तरह उसने भी 'बुद्ध' को स्थविरवाद के मानवी स्वरूप से ऊपर उठाकर परमात्मा की कोटि के पद पर आसीन करना पड़ा तथा उसने अन्य धर्मों की तरह संस्कृत-भाषा में अपने ग्रन्थ की भी रचना प्रारम्भ की। महाराज कनिष्क ने पहली शताब्दी में पुष्पपुर (पेशावर) में जो बौद्ध आचार्यों का चौथा सम्मेलन बुलाया, उसमें इन्हीं संस्कृत-ग्रन्थों का संग्रह किया गया। पालि-त्रिपिटक की छाया पर संस्कृत-पिटक की रचना की गई। अपने को बड़ा बनाने के उद्देश्य से इस नई परम्परावालों ने अपना नाम 'महायान' और प्राचीन का नाम 'हीनयान' रखा।

कनिष्क के समय जो संस्कृत-महायानपिटक संकलित हुआ था, वह आज लुप्तप्राय हो गया है। कहते हैं कि चीनी भाषा में उसका पूरा अनुवाद हुआ था। यदि फिर भी संस्कृत में उसका उद्धार हो, तो यह हमारे लिए महत्त्व का विषय हो। आजकल जो संस्कृत-महायान-ग्रन्थ हमें उपलब्ध हैं, उनकी संख्या ९ है, जो वैपुल्यसूत्र के नाम से

प्रसिद्ध हैं। नेपाल के बौद्धों में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा है। वे हैं---१. प्रज्ञापारमिता, २. सद्धर्मपुण्डरीक, ३. ललितविस्तर, ४. लंकावतार, ५. सुवर्णप्रभा, ६. गण्डव्यूह, ७. तथागतगुह्यक, ८. समाधिराज और ९. दशभूमीश्वर। इनमें दूसरा ग्रन्थ---सद्धर्मपुण्डरीक इस कारण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है कि महायान-धर्म की जितनी अपनी विशेष अच्छाइयाँ या बुराइयाँ हैं, सभी इसमें एक साथ प्राप्त हो जाती हैं। ग्रन्थ की प्रारम्भिक गाथा में इसे 'वैपुल्यसूत्रराज' कहा गया है, जो 'परमार्थ-महापथ' का उपदेश करता है। जापान में निचरिन्, टेण्डाइ आदि कई बड़े-बड़े सम्प्रदाय ऐसे हैं, जिनका धार्मिक आधार-ग्रन्थ 'सद्धर्मपुण्डरीक' ही है। चीन में भी इसी प्रकार कई प्रधान सम्प्रदाय हैं, जिनके लिए यह वही स्थान रखता है। महात्मा गान्धी की शुक्रवारीय प्रार्थना में बौद्धधर्म के प्रतिनिधित्व करनेवाले जापानी बौद्ध भिक्षु जो ढोल की-सी आवाज के साथ तीन बार 'नम्यो होरं गे क्यो' का पाठ करते हैं, उसका अर्थ है---नमस्कार है सद्धर्मपुण्डरीक को। राजगृह, कलकत्ता तथा बम्बई के जापानी बौद्ध मन्दिरों में दिन-रात यही पाठ गूँजता रहता है। क्योंकि, भगवान् बुद्ध ने सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र का उपदेश राजगृह के गृद्धकूट पर्वत पर दिया था, जापान के बौद्धों की ओर से वहीं बड़ी धनराशि के व्यय से एक भव्य स्तूप बनाया जा रहा है।

सद्धर्मपुण्डरीक का अवलोकन करते समय सबसे पहले इस बात पर ध्यान जाता है कि भाषा की दृष्टि से इसमें दो स्पष्ट स्तर हैं। ऐसा लगता है कि इसकी गाथाएँ (श्लोक) अधिक प्राचीन हैं; जिनकी भाषा पालि-प्रभावित संस्कृत है। अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीइजर्टन ने इस भाषा का नाम 'हाइब्रिड संस्कृत' (संकर-संस्कृत) रखा है। किन्तु इसे नई भाषा मानना उचित नहीं है।

आज भी लंका में पालि के अभ्यासी बौद्ध भिक्षु जब संस्कृत लिखते या बोलते हैं, तब वे प्रायः 'अस्माकं' के स्थान पर 'अम्हाकं' तथा 'युष्माकं' के स्थान पर 'तुम्हाकं' का प्रयोग कर देते हैं। ठीक इसी प्रकार, 'सद्धर्मपुण्डरीक' में शुद्ध संस्कृत के प्रवाह में बीच-बीच में पालि के शब्द टपक पड़ते हैं। इससे यह निश्चय होता है कि इसके रचयिता पालि के अच्छे अभ्यासी थे। पालि-शब्दों के संस्कृत-छायाकरण में कभी-कभी अशुद्धियाँ भी रह गई हैं। उदाहरणार्थ, कतिपय स्थल देखें---

पृ० ५ : 'औद्‌बिल्यप्राप्ताः'। यह स्पष्टतः पालि 'उप्पिलावितत्ता' का संस्कृतीकरण है। किन्तु, इसका ठीक रूप 'उत्प्लावितात्मानः' होना चाहिए था।

पृ० ७ : 'चेतःपरिवितर्कमाज्ञाय'। यहाँ इस अर्थ में 'आज्ञाय' रूप का प्रयोग व्यावहारिक संस्कृत में नहीं होता। यह पालिच्छाय संस्कृत है।

पृ० ७ : 'मञ्जुशिरी'। 'श्री' के स्थान पर 'शि(सि)री' का होना पालि का रूप है।

पृ० ७ : 'ऊर्णाय कोशात्'। संस्कृत में यह 'ऊर्णायाः' होना चाहिए था। प्रस्तुत रूप स्पष्टतः पालि 'उण्णाय' की छाया है।

पृ० ८ : गाथा ४ में 'भोन्ति' । यह पालि शब्द 'होन्ति' की छाया की गई है।

पृ० ८ : गाथा ६ में 'दृश्यन्ति' । यह पालि शब्द 'दिस्सन्ति' की संस्कृत-छाया है। संस्कृत में 'दृश्यन्ते' ऐसा ही प्रयोग सम्भव है।

पृ० ८ : 'अद्दशि' । यह पालि शब्द 'अदस्सि' से रूपान्तरित है। संस्कृत में 'अदर्शत्' ऐसा ही प्रयोग सम्भव है।

पृ० ९ : गाथा ९ में 'प्रकाशेन्ति' । यह पालि के 'पकासेन्ति' की छाया है। संस्कृत में 'प्रकाशयन्ति' ऐसा ही प्रयोग सम्भव है।

पृ० ९ : 'भिक्षवोति' । 'भिक्षवः+इति' इस सन्धि का यह रूप संस्कृत में नहीं होता। यह पालि की छाया है ।

पृ० ९ : गाथा ११ में 'कुर्विशु'। यह 'कुब्विंसु' का पालिच्छाय संस्कृताभासीकरण है।

पृ० ९ : 'तेषां पि' । 'अपि' का केवल 'पि' रूप संस्कृत में नहीं होता। यह पालि का साधारण रूप है।

पृ० ९ : गाथा १३ में 'गङ्गवालिकाः' । यह पालि में ही होता है, संस्कृत में नहीं । यह संस्कृताभास तथा विकृत प्रयोग है। संस्कृत में 'गङ्गावालुकाः' ऐसा प्रयोग होगा ।

पृ० ९ : गाथा १४ में 'शङ्खशिलाप्रवाडं' । यहाँ 'प्रवाडं' पालि का रूप है। संस्कृत में 'प्रवालं' ऐसा रूप होगा ।

इस प्रकार के उदाहरणों से ग्रन्थ का कोना-कोना भरा है। ये यही सिद्ध करते हैं कि महायान के ग्रन्थ हीनयानी पालि के प्रवल प्रभाव में लिखे गये हैं।

भाषा के अलावा इस ग्रन्थ की रचना तथा शैली पर भी पालि का प्रभाव स्पष्ट है। जिस प्रकार पालि के सूत्र 'एवं मे सुतं' से प्रारम्भ होता है, उसी प्रकार यह भी 'एवं मया श्रुतं' से प्रारम्भ होता है । सूत्र के चढ़ाव-उतराव में भी अधिक साम्य है। शिष्य-मण्डली में भी अधिकांश नाम पालि के ही हैं। इतना होने पर भी, 'सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र' स्थविरवाद के पालिसूत्र से इन बातों में बिलकुल भिन्न है—

१. पालि में बुद्ध का स्थान 'गुरु' का है, जो केवल मार्ग का निर्देश-भर कर देते हैं, और उसपर चलने या न चलने का उत्तरदायित्व शिष्य पर छोड़ देते हैं।

इसके विरुद्ध, 'सद्धर्मपुण्डरीक' में 'बुद्ध' का प्रायः वही स्वरूप हो जाता है, जो अन्य धर्मों में ईश्वर का है। वे अपने अधम भक्त का भी उद्धार कर देते हैं।

२. सद्धर्मपुण्डरीक में 'बोधिसत्त्व' का महत्त्व पालि से अत्यन्त अधिक हो जाता है। यहाँतक कि उसका स्थान बुद्ध के बरावर या उससे भी ऊँचा हो जाता है। बोधिसत्त्व की पूजा और भक्ति का उपदेश है।

३. अक्षोभ्य तथा अमिताभ जैसे बुद्ध के नामों का उल्लेख मिलता है, जो पालि में नहीं आते।

४. सूत्रपाठ से विघ्न दूर होते हैं और मंगल होता है---यह भाव जो पालि में पाया जाता है, उसका विस्तार 'सद्धर्मपुण्डरीक' में 'धारणियों' के चमत्कारपूर्ण मन्त्र में प्रकट होता है।

मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि अपने विद्वान् प्रिय शिष्य श्रीराममोहन दास ने इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का इतना सुन्दर सम्पादन और भावानुवाद किया है, जो बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् द्वारा प्रकाशित हो रहा है। मुझे विश्वास है कि इससे भारतवर्ष में बौद्ध पाण्डित्य की वृद्धि होगी।

निदेशक, नवनालन्दा-महाविहार, **भिक्षु ज० काश्यप**
नालन्दा (पटना)
४. १०. ६६

भूमिका

नेपाली बौद्धधर्म के नौ प्रमुख सूत्रग्रन्थ हैं: १. अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, २. सद्धर्मपुण्डरीक, ३. ललितविस्तर, ४. लंकावतार, ५. सुवर्णप्रभा, ६. गण्डव्यूह, ७. तथागतगुह्यक, ८. समाधिराज एवं ९. दशभूमीश्वर।

नेपाल में इन्हें नवधर्म, धर्मपर्याय तथा वैपुल्यसूत्र भी कहते हैं। वहाँ लोग इन्हें विशेष आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं तथा इनकी पूजा करते हैं।[1]

विण्टरनित्ज़ का कथन है कि ये सभी ग्रन्थ न तो एक सम्प्रदाय के हैं और न एक काल की रचनाएँ ही हैं।[2] इनमें सामान्यतः महायान के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इन्हीं सूत्रों में वर्णित मूलसिद्धान्तों का परवर्त्ती दार्शनिकों ने अपने ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। बौद्धधर्म की जानकारी के लिए इन सूत्रग्रन्थों का विशेष महत्त्व है।[3]

सद्धर्मपुण्डरीक कतिपय चीनी एवं जापानी बौद्ध सम्प्रदायों, विशेष कर चीन-जापान के तेन्दई-सम्प्रदाय तथा निचिरेन द्वारा सन् १२५२ ई० में स्थापित जापान के होक्के-शू-(Hokke-shu) सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्रधान आधारग्रन्थ है। इन देशों में प्रस्तुत ग्रन्थ की लगभग ६० टीकाएँ तथा संक्षेप (digests) मिलते हैं। इत्सिंग (It-sing) का कथन है कि यह ग्रन्थ उनके गुरु हुई-सी (Hui-si) को बड़ा प्रिय था। साठ साल के दीर्घ जीवन में वे प्रतिदिन इसका पारायण करते थे। आज भी जापान के प्रत्येक बौद्ध मन्दिर में यह ग्रन्थ उपलब्ध होता है। पूर्वी तुर्किस्तान में भी इसकी मान्यता कम नहीं है। 'ध्यान'-सम्प्रदाय के सभी मन्दिरों में इसका प्रतिदिन नियमपूर्वक पाठ होता है। इस ग्रन्थ की महती लोकप्रियता इसी से प्रमाणित हो जाती है कि नेपाल, मध्य एशिया एवं इसके आसपास के स्थानों से प्राप्त इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपियाँ सबसे प्राचीन एवं संख्या में सबसे अधिक हैं।

---

१. "In Nepal a regular divine service in consecrated to these nine books, a bibliolatry which is characteristic of the Buddhism of Nepal and is also very conspicuous in the texts themselves."

—विण्टरनित्ज : A History of Indian Literature, Vol. II.
पृ० २९५, पादटिप्पणी-संख्या १।

२. "The so called 'nine Dharmas' are not the canon of any sect, but a series of books which were compiled at different times and belonged to different sects but which, at present day, are all held in great honour in Nepal."—वही, पृ० २५।

३. बौद्ध कोषग्रन्थमहाव्युत्पत्ति (Bibliotheca Buddhica, XII) ६५ में इन नौ ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य १०५ महायान-सूत्रग्रन्थों का वर्णन किया गया है, जिनमें १२वाँ 'बोधिसत्त्वपिटक' है।

नेपाल से प्राप्त पाण्डुलिपियाँ :

प्रस्तुत ग्रन्थ की नेपाल से प्राप्त अनेक पाण्डुलिपियाँ (Manuscripts) प्राच्य एवं पाश्चात्य पुस्तकालयों एवं संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता के पुस्तकालय में नेपाल से प्राप्त तीन पाण्डुलिपियाँ संगृहीत हैं। इनमें सबसे पुरानी पाण्डुलिपि का राजेन्द्रलाल मित्र[१] तथा अन्य दो का हरप्रसाद शास्त्री ने उल्लेख किया है।[२] ये पाण्डुलिपियाँ सन् १७११-१२ ई० की हैं।

इस ग्रन्थ की दो प्राचीनतम एवं सर्वाधिक प्रामाणिक पाण्डुलिपियाँ कैम्ब्रिज-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। इनमें एक सन् १०३६-३७ ई० की तथा दूसरी सन् १०६३-६४ ई० की है। इनके अतिरिक्त अन्य पाण्डुलिपियाँ भी वहाँ उपलब्ध हैं।[३]

इस ग्रन्थ की एक अन्य प्राचीन पाण्डुलिपि लन्दन के ब्रिटिश-संग्रहालय में उपलब्ध है। यह ११वीं या १२वीं शती की है।[४] इसकी अन्य तीन पाण्डुलिपियाँ लन्दन के रॉयल एशियाटिक सोसायटी के पुस्तकालय में एवं दो पाण्डुलिपियाँ पेरिस के बिब्लिओथेक नेशनल में सुरक्षित हैं। ये अधिक प्राचीन नहीं हैं, १८वीं शती की हैं।

कैम्ब्रिज-विश्वविद्यालय एवं ब्रिटिश-म्यूजियम के पुस्तकालयों में संगृहीत पाण्डुलिपियाँ सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रामाणिक हैं।

मध्य एशिया से प्राप्त पाण्डुलिपियाँ :

इस ग्रन्थ की अन्य पाण्डुलिपियाँ मध्य एशिया, पूर्वी तुर्किस्तान तथा गिलगिट से भी प्राप्त हुई हैं। इनके प्राप्तिकर्ताओं में स्टेन (Sir Aurel Steni), पेट्रोविस्की (N. Th. Petrowiski), ओटानी (Count K. Otani) तथा कश्मीरनरेश हरिसिंह के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

पेट्रोविस्की द्वारा संगृहीत पाण्डुलिपियों के अंशों (fragments) की विशेषताओं की चर्चा करते हुए कर्न (H. Kern) कहते हैं : "नेपाली पाण्डुलिपियों की अपेक्षा ये अधिक विस्तृत हैं। श्लोकों का क्रम भी इनमें (नेपाली पाण्डुलिपियों से) भिन्न है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनका गद्य नेपाली पाण्डुलिपियों के गद्य से पर्याप्त भिन्न है; इनमें प्राकृत के शब्द एवं अशुद्ध संस्कृत-शब्द अधिक मात्रा में मिलते हैं।" कर्न ने अपनी इस मत की पुष्टि पेट्रोविस्की द्वारा संगृहीत पाण्डुलिपियों तथा नेपाली पाण्डुलिपियों से प्रभूत उद्धरण देकर की है।[५]

---

१. Nepalese Buddhist Literature.

२. Catalogue of Buddhist Manuscripts.

३. इनका उल्लेख बेण्डल (Bendall) ने 'Catalogue of the Buddhist Manuscripts in the Cambridge University Library' में किया है।

४. इनका उल्लेख बेण्डल ने 'Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the British Museum' में किया है।

५. लोटस, भूमिका, पृ० २१—२३।

0880

हार्नली ने इस ग्रन्थ की खडलिक (Khadlik) से प्राप्त तीन हस्तलिपियों की चर्चा की है।[१] इनमें एक का सम्पादन टॉमस (F.W. Thomas) ने तथा अन्य दो का लूडर्स (Luderes) ने किया है। इन्होंने पुनः इनकी लिपिशास्त्रीय एवं वर्ण-विन्यासशास्त्रीय दृष्टि से नेपाली-पाण्डुलिपियों से तुलना की और प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर यह निश्चित किया कि नेपाली एवं मध्य एशियाई दोनों पाण्डुलिपियों का मूल आधार एक ही प्राचीन पाण्डुलिपि थी।[२] उन्होंने उन मूलग्रन्थों की भाषा प्राकृत—विशेषतः मागधी मानी है, जो बाद में संस्कृत से प्रभावित होकर वर्त्तमान रूप में आई।[३] इन्होंने नेपाली एवं मध्य एशियाई पाण्डुलिपियों में मध्य एशियाई को अधिक प्राचीन माना है।[४]

स्टेन (Steni) के संग्रह में प्रस्तुत ग्रन्थ की एक ऐसी पाण्डुलिपि है, जो खडलिक से आठ मील उत्तर एक स्थान से पाई गई थी। इस पाण्डुलिपि के कतिपय पत्रों (Folios) को पौसिन (L. de la Vallee Poussin) ने प्रकाशित किया था।[५] इस पाण्डुलिपि में प्राप्त ११वें परिवर्त्त में केवल ४१ गाथाएँ हैं। इसके बाद की गाथाएँ या तो बिलकुल छोड़ दी गई हैं या इनसे एक स्वतन्त्र परिवर्त्त का निर्माण किया गया है। धर्मरक्ष एवं कुमारजीव द्वारा चीनी भाषा में किये गये इस पाण्डुलिपि के अनुवाद में भी यह विशेषता वर्त्तमान है। यह छूटा हुआ अंश धर्मरक्षित के अनुवाद में 'ब्रह्मचारीपरिवर्त्त' के नाम से तथा कुमारजीव-कृत अनुवाद में 'देवदत्त-परिवर्त्त' के नाम से सुरक्षित है।[६] इससे स्पष्ट है कि परिवर्त्तों के क्रम एवं विभाजन क सम्बन्ध में मध्य एशियाई प्राचीन पाण्डुलिपियों में भी अन्तर वर्त्तमान थे। किन्तु, गिलगिट से प्राप्त पाण्डुलिपि में नेपाली-पाण्डुलिपि का अनुकरण प्रतीत होता है; क्योंकि इसमें ११वाँ परिवर्त्त मध्य एशियाई पाण्डुलिपि की भाँति अपूर्ण रूप में नहीं, बल्कि नेपाली-पाण्डुलिपि की भाँति पूर्ण रूप में उपलब्ध है।

ओटानी (K. Otani) के मध्य एशियाई पाण्डुलिपियों के संग्रह में प्रस्तुत ग्रन्थ की तीन पाण्डुलिपियों के केवल ५६ अंश (fragments) उपलब्ध हैं। मिरोनोव (Mironov) ने इन अंशों का अच्छी तरह अध्ययन किया। इन्होंने विभिन्न मध्य एशियाई, नेपाली एवं चीनी-संस्करणों का परीक्षण करके प्रस्तुत ग्रन्थ के विषय में भाषा एवं तिथि-सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त किये हैं।[७]

---

[१] Manuscript Remains of Buddhist Literature found in Eastern Turkistan.

[२] वही, पृ० १५७।

[३] वही, पृ० १६२।

[४] वही, पृ० १६१।

[५] J. R. A. S. 1911, पृ० १०६६—७७।

[६] J. R. A. S. 1927, पृ० २७३।

[७] J. R. A. S. 1927, पृ० २५२—२७६।

गिलगिट से प्राप्त पाण्डुलिपियाँ

प्रस्तुत ग्रन्थ की दो पाण्डुलिपियाँ गिलगिट से प्राप्त हुई हैं। वे हस्तनिर्मित कागज के लगभग १५० पत्रों पर लिखी गई हैं तथा इसमें पूरे ग्रन्थ का तीन-चौथाई भाग उपलब्ध है। इनके कुछ पत्रों को बरुच (Baruch) ने सन् १९३८ ई० में प्रकाशित किया।[1] इन्होंने इन पत्रों का चीनी-अनुवाद के साथ अध्ययन किया तथा इसका रचनाकाल ५वीं शती बताया।

गिलगिट से प्राप्त पाण्डुलिपियाँ अधिकांशतः नेपाली-पाण्डुलिपियों से मिलती ह— इस तथ्य को नलिनाक्ष दत्त एवं पौसिन ने अपने अध्ययन द्वारा प्राप्त निष्कर्षों से सिद्ध किया है।[2]

तरफान में जकोव (Zakov) ने एक पाण्डुलिपि के कुछ अंश प्राप्त किये हैं, जो यिगरी-तुर्की (Uigur-Turkish) भाषा में है। इसमें केवल २५वाँ परिवर्त्त उपलब्ध है। रैडोफ (W. Radoff) ने इसे सन् १९११ ई० में जर्मन-अनुवाद के साथ प्रकाशित किया।[3]

सद्धर्मपुण्डरीक का अनुवाद

अ. चीनी-अनुवाद :

प्रस्तुत ग्रन्थ के लगभग आठ या नौ चीनी-अनुवादों के उल्लेख मिलते हैं, किन्तु इनमें निम्नलिखित तीन ही उपलब्ध हैं : १. धर्मरक्ष-कृत अनुवाद, २. कुमारजीव-कृत अनुवाद और ३. ज्ञानगुप्त एवं धर्मगुप्त-कृत अनुवाद।

धर्मरक्ष-कृत अनुवाद प्राचीनतम है। यह सन् २८६ ई० में अनूदित किया गया था। धर्मरक्ष पश्चिमवासी त्सिन (Tsin) वंश के थे तथा इनका जन्म कान-सू (Kan-su) प्रान्त में हुआ था। इन्होंने देश के पश्चिमी भागों में रहकर लगभग छत्तीस भाषाओं का अध्ययन किया था।

कालक्रम में दूसरा अनुवाद कुमारजीव का है। इसे इन्होंने सन् ४०२ ई० में सम्पन्न किया था। यह तिब्बती-संस्करण पर आधृत है। इनका जन्म त्शीन (Tshin) वंश में हुआ था तथा ये कूच (Kuch) के प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु थे। इन्होंने अनेक बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया है।

तीसरा चीनी अनुवाद ज्ञानगुप्त एवं धर्मगुप्त का है। इनका समय सन् ६०१ ई० है। ये सुइ (Sui)-वंश के थे। इनका अनुवाद नेपाली-पाण्डुलिपियों पर आधृत है।

---

[1] Journal Asiatiqui. 1938 में 'Bertrage zum Saddharmapundarikasutra' शीर्षक के अन्तर्गत।

[2] नलिनाक्ष दत्त द्वारा सम्पादित सद्धर्मपुण्डरीक की भूमिका, पृ० १२—१४।

[3] Bibliotheca Buddhica Series, 1911.

चीनी-परम्परा के अनुसार सद्धर्मपुण्डरीक पर बोधिसत्त्व वसुबन्धु ने 'सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्रशास्त्र' नामक टीका लिखी थी, जिसका अनुवाद बोधिरुचि एवं रत्नमति ने लगभग सन् ५०८ ई० में चीनी-भाषा में किया था ।

आ. जापानी-अनुवाद :

सन् ६१५ ई० में जापान के एक राजकुमार शी-तोकु-ताय-शी ने इस ग्रन्थ पर जापानी-भाषा में एक टीका लिखी, जो आज भी वहाँ बड़े आदर से पढ़ी जाती है ।

इ. तिब्बती-अनुवाद :

सद्धर्मपुण्डरीक का तिब्बती-अनुवाद सुरेन्द्रबोधि तथा स्ना-नम ये-शेस्-स्दे (Sna-nam Ye-Ses-Sde) ने किया है ।[१] तिब्बती-भाषा में एकमात्र यही अनुवाद उपलब्ध है ।

ई. मंगोलीय अनुवाद :

सद्धर्मपुण्डरीक के एक अंश का मंगोली-भाषा में भी अनुवाद उपलब्ध है ।[२] इससे प्रमाणित होता है कि सद्धर्मपुण्डरीक का प्रभाव उत्तरी चीन में भी था ।

उ. जर्मन-अनुवाद :

प्रस्तुत ग्रन्थ के मध्य एशिया (तरफान) से प्राप्त कुछ अंश का मूलर (F. W. K. Muller) एवं रैडोफ (W. Radoff) ने जर्मन में अनुवाद किया है, जो क्रमशः सन् १९११ एवं १९१४ ई० में प्रकाशित हुआ है ।[३]

ऊ. फ्रेंच-अनुवाद :

फ्रान्सीसी विद्वान् बुर्नुफ (E. Burnouf) ने फ्रांसीसी भाषा में इसका अनुवाद किया, जिसका शीर्षक था 'ल लोतुस द ला बोन ल्वा' (Le Lotusde la bonne Loi) । यह अनुवाद पेरिस से सन् १८५२ ई० में प्रकाशित हुआ था ।

ऋ. अँगरेजी-अनुवाद :

डच-विद्वान् कर्न (H. Kern) ने इसका अँगरेजी में अनुवाद किया है। यह लोटस ऑव दि ट्रू लॉ (Lotus of the True law) नाम से सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट (Sacred Books of the East) ग्रन्थ-माला के २१वें ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित है ।

---

[१] Tohoku Catalogue, संख्या ११८ ।

[२] बुद्धग्रन्थावली, संख्या १४, १९११ ।

[३] Bibliotheca Buddhica, १९११ और १९१४ ।

इस ग्रन्थ के तीसरे एवं चौथे परिवर्त्त अनेक यूरोपीय बौद्ध ग्रन्थों में सानुवाद निविष्ट मिलते हैं। चौथा अध्याय फोको (Faucaux) के 'पाराबोल द लॉफॉं एगोर' (Parabole de lenfant egare) में अनूदित है।

पूर्ववर्त्ती संस्करण

प्रो० एच्० कर्न एवं बी० नंजिओ द्वारा सम्पादित सद्धर्मपुण्डरीक का प्रथम संस्करण सेण्टपीटर्सबर्ग, रूस से विब्लिओथेका बुद्धिका (Bibliotheca Buddhica) के दसवें ग्रन्थ के रूप में सन् १९०८–१२ ई० में प्रकाशित हुआ था। यह देवनागरी-लिपि में था तथा छह भिन्न-भिन्न पाण्डुलिपियों [लन्दन की दो, केम्ब्रिज की दो, कावागुची- (Ekai Kawaguchi) द्वारा नेपाल से प्राप्त एक तथा वाटर्स (Watters) द्वारा फारमोसा से प्राप्त एक] पर आधृत था। इसमें सम्पादकों ने पेट्रेविस्की की पाण्डुलिपियों के अंशों, फोको के संस्करण में उपलब्ध शिलामुद्रित पाठों तथा काशगर से प्राप्त अंशों का भी उपयोग किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का दूसरा संस्करण रोमन-लिपि में है। इसका सम्पादन वोगिहारा (V. Wogihara) तथा त्सुचिढा (C. Tsuchida) ने किया है। यह टोकियो से सन् १९३४ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसमें सम्पादकों ने संस्कृत-पाण्डुलिपि तथा तिब्बती एवं चीनी-अनुवादों का भी उपयोग किया है।

तीसरा संस्करण देवनागरी-लिपि में है, जिसका सम्पादन नलिनाक्ष दत्त ने किया है।[१] इन्होंने दोनों पूर्ववर्त्ती संस्करणों से कुछ पाठान्तर ग्रहण किये हैं। मध्य एशियाई पाण्डुलिपियों में प्राप्त पाठान्तरों को भी इन्होंने प्रस्तुत संस्करण में निवद्ध किया है। गिलगिट से प्राप्त पाण्डुलिपियों के अंशों का भी उपयोग किया है।

चौथा संस्करण भी देवनागरी-लिपि में है तथा इसका सम्पादन पी० एल्० वैद्य ने किया है।[२] यह उपरिनिर्दिष्ट संस्करणों का संकलन-मात्र है। किन्तु, विद्वान् सम्पादक ने श्लोकों, व्यक्तिगत नामों एवं कठिन शब्दों की तालिकाएँ जोड़कर, जो पहले संस्करणों में नहीं हैं, इस संस्करण का महत्त्व बढ़ा दिया है।

सद्धर्मपुण्डरीक का मूल रूप :

सद्धर्मपुण्डरीक का मूल (लघु एवं बृहत्) दो रूपों में प्राप्त होता है। लघु रूप में १ से २० एवं २७वाँ परिवर्त्त एवं बृहद् रूप में १ से २७ परिवर्त्त सम्मिलित हैं। कतिपय विद्वानों का मत है लघु रूप बृहद् रूप की अपेक्षा अधिक प्राचीन है।[३] इस कथन के

---

१. यह कलकत्ता से Asiatic Society of Bengal द्वारा सन् १९५३ ई० में प्रकाशित किया गया।

२. यह दरभंगा से बौद्ध संस्कृत-ग्रन्थावली के छठे ग्रन्थ के रूप में सन् १९६० ई० में प्रकाशित हुआ है।

३. (क) 'It is significant that precisely those chapters which contain no Gathas have proved to be later additions. There are Chapters XXI—XXVI,.—विण्टरनित्ज् : Hist. of Indian Literature, Vol. II, पृ० ३०२।

समर्थन में दो तर्क उपस्थित किये गये हैं। पहला, इनमें गाथाओं की संख्या नहीं के बराबर है, जबकि १ से २० परिवर्त्तों में गाथाओं का बाहुल्य है; जो थोड़े-से श्लोक मिलते भी हैं, उनमें १ से २० परिवर्त्तों की गाथाओं की भाँति पूर्वगत गद्यांश की कथावस्तु की पुनरावृत्ति-मात्र नहीं है।[1] दूसरा, २१-२६ परिवर्त्तों में अधिकांशतः बोधिसत्त्वों एवं अवलोकितेश्वरों की प्रशस्ति की गई है, जबकि सद्धर्मपुण्डरीक के मुख्य वर्ण्य विषय स्वयं बुद्ध शाक्यमुनि हैं। कर्न (Kern) का कथन है कि २१-२६ परिवर्त्त आरम्भ में केवल परिशिष्टों के रूप में थे; क्योंकि ये परवर्त्ती संस्करणों में भिन्न-भिन्न क्रम में पाये जाते हैं।[2]

प्रस्तुत ग्रन्थ के गद्य एवं पद्यभागों को लेकर भी विद्वानों में मतभेद है। विण्टरनित्ज़ का कथन है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के गद्यभाग एवं पद्यभाग दोनों एक समय की रचना नहीं है। मूलतः, यह ग्रन्थ पद्य में ही था; छोटे-छोटे गद्यात्मक भाग केवल पद्यभागों को जोड़ने के लिए यत्र-तत्र प्रयुक्त थे। पद्य की भाषा 'मिश्रसंस्कृत' एवं गद्य की भाषा शुद्ध संस्कृत थी। बाद में चलकर जब पद्य की 'मिश्रसंस्कृत' जन-सामान्य के लिए दुर्बोध-सी हो गई, तब इन गद्यभागों को पद्यभागों की व्याख्या के रूप में बढ़ाकर उन्हें वर्त्तमान रूप दे दिया गया।[3] कर्न ने कुछ संशोधन के साथ विण्टरनित्ज़ से इस विषय पर सहमति व्यक्त की है।[4] नलिनाक्ष दत्त विण्टरनित्ज़ से सहमत नहीं हैं। इनका कथन है कि गाथाओं में 'मिश्रसंस्कृत' तथा गद्यभागों में शुद्ध संस्कृत के साथ-साथ प्रयोग की परिपाटी प्रथम एवं द्वितीय शती के महायानी लेखकों में सर्वसामान्य थी। मध्य-

---

(ख) "A clear indication that Chapter XXI-XXVI are later additions". लोटस भूमिका, पृ० २१।

(ग) "इस ग्रन्थ के अन्तिम सात अध्याय बाद के जोड़े गये हैं।"—आचार्य नरेन्द्रदेव : बौद्धधर्मदर्शन, पृ० १४२।

[1] इस तर्क के खण्डन में विण्टरनित्ज़ कहते हैं : "We cannot however, simply say that the prose is a resume of the Gathas or the Gathas are an amplication of the prose. For instance, supposing that in Book I, we had only the prose, we should glean a meaning from it whereas the Gathas by themselves would remain in-explicable in some cases. In Book II, the main content is included in the Gathas. In Book III the prose diverges somewhat from the Gathas, but the Gatha narrative persents a better meaning."

—Hist. of Indian Lit. Vol. II, पृ० ३०२, पादटिप्पणी-संख्या ४।

[2] लोटस : भूमिका, पृ० १८।

[3] Hist. of Indian Lit. Vol. II, पृ० ३०२।

[4] "'In contending that the original text of our Sutra was probably, in the main, a work of metrical form, I do not mean to say that the poetic version in all the chapters must be considered to be prior to the prose."—लोटस : भूमिका, पृ० १८-१९।

युगीन साहित्य में भी यह परिपाटी उपलब्ध होती है।[1] पी० एल्० वैद्य ने भी नलिनाक्ष दत्त के साथ अपनी सहमति प्रकट की है।[2]

प्रस्तुत ग्रन्थ की मूल भाषा के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। लूडर्स, मिरोनोव एवं अन्य कतिपय विद्वानों का मत है कि मूल ग्रन्थ शुद्ध प्राकृत में ही लिखा गया था और बाद में चलकर धीरे-धीरे रूपान्तरित हुआ।[3] हार्नली का कथन है कि यदि इसकी भाषा सर्वथा शुद्ध प्राकृत नहीं, तो कम-से-कम मागधी पर आधृत 'मिश्रसंस्कृत' तो थी ही।[4] हियान-लिन्-ड्शी (Hian-lin-Dschi) का भी मत है कि अर्द्धमागधी ही वर्त्तमान मिश्रसंस्कृत की मूल भाषा थी।[5] एजर्टन का मत इनसे भिन्न है। इनका कथन है कि प्रस्तुत ग्रन्थ की मूल भाषा न तो प्राच्यप्राकृत (मागधी) थी और न कोई अन्य मध्य-भारतीय प्राकृत ही थी, अपितु वह इन सबसे सर्वथा भिन्न एक भाषा थी। यह भिन्न भाषा देश के किस भाग की भाषा थी और उसका क्या स्वरूप था, इसका निश्चय उन्होंने नहीं किया है।[6]

नलिनाक्ष दत्त ने इन मतों का सतर्क खण्डन किया है। इनके अनुसार प्रस्तुत ग्रन्थ की मूल भाषा भी वही मिश्रप्राकृतसंस्कृत थी, जिसका उत्तरी बौद्ध लेखकों ने सामान्य रूप से प्रयोग किया है। लिपिकों की असावधानी तथा विद्वान् सम्पादकों की सुधारात्मक

---

[1] नलिनाक्ष दत्त-सम्पादित सद्धर्मपुण्डरीक, भूमिका-पृ० १७।

[2] "यह मानना अधिक सम्भवनीय तथा युक्तियुक्त जँचता है कि उस युग का तरीका ही यही रहा कि पहले गद्य लिखा जाता था और उसी आशय को बाद में पद्यनिबद्ध किया जाता था, ताकि स्मरणशक्ति को सहायता मिले। पद्य में भाषा का जो आर्ष रूप मिलता है, वह छन्दोबन्धन की आवश्यकताओं के कारण ही रहा होगा।"
—वैद्य-कृत सद्धर्मपुण्डरीक का संस्करण, भूमिका, पृ० १३।

[3] Manuscript Remains of Buddhist Literature found in Eastern Turkistan. पृ० १६१। लूडर्स ने अपने मत को तबतक अनिश्चित कहा है, जबतक प्रस्तुत ग्रन्थ का कोई प्राकृत-संस्करण न मिल जाय।

[4] वही, पृ० १६२।

[5] Edgerton's Grammar, पृ० ३ पर उद्धृत।

[6] (क) "It is based primarily on an old Middle Indic Vernacular, not otherwise identifiable."—वही, पृ० १।

(ख) लूडर्स एवं हार्नली के मतों का खण्डन करते हुए वे पुनः कहते हैं : "I find no reason to believe that the Prakrit underlying BHS or any substantial part of its tradition was an eastern dialect. I know no way of localising it geographically at all." वही, पृ०—११।

प्रवृत्ति को ही इन्होंने विभिन्न संस्करणों के पारस्परिक भेदों का कारण माना है। इनकी दृष्टि में ग्रन्थ की मूल भाषा एवं वर्त्तमान भाषा में कोई मौलिक अन्तर नहीं था।[१]

रचनाकाल :

प्रस्तुत ग्रन्थ की मध्य एशिया से प्राप्त पाण्डुलिपियाँ निश्चित रूप से सिद्ध कर देती हैं कि यह ग्रन्थ ५वीं शती में एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के रूप में वर्त्तमान था। सप्तम शती की चन्दकीर्त्ति-कृत 'मध्यमकारिका' की टीका में तथा शान्तिदेव-कृत 'शिक्षासमुच्चय' में प्रस्तुत ग्रन्थ के उद्धरण प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ का धर्मरक्ष-कृत सन् २८६ ई० का चीनी-अनुवाद हमें प्राप्त है। इससे कम-से-कम इतना तो अवश्य ही निश्चित हो जाता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ तीसरी शती में एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के रूप में उपस्थित था।

बाह्य एवं आन्तरिक प्रमाणों के आधार पर अधिकांश विद्वानों ने इस ग्रन्थ का रचनाकाल ईसा की प्रथम शती में स्थिर किया है। आचार्य नरेन्द्रदेव का कथन है : सद्धर्मपुण्डरीक का रचनाकाल यद्यपि निश्चित नहीं है, तथापि उसकी 'मिश्रसंस्कृत' भाषा, स्तूपपूजा, बुद्धभक्ति एवं कला के विकसित रूप का विशेष वर्णन देखकर यह कहा जा सकता है कि महावस्तु एवं ललितविस्तर के अनन्तर, किन्तु ईसा के प्रथम शतक के प्रारम्भ में इसकी रचना हुई थी।[२]

विण्टरनित्ज़[३], नलिनाक्ष दत्त[४], बलदेव उपाध्याय[५], पी० एल्० वैद्य[६] आदि विद्वान् भी इस ग्रन्थ को प्रथम शती की रचना मानते हैं।

---

१. "Hence the surmise made by Luders, Hoernle and others are not very convincing and we think that the original text was identical and with the present minus the addition and alteration made by the copyists and reciters in course of centuries, during which long period the language also underwent appreciable change."
—नलिनाक्ष दत्त-सम्पादित सद्धर्मपुण्डरीक, भूमिका, पृ० १७।

२. बौद्धधर्मदर्शन, पृ० १४२।

३. "Nevertheless we shall most probably be right in placing the nucleus of the work as far back as the first century A. D."
—Hist. of Indian Literature, Vol. II, पृ० ३०३-४।

४. "The probable date of the text is not very anterior to the 3rd century A. C. and should be placed some time after the Mahavastu and the Lalitavistara from the point of both Buddhological conceptions and linguistic characteristics. Hence its original composition may be assigned to the 2nd or even 1st century A. C."
—नलिनाक्ष दत्त-सम्पादित सद्धर्मपुण्डरीक, भूमिका, पृ० १७।

५. "इसका मूल रूप प्रथम शताब्दी में संकलित किया गया था; क्योंकि नागार्जुन (द्वितीय शतक) ने इसे अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है।"—बौद्धदर्शनमीमांसा, पृ० १०६।

६. "इस रचना की तिथि ईसा की पहली शताब्दी में मानना गलत नहीं होगा।"—वैद्य-सम्पादित सद्धर्मपुण्डरीक, भूमिका, पृ० १४।

महत्त्व :

नौ वैपुल्यसूत्रों में 'सद्धर्मपुण्डरीक' सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ माना गया है। अनेसाकी ने इसके शीर्षक की व्याख्या करते हुए लिखा है : "पुण्डरीक (कमल) शुद्धता एवं पूर्णता का प्रतीक है। जिस प्रकार मलिन पंक से उत्पन्न होकर भी कमल उससे लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार बुद्ध भी इस संसार में उत्पन्न होने पर भी सासांरिक प्रपंचों एवं क्लेशों से सर्वथा निर्लिप्त रहते हैं तथा जैसे कमल के फल फूल के खिलते ही पक जाते हैं, वैसे ही बुद्ध द्वारा उपदिष्ट सत्य भी समृद्धि-रूप फल को तुरत देने में समर्थ होता है।"[1]

महायान-दर्शन के सिद्धान्तों से पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए इस ग्रन्थरत्न का अध्ययन अनिवार्य माना गया है।[2]

इसकी श्रेष्ठता का विवेचन करते हुए कहा गया है : "जैसे सभी जलाशयों में समुद्र श्रेष्ठ है, सभी पर्वतों में सुमेरु श्रेष्ठ है, सभी नक्षत्रों में चन्द्रमा श्रेष्ठ है, सभी देवों में शक्र श्रेष्ठ है तथा सभी श्रावकों में प्रत्येकबुद्ध श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सभी धर्मपर्यायों में सद्धर्मपुण्डरीक श्रेष्ठ है। जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है, उसी प्रकार सद्धर्मपुण्डरीक अमंगल का नाश करता है। जैसे तडाग तृषार्त्तों का रक्षक है, अग्नि शीतार्त्तों का रक्षक है, वस्त्र नग्न व्यक्तियों का रक्षक है, सार्थवाह वणिजों का रक्षक है माता पुत्रों की रक्षिका है, नौका पार जानेवालों की रक्षिका है, वैद्य रोगियों का रक्षक है, एवं चक्रवर्त्ती कोट्टराजाओं का रक्षक है, उसी प्रकार सद्धर्मपुण्डरीक सांसारिक बन्धनों से बद्ध प्राणियों का रक्षक है। जैसे अन्धकार को दूर करने के लिए दीपक की आवश्यकता है तथा दरिद्रता को दूर करने के लिए रत्न की आवश्यकता है, वैसे ही प्राणियों को मुक्ति दिलाने के लिए सद्धर्मपुण्डरीक की आवश्यकता है।"[3]

---

[1] Buddhist Art in its relation to Buddhist Ideals. पृ० १५।

[2] (क) विण्टरनित्ज़ लिखते हैं : "He who wishes to become acquainted with Mahayan Buddhism with all its characteristic peculiarities with all its advantages and defects, should read this Sutra."—Hist. of Indian Lit. Volume II. पृ० २६५।

(ख) एजर्टन का मत है : "The Saddharmapundarika shows itself as a well-planned systematic introduction to the special dogmas of the Mahayan."—Grammar, पृ० ३६।

(ग) कर्न के मत में : "The Lotus being one of the standard work of the Mahayan, the study of it cannot but be useful for the right appreciation of the remarkable system." भूमिका, पृ० ३३।

(घ) "यह महायान-धर्म के विशेष सिद्धान्तों की एक अच्छी भूमिका है।—नरेन्द्रदेव : बौद्धधर्मदर्शन, पृ० १४२।

[3] सद्धर्मपुण्डरीक, प्रस्तुत संस्करण, पृ० ४२४-२५।

प्रस्तुत सूत्रग्रन्थ के श्रवण, पठन, लेखन, प्रचार एवं पूजन से व्यक्ति अनेक दिव्य-गुणों एवं शक्तियों को प्राप्त करता है।[१] इनकी चर्चा करते हुए कहा गया है : "उसकी चर्मचक्षु सम्पूर्ण विश्व को देख सकेगी, उसके कान सभी प्रकार के शब्दों को सुन सकेंगे, उसकी नासिका सभी प्रकार के गन्धों को ग्रहण कर सकेगी, उसकी जिह्वा पर रखे सभी पदार्थ दिव्यत्व प्राप्त कर लेंगे, उसका शरीर वैदूर्यमणि के वर्ण का हो जायगा तथा उसका मन सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय का ग्रहण एवं धारण करने में समर्थ हो जायगा।[२]

प्रस्तुत सूत्रग्रन्थ की निन्दा करनेवाले को प्राप्त होनेवाले अनेक अपकर्षों का विस्तृत विवेचन किया गया है, इस सूत्र के निन्दक 'मनुष्ययोनि में गिरकर अनेक पूर्णकल्पों तक अवीचि नामक नरक में निवास करते हैं। तदनन्तर, वे तिर्यग्योनि में जाते हैं। वहाँ वे कुत्ते एवं शृगाल का शरीर धारण करके दूसरों के खिलवाड़ का साधन बनते हैं। मनुष्ययोनि में भी उनका शरीर काले वर्ण के धब्बे से युक्त, व्रणों से परिपूर्ण, खुजली से युक्त, केशरहित एवं दुर्बल होता है। अन्य प्राणी उनको घृणा की दृष्टि से देखते हैं। ढेले की चोट खाकर वे चिल्लाते रहते हैं। भूख और प्यास से उनके अंग सूख जाते हैं। वे ऊँट या गदहे का शरीर धारण करते हैं तथा भार-वहन करने पर भी बार-बार चाबुक एवं डण्डे से पीटे जाते हैं। मनुष्यशरीर धारण करने पर वे कोढ़ी, लँगड़े, कुबड़े, काने एवं मूर्ख होते हैं तथा नीच कुल में जन्म लेते हैं। उनका मुख सड़ा रहता है और उससे दुर्गन्ध निकलती है। उनपर कोई विश्वास नहीं करता। वे दरिद्र सेवकों का कार्य करते हैं, दूसरों के अधीन रहते हैं, दुर्बल होते हैं तथा अनाथ की भाँति इस संसार में भटकते रहते हैं। जिसकी वे सेवा करते हैं, वह उन्हें पारिश्रमिक नहीं देता और यदि देता भी है, तो दिया हुआ धन नष्ट हो जाता है। योग्य वैद्यों द्वारा दी गई ओषधि भी उनकी रोग को कम करने में समर्थ नहीं होती। वे चोरी, झगड़ा एवं मारपीट में सदैव लगे रहते हैं। असंख्य कल्पों तक वे मूर्ख एवं विकल बनकर इस संसार में निवास करते हैं। नरक ही उनकी क्रीडाभूमि होती है एवं कलुषित स्थान ही उनका निवासस्थान होता है। गदहे, सूअर, सियार और कुत्ते ही उनके साथी होते हैं।"[३]

इस सूत्र के उपदेशक को 'धर्मभाणक' कहा गया है। उसकी एवं इस सूत्र की रक्षा स्वयं बोधिसत्त्व, देवगण, यक्षगण, यहाँतक कि राक्षसियाँ भी करती हैं। इसे अनेक

---

[१] यः कश्चित् कुलपुत्र इमं धर्मपर्यायं धारयिष्यति, वाचयिष्यति, देशयिष्यति वा लिखिष्यति वा स अष्टौ चक्ष गुर्णशतानि प्रतिलप्स्यते, द्वादश श्रोत्रगुणशतानि प्रतिलप्स्यते, अष्टौ घ्राणगुणशतानि प्रतिलप्स्यते, द्वादश जिह्वागुणशतानि प्रतिलप्स्यते, अष्टौ कायगुणशतानि प्रतिलप्स्यते, द्वादश मनोगुणशतानि प्रतिलप्स्यते।—धर्मभाणकानुशंसापरिवर्त, पृ० ३६०।

[२] वही, पृ० ३६०।

[३] औपम्यपरिवर्त, पृ० ११३—१३५।

दिव्यशक्तियाँ प्राप्त रहती हैं।[१] धर्मभाणक की निन्दा अनेक अपकर्षों को देनेवाली है।[२]

किन्तु, उक्त सूत्र के अधिकारी सभी नहीं हैं। इसके वास्तविक अधिकारी वे ही व्यक्ति हैं, जो बुद्धिमान्, बहुश्रुत, स्मृतिमान्, ज्ञानवान्, पण्डित, अग्रबोधि को प्राप्त, अनेक बुद्धों के दर्शनों से कुशलमूल स्थापना करानेवाले, शक्तिसम्पन्न, जीवों के प्रति दया की भावना रखनेवाले, शरीर एवं जीवन के प्रति निःस्पृह, व्रती, निर्मल, अध्ययन में संलग्न, क्रोधरहित, सुगतों के प्रति आदरभाव रखनेवाले, समाधिस्थचित्त तथा श्रद्धालु हैं।[३]

इन अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों का प्रधान उद्देश्य है, भिक्षुओं एवं उपासकों के मन में बुद्ध तथा इस सूत्र के प्रति भक्तिभाव उत्पन्न करना।

सद्धर्मपुण्डरीक की विशिष्टताएँ :

इस ग्रन्थ का प्रधान उद्देश्य है यानत्रय—श्रावकयान, प्रत्येकबुद्धयान एवं बोधिसत्त्वयान—के स्थान पर एकयान (बुद्धयान) की स्थापना करना।[४] नाना अधिमुक्तियों एवं नाना धात्वाशयोंवाले व्यक्तियों को उपदेश देने के लिए ही यानत्रय का प्रचलन हुआ था।[५] ये बुद्ध के केवल उपायकौशल्य हैं।[६] तीनों यानों का पर्यवसान बुद्धयान में ही होता है। यह बुद्धयान ही सर्वज्ञतापर्यवसायी एवं तथागतज्ञानदर्शन की प्राप्ति तथा उसका सन्दर्शन, अवतारण एवं प्रतिबोधन करानेवाला है। यह बुद्धयान अतीत, अनागत एवं वर्त्तमान—तीनों कालों के तथागतों द्वारा स्वीकृत किया गया है। जब सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् बुद्ध क्लेश, दृष्टिसंक्षोभ एवं अकुशलमूल के बाहुल्य से व्याप्त प्राणियों के मध्य उत्पन्न होते हैं, तब बुद्धयान का ही—जो एक है—तीन यानों के रूप में उपदेश करते हैं।

इसी के फलस्वरूप इस ग्रन्थ में कहा गया है कि बुद्धयान के द्वारा ही निर्वाण की प्राप्ति सम्भव है, अन्य यानों के द्वारा नहीं। हीनयान के अर्हत् क्लेशावरणों का नाश करके पुद्गलशून्यता तो प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु वे ज्ञेयावरणों को हटाकर धर्मशून्यता प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते। इसके परिणामस्वरूप उन्हें निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती। उन्हें इसके

---

[१] धारणीपरिवर्त, पृ० ४०५।

[२] "जो इस धर्मपर्याय को प्रक्षिप्त करेंगे एवं इसके धारकों की निन्दा या उनके प्रति कठोर शब्द का व्यवहार करेंगे. उनको ऐसा अनिष्टकर फल मिलेगा कि उसका शब्दों द्वारा वर्णन सम्भव नहीं है।"—सदाऽभूतपरिवर्त, पृ० ३८५।

[३] औपम्यपरिवर्त, १३७—१४७ गाथाएँ।

[४] एकं हि यानं द्वितियं न विद्यते
तृतियं हि नैवास्ति कदाचि लोके। (२।५४)

[५] ये नानाधिमुक्तानां सत्त्वानां नानाधात्वाशयानामाशयं विदित्वा धर्मं देशयन्ति तेऽपि सर्वे बुद्धा एकमेव यानमारभ्य सत्त्वानां धर्मं देशयन्ति यदिदं बुद्धयानम्।—सद्धर्मपुण्डरीक।

[६] उपायकौशल्य ममैवरूपम्
यत् त्रीणि यानान्युपदर्शयामि। (२।६९)

लिए बुद्धयान की ही शरण लेनी पड़ती है। किन्तु, जो आरम्भ से ही बुद्धयानी हैं, उन्हें निर्वाण-प्राप्ति में कोई कठिनाई नहीं होती।

ग्रन्थ की तीसरी विशिष्टता अवलोकितेश्वर की अतिशय महिमा एवं अद्भुत करुणा का वर्णन है। अवलोकितेश्वर ने स्वयं बोधि प्राप्त कर ली है, अर्थात् निर्वाणप्राप्ति की क्षमता उन्हें प्राप्त है, किन्तु जबतक संसार का एक भी प्राणी दुःख में बद्ध होगा, तबतक निर्वाण न प्राप्त करने का उनका संकल्प है। वास्तव में ये बुद्ध ही हैं, किन्तु अन्तर यह है, कि जबकि अन्य बुद्ध यथासमय निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं, ये अवलोकितेश्वर संसार के प्राणियों के प्रति महती करुणा के कारण निर्वाण में प्रवेश नहीं करते।

अवलोकितेश्वर के नाम का केवल स्मरण ही मनुष्य की अनेक दुःखों एवं आपदाओं से रक्षा करता है। महान् अग्निस्कन्ध से, वेगवती नदी की धारा से, मृत्युदण्ड से, कारावास से, डाकुओं से एवं समुद्रवास के समय कालिकावात से रक्षा प्राप्त करने के लिए अवलोकितेश्वर का स्मरण-मात्र पर्याप्त है। चीनी पर्यटक फाहियान ने, जो ईसा की चौथी शती में भारत आया था, लंका से चीन जाते समय समुद्रप्रवास के समय तूफान से बचने के लिए अवलोकितेश्वर की ही प्रार्थना की थी। अवलोकितेश्वर के स्मरण एवं नमन से निःसन्तान स्त्री को सुन्दर पुत्र की भी प्राप्ति होती है।

कारण्डव्यूह में अवलोकितेश्वर की महाकरुणा के अनेक वर्णन उपलब्ध होते हैं। वे अवीचि नामक नरक में जाकर नारकियों को दुःखों से बचाते हैं। वे प्रेत, भूत एवं राक्षस की योनियों में वर्त्तमान प्राणियों की भी रक्षा करते हैं तथा इन्हें सुख पहुँचाते हैं। अवलोकितेश्वर केवल करुणामूर्त्ति ही नहीं हैं, अपितु सृष्टि के स्रष्टा भी हैं। उनका रूप विराट् है। उनकी आँखों से सूर्य एवं चन्द्रमा, भ्रू से महेश्वर, भुजाओं से ब्रह्मा आदि देवता, हृदय से नारायण, दाँतों से सरस्वती, मुख से मरुत्, पैरों से पृथ्वी एवं पेट से वरुण उत्पन्न हुए हैं। उनकी उपासना स्वर्ग की प्रापिका है।

समाधि एवं यौगिक क्रियाओं की अपेक्षा बुद्धभक्ति, मूर्त्तिपूजा, स्तूपपूजा आदि को अधिक महत्त्व देना, इस ग्रन्थ की चौथी विशिष्टता है। बुद्धत्व-प्राप्ति के लिए बुद्धों एवं बोधिसत्त्वों की पूजा आवश्यक मानी गई है। अर्हतों को भी बुद्धत्व की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब वे असंख्य बुद्धों, बोधिसत्त्वों एवं उनके धात्ववशेषों की पूजा करेंगे। श्रावकों एवं उपासकों को भी आदेश दिया गया है कि वे इस सूत्र तथा इसके व्याख्याताओं की पूजा करें तथा उस स्थान पर स्तूपनिर्माण करायें, जो कभी बुद्ध या धर्मभाणक की उपस्थिति से पवित्र हो गया है। "वे सभी प्राणी, जिन्होंने बुद्ध के उपदेशों का श्रवण किया है, अनेक प्रकार के शुभकर्म किये हैं, सदाचारमय जीवन व्यतीत किया है, धात्ववशेषों की पूजा की है, स्तूप एवं बुद्ध की मूर्त्तियाँ बनवाई हैं, स्तूपों की पुष्प एवं गन्ध से पूजा की है, बुद्ध की मूर्त्ति के सम्मुख संगीत प्रस्तुत किया है तथा अनायास ही मन में बुद्ध के प्रति गौरवभावना की सृष्टि की है — वे सभी श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करके बुद्धत्व-लाभ करते हैं।"[१] वे बच्चे भी बुद्धत्व-

---

[१] सद्धर्मपुण्डरीक, २।६१—८७।

प्राप्ति के अधिकारी हो जाते हैं, जो खेल-खेल में बालू के स्तूप बनाते हैं तथा दीवारों पर बुद्ध के उल्टे-सीधे चित्र खींच देते हैं।[१]

इस प्रकार, हम देखते हैं कि बुद्धों, अवलोकितेश्वरों, स्तूपों एवं प्रस्तुत सूत्र की पूजा तथा सदाचार एवं शुभकर्मों के महत्त्व पर जोर देना इस ग्रन्थ का प्रधान ध्येय है।

प्रस्तुत ग्रन्थ भक्तिपरक है, अतः इसमें बुद्ध के उपदेशों के दार्शनिक पक्षों पर विशेष विचार नहीं किया गया है। बुद्धों, बोधिसत्त्वों एवं बुद्धक्षेत्रों की संख्या के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन द्वारा संसार की अनन्तता की ओर निर्देश किया गया है। बुद्धक्षेत्रों की संख्या गंगा की बालुका के समान अनन्त है। प्रत्येक बुद्धक्षेत्र के अधिशासक एक-एक बुद्ध हैं तथा प्रति बुद्ध के शिष्य के रूप में असंख्य बोधिसत्त्व, श्रावक एवं प्रत्येकबुद्ध वहाँ उपस्थित रहते हैं। हमारे इस लोक---सहालोकधातु के अधिशासक स्वयं शाक्यमुनि हैं। वे अनन्त कल्पों से इस लोक पर अधिशासन करते आ रहे हैं एवं भविष्य में भी अनन्त कल्पों तक करते रहेंगे। इन्होंने इस लोक में गौतम बुद्ध के रूप में अवतार ग्रहण करके असंख्य अर्हतों, श्रावकों एवं प्रत्येकबुद्धों को अपने उपदेशों द्वारा बुद्धत्व की प्राप्ति कराई है। स्वयं शाक्यमुनि का जीवनकाल अनन्त है।

महायान-ग्रन्थों में प्रतिपादित दार्शनिक सत्य प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रायः ज्यों-के-त्यों स्वीकृत कर लिये गये हैं। जीवन का चरम लक्ष्य निर्वाण नहीं, बुद्धत्व की प्राप्ति है। बुद्धत्व की उपलब्धि के लिए षट्पारमिताओं की प्राप्ति आवश्यक है। इसके अतिरिक्त मैत्री एवं क्षान्ति का आचरण करते हुए जीवन को संयत एवं सदाचारपूर्ण रखना भी अत्यावश्यक है। बोधिसत्त्वों को आदेश दिया गया गया है कि वे अपने-आपको सांसारिक व्यक्तियों--राजाओं, राजपुत्रों, मन्त्रियों. विधर्मियों, स्त्रियों, श्रावकों एवं प्रत्येकबुद्धों--से पृथक् रखें। धार्मिक उपदेश देते समय भी उन्हें गृहस्थों की ओर से मनसा अनासक्त रहना चाहिए। बोधिसत्त्व गृहस्थ एवं संन्यासी—दो प्रकार के होते थे। किन्तु, घूम-घूमकर उपदेश देनेवाले बोधिसत्त्व सामान्यतः भिक्षु ही होते थे। ये मुण्डितमस्तक एवं काषायवस्त्रधारी भिक्षु खुले स्थानों, एकात जंगलों तथा पर्वतगुफाओं में निवास करते थे और सदा स्वाध्याय एवं समाधि में निरत रहते थे।

इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सद्धर्मपुण्डरीक के बुद्ध मनुष्य न रहकर अनादि, अनन्त, सर्वसमर्थ एवं करुणामय भगवान् बन गये हैं। कर्न ने प्रस्तुत ग्रन्थ की इस विशिष्टता का अपनी भूमिका में विशद रूप से विवेचन किया है एवं इसके समर्थन में प्रबल तर्क दिये हैं।[२]

---

[१] सद्धर्मपुण्डरीक, २।८८।

[२] (क) The Lotus, far from giving prominence to the unavoidable human traits endeavours as much as possible to represent the Lord and his audience as super human beings....Now it is difficult to conceive that any author, wilfully and ostentatiously, would mention such traits

अपनी भगवत्ता के विषय में बुद्ध स्वयं कहते हैं : "मैं स्वयम्भू एवं संसार का पिता हूँ; वैद्य तथा सभी प्राणियों का संरक्षक हूँ। यद्यपि मैं स्वयं अनादि, अनन्त एवं अजन्मा हूँ, फिर भी संसार के मोहग्रस्त प्राणियों को समझाने के लिए निर्वाण-प्राप्ति एवं जन्मधारण का अभिनय करता हूँ।"[1]

उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर कुछ विद्वानों ने सद्धर्मपुण्डरीक पर भागवत-सम्प्रदाय का प्रभाव माना है। जे० एन्० फरकुहार (J. N. Farquhar) का मत है कि सद्धर्मपुण्डरीक पर भागवत-सम्प्रदाय, वेदान्त एवं गीता का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।[2] विण्टरनित्ज़ फरकुहार के मत के एक ही अंश से सहमत हैं। उनका कथन है कि भागवत-सम्प्रदाय तथा वेदान्त का तो नहीं, पर गीता का प्रभाव अवश्य वर्त्तमान है।[3] कर्न भी विण्टरनित्ज़ के विचार से सहमत हैं।[4]

सद्धर्मपुण्डरीक के बुद्ध की उपदेश देने की रीति भी प्राचीन बुद्ध से भिन्न है। पालिसूत्रों के बुद्ध संन्यासी के रूप में स्थान-स्थान पर घूमते हैं तथा भिक्षु एवं भिक्षुणियों को उपदेश देते हैं; किन्तु सद्धर्मपुण्डरीक के बुद्ध के साथ ऐसी बात नहीं है। ये तो गृद्धकूट पर्वत पर बैठे हैं; असंख्य भिक्षु, भिक्षुणी, बोधिसत्त्व, देवपुत्र, महाराज, ब्रह्मा, नागराज, किन्नरराज, गन्धर्व, असुर, गरुड, चक्रवर्त्ती, मण्डलाधीश एवं इतर इन्हें घेरे हुए हैं; नभ से निरन्तर दिव्यपुष्पों की वर्षा हो रही है। जब उनके मन में धर्मोपदेश देने का विचार आता है, तब उनके भ्रूविवर के मध्य से एक महती प्रकाशरश्मि विकीर्ण होती है, जिसके प्रकाश में अवीचि से भवाग्र तक अट्ठारह हजार बुद्धक्षेत्र जगमगा उठते हैं। भक्तों के पुनः-पुनः आग्रह करने पर धर्मोपदेश आरम्भ करते हैं।

---

if he wished to impress the reader with the motion that the narrative refers to human beings.....There is, to my comprehension, not the slightest doubt that the Saddharmapundarika intends to represent : Sakya as the supreme being, as the god of gods, almighty and all-wise."

—लोटस : भूमिका, पृ० २६-२७।

(ख) आगे चलकर निष्कर्ष रूप में पुनः कहते हैं : "The conclusion arrived at is that the the Sakyamuni of the Lotus is an ideal, a personification and not a person."

—वही, पृ० २८।

[1] एतादृशं ज्ञानबलं मयेदं प्रभास्वरं यस्य न कश्चिदन्तः।
आयुश्च मे दीर्घमनन्तकल्पं समुपार्जितं पूर्व चरित्व चर्याम्॥—सद्धर्म०, १५।१८।
यमेव हं लोकपिता स्वयंभूः चिकित्सकः सर्वप्रजान नाथः।
विपरीतमूढांश्च विदित्व बालान् अनिर्वृतो निर्वृत दर्शयामि॥—वही, १५।२१।

[2] Outline of the Religious Literature of India, पृ० ११४।

[3] Hist. of Indian Lit. Vol. II, पृ० ३०२।

[4] "Traits borrowed, or rather surviving, from an older cosmological mythology and traces of ancient Nature-worship abound both in the Lotus and the Bhagavagita."—लोटस : भूमिका, पृ० २८।

बुद्ध की महती करुणा एवं समदर्शिता का विशद वर्णन किया गया है। इस प्रसंग में उनकी तुलना एक कारुणिक पिता एवं एक वैद्य से की गई है। जैसे, वैद्य की दृष्टि में सभी प्राणी तथा पिता की दृष्टि में सभी पुत्र समान होते हैं—सबकी हित-साधना वे समान रूप से करते हैं, वैसे ही बुद्ध भी सभी प्राणियों की समभाव से हित-साधना एवं मंगलभावना करते हैं। आगे चलकर इसी प्रसंग में, बुद्ध की तुलना मेघ तथा सूर्य एवं चन्द्रमा से की गई है। जैसे मेघ छोटे-बड़े सभी प्रकार के वृक्षों एवं पौधों पर समरूप से जलवर्षा करता है तथा जिस प्रकार सूर्य एवं चन्द्रमा अच्छे-बुरे तथा ऊँचे-नीचे सभी स्थानों एवं व्यक्तियों पर समरूप से अपनी किरणें बिखेरते हैं, उसी प्रकार बुद्ध भी सभी स्थितियों में वर्त्तमान सभी प्रकार के प्राणियों को समान रूप से उपदेश देते हैं एवं सबकी समभाव से मंगलकामना करते हैं। 'नमोऽस्तु बुद्धाय' इस मन्त्र के उच्चारण-मात्र से मूढ पुरुष भी उत्तम अग्रबोधि को प्राप्त कर लेने में समर्थ हो जाते हैं।

इस ग्रन्थ की अन्तिम, किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता इसकी अतिशयोक्तिपूर्ण एवं विस्तारबहुल वर्णन-शैली है। इससे एक समाँ-सा बँध जाता है, जो सामान्य जनता के चित्त को बरबस आकृष्ट एवं प्रभावित कर लेता है। बुद्ध के प्रति श्रद्धा एवं उनके अलौकिक रूप तथा शक्तियों के प्रति लोगों के हृदय में विश्वास उत्पन्न करने में इन वर्णनों की महती उपादेयता है।

विषय को रोचक एवं सर्वसामान्य के लिए बोधगम्य बनाने के निमित्त स्थान-स्थान पर छोटी-छोटी उपदेशात्मक कथाओं का बहुलता से सन्निवेश किया गया है। इसके द्वारा वर्णन-शैली में नाटकीयता आ जाती है, जो दुर्बोध दार्शनिक तत्त्वों को भी सरल एवं आकर्षक ढंग से लोगों के सम्मुख प्रस्तुत कर देती है। कर्न ने प्रस्तुत ग्रन्थ की भूमिका में इन विशेषताओं का सविस्तर उल्लेख किया है।[१]

साहित्यिक समीक्षा :

अपने प्रतिपाद्य विषय का यथार्थ निरूपण करना ही ग्रन्थकार या वक्ता का मुख्य उद्देश्य होता है। अतः, सफल लेखक या वक्ता उसी भाषा एवं शैली को अपनाता है, जिसके द्वारा वह अभीष्ट विषय का समुचित एवं सफल प्रतिपादन करने में

---

[१] (क) "The latter bears the character of a dramatic performance, an undeveloped mystery play, in which the chief interlocutor, not the only one, is Sakyamuni, the Lord. It consists of a series of dialogues brightened by the magic effects of a would be supernatural scenery. The phantasmogonical parts of the whole are as clearly intended to impress us with the idea of the might and glory of the Buddha, as his speeches are to set forth his all-surpassing wisdom."—**लोटस : भूमिका, पृ० १०।**

(ख) पुनः द्रष्टव्य—"It (the style) is leisurely, formulaic and repetitions; it does not try to be concise or economical in style."—Edgorton : Buddhist Hybrid Sanskrit, पृ० ३६।

समर्थ हो सके। प्रस्तुत ग्रन्थ की भाषा-शैली वर्णनात्मक, उपदेशात्मक एवं दृष्टान्त-प्रधान है। इसका समग्र बल अर्थप्रकाशन पर ही है। अतः, इसकी शैली प्रभु-सम्मित एवं कान्तासम्मित न होकर सुहृत्सम्मित है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने मित्र के हितचिन्तन से प्रेरित होकर उसे अनेकविध कथा-कहानियों के द्वारा अपनी बात समझाता है, उसके ऊपर दबाव नहीं डालता, उसी प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ भी दर्शन के दुरूह तत्त्वों को दृष्टान्त-कथाओं का आश्रय लेकर बड़े रोचक एवं सरल ढंग से पाठकों के हृदय तक पहुँचा देता है। यहाँ कथन के प्रकार पर विशेष आग्रह एवं आस्था न रखकर कथन के विषय को सुगम एवं हृदयंगम बनाने पर अधिक जोर दिया गया है।

इस ग्रन्थ का प्रधान लक्ष्य है आकर्षक एवं उपदेशपूर्ण कथाओं के माध्यम से पाठकों के चित्त को पापात्मिका प्रवृत्तियों से हटाकर पुण्यात्मिका प्रवृत्ति की ओर ले जाना। अतः, यह अनुरंजन के साथ-साथ शिक्षण का कार्य भी करता है।

कुछ विद्वानों ने इसकी विस्तारबहुल शैली पर आपत्ति की है। उनका कथन है कि इससे विषय के ग्रहण करने में बाधा पड़ती है; क्योंकि पाठक शब्दों के भँवर में ऐसा फँस जाता है कि विचारतन्तु उसके हाथ से छूट जाते हैं।[१] यह विचार सर्वथा सही नहीं है। प्रस्तुत ग्रन्थ बुद्धवचनों का संग्रह है। ये वचन स्वयं शाक्यमुनि के द्वारा असंख्य श्रोताओं को बुद्धधर्म में दीक्षित करने के लिए मौखिक कहे गये हैं। उपदेश की शैली ग्रन्थ की शैली से भिन्न होती है। उपदेश को रोचक बनाकर श्रोताओं के ध्यान को अपनी ओर केन्द्रित रखने के लिए आवश्यक है कि वक्ता एक ही बात को विभिन्न प्रकार से कई बार कहे। पुनरुक्ति का आश्रय लेने से विषय के किसी अंश के छूट जाने के भय की सम्भावना भी कम हो जाती है। श्रोताओं का ध्यान विषय की ओर है या नहीं, यह जानने के लिए उनको पुनः-पुनः सम्बोधित करते रहना भी वक्ता के लिए आवश्यक होता है। यह विशेषता आज भी हमें भक्तिपरक भाषणों में मिलती है। वक्ता श्रोतृसमूह को आनन्दविभोर करके उसमें तन्मयता उत्पन्न करने के लिए इस शैली का आश्रय लेता है।

---

[१] (क) All those similes and parables would be still more beautiful if they were not spun out to such length and with such verbosity that the pointedness of the simile suffered from it. This verbosity is very characteristic of the whole book. It is a veritable whirl of words with which the reader is stunned and the idea is often drowned in the flood of words."—Winternitz : Hist. of Indian Literature, Vol. II, पृ० ३००।

(ख) आचार्य नरेन्द्रदेव भी इस मत का समर्थन करते हैं : 'साहित्य की दृष्टि से यह एक उच्च कोटि का ग्रन्थ है, यद्यपि इसकी शैली आज के लोगों को नहीं पसन्द आयगी। इसमें अतिशयोक्ति है; एक ही बात बार-बार दुहराई गई है।'—बौद्धधर्मदर्शन, पृ० १४२।

प्रस्तुत ग्रन्थ की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता इसकी नाटकीयता है ।[1] ग्रन्थ का आरम्भ ही नाटकीय ढंग से होता है । जिस प्रकार प्रस्तावना के अन्त में सूत्रधार नाटक के आरम्भ होने की सूचना देकर दर्शक-समुदाय की आन्तरिक वृत्तियों को अभिनय-दर्शन के लिए उद्बुद्ध कर देता है, उसी प्रकार निदानपरिवर्त के अन्त में मञ्जुश्री भगवान् शाक्यमुनि के आगे होनेवाले उपदेश-रूप महान् नाटक की पूर्व सूचना देकर वहाँ उपस्थित श्रोताओं को बुद्धवचन के श्रवण की ओर उन्मुख कर देता है।[2] ग्रन्थ में आदि से अन्त तक कहीं भी नाटकीय गतिशीलता में कमी नहीं आने पाई है । पुनरुक्तियों, अतिशयोक्तियों एवं वर्णनों का बाहुल्य होने पर भी कथा के प्रवाह में कहीं अवरोध नहीं उत्पन्न हुआ है । संवाद सर्वत्र प्रभावोत्पादक एवं स्वाभाविक है; उनमें कृत्रिमता कहीं भी नहीं है । वर्णन इतने सजीव एवं चित्रात्मक हैं कि लगता है, मानों हम सभी घटनाओं को सामने मंच पर साक्षात् देख रहे हैं, एवं पात्रों के सम्भाषणों तथा भगवान् के उपदेशों को साक्षात् सुन रहे हैं।

इस ग्रन्थ की एक दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता इसकी चम्पू-शैली है ।[3] गद्यांश की बातें सामान्यतः पद्यभाग में दुहरा दी गई हैं । विषय को अच्छी तरह समझने और समझाने के लिए गद्य की अपेक्षा होती है, किन्तु विषय को रोचक, सुगमतापूर्वक

---

[1] १. कर्न इस विशेषता का उल्लेख करते हुए कहते हैं : "The latter (Saddharmapundarika) bears the character of a dramatic performance, an undeveloped mystery-play, in which the chief interlocultor, not the only one, is Sakyamuni, the Lord."—लोटस : भूमिका, पृ० १० ।

[2] २. मैं उस ज्ञानोपदेश के प्रसिद्ध निमित्त के विषय में, जिसे मैंने पहले भी देखा था, बतलाने जा रहा हूँ। सर्वद्रष्टा एवं परमार्थदर्शी शाक्याधिपति जिनेन्द्र निश्चित रूप से जिस श्रेष्ठ धर्म-पर्याय के विषय में कहना चाहते हैं, उसे मैंने पहले से ही सुन रखा है। विनायकों के उपाय-कौशल्य का आज शाक्यसिंह स्वरूप-विवेचन करेंगे। तत्पर एवं एकाग्रचित्त होकर खड़े हो जाओ। लोक का हित एवं उसपर दया करनेवाले सुगत उपदेश देने जा रहे हैं। वे धर्म की अनन्त वर्षा करके बोधिप्राप्ति के हेतु उपस्थित प्राणियों को तृप्त करेंगे। इनके पुत्रों के मन में किसी भी विषय को लेकर जो भी सन्देह होगा, उसे ये बोधिसत्त्व पूर्ण रूप से दूर करेंगे।

—सद्धर्मपुण्डरीक, १।९७—१०० ।

[3] ३. (क) कतिपय विद्वान् गद्यभाग एवं पद्यभाग को विभिन्न काल की रचना मानते हैं। विण्टरनित्ज़ कहते हैं : "It is altogether difficult to fix any definite period for the Saddharmapundrika as it contains sections belonging to various epochs. The prose in pure Sanskrit and the gathas in mixed Sanskrit, could not possibly have originated at the same time."

—Hist. of Indian Lit., पृ० ३०२ ।

(ख) कर्न भी इसी मत के समर्थक हैं। वे कहते हैं : "The material discrepancies between the version in prose and that in verse are occasionally too great to allow us to suppose than to have been made simultaneously or even by different authors commiting at work."—लोटस : भूमिका, पृ० ११ ।

ग्राह्य एवं स्मृतिपट पर स्थायी बनाने के लिए पद्य की आवश्यकता होती है। गद्य की अपेक्षा पद्य मनुष्य को आकृष्ट भी अधिक करता है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि सृष्टि के आदि में मनुष्य ने बोलने का आरम्भ गद्य से नहीं, पद्य से किया था। पद्य की ओर मानव-मात्र के स्वाभाविक झुकाव के दो प्रधान कारण हैं: पहली बात, पद्य में गेयता होती है, जो श्रोता की हृत्तन्त्रियों को बलात् झंकृत करके उसे अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। दूसरी बात, गद्य की अपेक्षा पद्य अधिक सरलता एवं शीघ्रता से मानसपटल पर अंकित हो जाता है। पद्य के इस दूसरे गुण का श्रोता एवं वक्ता दोनों के लिए उन दिनों अत्यधिक महत्त्व था, जबकि अधिकांशतः ज्ञान का आदान-प्रदान लिखित न होकर मौखिक ही होता था। एक ही विषय को पहले गद्य में और पुनः पद्य में कहने की परिपाटी मध्ययुगीन भारतीय साहित्य में भी पर्याप्त रूप में प्रचलित थी। आज भी विशेषकर धार्मिक गोष्ठियों में कम पढ़े-लिखे भावुक एवं भक्त श्रोताओं में भावनात्मक तन्मयता उत्पन्न करने के लिए इस शैली का प्रभूत प्रयोग होता है। वक्ता पहले श्रोता के सम्मुख गद्य के माध्यम से विषय का प्रतिपादन करता है, तदनन्तर उसी बात को गेय पदों के रूप में वह श्रोताओं के सम्मुख रखता है। गद्य सुनते-सुनते सामान्य श्रोता की तबीयत ऊबने-सी लगती है और वह विषय की ओर से धीरे-धीरे उदासीन-सा होने लगता है; किन्तु पुनः ज्योंही मधुर संगीत की लहरियाँ उसके श्रवण-मार्ग से उसके हृदय में प्रवेश करके उसकी सुप्त भावनाओं को उद्वेलित करती हैं, सारे शरीर में एक नई जीवनी शक्ति का संचार हो जाता है और मस्तिष्क के क्रियाहीन तन्तु पुनः क्रियाशील हो जाते हैं--वह चौंककर सावधान हो जाता है। इसका कारण स्पष्ट है: गद्य का सम्बन्ध मनुष्य के केवल मस्तिष्क से होता है, किन्तु पद्य की गेयता हमें झकझोर देती है--हमारे अन्तः में जागर्त्ति उत्पन्न कर देती है, सोये भावों को उद्रिक्त कर देती है।

गद्य एवं पद्यभागों में प्रयुक्त भाषा का अन्तर भी महत्त्व रखता है। गद्यभाग में शुद्ध संस्कृत का प्रयोग किया है, किन्तु पद्यभाग में मिश्रित संस्कृत का, जिसपर प्राकृत का अधिकाधिक प्रभाव है, प्रयोग किया गया है। ऐसा करने का भी कारण स्पष्ट प्रतीत होता है। प्राकृत का प्रयोग करने से पद्य की मधुरता और भी बढ़ गई है; क्योंकि संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत अधिक कोमल एवं मधुर मानी गई है। दूसरे, प्राकृत संस्कृत की तरह केवल कतिपय पण्डितों की भाषा न होकर जनभाषा थी, सामान्य जनता की भाषा थी। अतः, इस भाषा में निबद्ध विषय को जनता अधिक सुगमता, आनन्द एवं आत्मीयता के साथ ग्रहण करती है। उदाहरणार्थ, एक भोजपुरी-भाषाभाषी भोजपुरी-कविता के तथा एक मैथिली-भाषाभाषी विद्यापति के पदों के पठन एवं श्रवण में खड़ी हिन्दी की कविता की अपेक्षा अधिक आनन्द की अनुभूति करता है। इसका कारण स्पष्ट है। वह उसकी अपनी भाषा है, जिसे वह बचपन से सुनता,

समझता और बोलता आ रहा है और जो उसके रक्त के कण-कण में व्याप्त है। प्रत्येक भाषा का अपना एक सांस्कृतिक परिवेश भी होता है। उसके अन्तः में पूर्ण प्रवेश उस भाषा के बोलनेवाले ही पा सकते हैं।

गद्यभाग प्रायः शुद्ध संस्कृत में लिखा गया है। अतः, संस्कृत-गद्य की तत्कालीन मान्य परम्परा के अनुसार उसमें बड़े-बड़े समस्त पदों एवं लम्बे-लम्बे वाक्यों का प्रयोग हमें उपलब्ध होता है।[१] किन्तु, पद्यभाग के साथ ऐसी बात नहीं है। इसकी पदावली सरल, कोमल एवं लालित्यमयी है तथा भाषा भावपूर्ण एवं प्रवाहमयी। पद्य की इस शैली को हम पूर्ण रूप से वैदर्भी[२] शैली कह सकते हैं। उपरिकथित सन्दर्भ में निम्नोद्धृत गाथाएँ अवलोकनीय हैं :

एकं हि यानं द्वितियं न विद्यते तृतियं हि नैवास्ति कदाचि लोके।
अन्यत्र पापा पुरुषोत्तमानां यद् याननानात्वुपदर्शयन्ति ॥२.५४॥

'यान तीन नहीं, अपितु एक है', इसकी अभिव्यक्ति यहाँ सरलतम, किन्तु प्रवाहमयी भाषा में कितने सुन्दर ढंग से की गई है।

दूसरा उदाहरण लें :

वस्त्राणि चो व्याधयु भोन्ति तस्य व्रणान कोटीनयुताश्च काये।
विचर्चिका कण्डु तथैव पामा कुष्ठं किलासं तथ आमगन्धः॥३.१३३॥

इस गाथा में 'सद्धर्मपुण्डरीक' के निरादर से प्राप्त होनेवाले पापरोगों से पीडित मनुष्य का कितना मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रधान लक्ष्य बौद्धधर्म के दुरधिगम तत्त्वों को सुखपूर्वक जनसामान्य के हृदय तक पहुँचाना है।[३] तदनुकूल इस ग्रन्थ की भाषा विविधाभूषणों, वस्त्रों एवं प्रसाधनों से सुसज्जित विविधकलाकुशला तरुणी रमणी की तरह ऐश्वर्य एवं विलास में मग्न रसिकों की कामवासना की तृप्ति का साधन न बनकर, करुणामयी माता के समान त्रैधातुक संसार के विविध तापों में जलते हुए प्राणियों को अपनी शीतलताप्रदायिनी गोद में बैठाकर उन्हें निर्वाण-रूप पय का पान कराती है। अतः, यहाँ उपमा आदि अलंकारों का विन्यास भी विविध शास्त्रों के अधिगम से प्राप्त विशाल ज्ञानराशि के भार से आक्रान्त पण्डितों के मस्तिष्क के कण्डू-विनोदन के लिए नहीं,

---

[१] ओजस्समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम्।

[२] वैदर्भी रीति की परिभाषा है :
माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ॥

[३] "दशसु दिक्ष्वप्रमेयेष्वसंख्येयेषु लोकधातुषु तथागता अर्हन्तः सम्यक्सम्बुद्धा बहुजनहिताय बहुजनसुखाय, लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां मनुष्याणां नानाभिनिर्हारनिदर्शनारम्बणनिरुक्त्युपायकौशल्यैर्नानाधिमुक्तानां सत्त्वानां नानाधात्वाशयानामाशयं विदित्वा धर्मं देशितवन्तः।" —सद्धर्मपुण्डरीक, पृ० ४६।

अपितु विषय को अनायास रूप से सामान्य श्रोताओं के लिए बोधगम्य बनाने के निमित्त किया गया है । अश्वघोष की उक्ति--**इत्येषा व्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थगर्भाकृतिः, पातुं तिक्तमिवौषधं मधुयुतं हृद्यं कथं स्यादितः** ; प्रस्तुत ग्रन्थ के विषय में भी सर्वथा सत्य है । प्रस्तुत ग्रन्थ के श्रोता एवं पाठक सामान्य जन हैं, जिनके ज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त सीमित है । वे उन्हीं उपमाओं एवं दृष्टान्तों को समझ सकते हैं, जो उनके दैनिक अनुभव की परिधि के बाहर नहीं हैं । अतः, इस ग्रन्थ में ऐसी ही उपमाएँ एवं दृष्टान्त-कथाएँ प्रयोग में लाई गई हैं, जो सामान्य जन के जीवन से सम्बन्ध रखती हैं तथा जिनको समझने के लिए सामान्य से सामान्य व्यक्ति को भी विशेष आयास नहीं करना पड़ता । इस सन्दर्भ में निम्नलिखित उपमाएँ विशेष रूप से दर्शनीय हैं :

अनन्तता एवं अप्रमेयता की अभिव्यक्ति करने के लिए गंगा की विशाल बालुका-राशि[१] एवं असंख्य लोकधातुओं के अनन्त रजःकणों[२] को उपमान के रूप में ग्रहण किया गया है; संसार में रहकर भी उससे निर्लिप्त एवं अनासक्त रहनेवाले व्यक्तियों की तुलना आकाशचारी पक्षी[३], जल में रहकर भी उससे अलग रहनेवाले कमल[४] एवं असंगचारी वायु[५] से की गई है; विविध रत्नों एवं बहुमूल्य वस्त्रों से सुशोभित स्तूपों की उपमा पुष्पराशि से लदे पारिजात-वृक्षों[६] से दी गई है; आश्रवों के क्षीण होने पर निर्वाण प्राप्त करनेवाले व्यक्ति की तुलना तेल की समाप्ति पर बुझते दीपक[७] से की गई है; भगवान् के दर्शन की दुर्लभता की व्यंजना के लिए गूलर के फूल[८] को उपमान बनाया गया है; तृष्णाओं की लपेट में पड़ा प्राणी उस चमरी गाय के समान है, जिसके बाल दावाग्नि में जल रहे हैं;[९] त्रैधातुक संसार की उपमा जलते हुए घर[१०] से दी गई है; संसार की वस्तुएँ कितनी निःसार हैं, इसकी व्यंजना के लिए उनकी तुलना कदली के खम्भे[११] से की गई है; सदा अक्षुब्ध एवं प्रशान्त

---

[१] अनल्पकाः यथरिव गङ्गबालिकाः ।

[२] अनेककोटिनयुतशतसहस्रलोकधातुपरमाणुरजस्समाः ।

[३] खगतुल्यसादृशाः ।

[४] अनूपलिप्ताः पदुमं व वारिणा ।

[५] असंगचारी पवनेन सन्ति, यथापि वायुर्न कहिंचि सज्जति ।

[६] सुपुष्पितैर्वा यथ पारिजातैः ।

[७] परिनिर्वृतो हेतुक्षये व दीपः ।--इसपर अश्वघोष के निम्नोद्धृत श्लोक का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है :

> दीपो यथानिर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
> दिशं न काञ्चिद् विदिशं न काञ्चित्स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्तिम् ॥

[८] औदुम्बरं पुष्प यथैव दुर्लभम् ।

[९] तृष्णाविलग्नान् चमरीव बालैः ।

[१०] त्रैधातुकादादीप्तजीर्णपटलशरणनिवेशनसदृशात् ।

[११] कदलीस्तम्भनिस्सारान् ।

रहनेवाले तथागतों की तुलना आकाश[१] से की गई है; बत्तीस लक्षणों से युक्त सुन्दर शरीर के धारक भगवान् सुवर्णस्तम्भ के समान[२] कहे गये हैं; भगवान् के मुख से निःसृत मधुर एवं गम्भीर ध्वनि की तुलना कलविंक के स्वर[३], दुन्दुभिनाद[४] एवं मेघ के गर्जन[५] से की गई है; सिंहासन पर बैठे हुए तथागत विशाल शालवृक्ष[६] के समान सुशोभित होते हैं; विशाल पुष्पपुटों को सुमेरु[७] के समान कहा गया है; विशाल कमलपुष्प की तुलना शकट के चक्र[८] से की गई है; भूभाग की अत्यल्पता का बोध कराने के लिए उसे सरसों[९] के बराबर कहा गया है; सांसारिक वस्तुओं की निःसारता एवं क्षणिकता की व्यंजना करने के लिए उनकी तुलना फेन एवं मृगमरीचिका[१०] से की गई है; भगवान् के स्वच्छ भौंहों की शोभा चन्द्रमा एवं शंख की शोभा[११] के समान कही गई है; जिस प्रकार घोर अन्धकार से पूर्ण रात्रि में प्रज्वलित अग्नि सुशोभित होती है, उसी प्रकार इस अज्ञानान्धकारपूर्ण संसार को तेजस्वी तथागत सुशोभित करते हैं;[१२] जिस प्रकार शीशे में प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार भगवान् के शरीर में सम्पूर्ण संसार स्पष्ट रूप में प्रतिबिम्बित होता है;[१३] वृक्षों की जड़ में बैठे हुए असंख्य बुद्ध, कमलपुष्प की ढेर के समान सुशोभित होते हैं;[१४] सुन्दर नेत्रों को नीलकमल[१५] के समान कहा गया है; सबको शरण देनेवाले भगवान् की तुलना खुले बाजार[१६] से की गई है तथा असद्धर्मों की निःसारता एवं मलिनता की व्यंजना करने के लिए उनकी तुलना कूड़े के ढेर[१७] से की गई है।

'सद्धर्मपुण्डरीक' की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते समय तो ग्रन्थकार उपमाओं की लड़ी-सी पिरो देता है: "जिस प्रकार सभी कालपर्वतों, चक्रवाडों एवं महाचक्रवाडों में

---

[१] शान्ताः सर्वे गगनसन्निभाः।

[२] सवर्णयूपप्रतिमो महर्षिः।

[३] देवातिदेवाः कलविङ्कसुस्वराः।

[४] दुन्दुभिस्वरः।

[५] मेघस्वरः, मेघगर्जितः।

[६] सिंहासनि सन्निषण्णो शालराजो व यथा विराजते।

[७] सुमेरुमात्रान् पुष्पपुटान्।

[८] शकटचक्रप्रमाणमात्रे पद्मे।

[९] सर्षपमात्रोऽपि पृथ्वीप्रदेशः।

[१०] सर्वे भवाः फेनमरीचिकल्पाः।

[११] शशिशङ्खपाण्डराभाः।

[१२] हुताशनेनेव यथान्धकारम्।

[१३] आदर्शपृष्ठे यथ विम्बु पश्येत्।

[१४] इमे च बुद्धाः स्थित अप्रमेया द्रुमाणमूले यथ पद्मराशिः।

[१५] नीलोत्पलपद्मनेत्रेण।

[१६] अन्तरापणवत्।

[१७] धर्मान् प्रत्यवरान् संकारधानसदृशान्।

पर्वतराज सुमेरु श्रेष्ठ है, जिस प्रकार सभी नक्षत्रों में प्रभाकर चन्द्रमा श्रेष्ठ हैं, जिस प्रकार त्रायस्त्रिश देवों में शक्र श्रेष्ठ हैं, जिस प्रकार पृथक् जनों में स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी अर्हत् एवं प्रत्येकबुद्ध श्रेष्ठ हैं, जिस प्रकार सभी श्रावकों एवं प्रत्येकबुद्धों में बोधिसत्त्व श्रेष्ठ हैं तथा जिस प्रकार सभी श्रावकों, प्रत्येकबुद्ध एवं बोधिसत्त्वों में तथागत श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार तथागतों द्वारा कहे गये सभी सूत्रान्तों में यह सद्धर्मपुण्डरीक नामक सूत्रान्त श्रेष्ठ है; जिस प्रकार सूर्यमण्डल सम्पूर्ण तम को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार यह सद्धर्मपुण्डरीक सभी अमंगल-रूप तम को नष्ट कर देता है; जिस प्रकार सहाम्पति ब्रह्मा सभी ब्रह्मकायिक देवों के राजा एवं पिता हैं, उसी प्रकार यह सद्धर्मपुण्डरीक भी सभी शैक्ष एवं अशैक्ष प्राणियों, सभी श्रावकों, प्रत्येकबुद्धों एवं बोधिसत्त्वों का पिता हैं।" पुनः इस सूत्रग्रन्थ के महत्त्व के प्रतिपादन में अनेक उपमान प्रस्तुत किये गये हैं : "जैसे तडाग तृषितों के लिए आवश्यक है, अग्नि शीतार्त्तों के लिए आवश्यक है, वस्त्र नग्न व्यक्तियों के लिए आवश्यक है, सार्थवाह वणिक्-समुदाय के लिए आवश्यक है, माता पुत्रों के लिए आवश्यक है, नौका पार जानेवालों के लिए आवश्यक है, वैद्य रोगियों के लिए आवश्यक है, दीपक अन्धकार को दूर करने के लिए आवश्यक है, चक्रवर्त्ती कोट्टराजाओं के लिए आवश्यक है एवं समुद्र नदियों के लिए आवश्यक है, उसी प्रकार संसार के मनुष्यों के विविध प्रकार के हितों की रक्षा एवं क्लेशों से त्राण के लिए यह सद्धर्मपुण्डरीक आवश्यक है।[1]

लोकेन्द्र की निर्वाण-प्राप्ति के अनन्तर आनेवाले भयंकर काल में इस सूत्र का धारण एवं प्रचार करना कितना दुष्कर होगा, इसकी अभिव्यक्ति करने के लिए अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत किये गये हैं : "गंगा की बालुका के समान जो अनेक सूत्र हैं, यदि उनको भी कोई प्रकाशित करे, तो उसका यह कार्य दुष्कर नहीं होगा; यदि कोई सुमेरु को मुट्ठी में पकड़कर करोड़ों क्षेत्रों के पार जाकर फेंक दे, तो उसका भी यह कार्य दुष्कर नहीं होगा; जो मनुष्य भवाग्र पर बैठकर अन्य सहस्रों सूत्रों का विवेचन करता है, उसका भी यह कार्य दुष्कर नहीं है; जो सारी आकाशधातु को एक ही मुट्ठी में रखकर फेंकते हुए चले, तो उसका भी यह कार्य दुष्कर नहीं है; जो इस त्रिसाहस्री को पैर के अँगूठे से कँपाते हुए उसे करोड़ों क्षेत्रों के परे फेंक दे, उसका भी कार्य दुष्कर नहीं है; जो सम्पूर्ण पृथ्वीधातु को नखाग्र पर धारण करके उसे उछालता हुआ ब्रह्मलोक तक आरोहण कर जाता है, वह भी कोई दुष्कर कार्य नहीं करता तथा इस संसार में उस मनुष्य का कार्य भी दुष्कर नहीं है; जो तृण का बोझ लेकर कल्पाग्नि के मध्य में विना जले चला जाता है, किन्तु वह श्रेष्ठ मनुष्य दुष्कर कार्य करता है, जो मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर मेरे इस श्रेष्ठ सूत्र को धारण करता है तथा उसका प्रचार करता है।" निम्नोद्धृत गाथाओं में भी उपमा की सर्वथा सहज स्वाभाविक छटा अवलोकनीय है :

---

[1] सद्धर्मपुण्डरीक, पृ० ४२४-२५।

या गतिर्मातृघातीनां पितृघातीन या गतिः।
तां गतिं प्रतिगच्छेद् यो धर्मभाणकमतिक्रमेत् ।।
या गतिस्तिलपीडानां तिलकूटानां च या गतिः।
तां गतिं प्रतिगच्छेद् यो धर्मभाणकमतिक्रमेत् ।।
या गतिस्तूलकूटानां कांस्यकूटान या गतिः।
तां गतिं प्रतिगच्छेद् यो धर्मभाणकमतिक्रमेत् ।।

इस ग्रन्थ में विभिन्न रसों का यथास्थान सन्निवेश भी बड़ी कुशलता से किया गया है। अग्निस्कन्ध में जलते हुए जीर्णगृह के वर्णन में हमें बीभत्स एवं भयानक रसों का सफल चित्रण प्राप्त होता है :

"एक मनुष्य का एक बहुत विशाल, किन्तु अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण गृह है; उसके चबूतरे छिन्न-भिन्न हो गये हैं; खम्भों की जड़ें सड़ गई हैं; खिड़कियाँ, दीवारें एवं कमरे अंशतः नष्ट हो गये हैं; वेदिकाएँ फूल-फूलकर उखड़ रही हैं; तृणनिर्मित छाजन सब ओर से गिर रहा है। वह गृह पूरे पाँच सौ जीवों का आवासस्थान है; उसमें विष्ठा से पूर्ण बहुत-सी गन्दी कोठरियाँ हैं, छत की धरनें नष्ट हो रही हैं; भित्तियाँ ढीली पड़ गई हैं। वहाँ करोड़ों गीध, कबूतर, उल्लू तथा अन्य पक्षी निवास करते हैं। प्रत्येक कोने में अत्यन्त विषैले एवं भयदायक सर्प, बिच्छू एवं चूहे निवास करते हैं। उसका भीतरी भाग कीड़े-मकोड़े तथा कुत्ते एवं सियारों से निनादित है। वहाँ मनुष्यों के शव का भक्षण करनेवाले भेरुण्डक निवास करते हैं, जिनके निर्गमन की प्रतीक्षा में असंख्य कुत्ते एवं शृगाल बाहर खड़े रहते हैं। अनेक बुभुक्षित प्राणी भोजन के लिए परस्पर झगड़ा करते हुए घर को कोलाहलपूर्ण बना रहे हैं। वहाँ मनुष्य के शव की दुर्दशा करनेवाले अनेक यक्ष भी रहते हैं, जो वहाँ के रहनेवाले पक्षियों के अण्डों को खा जाते हैं। दूसरे जीवों को खाकर तृप्त होने के अनन्तर वे वहाँ भयंकर झगड़ा करते हैं। विध्वस्त स्थानों में भयंकर एवं कठोर स्वभाव-वाले कुम्भाण्डक निवास करते हैं। उनमें कुछ एक बित्ता के, कुछ एक हाथ के एवं कुछ दो हाथ के हैं। वे कुत्तों की टाँगें पकड़कर उन्हें जमीन पर पटक देते हैं एवं उनकी गरदन दबाकर उनकी दुर्दशा करते हुए अत्यधिक आनन्द का अनुभव करते हैं। वहाँ अनेक ऊँचे, काले, दुर्बल, विशालकाय एवं जडबुद्धि प्रेत रहते हैं। वे भोजन की खोज में भयंकर शब्द करते हुए इधर-उधर दौड़ते रहते हैं। उनमें कुछ सूचीमुख, कुछ गोणमुख, कुछ मनुष्य के आकार के एवं कुछ कुत्ते के आकार के हैं। उनके बाल उलझे हुए हैं तथा वे भूखे-प्यासे करुण क्रन्दन करते रहते हैं। वहाँ स्थित यक्ष, प्रेत, पिशाच तथा गीध आहार की खोज में खिड़कियों के मार्ग से चारों ओर देख रहे हैं। सहसा उस गृह में आग लग जाती है। आग में जलते बाँसों और लकड़ियों से भयानक शब्द निकल रहा है, यक्ष और प्रेत भयंकर नाद कर रहे हैं लपटों में जलते हुए सैकड़ों गीध एवं कुम्भाण्डक इधर-उधर दौड़ रहे हैं; आग में

जलते हुए सैकड़ों सर्प कठोर क्रन्दन कर रहे हैं; अग्निसन्तप्त पिशाच एक दूसरे को दाँतों से विदीर्ण कर रहे हैं; मृत्यु के मुख में पड़े भेरुण्डक तथा अन्य जीव भी वहाँ एक दूसरे का भक्षण कर रहे हैं। अग्नि में जलती हुई विष्ठा की भयंकर दुर्गन्धि चतुर्दिक् फैल रही है।"

पुनः, बीभत्स रस की सुन्दर झाँकी हमें वहाँ प्राप्त होती है, जहाँ 'सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र' के निन्दकों को प्राप्त होनेवाली दुर्दशाओं का वर्णन किया गया है: "जो मेरे इस श्रेष्ठ 'सूत्र' से द्वेष रखते है, उनका शरीर काले वर्ण का, धब्बों से युक्त, व्रणों से परिपूर्ण, खुजली से युक्त, केशरहित एवं दुर्बल होता है तथा अन्य प्राणी उनको घृणा की दृष्टि से देखते हैं। ढेले के चोट खाकर वे चिल्लाते हैं, सर्वत्र डण्डे से पीटे जाते हैं तथा भूख-प्यास से उनके अंग सूख जाते हैं। कभी-कभी वे मूर्ख, कुरूप, एवं काने-कोढ़ी सियार का शरीर धारण करते हैं। मनुष्य-शरीर धारण करने पर भी वे कोढ़ी, लँगड़े, कुबड़े, काने एवं मूर्ख होते हैं। उस समय उनका शरीर घाव, विचर्चिका, खुजली, कुष्ठ एवं सड़ी दुर्गन्ध से युक्त होता है।"

अद्भुत रस की उपलब्धि तो इस ग्रन्थ में पग-पग पर होती है। जहाँ-कहीं भी भगवान् के प्रातिहार्यों का वर्णन है, वहाँ अद्भुत रस की स्थिति स्वयंसिद्ध है। अपने पिता को बुद्ध की ओर उन्मुख करने के लिए पुत्रों ने जिन प्रातिहार्यों का प्रदर्शन किया है, उनके वर्णन में हमें अद्भुत रस का सुन्दर चित्रण प्राप्त होता है: "उन दोनों ने वहीं अन्तरिक्ष में जाकर शय्या बनवाई; वे वहीं अन्तरिक्ष में घूमते रहे; वहीं अन्तरिक्ष में धूल उड़ाते रहे; वहीं अन्तरिक्ष में शरीर के अधोभाग से जल की धारा निकाली, ऊर्ध्वभाग से अग्नि प्रज्वलित की। पुनः शरीर के अधोभाग से अग्नि प्रज्वलित की तथा शरीर के ऊर्ध्वभाग से जल की धारा निकाली। वे उसी आकाश में कभी विशालकाय होकर पुनः लघुकाय हो जाते और लघुकाय होकर पुनः विशालकाय हो जाते। वे दोनों उसी अन्तरिक्ष में अन्तर्हित हो जाते और पुनः पृथ्वी पर निकलते एवं पृथ्वी में अन्तर्हित होकर पुनः आकाश में निकलते।" पुनः शाक्यमुनि एवं तथागत प्रभूतरत्न के प्रातिहार्य के वर्णन में भी अद्भुत रस की सफल अभिव्यक्ति हुई है; "तदनन्तर शाक्यमुनि एवं प्रभूतरत्न दोनों ने स्तूप के मध्य सिंहासन पर बैठे-ही-बैठे अट्टहास किया तथा मुखविवर से अपनी-अपनी जिह्वाएँ बाहर निकालीं। वे ब्रह्मलोक तक पहुँच गईं एवं उनसे अनेक कोटीनयुतशतसहस्र प्रकाश-रश्मियाँ निकल पड़ीं। उनमें प्रत्येक रश्मि से सुवर्णवर्ण एवं महापुरुषों के बत्तीस लक्षणों से युक्त शरीर के धारक अनेक कोटीनयुतशतसहस्र बोधिसत्त्व कमल के सिंहासन पर बैठे हुए निकले और निकलकर शतसहस्र लोकधातुओं में फैल गये तथा आकाश में स्थित होकर धर्म की देशना करने लगे। धर्मभाणकों की अलौकिक शक्तियों के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन में भी अद्भुत रस की सुन्दर अभिव्यंजना हमें प्राप्त होती है। अद्भुत रस के इन सभी वर्णनों में सर्वत्र उदात्तता एवं गरिमा दीख पड़ती है, कहीं भी उनमें हलकापन नहीं है।

शान्तरस तो इस ग्रन्थ का प्रधान रस ही है। इसकी सफल अभिव्यक्ति उन स्थलों पर विशेष रूप से हुई है, जहाँ बुद्धक्षेत्रों एवं तथागत की प्रवचन-गोष्ठियों के शान्त एवं उदात्त स्वरूप का वर्णन किया गया है। इस सन्दर्भ में प्रस्तुत अवतरण अवलोकनीय है : "तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् शाक्यमुनि के ऐसा कहने पर वे सभी महासत्त्व महान् प्रीति एवं आनन्द से परिपूर्ण हो गये तथा महान् गौरव की भावना से जिस ओर भगवान् शाक्यमुनि थे, उस ओर अपने शरीर को प्रणत करके, मस्तक झुकाकर तथा हाथ जोड़कर एकस्वर से बोले—हे भगवन्! हमलोग वैसा ही करेंगे, जैसा तथागत कहेंगे। हम सभी तथागतों की आज्ञा को धारण एवं परिपूर्ण करेंगे ; आप चिन्ता न करें, सुखपूर्वक विहार करें।"

इस ग्रन्थ की एक और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता है दृष्टान्त-कथाओं का प्रचुर प्रयोग। भगवान् को जब भी कोई विशेष वात अपने श्रोतृसमुदाय को समझानी पड़ी, उन्होंने झटपट एक कथा कह दी। इन कथाओं के प्रयोग से दुर्बोध-से-दुर्बोध विषय भी सरल बन गये हैं और सरलहृदय भावुक भक्तों के लिए बोधगम्य हो गये हैं। विश्व में सर्वत्र कथाएँ लोकरंजन के साथ-ही-साथ उपदेश देने का भी चिरकाल से साधन रही हैं और आज भी श्रव्यकाव्य में कथा-कहानी को ही सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त है। उपदेशात्मक लोक-कथाओं का प्रधान लक्ष्य विविध शास्त्रीय सिद्धान्तों को जनसामान्य के लिए सुगम एवं सुबोध बनाना होता है। पाटलिपुत्र के राजा सुदर्शन के अनधिगत-शास्त्र एवं उन्मार्गगामी पुत्रों को नीतिशास्त्राभिज्ञ बनाने के लिए विष्णुशर्मा प्रथमतः काककूर्मादि की विचित्र कथाएँ सुनाकर ही उन्हें उपदेश-श्रवण की ओर उन्मुख करते हैं।[१] आज भी बड़े-बड़े उपदेशक एवं वक्ता कथा-कहानी का आश्रय लेकर ही अपने वक्तव्य को श्रोताओं के लिए सुरुचिपूर्ण एवं आकर्षक बनाते हैं। विषय को समझाने का कथा-कहानी से बढ़कर अन्य कोई श्रेष्ठ साधन नहीं है। किसी ने ठीक ही कहा है : 'The best professors are the best story-tellers.'

भाषा :

प्रस्तुत ग्रन्थ की भाषा न तो संस्कृत है, न पालि और न प्राकृत। यह एक सम्मिश्रित भाषा है। कोई इसे 'गाथासंस्कृत'[२], कोई 'मिश्रसंस्कृत'[३], कोई 'बौद्धसंस्कृत'[४], तो कोई 'बौद्धसंकरसंस्कृत' कहता है।[५]

---

१. हितोपदेश : मित्रलाभ का प्रारम्भिक अंश।

२. S. Lefmann. ZDMG. 29. 1875, pp. 212 ff.
विण्टरनित्ज़ इसे 'गाथासंस्कृत' कहने के पक्ष में नहीं हैं। वे कहते हैं : "It was formerly generally called 'Gatha dialect' which is the more inapt as it is widely used in inscriptions too."—Hist. of Indian Lit. vol. II, पृ० २२७।

३. E. Senart, J. A. 1882. S. 7, t. XIX, 238 ff :

४. Winternitz : "By far the greater part of this literature written in pure and mixed Sanskrit and which for the sake of brevity we term 'Buddhist Sanskrit Literature"—Hist. of Indian Lit. Vol. II, पृ० २७६।

५. Edgerton : "There remains the subject of this work which I call 'Buddhist Hybrid Sanskrit'." Dictionary, पृ० १।

प्रस्तुत ग्रन्थ की मूलभाषा क्या थी, इस सम्वन्ध में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है । लूडर्स का मत है कि प्रस्तुत ग्रन्थ की मूलभाषा 'मागधी' थी, जो धीरे-धीरे संस्कृत से प्रभावित होकर वर्त्तमान रूप में आ गई है ।[1] द्श्ची का कथन है कि प्रस्तुत ग्रन्थ की मूलभाषा 'अर्द्धमागधी' थी ।[2] एजर्टन भी पहले इसकी मूलभाषा 'अर्द्धमागधी' ही मानते थे, यद्यपि अन्त में यह मत स्वयं उन्हें भी मान्य न रह गया ।[3] विण्टरनित्ज़ भी इसे संस्कृत से प्रभावित कोई मध्यभारतीय भाषा ही मानते हैं ।[4] कर्न का भी मत है कि प्रस्तुत ग्रन्थ की मूलभाषा कोई-न-कोई प्राकृत ही थी ।[5]

प्रोफेसर एजर्टन ने प्रस्तुत ग्रन्थ की 'मिश्रसंस्कृत' को एक सर्वथा स्वतन्त्र भाषा माना है तथा उसे 'बौद्धसंकरसंस्कृत' (Buddhist Hybrid Sanskrit) की संज्ञा दी है । उन्होंने इस भाषा की उत्पत्ति, विकास एवं विशेषताओं का शोधपूर्ण एवं विस्तृत विवेचन[6] प्रस्तुत किया है, जिसका आशय निम्नलिखित है :

यह भाषा मूलतः मध्यदेश की ईसा-पूर्व की कोई प्राचीन बोलचाल की या उसपर आश्रित भाषा थी; संस्कृत कदापि नहीं थी । किन्तु, आरम्भ से ही हस्तलिखित पोथियों में संस्कृत के प्रति इसका झुकाव परिलक्षित होता है । वर्णविन्यास (Spelling) पर तो हमें स्पष्टतः संस्कृत का प्रभाव दीख पड़ता है । हिन्दुओं में संस्कृत की दिनानुदिन बढ़ती हुई प्रतिष्ठा के कारण ही ऐसा हुआ होगा । इन ग्रन्थों में तीन प्रकार के शब्द पाये जाते हैं—कुछ शब्द शुद्ध संस्कृत के हैं, कुछ आंशिक रूप से संस्कृत हैं तथा कुछ तो अपने शुद्ध मध्यदेशीय रूप में ही हैं । इन ग्रन्थों का शब्द-भाण्डार (Vocabulary) बहुत कुछ मध्यदेशीय ही है । ये शब्द या तो संस्कृत के नहीं हैं अथवा संस्कृत में उनका भिन्न अर्थ है । जहाँ कहीं इनकी वर्णरचना

---

१. "The original test was written in Magadhi and was gradually sanskritised."—Manuscript Remains of Buddhist literature. पृ० १६१ ।

२. "Hian-lin Dschi also believes that old Ardha-Magadhi was the original language of the Buddhist canon."—Edgerton-Dictionary, पृ० ३ ।

३. "I now believe that I was wrong in seeing special relation to Ardha-Magadhi."—Edgerton's Dictionary, पृ० १३ ।

४. "Some of the most prominent schools produced works of literature written partly in Sanskrit and partly in a Middle Indian dialect assimilated to Sanskrit."—Hist. of Indian Lit. Vol. II, पृ० २२६ ।

५. "I infer that the original text was composed in some kind of Prakrit." लोटस : भूमिका, पृ० १५ ।

६. Buddhist Hybrid Sanskrit Grammar and Dictionary in three Volumes, येल-विश्वविद्यालय द्वारा सन् १६५३ ई० में प्रकाशित ।

(Spelling) पर संस्कृत का प्रभाव पड़ा है, वहाँ भी इनका मूलरूप प्रकट हो जाता है; क्योंकि वहाँ या तो इनका प्रयोग नहीं हुआ है और यदि हुआ भी है, तो दूसरे अर्थ में ।

समय के साथ संस्कृत का प्रभाव भी इस भाषा पर बढ़ता गया । लेखकों एवं सम्पादकों ने शुद्ध मध्यदेशीय शब्दों का बहिष्कार करके उनके स्थान पर शुद्ध संस्कृत शब्दों के व्यवहार की परिपाटी आरम्भ की । अधिकतर शब्दरूपों एवं धातुरूपों को ही संस्कृत रूप दिया गया है । बाहर से तो भाषा, कम-से-कम गद्य की भाषा, शुद्ध संस्कृत मालूम पड़ती है, परन्तु ध्यानपूर्वक परीक्षण करने पर उसमें भी अनेक असंस्कृत शब्द उपलब्ध होते हैं। मूलभाषा को विकृत करने—भाषा को शुद्ध करने के नाम पर सबसे बड़भागी वे विद्वान् सम्पादक हैं, जो विना विचारे असंस्कृत शब्दों को, जो वास्तव में मध्यदेशीय मूल शब्द थे, बहिष्कृत करके उनके स्थान पर शुद्ध संस्कृत रूप रखते रहे हैं । पद्य की अपेक्षा गद्य को कहीं अधिक संस्कृत रूप दिया गया है । पद्य के शब्दों को बदलना कठिन होता है; क्योंकि शब्दों की मात्रा आदि पर भी ध्यान देना होता है, अन्यथा छन्दोभंग होने का भय रहता है ।

इस भाषा को किसी परिचित मध्यदेशीय बोली से मिलाना ठीक नहीं है । इसे विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न प्राकृतों से मिलाने के अनेक प्रयत्न किये गये, किन्तु परीक्षण करने पर ये सभी निराधार एवं भ्रामक सिद्ध हुए। किन्तु, निश्चित रूप से बताना कठिन है कि यह भाषा किस प्रदेश की थी। फिर भी, इस भाषा की कुछ ऐसी विशेषताएँ[1] हैं,

---

[1] एजर्टन ने इसकी निम्नलिखित सात प्रधान विशेषताएँ बतलाई हैं :

(क) "Buddhist Hybrid Sanskrit traditions, asa whole, starts from or goes back to, an early Buddhist canon, or quasi-canon, which was composed not in Sanskrit but in a Middle-Indic vernacular which very probably already contained dialect mixture."

(ख) "Some parts of this old canon, or passages from it, are preserved in BHS, sometimes in more than one form. When this is the case, any non-Sanskrit features of form and vocabulary wherever recorded. are always close to the original on which they are based than corresponding standard Sanskrit features, wherever recorded."

(ग) "The verses of BHS texts of my classes 1 and 2, as presented in our mss., are on the whole semi-Middle-Indic or hybridized. This means that they represent the BHS traditions in its purest form in texts of class 2, the accompanying prose parts of these texts are nearly sanskritized in Phonology and morphology according to the mss. In vocabulary the prose is just as Middle-Indic as the verses."

(घ) "In all BHS works, as presented in our mss. and edition, there are very many forms, which are standard Sanskrit. These include many

जो अन्य भाषाओं में नहीं पाई जातीं। कुछ विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यह भाषा अर्द्धमागधी है, किन्तु यह ठीक नहीं है। कुछ बातों में सादृश्य होने से ऐसा भ्रम हो गया था, किन्तु परीक्षण करने पर यह ज्ञात हुआ कि सादृश्य को अपेक्षा विभिन्नता कहीं अधिक है।

---

forms which cannot possibly have existed, at any time, in any Middle-Indic dialect. They represent alterations in the traditions, later in time than the original Middle India canon, at least. As time went on, the tendency was in general towards ever increasing sanskritization. Yet the BHS tradition continued to liue, apparently for centuries, as a religious language among the Buddhists or at least some Buddhists of North India. The hall-mark which distinguishes it is the vocabulary, which contains not only technical religious terms, but quantities of pure secular words, which never occur in standard Sanskrit. Very rarely can any serious doubt arise as to whether a particular work should be classed as BHS. Even if its grammar is virtually Sanskrit or entirely so, its vocabulary will decide."

(ङ) "There is clear evidence that some of these Sanskrit words and forms are substituted for older, non-Sanskrit ones, by later copyists or redac- tors of the individual work containing them, in other words that some much works were originally more Middle-Indic than is indicated by some, or even all, of the mss. in which they are preserved to us. In SP for example, one recension sanskritizes some words, another recension others; the original text of SP must have been less sanskritic than either."

(च) "There is, further, evidence, that in citing or incorporating older materials, any BHS text may be expected to have introdused some sanskritization of originally Middle-Indic features.

(छ) "It is however certain that some Sanskrit-appearing features are ortho- graphic only, the words were pronounced as in Middle-Indic. This is proved by the metrical structure of the verses of BHS texts of classes 1 and 2. How old this misleading sanskritic spelling is, we have no way of telling; it appears very commonly, the not invariably, in the mss. of all the specified texts. That the same was true of the same or similar features in the accompanying prose, at least in earlier times, seems a reasonable guess; naturally there can be no direct proof that the prose was pronounced otherwise than as written."

—Buddhist Hybrid Sanskrit Dictionary, पृ० ८६।

भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को आदेश दिया था कि वे भगवान् के वचन को अपनी-अपनी भाषा में परिवर्त्तित करें। वैदिक भाषा में बुद्ध के वचनों को परिवर्त्तित करने का निषेध था। इसलिए, बौद्धधर्म के सभी आगमग्रन्थ पालि, प्राकृत, संस्कृत आदि अनेक भाषाओं में पाये जाते हैं। इसी आदेश के अनुसार ही उत्तर भारत की कई बोलियों में भी बुद्धवचन उपनिबद्ध किये गये। इन्हीं में एक बोली पालि थी, जो कदाचित् उज्जयिनी में बोली जाती थी। इसी में त्रिपिटक लिखा गया, जो लंका, बर्मा आदि देशों में मान्य हुआ। एक दूसरी बोली, जिसका मूल स्थान हमें मालूम नहीं, बौद्धसंकरसंस्कृत का आधार है। संस्कृत की चतुर्दिक् प्रतिष्ठा के होने से धीरे-धीरे हम पर भी संस्कृत का प्रभाव पड़ने लगा। आरम्भ में यह प्रभाव थोड़ा और आंशिक था। आगे चलकर इस प्रभाव में दिनानुदिन वृद्धि होती गई, किन्तु पूर्णरूपेण संस्कृत का प्रभाव इसपर नहीं पड़ सका; प्राकृत-शब्दों का प्रयोग होता ही रहा तथा कुछ ऐसे भी शब्द प्रयुक्त होते रहे, जो न शुद्ध संस्कृत के थे और न प्राकृत के। शब्दकोश अधिकांशतः प्राकृत ही रह गया। इसमें सहस्रों शब्द ऐसे हैं, जो संस्कृत में प्रयुक्त होते ही नहीं और यदि होते भी हैं, तो भिन्न अर्थ में। यही स्वतन्त्र भाषा, जिसका विस्तार उत्तरी भारत में अधिक मात्रा में हुआ, 'बौद्धसंकरसंस्कृत' कही गई है।[1]

श्रीनलिनाक्ष दत्त प्रस्तुत ग्रन्थ की मूलभाषा के प्रश्न को ही भ्रामक मानते हैं। उनका कहना है कि यह मानने की आवश्यकता ही नहीं है कि प्रस्तुत ग्रन्थ की मूलभाषा ग्रन्थ की वर्त्तमान भाषा से भिन्न कोई अन्य भाषा थी। यह मानना अधिक न्यायसंगत होगा कि उत्तरभारतीय बौद्ध लेखकों की स्वीकृत भाषा मिश्रसंस्कृत ही थी। विभिन्नकालीन पाण्डुलिपियों की भाषा-सम्बन्धी भिन्नता का मूल कारण लेखकों एवं सम्पादकों का मूल रूपों में निरन्तर परिवर्त्तन करते रहना है। केवल पाठभेदों एवं पालि-पिटकों के कतिपय शब्दों के प्रयोग के आधार पर यह निष्कर्ष निकाल लेना उचित नहीं है कि वर्त्तमान ग्रन्थ की मूलभाषा प्राकृत थी। पूरे ग्रन्थ की रचना परिष्कृत संस्कृत में की गई है। इसमें हमें बड़े-बड़े समस्त पद, सुन्दर उपमाएँ एवं बिम्बयोजनाएँ प्राप्त हैं, जिनसे भाषा की मौलिकता सिद्ध होती है। विभिन्न संस्करणों में अन्तर पड़ने का कारण मूलपाठ को शुद्ध एवं सुरक्षित रखने की मनोवृत्ति का अभाव है। ज्ञानगुप्त एवं धर्मगुप्त ने भी विद्वान् सम्पादकों एवं लेखकों की स्वेच्छा से मूलपाठ में परिवर्त्तन-संवर्द्धन करते रहने की आदत को ही विभिन्न संस्करणों में पारस्परिक भेद का कारण माना है। इन परिवर्त्तनों एवं संवर्धनों के फलस्वरूप प्रस्तुत ग्रन्थ का वर्त्तमान रूप इतना बदल गया है कि वह अपने मूल रूप से सर्वथा भिन्न प्रतीत होता है। यह भावना उचित नहीं है कि मूलतः प्राकृत में लिखे गये ग्रन्थ को कालान्तर में बुद्धिपूर्वक रूपान्तरित करके वर्त्तमान रूप दिया गया है। अतः, हम कह सकते हैं कि वर्त्तमान

---

[1] यह अंश एजर्टन की पुस्तक Buddhist Hybrid Sanskrit (पृ० १ से ७) पर आधृत है।

ग्रन्थ एवं मूलग्रन्थ की भाषा में कतिपय परिवर्त्तनों एवं संवर्द्धनों को छोड़कर कोई भी मौलिक भेद नहीं है ।[१]

उत्तरभारतीय बौद्धग्रन्थों में 'मिश्रितसंस्कृत' एवं पालि-त्रिपिटकों के शब्दों के प्रभूत प्रयोग का कारण भी विचार करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है । सर्वास्तिवादी बौद्धों ने ईसा-पूर्व से ही पालि-त्रिपिटकों का संस्कृत में रूपान्तर करना आरम्भ कर दिया था । ये भिक्षु पालि के साथ-ही-साथ संस्कृत के भी पूर्ण ज्ञाता थे। रूपान्तर के क्रम में ये पालि एवं त्रिपिटकों की शब्दावली से और भी अधिक प्रभावित हो गये। इसका फल यह हुआ कि महायान-ग्रन्थों की शुद्ध संस्कृत में रचना करते समय भी वे पालि-शब्दों एवं त्रिपिटकों की शब्दावली एवं भाषा के प्रभाव से अपने संस्कृत के ग्रन्थों को भी पूर्णतः मुक्त न रख सके, जिसके परिणामस्वरूप इन महायान-ग्रन्थों की भाषा शुद्ध संस्कृत न रहकर पालि एवं प्राकृतों से प्रभावित हो गई। यही भाषा 'मिश्रितसंस्कृत' के रूप में हमें इन महायान-ग्रन्थों में उपलब्ध होती हैं। पालि का तो इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उसके कुछ पूरे-के-पूरे वाक्य ही संस्कृत में रूपान्तरित कर दिये गये हैं। निम्नांकित सन्दर्भों की तुलना से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायगी :

सद्धर्मपुण्डरीक—"स धर्मं देशयति स्म। आदौ कल्याणं मध्ये कल्याणं पर्यवसाने कल्याणं सार्थं सुव्यञ्जनं केवलं परिपूर्णं पर्यवदातं ब्रह्मचर्यं सम्प्रकाशयति स्म ।"

दीघ०—"सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सत्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति।"

सद्धर्म०—"बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां मनुष्याणां च।"

विनय०—"बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं।"

सद्धर्म०—"विद्याचरणसम्पन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान्।"

दीघ—"विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदु अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथिः सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा।"

धन्यवाद-ज्ञापन :

प्रस्तुत ग्रन्थ पर काम करने की मूल प्रेरणा हमें आदरणीय आचार्य डॉ० हजारीप्रसादजी द्विवेदी एवं स्वर्गीय डॉ० वासुदेवशरणजी अग्रवाल से प्राप्त हुई। एतदर्थ, मैं इन दोनों महामनीषियों का चिरऋणी हूँ तथा इनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । आदरणीय डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' (बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के भूतपूर्व निदेशक) तथा आदरणीय वयोवृद्ध महर्षितुल्य काका कालेलकर साहब के अथक

---

[१] सद्धर्मपुण्डरीक : नलिनाक्ष दत्त द्वारा सम्पादित, भूमिका, पृ० १६-१७ के आधार पर ।

प्रयत्नों के फलस्वरूप ही प्रस्तुत ग्रन्थ बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् से प्रकाशित हो रहा है। अतः, इन महानुभावों के प्रति मैं अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। आदरणीय गुरुवर श्री 'स्वामीजी' (भिक्षु जगदीश काश्यप, निदेशक, नवनालन्दा-महाविहार, नालन्दा) के चरणों में भी अपनी प्रणतियाँ निवेदित करता हूँ, जिनसे मुझे इस ग्रन्थ के विषय में अनेक अमूल्य सुझाव प्राप्त होते रहे हैं तथा जिन्होंने अपने विद्वत्तापूर्ण प्राक्कथन से प्रस्तुत पुस्तक को पावित एवं विभूषित किया है। आदरणीय डॉ० नेमिचन्द्रजी शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्०, डी०, डी० लिट्० (अध्यक्ष. संस्कृत-प्राकृत-विभाग, जैन कॉलेज, आरा) तो मेरे सभी बौद्धिक कार्यों के मूल प्रेरक ही रहे हैं। उन्हें जितना भी धन्यवाद दिया जाय, वह थोड़ा ही है। मेरे प्रति उनका जो स्नेह है, उसके लिए मैं उनका सदा आभारी हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन में जिन अन्य व्यक्तियों से सहयोग प्राप्त हुआ है, उनके प्रति भी आभार प्रकट करना मेरा परम कर्त्तव्य है। सर्वप्रथम, मैं अपनी पत्नी को धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने मुझे 'गृह कारज नाना जंजाला' से यथाशक्ति मुक्त रखकर प्रस्तुत कार्य को पूरा करने का अधिकाधिक अवसर प्रदान किया है। इनके इस सहयोग के अभाव में यह ज्ञानयज्ञ आरम्भ ही नहीं होता और यदि कथंचित् आरम्भ हो भी जाता, तो अधूरा ही रह जाता। इन्होंने सचमुच में 'सु-मित्र' का काम किया है। मेरे ज्येष्ठ पुत्र आयुष्मान् प्रो० कृष्णमोहन एम्० ए० (ऑनर्स) एवं मेरे शिष्य आयुष्मान् प्रो० केदारनाथ ब्रह्मचारी ने बड़े धैर्य एवं श्रम से मेरी 'खरोष्ठी' हस्तलिपि पढ़कर प्रस्तुत ग्रन्थ की पाण्डुलिपि तैयार की है। इन दोनों को मैं हार्दिक आशीर्वाद देता हूँ एवं इनके उज्ज्वल एवं उन्नतिशील भविष्य की कामना करता हूँ।

अन्त में, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के वर्त्तमान निदेशक पं० वैद्यनाथ पाण्डेय एवं अन्य अधिकारियों तथा कार्यकर्त्ताओं के प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनके सहयोग से ही यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। उन अन्यान्य विद्वानों का भी मैं ऋणी हूँ, जिनकी रचनाओं का उपयोग मैंने अपने इस ग्रन्थ में किया है तथा जिनके सत्परामर्शों से मैं सदा लाभान्वित होता रहा हूँ।

स्नातकोत्तर संस्कृत-विभाग
मगध-विश्वविद्यालय, गया

विदुषां वशंवदः
राममोहन दास

विषय-सूची

१. निदानपरिवर्त १–३०
२. उपायकौशल्यपरिवर्त ३१–६५
३. औपम्यपरिवर्त ६६–१०६
४. अधिमुक्तिपरिवर्त १०७–१२७
५. ओषधीपरिवर्त १२८–१५१
६. व्याकरणपरिवर्त १५२–१६२
७. पूर्वयोगपरिवर्त १६३–२०५
८. पञ्चभिक्षुशतव्याकरणपरिवर्त २०६–२१९
९. आनन्दादिव्याकरणपरिवर्त २२०–२२७
१०. धर्मभाणकपरिवर्त २२८–२४१
११. स्तूपसन्दर्शनपरिवर्त २४२–२६९
१२. उत्साहपरिवर्त २७०–२७७
१३. सुखविहारपरिवर्त २७८–२९८
१४. बोधिसत्त्वपृथिवीविवरसमुद्गमपरिवर्त २९९–३१८
१५. तथागतायुष्प्रमाणपरिवर्त ३१९–३३२
१६. पुण्यपर्यायपरिवर्त ३३३–३४९
१७. अनुमोदनापुण्यनिर्देशपरिवर्त ३५०–३५९
१८. धर्मभाणकानुशंसापरिवर्त ३६०–३८४
१९. सदाऽपरिभूतपरिवर्त ३८५–३९५
२०. तथागतर्द्ध्यभिसंस्कारपरिवर्त ३९६–४०४
२१. धारणीपरिवर्त ४०५–४११
२२. भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्त ४१२–४२९
२३. गद्गदस्वरपरिवर्त ४३०–४४२
२४. समन्तमुखपरिवर्त ४४३–४५५
२५. शुभव्यूहराजपूर्वयोगपरिवर्त ४५६–४६८
२६. समन्तभद्रोत्साहनपरिवर्त ४६९–४७७
२७. अनुपरीन्दनापरिवर्त ४७८–४८०

सद्धर्मपुण्डरीक

[मूल-सह हिन्दी-अनुवाद]

निदानपरिवर्तः

ॐ नमः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वेभ्यः । नमः सर्वतथागतप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकेभ्योऽतीतानागतप्रत्युत्पन्नेभ्यश्च बोधिसत्त्वेभ्यः ।

ॐ सभी बुद्धों और बोधिसत्त्वों को प्रणाम करता हूँ । सभी तथागतों, प्रत्येक बुद्धों तथा आर्य-श्रावकों एवं अतीत, भावी तथा वर्तमान सभी बोधिसत्त्वों को भी प्रणाम करता हूँ ।

वैपुल्यसूत्रराजं परमार्थनयावतारनिर्देशम् ।
सद्धर्मपुण्डरीकं सत्त्वाय महापथं वक्ष्ये ॥

मैं अब वैपुल्यसूत्रों में श्रेष्ठ उस सद्धर्मपुण्डरीक का वर्णन करूँगा, जो परमार्थ-प्राप्ति के उत्तम उपायों का निर्देश करता है तथा जो स्वयं प्राणियों को मोक्ष की ओर ले जाने का श्रेष्ठ मार्ग है ।

एवं मया श्रुतम् । एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति स्म गृध्रकूटे पर्वते महता भिक्षुसंघेन सार्धं द्वादशभिर्भिक्षुशतैः सर्वैरर्हद्भिः क्षीणास्रवैर्निःक्लशैर्वशीभूतैः सुविमुक्तचित्तैः सुविमुक्तप्रज्ञैराजानेयैर्महानागैः कृतकृत्यैः कृतकरणीयैरपहृतभारैरनुप्राप्तस्वकार्थैः परिक्षीणभवसंयोजनैः सम्यगाज्ञासुविमुक्तचित्तैः सर्वचेतोवशितापरमपारमिताप्राप्तैरभिज्ञानाभिज्ञातैर्महाश्रावकैः । तद् यथा । आयुष्मता चाज्ञातकौण्डिन्येन आयुष्मता चाश्वजिता आयुष्मता च वाष्पेण आयुष्मता च महानाम्ना आयुष्मता च भद्रिकेण आयुष्मता च महाकाश्यपेन आयुष्मता चोरुविल्वकाश्यपेन आयुष्मता च नदीकाश्यपेन आयुष्मता च गयाकाश्यपेन आयुष्मता च शारिपुत्रेण आयुष्मता च महामौद्गल्यायनेन आयुष्मता च महाकात्यायनेन आयुष्मता चानिरुद्धेन आयुष्मता च रेवतेन आयुष्मता च कप्फिनेन आयुष्मता च गवांपतिना आयुष्मता च पिलिन्दवत्सेन आयुष्मता च बक्कुलेन आयुष्मता च महाकौष्ठिलेन आयुष्मता च भरद्वाजेन आयुष्मता च महानन्देन आयुष्मता चोपनन्देन आयुष्मता च सुन्दरनन्देन आयुष्मता च पूर्णमैत्रायणीपुत्रेण आयुष्मता च सुभूतिना आयुष्मता च राहुलेन । एभिश्चान्यैश्च महाश्रावकैः । आयुष्मता चानन्देन शैक्षेण । अन्याभ्यां च द्वाभ्यां भिक्षुसहस्राभ्यां शैक्षाशैक्षाभ्याम् । महाप्रजापतीप्रमुखैश्च षड्भिर्भिक्षुणीसहस्रैः । यशोधरया च भिक्षुण्या राहुलमात्रा सपरिवारया । अशीत्या च बोधिसत्त्व-

सहस्रैः सार्धं सर्वैरवैवर्त्तिकैरेकजातिप्रतिबद्धैर्यदुतानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ धारणी–प्रतिलब्धैर्महाप्रतिभान–प्रतिष्ठितैरवैवर्त्य-धर्मचक्रप्रवर्तकर्बहुबुद्ध–शतसहस्र-पर्युपासितै– र्बहुबुद्ध -शतसहस्रावरोपित-कुशलमूलैर्बुद्ध–शतसहस्र-संस्तुतै-र्मैत्रीपरिभावितकायचित्तैस्तथागतज्ञानावतारणकुलैर्महाप्रज्ञैः प्रज्ञापारमितागतिंगतैर्बहुलोकधातुशतसहस्रविश्रुतैर्बहुप्राणिकोटीनयुतशतसहस्रसन्तारकः । तद् यथा । मञ्जुश्रिया च कुमारभूतेन बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेनावलोकितेश्वरेण च महास्थामप्राप्तेन च सर्वार्थनाम्ना च नित्योद्युक्तेन चानिक्षिप्तधुरेण च रत्नपाणिना च भैषज्यराजेन च भैषज्यसमुद्गतेन च व्यूहराजेन च प्रदानशूरेण च रत्नचन्द्रेण च रत्नप्रभेण च पूर्णचन्द्रेण च महाविक्रामिणा चानन्तविक्रामिणा च त्रैलोक्यविक्रामिणा च महाप्रतिभानेन च सततसमिताभियुक्तेन च धरणींधरेण चाक्षयमतिना च पद्मश्रिया च नक्षत्रराजेन च मैत्रेयेण च बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन सिंहेन च बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन । भद्रपालपूर्वङ्गमैश्च षोडशभिः सत्पुरुषैः सार्धम् । तद् यथा । भद्रपालेन च रत्नाकरेण च सुसार्थवाहेन च नरदत्तेन च गुह्यगुप्तेन च वरुणदत्तेन चेन्द्रदत्तेन चोत्तरमतिना च विशेषमतिना च वर्धमानमतिना चामोघदर्शिना च सुसंप्रस्थितेन च सुविक्रान्तविक्रामिणा चानुपममतिना च सूर्यगर्भेण च धरणींधरेण च । एवम्प्रमुखैरशीत्या च बोधिसत्त्वसहस्रैः सार्धम् । शक्रेण च देवानामिन्द्रेण सार्धं विंशतिदेवपुत्रसहस्रपरिवारेण । तद् यथा । चन्द्रेण च देवपुत्रेण सूर्येण च देवपुत्रेण समन्तगन्धेन च देवपुत्रेण रत्नप्रभेण च देवपुत्रेणावभासप्रभेण च देवपुत्रेण । एवम्प्रमुखैर्विंशत्या च देवपुत्रसहस्रैः । चतुर्भिश्च महाराजैः सार्धं त्रिंशद्देवपुत्रसहस्रपरिवारैः । तद् यथा । विरूढकेन च महाराजेन विरूपाक्षेण च महाराजेन धृतराष्ट्रेण च महाराजेन वैश्रवणेन च महाराजेन । ईश्वरेण च देवपुत्रेण महेश्वरेण च देवपुत्रेण त्रिंशद्देवपुत्रसहस्रपरिवाराभ्याम् । ब्रह्मणा च सहांपतिना सार्धं द्वादशब्रह्मकायिकदेवपुत्रसहस्रपरिवारेण । तद् यथा । शिखिना च ब्रह्मणा ज्योतिष्प्रभेण च ब्रह्मणा । एवम्प्रमुखैर्द्वादशभिश्च ब्रह्मकायिकदेवपुत्रसहस्रैः । अष्टाभिश्च नागराजैः सार्धं बहुनागकोटीशतसहस्रपरिवारैः । तद् यथा । नन्देन च नागराजेन उपनन्देन च नागराजेन सागरेण च वासुकिना च तक्षकेण च मनस्विना चानवतप्तेन चोत्पलकेन च नागराजेन । चतुर्भिश्च किन्नरराजैः सार्धं बहुकिन्नरकोटीशतसहस्रपरिवारैः । तद् यथा । द्रुमेण च किन्नरराजेन महाधर्मेण च किन्नरराजेन सुधर्मेण च किन्नरराजेन धर्मधरेण च किन्नरराजेन । चतुर्भिश्च गन्धर्वकायिकदेवपुत्रैः सार्धं बहुगन्धर्वशतसहस्र-

परिवारैः । तद् यथा । मनोज्ञेन च गन्धर्वेण मनोज्ञस्वरेण च मधुरेण च मधुस्वरेण च गन्धर्वेण । चतुर्भिश्चासुरेन्द्रैः सार्धं बह्वसुरकोटीशतसहस्रपरिवारैः । तद् यथा । बलिना चासुरेन्द्रेण खरस्कन्धेन चासुरेन्द्रेण वेमचित्रिणा चासुरेन्द्रेण राहुणा चासुरेन्द्रेण । चतुर्भिश्च गरुडेन्द्रैः सार्धं बहुगरुडकोटीशतसहस्रपरिवारैः । तद् यथा । महातेजसा च गरुडेन्द्रेण महाकायेन च महापूर्णेन च महर्द्धिप्राप्तेन च गरुडेन्द्रेण । राज्ञा चाजातशत्रुणा मागधेन वैदेहीपुत्रेण सार्धम् ।

मैंने ऐसा सुना है । एक समय भगवान् राजगृह में गृध्रकूट पर्वत पर बारह सौ भिक्षुओं के विशाल समुदाय से परिवृत विचरण कर रहे थे । (ये) सभी (भिक्षु) अर्हत्त्व को प्राप्त, आस्रवों से मुक्त, क्लेशरहित, जितेन्द्रिय, मानसिक एवं बौद्धिक वन्धनों से मुक्त, उच्चकुल-सम्भूत, महती शक्ति से सम्पन्न, अपने कर्त्तव्यों का पूर्ण रूप से पालन करके अपने उत्तरदायित्वों के भार से मुक्त, अपने लक्ष्य पर पहुँचे हुए, सांसारिक बन्धनों से मुक्त, सम्यक् ज्ञान के कारण मुक्तचित्त सर्वचेतोवशिता एवं परम-पारमिता को प्राप्त, तथागत आदि के विशिष्ट लक्षणों के ज्ञाता तथा महाश्रावक थे । इनके नाम थे— आयुष्मान् अज्ञातकौण्डिन्य, आयुष्मान् अश्वजित्, आयुष्मान् वाष्प, आयुष्मान् महानामा, आयुष्मान् भद्रिक, आयुष्मान् महाकाश्यप, आयुष्मान् उरुविल्वकाश्यप, आयुष्मान् नदीकाश्यप, आयुष्मान् गयाकाश्यप, आयुष्मान् शारिपुत्र, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन, आयुष्मान् महाकात्यायन, आयुष्मान् अनिरुद्ध, आयुष्मान् रेवत, आयुष्मान् कप्फिन, आयुष्मान् गवांपति, आयुष्मान् पिलिन्दवत्स, आयुष्मान् वक्कुल, आयुष्मान् महाकौष्ठिल, आयुष्मान् भरद्वाज, आयुष्मान् महानन्द, आयुष्मान् उपनन्द, आयुष्मान् सुन्दरनन्द, आयुष्मान् पूर्णमैत्रायणीपुत्र, आयुष्मान् सुभूति तथा आयुष्मान् राहुल । इनके अतिरिक्त अन्य महाश्रावक भी इन्हें घेरे हुए थे । इनमें प्रधान थे आयुष्मान् आनन्द, जो मोक्ष-प्राप्ति की शिक्षा ग्रहण कर रहे थे । इनके साथ अन्य दो हजार भिक्षु भी थे, जिनमें कुछ मोक्षप्राप्ति के साधनभूत शिक्षा को ग्रहण करने के क्रम में थे और कुछ इसे पूर्णरूपेण प्राप्त करके अर्हत्त्व प्राप्त कर चुके थे। महाप्रजापति के नेतृत्व में छह हजार भिक्षुणियाँ भी इन्हें घेरे हुए थीं । राहुल की माता यशोधरा भी भिक्षुणी के वेश में सपरिवार वहाँ उपस्थित थीं । अस्सी हजार बोधिसत्त्व भी साथ थे। वे सभी अपने लक्ष्य से न डिगनेवाले, केवल वर्त्तमान जन्म में ही इस संसार में रहनेवाले, श्रेष्ठ सम्यक्-सम्बोधि में निष्णात, श्रेष्ठ प्रातिभिक ज्ञान में प्रतिष्ठित एवं स्थायी धर्मचक्र के प्रवर्तक थे । उन्होंने अनेक शत-सहस्र बुद्धों की उपासना की थी, अनेक शत-सहस्र बुद्धों के द्वारा कुशलमूल की स्थापना कराई थी, सैकड़ों-हजारों बुद्धों की स्तुति की थी तथा इनका मन एवं शरीर मैत्री की भावना से पूर्ण था । ये तथागत के द्वारा दिये गये ज्ञान का सर्वसाधारण में प्रचार करने में कुशल, महती प्रज्ञा-सम्पन्न एवं प्रज्ञापारमिता के अधिकारी ज्ञाता थे । इन्होंने अनेक शत-सहस्र लोकों में प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी तथा ये अनेक कोटिखर्वशतसहस्र प्राणियों के उद्धारक थे । इन अस्सी हजार

बोधिसत्त्वों में प्रमुख थे---कुमारभूत महासत्त्व बोधिसत्त्व मंजुश्री, अवलोकितेश्वर, महास्थामप्राप्त, सर्वार्थनामा, नित्योद्युक्त, अनिक्षिप्तधुर, रत्नपाणि, भैषज्यराज, भैषज्यसमुद्गत, व्यूहराज, प्रदानशूर, रत्नचन्द्र, रत्नप्रभ, पूर्णचन्द्र, महाविक्रामी, अनन्तविक्रामी, त्रैलोक्यविक्रामी, महाप्रतिभान, सतत समिताभियुक्त, धरणींधर, अक्षयमति, पद्मश्री, नक्षत्रराज, महासत्त्व, बोधिसत्त्व मैत्रेय तथा महासत्त्व बोधिसत्त्व सिंह। भद्रपाल के नेतृत्व में सोलह सत्पुरुष भी इन्हें घेरे हुए थे। इनके नाम थे---भद्रपाल, रत्नाकर, सुसार्थवाह, नरदत्त, गुह्यगुप्त, वरुणदत्त, इन्द्रदत्त, उत्तरमति, विशेषमति, वर्धमानमति, अमोघदर्शी, सुसंप्रस्थित, सुविक्रान्तविक्रामी, अनुपममति, सूर्यगर्भ और धरणींधर। इनके नेतृत्व में अस्सी हजार बोधिसत्त्व भी भगवान् को घेरे हुए थे। वीस हजार देवपुत्रों के विशाल समुदाय के साथ देवताओं के राजा इन्द्र भी इन्हें घेरकर वहाँ उपस्थित थे। इन बीस हजार देवपुत्रों में प्रमुख थे---देवपुत्र चन्द्र, देवपुत्र सूर्य, देवपुत्र समन्तगन्ध, देवपुत्र रत्नप्रभ और देवपुत्र अवभासप्रभ। तीस हजार देवताओं के विशाल समुदाय के समेत महाराज विरूढक, महाराज विरूपाक्ष, महाराज धृतराष्ट्र तथा महाराज वैश्रवण भी इनके साथ थे। देवपुत्र ईश्वर और देवपुत्र महेश्वर भी तीस-तीस हजार देवपुत्रों के विशाल परिवार के साथ इनका अनगमन कर रहे थे। शिखी ब्रह्मा तथा ज्योतिष्प्रभ ब्रह्मा जिनमें प्रमुख थे, ऐसे बारह हजार ब्रह्मकायिक देवपुत्रों के विशाल समुदाय के साथ सहांपति ब्रह्मा भी इनके साथ थे। अनेक कोटिशतसहस्र नागों के साथ नागराज नन्द, नागराज उपनन्द, सागर वासुकि, तक्षक, मनस्वी, अनवतप्त एवं नागराज उत्पलक ये आठ नागराज, अनेक कोटिशतसहस्र किन्नरों के विशाल समुदाय-समेत किन्नरराज द्रुम, किन्नरराज महाधर्म, किन्नरराज सुधर्म एवं किन्नरराज धर्मधर ये चार किन्नरराज, अनेक कोटिशतसहस्र गन्धर्वों-समेत गन्धर्वमनोज्ञ, मनोज्ञस्वर, मधुर तथा गन्धर्व मधुरस्वर ये चार गन्धर्वकायिक देवपुत्र, अनेक कोटिशतसहस्र असुरों के साथ असुरेन्द्र बलि, असुरेन्द्र खरस्कन्ध, असुरेन्द्र वेमचित्री एवं असुरेन्द्र राहु ये चार असुरराज, अनेककोटिशतसहस्र करोड़ गरुडों-समेत गरुडेन्द्र महातेजा, महाकाय, महापूर्ण तथा गरुडेन्द्र महर्द्धिप्राप्त ये चार गरुडेन्द्र तथा वैदेहीपुत्र मगधराज अजातशत्रु भी इनका अनुगमन कर रहे थे।

तेन खलु पुनः समयेन भगवांश्चतसृभिः पर्षद्भिः परिवृतः पुरस्कृतः सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितोऽर्चितोऽपचायितो महानिर्देशं नाम धर्मपर्यायं सूत्रान्तं महावैपुल्यं बोधिसत्त्वाववादं सर्वबुद्धपरिग्रहं भाषित्वा तस्मिन्नेव महाधर्मासने पर्यङ्कमाभुज्यानन्तनिर्देशप्रतिष्ठानं नाम समाधि समापन्नोऽभूदनिञ्जमानेन कायेन स्थितोऽनिञ्जप्राप्तेन च चित्तेन। समनन्तरसमापन्नस्य खलु पुनर्भगवतो मान्दारवमहामान्दारवाणां मञ्जषकमहामञ्जूषकाणां दिव्यानां पुष्पाणां महत्पुष्पवर्षमभिप्रावर्षद् भगवन्तं ताश्च चतस्रः पर्षदोऽभ्यवाकिरत् सर्वावच्च बुद्धक्षेत्रं षड्विकारं प्रकम्पितमभूच्चलितं संप्रचलितं वेधितं संप्रवेधितं क्षुभितं संप्रक्षुभितम्। तेन खलु पुनः समयेन तस्यां पर्षदि भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिका-

देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्याः सन्निपतिता अभूवन् सन्निषण्णा राजानश्च मण्डलिनो बलचक्रवर्तिनश्चतुर्द्वीपकचक्रवर्तिनश्च ते सर्वे सपरिवारा भगवन्तं व्यवलोकयन्ति स्माश्चर्यप्राप्ता अद्भुतप्राप्ता औद्बिल्यप्राप्ताः।

उस समय चारों परिषदें सम्मान एवं पूजा के पात्र भगवान् को घेरकर गुरु भाव से उनकी सेवा एवं शुश्रूषा में तत्पर थीं। उसी समय भगवान् ने बोधिसत्वों के लिए शिक्षाप्रद तथा सभी बुद्धों के लिए धारण करने योग्य महानिर्देश नामक धर्मपर्याय महावैपुल्य सूत्रान्त (सद्धर्मपुण्डरीक) का विवेचन किया। उन्होंने उसी धर्मासन पर पर्यंकासन की मुद्रा में स्थित रहकर अनन्तनिर्देशप्रतिष्ठान नामक समाधि धारण की। उस समय उनका शरीर तथा मन पूर्णरूपेण निष्कम्प एवं एकाग्र थे। भगवान् के समाधि-धारण करते ही आकाश से मान्दारव, महामान्दारव, मञ्जूषक एवं महामञ्जूषक नामक दिव्य पुष्पों की महती वर्षा हुई। उस वर्षा ने भगवान् बुद्ध और उनकी चारों परिषदों को आच्छादित कर दिया तथा सम्पूर्ण बुद्धक्षेत्र में छह प्रकार के प्रकम्प हुए। ये कम्प चलन, सम्प्रचलन, वेध, सम्प्रवेध, क्षोभ एवं संप्रक्षोभ के रूप में थे। इन विविध प्रकम्पों के फलस्वरूप उस परिषद् में उपस्थित भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य तथा मनुष्येतर सभी जीव भूमि पर गिर पड़े। वहाँ निकट में सपरिवार बैठे हुए जो राजा मण्डलाधीश, बलचक्रवर्त्ती एवं चतुर्द्वीपक चक्रवर्ती थे, वे सभी सपरिवार भगवान् के अद्भुत प्रभाव को देखकर महान् आश्चर्य को प्राप्त हो गये।

अथ खलु तस्यां वेलायां भगवतो भ्रूविवरान्तरादूर्णाकोशादेका रश्मिर्निश्चरिता। सा पूर्वस्यां दिश्यष्टादशबुद्धक्षेत्रसहस्राणि प्रसृता। तानि च सर्वाणि बुद्धक्षेत्राणि तस्या रश्मेः प्रभया सुपरिस्फुटानि संदृश्यन्ते स्म यावदवीचिर्महानिरयो यावच्च भवाग्रम्। ये च तेषु बुद्धक्षेत्रेषु षट्सु गतिषु सत्त्वाः संविद्यन्ते स्म ते सर्वेऽशेषेण संदृश्यन्ते स्म। ये च तेषु बुद्धक्षेत्रेषु बुद्धा भगवन्तस्तिष्ठन्ति ध्रियन्ते यापयन्ति च तेऽपि सर्वे संदृश्यन्ते स्म। यं च ते बुद्धा भगवन्तो धर्मं देशयन्ति स च सर्वो निखिलेन श्रूयते स्म। ये च तेषु बुद्धक्षेत्रेषु भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिका योगिनो योगाचाराः प्राप्तफलाश्चाप्राप्तफलाश्च तेऽपि सर्वे संदृश्यन्ते स्म। ये च तेषु बुद्धक्षेत्रेषु बोधिसत्त्वा महासत्त्वा अनेकविविधश्रवणारम्बणाधिमुक्तिहेतुकारणैरुपायकौशल्यैर्बोधिसत्त्वचर्यां चरन्ति तेऽपि सर्वे संदृश्यन्ते स्म। ये च तेषु बुद्धक्षेत्रेषु बुद्धा भगवन्तः परिनिर्वृतास्तेऽपि सर्वे संदृश्यन्ते स्म। ये च तेषु बुद्धक्षेत्रेषु परिनिर्वृतानां बुद्धानां भगवतां धातुस्तूपा रत्नमयास्तेऽपि सर्वे संदृश्यन्ते स्म।

उसी समय भगवान् की घनी भौंहों के बीच से प्रकाश की एक रेखा निकली और

वह पूर्व दिशा में अठारह हजार बुद्धक्षेत्रों में फैल गई। वे सभी बुद्धक्षेत्र उस रश्मि के प्रकाश से अवीचि नामक घोर नरक से भवाग्र (निर्वाण-लोक) तक प्रकाशमान हो गये। उन बुद्धक्षेत्रों में षड्विध गतियों में विद्यमान सभी जीव स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे। उन बुद्धक्षेत्रों में जो अनेक बुद्ध उस समय वर्त्तमान थे, वे सव भी दिखाई पड़ने लगे। वे बुद्ध जिस धर्म का उपदेश देते थे, वह सव भी पूर्ण रूप से सुनाई पड़ता था। उन बुद्धक्षेत्रों में जो भी भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, योगी, योगाचार, मोक्षप्राप्त और अमोक्षप्राप्त थे, वे सव भी दिखाई पड़ने लगे। उन क्षेत्रों में जो महासत्त्व बोधिसत्त्व, विविध प्रकार के श्रवण, आरम्वण और अधिमुक्ति की प्राप्ति के कारणभूत उपाय-कौशल्यों के द्वारा बोधिसत्त्वचर्या का आचरण कर रहे थे, वे भी दिखाई पड़ने लगे। उन क्षेत्रों में वर्त्तमान सभी निर्वाणप्राप्त बुद्ध भी दिखाई पड़ने लगे। उन बुद्धक्षेत्रों में परिनिर्वाणप्राप्त अनेक बुद्धों के जो रत्नमय धातुस्तूप थे, वे सव भी पूर्णरूपेण दिखाई देने लगे।

अथ खलु मैत्रेयस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्यैतदभूत्। महानिमित्तं प्रातिहार्यं वतेदं तथागतेन कृतम्। को न्वत्र हेतुर्भविष्यति किं कारणं यद्भगवतेदमेवंरूपं महानिमित्तं प्रातिहार्यं कृतम्। भगवांश्च समाधिं समापन्नः। इमानि चैवंरूपाणि महाश्चर्याद्भुताचिन्त्यानि मर्हाद्धिप्रातिहार्याणि संदृश्यन्ते स्म। किं नु खल्वहमेतमर्थं परिप्रष्टव्यं परिपृच्छेयम्। को न्वत्र समर्थः स्यादेतमर्थं विसर्जयितुम्। तस्यैतदभूत्। अयं मञ्जुश्रीः कुमारभूतः पूर्वजिनकृताधिकारोऽवरोपितकुशलमूलो बहुबुद्धपर्युपासितः। दृष्टपूर्वाणि चानेन मञ्जुश्रिया कुमारभूतेन पूर्वकाणां तथागतानामर्हतां सम्यक्सम्बुद्धानामेवंरूपाणि निमित्तानि भविष्यन्ति। अनुभूतपूर्वाणि च महाधर्मसांकथ्यानि। यन्न्वहं मञ्जुश्रियं कुमारभूतमेतमर्थं परिपृच्छेयम्।

इस अवसर पर महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय के मन में ऐसा विचार आया कि तथागत ने जो यह अद्भुत दृश्य उपस्थित किया है, वह निश्चित रूप से किसी विशेष घटना का सूचक है। भगवान् के महान् निमित्त के सूचक इस प्रातिहार्य को प्रस्तुत करने में अवश्य ही कोई विशेष हेतु निहित है। भगवान् समाधि में स्थित हैं और ये अद्भुत, अचिन्त्य, अलौकिक एवं महान् प्रतिहार्य दिखाई पड़ रहे हैं। क्यों न मैं पूछने योग्य इस विषय के सम्वन्ध में पूछ ही लूँ? किन्तु, इस शंका का निवारण करने में कौन समर्थ हो सकता है? तव उनके मन में आया कि ये कुमारभूत मञ्जुश्री ही इस शंका के निवारण में समर्थ हैं; क्योंकि ये पूर्वजिनों के द्वारा इस विषय के ज्ञान के अधिकारी वनाये गये हैं, इन्होंने कुशलमूल की स्थापना की है तथा वहुत-से बुद्धों की पूजा की है। इन कुमारभूत मञ्जुश्री ने पूर्वकालीन अर्हत् सम्यक्-सम्वुद्ध तथागतों के द्वारा किये गये इस तरह के निमित्तों को अवश्य देखा होगा। इन्हें पूर्वकाल में होनेवाली इस प्रकार

की बड़ी-बड़ी उपदेश-गोष्ठियों का अनुभव भी प्राप्त है। अतः, मैं कुमारभूत मञ्जुश्री से ही इस रहस्य के विषय में पूछूँगा।

तासां चतसृणां पर्षदां भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकानां बहूनां च देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्याणामिममेवंरूपं भगवतो महानिमित्तं प्रातिहार्यविभासं दृष्ट्वाश्चर्यप्राप्तानामद्भुतप्राप्तानां कौतूहलप्राप्तानामेतदभवत्। किं न खलु वयमिममेवंरूपं भगवतो महर्द्धिप्रातिहार्यविभासं कृतं परिपृच्छेम।

महानिमित्त के सूचक इस अद्भुत दृश्य को देखकर महान् आश्चर्य में पड़े हुए भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिकाओं की चारों परिषदों तथा अनेक देव, नाग, यक्ष, असुर, गरुड, किन्नर, मनुष्य एवं मनुष्येतर प्राणियों के मन में भी यही विचार उत्पन्न हुआ कि हमलोग भी क्यों न पूछ लें कि यह महान् एवं अलौकिक प्रातिहार्य भगवान् ने क्यों प्रस्तुत किया है ?

अथ खलु मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्मिन्नेव क्षणलवमुहूर्ते तासां चतसृणां पर्षदां चेतसैव चेतःपरिवितर्कमाज्ञायात्मना च धर्मसंशयप्राप्तस्तस्यां वेलायां मञ्जुश्रियं कुमारभूतमेतदवोचत्। को न्वत्र मञ्जुश्रीर्हेतुः कः प्रत्ययो यदयमेवंरूप आश्चर्याद्भुतो भगवत ऋद्ध्यवभासः कृत इमानि चाष्टादशबुद्धक्षेत्रसहस्राणि विचित्राणि दर्शनीयानि परमदर्शनीयानि तथागतपूर्वंगमानि तथागतपरिणायकानि संदृश्यन्ते।

स्वयं धर्मसंशय में पड़े हुए महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय ने उसी क्षण उन चारों परिषदों के मन में उठनेवाले विचारों का अपने चित्त में उठनेवाले विचारों के द्वारा अनुमान करके कुमारभूत मञ्जुश्री ने पूछा—हे मञ्जुश्री ! कौन-सा विशिष्ट कारण है कि भगवान् इस प्रकार अतीव अद्भत अलौकिक ज्योति विकीर्ण की है, जिसके प्रकाश में अट्ठारह हजार बुद्धक्षेत्र परिनिर्वाणप्राप्त तथागतों एवं वर्त्तमान में शासन करनेवाले तथागतों-समेत अतीव विचित्र एवं दर्शनीय रूप से दिखाई पड़ रहे हैं।

अथ खलु मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो मञ्जुश्रियं कुमारभूतमाभिर्गाथाभिरध्यभाषत।

तत्पश्चात् महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय ने कुमारभूत मञ्जुश्री से ये गाथाएँ कहीं—

किं कारणं मञ्जुशिरी इयं हि रश्मिः प्रमुक्ता नरनायकेन।
प्रभासयन्ती भ्रमुकान्तरातु ऊर्णाय कोशादियमेकरश्मिः ॥१॥

हे मञ्जुश्री ! क्या कारण है कि मनुष्यों के नायक भगवान् ने अपनी घनी भौंहों के बीच से यह ज्योतिर्मयी अद्वितीय प्रकाश-रश्मि प्रकट की है ?

मान्दारवाणां च महन्तवर्षं पुष्पाणि मुञ्चन्ति सुराः सुहृष्टाः ।
मञ्जूषकांश्चन्दनचूर्णमिश्रान् दिव्यान् सुगन्धांश्च मनोरमांश्च ।।२।।

इस समय देवता प्रसन्न होकर मान्दारव एवं मञ्जूषक पुष्पों तथा मनोरम और दिव्य चन्दन-चूर्ण-मिश्रित सुगंधित वस्तुओं की महती वर्षा कर रहे हैं ।

येही मही शोभतियं समन्तात् पर्षाश्च चत्वार सुलब्धहर्षाः ।
सर्वं च क्षेत्रं इमु संप्रकम्पितं षड्भिर्विकारेहि सुभीष्मरूपम् ।।३।।

इनसे यह सारी पृथ्वी शोभायमान हो रही है, चारों परिषदें अत्यधिक प्रसन्न हो उठी हैं, और ये सभी क्षेत्र अत्यन्त भयंकर रूप से छह प्रकार से काँप उठे हैं ।

सा चैव रश्मी पुरिमा दिशाय अष्टादशक्षेत्रसहस्रपूर्णाः ।
अवभासयी एकक्षणेन सर्वे सुवर्णवर्णा इव भोन्ति क्षेत्राः ।।४।।

यह प्रकाश पूर्व दिशा में अट्ठारह हजार क्षेत्रों में फैल गया है, जिससे अवभासित होकर वे क्षेत्र सहसा सुवर्ण के वर्ण के हो गये हैं ।

यावानवीची परमं भवाग्रं क्षेत्रेषु यावन्ति च तेषु सत्त्वाः ।
षट्सू गतीषू तहि विद्यमानाः च्यवन्ति ये चाप्युपपद्यि तत्र ।।५।।

अवीचि नामक नरक से श्रेष्ठ भवाग्र (निर्वाण-लोक) तक इन क्षेत्रों में षड्विध गतियों में विद्यमान जितने भी जीव मृत्यु एवं जन्म को प्राप्त हो रहे हैं, उन सबको हम देख रहे हैं ।

कर्माणि चित्रा विविधानि तेषां गतीषु दृश्यन्ति सुखा दुखा च ।
हीना प्रणीता तथ मध्यमा च इह स्थितो अद्दशि सर्वमेतत् ।।६।।

इन गतियों में वर्त्तमान इनके चित्र-विचित्र विविध कार्य दृष्टिगोचर हो रहे हैं । वे सुखी हैं अथवा दुःखी हैं तथा निम्न, उत्तम, अथवा मध्यम गति में वर्त्तमान हैं—ये सभी बातें यहाँ खड़े होकर हम स्पष्ट देख रहे हैं ।

बुद्धांश्च पश्यामि नरेन्द्रसिंहान् प्रकाशयन्तो विवरन्ति धर्मम् ।
प्रशासमानान् बहुसत्त्वकोटीः उदाहरन्तो मधुरस्वरां गिरम् ।।७।।

राजाओं में श्रेष्ठ बुद्धों को भी देख रहा हूँ, जो धर्म को प्रकाशित करते हुए उसका विवेचन कर रहे हैं, तथा मधुर वाणी में अनेक करोड़ जीवों को धर्म का उपदेश दे रहे हैं ।

गम्भीरर्निर्घोषमुदारमद्भुतं मुञ्चन्ति क्षेत्रेषु स्वकस्वकेषु ।
दृष्टान्तहेतूनयुतान कोटिभिः प्रकाशयन्तो इमु बुद्धधर्मम् ।।८।।

जिस समय वे असंख्य कोटि दृष्टान्तों और प्रमाणों के द्वारा उस बुद्धधर्म को प्रकाशित

करते हैं, उस समय उनके गम्भीर, उदार एवं अद्भुत शब्द उनके अपने-अपने क्षेत्र में गूँजने लगते हैं ।

दुःखेन संपीडित ये च सत्त्वा जातीजराखिन्नमना अजानकाः ।
तेषां प्रकाशेन्ति प्रशान्तनिर्वृतिं दुःखस्य अन्तो अयु भिक्षवति ॥६॥

इस संसार में जो अज्ञानी जीव जन्म और जरा के दुःखों से अत्यधिक पीडित हैं, उन्हें वे शांतिदायक निर्वाण का उपदेश देते हैं और कहते हैं कि हे भिक्षुओ ! यह निर्वाण ही दुःखों के अन्त करने का एकमात्र उपाय है ।

उदारस्थामाधिगताश्च ये नराः पुण्यैरुपेतास्तथ बुद्धदर्शनैः ।
प्रत्येकयानं च वदन्ति तेषां संवर्णयन्तो इम धर्मनेत्रीम् ॥१०॥

जो श्रेष्ठ बल से युक्त हैं तथा जो बुद्ध के सिद्धान्तों का पालन करके पुण्य के भागी बन गये हैं, ऐसे व्यक्तियों को इस धर्म के मार्ग का निर्देश करते हुए वे उन्हें प्रत्येक यान का उपदेश दे रहे हैं ।

ये चापि अन्ये सुगतस्य पुत्रा अनुत्तरं ज्ञान गवेषमाणाः ।
विविधां क्रियां कुर्विषु सर्वकालं तेषां पि बोधाय वदन्ति वर्णम् ॥११॥

इसके अतिरिक्त वे श्रेष्ठ ज्ञान की खोज में तत्पर सुगत के उन अन्य पुत्रों को भी ज्ञानप्राप्ति के लिए उपदेश दे रहे हैं, जिन्होंने अपने विभिन्न कार्यों को साधु रूप से यथासाध्य सम्पन्न कर लिया है ।

शृणोमि पश्यामि च मञ्जुघोष इह स्थितो ईदृशकानि तत्र ।
अन्या विशेषाण सहस्रकोट्यः प्रदेशमात्रं ततु वर्णयिष्ये ॥१२॥

हे मञ्जुघोष ! यहीं खड़े होकर मैं इस प्रकार की उपरिकथित तथा अन्य और भी सहस्रों कोटि विशिष्ट वस्तुएँ देख और सुन रहा हूँ । उनमें से कुछ का ही वर्णन मैं प्रस्तुत करूँगा ।

पश्यामि क्षेत्रेषु बहूषु चापि ये बोधिसत्त्वा यथ गङ्गवालिकाः ।
कोटीसहस्राणि अनल्पकानि विविधेन वीर्येण जनेन्ति बोधिम् ॥१३॥

मैं अनेक क्षेत्रों में वर्तमान गंगा की वालुका के समान असंख्य सहस्रों कोटि बोधिसत्त्वों को देख रहा हूँ । वे अपनी विविध प्रकार की शक्तियों से लोगों में ज्ञान उत्पन्न कर रहे हैं ।

ददन्ति दानानि तथैव कचिद्धनं हिरण्यं रजतं सुवर्णम् ।
मुक्तामणिं शङ्खशिलाप्रवाड़ं दासांश्च दासीरथ-अश्व-एडकान् ॥१४॥

कुछ ऐसे हैं, जो धन, सुवर्ण, चाँदी, सुवर्णमुद्राएँ, मोती, रत्न, शंख, मणि, मूँगा, दास, दासी, घोड़े, भेड़ आदि का दान कर रहे हैं ।

शिविकास्तथा रत्नविभूषिताश्च ददन्ति दानानि प्रहृष्टमानसाः ।
परिणामयन्तो इह अग्रबोधौ वयं हि यानस्य भवेम लाभिनः ॥१५॥

कुछ लोग प्रसन्न मन से रत्न-विभूषित पालकियाँ दान कर रहे हैं। उन्हें विश्वास है कि इस प्रकार वे अग्रबोधि के लिए अपने को उपयुक्त बनायेंगे तथा इसके फलस्वरूप इन्हें धर्ममार्ग की प्राप्ति होगी ।

त्रैधातुके श्रेष्ठविशिष्टयानं यद्बुद्धयानं सुगतेहि वर्णितम् ।
अहंपि तस्यो भवि क्षिप्रलाभी ददन्ति दानानि इमीदृशानि ॥१६॥

उनका विचार है कि इस त्रैधातुक संसार में सुगतों के द्वारा वर्णित बुद्धयान ही सभी यानों में श्रेष्ठ एवं विशिष्ट है । अतः, हम भी इसकी शीघ्र प्राप्ति कर लें । इसी हेतु वे इस प्रकार की वस्तुओं का दान कर रहे हैं ।

चतुर्हयैर्युक्तरथांश्च केचित् सवेदिकान् पुष्पध्वजैरलंकृतान् ।
सवैजयन्तान् रतनामयानि ददन्ति दानानि तथैव केचित् ॥१७॥

कुछ लोग चार घोड़ों से युक्त एवं वेदिकाओं, फूलों, झण्डों और पताकाओं से सुशोभित रथ का तथा कुछ लोग कीमती रत्नों की बनी हुई (वस्तुओं) का दान कर रहे हैं ।

ददन्ति पुत्रांश्च तथैव पुत्रीः प्रियाणि मांसानि ददन्ति केचित् ।
हस्तांश्च पादांश्च ददन्ति याचिताः पर्येषमाणा इममग्रबोधिम् ॥१८॥

कुछ लोग अपने पुत्र और पुत्रियों को दान में दे रहे हैं, कुछ लोग अपने प्रिय मांस दे रहे हैं । उनके हृदय में अग्रबोधि की प्राप्ति की इच्छा इतनी प्रबल है कि माँगे जाने पर वे अपने हाथ और पैर भी (काटकर) दान के रूप में प्रस्तुत कर देते हैं ।

शिरांसि केचिन्नयनानि केचिद्ददन्ति केचित् प्रवरात्मभावान् ।
दत्वा च दानानि प्रसन्नचित्ताः प्रार्थेन्ति ज्ञानं हि तथागतानाम् ॥१९॥

कुछ अपने मस्तक, कुछ अपनी आँखें और कुछ अपने श्रेष्ठ शरीर को दान में दे रहे हैं । वे दान देकर प्रसन्नचित होकर तथागत के ज्ञान की प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं ।

पश्याम्यहं मञ्जुशिरी कहिंचित् स्फीतानि राज्यानि विवर्जयित्वा ।
अन्तःपुरान् द्वीप तथैव सर्वानमात्यज्ञातींश्च विहाय सर्वान् ॥२०॥

हे मञ्जुश्री ! मैं कहीं-कहीं ऐसे व्यक्तियों को देख रहा हूँ, जो अपने विशाल राज्य, देश, अमात्य, सम्बन्धी एवं अन्तःपुर का सर्वथा त्याग कर भगवान् के निकट उपस्थित हैं ।

उपसंक्रमी लोकविनायकेषु पृच्छन्ति धर्मं प्रवरं शिवाय ।
काषायवस्त्राणि च प्रावरन्ति केशांश्च श्मश्रूण्यवतारयन्ति ।।२१।।

वे संसार के नायक के सम्मुख जाकर मंगल की प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ धर्म के विषय में प्रश्न कर रहे हैं । उन्होंने काषायवस्त्र धारण कर लिया है तथा सिर के वाल और दाढ़ी-मँछ मुड़वा दी है ।

कांश्चिच्च पश्याम्यहु बोधिसत्त्वान् भिक्षू समानाः पवने वसन्ति ।
शून्यान्यरण्यानि निषेवमाणानुद्देशस्वाध्यायरतांच कांश्चित् ।।२२।।

मैं कुछ ऐसे वोधिसत्त्वों को देख रहा हूँ, जो मुनियों की तरह खुले स्थानों में निवास करते हैं। कुछ ऐसे वोधिसत्त्वों को भी देख रहा हूँ, जो निर्जन जंगलों में रह रहे हैं तथा श्रेष्ठ धर्म के अध्ययन में निरत हैं ।

कांश्चिच्च पश्याम्यहु बोधिसत्त्वान् गिरिकन्दरेषु प्रविशन्ति धीराः ।
विभावयन्तो इमु बुद्धज्ञानं परिचिन्तयन्तो ह्युपलक्षयन्ति ।।२३।।

कुछ ऐसे धैर्यशाली बोधिसत्त्वों को भी देख रहा हूँ, जो पर्वत की गुफाओं में जाकर निवास करते हैं और वहाँ बुद्धज्ञान के विषय में मनन और चिन्तन करते हुए उसका स्वयं साक्षात्कार करते हैं ।

उत्सृज्य कामांश्च अशेषतोऽन्ये परिभावितात्मान विशुद्धगोचराः ।
अभिज्ञपञ्चेह च स्पर्शयित्वा वसन्त्यरण्ये सुगतस्य पुत्राः ।।२४।।

कुछ सुगत के पुत्र ऐसे हैं, जो पञ्चेन्द्रियों के स्वाद का अनुभव करने के पश्चात् सभीं इच्छाओं का त्याग कर तथा आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा विशुद्ध होकर सच्चे सुगतोपासक के रूप में जंगल में निवास करते हैं ।

पादैः समैः स्थित्विह केचि धीराः कृताञ्जली संमुखि नायकानाम् ।
अभिस्तवन्तीह हर्षं जनित्वा गाथासहस्रेहि जिनेन्द्रराजम् ।।२५।।

कुछ धीर व्यक्ति लोकनायकों के सम्मुख हाथ जोड़कर पैरों पर सीधे खड़े हैं । वे हजारों गाथाओं के द्वारा प्रसन्नतापूर्वक जिनेन्द्रराज की स्तुति कर रहे हैं ।

स्मृतिमन्त दान्ताश्च विशारदाश्च सूक्ष्मां चरिं केचि प्रजानमानाः ।
पृच्छन्ति धर्मं द्विपदोत्तमानां श्रुत्वा च ते धर्मधरा भवन्ति ।।२६।।

जो तीव्र स्मरणशक्ति-सम्पन्न, इन्द्रियजित्, विद्वान तथा कर्त्तव्य के मार्ग के सूक्ष्मतम अंगों का ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं, वे मनुष्यों में श्रेष्ठ सुगतों से धर्म के विषय में प्रश्न करते हैं और उसे सुनकर वे स्वयं उसे धारण कर लेते हैं ।

परिभावितात्मान जिनेन्द्रपुत्रान् कांश्चिच्च पश्याम्यहु तत्र तत्र ।
धर्मं वदन्तो बहुप्राणकोटिनां दृष्टान्तहेतूनयुतैरनेकैः ।।२७।।

जहाँ-तहाँ जिनेन्द्र के कुछ ऐसे पुत्रों को भी देखता हूँ, जिन्होंने स्वयं आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त कर ली है तथा जो स्वयं असंख्य दृष्टान्तों एवं तर्कों के द्वारा करोड़ों प्राणियों को धर्म का उपदेश दे रहे हैं ।

प्रामोद्यजाताः प्रवदन्ति धर्मं समादपेन्तो बहुबोधिसत्त्वान् ।
निहत्य मारं सबलं सवाहनं पराहनन्ती इमु धर्मदुन्दुभिम् ।।२८।।

अनेक बोधिसत्त्वों की चर्या करते हुए वे आनन्दपूर्वक धर्म की घोषणा कर रहे हैं तथा वे मार को सदलवल परास्त कर धर्म की दुन्दुभी वजा रहे हैं ।

पश्यामि कांश्चित् सुगतस्य शासने संपूजितान्नरमरुयक्षराक्षसः ।
अविस्मयन्तान् सुगतस्य पुत्राननुन्नतान् शान्तप्रशान्तचारीन् ।।२९।।

मैं सुगत के कुछ ऐसे पुत्रों को भी देख रहा हूँ, जो अभिमान-रहित, नम्र, शान्त और प्रशान्तचारी हैं एवं सुगत के शासन में स्वयं वर्त्तमान रहकर मनुष्यों, देवताओं, यक्षों और राक्षसों के द्वारा पूजित हो रहे हैं ।

वनषण्ड निश्राय तथान्यरूपा अवभासु कायातु प्रमुञ्चमानाः ।
अभ्युद्धरन्तो नरकेषु सत्त्वांस्तांश्चैव बोधाय समादपेन्ति ।।३०।।

कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो वन में जाकर अपने शरीर से प्रकाश विकीर्ण करते हुए नरक में पड़े हुए जीवों का उद्धार करके उन्हें ज्ञान की प्राप्ति का उपदेश दे रहे हैं ।

वीर्ये स्थिताः केचि जिनस्य पुत्रा मिद्धं जहित्वा च अशेषतोऽन्ये ।
चङ्क्रम्ययुक्ताः पवने वसन्ति वीर्येण ते प्रस्थित अग्रबोधिम् ।।३१।।

बुद्ध के कुछ अन्य पुत्र जंगलों में रह रहे हैं और अपने बल पर भरोसा करते हुए पूर्ण रूप से निरालस्य होकर खुले स्थानों में निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं । इन्होंने अपने बल के द्वारा अग्रबोधि की प्राप्ति की है ।

ये चात्र रक्षन्ति सदा विशुद्धं शीलं अखण्डं मणिरत्नसादृशम् ।
परिपूर्णचारी च भवन्ति तत्र शीलेन ते प्रस्थित अग्रबोधिम् ।।३२।।

कुछ व्यक्ति मणि और रत्नों के समान (मूल्यवान्) अपने विशुद्ध शील को सदा अक्षुण्ण बनाये रखते हैं और जीवन में उसका पूर्ण आचरण करते हैं । इन्होंने अपने शील के द्वारा अग्रबोधि की प्राप्ति की है ।

क्षान्तीबला केचि जिनस्य पुत्रा अधिमानप्राप्तान क्षमन्ति भिक्षुणाम् ।
आक्रोशपरिभाष तथैव तर्जनां क्षान्त्या हि ते प्रस्थित अग्रबोधिम् ।।३३।।

बुद्ध के कुछ क्षमाशील पुत्र अहंकारी भिक्षुओं की भर्त्सना आक्रोश एवं तर्जना को धैर्यपूर्वक सहन करते हैं । उन्होंने सहिष्णुता के द्वारा अग्रबोधि की प्राप्ति की है ।

कांश्चिच्च पश्याम्यहु बोधिसत्त्वान् क्रीडारतिं सर्व विवर्जयित्वा ।
बालान् सहायान् परिवर्जयित्वा आर्येषु संसर्गरतान् समाहितान् ।।३४।।

मैं कुछ ऐसे वोधिसत्त्वों को देख रहा हूँ, जिन्होंने समस्त इन्द्रिय-सुखों का त्याग कर दिया है, तथा जो मूर्ख सहायकों का साथ छोड़कर आर्यों के संसर्ग में एकाग्रभाव से अनुरक्त हैं ।

विक्षेपचित्तं च विवर्जयन्तानकाग्रचित्तान् वनकन्दरेषु ।
ध्यायन्त वर्षाण सहस्रकोट्यो ध्यानेन ते प्रस्थित अग्रबोधिम् ।।३५।।

उन्होंने चित्त की चञ्चलता को त्याग दिया है और वे शान्त वन-कन्दराओं में एकाग्रचित्त होकर करोड़ों वर्षों तक ध्यान लगाते हैं । इन्होंने ध्यान के द्वारा अग्रवोधि की प्राप्ति की है ।

ददन्ति दानानि तथैव केचित् सशिष्यसंघेघे जिनेषु संमुखम् ।
खाद्यं च भोज्यं च तथान्नपानं गिलानभैषज्य बहू अनल्पकम् ।।३६।।

कुछ व्यक्ति शिष्यसमूह-समेत जिनों के सम्मुख खाद्य-भोज्य, अन्न, पेय और रोगियों के लिए बहुत-सी दवाएँ पर्याप्त मात्रा में दान-रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं ।

वस्त्राण कोटीशत ते ददन्ति सहस्रकोटीशतमूल्य केचित् ।
अनर्घमूल्यांश्च ददन्ति वस्त्रान् सशिष्यसंघान जिनान संमुखम् ।।३७।।

कुछ व्यक्ति शिष्यसमूह-सहित जिनों के सम्मुख करोड़ों की संख्या में सहस्रों कोटिशत मूल्य के वस्त्र का दान कर रहे हैं । इसके अतिरिक्त वे अन्य बहुमूल्य वस्त्र भी दान में दे रहे हैं ।

विहारकोटीशत कारयित्वा रत्नामयांश्चो तथ चन्दनामयान् ।
प्रभूतशय्यासनमण्डितांश्च निर्यातयन्तो सुगतान संमुखम् ।।३८।।

वे अनेक शय्या एवं आसनों से सुशोभित तथा रत्न और चन्दन से निर्मित करोड़ों विहार बनवाकर उन्हें सुगतों के सम्मुख दान रूप में दे रहे हैं ।

आराम चोक्षांश्च मनोरमांश्च फलैरुपेतान् कुसुमैश्च चित्रैः ।
दिवाविहारार्थ ददन्ति केचित् सश्रावकाणां पुरुषर्षभाणाम् ।।३९।।

कुछ लोग रंग-विरंग के फूलों और फलों से युक्त सुन्दर और विस्तृत उपवन दिवा-विहार के लिए श्रावकों-समेत पुरुषश्रेष्ठ अर्हतों को दे रहे हैं ।

ददन्ति दानानिममेवरूपा विविधानि चित्राणि च हर्षजाताः ।
दत्त्वा च बोधाय जनेन्ति वीर्यं दानेन ते प्रस्थित अग्रबोधिम् ।।४०।।

वे प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार की विभिन्न और विचित्र वस्तुओं का दान देते हैं ।

दान देकर वे अपने अन्तःकरण में बोधिप्राप्ति के लिए शक्ति उत्पन्न करते हैं। उन लोगों ने दान के द्वारा अग्रबोधि प्राप्त की है।

धर्मं च केचित् प्रवदन्ति शान्तं दृष्टान्तहेतूनयुतैरनेकैः।
देशेन्ति ते प्राणसहस्रकोटिनां ज्ञानेन ते प्रस्थित अग्रबोधिम् ॥४१॥

कुछ अन्य जिनपुत्र करोड़ों प्राणियों को अनेक खर्व दृष्टान्तों और तर्कों के द्वारा शान्तिप्रद धर्म का प्रवचन तथा देशना कर रहे हैं। इन्होंने ज्ञान के द्वारा अग्रबोधि प्राप्त की है।

निरीहका धर्म प्रजानमाना द्वयं प्रवृत्ताः खगतुल्यसादृशाः।
अनोपलिप्ताः सुगतस्य पुत्राः प्रज्ञाय ते प्रस्थित अग्रबोधिम् ॥४२॥

कुछ सुगत के पुत्र ऐसे भी हैं जो निरीह होकर आकाश-स्थित पक्षियों की भाँति निर्लिप्त भाव से संसार के द्वन्द्वमय धर्मों का आचरण कर रहे हैं। इन्होंने प्रज्ञा के द्वारा अग्रबोधि की प्राप्ति की है।

भूयश्च पश्याम्यहु मञ्जुघोष परिनिर्वृतानां सुगतान शासने।
उत्पन्नधीरा बहुबोधिसत्त्वाः कुर्वन्ति सत्कारु जिनान धातुषु ॥४३॥

तदनन्तर हे मञ्जुघोष! मैं बहुत-से ऐसे बोधिसत्त्वों को देख रहा हूँ, जिन्होंने निर्वाणप्राप्त सुगतों के शासन में दृढता प्राप्त कर ली है। सम्प्रति वे जिनों के धात्ववशेषों के प्रति सत्कार प्रकट कर रहे हैं।

स्तूपान पश्यामि सहस्रकोट्यो अनल्पका यथरिव गङ्गवालिकाः।
येभिः सदा मण्डित क्षेत्रकोटियो ये कारिता तेहि जिनात्मजेहि ॥४४॥

मैं इन बुद्धपुत्रों के द्वारा बनवाये गये गंगा की बालुका के समान सहस्रों कोटि असंख्य स्तूपों को देख रहा हूँ। इन स्तूपों के द्वारा ये करोड़ों क्षेत्र सर्वदा सुशोभित होते हैं।

रत्नान सप्तान विशिष्ट उच्छ्रिताः सहस्र पञ्चो परिपूर्णयोजना।
द्वे चो सहस्रे परिणाहवन्तश्छत्रध्वजास्तेषु सहस्रकोट्यः ॥४५॥

सात विशिष्ट धातुओं से बने वे विशाल स्तूप पाँच हजार योजन ऊँचे और दो हजार योजन विस्तृत हैं तथा उनमें करोड़ों ध्वज और छत्र लगे हैं।

सवैजयन्ताः सद शोभमाना घण्टासमूहै रणमान नित्यम्।
पुष्पैश्च गन्धैश्च तथैव वाद्यैः संपूजिता नरमरुयक्षराक्षसैः ॥४६॥

वे ध्वजाओं से सुशोभित एवं असंख्य घण्टों से निरन्तर निनादित हैं। मनुष्य, देवता यक्ष और राक्षस, पुष्प, चन्दन, गायन और वादन द्वारा इन स्तूपों की पूजा करते हैं।

कारापयन्ती सुगतस्य पुत्रा जिनान धातुष्विह पूजमीदृशीम् ।
येभिर्दिशायो दश शोभिताय: सुपुष्पितैर्वा यथ पारिजातैः ।।४७।।

वे सुगत के पुत्र अर्हतों के धात्ववशेषों की इस प्रकार पूजा कर रहे हैं । इन स्तूपों को देखकर ऐसा लगता है कि मानों दसों दिशाएँ पुष्पों से समृद्ध पारिजात वृक्षों से सुशोभित हो रही हैं ।

अहञ्चिमाश्चो बहुप्राणकोट्य इह स्थिताः पश्यिषु सर्वमेतत् ।
प्रपुष्पितं लोकमिमं सदेवकं जिनेन मुक्ता इयमेकरश्मिः ।।४८।।

यहाँ खड़े होकर अर्हतों द्वारा प्रसारित इस प्रकाश में मैं तथा ये अनेक कोटि जीव देवों से पूर्ण इस लोक को पुष्पों से आच्छादित जैसा देख रहे हैं ।

अहो प्रभावः पुरुषर्षभस्य अहोऽस्य ज्ञानं विपुलं अनास्रवम् ।
यस्यैकरश्मिः प्रसृताद्य लोके दर्शेति क्षेत्राण बहू सहस्रान् ।।४९।।

पुरुषश्रेष्ठ बुद्ध का प्रभाव कितना अधिक हैं और इनका आस्रवरहित ज्ञान कितना विशाल है कि इनके द्वारा प्रसारित ज्ञान की एक किरण अनेक हजार क्षेत्रों को स्पष्ट रूप से दिखला रही है ।

आश्चर्यप्राप्ता स्म निमित्त दृष्ट्वा इममीदृशं चाद्भुतमप्रमेयम् ।
वदस्व मञ्जुस्वर एतमर्थं कौतूहलं ह्यपनय बुद्धपुत्र ।।५०।।

इस प्रकार के इस अप्रमेय महान् और विचित्र घटना को देखकर हमलोग आश्चर्य में पड़ गये हैं । हे बुद्धपुत्र मञ्जुस्वर ! इसके बारे में हमें पूर्ण रूप से बतलाकर हमारी जिज्ञासा को शान्त करो ।

चत्वारिमा पर्ष उदग्रचित्तास्त्वां चाभिवीक्षन्तिह मा च वीर ।
जनेहि हर्षं व्यपनेहि काङ्क्षां त्वं व्याकरोही सुगतस्य पुत्र ।।५१।।

ह वीर ! ये चारों परिषदें प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारी तथा मेरी ओर उत्सुकतापूर्वक देख रही हैं। हे सुगत के पुत्र ! तुम (उनके हृदय में) हर्ष उत्पन्न करो, (उनके) संशय को दूर करो और उनके सम्मुख धर्म का विवेचन करो ।

किमर्थमेषः सुगतेन अद्य प्रभास एतादृशको विमुक्तः ।
अहो प्रभावः पुरुषर्षभस्य अहोऽस्य ज्ञानं विपुलं विशुद्धम् ।।५२।।

किस हेतु सुगत ने आज इस प्रकार का यह प्रकाश विकीर्ण किया है ? पुरुषों में श्रेष्ठ सुगत का कितना अधिक प्रभाव (है) तथा इनका ज्ञान भी कितना विपुल एवं विशुद्ध है ।

यस्यैकरश्मी प्रसृताद्य लोके दर्शेति क्षेत्राण बहून् सहस्रान् ।
एतादृशो अर्थ अयं भविष्यति येनैष रश्मी विपुला प्रमुक्ता ।।५३।।

इनकी भौंहों से निकली हुई केवल एक प्रकाशरेखा आज विश्व में फैलकर अनेक सहस्र क्षेत्रों को प्रकाशित कर रही है । जिस कारण से यह विपुल रश्मि बिखेरी गई है, उसका अवश्य ही कोई विशेष प्रयोजन होगा ।

ये अग्रधर्मा सुगतेन स्पृष्टास्तद बोधिमण्डे पुरुषोत्तमेन ।
किं तेह निर्देक्ष्यति लोकनाथो अथ व्याकरिष्यत्ययु बोधिसत्त्वान् ॥५४॥

संसार के स्वामी एवं मनुष्यों में श्रेष्ठ सुगत ने उन बोधिमण्डप पर बैठकर जिन श्रेष्ठ धर्मों का ज्ञान प्राप्त किया है, उनका निर्देश क्या वे बोधिसत्त्वों के सम्मुख करेंगे ?

अनल्पकं कारणमेत्त भेष्यति यद्दर्शिताः क्षेत्रसहस्रनेके ।
सुचित्रचित्रा रतनोपशोभिता बुद्धाश्च दृश्यन्ति अनन्तचक्षुषः ॥५५॥

जो ये सुन्दर चित्रों से चित्रित एवं रत्नों से सुशोभित अनेक सहस्र क्षेत्र दिखलाये गये हैं तथा अनन्तदृष्टि बुद्ध दिखाई पड़ रहे हैं, उसका अवश्य ही कोई महान् कारण होगा ।

पृच्छेति मैत्रेयु जिनस्य पुत्र स्पृहेन्ति ते नरमरुयक्षराक्षसाः ।
चत्वारिमा पर्ष उदीक्षमाणा मञ्जुस्वरः किं न्विह व्याकरिष्यति ॥५६॥

मैत्रेय पूछते हैं—हे जिन के पुत्र ! मनुष्य, देवता, यक्ष एवं राक्षस तुम्हारे (उपदेश-श्रवण की) अभिलाषा कर रहे हैं, ये चारों परिषदें भी इस बात की प्रतीक्षा कर रही हैं कि यहाँ अब मञ्जुस्वर क्या विवेचन करने जा रहे हैं ।

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतो मैत्रेयं बोधिसत्त्वं महासत्त्वं तं च सर्वावन्तं बोधिसत्त्वगणमामन्त्रयते स्म । महाधर्मश्रवणसांकथ्यमिदं कुलपुत्रास्तथागतस्य कर्तुमभिप्रायो महाधर्मवृष्ट्यभिप्रवर्षणं च महाधर्मदुन्दुभिसंप्रवादनं च महाधर्मध्वजसमुच्छ्रयणं च महाधर्मोल्कासंप्रज्वालनं च महाधर्मशङ्खाभिप्रपूरणं च महाधर्मभेरीपराहणनं च महाधर्मनिर्देशं चाद्य कुलपुत्रास्तथागतस्य कर्तुमभिप्रायः । यथा मम कुलपुत्राः प्रतिभाति यथा च मया पूर्वकाणां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामिदमेवंरूपं पूर्वनिमित्तं दृष्टमभूत् । तषामपि पूर्वकाणां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामेवं रश्मिप्रमोचनावभासोऽभूत् । तेनैवं प्रजानामि महाधर्मश्रवणसांकथ्यं तथागतः कर्तुकामो महाधर्मश्रवणं श्रावयितुकामो यथेदमेवंरूपं पूर्वनिमित्तं प्रादुष्कृतवान् । तत् कस्य हेतोः । सर्वलोकविप्रत्यनीयकधर्मपर्यायं श्रावयितुकामस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो यथेदमेवंरूपं महाप्रातिहार्यं रश्मिप्रमोचनावभासं च पूर्वनिमित्तमुपदर्शयति ।

तदनन्तर राजकुमार मञ्जुश्री महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय एवं सम्पूर्ण बोधिसत्त्वों के

समूहों से बोले—हे कुलपुत्रो ! आज तथागत का अभिप्राय महाधर्मोपदेश के लिए एक महान् संलाप करना, महाधर्म की वर्षा करना, महाधर्म की दुन्दुभी का वादन करना, महाधर्म की पताका को ऊँचा उठाना, महाधर्म की उल्का को प्रज्वलित करना, महाधर्म के शंख को फूँकना, महाधर्म की भेरी को निनादित करना एवं महाधर्म का निर्देश करना है । हे कुलपुत्रो ! मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है; क्योंकि मैंने पहले के अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतों के ऐसे ही पूर्वनिमित्त देखे हैं । पहले के उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतों ने भी इसी प्रकार रश्मि विकीर्ण करके प्रकाशलोकों को प्रकाशित किया था । इसी से मैं समझता हूँ कि इस समय तथागत श्रेष्ठ धर्मविषयक चर्चा करना चाहते हैं तथा महाधर्मोपदेश देने के इच्छुक हैं । यतः, उन्होंने इस प्रकार के पूर्वनिमित्त को प्रकट किया है । ऐसा क्यों ? क्योंकि अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत सब प्राणियों के पारस्परिक विरोध को दूर करनेवाले इस श्रेष्ठ धर्मोपदेश को सुनाना चाहते हैं । इसीलिए, इस प्रकार के महाप्रतिहार्य एवं रश्मि-विकिरण-रूप पूर्वनिमित्त प्रकट कर रहे हैं ।

अनुस्मराम्यहं कुलपुत्रा अतीतेऽध्वन्यसंख्येयैः कल्पैरसंख्येयतरैर्विपुलैरप्रमेयैरचिन्त्यैरपरिमितैरप्रमाणैस्ततः परेण परतरं यदासीत्तेन कालेन तेन समयेन चन्द्रसूर्यप्रदीपो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् । स धर्मं देशयति स्म । आदौ कल्याणं मध्ये कल्याणं पर्यवसाने कल्याणं स्वर्थं सुव्यञ्जनं केवलं परिपूर्णं परिशुद्धं पर्यवदातं ब्रह्मचर्यं संप्रकाशयति स्म । यदुत श्रावकाणां चतुरार्यसत्यसंप्रयुक्तं प्रतीत्यसमुत्पादप्रवृत्तं धर्मं देशयति स्म जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासानां समतिक्रमाय निर्वाणपर्यवसानम् । बोधिसत्त्वानां च महासत्त्वानां च षट्पारमिताप्रतिसंयुक्तमनुत्तरां सम्यक्संबोधिमारभ्य सर्वज्ञज्ञानपर्यवसानं धर्मं देशयति स्म ।

हे कुलपुत्रो ! मुझ स्मरण है कि अतीतकाल में असंख्य असंख्येतर, विपुल, अप्रमेय, अचिन्त्य, अपरिमित एवं अप्रमाण कल्पों के परे, उससे परे एवं उससे भी परे जो काल था, उस समय भगवान् बुद्ध चन्द्रसूर्यप्रदीप नामक अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत के रूप में इस संसार में उत्पन्न हुए थे । वे विद्या एवं आचरण से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, सर्वश्रेष्ठ, इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखनेवाले एवं देवों तथा मनुष्यों के शासक थे। वे धर्म की देशना करते थे एवं आरम्भ में कल्याणकारक, मध्य में कल्याणकारक तथा अन्त में कल्याणकारक, सुन्दर अर्थवाले, सुन्दर लक्षणोंवाले, केवल परिपूर्ण, परिशुद्ध एवं पर्यवदात ब्रह्मचर्य का सम्यक् प्रकाशन करते थे । उन्होंने श्रावकों को जन्म, जरा, रोग, मृत्यु, शोक, चिन्ता, दुःख, मानसिक वेदना एवं निर्वेद से मुक्ति दिलाने के लिए चार आर्यसत्यों से युक्त एवं प्रतीत्यसमुत्पाद पर आधृत निर्वाणपर्यवसायी धर्म की देशना की थी । उन्होंने महासत्त्व बोधिसत्त्वों

को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय में छह पारमिताओं से युक्त सर्वज्ञ ज्ञानपर्यवसायी धर्म की देशना की थी ।

तस्य खलु पुनः कुलपुत्राश्चन्द्रसूर्यप्रदीपस्य तथागतस्याहतः सम्यक्संबुद्धस्य परेण परतरं चन्द्रसूर्यप्रदीप एव नाम्ना तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि। इति ह्यजितैतेन परम्परोदाहारेण चन्द्रसूर्यप्रदीपनामकानां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामेकनामधेयानामेककुलगोत्राणां यदिदं भरद्वाजसगोत्राणां विंशतितथागतसहस्राण्यभूवन् । तत्राजित तेषां विंशतितथागतसहस्राणां पूर्वकं तथागतमुपादाय यावत् पश्चिमकस्तथागतः सोऽपि चन्द्रसूर्यप्रदीपनामधेय एव तथागतोऽभूदर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् । सोऽपि धर्मं देशितवान् । आदौ कल्याणं मध्ये कल्याणं पर्यवसाने कल्याणं स्वर्थं सुव्यञ्जनं केवलं परिपूर्णं परिशुद्धं पर्यवदातं ब्रह्मचर्यं संप्रकाशितवान् । यदुत श्रावकाणां चतुरार्यसत्यसंयुक्तं प्रतीत्यसमुत्पादप्रवृत्तं धर्मं देशितवान् जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासानां समतिक्रमाय निर्वाणपर्यवसानम् । बोधिसत्त्वानां च महासत्त्वानां च षट्पारमिताप्रतिसंयुक्तमनुत्तरां सम्यक्संबोधिमारभ्य सर्वज्ञज्ञानपर्यवसानं धर्मं देशितवान् ।

पुनः हे कुलपुत्रो ! इन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत चन्द्रसूर्यप्रदीप के अनन्तर, उससे भी परे काल में चन्द्रसूर्यप्रदीप नाम के ही अन्य अनेक सम्यक् सम्बुद्ध तथागत इस संसार में उत्पन्न हुए थे । हे अजित ! उसी परम्परा के क्रम में चन्द्रसूर्यप्रदीप नामधारी, एक कुलगोत्रवाले एवं भरद्वाज के सगोत्र बीस सहस्र अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत उत्पन्न हुए । हे अजित ! उन बीस हजार तथागतों में पहले तथागत से अन्तिम तथागत तक प्रत्येक तथागत का नाम चन्द्रसूर्यप्रदीप था तथा प्रत्येक तथागत, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध, विद्याचरणसम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखनेवाला तथा देवता एवं मनुष्यों का शासक स्वयं भगवान् बुद्ध था । उसने भी धर्म की देशना की तथा आरम्भ में कल्याणकारक, मध्य में कल्याणकारक एवं अन्त में कल्याणकारक, सुन्दर अर्थवाले, सुन्दर लक्षणोंवाले, केवल परिपूर्ण, परिशुद्ध एवं पर्यवदात ब्रह्मचर्य का सम्यक् रीति से प्रकाशन किया । उसने श्रावकों को जन्म, जरा, रोग, मृत्यु, शोक, चिन्ता, दुःख, मानसिक वेदना एवं निर्वेद से मुक्ति दिलाने के लिए चार आर्यसत्यों से युक्त एवं प्रतीत्यसमुत्पाद पर आधृत निर्वाणपर्यवसायी धर्म की देशना की । महासत्त्व बोधिसत्त्वों को भी उन्होंने श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय में छह पारमिताओं से युक्त सर्वज्ञ ज्ञानपर्यवसायी धर्म की देशना की ।

तस्य खलु पुनरजित भगवतश्चन्द्रसूर्यप्रदीपस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्-

संबुद्धस्य पूर्वं कुमारभूतस्यानभिनिष्क्रान्तगृहावासस्याष्टौ पुत्रा अभूवन्। तद् यथा। मतिश्च नाम राजकुमारोऽभूत्। सुमतिश्च नाम राजकुमारोऽभूत्। अनन्तमतिश्च नाम रत्नमतिश्च नाम विशेषमतिश्च नाम विमतिसमुद्घाटी च नाम घोषमतिश्च नाम धर्ममतिश्च नाम राजकुमारोऽभूत्। तेषां खलु पुनरजित अष्टानां राजकुमाराणां तस्य भगवतश्चन्द्रसूर्यप्रदीपस्य तथागतस्य पुत्राणां विपुलर्द्धिरभूत्। एकैकस्य चत्वारो महाद्वीपाः परिभोगोऽभूत्। तेष्वेव च राज्यं कारयामासुः। ते तं भगवन्तमभिनिष्क्रान्तगृहावासं विदित्वानुत्तरां च सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धं श्रुत्वा सर्वराज्यपरिभोगानुत्सृज्य तं भगवन्तमनुप्रव्रजिताः। सर्वे चानुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंप्रस्थिता धर्मभाणकाश्चाभूवन्। सदा च ब्रह्मचारिणो बहुबुद्धशतसहस्रावरोपितकुशलमूलाश्च ते राजकुमारा अभूवन्।

पुनः हे अजित ! इन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत चन्द्रसूर्यप्रदीप को, जबकि वे राजकुमार थे, और अभी घर छोड़कर निष्क्रमण नहीं किया था, आठ पुत्र उत्पन्न हुए। वे मति नामक राजकुमार, सुमति नामक राजकुमार, अनन्तमति नामक राजकुमार, रत्नमति नामक राजकुमार, विशेषमति नामक राजकुमार, विमतिसमुद्घाटी नामक राजकुमार, घोषमति नामक राजकुमार तथा धर्ममति नामक राजकुमार थे। पुनः हे अजित ! तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यप्रदीप के पुत्र वे आठों राजकुमार महती समृद्धि से सम्पन्न थे। उनमें से प्रत्येक के अधिकार में चार-चार महाद्वीप थे, जिनमें वे राज्य करते थे। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि भगवान् ने घर छोड़कर अभिनिष्क्रमण कर लिया है तथा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त कर ली है, तब उन्होंने भी सम्पूर्ण राज्य-सुखों को छोड़कर भगवान् का अनुसरण करते हुए प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। वे सब भी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करके धर्मोपदेशक बने। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए उन राजकुमारों ने अनेक शत-सहस्र बुद्धों के द्वारा कुशलमूल की स्थापना कराई।

तेन खलु पुनरजित समयेन स भगवांश्चन्द्रसूर्यप्रदीपस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो महानिर्देशं नाम धर्मपर्यायं सूत्रान्तं महावैपुल्यं बोधिसत्त्वाववादं सर्वबुद्धपरिग्रहं भाषित्वा तस्मिन्नेव क्षणलवमुहूर्ते तस्मिन्नेव पर्षत्सन्निपाते तस्मिन्नेव महाधर्मासने पर्यङ्कमाभुज्यानन्तनिर्देशप्रतिष्ठानं नाम समाधि समापन्नोऽभूदनिञ्जमानेन कायेन स्थितेनानिञ्जमानेन चित्तेन। समनन्तरसमापन्नस्य खलु पुनस्तस्य भगवतो मान्दारवमहामान्दारवाणां मञ्जूषकमहामञ्जूषकाणां च दिव्यानां पुष्पाणां महत्पुष्पवर्षमभिप्रावर्षत्। तं भगवन्तं सपर्षदमभ्यवाकिरत् सर्वावच्च तद्बुद्धक्षेत्रं षड्विकारं प्रकम्पितमभूच्चलितं संप्रचलितं वेधितं संप्रवेधितं क्षुभितं संप्रक्षुभितम्। तेन खलु पुनरजित समयेन तेन कालेन ये तस्यां

पर्षदि भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकादेवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्याः सन्निपतिता अभूवन् सन्निषण्णा राजानश्च मण्डलिनो बलचक्रवर्तिनश्चतुर्द्वीपकचक्रवर्तिनश्च ते सर्वे सपरिवारास्तं भगवन्तं व्यवलोकयन्ति स्माश्चर्यप्राप्ता अद्भुतप्राप्ता औद्बिल्यप्राप्ताः । अथ खलु तस्यां वेलायां तस्य भगवतश्चन्द्रसूर्यप्रदीपस्य तथागतस्य भ्रूविवरान्तरादूर्णाकोशादेका रश्मिर्निश्चरिता । सा पूर्वस्यां दिश्यष्टादशबुद्धक्षेत्रसहस्राणि प्रसृता । तानि च बुद्धक्षेत्राणि सर्वाणि तस्या रश्मेः प्रभया सुपरिस्फुटानि संदृश्यन्ते स्म । तद् यथापि नामाजित एतर्ह्येतानि बुद्धक्षेत्राणि संदृश्यन्ते ।

पुनः हे अजित ! उस समय उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यप्रदीप ने बोधिसत्त्वों के लिए शिक्षाप्रद तथा सभी बुद्धों के द्वारा ग्रहण-योग्य धर्मपर्याय-रूप महानिर्देश नामक महावैपुल्य सूत्रान्त का विवेचन करके उसी क्षण लवमुहूर्त्त में चारों परिषदों के सम्मुख धर्मासन पर बैठे-ही-बैठे पर्यंकासन की मुद्रा में अनन्तनिर्देशप्रतिष्ठान नामक समाधि धारण की । उस समय उनका शरीर एवं चित्त सर्वथा निश्चल एवं शान्त था । पुनः भगवान् के समाधि-धारण करते ही आकाश से मान्दारव, महामान्दारव, मञ्जूषक एवं महामञ्जूषक---इन चार प्रकार के दिव्य पुष्पों की महती वर्षा हुई, जिसने परिषदों-समेत भगवान् बुद्ध को ढक लिया । वह सम्पूर्ण बुद्धक्षेत्र चलित, सम्प्रचलित, वेधित, सम्प्रवेधित, क्षुभित एवं सम्प्रक्षुभित---इन छह रूपों में कम्पित हुआ । पुनः हे अजित ! उस समय, उस काल में, उस परिषद् में जो भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य, मनुष्येतर जीव, राजा, मण्डलाधीश, बलचक्रवर्त्ती एवं चतुर्द्वीप-चक्रवर्त्ती बैठे हुए थे, वे सभी अत्यधिक आश्चर्य, विस्मय और कुतूहल को प्राप्त होकर सपरिवार उन भगवान् को देखने लगे । तदनन्तर उसी समय तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यप्रदीप की भौंहों के बालों के मध्य से एक किरण निकलकर पूर्व दिशा में अट्ठारह हजार बुद्धक्षेत्रों में फैल गई । वे सभी बुद्धक्षेत्र उस किरण के प्रकाश में अत्यन्त स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगे; जिस प्रकार हे अजित ! ये बुद्धक्षेत्र दिखाई पड़ रहे हैं ।

तेन खलु पुनरजित समयेन तस्य भगवतो विंशतिबोधिसत्त्वकोट्यः समनुबुद्धा अभूवन् । ये तस्यां पर्षदि धर्मश्रवणिकास्त आश्चर्यप्राप्ता अभूवन्नद्भुतप्राप्ता औद्बिल्यप्राप्ताः कौतहलसमुत्पन्ना एतेन महारश्म्यवभासेनावभासितं लोकं दृष्ट्वा ।

पुनः हे अजित ! उस समय बीस करोड़ बोधिसत्त्व उन भगवान् का अनुगमन कर रहे थे । उस सभा में जो व्यक्ति धर्म का श्रवण कर रहे थे, उनके हृदय में भी महती रश्मि के प्रकाश से संसार को प्रकाशित देखकर अत्यधिक आश्चर्य, विस्मय एवं कुतूहल उत्पन्न हुआ ।

तेन खलु पुनरजित समयेन तस्य भगवतः शासने वरप्रभो नाम बोधिसत्त्वोऽभूत् । तस्याष्टौ शतान्यन्तेवासिनामभवन् । स च भगवांस्ततः समाधेर्व्युत्थाय तं वरप्रभं बोधिसत्त्वमारभ्य सद्धर्मपुण्डरीकं नाम धर्मपर्यायं संप्रकाशयामास । यावत् परिपूर्णान् षष्ट्यन्तरकल्पान् भाषितवानेकासने निषण्णोऽसंप्रवेधमानेन कायेनानिञ्जमानेन चित्तेन । सा च सर्वावती पर्षदेकासने निषण्णा तान् षष्ट्यन्तरकल्पांस्तस्य भगवतोऽन्तिकाद्धर्मं शृणोति स्म । न च तस्यां पर्षद्येकसत्त्वस्यापि कायक्लमथोऽभून्न च चित्तक्लमथः ।

पुनः हे अजित ! उस समय उन भगवान् के शासन में वरप्रभ नामक बोधिसत्त्व वर्तमान थे, जिनके आठ सौ शिष्य थे । भगवान् ने समाधि से उठते ही उन वरप्रभ नामक बोधिसत्त्व के सम्मुख सर्वप्रथम सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का उपदेश दिया । पूरे साठ अन्तर कल्पों तक एक ही आसन पर बैठकर शरीर को पूर्ण निष्कम्प एवं चित्त को पूर्ण स्थिर रखकर भगवान् इसकी व्याख्या करते रहे । वह सम्पूर्ण सभा भी एक आसन से बैठी हुई इन साठ अन्तर कल्पों तक उन भगवान् के मुख से धर्मोपदेश सुनती रही । उस सभा में बैठे हुए एक भी प्राणी ने न तो शारीरिक थकावट का और न मानसिक थकावट का ही अनुभव किया ।

अथ स भगवांश्चन्द्रसूर्यप्रदीपस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः षष्ट्यन्तरकल्पानामत्ययात् तं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं सूत्रान्तं महावैपुल्यं बोधिसत्त्वाववादं सर्वबुद्धपरिग्रहं निर्दिश्य तस्मिन्नेव क्षणलवमुहूर्त्ते परिनिर्वाणमारोचितवान् सदेवकस्य लोकस्य समारकस्य सब्रह्मकस्य सश्रमणब्राह्मणिकायाः प्रजायाः सदेवमानुषासुरायाः पुरस्तात् । अद्य भिक्षवोऽस्यामेव रात्र्यां मध्यमे यामे तथागतोऽनुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वास्यतीति ।

तदनन्तर, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यप्रदीप ने साठ अन्तरकल्पों के व्यतीत होने पर बोधिसत्त्वों के लिए शिक्षाप्रद तथा सभी बुद्धों के द्वारा ग्रहण किये जाने योग्य धर्मपर्याय-रूप उस सद्धर्मपुण्डरीक नामक महावैपुल्य सूत्रान्त का उपदेश करके उसी क्षण लवमुहूर्त्त में देवता, मार एवं ब्रह्मा से युक्त लोक के सम्मुख तथा श्रमण, ब्राह्मण, देव, मनुष्य और असुर से युक्त प्रजा के सम्मुख निर्वाण का उपदेश दिया । हे भिक्षुओ ! आज की रात्रि के मध्यम याम में तथागत उपधारहित (शुद्ध) निर्वाण की प्राप्ति करेंगे ।

अथ खल्वजित स भगवांश्चन्द्रसूर्यप्रदीपस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः श्रीगर्भं नाम बोधिसत्त्वं महासत्त्वमनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ व्याकृत्य तां सर्वावतीं पर्षदमामन्त्रयते स्म । अयं भिक्षवः श्रीगर्भो बोधिसत्त्वो ममानन्तरमनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंभोत्स्यते विमलनेत्रो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो भविष्यति ।

तत्पश्चात् हे अजित ! वे अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यप्रदीप श्रीगर्भनामक महासत्त्व बोधिसत्त्व को सम्यक् सम्बोधि का उपदेश देकर उस सम्पूर्ण सभा से बोले--हे भिक्षुओ ! यह बोधिसत्त्व श्रीगर्भ मेरे अनन्तर श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करके विमलनेत्र नामक अर्हत सम्यक् सम्बुद्ध तथागत होगा ।

अथ खल्वजित स भगवांश्चन्द्रसूर्यप्रदीपस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तस्यामेव रात्र्यां मध्यमे यामेऽनुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृतः । तं च सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं स वरप्रभो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो धारितवानशीतिं चान्तरकल्पांस्तस्य भगवतः परिनिर्वृतस्य शासनं स वरप्रभो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो धारितवान् संप्रकाशितवान् । तत्राजित ये तस्य भगवतोऽष्टौ पुत्रा अभूवन् मतिप्रमुखास्ते तस्यैव वरप्रभस्य बोधिसत्त्वस्यान्तेवासिनोऽभूवन् । त तेनैव परिपाचिता अभूवन्ननुत्तरायां सम्यक्संबोधौ तैश्च ततः पश्चाद्बहूनि बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राणि दृष्टानि सत्कृतानि च । सर्वे च तेऽनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धाः पश्चिमकश्च तेषां दीपंकरोऽभूत्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः ।

तदनन्तर, हे अजित ! उसी रात्रि के मध्यम याम में अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यप्रदीप को उपधारहित (शुद्ध) निर्वाण की प्राप्ति हुई तथा इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय को, उस महासत्त्व बोधिसत्त्व वरप्रभ ने धारण किया । परिनिर्वाण को प्राप्त हुए भगवान् के उपदेश को महासत्त्व बोधिसत्त्व वरप्रभ ने अस्सी अन्तर कल्पों तक धारण एवं प्रकाशित किया । हे अजित ! उस समय वहाँ भगवान् के मति आदि जो आठ पुत्र थे, वे उन्हीं बोधिसत्त्व वरप्रभ के शिष्य बन गये । वे उन्हीं के द्वारा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में परिपक्व बनाये गये एवं उसके अनन्तर उन्होंने अनेक कोटीनयुतशतसहस्र बुद्धों के दर्शन किये एवं उनका सत्कार किया । उन सबने श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की तथा उनमें जो अन्तिम था, वह दीपंकर नामक अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध हुआ ।

तेषां चाष्टानामन्तवासिशतानामेको बोधिसत्त्वोऽधिमात्रं लाभगुरुकोऽभूत् सत्कारगुरुको ज्ञातगुरुको यशस्कामस्तस्योद्दिष्टोद्दिष्टानि पदव्यञ्जनान्यन्तर्धीयन्ते न सन्तिष्ठते स्म । तस्य यशस्काम इत्येव संज्ञाभूत् । तेनापि तेन कुशलमूलेन बहूनि बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राण्यारागितान्यभूवन् । आरागयित्वा च सत्कृतानि गुरुकृतानि मानितानि पूजितान्यर्चितान्यपचायितानि । स्यात् खलु पुनस्तेऽजित काङ्क्षा वा विमतिर्वा विचिकित्सा वा । अन्यः स तेन कालेन तेन समयेन वरप्रभो नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽभूद्धर्मभाणकः । न खलु पुनरेवं द्रष्टव्यम् । तत् कस्य हेतोः । अहं स तेन कालेन तेन समयेन वरप्रभो नाम

बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽभूद्धर्मभाणकः । यश्चासौ यशस्कामो नाम बोधिसत्त्वोऽभत् कौसीद्यप्राप्तः । त्वमेवाजित स तेन कालेन तेन समयेन यशस्कामो नाम बोधिसत्त्वोऽभूत् कौसीद्यप्राप्तः ।

उन आठ सौ शिष्यों में एक ऐसा बोधिसत्त्व था, जो लाभ को श्रेष्ठ माननेवाला, सत्कार को श्रेष्ठ माननेवाला, प्रशंसा को श्रेष्ठ माननेवाला तथा यश का इच्छुक था । उसको उद्देश्य करके बतलाये गये पद तथा व्यञ्जन लुप्त हो जाते थे, एवं उसकी स्मृति में नहीं ठहरते थे, अतः उसका नाम यशस्काम पड़ गया । उसने भी उस कुशलमूल के द्वारा अनेक कोटीनयुत शतसहस्र बुद्धों को प्रसन्न किया । उसने उनको प्रसन्न करके उनका सत्कार, गुरु मानकर आदर, सम्मान, पूजा, अर्चना एवं अपचायना की । पुनः हे अजित ! तुम्हारे मन में आकांक्षा, विमति अथवा विचिकित्सा होती होगी कि उस काल में, उस समय, वरप्रभ नाम धर्मभाणक वह महासत्त्व बोधिसत्त्व मुझसे भिन्न कोई दूसरा व्यक्ति रहा होगा; किन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिए । ऐसा क्यों नहीं सोचना चाहिए ? क्योंकि, उस काल में, उस समय वरप्रभ नामक धर्मभाणक महासत्त्व बोधिसत्त्व मैं ही था । हे अजित ! उस काल में, उस समय यशस्काम नामक आलसी एवं अकर्मण्य बोधिसत्त्व तुम्हीं थे ।

इति ह्यजिताहमनेन पर्यायेणेदं भगवतः पूर्वनिमित्तं दृष्ट्वैवंरूपां रश्मिमत्सृष्टामेवं परिमीमांसे यथा भगवानपि तं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं सूत्रान्तं महावैपुल्यं बोधिसत्त्वाववादं सर्वबुद्धपरिग्रहं भाषितुकामः ।

अतः, हे अजित ! इस प्रकार इस रीति से भगवान् के इस पूर्वनिमित्त को तथा इस प्रकार से विकीर्ण की हुई रश्मि को देखकर ऐसा अनुमान करता हूँ कि भगवान् बोधिसत्त्वों के लिए शिक्षाप्रद एवं सभी बुद्धों के द्वारा ग्रहण करने योग्य सद्धर्मपुण्डरीक नामक महावैपुल्य सूत्रान्त का विवेचन करना चाहते हैं ।

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूत एतमेवार्थं भूयस्या मात्रया प्रदर्शयमानस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, राजकुमार मञ्जुश्री ने इस विषय का अधिक विस्तार के साथ वर्णन करते हुए उस समय ये गाथाएँ कहीं—

अतीतमध्वानमनुस्मरामि अचिन्तिये अपरिमितस्मि कल्पे ।
यदा जिनो आसि प्रजान उत्तमश्चन्द्रस्य सूर्यस्य प्रदीप नाम ॥५७॥

मुझे अचिन्त्य एवं अपरिमित कल्पों का बीता हुआ वह समय स्मरण है, जब मनुष्यों में श्रेष्ठ चन्द्रसूर्यप्रदीप नामक जिन वर्त्तमान थे ।

सद्धर्म देशेति प्रजान नायको विनेति सत्त्वान अनन्तकोट्यः ।
समादपेती बहुबोधिसत्त्वानचिन्तियानुत्तमि बुद्धज्ञाने ॥५८॥

प्रजाओं के नायक वे सद्धर्म की देशना करते हैं, अनन्त कोटि जीवों को विनीत करते हैं और असंख्य बोधिसत्त्वों को अचिन्त्य एवं उत्तम ज्ञान का उपदेश देते हैं।

ये चाष्ट पुत्रास्तद तस्य आसन् कुमारभूतस्य विनायकस्य ।
दृष्ट्वा च तं प्रव्रजितं महामुनिं जहित्व कामाल्लघु सर्वि प्राव्रजन् ।।५९।।

कुमारभूत उन विनायक के उस समय जो आठ पुत्र थे, वे सभी उन महामुनि को प्रव्रजित देखकर कामों का त्याग कर शीघ्र संन्यासी हो गये।

धर्मं च सो भाषति लोकनाथो अनन्तनिर्देशवरं ति सूत्रम् ।
नामेन वैपुल्यमिदं प्रवुच्यति प्रकाशयी प्राणिसहस्रकोटिनाम् ।।६०।।

संसार के स्वामी वे अनन्तनिर्देशवर नामक धर्मसूत्र का उपदेश देते हैं। वैपुल्यसूत्र नाम से अभिहित इसका वे सहस्रों कोटि जीवों के सम्मुख उपदेश करते हैं।

समनन्तरं भाषिय सो विनायकः पर्यङ्क बन्धित्व क्षणस्मि तस्मिन् ।
अनन्तनिर्देशवरं समाधिं धर्मासनस्थो मुनिश्रेष्ठ ध्यायी ।।६१।।

तदनन्तर, उस क्षण धर्मासन पर ध्यानस्थ एवं पर्यंकासन की मुद्रा में बैठे हुए मुनिश्रेष्ठ उस वैपुल्यसूत्र का उपदेश देकर अनन्तनिर्देशवर नामक समाधि धारण कर ली।

दिव्यं च मान्दारववर्षमासीदघट्टिता दुन्दुभयश्च नेदुः ।
देवाश्च यक्षाश्च स्थितान्तरीक्षे कुर्वन्ति पूजां द्विपदोत्तमस्य ।।६२।।

उस अवसर पर स्वर्ग से मान्दारव पुष्पों की वर्षा हुई और विना वजाये ही दुन्दुभियाँ वजने लगीं। आकाशस्थित देव और यक्ष मनुष्यों में श्रेष्ठ चन्द्रसूर्यप्रदीप की पूजा करने लगे।

सर्वं च क्षेत्रं प्रचचाल तत्क्षणमाश्चर्यमत्यद्भुतमासि तत्र ।
रश्मिं च एकां प्रमुमोच नायको भ्रुवान्तरात्तामतिदर्शनीयाम् ।।६३।।

उस समय वह सारा क्षेत्र हिल उठा तथा वहाँ एक अत्यधिक आश्चर्यजनक एवं अद्भुत घटना घटी। नायक ने अपनी भौंहों के मध्य से एक अत्यधिक सुन्दर किरण प्रसारित की।

पूर्वां च गत्वा दिश सा हि रश्मिरष्टादशक्षेत्रसहस्रपूर्णा ।
प्रभासयं भ्राजति सर्वलोकं दर्शेति सत्त्वान च्युतोपपादम् ।।६४।।

वह प्रकाशरश्मि पूर्व दिशा की ओर जाकर अट्ठारह हजार क्षेत्रों में फैल गई। वह सभी लोकों को प्रकाशित करती हुई सुशोभित हुई एवं उसके प्रकाश में नाश एवं जन्म को प्राप्त होते हुए प्राणी स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे।

रत्नामया क्षेत्र तथात्र केचिद्वैडूर्यनिर्भास तथैव केचित् ।
दृश्यन्ति चित्रा अतिदर्शनीया रश्मिप्रभासेन विनायकस्य ।।६५।।

विनायक के द्वारा विकीर्ण किरण के प्रकाश में कुछ क्षेत्र रत्नमय, कुछ वैदूर्य की शोभावाले, कुछ रंग-विरंगे एवं अत्यन्त सुन्दर दीख पड़ने लगे ।

देवा मनुष्यास्तथ नागयक्षा गन्धर्व तत्राप्सरकिन्नराश्च ।
ये चाभियुक्ताः सुगतस्य पूजया दृश्यन्ति पूजेन्ति च लोकधातुषु ।।६६।।

उन लोकधातुओं में वर्त्तमान देव, मनुष्य, नाग, यक्ष, गन्धर्व, अप्सरा एवं किन्नर तथा सुगत की पूजा में प्राणी व्यस्त थे, वे सभी पूजा करते हुए दिखाई पड़ने लगे ।

बुद्धाश्च दृश्यन्ति स्वयं स्वयंभुवः सुवर्णयूपा इव दर्शनीयाः ।
वैडूर्यमध्ये च सुवर्णबिम्बं पर्यायमध्ये प्रवदन्ति धर्मम् ।।६७।।

सुवर्ण-स्तम्भों के समान सुन्दर स्वयं स्वयम्भू बुद्ध दिखाई दे रहे हैं । वैदूर्य के के मध्य में वर्त्तमान स्वर्णबिम्ब के समान वे सभा के बीच में स्थित होकर धर्मोपदेश कर रहे हैं ।

तहि श्रावकाणां गणना न विद्यते ते चाप्रमाणाः सुगतस्य श्रावकाः ।
एकैकक्षत्रस्मि विनायकानां रश्मिप्रभा दर्शयते हि सर्वान् ।।६८।।

वहाँ उपस्थित सुगत के श्रावकों की गणना नहीं की जा सकती; क्योंकि सुगत के वे श्रावक असंख्य हैं । विनायकों द्वारा विकीर्ण किरणों के प्रकाश में प्रत्येक क्षेत्र में असंख्य संख्या में वर्त्तमान वे सब स्पष्ट दीख रहे हैं ।

वीर्यै रुपेताश्च अखण्डशीला अच्छिद्रशीला मणिरत्नसादृशाः ।
दृश्यन्ति पुत्रा नरनायकानां विहरन्ति ये पर्वतकन्दरेषु ।।६९।।

बल से युक्त अखण्डशील, दोष-रहित तथा मणि एवं रत्नों के समान प्रकाशमान पर्वत-कन्दराओं में विहार करनेवाले नर-नायकों के ये पुत्र रश्मि के प्रकाश में स्पष्ट दीख रहे हैं ।

सर्वस्वदानानि परित्यजन्तः क्षान्तीबला ध्यानरताश्च धीराः ।
बहुबोधिसत्त्वा यथ गङ्गवालिकाः सर्वेऽपि दृश्यन्ति तया हि रश्म्या ।।७०।।

दान में अपना सर्वस्व दे देनेवाले, सहनशीलता की शक्ति से सम्पन्न, ध्यान में लीन तथा धीर एवं गंगा की वालुका के समान असंख्य य सभी अनेक बोधिसत्त्व उस रश्मि के प्रकाश में स्पष्ट दीख रहे हैं ।

अनिञ्जमानाश्च अवेधमानाः क्षान्तौ स्थिता ध्यानरताः समाहिताः ।
दृश्यन्ति पुत्राः सुगतस्य औरसा ध्यानेन ते प्रस्थित अग्रबोधिम् ।।७१।।

स्थिर, एकाग्र, सहनशील, ध्यान में रत एवं धैर्यशाली ये सुगत के औरस पुत्र दिखाई पड़ रहे हैं। उन्होंने ध्यान के द्वारा अग्रबोधि की प्राप्ति की है।

भूतं पदं शान्तमनास्रवं च प्रजानमानाश्च प्रकाशयन्ति।
देशेन्ति धर्मं बहुलोकधातुषु सुगतानुभावादियमीदृशी क्रिया॥७२॥

ज्ञान से सम्पन्न वे शान्त एवं निष्पाप, श्रेष्ठ पद के विषय में उपदेश दे रहे हैं तथा अनेक लोकों में धर्म की देशना कर रहे हैं। ये सब कार्य सुगत के ही प्रभाव से हो रहे हैं।

दृष्ट्वा च ता पर्ष चतस्र तायिनश्चन्द्रार्कदीपस्य इमं प्रभावम्।
हर्षस्थिताः सर्वि भवित्व तत्क्षणमन्योन्य पृच्छन्ति कथं नु एतत्॥७३॥

इन शक्तिशाली चन्द्रसूर्यप्रदीप के इस प्रभाव को देखकर वे चारों परिषदें अत्यन्त हर्षित होकर उस समय एक दूसरे से पूछने लगीं—'यह सब कैसे हो रहा है?'

अचिराच्च सो नरमरुयक्षपूजितः समाधितो व्युत्थितल्लोकनायकः।
वरप्रभं पुत्र तदाध्यभाषत यो बोधिसत्त्वो विदु धर्मभाणकः॥७४॥

मनुष्यों, देवताओं और यक्षों द्वारा पूजित वे लोकनायक शीघ्र ही समाधि से उठे और अपने पुत्र वरप्रभ से, जो विद्वान् एवं धर्मभाणक बोधिसत्त्व था, बोले।

लोकस्य चक्षुश्च गतिश्च त्वं विदुर्वैश्वासिको धर्मधरश्च मह्यम्।
त्वं ह्यत्र साक्षी मम धर्मकोशे यथाहु भाषिष्यि हिताय प्राणिनाम्॥७५॥

तुम संसार के नेत्र तथा आश्रय हो। तुम विद्वान्, विश्वासयोग्य एवं मेरे धर्म को को धारण करनेवाले हो। यहाँ पर मेरे धर्मकोश के, जिसका मैं संसार के प्राणियों के हित के लिए वर्णन करूँगा, तुम्हीं साक्षी हो।

संस्थापयित्वा बहुबोधिसत्त्वान् हर्षित्व संवर्णिय संस्तवित्वा।
प्रभाषते तज्जिन अग्रधर्मान् परिपूर्ण सो अन्तरकल्पषष्टिम्॥७६॥

अनेक बोधिसत्त्वों को संस्थापित, हर्षित, संवर्णित और संस्तुत करते हुए वे जिन उन श्रेष्ठ धर्मों की पूरे साठ अन्तर कल्पों तक घोषणा करते हैं।

यं चैव सो भाषित लोकनाथो एकासनस्थः प्रवराग्रधर्मम्।
तं सर्वमाधारयि सो जिनात्मजो वरप्रभो यो अभु धर्मभाणकः॥७७॥

एक आसन से बैठकर संसार के स्वामी तथागत जिस श्रेष्ठ धर्म की घोषणा करते हैं, उस सम्पूर्ण धर्मोपदेश को सुगत के पुत्र वरप्रभ, जो स्वयं धर्मभाणक थे, धारण कर लेते हैं।

सो चो जिनो भाषिय अग्रधर्मं प्रहर्षयित्वा जनतामनेकाम्।
तस्मिंश्च दिवसे वदते स नायकः पुरतो हि लोकस्य सदेवकस्य॥७८॥

वे संसार के नायक एवं जिन अपने श्रेष्ठ धर्म की व्याख्या द्वारा असंख्य प्राणियों को प्रसन्न करके उसी दिन देवों-समेत सम्मुख उपस्थित लोक से बोले ।

प्रकाशिता मे इय धर्मनेत्री आचक्षितो धर्मस्वभाव यादृशाः ।
निर्वाणकालो मम अद्य भिक्षवो रात्रीय यामस्मि ह मध्यमस्मिन् ।।७९।।

मैंने धर्म के नियमों की व्याख्या कर दी और धर्म का जैसा स्वभाव है, वह भी बतला दिया । हे भिक्षुओ ! आज की रात्रि के मध्यम याम में मेरे निर्वाण का समय आनेवाला है ।

भवथाप्रमत्ता अधिमुक्तिसारा अभियुज्यथा मह्य इमस्मि शासने ।
सुदुर्लभा भोन्ति जिना महर्षयः कल्पान कोटीनयुतान अत्ययात् ।।८०।।

निर्वाण के विषय में प्रबल अभिनिवेश रखनेवाले तुमलोग सावधान हो जाओ एवं मेरे इस शासन में अनुराग करो। ये महर्षि-तुल्य जिन अत्यन्त दुर्लभ होते हैं तथा कोटीनयुत कल्पों के अनन्तर इस संसार में अवतार लेते हैं ।

सन्तापजाता बहुबुद्धपुत्रा दुःखेन चोग्रेन समर्पिताभवन् ।
श्रुत्वा न घोषं द्विपदोत्तमस्य निर्वाणशब्दं अतिक्षिप्रमेतत् ।।८१।।

वे अनेक बुद्धपुत्र मनुष्यों में श्रेष्ठ भगवान् के ऐसे वचन को कि मेरा निर्वाण शीघ्र होनेवाला है, सुनकर अत्यन्त सन्तप्त हुए एवं घोर दुःख का अनुभव करने लगे ।

आश्वासयित्वा च नरेन्द्रराजा ताः प्राणकोट्यो बहवो अचिन्तियाः ।
मा भायथा भिक्षव निर्वृते मयि भविष्यथ बुद्ध ममोत्तरेण ।।८२।।

राजाओं में श्रेष्ठ भगवान् ने उन असंख्य अचिन्त्य एवं अनेक कोटि प्राणियों को आश्वासन देते हुए कहा—हे भिक्षुओ ! डरो मत ! मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने पर मेरे अनन्तर दूसरे बुद्ध उत्पन्न होंगे ।

श्रीगर्भ एषो विदु बोधिसत्त्वो गतिं गतो ज्ञानि अनास्रवस्मिन् ।
स्पृशिष्यते उत्तममग्रबोधिं विमलाग्रनेत्रो ति जिनो भविष्यति ।।८३।।

इस बुद्धिमान् श्रीगर्भनामक बोधिसत्त्व ने आस्रवरहित ज्ञान में अच्छी गति प्राप्त कर ली है । ये श्रेष्ठ अग्रबोधि को प्राप्त करेंगे एवं भविष्य में विमलाग्रनेत्र नामक बुद्ध होंगे ।

तामेव रात्रिं तद यामि मध्यमे परिनिर्वृतो हेतुक्षये वा दीपः ।
शरीर वैस्तारिकु तस्य चाभूत् स्तूपान कोटीनयुता अनन्तका ।।८४।।

उसी रात्रि के उसी मध्यम याम में तेल के समाप्त होने पर दीपक के समान वे निर्वाण को प्राप्त हो गये । उनके शरीरावशेष का विस्तार करने के लिए अनेक कोटीनयुत विशाल स्तूप बनवाये गये ।

भिक्षुश्च तत्रा तथ भिक्षुणीयो ये प्रस्थिता उत्तममग्रबोधिम् ।
अनल्पकास्ते यथ गङ्गवालिका अभियुक्त तस्यो सुगतस्य शासने ।।८५।।

गंगा की बालुका के समान असंख्य भिक्षु और भिक्षुणी जो वहाँ वर्त्तमान थे, उन्होंने श्रेष्ठ अग्रबोधि की प्राप्ति कर ली थी तथा वे सुगत के शासन में आस्था रखनेवाले थे ।

यश्चापि भिक्षुस्तद धर्मभाणको वरप्रभो येन स धर्म धारितः ।
अशीति सो अन्तरकल्पपूर्णा तहि शासने भाषति अग्रधर्मान् ।।८६।।

और, जो वरप्रभ नामक धर्मभाणक भिक्षु था तथा जिसने इस धर्मोपदेश को धारण किया था, वह सुगत के शासन में वर्त्तमान रहकर पूरे अस्सी अन्तर कल्पों तक श्रेष्ठ धर्मों का उपदेश करता रहा ।

अष्टाशतं तस्य अभूषि शिष्याः परिपाचिता ये तद तेन सर्वे ।
दृष्ट्वा च तेभिर्बहुबुद्धकोट्यः सत्कारु तेषां च कृतो महर्षिणाम् ।।८७।।

उसके आठ सौ शिष्य थे, जिनको उसने बुद्धज्ञान में परिपक्व बना दिया । उन्होंने अनेक कोटि बुद्धों के दर्शन किये तथा उन महर्षियों का पूर्ण सत्कार किया ।

चर्यां चरित्वा तद आनुलोमिकीं बुद्धा अभूवन् बहुलोकधातुषु ।
परस्परं ते च अनन्तरेण अन्योन्य व्याकर्षु तदाग्रबोधये ।।८८।।

वे आनुलोमिकी चर्या का आचरण करके अनेक लोकों में बुद्धों के रूप में प्रतिष्ठित हुए तथा समयानुसार वे परस्पर एक दूसरे को अग्रबोधि के विषय में उपदेश देते रहे ।

तेषां च बुद्धान परम्परेण दीपङ्करः पश्चिमको अभूषि ।
देवातिदेवो ऋषि सङ्घपूजितो विनीतवान् प्राणिसहस्रकोट्यः ।।८९।।

उन बुद्धों की परम्परा में अन्तिम दीपंकर नामक बुद्ध थे । वे देवों में श्रेष्ठ एवं ऋषियों का समुदाय भी उनकी पूजा करता था । उन्होंने सहस्र कोटि प्राणियों को बुद्धज्ञान में विनीत किया ।

यश्चासि तस्यो सुगतात्मजस्य वरप्रभस्यो तद धर्म भाषतः ।
शिष्यः कुसीदश्च स लोलुपात्मा लाभं च ज्ञातं च गवेषमाणः ।।९०।।

धर्म का विवेचन करनेवाले सुगत-पुत्र वरप्रभ का एक शिष्य था, जो ईर्ष्यालु एवं लोलुप था तथा सदा लाभ एवं यश का इच्छुक रहता था ।

यशोऽर्थिकश्चाप्यतिमात्र आसीत् कुलाकुलं च प्रतिपन्नमासीत् ।
उद्देश स्वाध्यायु तथास्य सर्वो न तिष्ठते भाषितु तस्मि काले ।।९१।।

वह यश के लिए अत्यधिक लालायित रहता था तथा उसकी बुद्धि भी अत्यन्त चंचल थी । सुने हुए या पढ़े हुए विषय उसके मस्तिष्क में ठहरते ही नहीं थे । इसके फलस्वरूप वह आवश्यकता पड़ने पर उन विषयों का उपदेश दे सकने में सर्वथा असमर्थ हो जाता था ।

नामं च तस्यो इममेवमासीद् यशकामनाम्ना दिशतासु विश्रुतः ।
स चापि तेनाकुशलेन कर्मणा कल्माषभूतेनभिसंस्कृतेन ।।९२।।

उसका नाम भी ऐसा ही हुआ । वह यशस्काम नाम से सर्वत्र विख्यात हो गया । उसने भी अकुशल कर्म से मिश्रित अपने संगृहीत शुभकर्मों के द्वारा—

आरागयी बुद्धसहस्रकोट्यः पूजां च तेषां विपुलामकार्षीत् ।
चीर्णा च चर्या वर आनुलोमिकी दृष्टश्च बुद्धो अयु शाक्यसिंहः ।।९३।।

सहस्रों कोटि बुद्धों को प्रसन्न किया एवं उनकी विशेष पूजा की । श्रेष्ठ आनुलोमिकी चर्या का आचरण करके उसने शाक्यसिंह बुद्ध के दर्शन प्राप्त किये ।

अयं च सो पश्चिमको भविष्यति अनुत्तरां लप्स्यति चाग्रबोधिम् ।
मैत्रेयगोत्रो भगवान् भविष्यति विनेष्यति प्राणसहस्रकोट्यः ।।९४।।

यही मैत्रेय गोत्र में उत्पन्न अन्तिम दीपंकर नामक बुद्ध होकर श्रेष्ठ अग्रबोधि को प्राप्त करेगा तथा सहस्रों कोटि प्राणियों को बुद्ध ज्ञान में विनीत करेगा ।

कौसीद्यप्राप्तस्तद यो बभूव परिनिर्वृतस्य सुगतस्य शासने ।
त्वमेव सो तादृशको बभूव अहं च आसीत्तद धर्मभाणकः ।।९५।।

उस समय निर्वाणप्राप्त बुद्ध के शासन के विषय में आलस्यपूर्ण आचरण करनेवाले शिष्य तुम्हीं थे और धर्मभाणक वरप्रभ मैं था ।

इमेन हं कारणहेतुनाद्य दृष्ट्वा निमित्तं इदमेवरूपम् ।
ज्ञानस्य तस्य प्रथितं निमित्तं प्रथमं मया तत्र वदामि दृष्टम् ।।९६।।

इसी कारण, इस प्रकार के इस निमित्त को आज मैंने देखा है । मैं उस ज्ञानोपदेश के प्रसिद्ध निमित्त के विषय में, जिसे मैंने पहले भी देखा था, बतलाने जा रहा हूँ ।

ध्रुवं जिनेन्द्रोऽपि समन्तचक्षुः शाक्याधिराजः परमार्थदर्शी ।
तमेव यं इच्छति भाषणाय पर्यायमग्रं तद घो मया श्रुतः ।।९७।।

सर्वद्रष्टा एवं परमार्थदर्शी शाक्याधिपति जिनेन्द्र निश्चित रूप से जिस श्रेष्ठ धर्मपर्यायि के विषय में कहना चाहते हैं, उसे मैंने पहले से ही सुन रखा है ।

तदेव परिपूर्णनिमित्तमद्य उपायकौशल्य विनायकानाम् ।
संस्थापनं कुर्वति शाक्यसिंहो भाषिष्यते धर्मस्वभावमुद्राम् ।।९८।।

विनायकों के उस परिपूर्ण निमित्त-रूप उपायकौशल्य को आज शाक्यसिंह, प्रस्तुत करके धर्म के वास्तविक स्वभाव एवं स्वरूप का विवेचन करेंगे ।

प्रयता सुचित्ता भवथा कृताञ्जली भाषिष्यते लोकहितानुकम्पी ।
वर्षिष्यते धर्ममनन्तवर्षं तर्पिष्यते ये स्थित बोधिहेतोः ।।९९।।

तत्पर एवं एकाग्रचित्त होकर हाथ जोड़कर खड़े हो जाओ । लोक का हित तथा उस पर दया करनेवाले सुगत उपदेश देने जा रहे हैं । वे धर्म की अनन्त वर्षा करके बोधिप्राप्ति के हेतु उपस्थित प्राणियों को तृप्त करेंगे ।

येषां च सन्देहगतीह काचिद् ये संशया या विचिकित्स काचित् ।
व्यपनेष्यते ता विदुरात्मजानां ये बोधिसत्त्वा इह बोधिप्रस्थिताः ।।१००।।

इनके पुत्रों के मन में किसी भी विषय को लेकर जो भी सन्देह होगा, संशय होगा अथवा विचिकित्सा होगी, उसे ये बोधिप्राप्त विद्वान् बोधिसत्त्व पूर्णरूप से दूर करेंगे ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये निदानपरिवर्तो नाम
प्रथमः ।।१।।

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का निदानपरिवर्त नामक
पहला परिवर्त समाप्त हुआ ।

उपायकौशल्यपरिवर्तः

अथ खलु भगवान् स्मृतिमान् संप्रजानंस्ततः समाधेर्व्युत्थितो व्युत्थायायुष्मन्तं शारिपुत्रमामन्त्रयते स्म । गम्भीरं शारिपुत्र दुर्दृशं दुरनुबोधं बुद्धज्ञानं तथागतैरर्हद्भिः सम्यक्संबुद्धैः प्रतिबुद्धं दुर्विज्ञेयं सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धैः । तत् कस्य हेतोः । बहुबुद्धकोटीनयुतशतसहस्रपर्युपासिताविनो हि शारिपुत्र तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा बहुबुद्धकोटीनयुतशतसहस्रचीर्णचरिताविनोऽनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ दूरानुगताः कृतवीर्या आश्चर्याद्भुतधर्मसमन्वागता दुर्विज्ञेयधर्मसमन्वागता दुर्विज्ञेयधर्मानुज्ञाताविनः ।

तत्पश्चात्, स्मृति एवं ज्ञान से सम्पन्न भगवान् उस समाधि से उठे और उठकर आयुष्मान् शारिपुत्र से बोले—हे शारिपुत्र ! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध तथागतों ने जिस बुद्ध-ज्ञान् को प्राप्त किया है, वह गम्भीर, दुर्दर्श एवं दुर्बोध है तथा सभी श्रावकों एवं प्रत्येक-बुद्धों के लिए सर्वथा दुर्विज्ञेय है । इसका क्या कारण है? क्योंकि, हे शारिपुत्र ! इन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतों ने अनेक कोटीनयुत शतसहस्र बुद्धों की पर्युपासना की है, अनेक कोटीनयुत शतसहस्र बुद्धों द्वारा विहित चर्या का आचरण किया है, श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय में पूर्ण गति प्राप्त की है एवं अपनी निष्ठा दिखलाई है तथा वे आश्चर्यमय एवं अद्भुत धर्म से सम्पन्न, दुर्विज्ञेय धर्म का आचरण करनेवाले एवं उसके ज्ञाता हैं ।

दुर्विज्ञेयं शारिपुत्र संधाभाष्यं तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानाम् । तत् कस्य हेतोः । स्वप्रत्ययान् धर्मान् प्रकाशयन्ति विविधोपायकौशल्यज्ञानदर्शनहेतुकारणनिर्देशनारम्बणनिरुक्तिप्रज्ञप्तिभिस्तैस्तैरुपायकौशल्यैस्तस्मिंस्तस्मिल्लग्नान् सत्त्वान् प्रमोचयितुम् । महोपायकौशल्यज्ञानदर्शनपरमपारमिताप्राप्ताः शारिपुत्र तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः । असङ्गाप्रतिहतज्ञानदर्शनबलवैशारद्यावेणिकेन्द्रियबलबोध्यङ्गध्यानविमोक्षसमाधिसमापत्त्यद्भुतधर्मसमन्वागता विविधधर्मसंप्रकाशकाः । महाश्चर्याद्भुतप्राप्ताः शारिपुत्र तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः । अलं शारिपुत्र एतावदेव भाषितुं भवतु परमाश्चर्यप्राप्ताः शारिपुत्र तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः । तथागत एव शारिपुत्र तथागतस्य धर्मान् देशयेद् यान् धर्मांस्तथागतो जानाति । सर्वधर्मानपि शारिपुत्र तथागत एव देशयति । सर्वधर्मानपि तथागत एव जानाति । ये च ते धर्मा यथा च ते धर्मा यादृशाश्च ते धर्मा यल्लक्षणाश्च ते धर्मा यत्स्वभावाश्च ते धर्माः । ये च

यथा च यादृशाश्च यल्लक्षणाश्च यत्स्वभावाश्च ते धर्मा इति। तेषु धर्मेषु तथागत एव प्रत्यक्षोऽपरोक्षः ।

हे शारिपुत्र ! इन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतों का धर्मविषयक उपदेश सर्वथा दुर्बोध होता है । इसका क्या कारण है ? क्योंकि, वे इन स्वप्रत्ययधर्मों का प्रकाशन विविध उपायकौशल्य, ज्ञान, दर्शन, हेतुकारणनिर्देशन, आरम्बण, निरुक्ति, एवं प्रज्ञप्ति के रूप में उन-उन विभिन्न उपायकौशल्यों के द्वारा विभिन्न विषयों में लिप्त जीवों को मुक्त करने के लिए करते हैं । हे शारिपुत्र ! इन सम्यक्सम्बुद्ध तथागतों ने ये महान् उपायकौशल्यों, बुद्धज्ञान, बुद्धदर्शन एवं परम पारमिताएँ प्राप्त कर ली हैं । इन्हें असंग, अप्रतिहतज्ञान एवं दर्शन, शक्ति, कुशलता, आवेणिक धर्म, इन्द्रियबल, बोध्यंग, ध्यान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति एवं अन्य अद्भुत धर्म भी प्राप्त हैं । ये ही इन विविध धर्मों का प्रकाशन करनेवाले हैं । हे शारिपुत्र ! इन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतों को आश्चर्ययुक्त एवं अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त हैं । हे शारिपुत्र ! इतना ही कहना पर्याप्त है कि इन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतों को अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त हैं । हे शारिपुत्र ! तथागत के उन्हीं धर्मों की देशना करे, जिन धर्मों को तथागत जानता है । हे शारिपुत्र ! तथागत ही सभी धर्मों की देशना करता है एवं तथागत ही सभी धर्मों के विषय में जानता है कि वे धर्म कौन हैं, वे धर्म कैसे हैं, वे धर्म किनके समान हैं, उन धर्मों के लक्षण क्या हैं तथा उन धर्मों का स्वभाव क्या है ? अर्थात्, वे धर्म कौन, कैसे, किसकी तरह, किन लक्षणों से युक्त एवं किस स्वभाव के हैं । तथागत ही उन धर्मों के प्रत्यक्ष एवं अपरोक्ष ज्ञाता है ।

अथ खलु भगवानेतमेवार्थं भूयस्या मात्रया सन्दर्शयमानस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, भगवान् ने इसी बात का सविस्तर वर्णन करते हुए उस अवसर पर ये गाथाएँ कहीं—

अप्रमेया महावीरा लोके समरुमानुषे ।
न शक्यं सर्वशो ज्ञातुं सर्वसत्त्वैर्विनायकाः ।।१।।

देवों और मनुष्योंसे युक्त इस लोक में अप्रमेय एवं महावीर विनायकों के विषय में पूर्ण रूप से जानना सब प्राणियों के लिए सम्भव नहीं है।

बला विमोक्षा ये तेषां वैशारद्याश्च यादृशाः ।
यादृशा बुद्धधर्माश्च न शक्यं ज्ञातु केनचित् ।।२।।

उनके बल एवं निर्वाण की जो स्थितियाँ हैं, जैसी कुशलता है तथा जैसे बुद्ध धर्म हैं, उन्हें कोई नहीं जान सकता ।

पूर्वे निषेविता चर्या बुद्धकोटीन अन्तिके।
गम्भीरा चैव सूक्ष्मा च दुर्विज्ञेया सुदुर्दृशा ।।३।।

पूर्वकाल में करोड़ों बुद्धों के निकट रहकर जिस चर्या का आचरण किया है, वह गम्भीर, सूक्ष्म, दुर्बोध एवं दुर्दर्श है।

तस्यां चीर्णाय चर्यायां कल्पकोट्यो अचिन्तिया ।
फलं मे बोधिमण्डस्मिन् दृष्टं यादृशकं हि तत् ॥४॥

अचिन्त्य कोटि कल्पों में इस चर्या का आचरण करके मैंने आज इस बोधि-मण्डप में उसके फल के वास्तविक स्वरूप को देखा है ।

अहं च तत् प्रजानामि ये चान्ये लोकनायकाः ।
यथा यद् यादृशं चापि लक्षणं चास्य यादृशम् ॥५॥

मैं तथा ये दूसरे लोकनायक इस धर्म के विषय में जानते हैं कि यह कैसा, किसकी तरह और किन लक्षणोंवाला है ।

न तद् दर्शयितुं शक्यं व्याहारोऽस्य न विद्यते।
नाप्यसौ तादृशः कश्चित् सत्त्वो लोकेऽस्मि विद्यते ॥६॥

इसे दिखाया नहीं जा सकता, इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती और न इसके समान इस संसार में अन्य कोई प्राणी ही है ।

यस्य तं देशयेद्धर्मं देशितं चापि जानियात् ।
अन्यत्र बोधिसत्त्वेभ्यो अधिमुक्तीय ये स्थिताः ॥७॥

अधिमुक्ति में स्थित बोधिसत्त्वों के अतिरिक्त कोई अन्य ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसको इस धर्म का उपदेश दिया जा सके और जो इसकी देशना को समझ सके ।

ये चापि ते लोकविदुष्य श्रावकाः
कृताधिकाराः सुगतानुवर्णिताः ।
क्षीणास्रवा अन्तिमदेहधारिणो
न तेष विषयोऽस्ति जिनान ज्ञाने ॥८॥

जिनोक्त ज्ञान में तो उनकी भी गति नहीं है, जो संसार के जाननेवाले तथागत के श्रावक हैं, जिन्हें बुद्धज्ञान में अधिकार प्राप्त है, जिनकी प्रशंसा स्वयं सुगत ने की है, जो आस्रवों से रहित हैं तथा अन्तिम देहधारण की अवस्था में हैं ।

स चैव सर्वा इय लोकधातु
पूर्णा भवेच्छारिसुतोपमानाम् ।
एकीभवित्वान विचिन्तयेयुः
सुगतस्य ज्ञानं न हि शक्य जानितुम् ॥९॥

यदि यह सम्पूर्ण लोक शारिपुत्र के समान व्यक्तियों से ही परिपूर्ण हो जाय और

वह सब मिलकर इसपर विचार करें, तो उनके लिए भी सुगत के इस ज्ञान को समझना सम्भव नहीं है ।

सचे ह त्वंसादृशकेहि पण्डितैः
पूर्णा भवेयुर्दश पिद्दिशायो ।
ये चापि मह्यं इमि श्रावकान्ये
तेषां पि पूर्णा भवि एवमेव ।।१०।।

यदि दसों दिशाएँ तुम्हारे जैसे विद्वानों से एवं मेरे अन्य श्रावकों से भी इसी प्रकार परिपूर्ण हो जाय—

एकीभवित्वान च तेऽद्य सर्वे
विचिन्तयेयुः सुगतस्य ज्ञानम् ।
न शक्त सर्वे सहिता पि ज्ञातुं
यथाप्रमेयं मम बुद्धज्ञानम् ।।११।।

और वे सभी मिलकर भी यदि आज सुगत के ज्ञान पर विचार करें, तो सम्मिलित रूप में भी मेरे इस अप्रमेय बुद्धज्ञान को नहीं समझ सकते ।

प्रत्येकबुद्धान अनास्रवाणां
तीक्ष्णेन्द्रियाणान्तिमदेहधारिणाम् ।
दिशो दशः सर्व भवेयु पूर्णा
यथा नडानां वनवेणुनां वा ।।१२।।

यदि ये दसों दिशाएँ जंगली वेणु एवं नडों के समान असंख्य अनास्रव, तीक्ष्णेन्द्रिय एवं अन्तिम देहधारी प्रत्येक बुद्धों से परिपूर्ण हो जायँ—

एकीभवित्वान विचिन्तयेयु-
र्ममाग्रधर्माण प्रदेशमात्रम्
कल्पान कोटीनयुताननन्ता-
न्न तस्य भूतं परिजानि अर्थम् ।।१३।।

और, ये सभी मिलकर मेरे इस श्रेष्ठधर्म के केवल एक भाग का चिन्तन करें, तो वे भी अनन्त कोटीनयुत कल्पों के अनन्तर इसके वास्तविक अर्थ को नहीं समझ सकते ।

नवयानसंप्रस्थित बोधिसत्त्वाः
कृताधिकारा बहुबुद्धकोटिषु ।
सुविनिश्चितार्था बहुधर्मभाणका-
स्तेषां पि पूर्णा दशिमा दिशो भवेत् ।।१४।।

१४. नवयान में सम्यक्‌रूपेण स्थित अनेक कोटि बुद्धों द्वारा उपदिष्ट ज्ञान के अधिकारी, अर्थों की निश्चित व्याख्या करनेवाले तथा धर्मभाणक इन अनेक बोधिसत्त्वों से यदि ये दसों दिखाएँ परिपूर्ण हो जायँ---

नडान वेणून व नित्यकाल-
मच्छिद्रपूर्णो भवि सर्वलोकः ।
एकीभवित्वान विचिन्तयेयु-
र्यो धर्म साक्षात् सुगतेन दृष्टः ।।१५।।

और, सारा संसार बेंतों एवं बाँसों के समान इन असंख्य बोधिसत्त्वों से पूर्णरूपेण भर जाय और ये सभी मिलकर सुगत द्वारा अनुभूत धर्म का चिन्तन करें।

अनुचिन्तयित्वा बहुकल्पकोट्यो
गङ्गा यथा वालिक अप्रमेयाः ।
अनन्यचित्ताः सुखमाय प्रज्ञया
तेषां पि चास्मिन् विषयो न विद्यते ।।१६।।

और, इसी रूप में गंगा की अप्रमेय बालुका के समान अनेक कोटि कल्पों तक अनन्य भाव से इसका चिन्तन करते रहें, तो भी इस ज्ञान में उनकी गति नहीं हो सकती ।

अविवर्तिका य भवि बोधिसत्त्वा
अनल्पका यथरिव गङ्गवालिकाः ।
अनन्यचित्ताश्च विचिन्तयेयु-
स्तेषां पि चास्मिन् विषयो न विद्यते ।।१७।।

गंगा की बालुका की तरह असंख्य एवं अविवर्त्तिक ये बोधिसत्त्व भी यदि इसके विषय में अनन्यभाव से विचार करते रहें, तो उनकी भी इसमें गति नहीं हो सकती ।

गम्भीरधर्मा सुखुमा पि बुद्धा
अतर्किकाः सर्वि अनास्रवाश्च ।
अहं च जानामिह यादृशा हि ते
ते वा जिना लोकि दशद्दिशासु ।।१८।।

सभी बुद्ध गम्भीरधर्मा सुखसम्पन्न एवं आस्रवरहित हैं। इनके वास्तविक रूप को या तो मैं जानता हूँ या संसार की दसों दिशाओं में वर्त्तमान जिन जानते हैं ।

यं शारिपुत्रो सुगतः प्रभाषते
अधिमुक्तिसम्पन्न भवाहि तत्र ।

अनन्यथावादि जिनो महर्षी
चिरेण पी भाषति उत्तमार्थम् ॥१९॥

हे शारिपुत्र ! सुगत जो कुछ कहते हैं, उसमें श्रद्धा और विश्वास रखो। महर्षि जिन कभी असत्य नहीं बोलते । ये अनन्त काल से इसी प्रकार इस श्रेष्ठ धर्म का उपदेश देते आ रहे हैं ।

आमन्त्रयामी इमि सर्वश्रावकान्
प्रत्येकबोधाय च येऽभिप्रस्थिताः ।
संस्थापिता ये मय निर्वृतीय
संमोक्षिता दुःखपरम्परातः ॥२०॥

मैं इन सभी श्रावकों को सम्बोधित करता हूँ, जो प्रत्येक बुद्ध के ज्ञान की प्राप्ति के लिए यहाँ प्रस्तुत हैं तथा जिन्हें मैंने निर्वाण में विनीत करके अनेक दुःखों की परम्परा से मुक्त करा दिया है ।

उपायकौशल्य ममेतदग्रं
भाषामि धर्मं बहु येन लोके ।
तहिं तहिं लग्न प्रमोचयामि
त्रीणी च यानान्युपदर्शयामि ॥२१॥

यही मेरा श्रेष्ठ उपायकौशल्य है, जिसका आश्रय लेकर मैं संसार में इस धर्म का विस्तृत विवेचन करता हूँ एवं इसी के द्वारा तीन यानों का उपदेश देकर सर्वत्र बन्धन में पड़े प्राणियों को मुक्त करता हूँ ।

अथ खलु ये तत्र पर्षत्सन्निपाते महाश्रावका आज्ञातकौण्डिन्यप्रमुखा अर्हन्तः क्षीणास्रवा द्वादशवशीभूतशतानि ये चान्ये श्रावकयानिका भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिका ये च प्रत्येकबुद्धयानसंप्रस्थितास्तेषां सर्वेषामेतदभवत् । को नु हेतुः किं कारणं यद् भगवानधिमात्रमुपायकौशल्यं तथागतानां संवर्णयति । गम्भीरश्चायं मया धर्मोऽभिसंबुद्ध इति संवर्णयति । दुर्विज्ञेयश्च सर्वश्रावकप्रत्यकबुद्धैरिति संवर्णयति । यथा तावद् भगवता एकैव विमुक्तिराख्याता वयमपि बुद्धधर्माणां लाभिनो निर्वाणप्राप्ताः। अस्य च वयं भगवतो भाषितस्यार्थं न जानीमः ।

तत्पश्चात्, वहाँ उस परिषद् में आज्ञातकौण्डिन्य के नेतृत्व में जो क्षीणास्रव अर्हत् तथा अन्य बारह हजार इन्द्रियजित् श्रावक-यानिक, भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक एवं उपासिका एवं प्रत्येकबुद्ध-यान को प्राप्त जो अन्य व्यक्ति वहाँ वर्त्तमान थे, उन सबके मन में ऐसा विचार आया कि क्या हेतु है, क्या कारण है कि भगवान् तथागतों के उपायकौशल्य

की इतनी प्रशंसा कर रहे हैं। इस गम्भीर धर्म को मैंने समझा है, ऐसा सोचकर ही वे उसका वर्णन कर रहे हैं। यह सभी श्रावकों एवं प्रत्येकबुद्धों के लिए दुर्विज्ञेय है, अतः वे इसका वर्णन करते हैं। यतः, भगवान् ने एक ही मुक्ति की चर्चा की है, अतः हमलोग भी बुद्धधर्म के सिद्धान्तों को समझकर निर्वाण को प्राप्त हो गये। भगवान् के इस वचन के अर्थ को हमलोग नहीं समझ सके।

अथ खल्वायुष्मान् शारिपुत्रस्तासां चतसृणां पर्षदां विचिकित्साकथंकथां विदित्वा चेतसैव चेतःपरिवितर्कमाज्ञायात्मना च धर्मसंशयप्राप्तस्तस्यां वेलायां भगवन्तमेतदवोचत्। को भगवन् हेतुः कः प्रत्ययो यद् भगवानधिमात्रं पुनः पुनस्तथागतानामुपायकौशल्यज्ञानदर्शनधर्मदेशनां संवर्णयति। गम्भीरश्च मे धर्मोऽभिसंबुद्ध इति। दुर्विज्ञेयं च संधाभाष्यमिति पुनः पुनः संवर्णयति। न च मे भगवतोऽन्तिकादेवंरूपो धर्मपर्यायः श्रुतपूर्वः। इमाश्च भगवंश्चतस्रः पर्षदो विचिकित्साकथंकथाप्राप्ताः। तत् साधु भगवान्निर्दिशतु यत् सन्धाय तथागतो गम्भीरस्य तथागतधर्मस्य पुनः पुनः संवर्णनां करोति।

तदनन्तर, आयुष्मान् शारिपुत्र, जिन्हें धर्म के विषय में स्वयं संशय हो रहा था, उन चारों परिषदों में वर्त्तमान प्राणियों के मन की शंकाओं एवं तर्क-वितर्कों को जानकर तथा उनके चित्त में उठनेवाले वितर्कों का अपने चित्त में उठनेवाले तर्क-वितर्कों से अनुमान लगाकर उस समय भगवान् से इस प्रकार बोले—हे भगवन्! क्या हेतु है, क्या कारण है कि भगवान् बारंवार तथागतों के उपायकौशल्य, ज्ञान, दर्शन एवं धर्मदेशना का वर्णन करते हैं तथा कहते हैं कि इस गम्भीर धर्म को मैंने ही समझा है। यह बुद्धज्ञान दुर्विज्ञेय है, अतएव इसका पुनः-पुनः वर्णन करते हैं। मैंने भी भगवान् के मुख से इस प्रकार के धर्मोपदेश को पहले कभी नहीं सुना है। हे भगवन्! चारों परिषदें विचिकित्सा एवं तर्क-वितर्कों में पड़ गई हैं। अतएव, हे भगवन्! इसे अच्छी तरह स्पष्ट करें कि कौन-सी वस्तु को दृष्टि में रखकर आप तथागत के गम्भीर धर्म का पुनः-पुनः उपदेश करते हैं।

अथ खल्वायुष्मान् शारिपुत्रस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत .

तत्पश्चात्, उस समय आयुष्मान् शारिपुत्र ने ये गाथाएँ कहीं—

चिरस्याद्य नरादित्य ईदृशीं कुरुते कथाम्।
बला विमोक्षा ध्यानाश्च अप्रमेया मि स्पर्शिताः ॥२२॥

मनुष्यों में श्रष्ठ सुगत चिरकाल के अनन्तर आज ऐसी बात कह रहे हैं कि मैंने अप्रमेय बल-निर्वाण की स्थिति एवं ध्यान की प्राप्ति कर ली है।

बोधिमण्डं च कीर्तेसि पृच्छकस्ते न विद्यते।
संधाभाष्यं च कीर्तेमि न च त्वां कश्चि पृच्छति ॥२३॥

तुम बोधिमण्डप में बैठकर उपदेश कर रहे हो, किन्तु तुमसे उसके विषय में कोई पूछनेवाला नहीं है । तुम बुद्धज्ञान का उपदेश दे रहे हो, किन्तु उसके विषय में कोई तुमसे पूछता नहीं ।

अपृच्छितो व्याहरसि चर्यां वर्णेसि चात्मन ।
ज्ञानाधिगम कीर्तेसि गम्भीरं च प्रभाषसे ।।२४।।

विना पूछे ही तुम उपदेश दे रहे हो, अपनी चर्या का वर्णन कर रहे हो, ज्ञान-प्राप्ति के मार्ग का उपदेश कर रहे हो एवं गम्भीर धर्म का विवेचन कर रहे हो।

अद्येमे संशयप्राप्ता वशीभूता अनास्रवाः ।
निर्वाणं प्रस्थिता ये च किमेतद् भाषते जिनः ।।२५।।

निर्वाण को प्राप्त, आत्मसंयमी एवं आस्रवों से रहित इन व्यक्तियों के मन में आज यह शंका उत्पन्न हो रही है कि सुगत विना पूछे ही क्यों उपदश दे रहे हैं ।

प्रत्येकबोधि प्रार्थेन्ता भिक्षुण्यो भिक्षवस्तथा ।
देवा नागाश्च यक्षाश्च गन्धर्वाश्च महोरगाः ।।२६।।

प्रत्येक बोधि के विषय में उपदेश देने की प्रार्थना करते हुए भिक्षु, भिक्षुणी, देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व और महोरग,

समालपन्तो अन्योन्यं प्रेक्षन्ते द्विपदोत्तमम् ।
कथंकथी विचिन्तेन्ता व्याकुरुष्व महामुने ।।२७।।

परस्पर बातें करते हुए मनुष्यों में श्रेष्ठ आपकी ओर देख रहे हैं । वे तर्क-वितर्कों में पड़कर चिन्तित हो रहे हैं । हे महामुने ! इन्हें उपदेश दें ।

यावन्तः श्रावकाः सन्ति सुगतस्येह सर्वशः ।
अहमत्र पारमीप्राप्तो निर्दिष्टः परमर्षिणा ।।२८।।

यहाँ सुगत के जितने भी श्रावक वर्त्तमान हैं, उनमें से महर्षि ने मुझे ही श्रेष्ठ ज्ञान से युक्त बतलाया है।

ममापि संशयो ह्यत्र स्वके स्थाने नरोत्तम ।
किं निष्ठा मम निर्वाणे अथ चर्या मि दर्शिता ।।२९।।

हे नरश्रेष्ठ ! मुझे भी इस विषय में सन्देह हो रहा है कि जो चर्या मुझे वतलाई गई है, उसके द्वारा क्या मेरी निर्वाण में निष्ठा हो सकेगी ?

प्रमुञ्च घोषं वरदुन्दुभिस्वरा उदाहरस्वा यथ एष धर्मः ।
इमे स्थिता पुत्र जिनस्य औरसा व्यवलोकयन्तश्च कृताञ्जली जिनम् ।।३०।।

श्रेष्ठ दुन्दुभि के स्वर में धर्म के वास्तविक स्वरूप को उपस्थित करो। सुगत के ये औरस पुत्र हाथ जोड़कर (तुम) सुगत की ओर दृष्टि लगाये खड़े हैं।

देवाश्च नागाश्च सयक्षराक्षसाः कोटीसहस्रा यथ गङ्गवालिकाः।
ये चापि प्रार्थेन्ति समग्रबोधिं सहस्रशीतिः परिपूर्ण ये स्थिताः ।।३१।।

गंगा की बालुका के समान सहस्रों कोटि देव, नाग, यक्ष एवं राक्षस तथा समग्र बोधि के प्रार्थी अन्य पूरे अस्सी हजार व्यक्ति यहाँ खड़े हैं।

राजान ये महिपति चक्रवर्तिनो ये आगताः क्षेत्रसहस्रकोटिभिः।
कृताञ्जली सर्वि सगौरवाः स्थिताः कथं नु चर्यां परिपूरयेम ।।३२।।

सहस्रों कोटि बुद्धक्षेत्रों से आये हुए ये सभी राजा, महीपति एवं चक्रवर्त्ती आपके प्रति आदर की भावना से हाथ जोड़कर खड़े हैं एवं अपनी चर्या को पूर्ण करने के उपाय की चिन्ता कर रहे हैं।

एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं शारिपुत्रमेतदवोचत् । अलं शारिपुत्र । किमनेनार्थेन भाषितेन । तत् कस्य हेतोः । उत्त्रसिष्यति शारिपुत्रायं सदेवको लोकोऽस्मिन्नर्थे व्याक्रियमाणे ।

आयुष्मान् शारिपुत्रके ऐसा कहने पर भगवान् उनसे इस प्रकार बोले—हे शारिपुत्र ! यह व्यर्थ है। इस विषय का विवेचन करना निरर्थक है। ऐसा मैं क्यों कहता हूँ ? क्योंकि, हे शारिपुत्र ! इस विषय की व्याख्या करनेपर देवों-समेत यह सम्पूर्ण लोक त्रस्त हो जायगा।

द्वैतीयकमप्यायुष्मान् शारिपुत्रो भगवन्तमध्येषते स्म । भाषतां भगवान् भाषतां सुगत एतमेवार्थम् । तत् कस्य हेतोः । सन्ति भगवंस्तस्यां पर्षदि बहूनि प्राणिशतानि बहूनि प्राणिसहस्राणि बहूनि प्राणिशतसहस्राणि बहूनि प्राणिकोटीनयुतशतसहस्राणि पूर्वबुद्धदर्शावीनि प्रज्ञावन्ति यानि भगवतो भाषितं श्रद्धास्यन्ति प्रतीयिष्यन्ति उद्ग्रहीष्यन्ति ।

आयुष्मान् शारिपुत्र ने दूसरी बार भी भगवान् से यही प्रार्थना की—हे भगवन् ! कहिए। हे सुगत ! इस बातका विवेचन कीजिए। मैं ऐसा क्यों कहता हूँ ? क्योंकि, हे भगवन् ! इस सभा में अनेक शत प्राणी, अनेक सहस्र प्राणी, अनेक शतसहस्र प्राणी एवं अनेक कोटीनयुत शतसहस्र प्राणी वर्त्तमान हैं, जो पूर्वकाल में उत्पन्न बुद्धों को देखनेवाले तथा स्वयं बुद्धिमान् हैं, वे भगवान् के वचनों का श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक ग्रहण करेंगे।

अथ खल्वायुष्मान् शारिपुत्रो भगवन्तमनया गाथयाध्यभाषत ।

तदनन्तर, आयुष्मान् शारिपुत्र भगवान् से यह गाथा बोले—

विस्पष्टु भाषस्व जिनान उत्तमा
सन्तीह पर्षाय सहस्र प्राणिनाम् ।
श्राद्धाः प्रसन्नाः सुगते सगौरवा
ज्ञास्यन्ति ये धर्ममुदाहृतं ते ।।३३।।

हे जिनश्रेष्ठ ! स्पष्ट रूप से कहिए । इस सभा में ऐसे हजारों प्राणी हैं, जो श्रद्धालु, प्रसन्नात्मा एवं सुगत के प्रति आदर की भावना रखनेवाले हैं । वे आपके द्वारा व्याख्या किये गये धर्म को अच्छी तरह समझ सकेंगे ।

अथ खलु भगवान् द्वैतीयकमप्यायुष्मन्तं शारिपुत्रमेतदवोचत् । अलं शारिपुत्रानेनार्थेन प्रकाशितन । उत्त्रसिष्यति शारिपुत्रायं सदेवको लोकोऽस्मिन्नर्थे व्याक्रियमाणे । अभिमानप्राप्ताश्च भिक्षवो महाप्रपातं प्रपतिष्यन्ति ।

तदनन्तर, भगवान् आयुष्मान् शारिपुत्र से दूसरी बार इस प्रकार बोले—हे शारिपुत्र ! इस विषय को प्रकाशित करना व्यर्थ है । हे शारिपुत्र ! इस विषय की व्याख्या की जाने पर देवताओं-समेत यह सारा लोक त्रस्त हो उठेगा एवं अभिमान से ग्रस्त जो भिक्षुक यहाँ वर्तमान हैं, वे घोर पतन को प्राप्त होंगे ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमां गाथामभाषत ।

तत्पश्चात्, उस अवसर पर भगवान् ने यह गाथा कही—

अलं हि धर्मेणिह भाषितेन
सूक्ष्मं इदं ज्ञानमतर्किकं च ।
अभिमानप्राप्ता बहु सन्ति बाला
निर्दिष्टधर्मस्मि क्षिपे अजानकाः ।।३४।।

उस धर्म का विवेचन यहाँ व्यर्थ है । यह ज्ञान सूक्ष्म एवं तर्कों से परे है । इस सभा में मूर्ख, अज्ञान एवं अभिमान में चूर अनेक भिक्षु उपस्थित हैं, जो मेरे द्वारा उपदिष्ट धर्म की निन्दा करेंगे ।

त्रैतीयकमप्यायुष्मान् शारिपुत्रो भगवन्तमध्येषते स्म । भाषतां भगवान् भाषतां सुगत एतमेवार्थम् । मादृशानां भगवन्निह पर्षदि बहूनि प्राणिशतानि संविद्यन्ते अन्यानि च भगवन् बहूनि प्राणिशतानि बहूनि प्राणिसहस्राणि बहूनि प्राणिशतसहस्राणि बहूनि प्राणिकोटीनयुतशतसहस्राणि यानि भगवता पूर्वभवेषु परिपाचितानि तानि भगवतो भाषितं श्रद्धास्यन्ति प्रतीयिष्यन्ति उद्ग्रहीष्यन्ति । तेषां तद् भविष्यति दीर्घरात्रमर्थाय हिताय सुखायेति ।

आयुष्मान् शारिपुत्र ने तीसरी बार भगवान् से पुनः प्रार्थना की—हे भगवन् ! कहिए । हे सुगत ! इस विषय में कुछ कहिए । हे भगवन् ! इस परिषद् में मेरे जैसे अनेक शत जीव हैं एवं हे भगवन् ! अन्य अनेक शत प्राणी, अनेक सहस्र प्राणी, उनेक शतसहस्र प्राणी एवं अनेक शतसहस्र कोटीनयुत प्राणी भी यहाँ उपस्थित हैं, जिन्हें आपने पूर्व जन्मों में ज्ञान के विषय में परिपक्व बना दिया है । वे हे भगवन् ! आपके उपदेशों को श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक ग्रहण करेंगे । वह अनन्त काल तक उनके लाभ, हित एवं सुख का कारण बनेगा ।

अथ खल्वायुष्मान् शारिपुत्रस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, उस अवसर पर आयुष्मान् शारिपुत्र ने ये गाथाएँ कहीं—

भाषस्व धर्मं द्विपदानमुत्तमा अहं त्वमध्येषमि ज्येष्ठपुत्रः ।
सन्तीह प्राणीन सहस्रकोट्यो ये श्रद्दधास्यन्ति ते धर्म भाषितम् ।।३५।।

हे मनुष्यों में श्रेष्ठ ! मैं आपका ज्येष्ठ पुत्र हूँ । मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप यहाँ धर्म का विवेचन करें। यहाँ सहस्रों कोटि ऐसे प्राणी हैं, जो आपके धर्मोपदेश में श्रद्धा करेंगे ।

ये च त्वया पूर्वभवेषु नित्यं परिपाचिताः सत्त्व सुदीर्घरात्रम् ।
कृताञ्जली ते पि स्थितात्र सर्वे ये श्रद्दधास्यन्ति तवैत धर्मम् ।।३६।।

वे सहस्रों कोटि प्राणी, जिन्हें आपने पूर्वजन्मों में बहुत काल तक उपदेश देकर परिपक्व बना दिया है, वे भी हाथ जोड़कर यहाँ खड़े हैं । वे भी आपके इस धर्मोपदेश में श्रद्धा रखेंगे ।

अस्मादृशा द्वादशिमे शताश्च ये चापि ते प्रस्थित अग्रबोधये ।
तान् पश्यमानः सुगतः प्रभाषतां तेषां च हर्षं परमं जनेतु ।।३७।।

हमारे सदृश जो ये बारह सौ प्राणी उपस्थित हैं, वे भी अग्रवोधि की प्राप्ति के लिए प्रस्तुत हैं । हे सुगत ! उन्हें देखते हुए आप धर्मोपदेश करके उनके हृदय में अपार हर्ष उत्पन्न करें।

अथ खलु भगवांस्त्रैतीयकमप्यायुष्मतः शारिपुत्रस्याध्येषणां विदित्वायुष्मन्तं शारिपुत्रमेतदवोचत् । यदिदानीं त्वं शारिपुत्र यावत्त्रैतीयकमपि तथागतमध्येषसे । एवमध्येषमाणं त्वां शारिपुत्र किं वक्ष्यामि । तेन हि शारिपुत्र शृणु साधु च सुष्ठु च मनसिकुरु । भाषिष्येऽहं ते ।

तदनन्तर, भगवान् आयुष्मान् शारिपुत्र की इस प्रार्थना को सुनकर आयुष्मान् शारिपुत्र से तीसरी बार पुनः इस प्रकार बोले—हे शारिपुत्र ! यतः, इस समय तथागत से तीसरी बार प्रार्थना की है, अतः हे शारिपुत्र ! इस प्रकार प्रार्थना करते हुए तुमसे मैं कुछ कहूँगा।

इसलिए, हे शारिपुत्र ! अच्छी तरह सुनो एवं भली भाँति उसे मन में धारण करो; मैं अब तुमसे कहने जा रहा हूँ ।

समनन्तरभाषिता चेयं भगवता वाक् । अथ खलु ततः पर्षद आभिमानिकानां भिक्षूणां भिक्षुणीनामुपासकानामुपासिकानां पञ्चमात्राणि सहस्राण्युत्थायासनेभ्यो भगवतः पादौ शिरसाभिवन्दित्वा ततः पर्षदोऽपक्रामन्ति स्म । यथापीदमभिमानाकुशलमूलेनाप्राप्तेप्राप्तसंज्ञिनोऽनधिगतेऽधिगतसंज्ञिनः । त आत्मानं सव्रणं ज्ञात्वा ततः पर्षदोऽपक्रान्ताः । भगवांश्च तूष्णीम्भावेनाधिवासयति स्म ।

तदनन्तर, भगवान् ऐसा वचन बोले । तत्पश्चात् उस परिषद् में बैठे हुए पाँच हजार अभिमानी, भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक एवं उपासिका अपने-अपने आसनों से उठे, भगवान् के चरणों में सिर झुकाकर वन्दना की एवं उस परिषद् से उठकर चले गये । अभिमानजन्य, अकुशलमूलक कर्मों के कारण वे अप्राप्त को प्राप्त समझते थे एवं अनधिगत को अधिगत समझते थे । वे अपने-आपको चोट खाया हुआ समझकर उस सभा से चले गये । भगवान् ने अपने मौनभाव से उनके इस कार्य को स्वीकृति दे दी ।

अथ खलु भगवानायुष्मन्तं शारिपुत्रमामन्त्रयते स्म । निष्पलावा मे शारिपुत्र पर्षदपगतफल्गुः श्रद्धासारे प्रतिष्ठिता । साधु शारिपुत्रतेषामाभिमानिकानामतोऽपक्रमणम् । तेन हि शारिपुत्र भाषिष्य एतमर्थम् । साधु भगवन्नित्यायुष्मान् शारिपुत्रो भगवतः प्रत्यश्रौषीत् ।

तदनन्तर, भगवान् ने आयुष्मान् शारिपुत्र से कहा--हे शारिपुत्र ! मेरी सभा अब पुआल के समान तुच्छ एवं क्षुद्र व्यक्तियों से मुक्त हो गई है तथा इसमें अब केवल श्रद्धालु प्राणी ही अवशिष्ट रह गये हैं । हे शारिपुत्र ! इन अभिमानी भिक्षुओं का यहाँ से चला जाना ही अच्छा रहा । अतः, हे शारिपुत्र ! मैं इस विषय का विवेचन करूँगा । हे भगवन् ! आप धन्य हैं---ऐसा आयुष्मान् शारिपुत्र ने भगवान् से कहा ।

भगवानेतदवोचत् । कदाचित् कर्हिचिच्छारिपुत्र तथागत एवंरूपां धर्मदेशनां कथयति । तद् यथापि नाम शारिपुत्रोदुम्बरपुष्पं कदाचित् कर्हिचित् संदृश्यते एवमेव शारिपुत्र तथागतोऽपि कदाचित् कर्हिचित् एवंरूपां धर्मदेशनां कथयति । श्रद्दधत मे शारिपुत्र भूतवाद्यहमस्मि तथावाद्यहमस्म्यनन्यथावाद्यहमस्मि । दुर्बोध्यं शारिपुत्र तथागतस्य संधाभाष्यम् । तत् कस्य हेतोः । नानानिरुक्तिनिर्देशाभिलापनिर्देशनैर्मया शारिपुत्र विविधैरुपायकौशल्यशतसहस्रैर्धर्मः संप्रकाशितः । अतर्कोऽतर्कावचरस्तथागतविज्ञेयः शारिपुत्र सद्धर्मः । तत् कस्य हेतोः । एककृत्येन शारिपुत्रैककरणीयन तथागतोऽर्हन् सम्यक्

संबुद्धो लोक उत्पद्यते महाकृत्येन महाकरणीयेन । कतमच्च शारिपुत्र तथागतस्यैककृत्यमेककरणीयं महाकृत्यं महाकरणीयं येन कृत्येन तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उत्पद्यते । यदिदं तथागतज्ञानदर्शनसमादापनहेतुनिमित्तं सत्त्वानां तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उत्पद्यते । तथागतज्ञानदर्शनसंदर्शनहेतुनिमित्तं सत्त्वानां तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उत्पद्यते । तथागतज्ञानदर्शनावतारणहेतुनिमित्तं सत्त्वानां तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उत्पद्यते । तथागतज्ञानप्रतिबोधनहेतुनिमित्तं सत्त्वानां तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उत्पद्यते । तथागतज्ञानदर्शनमार्गावतारणहेतुनिमित्तं सत्त्वानां तथागतोऽर्हन् सम्यक् संबुद्धो लोक उत्पद्यते । इदं तच्छारिपुत्र तथागतस्यैककृत्यमेककरणीयं महाकृत्यं महाकरणीयमेकप्रयोजनं लोके प्रादुर्भावाय । इति हि शारिपुत्र यत्तथागतस्यैककृत्यमेककरणीयं महाकृत्यं महाकरणीयं तत्तथागतः करोति । तत् कस्य हेतोः । तथागतज्ञानदर्शनसमादापक एवाहं शारिपुत्र तथागतज्ञानदर्शनसन्दर्शक एवाहं शारिपुत्र तथागतज्ञानदर्शनावतारक एवाहं शारिपुत्र तथागतज्ञानदर्शनप्रतिबोधक एवाहं शारिपुत्र तथागतज्ञानदर्शनमार्गावतारक एवाहं शारिपुत्र । एकमेवाहं शारिपुत्र यानमारभ्य सत्त्वानां धर्मं देशयामि यदिदं बुद्धयानम् । न किञ्चिच्छारिपुत्र द्वितीयं वा तृतीयं वा यानं संविद्यते । सर्वत्रैषा शारिपुत्र धर्मता दशदिग्लोके । तत् कस्य हेतोः । येऽपि ते शारिपुत्र अतीतेऽध्वन्यभूवन् दशसु दिक्ष्वप्रमेयेष्वसंख्येयेषु लोकधातुषु तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां च मनुष्याणां च । ये नानाभिनिर्हारनिर्देशविविधहेतुकारणनिदर्शनारम्बणनिरुक्त्युपायकौशल्यैर्नानाधिमुक्तानां सत्त्वानां नानाधात्वाशयानामाशयं विदित्वा धर्मं देशितवन्तः । तेऽपि सर्वे शारिपुत्र बुद्धा भगवन्त एकमेव यानमारभ्य सत्त्वानां धर्मं देशितवन्तो यदिदं बुद्धयानं सर्वज्ञतापर्यवसानं यदिदं तथागतज्ञानदर्शनसमादापनमेव सत्त्वानां तथागतज्ञानदर्शनसंदर्शनमेव तथागतज्ञानदर्शनावतारणमेव तथागतज्ञानदर्शनप्रतिबोधनमेव तथागतज्ञानदर्शनमार्गावतारणमेव सत्त्वानां धर्मं देशितवन्तः । यैरपि शारिपुत्र सत्त्वैस्तेषामतीतानां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामन्तिकात् सद्धर्मः श्रुतस्तेऽपि सर्वेऽनुत्तरायाः सम्यक्संबोधेर्लाभिनोऽभूवन् ।

तदनन्तर, भगवान् इस प्रकार बोले—हे शारिपुत्र ! तथागत इस प्रकार की धर्मदेशना कदाचित् एवं किसी-किसी व्यक्ति को ही करते हैं। हे शारिपुत्र ! जिस प्रकार

गूलर का फूल कदाचित्, कहीं-कहीं ही दिखलाई पड़ता है, उसी प्रकार हे शारिपुत्र ! तथागत कम-से-कम अवसरों पर ही इस प्रकार की धर्मदेशना करते हैं । हे शारिपुत्र ! मुझपर विश्वास करो । मैं सच्ची बात कहता हूँ, मैं सत्यवादी हूँ, मैं अन्यथावादी नहीं हूँ । हे शारिपुत्र । तथागत का बुद्धज्ञान विषयक उपदेश अत्यन्त दुर्बोध है । ऐसा क्यों है ? क्योंकि हे शारिपुत्र ! मैंने विभिन्न निरुक्ति, निर्देश, अभिलाप एवं निर्देशनों तथा सैकड़ों-सहस्रों विविध उपायकौशल्यों के द्वारा धर्म को प्रकाशित किया है । हे शारिपुत्र ! अतर्क्य एवं तर्कों से परे इस सद्धर्म को तथागत ही जान सकते हैं । इसका क्या कारण है ? क्योंकि हे शारिपुत्र ! लेकिन इसी एककृत्य, एककर्त्तव्य, महाकृत्य एवं महाकर्त्तव्य की पूर्त्ति के लिए ही अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत इस लोक में उत्पन्न होते हैं । हे शारिपुत्र ! तथागत का यह एककृत्य, एककरणीय, महाकरणीय एवं महाकृत्य कौन-से हैं, जिनको पूरा करने के लिए अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत इस लोक में उत्पन्न होते हैं । प्राणियों को तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन के उपदेश के लिए ही अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत-लोक में उत्पन्न होते हैं । प्राणियों के बीच तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन के विवेचन के निमित्त ही अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत-लोक में उत्पन्न होते हैं । प्राणियों के सम्मुख तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन की स्थापना के हेतु ही अर्हत् सम्यक् संम्बुद्ध तथागत लोक में उत्पन्न होते हैं । प्राणियों के हृदय में तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन को उद्‌बुद्ध करने के लिए ही अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत लोक में उत्पन्न होते हैं । प्राणियों को तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का मार्ग-दर्शन के निमित्त ही अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत इस लोक में उत्पन्न होते हैं । हे शारिपुत्र ! तथागत के संसार में उत्पन्न होने का यही वह एककृत्य, एककरणीय, महाकृत्य एवं महाकरणीय तथा एकमात्र प्रयोजन है । हे शारिपुत्र ! इस प्रकार, तथागत का यही वह एकमात्र एककृत्य, एककरणीय, महाकृत्य एवं महाकरणीय है, जिसे तथागत पूरा करते हैं । इसका क्या कारण है ? क्योंकि, हे शारिपुत्र ! तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का उपदेशक मैं ही हूँ । हे शारिपुत्र ! तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का विवेचक मैं ही हूँ । हे शारिपुत्र ! तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का अवतारक मैं ही हूँ । हे शारिपुत्र ! तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का प्रतिबोधक मैं ही हूँ । हे शारिपुत्र ! तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का पथ-प्रदर्शक मैं ही हूँ । हे शारिपुत्र ! मैं ही बुद्धयान नामक एकयान का आश्रय लेकर प्राणियों को धर्म की देशना करता हूँ । हे शारिपुत्र ! कोई दूसरा या तीसरा यान नहीं है । हे शारिपुत्र ! संसार में दसों दिशाओं में सर्वत्र धर्म का यही रूप है । ऐसा मैं क्यों करता हूँ ? क्योंकि, हे शारिपुत्र ! अतीतकाल में दसों दिशाओं में स्थित अप्रमेय एवं असंख्य लोकधातुओं में 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' तथा लोकानुकम्पा-हेतु महान् जनसमुदाय तथा मनुष्यों एवं देवों के हित एवं सुख के लिए जो भी अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत उत्पन्न हुए थे तथा जिन्होंने नाना धातुओं में विद्यमान विविध प्रकार की प्रवृत्तिवाले प्राणियों के आशय को जानकर, उन्हें नाना प्रकार के निर्हार एवं निर्देश तथा विविध हेतुकारणनिदर्शन, आरम्बण, निरुक्ति

एवं उपायकौशल्यों के द्वारा धर्म का उपदेश दिया था, उन सभी भगवान् बुद्धों ने एक यान का अर्थात् बुद्धयान का ही आश्रय लेकर जीवों को धर्म का उपदेश दिया था । भगवान् ने सभी प्राणियों को इस सर्वज्ञता-पर्यवसायी बुद्धज्ञान का उपदेश दिया, जो प्राणियों के लिए तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का उपदेश, तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का विवेचन, तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का सन्तारण, तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का प्रतिवोधन और तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का पथ-प्रदर्शन प्रस्तुत करता है। हे शारिपुत्र ! जिन प्राणियों ने अतीत काल में इन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतों से सद्धर्म की देशना सुनी, उन सवने भी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त कर ली ।

येऽपि ते शारिपुत्रानागतेऽध्वनि भविष्यन्ति दशसु दिक्ष्वप्रमेयेष्वसंख्येयेषु लोकधातुषु तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां च मनुष्याणां च । ये च नानाभिनिर्हारनिर्देशविविधहेतुकारणनिदर्शनारम्बणनिरुक्त्युपायकौशल्यैर्नानाधिमुक्तानां सत्त्वानां नानाधात्वाशयानामाशयं विदित्वा धर्मं देशयिष्यन्ति । तेऽपि सर्वे शारिपुत्र बुद्धा भगवन्त एकमेव यानमारभ्य सत्त्वानां धर्मं देशयिष्यन्ति यदिदं बुद्धयानं सर्वज्ञतापर्यवसानं यदिदं तथागतज्ञानदर्शनसमादापनमेव सत्त्वानां तथागतज्ञानदर्शनसन्दर्शनमेव तथागतज्ञानदर्शनावतारणमेव तथागतज्ञानदर्शनप्रतिबोधनमेव तथागतज्ञानदर्शनमार्गावतारणमेव सत्त्वानां धर्मं देशयिष्यन्ति । येऽपि ते शारिपुत्र सत्त्वास्तेषामनागतानां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामन्तिकात् तं धर्मं श्रोष्यन्ति तेऽपि सर्वेऽनुत्तरायाः सम्यक्संबोधेर्लाभिनो भविष्यन्ति ।

हे शारिपुत्र ! भविष्यत् काल में दसों दिशाओं में स्थित अप्रमेय एवं असंख्य लोकधातुओं में 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' तथा लोकानुकम्पा-हेतु महान् जनसमुदाय तथा मनुष्यों एवं दवों के हित एवं सुख के लिए जो भी अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत उत्पन्न होंगे तथा जो नाना लोकधातुओं में वर्त्तमान विविध प्रकार की प्रवृत्तिवाले प्राणियों के आशय को जानकर उन्हें नाना प्रकार के निर्हार एवं निर्देश तथा विविध हेतुकारणनिदर्शन, आरम्बण, निरुक्ति एवं उपायकौशल्यों के द्वारा धर्म का उपदेश देंगे, हे शारिपुत्र ! वे सभी भगवान् बुद्ध एकयान का ही, अर्थात् बुद्धयान का आश्रय लेकर प्राणियों को धर्म का उपदेश देंगे । वे सभी प्राणियों को इस सर्वज्ञता-पर्यवसायी बुद्धज्ञान का उपदेश देंगे, जो प्राणियों के लिए तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का उपदेश, तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का विवेचन, तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का अवतारण, तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का प्रतिबोधन और तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का पथ-प्रदर्शन करनेवाला है । हे शारिपुत्र ! जो भी जीव इन अनागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतों से धर्मोपदेश सुनेंगे, वे सव श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति करेंगे ।

येऽपि ते शारिपुत्रैतर्हि प्रत्युत्पन्नेऽध्वनि दशसु दिक्ष्वप्रमेयेष्वसंख्येयेषु लोकधातुषु तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धास्तिष्ठन्ति ध्रियन्ते यापयन्ति धर्मं च देशयन्ति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकनानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां च मनुष्याणां च । ये नानाभिनिर्हारनिर्देशविविधहेतुकारणनिदर्शनारम्बणनिरुक्त्युपायकौशल्यैर्नानाधिमुक्तानां सत्त्वानां नानाधात्वाशयानामाशयं विदित्वा धर्मं देशयन्ति । तेऽपि सर्वे शारिपुत्र बुद्धा भगवन्त एकमेव यानमारभ्य सत्त्वानां धर्मं देशयन्ति यदिदं बुद्धयानं सर्वज्ञतापर्यवसानं यदिदं तथागतज्ञानदर्शनसमादापनमेव सत्त्वानां तथागतज्ञानदर्शनसन्दर्शनमेव तथागतज्ञानदर्शनावतारणमेव तथागतज्ञानदर्शनप्रतिबोधनमेव तथागतज्ञानदर्शनमार्गावतारणमेव सत्त्वानां धर्मं देशयन्ति । येऽपि ते शारिपुत्र सत्त्वास्तेषां प्रत्युत्पन्नानां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामन्तिकात् तं धर्मं शृण्वन्ति तेऽपि सर्वेऽनुत्तरायाः सम्यक्संबोधेर्लाभिनो भविष्यन्ति ।

हे शारिपुत्र ! वर्त्तमान काल में दसों दिशाओं में स्थित अप्रमेय एवं असंख्य लोकधातुओं में 'बहुजनहिताय वहुजनसुखाय' तथा लोकानुकम्पा-हेतु महान् जनसमुदाय तथा मनुष्यों एवं देवों के हित एवं सुख के लिए जो भी अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत स्थित हैं, वर्त्तमान हैं, जीवित हैं तथा धर्म की देशना करत हैं एवं नाना धातुओं में विद्यमान विभिन्न प्रवृत्तिवाले प्राणियों के आशय को जानकर उन्हें नाना प्रकार के निर्हार एवं निर्देश तथा विविध हेतुकारण-निदर्शन, आरम्वण, निरुक्ति एवं उपायकौशल्यों के द्वारा धर्म की देशना करते हैं । हे शारिपुत्र ! वे सभी भगवान् बुद्ध एकयान का, अर्थात् बुद्धयान का आश्रय लेकर प्राणियों को धर्म का उपदेश देते हैं । वे सभी प्रणियों को इस सर्वज्ञतापर्यवसायी बुद्धज्ञान का उपदेश देते हैं, जो प्राणियों के लिए तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का उपदेश, तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का विवेचन, तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का अवतारण, तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का प्रतिबोधन और तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का पथ-प्रदर्शन करनेवाला है । हे शारिपुत्र ! जो प्राणी इन वर्त्तमान अर्हत् सम्यक सम्बुद्ध तथागतों से उस धर्मोपदेश को सुनते हैं, वे सभी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति करेंगे ।

अहमपि शारिपुत्रैतर्हि तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानाञ्च मनुष्याणाञ्च नानाभिनिर्हारनिर्देशविविधहेतुकारणनिदर्शनारम्बणनिरुक्त्युपायकौशल्यैर्नानाधिमुक्तानां सत्त्वानां नानाधात्वाशयानामाशयं विदित्वा धर्मं देशयामि । अहमपि शारिपुत्रैकमेव यानमारभ्य सत्त्वानां धर्मं

देशयामि यदिदं बुद्धयानं सर्वज्ञतापर्यवसानं यदिदं तथागतज्ञानदर्शनसमादापनमेव सत्त्वानां तथागतज्ञानदर्शनसन्दर्शनमेव तथागतज्ञानदर्शनावतारणमेव तथागतज्ञानदर्शनप्रतिबोधनमेव तथागतज्ञानदर्शनमार्गावतारणमेव सत्त्वानां धर्मं देशयामि । येऽपि ते शारिपुत्र सत्त्वा एतर्हि ममेमं धर्मं शृण्वन्ति तेऽपि सर्वेऽनुत्तरायाः सम्यक्संबोधेर्लाभिनो भविष्यन्ति । तदनेनापि शारिपुत्र पर्यायेणैवं वेदितव्यं यथा नास्ति द्वितीयस्य यानस्य क्वचिद्दशसु दिक्षु लोके प्रज्ञप्तिः कुतः पुनस्तृतीयस्य ।

हे शारिपुत्र ! मैं भी अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत हूँ। अतः, मैं भी बहुजनहिताय, वहुजनसुखाय और लोकानुकम्पा की भावना से महान् जनसमुदाय तथा मनुष्य एवं देवों के सुख एवं हित के लिए नाना धातुओं में वर्त्तमार्न विभिन्न प्रवृत्तियोंवाले प्राणियों के आशय को जानकर उन्हें नाना प्रकार के निर्हार एवं निर्देश तथा विविधहेतुकारण, निदर्शन, आरम्बण, निरुक्ति एवं उपायकौशल्यों के द्वारा धर्म का उपदश देता हूँ। हे शारिपुत्र ! मैं भी एक ही यान का, अर्थात् बुद्धयान का आश्रय लेकर प्राणियों को धर्म का उपदेश देता हूँ। मैं सभी जीवों को इस सर्वज्ञतापर्यवसायी बुद्धज्ञान का उपदेश देता हूँ, जो मनुष्यों के लिए तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का उपदेश, तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का विवेचन, तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का अवतारण, तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का प्रतिबोधन और तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन का पथ-प्रदर्शन करनेवाला है। हे शारिपुत्र ! जो भी प्राणी मेरे इस धर्मोपदेश को सुनते हैं, वे सभी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति करेंगे। हे शारिपुत्र ! इन्हीं उदाहरणों से समझ लो कि इस संसार में दसों दिशाओं में कहीं भी दूसरे यान की स्थिति नहीं है; फिर तीसरे यान की कौन कहे ?

अपि तु खलु पुनः शारिपुत्र यदा तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः कल्पकषाये वोत्पद्यन्ते सत्त्वकषाये वा लेशकषाये वा दृष्टिकषाये वायुष्कषाये वोत्पद्यन्ते । एवंरूपेषु शारिपुत्र कल्पसंक्षोभकषायेषु बहुसत्त्वेषु लुब्धेष्वल्पकुशलमूलेषु तदा शारिपुत्र तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा उपायकौशल्येन तदेवैकं बुद्धयानं त्रियाननिर्देशेन निर्दिशन्ति । तत्र शारिपुत्र ये श्रावका अर्हन्तः प्रत्येकबुद्धा वेमां क्रियां तथागतस्य बुद्धयानसमादपनां न शृण्वन्ति नावतरन्ति नावबुध्यन्ति न ते शारिपुत्र तथागतस्य श्रावका वेदितव्या नाप्यर्हन्तो नापि प्रत्येकबुद्धा वेदितव्याः ।

पुनः, हे शारिपुत्र ! जब अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत कल्पकषाय में उत्पन्न होते हैं अथवा सत्त्वकषाय, क्लेशकषाय, दृष्टिकषाय या आयुष्कषाय में उत्पन्न होते हैं तथा हे शारिपुत्र ! इस प्रकार के अन्य कल्प-संक्षोभकषायों में, जब कि अधिकांश प्राणी लोभी

तथा अल्प कुशलमूलवाले होते हैं, उत्पन्न होकर हे शारिपुत्र ! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत उपायकौशल्य का आश्रय लेकर इसी एक बुद्धयान का तीन यानों के रूप में निर्देश करते हैं । हे शारिपुत्र ! ऐसी अवस्था में जो श्रावक अर्हत् अथवा प्रत्येकबुद्ध तथागत के बुद्धयानोपदेश की इस क्रिया को नहीं सुनते, नहीं विचारते और नहीं समझते, हे शारिपुत्र ! उन्हें तथागत के श्रावक नहीं समझना चाहिए और न उन्हें अर्हत् अथवा प्रत्येकबुद्ध ही समझना चाहिए ।

अपि तु खलु पुनः शारिपुत्र यः कश्चिद् भिक्षुर्वा भिक्षुणी वार्हत्त्वं प्रतिजानीयादनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ प्रणिधानमपरिगृह्योच्छिन्नोऽस्मि बुद्धयानादिति वदेदेतावन्मे समुच्छ्रयस्य पश्चिमकं परिनिर्वाणं वदेदाभिमानिकं तं शारिपुत्र प्रजानीयाः । तत् कस्य हेतोः । अस्थानमेतच्छारिपुत्रानवकाशो यद्भिक्षुरर्हन् क्षीणास्रवः संमुखीभूते तथागत इमं धर्मं श्रुत्वा न श्रद्दध्यात् स्थापयित्वा परिनिर्वृतस्य तथागतस्य । तत् कस्य हेतोः । न हि ते शारिपुत्र श्रावकास्तस्मिन् काले तस्मिन् समये परिनिर्वृते तथागत एतेषामेवंरूपाणां सूत्रान्तानां धारका वा देशका वा भविष्यन्ति । अन्येषु पुनः शारिपुत्र तथागतेष्वर्हत्सु सम्यक्संबुद्धेषु निःसंशया भविष्यन्ति । इमेषु बुद्धधर्मेषु श्रद्दधाध्वं मे शारिपुत्र पत्तीयतावकल्पयत । न हि शारिपुत्र तथागतानां मृषावादः संविद्यते । एकमेवेदं शारिपुत्र यानं यदिदं बुद्धयानम् ।

पुनः हे शारिपुत्र ! जो कोई भिक्षु या भिक्षुणी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में एकाग्र ज्ञान प्राप्त किये विना ही अर्हत् होने का दावा करे या कहे कि 'मैं बुद्धयान से परे हूँ' या कहे कि 'मैं संसार से मुक्त होकर निर्वाण को प्राप्त हो गया हूँ', तो हे शारिपुत्र ! उसे अभिमानी समझना चाहिए । ऐसा क्यों ? क्योंकि, हे शारिपुत्र ! यह अनौचित्यपूर्ण एवं असम्भव है कि परिनिर्वाणप्राप्त तथागत के अतिरिक्त कोई अन्य आस्रवरहित अर्हत् या भिक्षु सम्मुख विद्यमान तथागत के मुख से इस धर्मोपदेश को सुनकर उसमें श्रद्धा न करें । ऐसा क्यों ? क्योंकि, हे शारिपुत्र ! वे श्रावक उस समय, उस काल में तथागत के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर इस प्रकार के इन सूत्रान्तों के धारक या उपदेशक वे नहीं वन सकेंगे । पुनः हे शारिपुत्र ! उन्हें अपने संशय को दूर करने के लिए अन्य अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतों के शासन में रहना पड़ेगा । हे शारिपुत्र ! मेरे द्वारा उपदिष्ट इन धर्मों में श्रद्धा करो, विश्वास करो एवं इन्हें समझो; क्योंकि हे शारिपुत्र ! तथागत कभी झूठ नहीं बोलते । हे शारिपुत्र ! यान केवल एक ही है। और वह है बुद्धयान ।

अथ खलु भगवानेतमेवार्थं भूयस्या मात्रया संदर्शयमानस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, भगवान् इसी विषय का विशेष रूप से प्रतिपादन करते हुए उस समय ये गाथाएँ बोले—

अथाभिमानप्राप्ता ये भिक्षुभिक्षुण्युपासकाः ।
उपासिकाश्च अश्राद्धाः सहस्राः पञ्चनूनकाः ।।३८।।

इसके अनन्तर पूरे पाँच हजार भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक और उपासिका जो अभिमानी और अश्रद्धालु थे (एवं)

अपश्यन्त इमं दोषं छिद्रशिक्षासमन्विताः ।
व्रणांश्च परिरक्षन्तः प्रक्रान्ता बालबुद्धयः ।।३९।।

छिद्रान्वेषण की कला में दक्ष थे, वे मूर्ख इस दोष को न देखकर मानों अपने को हानि से बचाते हुए वहाँ से उठकर चले गये।

पर्षत्कषायताञ् ज्ञात्वा लोकनाथोऽधिवासयि ।
तत्तेषां कुशलं नास्ति श्रृणुयुर्धर्म ये इमम् ।।४०।।

भगवान् उन्हें सभा की मैल मानते हुए बोले—इनके पास वह पुण्य नहीं है, जिसके फलस्वरूप वे इस धर्मोपदेश का श्रवण कर सके।

शुद्धा च निष्पलावा च सुस्थिता परिषन्मम ।
फल्गु व्यपगता सर्वा सारा चेयं प्रतिष्ठिता ।।४१।।

मेरी सभा अब शुद्ध, क्षुद्रों से रहित, सुस्थिर एवं पुआलों से मुक्त तथा केवल श्रेष्ठ पुरुषों से युक्त रह गई है।

श्रृणोहि मे शारिसुता यथैष संबुद्धधर्मः पुरुषोत्तमेहि ।
यथा च बुद्धा कथयन्ति नायका उपायकौशल्यशतैरनेकैः ।।४२।।

हे शारिपुत्र ! मेरी बात सुनो । मैं बतलाने जा रहा हूँ कि पुरुषोत्तमों ने इस धर्म को किस प्रकार जाना और किस प्रकार संसार के नायक बुद्ध अनेक शत उपायकौशल्यों का आश्रय लेकर इसका उपदेश देते हैं ।

यथाशयं जानिय ते चरिं च नानाधिमुक्तानिह प्राणिकोटिनाम् ।
चित्राणि कर्माणि विदित्व तेषां पुराकृतं यत् कुशलं च तेहि ।।४३।।

करोड़ों प्राणियों के आशय, चर्या एवं विभिन्न प्रवृत्तियों को जानकर तथा इनके विविध कर्मों तथा इनके पूर्वकाल में किये गये शुभ कर्मों को जानकर,

नानानिरुक्तीहि च कारणेहि संप्रापयामी इम तेष प्राणिनाम् ।
हेतूहि दृष्टान्तशतेहि चाहं तथा तथा तोषयि सर्वसत्त्वान् ।।४४।।

उन प्राणियों को विविध निरुक्तियों और हेतुओं के द्वारा इस धर्म का उपदेश

देता हूँ । सैकड़ों हेतुओं एवं दृष्टान्तों द्वारा किसी-न-किसी रूप में सभी जीवों को संतुष्ट करके,

सूत्राणि भाषामि तथैव गाथा इतिवृत्तकं जातकमद्भुतञ्च ।
निदान औपम्यशतैश्च चित्रैर्गेयञ्च भाषामि तथोपदेशान् ।।४५।।

मैं सूत्र, गाथा, इतिवृत्तक, एवं अद्भुत जातक-कथाएँ सुनाता हूँ, तथा सैकड़ों विभिन्न निदानों एवं औपम्यों द्वारा इन जानने योग्य उपदेशों को देता हूँ ।

ये भोन्ति हीनाभिरता अविद्वसू अचीर्णचर्या बहुबुद्धकोटिषु ।
संसारलग्नाश्च सुदुःखिताश्च निर्वाण तेषामुपदर्शयामि ।।४६।।

मैं उन्हें भी निर्वाण का मार्ग दिखलाता हूँ, जो हीन, विचारवाले, मूर्ख, अनेक बुद्धों के समय में अपने कर्त्तव्य का पालन न करनेवाले, संसार में फँसे हुए एवं अत्यधिक दुःखी हैं ।

उपायमेतं कुरुते स्वयम्भूर्बौद्धस्य ज्ञानस्य प्रबोधनार्थम् ।
न चापि तेषां प्रवदे कदाचित् युष्मेपि बुद्धा इह लोकि भेष्यथ ।।४७।।

बुद्ध के ज्ञान का उपदेश देने के लिए स्वयम्भू इसी उपाय का आश्रय लेते हैं । वे उनसे यह कभी नहीं कहते कि भविष्य में तुमलोग भी बुद्ध वनोगे ।

किं कारणं कालमवेक्ष्य तायी क्षणञ्च दृष्ट्वा ततु पश्च भाषते ।
सोऽयं क्षणो अद्य कथञ्चि लब्धो वदामि येनेह च भूतनिश्चयम् ।।४८।।

क्या कारण है कि शक्तिसम्पन्न भगवान् बुद्ध समय और अवसर देखने के अनन्तर ही वोलते हैं ? आज वह अवसर किसी प्रकार आ गया है, अतः मैं अब भूतार्थ का विवेचन करता हूँ ।

नवाङ्गमेतन्मम शासनञ्च प्रकाशितं सत्त्वबलाबलेन ।
उपाय एषो वरदस्य ज्ञाने प्रवेशनार्थाय निदर्शितो मे ।।४९।।

जीवों की शक्ति एवं अशक्ति को दृष्टि में रखकर ही मैं इस नव अंगों से युक्त शासन को प्रकाशित कर रहा हूँ । वरदायक बुद्ध के ज्ञान में प्रवेश पाने के लिए मैंने इस मार्ग का निर्देश किया है।

भवन्ति ये चेह सदा विशुद्धा व्यक्ता शुची सूरत बुद्धपुत्राः ।
कृताधिकारा बहुबुद्धकोटिषु वैपुल्यसूत्राणि वदामि तेषाम् ।।५०।।

मैं उन अनेक कोटिबुद्ध-पुत्रों को वैपुल्यसूत्रों का उपदेश देता हूँ, जो इस संसार में सदा विशुद्ध बुद्धिसम्पन्न, सरल, शुचि, दयालु एवं अनेक बुद्धों के शासन में अधिकार रखनेवाले हैं ।

तथा हि ते आशयसंपदाय विशुद्धरूपाय समन्विताभून् ।
वदामि तान् बुद्ध भविष्यथेति अनागतेऽध्वानि हितानुकम्पकाः ॥५१॥

किन्तु, जो विचारों की सम्पत्ति एवं विशुद्ध रूप से समन्वित हैं, मैं उनसे कहता हूँ कि तुमलोग भविष्य में सबका हित चाहनेवाले एवं सब पर दया करनेवाले बुद्ध बनोगे ।

श्रुत्वा च प्रीतिस्फुट भोन्ति सर्वे बुद्धा भविष्यास जगत्प्रधानाः ।
पुनश्च हं जानिय तेष चर्यां वैपुल्यसूत्राणि प्रकाशयामि ॥५२॥

'हमलोग संसार के नेता बुद्ध बनेंगे'—ऐसा सुनकर वे सभी आनन्दित हो उठे। मैं पुनः उनकी दैनिक चर्या को जानकर उनके सम्मुख वैपुल्यसूत्रों का विवेचन करता हूँ ।

इमे च ते श्रावक नायकस्य यहि श्रुतं शासनमेतमग्र्यम् ।
एकापि गाथा श्रुत धारिता वा सर्वेष बोधाय न संशयोऽस्ति ॥५३॥

ये नायक के श्रावक ऐसे हैं, जिन्होंने इस श्रेष्ठ शासन को सुना है। सुनी हुई या धारण की गई एक गाथा भी अन्तःकरण में ज्ञान उत्पन्न करने में समर्थ है—इसमें सन्देह नहीं है ।

एकं हि यानं द्वितियं न विद्यते तृतियं हि नैवास्ति कदाचि लोके ।
अन्यत्रुपाया पुरुषोत्तमानां यद्याननानात्वुपदर्शयन्ति ॥५४॥

इस संसार में केवल एक ही यान है, दूसरे या तीसरे यान का सर्वथा अभाव है। यानों की अनेकता दिखलाना तो भगवान् का उपायकौशल्य-मात्र है ।

बौद्धस्य ज्ञानस्य प्रकाशनार्थं लोके समुत्पद्यति लोकनाथः ।
एकं हि कार्यं द्वितियं न विद्यते न हीनयानेन नयन्ति बुद्धाः ॥५५॥

संसार के स्वामी भगवान् बुद्ध ज्ञानोपदेश के लिए ही इस लोक में जन्म लेते हैं। उनका केवल एकमात्र यही कार्य है, दूसरा नहीं । वे हीनयान के द्वारा लोगों को नहीं ले चलते ।

प्रतिष्ठितो यत्र स्वयं स्वयम्भूर्यच्चैव बुद्धं यथ यादृशं च ।
बलाश्च ये ध्यानविमोक्ष-इन्द्रियास्तत्रैव सत्त्वा पि प्रतिष्ठपेति ॥५६॥

जहाँ स्वयं स्वयम्भू प्रतिष्ठित हैं तथा बुद्धज्ञान अपने वास्तविक रूप में वर्त्तमान ह और जहाँ शक्तिसम्पन्न एवं समाधि के कारण मुक्त इन्द्रियोंवाले व्यक्ति हैं, वहीं इन प्राणियों को भी प्रतिष्ठित करते हैं ।

मात्सर्यदोषो हि भवेत् मह्यं स्पृशित्व बोधिं विरजां विशिष्टाम् ।
यदि हीनयानस्मि प्रतिष्ठपेयमेकं पि सत्त्वं न ममेतु साधु ॥५७॥

मैं मात्सर्य-दोष का भागी बनूँ, यदि स्वयं निर्दोष एवं श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त कर मैं एक भी प्राणी को हीनयान में प्रतिष्ठित करूँ। यह कार्य मेरे लिए उचित नहीं है।

मासर्यं मह्यं न कर्हिचि विद्यते ईर्ष्या न मे नापि च छन्दरागः।
उच्छिन्नपापा मम सर्वधर्मास्तेनास्मि बुद्धो जगतोऽनुबोधात् ॥५८॥

मुझमें न मात्सर्य है, न इर्ष्या है, न इच्छाएँ हैं और न मनमाना करने की प्रवृत्ति है। मेरे सभी धर्मोपदेश पापों से मुक्त हैं। संसार में ज्ञान का उपदश देने के कारण ही मैं बुद्ध कहलाता हूँ।

यथा ह्यहं चित्रितु लक्षणेहि प्रभासयन्तो इमु सर्वलोकम्।
पुरस्कृतः प्राणिशतैरनेकैर्देशेमिमां धर्मस्वभावमुद्राम् ॥५९॥

इन विभिन्न लक्षणों से युक्त मैं इस सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करता हुआ असंख्य प्राणियों से आहत होकर इस धर्म के वास्तविक स्वरूप का विवेचन करता हूँ।

एवञ्च चिन्तेम्यहु शारिपुत्र कथं नु एवं भवि सर्वसत्त्वाः।
द्वात्रिंशतीलक्षणरूपधारिणः स्वयंप्रभा लोकविदू स्वयम्भूः ॥६०॥

हे शारिपुत्र! मैं ऐसा चाहता हूँ कि संसार के सभी प्राणी बत्तीस लक्षणों से युक्त स्वयंप्रकाश लोकविद् एवं स्वयम्भू हो जायँ।

यथा च पश्यामि यथा च चिन्तये यथा च संकल्प ममासि पूर्वम्।
परिपूर्णमेतत् प्राणिधानु मह्यं बुद्धा च बोधिं च प्रकाशयामि ॥६१॥

जैसा मैं देखता हूँ, जैसा सोचता हूँ और जैसा मेरा पूर्वकाल में संकल्प था, वह मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई। अतः, अब मैं बुद्धज्ञान को प्रकाशित करने जा रहा हूँ।

सचेदहं शारिसुता वदेयं सत्त्वान बोधाय जनेथ छन्दम्।
अजानकाः सर्व भ्रमेयुरत्र न जातु गृह्णीयु सुभाषितं मे ॥६२॥

हे शारिपुत्र! यदि मैं प्राणियों से कहूँ कि तुमलोग ज्ञानप्राप्ति के लिए अपने हृदय में लालसा उत्पन्न करो, तो वे सभी अज्ञानी मेरे इस सुन्दर उपदेश को न समझते हुए इसमें भटकते फिरेंगे।

तांश्चैव हं जानिय एवरूपान्न चीर्णचर्याः पुरिमासु जातिषु।
अध्योषिताः कामगुणेषु सक्तास्तृष्णाय संमूर्छित मोहचित्ताः ॥६३॥

इनके विषय में मेरी यह धारणा है कि पूर्वजन्मों में इन्होंने विहित चर्या का आचरण नहीं किया है। इसीलिए, वे इन्द्रियजन्य सुखों में लिप्त वासनाओं में आसक्त, तृष्णा से मूर्च्छित एवं मोह में अन्धे हो रहे हैं।

ते कामहेतोः प्रपतन्ति दुर्गति षट्सू गतीषू परिखिद्यमानाः।
कटसी च वर्धेन्ति पुनः पुनस्ते दुःखेन संपीडित अल्पपुण्याः ॥६४॥

कामवासनाओं के कारण वे दुर्गति को प्राप्त होते हैं एवं छह गतियों में भटकते हुए महान् दुःख का अनुभव करते हैं। पुनर्जन्मों की वृद्धि करते हुए अल्प पुण्यवाले वे पुनः-पुनः दुःखों से सम्पीडित होते रहते हैं।

विलग्न दृष्टीगहनेषु नित्यमस्तीति नास्तीति तथास्ति नास्ति।
द्वाषष्टिदृष्टीकृत निश्चयित्वा असन्तभावं परिगृह्य त स्थिताः ॥६५॥

वे 'वह है', 'वह नहीं है, 'वह है भी और नहीं भी है' आदि इस प्रकार के विषम दृष्टिकोण-रूप जंगल में भटक रहे हैं। इन बासठ मतों में प्रतिपादित विभिन्न विचारों में उलझकर वे असत् पक्ष को ग्रहण कर लेते हैं।

दुःशोधका मानिन दम्भिनश्च वङ्काः शठा अल्पश्रुताश्च बालाः।
ते नैव शृण्वन्ति सुबुद्धघोषं कदाचिपि ज्जाति सहस्रकोटिषु ॥६६॥

उन दुःशोधक, मानी, दम्भी, कुटिल, शठ, अल्पज्ञ एवं मूर्ख प्राणियों को सहस्रों कोटि जन्मों में भी बुद्ध के सुन्दर वचनों को सुनने का अवसर कभी प्राप्त नहीं होता।

तेषामहं शारिसुता उपायं वदामि दुःखस्य करोथ अन्तम्।
दुःखेन संपीडित दृष्ट्व सत्त्वान्निर्वाण तत्राप्युपदर्शयामि ॥६७॥

हे शारिपुत्र! मैं उन्हें उपाय बतलाता हूँ और कहता हूँ कि इसके द्वारा तुमलोग दुःखों का अन्त करो। प्राणियों को दुःख से अत्यन्त पीडित देखकर मैं उन्हें निर्वाण का उपदेश देता हूँ।

एवं च भाषाम्यहु नित्यनिर्वृता आदिप्रशान्ता इमि सर्वधर्माः।
चर्यां च सो पूरिय बुद्धपुत्रो अनागतेऽध्वानि जिनो भविष्यति ॥६८॥

इस प्रकार, मैं सदा निर्वाण देनेवाले एवं आरम्भ से शांतिमय इन धर्मों का उपदेश देता हूँ। वह बुद्धपुत्र, जो इस चर्या को पूरी कर लेता है, वह भविष्य में जिनत्व की प्राप्ति कर लेगा।

उपायकौशल्य ममैवरूपं यत् त्रीणि यानान्युपदर्शयामि।
एकं तु यानं हि नयश्च एक एका चियं देशन नायकानाम् ॥६९॥

यह तो मेरा उपायकौशल्य-मात्र है, जो मैं तीन यानों का उपदेश देता हूँ। वस्तुतः, यान तो एक ही है, नीति भी एक है और नायकों की यह देशना भी एक है।

व्यपनेहि काङ्क्षां तथ संशयं च येषां च केषां चिह काङ्क्ष विद्यते।
अनन्यथावादिन लोकनायका एकं इदं यानु द्वितीयु नास्ति ॥७०॥

जिस किसी के मन में इन यानों के विषय में जो भी सन्देह या संशय हो, उसे वह दूर कर दे । लोकनायक सदा सत्य बोलनेवाले हैं, उनका स्पष्ट कहना है कि यान एक है, दो नहीं।

चे चाप्यभूवन् पुरिमास्तथागताः परिनिर्वृता बुद्धसहस्रनेके ।
अतीतमध्वानमसंख्यकल्पे तेषां प्रमाणं न कदाचि विद्यते ।।७१।।

बीते हुए असंख्य कल्पों में जो अनेक सहस्र तथागत बुद्ध निर्वाण को प्राप्त हुए हैं, उनकी गणना कदापि सम्भव नहीं है ।

सर्वहि तेहि पुरुषोत्तमेहि प्रकाशिता धर्म बहू विशुद्धाः ।
दृष्टान्तकैः कारणहेतुभिश्च उपायकौशल्यशतैरनेकैः ।।७२।।

इन सभी महापुरुषों ने धर्मों को अनेक शत दृष्टान्तों, कारणहेतुओं और उपायकौशल्यों के द्वारा प्रकाशित किया है।

सर्वे च ते दर्शयि एकयानमेकं च यानं अवतारयन्ति ।
एकस्मि याने परिपाचयन्ति अचिन्तिया प्राणिसहस्रकोट्यः ।।७३।।

उन सबने एक यान को ही दिखाया है, एक यान की ही अवतारण की है, एवं एक यान में ही अनन्त सहस्र कोटि प्राणियों को परिपक्व किया है ।

अन्ये उपाया विविधा जिनानां येही प्रकाशेन्तिममग्रधर्मम् ।
ज्ञात्वाधिमुक्ति तथ आशयं च तथागता लोकि सदेवकस्मिन् ।।७४।।

इन जिनों के पास अन्य विविध उपाय भी हैं, जिनके द्वारा ये तथागत प्राणियों की प्रवृत्ति एवं आशय को दृष्टि में रखते हुए वे देवों-सहित इस लोक में श्रेष्ठधर्मों का उपदेश देते हैं ।

ये चापि सत्त्वास्तहि तेष संमुखं शृण्वन्ति धर्मं अथ वा श्रुताविनः ।
दानश्च दत्तं चरितञ्च शीलं क्षान्त्या च संपादित सर्वचर्याः ।।७५।।

वे प्राणी भी, जो वहाँ सम्मुख खड़े होकर धर्मोपदेश सुन रहे हैं तथा जिन्होंने पूर्वजन्मों में धर्मोपदेश को सुना है, दान दिया है, सदाचरण किया है, धार्मिक कृत्यों को धैर्यपूर्वक सम्पादित किया है,

वीर्येण ध्यानेन कृताधिकाराः प्रज्ञाय वा चिन्तित एति धर्माः ।
विविधानि पुण्यानि कृतानि येहि ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ।।७६।।

बल एवं ध्यान में पूर्ण अधिकार प्राप्त किया है, धर्म के सिद्धान्तों पर बुद्धिपूर्वक विचार किया है और अनेक प्रकार के पुण्यकर्म किये हैं, उन सबको ज्ञान की प्राप्ति हुई ।

परिनिर्वृतानाञ्च जिनान तेषां ये शासने केचिदभूषि सत्त्वाः ।
क्षान्ता च दान्ता च विनीत तत्र ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ।।७७।।

उन परिनिर्वाणप्राप्त जिनों के शासन में जितने भी क्षान्त एवं दान्त प्राणी विनीत हुए थे, उन सबको उस अवसर पर ज्ञान की प्राप्ति हुई ।

ये यापि धातून करोन्ति पूजां जिनान तेषां परिनिर्वृतानाम् ।
रत्नामयान् स्तूपसहस्रनेकान् सुवर्णरूप्यस्य च स्फाटिकस्य ।।७८।।

जो प्राणी निर्वाणप्राप्त इन जिनों के धात्ववशेषों की पूजा करते हैं एवं स्वर्ण, रजत तथा स्फटिक के सहस्रों रत्नजटित स्तूप बनवाते हैं ।

ये चाश्मगर्भस्य करोन्ति स्तूपान् कर्केतना मुक्तमयाश्च केचित ।
वैडूर्यश्रेष्ठस्य तथैन्द्रनीलान् ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ।।७९।।

तथा जो कोई अश्मगर्भ, कर्केतक, मुक्ता, श्रेष्ठवैदूर्य एवं इन्द्रनील के स्तूप बनवाते हैं, उन सबने श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति की ।

ये चापि शैलेषु करोन्ति स्तूपान् ये चन्दनानामगुरुस्य केचित् ।
ये देवदारुस्य करोन्ति स्तूपान् ये दारुसंघातमयांश्च केचित् ।।८०।।

कुछ लोग पर्वतों पर स्तूप बनवाते हैं; कुछ लोग चन्दन के, कुछ लोग अगरु के, कुछ लोग देवदारु के तथा कुछ लोग विभिन्न लकड़ियों के स्तूप बनवाते हैं ।

इष्टामयान् मृत्तिकसञ्चितान् वा प्रीताश्च कुर्वन्ति जिनान स्तूपान् ।
उद्दिश्य ये पांसुकराशयोऽपि अटवीषु दुर्गेषु च कारयन्ति ।।८१।।

अथवा जो प्रसन्नतापूर्वक ईंटों, संचित मिट्टी या धूल के ढेर से भी दुर्गम जंगलों में जिनों के स्तूप बनवाते हैं, वे सब प्राणी भी श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति के भागी होते हैं ।

सिकतामयान् वा पुन कूट कृत्वा ये केचिदुद्दिश्य जिनान स्तूपान् ।
कुमारकाः क्रीडिषु तत्र तत्र ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ।।८२।।

वे छोटे-छोटे बालक भी, जिन्होंने खेल में बालू का, ढेर बनाकर उन्हें स्तूप के रूप में जिनों को समर्पित कर दिया, अपने-अपने स्थान पर ज्ञानप्राप्ति के भागी हो गये ।

रत्नामया बिम्ब तथैव केचिद्द्वात्रिंशतीलक्षणरूपधारिणः ।
उद्दिश्य कारापित येहि चापि ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ।।८३।।

तथा, वहाँ कुछ ऐसे भी प्राणी थे, जिन्होंने समर्पण के उद्देश्य से बत्तीस लक्षणों से युक्त शरीर को धारण करनेवाले जिनों की रत्नमय मूर्तियाँ बनवाई थीं, वे सब भी ज्ञानप्राप्ति के भागी हुए ।

ये सप्तरत्नामय तत्र केचिद् ये ताम्रिका वा तथ कांसिका वा ।
कारापयीषु सुगतान बिम्बा ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ।।८४।।

वहाँ कुछ ऐसे भी प्राणी थे, जिन्होंने ताँबे या काँसे की सप्तरत्न-जटित सुगत की मूर्त्तियाँ बनवाईं, उन सबको भी श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति हुई।

सीसस्य लोहस्य च मृत्तिकाय वा कारापयीषु सुगतान विग्रहान् ।
ये पुस्तकर्ममय दर्शनीयांस्ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ।।८५।।

कुछ प्राणियों ने शीशा, लोहा तथा मिट्टी से सुगत की मूर्त्तियाँ बनवाईं, जो पुस्तकर्ममय एवं दर्शनीय थीं। वे सभी प्राणी भी श्रेष्ठ ज्ञान के भागी हुए।

ये चित्रभित्तीषु करोन्ति विग्रहान् परिपूर्णगात्राञ् शतपुण्यलक्षणान् ।
लिखेत् स्वयं चापि लिखापयेद्वा ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ।।८६।।

जो प्राणी चित्रभित्तियों पर सम्पूर्ण अंगों से युक्त तथा सौ पवित्र लक्षणों से सम्पन्न सुगत की मूर्त्ति बनवाते हैं, स्वयं लिखते हैं या दूसरों से लिखवाते हैं, वे सभी प्राणी ज्ञान के भागी बने।

ये चापि केचित्तहि शिक्षमाणाः क्रीडारति चापि विनोदयन्तः ।
नखेन काष्ठेन कृतासि विग्रहान् भित्तीषु पुरुषा च कुमारका वा ।।८७।।

वहाँ कुछ ऐसे पुरुष या लड़के थे, जिन्होंने खेल-कूद या शिक्षा के क्रम में कुतूहलवश नख या काष्ठ से दीवारों पर सुगत के चित्र बना दिये।

सर्वे च ते कारुणिका अभूवन् सर्वेऽपि ते तारयि प्राणिकोट्यः ।
समादपेन्ता बहुबोधिसत्त्वांस्ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ।।८८।।

वे सब अत्यन्त दयालु थे, एवं उन सबने करोड़ों प्राणियों का उद्धार किया था तथा अनेक बोधिसत्त्वों को बुद्धज्ञान का उपदेश दिया था। वे सब भी बोधिप्राप्ति के भागी बने।

धातूषु यैश्चापि तथागतानां स्तूपेषु वा मृत्तिकाविग्रहेषु वा ।
आलेख्य भित्तीष्वपि पांसुस्तूपे पुष्पा च गन्धा च प्रदत्त आसीत् ।।८९।।

जिन प्राणियों ने तथागतों के धातुशेषों, स्तूपों, मिट्टी से बनी मूर्त्तियों, भित्तिचित्रों एवं बालू के बने स्तूपों पर पुष्प एवं गन्ध अर्पित किये थे,

वाद्या च वादापित येहि तत्र भेर्योऽथ शंखा पटहाः सुघोषकाः ।
निर्नादिता दुन्दुभयश्च येहि पूजाविधानाय वराग्रबोधिनाम् ।।९०।।

और, जिन्होंने वहाँ वाद्ययन्त्र, यथा---भेरी, शंख एवं सुन्दर घोष करनेवाले पटह बजवाये थे तथा श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त बुद्धों की पूजा के अवसर पर दुन्दुभियाँ बजवाई थीं,

वीणाश्च ताडा पणवाश्च येहि मृदङ्ग वंशा तुणवा मनोज्ञाः ।
एकोत्सवा वा सुकुमारका वा ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ॥९१॥

तथा जिन्होंने वीणा, ताल, पणव, मृदंग, वंशी, सुन्दर तुणव; एकोत्सव अथवा सुकुमारक आदि वाद्ययन्त्र बजवाये थे, उन सबने श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति की।

वादापिता झल्लरियोऽपि येहि जलमण्डका चर्पटमण्डका वा ।
सुगतान उद्दिश्यथ पूजनार्थं गीतं सुगीतं मधुरं मनोज्ञम् ॥९२॥

जिन्होंने सुगत के लिए झल्लरी जलमण्डक, चर्पटमण्डक, आदि बाजे बजवाये थे तथा उनके पूजन के लिए मधुर एवं आकर्षक गीतों का सुन्दर गान किया था,

सर्वें च ते बुद्ध अभूषि लोके कृत्वान तां बहुविधधातुपूजाम् ।
किमल्पकं पि सुगतान धातुषु एकं पि वादापिय वाद्यभाण्डम् ॥९३॥

धात्ववशेषों की बहुविध पूजा करके सुगतों के धात्ववशेषों के निकट कोई एक छोटा-सा वाद्ययन्त्र बजवाया था, वे सब भी इस संसार में बुद्धपद को प्राप्त हो गये।

पुष्पेन चैकेन पि पूजयित्वा आलेख्यभित्तौ सुगतान् बिम्बान् ।
विक्षिप्तचित्ता पि च पूजयित्वा अनुपूर्व द्रक्ष्यन्ति च बुद्धकोट्यः ॥९४॥

आलेख्य-भित्ति पर चित्रित सुगत के चित्रों की एक भी पुष्प से पूजा करनेवाले तथा चञ्चल चित्त से भी उनकी पूजा करनेवाले प्राणी कालक्रम से करोड़ों बुद्धों के दर्शन करेंगे।

यैश्चाञ्जलि तत्र कृतोऽपि स्तूपे परिपूर्ण एका तलशक्तिका वा ।
उन्नामितं शीर्षमभून्मुहूर्तमवनामितः कायु तथैकवारम् ॥९५॥

जिन्होंने उस स्तूप की पूर्ण रूप से या केवल हाथ जोड़कर वन्दना की अथवा एक क्षण के लिए भी अपना मस्तक उठाया अथवा एक बार भी अपने शरीर को प्रणत किया,

नमोऽस्तु बुद्धाय कृतैकवारं येही तदा धातुधरेषु तेषु ।
विक्षिप्तचित्तैरपि एकवारं ते सर्वि प्राप्ता इममग्रबोधिम् ॥९६॥

अथवा जिन्होंने बुद्ध के धात्ववशेषों को धारण करनेवाले उन स्तूपों के निकट जाकर चञ्चल चित्त से भी 'भगवान् बुद्ध को नमस्कार है' ऐसा एक बार भी कहा है, उन सबको श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति हुई।

सुगतान तेषां तद तस्मिकाले परिनिर्वृतानामथ तिष्ठतां वा ।
ये धर्मनामापि श्रुणिसु सत्त्वास्ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ॥९७॥

जिन प्राणियों ने उस समय वर्त्तमान अथवा निर्वाण को प्राप्त उन सुगतों के धर्म को नाम-मात्र भी सुन लिया, वे भी उस ज्ञानप्राप्ति के भागी हुए।

अनागता पी बहुबुद्धकोट्यो अचिन्तिया येषु प्रमाणु नास्ति।
ते पी जिना उत्तमलोकनाथाः प्रकाशयिष्यन्ति उपायमेतम् ॥९८॥

भविष्य में आनेवाले असंख्य तथा अनेक कोटि बुद्ध, जिनकी गणना नहीं है, वे श्रेष्ठ लोकनाथ जिन भी इसी उपाय का प्रकाशन करेंगे।

उपायकौशल्यमनन्तु तेषां भविष्यति लोकविनायकानाम्।
येना विनेष्यन्तिह प्राणकोट्यो बौद्धस्मि ज्ञानस्मि अनास्रवास्मिन् ॥९९॥

संसार के उन नायकों के पास अनन्त उपायकौशल्य होंगे, जिनके द्वारा वे करोड़ों प्राणियों को इस अनास्रव बुद्धज्ञान में विनीत करेंगे।

एकोऽपि सत्त्वो न कदाचि तेषां श्रुत्वान धर्मं न भवेत बुद्धः।
प्रणिधानमेतद्धि तथागतानां चरित्व बोधाय चरापयेयम् ॥१००॥

ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है, जो उनसे धर्मोपदेश सुनकर स्वयं बुद्ध न हो जायगा। तथागतों की तो यह प्रतिज्ञा ही है कि वे स्वयं कर्त्तव्य का पालन करते हुए दूसरों को भी ज्ञानप्राप्ति के मार्ग का उपदेश देंगे।

धर्ममुखा कोटिसहस्रनेके प्रकाशयिष्यन्ति अनागतेऽध्वे।
उपदर्शयन्तो इममेकयानं वक्ष्यन्ति धर्मं हि तथागतत्वे ॥१०१॥

वे भविष्य में अनेक सहस्र कोटि धर्मप्राप्ति के मार्गों का विवेचन करेंगे। इसी एक यान का उपदेश देते हुए वे तथागतत्व की प्राप्ति के साधनभूत धर्म का भी उपदेश देंगे।

स्थितिका हि एषा सद धर्मनेत्री प्रकृतिश्च धर्माण सदा प्रभा।
विदित्व बुद्धा द्विपदानमुत्तमा प्रकाशयिष्यन्तिममेकयानम् ॥१०२॥

इस धर्म की परम्परा सदा अविच्छिन्न रही है और इन धर्मों का रूप भी सदा स्पष्ट रहा है। इस बात को जानते हुए मनुष्यों में श्रेष्ठ बुद्ध इसी एक यान का उपदेश देंगे।

धर्मस्थितिं धर्मनियामतां च नित्यस्थितां लोकि इमामकम्प्याम्।
बुद्धाश्च बोधिं पृथिवीय मण्डे प्रकाशयिष्यन्ति उपायकौशलम् ॥१०३॥

इस लोक में दृढ रूप से नित्य स्थित रहकर धर्म का नियमन करनेवाले वे बुद्ध को स्थित रखनेवाले ज्ञान का उपायकौशल्य के द्वारा इस पृथ्वी-मण्डल पर प्रकाशन करेंगे।

दशसू दिशासू नरदेवपूजितास्तिष्ठन्ति बुद्धा यथ गङ्गवालिकाः।
सुखापनार्थं इह सर्वप्राणिनां ते चापि भाषन्तिममग्रबोधिम् ॥१०४॥

दसों दिशाओं में देवताओं एवं मनुष्यों से पूजित गंगा की बालुका के समान असंख्य बुद्ध वर्त्तमान हैं। ये भी सभी प्राणियों को सुख की प्राप्ति कराने के लिए इस श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश दे रहे हैं।

उपायकौशल्य प्रकाशयन्ति विविधानि यानान्युपदर्शयन्ति।
एकञ्च यानं परिदीपयन्ति बुद्धा इमामुत्तमशान्तभूमिम् ॥१०५॥

बुद्ध उपायकौशल्यों को प्रकाशित करते हैं एवं विविध यानों का उपदेश देते हैं; किन्तु वे उत्तम शांतिदायक इस एक यान पर ही सर्वाधिक प्रकाश डालते हैं।

चरितञ्च ते जानिय सर्वदेहिनां यथाशयं यच्च पुरा निषवितम्।
वीर्यं च स्थामं च विदित्व तेषां ज्ञात्वाधिमुक्ति च प्रकाशयन्ति ॥१०६॥

वे सभी शरीरधारियों के चरित्र, उनके पूर्वजन्मों के आशय, उनके बल एवं धैर्य तथा उनकी प्रवृत्ति को समझकर ही तदनुकूल यान का उपदेश देते हैं।

दृष्टान्तहेतून् बहु दर्शयन्ति बहुकारणाञ् ज्ञानबलन नायकाः।
नानाधिमुक्तांश्च विदित्व सत्त्वान्नानाभिनिर्हारुपदर्शयन्ति ॥१०७॥

वे नायक अपने ज्ञान के बल से अनेक दृष्टान्तों, हेतुओं और कारणों को उपस्थित करते हैं एवं प्राणियों की प्रवृत्ति को जानकर उनके अनुकूल विभिन्न प्रकार के उपदेश देते हैं।

अहं पि चैतर्हि जिनेन्द्रनायको उत्पन्न सत्त्वान सुखापनार्थम्।
संदर्शयामी इम बुद्धबोधि नानाभिनिर्हारसहस्रकोटिभिः ॥१०८॥

अतः, जिनेन्द्रों का नायक मैं भी संसार में उत्पन्न प्राणियों को सुख की प्राप्ति कराने के लिए सहस्रों कोटि भिन्न-भिन्न मार्गों से इस बुद्धज्ञान का उपदेश देता हूँ।

देशेमि धर्मं च बहुप्रकारं अधिमुक्तिमध्याशय ज्ञातव प्राणिनाम्।
संहर्षयामी विविधैरुपायैः प्रत्यात्मिकं ज्ञानबलं ममैतत् ॥१०९॥

प्राणियों की प्रवृत्ति एवं आशय को जानकर मैं अनेक प्रकार से धर्म का उपदेश देता हूँ एवं विविध उपायों से धर्मोपदेश देकर प्रत्येक व्यवित को प्रसन्न रखता हूँ। यही मेरा प्रत्यात्मिक ज्ञानबल है।

अहं पि पश्यामि दरिद्रसत्त्वान् प्रज्ञाय पुण्येहि च विप्रहीणान्।
प्रस्कन्द संसारि निरुद्ध दुर्गे मग्नाः पुनर्दुःखपरम्परासु ॥११०॥

मैं भी बुद्धि एवं पुण्यों से हीन दरिद्र प्राणियों को देख रहा हूँ। ये संसार के दुर्गम मार्ग में उलझे हुए अनेक दुःख-परम्पराओं में निमग्न हैं।

तृष्णाविलग्नांश्चमरीव बाले कामैरिहान्धीकृतसर्वकालम् ।
न बुद्धमेषन्ति महानुभावं न धर्म मार्गन्ति दुखान्तगामिनम् ॥१११॥

जैसे चमरी बालों से ढकी रहती है, उसी तरह वे तृष्णा से आक्रान्त हैं और निरन्तर वासनाओं के कारण अन्धे बने रहते हैं। अतः, वे न तो महानुभाव बुद्ध के दर्शन की ही इच्छा करते हैं और न दुःखों का अन्त करानेवाले धर्म की ही खोज करते हैं।

गतीषु षट्सु परिरुद्धचित्ताः कुदृष्टिदृष्टीषु स्थिता अकम्प्याः ।
दुःखातु दुःखानुप्रधावमानाः कारुण्य मह्यं बलवन्तु तेषु ॥११२॥

उनका चित्त छह प्रकार की विभिन्न गतियों में ही रमा हुआ है। वे कुदृष्टिपूर्ण विचारों में स्थिरभाव से स्थित हैं तथा एक दुःख के अनन्तर दूसरे दुःख के पीछे दौड़ रहे हैं। उनके प्रति मेरे हृदय में महती करुणा है।

सोऽहं विदित्वा तहि बोधिमण्डे सप्ताह त्रीणि परिपूर्ण संस्थितः ।
अर्थं विचिन्तेमिममेवरूपं उल्लोकयन् पादपमेव तत्र ॥११३॥

इस बात को जानकर मैं उस बोधि-मण्डप में पूरे तीन सप्ताह तक बैठा रहा और उस बोधिवृक्ष को देखता हुआ, इसी विषय का चिन्तन करता रहा।

प्रेक्षामि तं चानिमिषं द्रुमेन्द्रं तस्यैव हेष्टे अनुचंक्रमामि ।
आश्चर्यज्ञानञ्च इदं विशिष्टं सत्त्वाश्च मोहान्ध अविद्वसू इमे ॥११४॥

मैं उस श्रेष्ठ वृक्ष को निर्निमेष दृष्टि से देख रहा हूँ और उसी के नीचे घूमते हुए सोच रहा हूँ कि यह ज्ञान, कितना अद्भुत एवं श्रेष्ठ है तथा ये जीव कितने मूर्ख एवं मोहान्ध हैं।

ब्रह्मा च मां याचति तस्मि काले शक्रश्च चत्वारि च लोकपालाः ।
महेश्वरो ईश्वर एव चापि मरुद्गणानाञ्च सहस्रकोट्यः ॥११५॥

उस समय ब्रह्मा, इन्द्र, चारों लोकपाल, महेश्वर, ईश्वर एवं सहस्रों कोटि देवता मुझसे धर्मोपदेश की याचना करते हैं।

कृताञ्जली सर्वि स्थिताः सगौरवा अर्थं च चिन्तेमि कथं करोमि ।
अहञ्च बोधीय वदामि वर्णान् इमे च दुःखैरभिभूत सत्त्वाः ॥११६॥

वे सभी मेरे प्रति आदर की भावना से हाथ जोड़कर खड़े थे और मैं सोच रहा था कि क्या करूँ। मैंने निश्चय किया कि मैं इन्हें श्रेष्ठज्ञान का उपदेश दूँ; क्योंकि ये प्राणी दुःखों से अभिभूत हैं।

त मह्य धर्मं क्षिपि बालभाषितं क्षिपित्व गच्छेयुरपायभूमिम् ।
श्रेयो ममा नैव कदाचि भाषितुं अद्यैव मे निर्वृतिरस्तु शान्ता ॥११७॥

किन्तु, वे मेरे धर्मोपदेश की, उसे मूर्खों का प्रलाप समझकर, उपेक्षा करते हैं। किन्तु, उपेक्षा करके वे नरकगामी बनेंगे। कभी कुछ-न-कुछ कहना ही मेरे लिए उत्तम है। अतः, मैं चाहता हूँ कि आज ही मैं शान्तिदायक निर्वाण को प्राप्त कर लूँ।

पुरिमांश्च बुद्धान् समनुस्मरन्तो उपायकौशल्यु यथा च तषाम् ।
यं नून हं पि इम बुद्धबोधिं त्रिधा विभज्येह प्रकाशयेयम् ।।११८।।

पूर्व बुद्धों का एवं उनके उपायकौशल्यों का जब मैं स्मरण करता हूँ, तब मेरे मन में भी ऐसा विचार आता है कि मैं भी बुद्धज्ञान को तीन भागों में बाँटकर ही इस लोक में प्रकाशित करूँ।

एवं च मे चिन्तितु एष धर्मों ये चान्ये बुद्धा दशसु द्दिशासु ।
दर्शिन्सु ते मह्य तदात्मभावं साधुं ति घोषं समुदीरयन्ति ।।११९।।

जिस समय मैं धर्म के विषय में इस प्रकार चिन्तन कर रहा था, उसी समय दसों दिशाओं में वर्त्तमान अन्य बुद्ध मेरे समक्ष प्रकट हुए एवं 'साधु-साधु' ऐसी घोषणा की।

साधू मुने लोकविनायकाग्र अनुत्तरं ज्ञानमिहाधिगम्य ।
उपायकौशल्यु विचिन्तयन्तो अनुशिक्षसे लोकविनायकानाम् ।।१२०।।

हे लोकविनायकों में श्रेष्ठ मुने! तुम धन्य हो। जो स्वयं श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करके लोकनेताओं के उपायकौशल्य पर विचार करते हुए उनकी शिक्षाओं का पुनः-पुनः उपदेश दे रहे हो।

वयं पि बुद्धाय परं तदा पदं तृधा च कृत्वान प्रकाशयामः ।
हीनाधिमुक्ता हि अविद्वसू नरा भविष्यथा बुद्ध न श्रद्दधेयुः ।।१२१।।

हम भी बुद्धत्व-प्राप्ति के उपदेशों को तीन भागों में बाँटकर ही प्रकाशित करते हैं; क्योंकि नीच विचारवाले एवं मूर्ख मनुष्यों से यदि हम कहें, 'तुम बुद्ध हो जाओगे', तो वे इस बात पर विश्वास नहीं करेंगे।

ततो वयं कारणसंग्रहेण उपायकौशल्य निषेवमाणाः ।
फलाभिलाषं परिकीर्तयन्तः समादपेमो बहुबोधिसत्त्वान् ।।१२२।।

अतः, इन कारणों को दृष्टि में रखते हुए उपायकौशल्यों का आश्रय लेकर अपने अभीष्ट की चर्चा करते हुए हम अनेक बोधिसत्त्वों को ज्ञान का उपदेश देते हैं।

अहं चुदग्रस्तद आसि श्रुत्वा घोषं मनोज्ञं पुरुषर्षभाणाम् ।
उदग्रचित्तो भणि तेष तायिनां न मोहवादी प्रवरा महर्षी ।।१२३।।

मैं मनुष्यों में श्रेष्ठ बुद्धों के मनोहर शब्द को सुनकर उस समय अत्यन्त प्रसन्न

हुआ एवं प्रसन्न होकर, मैंने उन श्रेष्ठ जिनों से कहा—'श्रेष्ठ महर्षि मोहयुक्त वाणी नहीं बोलते।'

अहं पि एवं समुदाचरिष्ये यथा वदन्ती विदु लोकनायकाः ।
अहं पि संक्षोभि इमस्मि दारुणे उत्पन्न सत्त्वान कषायमध्ये ।।१२४।।

जैसा बुद्धिमान् लोकनायक कहते हैं, मैं भी वैसा ही आचरण करूँगा; क्योंकि मैं भी प्राणियों को संक्षुब्ध कर देनेवाले इस भयंकर कषाय के मध्य उत्पन्न हुआ हूँ।

ततो ह्यहं शारिसुता विदित्वा वाराणसीं प्रस्थितु तस्मि काल ।
तहि पन्चकानां प्रवदामि भिक्षुणां धर्मं उपायेन प्रशान्तभूमिम् ।।१२५।।

हे शारिपुत्र ! इस बात को जानकर मैं उसी समय वाराणसी चला गया। वहाँ मैंने इस श्रेष्ठ एवं शान्तिदायक धर्म का पाँच भिक्षुओं को उपायकौशल्यों के द्वारा उपदेश किया।

ततः प्रवृत्तं मम धर्मचक्रं निर्वाणशब्दश्च अभूषि लोके ।
अर्हन्तशब्दस्तथ धर्मशब्दः संघस्य शब्दश्च अभूषि तत्र ।।१२६।।

उसी समय से मेरा धर्मचक्र चला एवं संसार में निर्वाण की ध्वनि गूँजी। उसी समय अर्हत्, धर्म तथा संघ शब्द की भी वहाँ चर्चा हुई।

भाषामि वर्षाणि अनल्पकानि निर्वाणभूमिं चुपदर्शयामि ।
संसारदुःखस्य च एष अन्तो एवं वदामी अहु नित्यकालम् ।।१२७।।

अनेक वर्षों तक मैंने उपदेश किया एवं निर्वाण के मार्ग का प्रदर्शन किया। 'संसार के दुःखों का यही अन्त है', इस प्रकार मैं सदा कहता रहा।

यस्मिंश्च काले अहु शारिपुत्र पश्यामि पुत्रान् द्विपदोत्तमानाम् ।
ये प्रस्थिता उत्तममग्रबोधिं कोटीसहस्राणि अनल्पकानि ।।१२८।।

हे शारिपुत्र ! उस समय मुझे मनुष्यों म श्रेष्ठ तथागत के अनेक सहस्र कोटि पुत्रों के दर्शन हुए, जिन्होंने श्रष्ठ अग्रबोधि की प्राप्ति कर ली थी।

उपसंक्रमित्वा च ममैव अन्तिके कृताञ्जलीः सर्वि स्थिताः सगौरवाः ।
येही श्रुतो धर्म जिनान आसीत् उपायकौशल्यु बहुप्रकारम् ।।१२९।।

वे सभी मेरे निकट आये एवं मेरे प्रति आदर की भावना से हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उन्होंने जिनों के धर्मोपदेश एवं अनेक प्रकार के उपायकौशल्यों को सुन रखा था।

ततो ममा एतदभूषि तत्क्षणं समयो ममा भाषितुमग्रधर्मम् ।
यस्याहमर्थं इह लोकि जातः प्रकाशयामी तमिहाग्रबोधिम् ।।१३०।।

तब उस क्षण मेरे मन में यह विचार आया कि जिसलिए मैं इस लोक में उत्पन्न हुआ हूँ, वह श्रेष्ठ धर्मोपदेश देने का मेरा समय आ गया है । अतः, मैं उस अग्रधर्म को यहाँ प्रकाशित करता हूँ ।

दुःश्रद्दधं एतु भविष्यतेऽद्य निमित्तसंज्ञानिह बालबुद्धिनाम् ।
अधिमानप्राप्तान अविद्वसूनां इमे तु श्रोष्यन्ति हि बोधिसत्त्वाः ।।१३१।।

इस समय मेरे धर्मोपदेश पर श्रद्धा करना अभिमान में चूर, मूर्ख एवं निमित्तसंज्ञक क्षद्रबुद्धि मनुष्यों के लिए कठिन होगा । किन्तु. ये बोधिसत्त्व इसे अवश्य सुनेंगे ।

विशारदश्चाहु तदा प्रहृष्टः संलीयनां सर्व विवर्जयित्वा ।
भाषामि मध्ये सुगतात्मजानां तांश्चैव बोधाय समादपेमि ।।१३२।।

सभी आशंकाओं को छोड़कर एवं अत्यन्त प्रसन्न होकर मैं कुशलतापूर्वक सुगत के पुत्रों के बीच भाषण करने लगा और उन्हें ज्ञानप्राप्ति का उपदेश देने लगा।

संदृश्य चैतादृशबुद्धपुत्रांस्तवापि काङक्षा व्यपनीत भेष्यति ।
ये चा शता द्वादशिमे अनास्रवा बुद्धा भविष्यन्तिमि लोकि सर्वे ।।१३३।।

इस प्रकार क बुद्धपुत्रों को देखकर मैंने कहा—तुम्हारे सन्देह भी दूर होंगे और मेरि ये बारह सौ अनास्रव शिष्य भी इस संसार में बुद्धत्व प्राप्त करेंगे ।

यथैव तेषां पुरिमाण तायिनां अनागतानाञ्च जिनान धर्मता ।
ममापि एषैव विकल्पवर्जिता तथैव हं देशयि अद्य तुभ्यम् ।।१३४।।

पूर्व काल में उत्पन्न, भविष्य में होनेवाले शक्तिशाली जिनों के धर्म का जैसा स्वरूप है, वैसा ही तरह यह मेरा धर्म भी विकल्पों से मुक्त है । आज मैं तुम्हें इसका उपदेश दूँगा ।

कदाचि कर्हिचि कथंचि लोक उत्पादु भोति पुरुषर्षभाणाम् ।
उत्पद्य चा लोकि अनन्तचक्षुषः कदाचिदेतादृशु धर्म देशयुः ।।१३५।।

महापुरुषों का जन्म इस संसार में कम अवसरों पर, कम स्थानों पर और किसी प्रकार ही होता है । इस संसार में जन्म लेकर दिव्यदृष्टि के धारक ये इस प्रकार के धर्म का कभी-कभी ही उपदेश करते हैं ।

सुदुर्लभो इदृशु अग्रधर्मः कल्पान कोटीनयुतैरपि स्यात् ।
सुदुर्लभा ईदृशकाश्च सत्त्वाः श्रुत्वान ये श्रद्दधि अग्रधर्मम् ।।१३६।।

असंख्यकोटि कल्पों में भी इस प्रकार का श्रेष्ठ धर्म दुर्लभ है एवं ऐसे प्राणी भी दुर्लभ हैं, जो इस अग्रधर्म को सुनकर इसमें श्रद्धा रख सकें ।

औदुम्बरं पुष्प यथैव दुर्लभं कदाचि कहिंचि कथंचि दृश्यतें ।
मनोज्ञरूपं च जनस्य तद् भवेदाश्चर्यु लोकस्य सदेवकस्य ।।१३७।।

जिस प्रकार गूलर का फूल दुर्लभ है तथा कहीं-कहीं कभी-कभी और बड़ी कठिनाई से ही दिखलाई पड़ता है तथा देवों-समेत सभी प्राणियों के लिए सुन्दर और आश्चर्यजनक होता है ।

अतश्च आश्चर्यतरं वदामि श्रुत्वान यो धर्ममिमं सुभाषितम् ।
अनुमोदि एकं पि भणेय वाचं कृत सर्वबुद्धान भवेय पूजा ।।१३८।।

इससे भी अधिक आश्चर्यपूर्ण धर्म का मैं उपदेश देता हूँ, जो इस सुन्दर धर्म को सुनकर इसका अनुमोदन करेगा एवं इसके विषय में एक भी शब्द बोलेगा, वह सभी बुद्धों की पूजा करने के पुण्य का भागी होगा ।

व्यपनेहि काङ्क्षामिह संशयं च आरोचयामि अहु धर्मराजा ।
समादपेमि अहमग्रबोधौ न श्रावकाः केचिदिहास्ति मह्यम् ।।१३९।।

इस विषय में जितने भी सन्देह और संशय हैं, उन्हें छोड़ दो। मैं धर्म का राजा हूँ और उपदश दे रहा हूँ । मैं अग्रबोधि का उपदेश दे रहा हूँ, फिर भी इस संसार में मुझे श्रावक नहीं प्राप्त हो रहे हैं ।

तव शारिपुत्रैतु रहस्यु भोतु ये चापि मे श्रावक मह्य सर्वे ।
ये बोधिसत्त्वाश्च इमे प्रधाना रहस्यमेतन्मम धारयन्तु ।।१४०।।

हे शारिपुत्र ! तुम मेरे इस रहस्य को धारण करो तथा मेरे अन्य श्रावक तथा प्रधान बोधिसत्त्व भी मेरे इस रहस्यपूर्ण उपदेश को धारण करें ।

किं कारणं पञ्चकषायकाले क्षुद्राश्च दुष्टाश्च भवन्ति सत्त्वाः ।
कामैरिहाधीकृत बालबुद्धयो न तेष बोधाय कदाचि चित्तम् ।।१४१।।

इसका क्या कारण है कि पञ्चकषाय के समय सभी जीव दुष्ट और नीच प्रकृतिक होते हैं । वे मूर्ख होते हैं एवं कामों में अन्धे होते हैं । उनका मन ज्ञान प्राप्ति की ओर कभी प्रवृत्त नहीं होता ।

श्रुत्वा च यानं मम एतदेकं प्रकाशितं तन जिनेन आसीत् ।
अनागतेऽध्वानि भवेयु सत्त्वाः सूत्रं क्षिपित्वा नरकं व्रजेयुः ।।१४२।।

जिन द्वारा प्रकाशित मेरे इस एक यान के उपदेश को अश्रद्धापूर्वक सुननेवाले प्राणी आनेवाले समय में चक्कर काटते रहेंगे एवं इस सूत्र का निरादर करने के कारण नरकप्राप्ति के भागी होंगे ।

लज्जी शुची ये च भवेयु सत्त्वाः संप्रस्थिता उत्तममग्रबोधिम् ।
विशारदो भूत्व वदेमि तेषामेकस्य यानस्य अनन्तवर्णान् ।।१४३।।

किन्तु, वे प्राणी जो नम्र एवं पवित्र हैं तथा श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं, उन्हें मैं पूर्ण कुशलता के साथ इस एक यान के अनेक रूपों का उपदेश देता हूँ ।

एतादृशी देशन नायकानामुपायकौशल्यमिदं वरिष्ठम् ।
बहुहि सन्धावचनेहि चोक्तं दुर्बोध्यमेतं हि अशिक्षितेहि ।।१४४।।

नायकों की इसी प्रकार की देशना होती है और यही उनका श्रेष्ठ उपायकौशल्य है । उनके द्वारा अनेक उपदेशों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया यह ज्ञान अशिक्षितों के लिए सर्वथा दुर्बोध्य है ।

तस्माद्धि सन्धावचनं विजानिया बुद्धान लोकाचरियाण तायिनाम् ।
जहित्व काङक्षां विजहित्व संशयं भविष्यथा बुद्ध जनेथ हर्षम् ।।१४५।।

अतः, संसार के उपदेशक तथा नायक इन बुद्धों के रहस्यमय उपदेशों को समझना चाहिए । इससे तुम्हारे सन्देह और संशय दूर होंगे तथा तुम बुद्धत्व की प्राप्ति करके आनन्द के भागी बनोगे ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याय उपायकौशल्यपरिवर्तो
नाम द्वितीयः ।।२।।

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का उपायकौशल्य नामक
दूसरा परिवर्त समाप्त हुआ ।

◆

औपम्यपरिवर्तः

अथ खल्वायुष्मान् शारिपुत्रस्तस्यां वेलायां तुष्ट उदग्र आत्तमनाः प्रमुदितः प्रीतिसौमनस्यजातो येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य भगवतोऽभिमुखो भगवन्तमेव व्यवलोकयमानो भगवन्तमेतदवोचत् । आश्चर्याद्भुतप्राप्तोऽस्मि भगवन्नौद्बिल्यप्राप्त इदमेवंरूपं भगवतोऽन्तिकाद् घोषं श्रुत्वा । तत् कस्य हेतोः । अश्रुत्वैव तावदहं भगवन्निदमेवंरूपं भगवतोऽन्तिकाद् धर्मं तदन्यान् बोधिसत्त्वान् दृष्ट्वा बोधिसत्त्वानां चानागतेऽध्वनि बुद्धनाम श्रुत्वातीव शोचाम्यतीव सन्तप्ये भ्रष्टोऽस्म्येवंरूपात् तथागतज्ञानगोचराज् ज्ञानदर्शनात् । यदा चाहं भगवन्नभीक्ष्णं गच्छामि पर्वतगिरिकन्दराणि वनषण्डान्यारामनदीवृक्षमूलान्येकान्तानि दिवाविहाराय तदाप्यहं भगवन् यद्भूयस्त्वेनानेनैव विहारेण विहरामि । तुल्ये नाम धर्मधातुप्रवेशे वयं भगवता हीनेन यानेन निर्यातिताः । एवं च मे भगवंस्तस्मिन् समये भवत्यस्माकमेवैषोऽपराधो नैव भगवतोऽपराधः । तत् कस्य हेतोः । सचेद् भगवानस्माभिः प्रतीक्षितः स्यात् सामुत्कर्षिकीं धर्मदेशनां कथयमानो यदिदमनुत्तरां सम्यक्सम्बोधिमारभ्य तेष्वेव वयं भगवन् धर्मेषु निर्याताः स्याम । यत् पुनर्भगवन्नस्माभिरनुपस्थितेषु बोधिसत्त्वेषु संधाभाष्यं भगवतोऽजानमानैस्त्वरमाणैः प्रथमभाषितैव तथागतस्य धर्मदेशना श्रुत्वोद्गृहीता धारिता भाविता चिन्तिता मनसिकृता । सोऽहं भगवन्नात्मपरिभाषणयैव भूयिष्ठेन रात्रिंदिवान्यतिनामयामि । अद्यास्मि भगवन् निर्वाणप्राप्तः । अद्यास्मि भगवन् परिनिर्वृतः । अद्य मे भगवन्नर्हत्त्वं प्राप्तम् । अद्याहं भगवन् भगवतः पुत्रो ज्येष्ठ औरसो मुखतो जातो धर्मजो धर्मनिर्मितो धर्मदायादो धर्मनिर्वृत्तः । अपगतपरिदाहोऽस्म्यद्य भगवन्निममेवंरूपमद्भुतधर्ममश्रुतपूर्वं भगवतोऽन्तिकाद् घोषं श्रुत्वा ।

तदनन्तर, उस समय आयुष्मान् शारिपुत्र अत्यधिक संतुष्ट, प्रसन्न, आश्वस्त, प्रमुदित तथा प्रीति एवं मानसिक प्रसाद को प्राप्त होकर जिस ओर भगवान् थे, उस ओर हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए सम्मुख खड़े हो गये और भगवान् को देखते हुए उनसे इस प्रकार बोले—हे भगवन् ! आपके मुख से इस प्रकार के शब्द को सुनकर मैं आश्चर्य, विस्मय एवं कुतूहल में पड़ गया हूँ । ऐसा क्यों ? क्योंकि, हे भगवन् ! भगवान् के मुख से इस प्रकार के धर्मोपदेश को विना सुने ही उन अन्य

बोधिसत्त्वों को देखकर तथा बोधिसत्त्वों को भविष्यत् काल में प्राप्त होनेवाले 'बुद्ध' नाम को सुनकर मैं अत्यन्त चिन्तित हो गया एवं दुःखी होकर सोचने लगा कि इस प्रकार के तथागत के ज्ञानपूर्ण उपदेश से प्राप्त होनेवाले ज्ञान की प्राप्ति से मैं वंचित रह गया। हे भगवन् ! मैं जब कभी दिवाविहार की इच्छा से पर्वत की कन्दराओं, वनखण्डों, सुन्दर उपवनों, नदीतटों एवं वृक्षों के नीचे जाता हूँ, तब हे भगवन् ! इसी प्रकार के विहार (चिन्तन) में मग्न हो जाता हूँ। इसी के समान धर्मधातु-विषयक ज्ञान की दीक्षा भगवान् ने हमें हीनयान के माध्यम से दी है। हे भगवन् ! उस समय मेरे मन में यह विचार आया कि यह हमारा दोष है, भगवान् का नहीं। ऐसा क्यों ? क्योंकि, यदि हम उस समय भगवान् के निकट रहते, जब कि वे श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय में श्रेष्ठ देशना कर रहे थे, तब हे भगवन् ! हमलोग भी उन्हीं धर्मों में पूर्ण दीक्षा प्राप्त कर लेते। पुनः हे भगवन्! हमलोगों ने भगवान् तथागत के रहस्यमय उपदेशों को विना समझे हुए ही, जबकि अन्य बोधिसत्त्व अनुपस्थित थे, तथागत द्वारा पहले-पहल की गई उस धर्म-देशना को सुनकर शीघ्रतापूर्वक उसे ग्रहण करके धारण कर लिया तथा उसकी भावना एवं चिन्तन करके उसे हृदयंगम कर लिया। हे भगवन् ! मैं रात-दिन आत्मनिन्दा करते हुए ही अपना अधिकांश समय व्यतीत कर रहा हूँ। हे भगवन् ! आज मैंने निर्वाण प्राप्त कर लिया है। हे भगवन्! आज मैं परिनिर्वृत हो गया हूँ। हे भगवन् ! आज मैं ने अर्हत्-पद प्राप्त कर लिया है। हे भगवन् ! आज मैं भगवान् के मुख से उत्पन्न उनका धर्मज, धर्मनिर्मित धर्मदायाद एवं धर्मनिर्वृत ज्येष्ठ औरस पुत्र हो गया हूँ। हे भगवन् ! आज आपके मुख से इस प्रकार के अद्भुत एवं अश्रुतपूर्व धर्मोपदेश को सुनकर मेरे सभी ताप शान्त हो गये।

अथ खल्वायुष्मान् शारिपुत्रस्तस्यां वेलायां भगवन्तमाभिर्गाथाभिरध्यभाषत ।

तदनन्तर, उस अवसर पर आयुष्मान् शारिपुत्र ने भगवान् से ये गाथाएँ कहीं —

आश्चर्यप्राप्तोऽस्मि महाविनायक औद्बिल्यजातो इमु घोष श्रुत्वा ।
कथंकथा मह्य न भूय काचित् परिपाचितोऽहं इह अग्रयाने ॥१॥

हे महाविनायक ! इस शब्द को सुनकर मैं आश्चर्य में पड़ गया हूँ एवं मेरे हृदय में कुतूहल उत्पन्न हो रहा है। अब मेरे मन में कोई भी सन्देह नहीं रह गया है तथा मैं इस अग्रयान के विषय में पूर्ण परिपक्व हो गया हूँ।

आश्चर्यभूतः सुगतान घोषः काङक्षां च शोकं च जहाति प्राणिनाम् ।
क्षीणास्रवस्यो मम यश्च शोको विगतोऽस्ति सर्व श्रुणियान घोषम् ॥२॥

सुगतों की वाणी आश्चर्यजनक होती है तथा वह प्राणियों के सन्देह और शोक को नष्ट कर देती है। इस शब्द को सुनकर मेरे सभी आस्रव क्षीण हो गये तथा जो मेरा शोक था, वह भी सब दूर हो गया।

दिवाविहारम् अनुचंक्रमन्तो वनषण्ड आरामथ वृक्षमूलम् ।
गिरिकन्दरांश्चाप्युपसेवमानो अनुचिन्तयामी इममेव चिन्ताम् ॥३॥

अब मैं दिवाविहार करता हुआ एवं वनखण्ड, उपवन, वृक्षमूल तथा गिरि-कन्दराओं का सेवन करते समय भी एकमात्र इसी विषय का चिन्तन करता रहता हूँ ।

अहोऽस्मि परिवञ्चितु पापचित्तैस्तुल्येषु धर्मेषु अनास्रवेषु ।
यन्नाम त्रैधातुकि अग्रधर्मं न देशयिष्यामि अनागतेऽध्वे ॥४॥

पापपूर्ण विचारों ने मुझे श्रेष्ठ धर्म के समान प्रतीत होनेवाले असद्धर्मों में उलझाये रखकर खूब ठगा है । क्या अब मुझे भविष्य में इस त्रैधातुक संसार में इस अग्रधर्म की देशना करने का अवसर नहीं मिलेगा ?

द्वात्रिंशतीलक्षण मह्य भ्रष्टा सुवर्णवर्णच्छविता च भ्रष्टा ।
बला विमोक्षाश्चिमि सर्वि रिञ्चिता तुल्येषु धर्मेषु अहोऽस्मि मूढः ॥५॥

मेरे वत्तीसों लक्षण नष्ट हो गये । शरीर का सुनहला वर्ण भी नष्ट हो गया । सभी शक्तियाँ भी नष्ट हो गईं और सभी विमोक्षाएँ भी मुझे छोड़ गईं तथा मैं इन असद्धर्मों में पड़कर सर्वथा मूढ ही वना रहा ।

अनुव्यञ्जना ये च महामुनीनामशीतिशूर्णाः प्रवरा विशिष्टाः ।
अष्टादशावेणिक ये च धर्मास्ते चापि भ्रष्टा अहु वञ्चितोऽस्मि ॥६॥

महामुनियों की जो श्रेष्ठ और विशिष्ट अस्सी अनुव्यंजनाएँ मुझमें थीं एवं जो अट्ठारह आवेणिक-धर्म थे, वे भी सव नष्ट हो गये और मैं घोर वंचना में पड़ गया हूँ ।

दृष्ट्वा च त्वां लोकहितानुकम्पी दिवाविहारं परिगम्य चैकः ।
हा वञ्चितोऽस्मीति विचिन्तयामि असङ्गज्ञानातु अचिन्तियातः ॥७॥

जव अकेले दिवाविहार करते हुए मैंने लोक के हितकारी एवं सब पर दया करनेवाले तुमको देखा, तो मुझे यह जानकर अत्यधिक दुःख हुआ कि मैं अचिन्त्य एवं असंग ज्ञान से वंचित रह गया हूँ ।

रात्रिन्दिवानि क्षपयामि नाथ भूयिष्ठ सो एव विचिन्तयन्तः ।
पृच्छामि तावद् भगवन्तमेव भ्रष्टोऽहमस्मीत्यथ वा न वेति ॥८॥

हे स्वामी ! इस विषय पर गम्भीर रूप से सोचते हुए मैं रात-दिन विताने लगा । मैं भगवान् से ही पूछता हुँ कि मैं अपने स्थान से भ्रष्ट हो गया हूँ या नहीं ।

एवं च मे चिन्तयतो जिनेन्द्र गच्छन्ति रात्रिन्दिव नित्यकालम् ।
दृष्ट्वा च अन्यान् बहु बोधिसत्त्वान् संवर्णिताँल्लोकविनायकेन ॥९॥

हे जिनेन्द्र ! इसी प्रकार की चिन्ता में पड़े हुए मेरे रात-दिन सदा वोलने लगे । लोकनायक आपके द्वारा अन्य अनेक वोधिसत्त्वों को प्रशंसित होते देखकर,

श्रुत्वा च सोऽहं इमु बुद्धधर्मं सन्धाय एतत् किल भाषितं ति ।
अतर्किकं सूक्ष्ममनास्रवञ्च ज्ञानं प्रणेती जिन बोधिमण्डे ।।१०।।

तथा इस वुद्ध-धर्म को सुनकर मैं समझ गया कि इस धर्म का उपदेश वस्तुतः ज्ञान के लिए ही किया गया है । वोधि-मण्डप में बैठकर भगवान् ने जिस ज्ञान की घोषणा की है, वह सर्वथा अतर्क्य, सूक्ष्म एवं दोषों से रहित है ।

दृष्टीविलग्नो ह्यहमासि पूर्वं परिव्राजकस्तीर्थिकसंमतश्च ।
ततो मम आशयु ज्ञात्व नाथो दृष्टीविमोक्षाय ब्रवीति निर्वृतिम् ।।११।।

पहले मैं तीर्थों का भ्रमण करनेवाला परिव्राजक एवं उलझी दृष्टिवाला था । हे नाथ ! वाद में आपने मेरे आशय को जानकर मेरे दृष्टि-दोष को दूर करने के लिए निर्वाण का उपदेश दिया था ।

विमुच्यता दृष्टिकृतानि सर्वशः शून्यांश्च धर्मानिहु स्पर्शयित्वा ।
ततो विजानाम्यहु निर्वृतोऽस्मि न चापि निर्वाणमिदं प्रवुच्यति ।।१२।।

दृष्टि-कृत दोषों से पूर्णतः मुक्त होकर एवं शून्यवाद के सिद्धान्तों को जानकर मुझे ऐसा लगा कि मैं वस्तुतः निर्वाण को प्राप्त हो गया हूँ । यद्यपि कि यह वास्तविक निर्वाण नहीं माना गया है ।

यदा तु बुद्धो भवतेऽग्रसत्त्वः पुरस्कृतो नरमरुयक्षराक्षसैः ।
द्वात्रिंशतीलक्षणरूपधारी अशेषतो निर्वृतु भोति तत्र ।।१३।।

किन्तु, जव श्रेष्ठ प्राणी मनुष्यों, देवताओं, यक्षों और राक्षसों से पूजित होकर वत्तीस लक्षणों से युक्त वुद्ध वन जाता है, तव उसे वास्तविक निर्वाण प्राप्त होता है ।

व्यपनीत सर्वाणि मि मन्यितानि श्रुत्वा च घोषं अहमद्य निर्वृतः ।
यदापि व्याकुर्वसि अग्रबोधौ पुरतो हि लोकस्य सदेवकस्य ।।१४।।

देवताओं-समेत इस संसार के सामने जो तुम मुझे अग्रवोधि का उपदेश कर रहे हो, उस उपदेश को सुनकर मेरी सभी चिन्ताएँ दूर हो गईं एवं ऐसा लगता है कि आज सचमुच मैंने निर्वाण की प्राप्ति कर ली है ।

बलवच्च आसीन्मम छम्भिततत्वं प्रथमं गिरं श्रुत्व विनायकस्य ।
मा हैव मारो स भवेद्विहेठको अभिनिर्मिनित्वा भुवि बुद्धवेषम् ।।१५।।

विनायक के प्रथम उपदेश को सुनकर मुझे अत्यधिक भय हुआ था कि यह कहीं वुद्ध के वेश को धारण किये हुए दुष्ट मार न हो ।

यदा तु हेतूहि च कारणैश्च दृष्टान्तकोटीनयुतैश्च दर्शिता ।
सुपरिस्थिता सा वरबुद्धबोधिस्ततोऽस्मि निष्काङक्षु श्रुणित्व धर्मम् ।।१६।।

किन्तु, जब हेतुओं, कारणों और असंख्य कोटि दृष्टान्तों के द्वारा विनायक ने श्रेष्ठ बुद्धज्ञान का उपदेश देकर उसकी प्रतिष्ठा कर दी, तब उस समय उस धर्मोपदेश को सुनकर मैं सन्देह-रहित हो गया ।

यदा च मे बुद्धसहस्रकोट्यः कीर्तेष्यती तान् परिनिर्वृतान् जिनान् ।
यथा च तैर्देशितु एष धर्म उपायकौशल्य प्रतिष्ठिहित्वा ।।१७।।

जब तुमने निर्वाण प्राप्त उन सहस्र कोटि बुद्धों की चर्चा मुझसे की और बताया कि इन्होंने उपाय-कौशल्यों के द्वारा किस प्रकार धर्म की प्रतिष्ठा की थी,

अनागताश्चो बहुबुद्ध लोके तिष्ठन्ति ये चो परमार्थदर्शिनः ।
उपायकौशल्यशतैश्च धर्मं निदर्शयिष्यन्त्यथ देशयन्ति च ।।१८।।

तथा इस लोक में जो अनागत एवं असंख्य परमार्थदर्शी वर्तमान बुद्ध हैं, वे सैकड़ों उपायकौशल्यों के द्वारा इस धर्म का विवेचन कर रहे हैं तथा करते रहेंगे ।

तथा च ते आत्मन यादृशी चरी अभिनिष्क्रमित्वा प्रभृतीय संस्तुता ।
बुद्धं च ते यादृशु धर्मचक्रं यथा च तेऽवस्थित धर्मदेशना ।।१९।।

तथा, निष्क्रमण के अनन्तर तुम्हारी जैसी अपनी श्रेष्ठ चर्या थी, जिस प्रकार तुमने धर्मचक्र को जाना था एवं जैसी तुम्हारी धर्म-देशना थी,

ततश्च जानामि न एष मारो भूतां चरिं दर्शयि लोकनाथः ।
न ह्यत्र माराण गतीहि विद्यते ममैव चित्तं विचिकित्सप्राप्तम् ।।२०।।

इन सब बातों को जानने के अनन्तर मुझे विश्वास हो गया कि यह मार नहीं है, किन्तु स्वयं लोकनाथ वास्तविक चर्या का उपदेश कर रहे हैं, यहाँ मारों की गति नहीं है, मेरा मन व्यर्थ ही सन्देह में पड़ गया था ।

यदा तु मधुरेण गभीरवल्गुना संहर्षितो बुद्धस्वरेण चाहम् ।
तदा मि विध्वंसित सर्वसंशया विचिकित्स नष्टा च स्थितोऽस्मि ज्ञाने ।।२१।।

जब मैंने बुद्ध की मधुर, गम्भीर एवं सुन्दर वाणी सुनी, तब मैं महान् हर्ष को प्राप्त हो गया । उस समय मेरे सभी सन्देह विध्वस्त हो गये, विचिकित्सा नष्ट हो गई तथा मुझे स्थिर ज्ञान की प्राप्ति हो गई ।

निःसंशयं भेष्यि तथागतोऽहं पुरस्कृतो लोकि सदेवकेऽस्मिन् ।
संधाय वक्ष्ये इमु बुद्धबोधिं समादपेन्तो बहुबोधिसत्त्वान् ।।२२।।

मुझे विश्वास हो गया कि देवों-समेत इस लोक में निस्सन्देह मैं सबके द्वारा

पूंजित तथागत बनूँगा एवं अनेक बोधिसत्त्वों को बुद्धज्ञान में प्रतिष्ठित करते हुए श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश करूँगा।

एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं शारिपुत्रमेतदवोचत् । आरोचयामि ते शारिपुत्र प्रतिवेदयामि तेऽस्य सदेवकस्य लोकस्य पुरतः समारकस्य सब्रह्मकस्य सश्रमणब्राह्मणिकायाः प्रजायाः पुरतः । मया त्वं शारिपुत्र विंशतीनां बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राणामन्तिके परिपाचितोऽनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । मम च त्वं शारिपुत्र दीर्घरात्रमनुशिक्षितोऽभूत् । स त्वं शारिपुत्र बोधिसत्त्वसंमन्त्रितेन बोधिसत्त्वरहस्येनेह मम प्रवचन उपपन्नः । स त्वं शारिपुत्र बोधिसत्त्वाधिष्ठानेन तत्पौर्वकं चर्याप्रणिधानं बोधिसत्त्वसंमन्त्रितं बोधिसत्त्वरहस्यं न समनुस्मरसि । निर्वृतोऽस्मीति मन्यसे । सोऽहं त्वां शारिपुत्र पूर्वचर्याप्रणिधानज्ञानानुबोधमनुस्मारयितुकाम इमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं सूत्रान्तं महवैपुल्यं बोधिसत्त्वाववादं सर्वबुद्धपरिग्रहं श्रावकाणां संप्रकाशयामि ।

आयुष्मान् शारिपुत्र के ऐसा कहने पर भगवान् उनसे इस प्रकार बोले—हे शारिपुत्र ! देवों, मारों एवं ब्रह्माओं से युक्त इस सम्पूर्ण लोक के एवं श्रमणों तथा ब्राह्मणिकों से युक्त प्रजा के सम्मुख तुमसे कहता हूँ, प्रतिवेदन करता हूँ। हे शारिपुत्र ! मैंने तुम्हें बीस कोटीनयुतशत सहस्र बुद्धों के सम्मुख श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय में पूर्णतः परिपक्व बनाया था। हे शारिपुत्र ! मैंने तुम्हें दीर्घकाल तक शिक्षा दी थी। हे शारिपुत्र ! मैंने तुम्हें अपने उपदेशों के द्वारा बोधिसत्त्वों की गुप्त नीति एवं बोधिसत्त्वों के रहस्य का पूर्णतः जानकार बना दिया है। हे शारिपुत्र ! यह बोधिसत्त्वों की इच्छा का फल था कि बोधिसत्त्वों के द्वारा बतलाये गये उनके रहस्यमय पूर्वकालिक चर्या-विषयक उपदेश तुम्हें स्मरण नहीं है तथा 'मैं निर्वृत हो गया हूँ', ऐसा मानते हो। हे शारिपुत्र ! मैं तुम्हारे पूर्वचर्याविषयक प्रणिधान को उद्बुद्ध करने के लिए सभी श्रावकों के सम्मुख सभी बुद्धों द्वारा ग्रहण करने योग्य एवं बोधिसत्त्वों द्वारा उपदिष्ट धर्मपर्यायि-रूप इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक महावैपुल्य सूत्रान्त का विवेचन कर रहा हूँ।

अपि खलु पुनः शारिपुत्र भविष्यसि त्वमनागतेऽध्वन्यप्रमेयैः कल्पैरचिन्त्यैरप्रमाणैर्बहूनां तथागतकोटीनयुतशतसहस्राणां सद्धर्मं धारयित्वा विविधां च पूजां कृत्वेमामेव बोधिसत्त्वचर्यां परिपूर्य पद्मप्रभो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यसि विद्याचरणसम्पन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणाञ्च बुद्धो भगवान् ।

पुनः हे शारिपुत्र ! भविष्य में अप्रमेय, अचिन्त्य एवं असंख्य कल्पों के अनन्तर अनेक कोटीनयुत शतसहस्र तथागतों के श्रेष्ठ धर्म को धारण करके, उनकी विविध प्रकार से

पूजा करके तथा इस बोधिसत्त्व-चर्या को पूरा करके तुम इस संसार में ज्ञान और आचरण से युक्त सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, इन्द्रियों के नियामक एवं देवताओं और मनुष्यों के शासक पद्मप्रभ नामक अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत बुद्ध के रूप में उत्पन्न होगे ।

तेन खलु पुनः शारिपुत्र समयेन तस्य भगवतः पद्मप्रभस्य तथागतस्य विरजं नाम बुद्धक्षेत्रं भविष्यति समं रमणीयं प्रासादिकं परमसुदर्शनीयं परिशुद्धं च स्फीतं च ऋद्धं च क्षेमं च सुभिक्षं च बहुजननारीगणाकीर्णं च मरुप्रकीर्णं च वैडूर्यमयं सुवर्णसूत्राष्टापदनिबद्धम् । तेषु चाष्टापदेषु रत्नवृक्षा भविष्यन्ति सप्तानां रत्नानां पुष्पफलैः सततसमितं समर्पिताः ।

हे शारिपुत्र ! उस समय इन भगवान् तथागत पद्मप्रभ का विरज नामक बुद्धक्षेत्र होगा, जो सम, सुन्दर, आनन्ददायक, परमदर्शनीय, परिशुद्ध, विस्तृत, धनधान्यसम्पन्न, कल्याणप्रद, सुभिक्ष, असंख्य स्त्री-पुरुषों से युक्त, देवों से पूर्ण, वैदूर्यमय एवं सुवर्णसूत्र-निर्मित अष्टापदों से निर्मित होगा । इन अष्टापदों में रत्नों के वृक्ष होंगे, जिनमें सदैव सात मूल्यवान् रत्नों के बने हुए फल-फूल लगे रहेंगे ।

सोऽपि शारिपुत्र पद्मप्रभस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्त्रीण्येव यानान्यारभ्य धर्मं देशयिष्यति । किं चापि शारिपुत्र स तथागतो न कल्पकषाय उत्पत्स्यते । अपितु प्रणिधानवशेन धर्मं देशयिष्यति ।

हे शारिपुत्र ! वे अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत पद्मप्रभ भी तीन ही यानों का आश्रय लेकर धर्म का उपदेश करेंगे । हे शारिपुत्र ! ऐसी बात नहीं है कि वे तथागत कल्प-कषाय में उत्पन्न हुए नहीं रहेंगे, किन्तु प्रणिधान के द्वारा धर्म का उपदेश करेंगे ।

महारत्नप्रतिमण्डितश्च नाम शारिपुत्र स कल्पो भविष्यति । तत् किं मन्यसे शारिपुत्र केन कारणेन स कल्पो महारत्नप्रतिमण्डित इत्युच्यते । रत्नानि शारिपुत्र बुद्धक्षेत्रे बोधिसत्त्वा उच्यन्ते । ते तस्मिन् काले तस्यां विरजायां लोकधातौ बहवो बोधिसत्त्वा भविष्यन्त्यप्रमेयासंख्येयाचिन्त्यातुल्यामाप्या गणनां समतिक्रान्ता अन्यत्र तथागतगणनया । तेन कारणेन स कल्पो महारत्नप्रतिमण्डित इत्युच्यते ।

हे शारिपुत्र ! उस कल्प का नाम महारत्न-प्रतिमण्डित होगा । हे शारिपुत्र ! क्या तुम जानते हो कि किस कारण से वह कल्प महारत्न-प्रतिमण्डित कहा जाता है ! हे शारिपुत्र ! बुद्धक्षेत्र में रहनेवाले बोधिसत्त्व ही रत्न कहलाते हैं । उस समय उस विरज नामक लोकधातु में अप्रमेय, असंख्येय, अचिन्त्य, अमाप्य एवं गणना से परे अनेक बोधिसत्त्व होंगे । इसी कारण से वह कल्प महारत्न-प्रतिमण्डित कहलाता है ।

तेन खलु पुनः शारिपुत्र समयेन बोधिसत्त्वास्तस्मिन् बुद्धक्षेत्रे यद्भूयसा

रत्नपद्मविक्रामिणो भविष्यन्ति । अनादिकर्मिकाश्च ते बोधिसत्त्वा भविष्यन्ति चिरचरितकुशलमूला बहुबुद्धशतसहस्रचीर्णब्रह्मचर्यास्तथागतपरिसंस्तुता बुद्धज्ञानाभियुक्ता महाभिज्ञापरिकर्मनिर्जाताः सर्वधर्मनयकुशला मार्दवाः स्मृतिमन्तः । भूयिष्ठेन शारिपुत्रैवंरूपाणां बोधिसत्त्वानां परिपूर्णं तद्बुद्धक्षेत्रं भविष्यति ।

हे शारिपुत्र ! उस समय उस क्षेत्र में रहनेवाले बोधिसत्त्व अधिकांशतः रत्नमय कमलों पर पैर रखकर चलनेवाले होंगे । वे बोधिसत्त्व अनादि काल से विहित कर्मों का सम्पादन करनेवाले, अनन्तकाल तक कुशल-मूल का आचरण करनेवाले, अनेक शत-सहस्र बुद्धों के आश्रय में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले, तथागतों के द्वारा प्रशंसित बुद्धज्ञान में परिनिष्ठित श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति के साधनों में पूर्णताप्राप्त सभी धर्मों के सिद्धान्तों के कुशल ज्ञाता, मृदु एवं स्मृतिसम्पन्न होंगे । वह बुद्धक्षेत्र इस प्रकार के असंख्य बोधिसत्त्वों से परिपूर्ण होगा ।

तस्य खलु पुनः शारिपुत्र पद्मप्रभस्य तथागतस्य द्वादशान्तरकल्पा आयुष्प्रमाणं भविष्यति स्थापयित्वा कुमारभूतत्वम् । तेषाञ्च सत्त्वानामष्टान्तरकल्पा आयुष्प्रमाणं भविष्यति । स च शारिपुत्र पद्मप्रभस्तथागतो द्वादशानामन्तरकल्पानामत्ययेन धृतिपरिपूर्णं नाम बोधिसत्त्वं महासत्त्वं व्याकृत्यानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ परिनिर्वास्यति । अयं भिक्षवो धृतिपरिपूर्णो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो ममान्तरमनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंभोत्स्यते । पद्मवृषभविक्रामी नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यति विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानाञ्च मनुष्याणाञ्च बुद्धो भगवान् । तस्यापि शारिपुत्र पद्मवृषभविक्रामिणस्तथागतस्यैवंरूपमेव बुद्धक्षेत्रं भविष्यति ।

हे शारिपुत्र ! उन पद्मप्रभ नामक तथागत की आयु का परिमाण उनके कुमार-काल को छोड़कर बारह अन्तरकल्पों का होगा । हे शारिपुत्र ! बारह अन्तरकल्पों के बीत जाने पर वे तथागत पद्मप्रभ धृतिपरिपूर्ण नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व को श्रेष्ठ सम्यक्-सम्बोधि का उपदेश देकर स्वयं परिनिर्वाण को प्राप्त करेंगे । हे भिक्षुओ ! यह धृतिपरिपूर्ण नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को शीघ्र प्राप्त करेगा । वह संसार में अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध पद्मवृषभ विक्रामी नामक तथागत होगा । वही ज्ञान और आचरण से युक्त सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, इन्द्रियों को वश में रखनेवाला तथा मनुष्य एवं देवताओं का शासक भगवान् बुद्ध होगा । हे शारिपुत्र ! उस पद्मवृषभ विक्रामी नामक तथागत का भी इसी प्रकार का बुद्धक्षेत्र होगा ।

तस्य खलु पुनः शारिपुत्र पद्मप्रभस्य तथागतस्य परिनिर्वृतस्य द्वात्रिंश-

दन्तरकल्पान् सद्धर्मः स्थास्यति । ततस्तस्य तस्मिन् सद्धर्मक्षीणे द्वात्रिंशदन्तरकल्पान् सद्धर्मप्रतिरूपकः स्थास्यति ।

हे शारिपुत्र ! तथागत पद्मप्रभ का सद्धर्म उनके निर्वाण-प्राप्ति करने के अनन्तर बत्तीस अन्तरकल्पों तक प्रतिष्ठित रहेगा । तदनन्तर, उसके उस सद्धर्म के नष्ट होने पर सद्धर्म का प्रतिरूप बत्तीस अन्तरकल्पों तक वर्त्तमान रहेगा।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तपश्चात् भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं--

भविष्यसे शारिसुता तुहंपि अनागतेऽध्वानि जिनस्तथागतः ।
पद्मप्रभो नाम समन्तचक्षुर्विनेष्यसे प्राणिसहस्रकोट्यः ।।२३।।

हे शारिपुत्र ! तुम भी भविष्य में पद्मप्रभ नाम के सर्वद्रष्टा तथागत बुद्ध बनोगे तथा सहस्रों कोटि प्राणियों को बुद्धज्ञान में विनीत करोगे ।

बहुबुद्धकोटीषु करित्व सत्क्रियां चर्याबलं तत्र उपार्जयित्वा ।
उत्पादयित्वा च दशो बलानि स्पृशिष्यसे उत्तममग्रबोधिम् ।।२४।।

अनेक कोटि बुद्धों का सत्कार करके चर्याशक्ति का उपार्जन करके एवं अपने अन्दर दशबलों को उत्पन्न करके तुम श्रेष्ठ अग्रबोधि को प्राप्त करोगे ।

अचिन्तिये अपरिमितस्मि कल्पे प्रभूतरत्नस्तद कल्पु भेष्यति ।
विरजा च नाम्ना तद लोकधातुः क्षेत्रं विशुद्धं द्विपदोत्तमस्य ।।२५।।

अचिन्त्य और अपरिमित कल्पों के अनन्तर प्रभूतरत्न नाम का कल्प आयेगा । उस समय जो विरज नामक लोकधातु होगा, वही मनुष्यों में श्रेष्ठ जिन का विशुद्ध क्षेत्र होगा ।

वैडूर्यसंस्तीर्ण तथैव भूमिः सुवर्णसूत्रप्रतिमण्डिता च ।
रत्नामयैर्वृक्षशतैरुपेता सुदर्शनीयैः फलपुष्पमण्डितैः ।।२६।।

वह भूमि वैदूर्य-मणि से संस्तीर्ण, सुवर्ण सूत्रों से मण्डित तथा अत्यन्त सुन्दर एवं फल-फूलों से सुशोभित सैकड़ों रत्नमय वृक्षों से युक्त होगी।

स्मृतिमन्त तस्मिन् बहुबोधिसत्त्वाः चर्याभिनिर्हारसुकोविदाश्च ।
ये शिक्षिता बुद्धशतेषु चर्यां ते तत्र क्षेत्रे उपपद्य सन्ति ।।२७।।

उस बुद्धक्षेत्र में स्मृतिशाली, चर्या के नियमों को अच्छी तरह जाननेवाले एवं सैकड़ों बुद्धों के आश्रय में रहकर चर्या की शिक्षा प्राप्त करनेवाले अनेक बोधिसत्त्व उत्पन्न होंगे ।

सो च्चेज्जिनः पश्चिमके समुच्छ्रये कुमारभूमीमतिनामयित्वा ।
जहित्व कामानभिनिष्क्रमित्वा स्पृशिष्यते उत्तममग्रबोधिम् ।।२८।।

वह जिन अपनी इस अन्तिम शरीर-धारण की अवस्था में कुमारावस्था के अनन्तर कामों को त्याग कर घर से अभिनिष्क्रमण करके श्रेष्ठ अग्रबोधि को प्राप्त करेगा।

सम द्वादशा अन्तरकल्प तस्य भविष्यते आयु तदा जिनस्य ।
मनुजानपी अन्तरकल्प अष्ट आयुष्प्रमाणं तहि तेष भेष्यति ।।२९।।

उस समय उस जिन की आयु बारह अन्तरकल्पों की होगी तथा उस समय वहाँ रहनेवाले मनुष्यों की आयु आठ अन्तरकल्पों की होगी,

परिनिर्वृतस्यापि जिनस्य तस्य द्वात्रिंशतीं अन्तरकल्पपूर्णाम् ।
सद्धर्म संस्थास्यति तस्मि काले हिताय लोकस्य सदेवकस्य ।।३०।।

उस समय उस तथागत की परिनिर्वाण-प्राप्ति के अनन्तर पूरे बत्तीस अन्तरकल्पों तक देवों-समेत इस संसार के हित के लिए सद्धर्म प्रतिष्ठित रहेगा ।

सद्धर्मि क्षीणे प्रतिरूपकोऽस्य द्वात्रिंशती अन्तरकल्प स्थास्यति ।
शरीरवैस्तारिक तस्य तायिनः सुसत्कृतो नरमरुतैश्च नित्यम् ।।३१।।

सद्धर्म के क्षीण हो जाने पर उसका प्रतिरूप भी बत्तीस अन्तरकल्पों तक स्थित रहेगा । उन पवित्र बुद्ध के शरीरावशेष भी मनुष्य एवं देवताओं के द्वारा अनन्तकाल तक सत्कार प्राप्त करते रहेंगे ।

एतादृशः सो भगवान् भविष्यति प्रहृष्ट त्वं शारिसुता भवस्व।
त्वमेव सो तादृशको भविष्यसि अनाभिभूतो द्विपददानमुत्तमः ।।३२।।

उन भगवान् का रूप इस प्रकार का होगा । हे शारिपुत्र ! तुम प्रसन्न होओ । इस प्रकार किसी के द्वारा परास्त न होनेवाले मनुष्यों में श्रेष्ठ तथागत के रूप में तुम्हीं उत्पन्न होगे ।

अथ खलु ताश्चतस्रः पर्षदो भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकादेवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्या आयुष्मतः शारिपुत्रस्येदं व्याकरणमनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ भगवतोऽन्तिकात् संमुखं श्रुत्वा तुष्टा उदग्रा आत्तमनसः प्रमुदिताः प्रीतिसौमनस्यजाताः स्वकस्वकैश्चीवरैर्भगवन्तमभिच्छादयामासुः । शक्रश्च देवानामिन्द्रो ब्रह्मा च सहांपतिरन्याश्च देवपुत्रशतसहस्रकोट्यो भगवन्तं दिव्यैर्वस्त्रैरभिच्छादयामासुः । दिव्यैश्च मान्दारवैर्महामान्दारवैश्च पुष्पैरभ्यवकिरन्ति स्म । दिव्यानि च वस्त्राण्युपर्यन्तरीक्षे भ्रामयन्ति स्म । दिव्यानि च तूर्यशतसहस्राणि दुन्दुभयश्चोपर्यन्तरीक्षे पराहनन्ति स्म । महन्तं

च पुष्पवर्षमभिप्रवर्षयित्वैवं च वाचं भाषन्ते स्म । पूर्वं भगवता वाराणस्यामृषिपतने मृगदावे धर्मचक्रं प्रवर्तितमिदं पुनर्भगवताद्यानुत्तरं द्वितीयं धर्मचक्रं प्रवर्तितम् । ते च देवपुत्रास्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषन्त ।

तदनन्तर, वे चारों परिषदें जिनमें भिक्षु, भिक्षुणी उपासक, उपासिका, देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य एवं मनुष्येतर--सभी प्रकार के लोग वर्त्तमान थे। भगवान् के मुख से आयुष्मान् शारिपुत्र के लिए दिये गये श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि-विषयक उपदेश को सुनकर प्रसन्न, सन्तुष्ट, आश्वस्त तथा प्रमुदित होकर प्रीति एवं मानसिक शान्ति को प्राप्त हो गईं और उन्होंने अपने-अपने चीवरों से भगवान् को ढक लिया। देवराज शक्र, सहांपति ब्रह्मा एवं अन्य शतसहस्र कोटि देवपुत्रों ने भी भगवान् को दिव्य वस्त्रों से ढक लिया और उनपर दिव्य मान्दारव एवं महामान्दारव पुष्पों की वर्षा की। ये दिव्य वस्त्र ऊपर आकाश में फहराने लगे। ऊपर अन्तरिक्ष में शतसहस्र दिव्य तूर्य तथा दुन्दुभियाँ बजने लगीं। महती पुष्पवर्षा करके वे इस प्रकार के वचन बोले। पूर्वकाल में पहली बार वाराणसी में ऋषिपत्तन-स्थित मृगदाव में इस धर्मचक्र का प्रवर्त्तन किया था। आज पुनः दूसरी बार भगवान् इस श्रेष्ठ धर्मचक्र का प्रवर्त्तन कर रहे हैं।

उन देवपुत्रों ने उस समय ये गाथाएँ कहीं--

धर्मचक्रं प्रवर्तेसि लोके अप्रतिपुद्गल ।
वाराणस्यां महावीर स्कन्धानामुदयं व्ययम् ॥३३॥

हे अप्रतिम पुद्गल! हे महावीर! तुमने संसार में विभिन्न स्कन्धों के उदय और नाश को करनेवाले धर्मचक्र को वाराणसी में प्रवर्त्तित किया था।

प्रथमं प्रवर्तितं तत्र द्वितीयमिह नायक ।
दुःश्रद्दधेय यस्तेषां देशितोऽद्य विनायक ॥३४॥

हे नायक! वहाँ तुमने प्रथम चक्र का प्रवर्त्तन किया था। आज यहाँ द्वितीय चक्र का प्रवर्त्तन किया है। हे विनायक! आज आपने उन्हें जिस धर्म का उपदेश दिया है, उसपर श्रद्धा करना अत्यन्त कठिन है।

बहुधर्मः श्रुतोऽस्माभिर्लोकनाथस्य संमुखम् ।
न चायमीदृशो धर्मः श्रुतपूर्वः कदाचन ॥३५॥

हे लोकनाथ! आपके मुख से हमलोगों ने बहुत-से धर्मों के विषय में सुना है। किन्तु, इस प्रकार का धर्मोपदेश हमने पहले कभी नहीं सुना है।

अनुमोदाम महावीर संधाभाष्यं महर्षिणः ।
यथार्थो व्याकृतो ह्येष शारिपुत्रो विशारदः ॥३६॥

हे महावीर! महर्षियों के इस संधाभाष्य का जिस रूप में इन बुद्धिमान् आर्य शारिपुत्र के सम्मुख विवेचन किया गया है, हम उसका अनुमोदन करते हैं।

वयमप्येदृशाः स्यामो बुद्धा लोके श्रनुत्तराः ।
संधाभाष्येण देशेन्तो बुद्धबोधिमनुत्तराम् ।।३७।।

हमलोगों की भी ऐसी श्रभिलाषा है कि संधाभाष्य के द्वारा श्रेष्ठ बुद्धज्ञान का उपदेश करके हमलोग भी इस संसार में श्रेष्ठ बुद्धपद को प्राप्त कर लें ।

यच्छ्रुतं कृतमस्माभिरस्मिँल्लोके परत्र वा ।
श्रारागितश्च यद्बुद्धः प्रार्थना भोतु बोधये ।।३८।।

हमारी प्रार्थना है कि हमने इस लोक या परलोक में जो कुछ सुना या किया है तथा भगवान् बुद्ध को प्रसन्न किया है, इन सबके फलस्वरूप हमें बोधि की प्राप्ति हो ।

श्रथ खल्वायुष्मान् शारिपुत्रो भगवन्तमेतदवोचत् । निष्काङक्षोऽस्मि भगवन् विगतकथंकथो भगवतोऽन्तिकात् संमुखमिदमात्मनो व्याकरणं श्रुत्वानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । यानि चेमानि भगवन् द्वादश वशीभूतशतानि भगवता पूर्वं शैक्षभूमौ स्थापितान्येवमववदितान्येवमनुशिष्टान्यभवन् एतत्पर्यवसानो मे भिक्षवो धर्मविनयो यदिदं जातिजराव्याधिमरणशोकसमतिक्रमो निर्वाणसमवसरणः । इमे च भगवन् द्वे भिक्षुसहस्रे शैक्षाशैक्षाणां भगवतः श्रावकाणां सर्वेषामात्मदृष्टिभवदृष्टिविभवदृष्टिसर्वदृष्टिविवर्जितानां निर्वाणभूमिस्थिताः स्म इत्यात्मनः संजानतां ते भगवतोऽन्तिकादिममेवंरूपमश्रुतपूर्वं धर्मं श्रुत्वा कथंकथामापन्नाः । तत् साधु भगवान् भाषतामेषां भिक्षूणां कौकृत्यविनोदनार्थं यथा भगवन्नेताश्चतस्रः पर्षदो निष्काङक्षा निर्विचिकित्सा भवेयुः ।

तत्पश्चात् श्रायुष्मान् शारिपुत्र भगवान् से इस प्रकार बोले—हे स्वामिन् ! श्रापके मुख से श्रपने (मेरे) लिए किये गये श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि-विषयक विवेचन को सुनकर मैं सर्वथा सन्देह-रहित एवं शंकाश्रों से मुक्त हो गया हूँ । हे भगवन्! ये श्रापके बारह सौ इन्द्रियजित् शिष्य श्रापके सम्मुख खड़े हैं । पूर्वकाल में जब ये शैक्ष की श्रवस्था में वर्त्तमान थे, उस समय श्रापने इन्हें इस प्रकार उपदेश दिया था एवं इस प्रकार श्रनुशासित किया था । हे भिक्षुश्रो ! मेरे धर्मोपदेश के परिणामस्वरूप जन्म, जरा, रोग एवं मृत्यु से छुटकारा दिलानेवाले निर्वाण की प्राप्ति हो जाती है । हे भगवन् ! ये दो हजार भिक्षु एवं भगवान् के ये सभी श्रावक शैक्ष श्रौर श्रशैक्ष दोनों प्रकार के हैं । ये सभी श्रात्मदृष्टि, भवदृष्टि, विभवदृष्टि एवं सर्वदृष्टि से मुक्त एवं श्रपने को निर्वाण की स्थिति में पहुँचा हुश्रा मानते हैं । ये भी भगवान् के मुख से इस श्रश्रुतपूर्व धर्म को सुनकर

संशय को प्राप्त हो गये। अतः, हे भगवन् ! इन भिक्षुओं की विकलता को दूर करने के लिए अपना उपदेश दें, जिससे हे भगवन् ! ये चारों परिषदें भी सन्देह एवं संशय से मुक्त हो जायँ।

एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं शारिपुत्रमेतदवोचत् । ननु ते मया शारिपुत्र पूर्वमेवाख्यातं यथा नानाभिनिर्हारनिर्देशविविधहेतुकारणनिदर्शनारम्बणनिरुक्त्युपायकौशल्यैर्नानाधिमुक्तानां सत्त्वानां नानाधात्वाशयानामाशयं विदित्वा तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो धर्मं देशयति । इमामेवानुत्तरां सम्यक्संबोधिमारभ्य सर्वधर्मदेशनाभिर्बोधिसत्त्वयानमेव समादापयति । अपि तु खलु पुनः शारिपुत्रौपम्यं ते करिष्यामि अस्यैवार्थस्य भूयस्या मात्रया सन्दर्शनार्थम् । तत् कस्य हेतोः । उपमयेहैकत्या विज्ञपुरुषा भाषितस्यार्थमाजानन्ति ।

आयुष्मान् शारिपुत्र के ऐसा कहने पर भगवान् उनसे इस प्रकार बोले—हे शारिपुत्र ! मैंने तुमसे पहले ही कह दिया है कि विभिन्न लोकों में रहनेवाले विभिन्न स्वभाववाले प्राणियों की प्रवृत्ति को जानकर ही अर्हत् सम्यक् सम्वुद्ध तथागत अनेक प्रकार के निर्हार, निर्देश, हेतुकारणनिदर्शन, आरम्बण, निरुक्ति एवं उपाय-कौशल्यों के द्वारा धर्म की देशना करते हैं। इसी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि से आरम्भ करके सभी धर्मों की देशनाओं के द्वारा वे बोधिसत्त्वयान का ही उपदेश देते हैं। पुनः हे शारिपुत्र ! इस विषय को और स्पष्ट करने के लिए मैं एक दृष्टान्त प्रस्तुत करूँगा। ऐसा क्यों ? क्योंकि, दृष्टान्त के द्वारा उपस्थित किये गये विषय को विज्ञ पुरुष शीघ्रता से समझ जाते हैं।

तद् यथापि नाम शारिपुत्रेह स्यात् कस्मिंश्चिदेव ग्रामे वा नगरे वा निगमे वा जनपदे वा जनपदप्रदेशे वा राष्ट्रे वा राजधान्यां वा गृहपतिर्जीर्णो वृद्धो महल्लकोऽभ्यतीतवयोऽनुप्राप्त आढ्यो महाधनो महाभोगः । महच्चास्य निवेशनं भवेदुच्छ्रितं च विस्तीर्णं च चिरकृतं च जीर्णं च द्वयोर्वा त्रयाणां वा चतुर्णां वा पञ्चानां वा प्राणिशतानामावासः । एकद्वारं च तन्निवेशनं भवेत् । तृणसंछन्नं च भवेत् । विगडितप्रासादं च भवेत् । पूतिस्तम्भमूलं च भवेत् । संशीर्णकुड्यकटलेपनं च भवेत् । तच्च सहसैव महताग्निस्कन्धेन सर्वपार्श्वेषु सर्वावन्तं निवेशनं प्रदीप्तं भवेत् । तस्य च पुरुषस्य बहवः कुमारकाः स्युः पञ्च वा दश विंशतिर्वा । स च पुरुषस्तस्मान्निवेशनाद् बहिर्निर्गतः स्यात् ।

हे शारिपुत्र ! वह दृष्टान्त इस प्रकार है। मान लो, एक गाँव में, नगर में, निगम में, जनपद में, जनपद-प्रदेश में, राष्ट्र में अथवा राजधानी में एक जीर्ण वृद्ध अधिक आयुवाला, अत्यन्त बूढ़ा, आढ्य, महाधनी एवं सभी भोगों से सम्पन्न एक गृहपति रहता हो।

उसका एक बहुत ऊँचा विस्तृत, बहुत काल पूर्व बना हुआ पुराना एवं दो-तीन चार या पाँच सौ मनुष्यों के रहने योग्य विशाल घर हो। उस घर में एक ही द्वार हो। वह तृण से छाया हुआ हो। उसके बरामदे टूट रहे हों तथा खम्भों की जड़ें सड़ गई हों। उसकी छत और दीवार का लेप (पलस्तर) ढीला पड़ गया हो। एक दिन वह सम्पूर्ण घर चारों ओर से भयंकर अग्नि की लपटों में जलने लगे। उस पुरुष के पाँच, दस, बीस की संख्या में बहुत-से कुमार हों। वह व्यक्ति उस घर से अकस्मात् बाहर निकले।

अथ खलु शारिपुत्र स पुरुषस्तं स्वकं निवेशनं महताग्निस्कन्धेन समन्तात् संप्रज्वलितं दृष्ट्वा भीतस्त्रस्त उद्विग्नचित्तो भवेदेवं चानुविचिन्तयेत् प्रतिबलोऽहमनेन महताग्निस्कन्धेनासंस्पृष्टोऽपरिदग्धः क्षिप्रमेव स्वस्तिनास्माद् गृहादादीप्ताद् द्वारेण निर्गन्तुं निर्धावितुम्। अपि तु य इमे मम पुत्रा बालकाः कुमारका अस्मिन्नेव निवेशन आदीप्ते तैस्तैः क्रीडनकैः क्रीडन्ति रमन्ति परिचारयन्ति। इमं चागारमादीप्तं न जानन्ति न बुध्यन्ते न विदन्ति न चेतयन्ति नोद्वेगमापद्यन्ते। संतप्यमाना अप्यनेन महताग्निस्कन्धेन महता च दुःखस्कन्धेन स्पृष्टाः समाना न दुःखं मनसि कुर्वन्ति। नापि निर्गमनमनसिकारमुत्पादयन्ति।

तदनन्तर, हे शारिपुत्र! वह व्यक्ति अपने घर को चारों ओर से भयंकर अग्नि की लपटों में जलता हुआ देखकर भीत, त्रस्त एवं उद्विग्न हो जाय और सोचने लगे कि मैं इस अग्नि से जलते हुए घर से भयंकर अग्नि की लपटों से विना स्पृष्ट या जले हुए शीघ्रता से द्वार-मार्ग से सकुशल बाहर निकल जाने में समर्थ हूँ, किन्तु ये मेरे छोटे-छोटे अबोध बालक इसी जलते हुए घर में अपने-अपने खिलौनों से खेल रहे हैं, खेलने में रमे हुए हैं एवं उन्हीं की परिचर्या में लगे हुए हैं। यह घर जल रहा है, इस बात को वे न जानते हैं, न समझते हैं और न अनुभव करते हैं। अतः, वे न तो सावधान ही हो रहे हैं और न उन्हें उसकी कोई चिन्ता ही हो रही है। इस भयंकर अग्नि की लपटों से सन्तप्त तथा महान् दुःख-समूह से आक्रान्त होकर भी वे मन में न तो दुःख का अनुभव करते हैं और न वे निकल भागने का ही मन में विचार लाते हैं।

स च शारिपुत्र पुरुषो बलवान् भवेद् बाहुबलिकः। स एवमनुविचिन्तयेदहमस्मि बलवान् बाहुबलिकश्च। यन्न्वहं सर्वानिमान् कुमारकानेकपिण्डयित्वोत्सङ्गेनादायास्माद् गृहान्निर्गमयेयम्। स पुनरेवमनुविचिन्तयेत्। इद खलु निवेशनमेकप्रवेशं संवृतद्वारमेव कुमारकाश्चपलाश्चञ्चला बालजातीयाश्च मा हैव परिभ्रमेयुः। तेऽनेन महताग्निस्कन्धेनानयव्यसनमापद्येरन्। यन्नूनमहमेतान् संचोदयेयमिति प्रतिसंख्याय तान् कुमारकानामन्त्रयते स्म। आगच्छत

भवन्तः कुमारका निर्गच्छत। आदीप्तमिदं गृहं महताग्निस्कन्धेन। मा हैवात्रव सर्वेऽनेन महताग्निस्कन्धेन धक्ष्यथानयव्यसनमापत्स्यथ। अथ खलु ते कुमारका एवं तस्य हितकामस्य पुरुषस्य तद्भाषितं नावबुध्यन्ते नोद्विजन्ति नोत्त्रसन्ति न सन्त्रसन्ति न सन्त्रासमापद्यन्ते न विचिन्तयन्ति न निर्धावन्ति नापि जानन्ति न विजानन्ति किमेतदादीप्तं नामेति। अन्यत्र तेन तेनैव धावन्ति विधावन्ति पुनः पुनश्च तं पितरमवलोकयन्ति। तत् कस्य हेतोः। यथापीदं बालभावत्वात् ।

हे शारिपुत्र ! वह मनुष्य वलवान् है और उसकी भुजाओं में बल है। वह ऐसा सोचे कि मैं वलवान् हूँ और मेरी भुजाओं में वल है, अतः क्यों न मैं इन सभी कुमारों को एकत्र कर उन्हें अपनी गोद में लेकर इस घर से निकाल लूँ। वह फिर इस प्रकार सोचे---इस घर में एक ही प्रवेश-द्वार है और वह भी वन्द है। ये लड़के बालक होने के कारण चपल एवं चंचल हैं। कही ऐसा न हो कि यहीं इसी में इधर भटकते रह जायँ और इस भयंकर अग्नि की लपटों में पड़कर मृत्यु को प्राप्त हो जायँ। अतः, मुझे इन्हें अवश्य ही बाहर निकलने के लिए प्रेरित करना चाहिए। अतः, ऐसा निश्चय करके वह उन लड़कों को पुकारने लगा---हे बच्चो ! यहाँ आओ, तुमलोग वाहर निकलो। यह घर अग्नि की विशाल लपटों में जल रहा है। अन्यथा, तुम सब इस भयंकर अग्नि की लपटों में जलकर मृत्यु को प्राप्त हो जाओगे। किन्तु, वे लड़के उस हितैषी पुरुष की इस वात को नहीं समझते तथा विना किसी प्रकार के उद्वेग का अनुभव किये, घर अग्नि से जल रहा है, इसका तात्पर्य न समझते हुए निश्चिन्त रूप से अन्दर ही खेलते रहे, वाहर निकलने का प्रयास नहीं किया, बल्कि वे इधर-उधर व्यर्थ दौड़ते हैं और अपने पिता का मुँह ताकते हैं। ऐसा क्यों हुआ ? क्योंकि, वे सर्वथा मूर्ख थे।

अथ खलु स पुरुष एवमनुविचिन्तयेत्। आदीप्तमिदं निवेशनं महताग्निस्कन्धेन संप्रदीप्तं मा हैवाहं चेमे च कुमारका इहैवानेन महताग्निस्कन्धेनानयव्यसनमापत्स्यामहे। यन्न्वहमुपायकौशल्येनेमान् कुमारकान् अस्माद् गृहात् निष्क्रामयेयम्। स च पुरुषस्तेषां कुमारकाणामाशयज्ञो भवेदधिमुक्ति च-विजानीयात्। तेषां च कुमारकाणामनेकविधान्यनेकानि क्रीडनकानि भवेयुर्विविधानि च रमणीयकानीष्टानि कान्तानि प्रियाणि मन-आपानि तानि च दुर्लभानि भवेयुः।

तत्पश्चात्, वह पुरुष इस प्रकार सोचे---यह जलता हुआ घर भयंकर अग्नि की लपटों से सन्दीप्त है। ऐसा न हो कि मैं तथा मेरे ये लड़के यहीं इस भयंकर अग्नि की लपटों में जलकर कुत्सित मृत्यु को प्राप्त हो जायँ। अतः, मैं उपाय-कौशल्य के द्वारा इन लड़कों को घर से वाहर निकाल लूँ। वह पुरुष उन कुमारों के आशय और प्रवृत्ति को अच्छी

तरह जानता हो। उन लड़कों के पास अनेक प्रकार के विविध खिलौने हों, जो सभी सुन्दर, प्रिय, इष्ट, मनोहर, मन को प्रसन्न करनेवाले एवं दुर्लभ हों।

अथ खलु स पुरुषस्तेषां कुमारकाणामाशयं जानंस्तान् कुमारकानेतदवोचत्। यानि तानि कुमारका युष्माकं क्रीडनकानि रमणीयकान्याश्चर्याद्भुतानि येषामलाभात् संतप्यथ नानावर्णानि बहुप्रकाराणि। तद् यथा गोरथकान्यजरथकानि मृगरथकानि। यानि भवतामिष्टानि कान्तानि प्रियाणि मन-आपानि तानि च मया सर्वाणि बहिर्निवेशनद्वारे स्थापितानि युष्माकं क्रीडनहेतोः। आगच्छन्तु भवन्तो निर्धावन्त्वस्मान्निवशनात्। अहं वो यस्य यस्य येनार्थो येन प्रयोजनं भविष्यति तस्मै तस्मै तत् प्रदास्यामि। आगच्छत शीघ्रं तेषां कारणं निर्धावत। अथ खलु ते कुमारकास्तेषां क्रीडनकानां रमणीयकानामर्थाय यथेप्सितानां यथासंकल्पितानामिष्टानां कान्तानां प्रियाणां मन-आपानां नामधेयानि श्रुत्वा तस्मादादीप्तादागारात् क्षिप्रमेवारब्धवीर्या बलवता जवेनान्योन्यमप्रतीक्षमाणाः कः प्रथमं कः प्रथमतरमित्यन्योन्य संघट्टितकायास्तस्मादादीप्तादगारात् क्षिप्रमेव निर्धाविताः।

तदनन्तर, वह व्यक्ति उन बालकों के आशय को समझकर उन बालकों से इस प्रकार बोले—हे बच्चो! तुम्हारे उन रमणीय आश्चर्यजनक, अद्भुत, रंग-विरंगे एवं अनेक प्रकार के गोरथ, अजरथ, मृगरथ आदि खिलौनों को—जिनके न पाने से तुमलोग दुःखी हो जाते हो तथा जो तुम लोगों को अत्यन्त इष्ट, कान्त, प्रिय एवं मन को प्रसन्न करनेवाले हैं, उन सबको मैंने तुमलोगों के खेलने के लिए बाहर घर के द्वार पर रख दिया है। तुमलोग दौड़कर इस घर से बाहर निकलो और यहाँ आओ। जिसको जिसको जिस-जिस खिलौने की आवश्यकता होगी अथवा जिससे-जिससे जिस-जिस का प्रयोग होगा, उसको-उसको मैं वह-वह खिलौना दूँगा। उनको लेने के लिए घर से बाहर निकलकर जल्दी आओ। तदनन्तर, वे बालक उन सुन्दर, ईप्सित, यथासंकलिपत, इष्ट, कान्त, प्रिय एवं मनोवांछित खिलौनों के नाम सुनकर उस जलते हुए घर से निकलने का प्रयत्न करने लगे तथा विना एक दूसरे की प्रतीक्षा किये हुए 'कौन पहले निकलता है' एवं 'कौन उससे भी पहले निकलता है', ऐसा कहते हुए तथा एक दूसरे के शरीर को रगड़ते हुए वे तीव्र वेग से उस जलते हुए घर से शीघ्र बाहर निकल पड़े।

अथ स पुरुषः क्षेमस्वस्तिना तान् कुमारकान् निर्गतान् दृष्ट्वाभयप्राप्तानिति विदित्वाकाशे ग्रामचत्वर उपविष्टः प्रीतिप्रामोद्यजातो निरुपादानो विगतनीवरणोऽभयप्राप्तो भवेत्। अथ खलु ते कुमारका येन स पिता तेनोपसंक्रामन्नुपसंक्रम्यैवं वदेयुः। देहिनस्तात तानि विविधानि क्रीडनकानि रमणीयानि। तद् यथा गोरथकान्यजरथकानि मृगरथकानि। अथ खलु शारिपुत्र स

पुरुषस्तेषां स्त्रकानां पुत्राणां वातजवसम्पन्नान् गोरथकानेवानुप्रयच्छेत् सप्तरत्नमयान् सवेदिकान् सकिङ्किणीजालाभिप्रलम्बितानुच्चान् प्रगृहीतानाश्चर्याद्भुतरत्नालङ्कृतान् रत्नदामकृतशोभान् पुष्पमाल्यालङ्कृतांस्तूलिकागोणिकास्तरणान् दूष्यपटप्रत्यास्तीर्णानुभयतो लोहितोपधानान् श्वेतैः प्रपाण्डरैः शीघ्रजवैर्गोणैर्योजितान् बहुपुरुषपरिगृहीतान् सवैजयन्तान् गोरथकानेव वातबलजवसम्पन्नानेकवर्णानेकविधानेकैकस्य दारकस्य दद्यात् । तत् कस्य हेतोः । तथा हि शारिपुत्र स पुरुष आढ्यश्च भवेन्महाधनश्च प्रभूतकोष्ठागारश्च । स एवं मन्येत् । अलं म एषां कुमारकाणामन्यैर्यानैर्दत्तैरिति । तत् कस्य हेतोः । सर्व एवैते कुमारका ममैव पुत्राः सर्वे च मे प्रिया मन-आपाः । संविद्यन्ते च म इमान्वेवंरूपाणि महायानानि समं च मयैते कुमारकाः सर्वे चिन्तयितव्या न विषमम् । अहमपि बहुकोशकोष्ठागारः सर्वसत्त्वानामप्यहमिमान्येवंरूपाणि महायानानि दद्याम् । किमङ्ग पुनः स्वकानां पुत्राणाम् । ते च दारकास्तस्मिन् समये तेषु महायानेष्वभिरुह्याश्चर्याद्भुतप्राप्ता भवेयुः । तत् किं मन्यसे शारिपुत्र मा हैव तस्य पुरुषस्य मृषावादः स्याद् येन तेषां दारकाणां पूर्वं त्रीणि यानान्युपदर्शयित्वा पश्चात् सर्वेषां महायानान्येव दत्तान्युदारयानान्येव दत्तानि ।

वह पुरुष उन वालकों को सकुशल वाहर निकला देखकर एवं उन्हें भय से मुक्त जानकर खुले स्थान में गाँव के एक चबूतरे पर बैठ जाय । उस समय उसका हृदय प्रीति एवं आनन्द से पूर्ण हो जाय तथा वह चिन्ताओं और व्यवधानों से मुक्त होकर बिलकुल स्वस्थ हो जाय । तत्पश्चात्, वे वालक जिस ओर उनके पिता हों, उस ओर गये और उनके निकट पहुँचकर इस प्रकार बोले—हे पिताजी ! हमें वे गोरथ, अजरथ, मृगरथ आदि विविध एवं सुन्दर खिलौने दीजिए। तत्पश्चात्, हे शारिपुत्र ! वह पुरुष अपने लड़कों को हवा के समान वेगवाले केवल गोरथ दे। एक-एक पुत्र को ऐसे गोरथ दे, जो सप्तरत्नों से जटित वेदिकाओं एवं छोटी-छोटी घण्टी से युक्त तथा लटकते हुए जालोंवाले, ऊँचे, अच्छी लगाम से युक्त, आश्चर्यकारक एवं अद्भुत रत्नों से जटित, रत्नमालाओं से सुशोभित एवं पुष्पमालाओं से अलंकृत हों । उनके फर्श पर सूखी चटाइयाँ एवं ऊनी एवं रेशमी चादर बिछी हुई हों, वे सफेद वस्त्र से आच्छादित हों, दोनों किनारों पर मखमली गद्दे लगे हों, उन्हें श्वेत एवं पाण्डुर द्रुतगामी बैल खींच रहे हों तथा उन्हें वहुत-से आदमी खीच रहे हों । वे हवा के समान वल एवं वेग से सम्पन्न तथा अनेक प्रकार के हों । ऐसा क्यों हों ? क्योंकि, हे शारिपुत्र ! वह पुरुष आढ्य, महाधनसम्पन्न तथा अनेक कोष्ठागारों से युक्त हो और वह ऐसा सोचे । इन कुमारों को अन्य प्रकार के यान देना व्यर्थ है। ऐसा क्यों ? क्योंकि, ये सभी वालक मेरे ही पुत्र हैं एवं सभी मुझे प्रिय एवं अभीष्ट हैं । मेरे पास भी ये इस प्रकार के वड़े-वड़े

यान हैं और मुझे भी इन लड़कों को समान दृष्टि से देखना चाहिए, विषम दृष्टि से नहीं। मेरे पास भी पर्याप्त कोष एवं कोष्ठागार हैं। मैं सभी जीवों को इसी प्रकार के विशाल यान दे सकता हूँ, फिर इन अपने पुत्रों का क्या कहना? वे बालक इस समय उन विशाल यानों पर चढ़कर आश्चर्य एवं विस्मय को प्राप्त हो जायँ। हे शारिपुत्र! तुम्हारा क्या विचार है? क्या वह व्यक्ति मृषावादी नहीं था, जो उसने उन पुत्रों को पहले तीन प्रकार के यान दिखलाकर बाद में उन सबको विभिन्न प्रकार की वस्तुओं से सम्पन्न किन्तु केवल एक ही प्रकार के महायान दिये।

शारिपुत्र आह। न ह्येतद् भगवन्न ह्येतत् सुगत। अनेनैव तावद् भगवन् कारणेन स पुरुषो न मृषावादी भवेद् यत्तेन पुरुषेणोपायकौशल्येन ते दारकास्तस्मादादीप्ताद् गृहान्निष्कासिता जीवितेन चाभिच्छादिताः। तत् कस्य हेतोः। आत्मभावप्रतिलम्भेनैव भगवन् सर्वक्रीडनकानि लब्धानि भवन्ति। यद्यपि तावद् भगवन् स पुरुषस्तेषां कुमारकाणामेकरथमपि न दद्यात् तथापि तावद् भगवन् स पुरुषो न मृषावादी भवेत्। तत् कस्य हेतोः। तथा हि भगवंस्तेन पुरुषेण पूर्वमेवैवमनुविचिन्तितमुपायकौशल्येनाहमिमान् कुमारकांस्तस्मान्महतो दुःखस्कन्धात् परिमोचयिष्यामीति। अनेनापि भगवन् पर्यायेण तस्य पुरुषस्य न मृषावादो भवेत्। कः पुनर्वादो यत्तेन पुरुषेण प्रभूतकोशकोष्ठागारमस्तीति कृत्वा पुत्रप्रियतामेव मन्यमानेन श्लाघमानेनैकवर्णान्येकयानानि दत्तानि यदुत महायानानि। नास्ति भगवंस्तस्य पुरुषस्य मृषावादः।

शारिपुत्र ने कहा—हे भगवन्! ऐसी बात नहीं है। हे सुगत! ऐसी बात नहीं है। हे भगवन्! वह व्यक्ति झूठा नहीं था; क्योंकि उस पुरुष ने इस उपाय-कौशल्य से उन बालकों को उस जलते हुए घर से बाहर निकाला एवं उन्हें जीवन दान दिया। ऐसा क्यों? क्योंकि, हे भगवन्! उन बालकों को अपने शरीर की रक्षा के साथ-साथ सभी खिलौने भी प्राप्त हो जाते हैं। हे भगवन्! यदि वह पुरुष उन बालकों को एक भी रथ नहीं देता, तो भी हे भगवन्! वह मृषावादी नहीं होता। ऐसा क्यों? क्योंकि, हे भगवन्! उस पुरुष ने पहले ही ऐसा निश्चय किया था कि मैं उपाय-कौशल्य के द्वारा इन बालकों की महान् दुःख से रक्षा करूँगा। इस कारण से भी उस पुरुष का वचन झूठा नहीं होता। फिर, उस स्थिति का क्या कहना, जब कि उस पुरुष ने यह सोचकर कि मेरे पास पर्याप्त धन है, अपने पुत्रों के प्रति प्रेम दिखलाते हुए तथा उन्हें प्रसन्न करने के लिए केवल एक वर्ण के, एक ही प्रकार के महायान दिये। हे भगवन्! उस पुरुष का वचन झूठा नहीं हुआ।

एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं शारिपुत्रमेतदवोचत्। साधु साधु शारिपुत्र।

एवमेतच्छारिपुत्र । एवमेतद् यथा वदसि । एवमेव शारिपुत्र तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः सर्वभयविनिवृत्तः सर्वोपद्रवोपायासोपसर्गदुःखदौर्मनस्याविद्यान्धकारतमस्तिमिरपटलपर्यवनाहेभ्यः सर्वेण सर्वं सर्वथा विप्रमुक्तः । तथागतो ज्ञानबलवैशारद्यावेणिकबुद्धधर्मसमन्वागत ऋद्धिबलेनातिबलवाँल्लोकपित महोपायकौल्शयज्ञानपरमपारमिताप्राप्तो महाकारुणिकोऽपरिखिन्नमानसो हितैष्यनुकम्पकः । स त्रैधातुके महता दुःखदौर्मनस्यस्कन्धेनादीप्तजीर्णपटलशरणनिवेशनसदृश उत्पद्यते सत्त्वानां जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासाविद्यान्धकारतमस्तिमिरपटलपर्यवनाहप्रतिष्ठानां रागद्वेषमोहपरिमोचनहेतोरनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ समादापनहेतोः । स उत्पन्नः समानः पश्यति सत्त्वान् दह्यतः पच्यमानांस्तप्यमानान् परितप्यमानान् जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासैः परिभोगानिमित्तञ्च कामहेतुनिदानं चानेकविधानि दुःखानि प्रत्यनुभवन्ति । दृष्टधार्मिकं च पर्येष्टिनिदानं परिग्रहनिदानं च साम्परायिकं नरकतिर्यग्योनियमलोकेष्वनेकविधानि दुःखानि प्रत्यनुभविष्यन्ति । देवमनुष्यदारिद्र्यमनिष्टसंयोगमिष्टविनाभाविकानि च दुःखानि प्रत्यनुभवन्ति । तत्रैव च दुःखस्कन्धे परिवर्तमानाः क्रीडन्ति रमन्ते परिचारयन्ति नो त्रसन्ति न सन्त्रसन्ति न सन्त्रासमापद्यन्ते न बुध्यन्ते न चेतयन्ति नोद्विजन्ति न निःसरणं पर्येषन्ते तत्रैव चादीप्तागारसदृशे त्रैधातुकेऽभिरमन्ति तेन तेनैव विधावन्ति । तेन च महता दुःखस्कन्धेनाभ्याहता न दुःखमनसिककारसंज्ञामुत्पादयन्ति ।

आयुष्मान् शारिपुत्र के ऐसा कहने पर भगवान् शारिपुत्र से इस प्रकार बोले——हे शारिपुत्र ! तुम धन्य हो, तुम ठीक कहते हो । हे शारिपुत्र ! बात ऐसी ही है । जैसा तुम कहते हो, वह ठीक है। हे शारिपुत्र ! इसी प्रकार अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भी सभी प्रकार के भयों, उपद्रवों, निर्वेद, आपत्ति, दुःख, मानसिक वेदना तथा अविद्याजनित गहन अन्धकार-समूह के आवरण——इन सबसे पूर्ण रूप से मुक्त हैं । तथागत ज्ञान, बल, कुशलता, आवेणिक एवं बुद्धधर्म से सम्पन्न, ऋद्धिबल के कारण बलवान् संसार के पिता महान् उपाय-कौशल्यों के ज्ञान के विषय में परमपारमिताप्राप्त महाकारुणिक, प्रसन्नचित्त, हितैषी एवं सब पर दया करनेवाले होते हैं । जन्म, जरा, व्याधि, मृत्यु, शोक, चिन्ता, दुःख, मानसिक वेदना, निर्वेद एवं अविद्या-जनित गहन अन्धकारसमूह के आवरण से आच्छादित प्राणियों को राग, द्वेष एवं मोह से मुक्त करने के लिए तथा उन्हें श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि का उपदेश देने के लिए ही वे महान् दुःख और मानसिक वेदना, समूह से तप्त, अग्नि से जलते हुए टूटे-फूटे पुराने घर के सदृश इस त्रिधातुक संसार में उत्पन्न होते हैं । वे इस संसार में उत्पन्न होकर जन्म, जरा, व्याधि, मरण,

शोक, चिन्ता, दुःख, मानसिक पीडा एवं निर्वेद की आग में जलते हुए, पकते हुए, तप्त होते हुए और परितप्त होते हुए जीवों को समान दृष्टि से देखते हैं। ये प्राणी सुखों की प्राप्ति के लिए काम-वासनाओं के चक्कर में पड़कर अनेक प्रकार के दुःखों का अनुभव करते हैं। वे असद्धर्मों के चक्कर में पड़कर अपनी अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए एवं प्राप्त की हुई वस्तु की रक्षा के लिए विविध प्रकार के भयंकर दुःखों का नरक, तियक्-योनि एवं यमलोक आदि स्थानों में अनुभव करते हैं। वे देवलोक एवं मनुष्य में दारिद्र्य, दुष्टों के संसर्ग एवं अपनों के वियोग के दुःखों का अनुभव करते हैं। उसी दुःख-समूह में चक्कर लगाते हुए वे इसी में क्रीडा करते हैं, रमते हैं, परिचरण करते हैं, किन्तु फिर भी उन्हें किसी प्रकार के मानसिक त्रास का अनुभव नहीं होता। उन्हें इन दुःखों का बोध ही नहीं होता। अतएव, वे न सावधान होते हैं, न उद्विग्न होते हैं और न वे इससे निकल भागने का मार्ग ही खोजते हैं, अपितु उसी जलते हुए घर के समान इस त्रैधातुक संसार में आनन्द मनाते हैं, और इसी में, विभिन्न दिशाओं में रहते हैं। वे इन महान् दुःखों के चक्कर में रहते हुए भी अपने मन में किसी प्रकार के दुःख की भावना नहीं लाते।

तत्र शारिपुत्र तथागत एवं पश्यति। अहं खल्वेषां सत्त्वानां पिता। मया ह्येते सत्त्वा अस्मादेवंरूपान्महतो दुःखस्कन्धात् परिमोचयितव्या मया चैषां सत्त्वानामप्रमेयमचिन्त्यं बुद्धज्ञानसुखं दातव्यं येनैते सत्त्वाः क्रीडिष्यन्ति रमिष्यन्ति परिचारयिष्यन्ति विक्रीडितानि च करिष्यन्ति।

हे शारिपुत्र! इस परिस्थिति में तथागत ऐसा विचार करते हैं। मैं इन जीवों का पिता हूँ, अतः मुझे इन प्राणियों की इस प्रकार के महान् दुःख से रक्षा करनी चाहिए तथा मुझे इन प्राणियों को उस अप्रमेय तथा अचिन्त्य बुद्धज्ञान का सुख देना चाहिए, जिसमें ये प्राणी क्रीडा कर सकें, रमण कर सकें, परिचरण कर सकें एवं मनोरंजन कर सकें।

तत्र शारिपुत्र तथागत एवं पश्यति। सचेदहं ज्ञानबलोऽस्मीति कृत्वर्द्धिबलोऽस्मीति कृत्वानुपायेनैषां सत्त्वानां तथागतज्ञानबलवैशारद्यानि संश्रावयेयं नैते सत्त्वा एभिर्धर्मैर्निर्यायियुः। तत् कस्य हेतोः। अध्यवसिता ह्यमी सत्त्वाः पञ्चसु कामगुणेषु त्रैधातुकरत्यामपरिमुक्ता जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासेभ्यो दह्यन्ते पच्यन्ते तप्यन्ते परितप्यन्ते। अनिर्धावितास्त्रैधातुकादादीप्तजीर्णपटलशरणनिवेशनसदृशात् कथमेते बुद्धज्ञानं परिभोत्स्यन्ते।

हे शारिपुत्र! तब तथागत ने ऐसा विचार किया। यदि मैं यह समझकर कि मुझमें ज्ञानबल एवं ऋद्धिबल है, मैं इन जीवों को तथागत के ज्ञानबल एवं कुशलता का उपदेश विना उपायों का आश्रय लिये ही दूँ, तो मुझे आशंका है कि ये प्राणी इन धर्मोपदेशों से निर्वाण की प्राप्ति नहीं कर सकते। ऐसा क्यों? क्योंकि,

ये प्राणी पाँच कामगुणों में आसक्त हैं, त्रैधातुक-विषयक अनुरक्ति से मुक्त नहीं हैं एवं जन्म, जरा, व्याधि, मृत्यु, शोक, चिन्ता, दुःख, मानसिक पीडा, निर्वेद आदि से जल रहे हैं, पच रहे हैं एवं पुनः-पुनः परितप्त हो रहे हैं। जलते हुए जीर्ण कमरों से युक्त गृह के समान इस त्रैधातुक संसार से विना बाहर निकले वे बुद्धज्ञान किस प्रकार प्राप्त कर सकेंगे।

तत्र शारिपुत्र तथागतो यद् यथापि नाम स पुरुषो बाहुबलिकः स्थापयित्वा बाहुबलमुपायकौशल्येन तान् कुमारकांस्तस्मादादीप्तादागारान्निष्कासयेन्निष्कासयित्वा च तेषां पश्चादुदाराणि महायानानि दद्यात्। एवमेव शारिपुत्र तथागतोऽप्यर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तथागतज्ञानबलवैशारद्यसमन्वागतः स्थापयित्वा तथागतज्ञानबलवैशारद्यमुपायकौशल्यज्ञानेनादीप्तजीर्णपटलशरणनिवेशनसदृशात् त्रैधातुकात् सत्त्वानां निष्कासनहेतोस्त्रीणि यानान्युपदर्शयति यदुत श्रावकयानं प्रत्येकबुद्धयानं बोधिसत्त्वयानमिति। त्रिभिश्च यानैः सत्त्वाँल्लोभयत्येवं चैषां वदति। मा भवन्तोऽस्मिन्नादीप्तागारसदृशे त्रैधातुकेऽभिरमध्वं हीनेषु रूपशब्दगन्धरसस्पर्शेषु। अत्र हि यूयं त्रैधातुकेऽभिरताः पञ्चकामगुणसहगतया तृष्णया दह्यथ तप्यथ परितप्यथ। निर्धावध्वमस्मात् त्रैधातुकात् त्रीणि यानान्यनुप्राप्स्यथ यदिदं श्रावकयानं प्रत्येकबुद्धयानं बोधिसत्त्वयानमिति। अहं वोऽत्र स्थाने प्रतिभूरहं वो दास्याम्येतानि त्रीणि यानान्यभियुज्यध्वे त्रैधातुकान्निःसरणहेतोः। एवं चैताँल्लोभयामि। एतानि भोः सत्त्वा यान्यार्याणि चार्यप्रशस्तानि च महारमणीयकसमन्वागतानि चाकृपणमेतैर्भवन्तः क्रीडिष्यथ रमिष्यथ परिचारयिष्यथ। इन्द्रियबलबोध्यङ्गध्यानविमोक्षसमाधिसमापत्तिभिश्च महतीं रतिं प्रत्यनुभविष्यथ। महता च सुखसौमनस्येन समन्वागता भविष्यथ।

हे शारिपुत्र! जिस प्रकार शक्तिशाली भुजाओंवाला वह पुरुष अपनी भुजाओं का आश्रय न लेकर उपाय-कौशल्य के द्वारा उन कुमारों को उस जलते हुए घर से बाहर निकाले और निकाल लेने के पश्चात् उन्हें विशाल महायान दे, उसी प्रकार हे शारिपुत्र! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत जो तथागत के ज्ञानबल एवं कुशलता से युक्त हैं, तथागत के ज्ञानबल एवं कुशलता को छोड़कर उपाय-कौशल्यों के प्रयोग द्वारा ही जलते हुए भवनों से युक्त घर के समान इस त्रैधातुक संसार से जीवों की मुक्ति के लिए श्रावकयान प्रत्येकबुद्धयान एवं बोधिसत्त्वयान, इन तीन यानों का उपदेश देते हैं। वे इन तीन यानों के द्वारा मनुष्यों को अपनी ओर आकृष्ट करके उनसे कहते हैं—आपलोग उस जलते हुए घर के समान इस त्रैधातुक संसार में इन निम्नकोटि के रूप, शब्द, गन्ध, रस एवं स्पर्श में रमण मत करें; क्योंकि यहाँ इस त्रैधातुक संसार में यदि रमण करोगे, तो पंच कामगुणों की सहगामिनी तृष्णा तुम्हें जलायगी, तपायगी एवं पुनः-पुनः परि-

तप्त करेंगी । इस त्रैधातुक संसार से भाग चलो तथा श्रावकयान, प्रत्येकबुद्धयान एवं बोधिसत्त्वयान--इन तीन यानों का आश्रय लो । मैं साक्षी हूँ एवं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं तुम्हें इन तीन यानों को दूँगा । तुम इस त्रैधातुक संसार से निकलने का प्रयत्न करो । ऐसा कहकर मैं इनको आकृष्ट करता हूँ और कहता हूँ—हे प्राणियो ! इन श्रेष्ठ यानों की आर्यों ने अत्यधिक प्रशंसा की है तथा ये महती शोभा से सम्पन्न हैं । इनके द्वारा आपलोग भरपूर क्रीडा करें, रमण करें एवं मनोरंजन करें । इनके द्वारा आप इन्द्रियवल, बोध्यंग, ध्यान, विमोक्षा, समाधि आदि की प्राप्ति करके महान् आनन्द प्राप्त करेंगे तथा महान् सुख एवं मानसिक शांति से सम्पन्न हो जायेंगे ।

तत्र शारिपुत्र ये सत्त्वाः पण्डितजातीया भवन्ति ते तथागतस्य लोकपितुरभिश्रद्दधन्ति । अभिश्रद्दधित्वा च तथागतशासनेऽभियुज्यन्त उद्योगमापद्यन्ते । तत्र केचित् सत्त्वा परघोषश्रवानुगमनमाकाङ्क्षमाणा आत्मपरिनिर्वाणहेतोश्चतुरार्यसत्यानुबोधाय तथागतशासनेऽभियुज्यन्ते । त उच्यन्ते श्रावकयानमाकाङ्क्षमाणास्त्रैधातुकान्निर्धावन्ति तद् यथापि नाम तस्मादादीप्तादगारादन्यतरे दारका मृगरथमाकाङ्क्षमाणा निर्धाविताः । अन्ये सत्त्वा अनाचार्यकं ज्ञानं दमशमथमाकाङ्क्षमाणा आत्मपरिनिर्वाणहेतोर्हेतुप्रत्ययानुबोधाय तथागतशासनेऽभियुज्यन्ते । त उच्यन्ते प्रत्येकबुद्धयानमाकाङ्क्षमाणास्त्रैधातुकान्निर्धावन्ति तद् यथापि नाम तस्मादादीप्तादगारादन्यतरे दारका अजरथमाकाङ्क्षमाणा निर्धाविताः । अपरे पुनः सत्त्वाः सर्वज्ञज्ञानं बुद्धज्ञानं स्वयम्भूज्ञानमनाचार्यकं ज्ञानमाकाङ्क्षमाणा बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां च मनुष्याणां च सर्वसत्त्वपरिनिर्वाणहेतोस्तथागतज्ञानबलवैशारद्यानुबोधाय तथागतशासनेऽभियुज्यन्ते । त उच्यन्ते महायानमाकाङ्क्षमाणास्त्रैधातुकान्निर्धावन्ति । तेन कारणेनोच्यन्ते बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इति । तद् यथापि नाम तस्मादादीप्तादगारादन्यतरे दारका गोरथमाकाङ्क्षमाणा निर्धाविताः ।

हे शारिपुत्र ! वे प्राणी, जो वुद्धिमान् हैं, वे लोक के पिता तथागत में श्रद्धा रखते हैं। उनमें श्रद्धा रखते हुए वे तथागत के उपदेश में रुचि रखते हैं एवं उसको प्राप्त करने का निरन्तर उद्योग करते हैं । उनमें कुछ ऐसे प्राणी हैं, जो श्रेष्ठ उपदेश-श्रवण की आकांक्षा करते हुए पूर्ण निर्वाण एवं चतुरार्यसत्य की प्राप्ति के हेतु तथागत के शासन में रुचि रखते हैं । ये श्रावकयान की आकांक्षा करनेवाले कहे जाते हैं तथा वे इस त्रैधातुक संसार से उसी प्रकार दूर भागते हैं, जिस प्रकार मृगरथ की आकांक्षा रखनेवाले बालक उस जलते हुए घर से बाहर भाग आये थे । दूसरे प्राणी विना गुरु के ही दम, शम, एवं ज्ञान को चाहते हुए आत्मपरिनिर्वाण के हेतु, कारण, कार्य को जानने के लिए तथागत

के शासन में अभिरुचि रखते हैं। वे प्रत्येकबुद्धयान के आकांक्षी कहे जाते हैं और वे इस त्रैधातुक संसार से उसी प्रकार भागते हैं, जिस प्रकार अजरथ के आकांक्षी बालक उस जलते हुए घर से बाहर भाग आये थे। पुनः दूसरे प्राणी बिना आचार्य के प्राप्त होने वाले सर्वज्ञज्ञान, बुद्धज्ञान, स्वयम्भूज्ञान एवं रूपज्ञान की आकांक्षा करते हुए 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' लोकानुकम्पा की भावना से विशाल जनसमुदाय एवं देवताओं तथा मनुष्यों के हित एवं सुख के लिए तथा सभी जीवों को निर्वाण की प्राप्ति कराने के लिए और तथागत के ज्ञान, बल एवं कुशलता के ज्ञान के लिए तथागत के अनुशासन में रुचि रखते हैं। वे महायान की आकांक्षा करनेवाले कहलाते हैं और वे त्रैधातुक संसार से दूर भागते हैं। अतः, वे महासत्त्व बोधिसत्त्व कहलाते हैं। वे उन दूसरे बालकों के समान हैं, जो गोरथ की इच्छा से उस जलते हुए घर से निकलकर बाहर आये थे।

तद् यथापि नाम शारिपुत्र स पुरुषस्तान् कुमारकांस्तस्मादादीप्तादगारान्निर्धावितान् दृष्ट्वा क्षेमस्वस्तिभ्यां परिमुक्तानभयप्राप्तानिति विदित्वात्मानं च महाधनं विदित्वा तेषां दारकाणामेकमेव यानमुदारमनुप्रयच्छेत् एवमेव शारिपुत्र तथागतोऽप्यर्हन् सम्यक्संबुद्धो यदा पश्यत्यनेकाः सत्त्वकोटीस्त्रैधातुकात् परिमुक्ता दुःखभयभैरवोपद्रवपरिमुक्तास्तथागतशासनद्वारेण निर्धाविताः परिमुक्ताः सर्वभयोपद्रवकान्तारेभ्यो निवृतिसुखप्राप्ताः। तानेतान् शारिपुत्र तस्मिन् समये तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः प्रभूतो महाज्ञानबलवैशारद्यकोश इति विदित्वा सर्वे चैते ममैव पुत्रा इति ज्ञातवा बुद्धयानेनैव तान् सत्त्वान् परिनिर्वापयति। न च कस्यचित् सत्त्वस्य प्रत्यात्मिकं परिनिर्वाणं वदति। सर्वांश्च तान् सत्त्वांस्तथागतपरिनिर्वाणेन महापरिनिर्वाणेन परिनिर्वापयति। ये चापि ते शारिपुत्र सत्त्वास्त्रैधातुकात् परिमुक्ता भवन्ति तेषां तथागतो ध्यानविमोक्षसमाधिसमापत्तीरार्याणि परमसुखानि क्रीडनकानि रमणीयकानि ददाति सर्वाण्येतान्येकवर्णानि। तद् यथापि नाम शारिपुत्र तस्य पुरुषस्य न मृषावादो भवेद् येन त्रीणि यानान्युपदर्शयित्वा तेषां कुमारकाणामेकमेव महायानं सर्वेषां दत्तं सप्तरत्नमयं सर्वालङ्कारविभूषितमेकवर्णमेवोदारयानमेव सर्वेषामग्रयानमेव दत्तं भवेत् एवमेव शारिपुत्र तथागतोऽप्यर्हन् सम्यक्संबुद्धो न मृषावादी भवति येन पूर्वमुपायकौशल्येन त्रीणि यानान्युपदर्शयित्वा पश्चान्महायानेनैव सत्त्वान् परिनिर्वापयति। तत् कस्य हेतोः। तथागतो हि शारिपुत्र प्रभूतज्ञानबलवैशारद्यकोशकोष्ठागारसमन्वागतः प्रतिबलः सर्वसत्त्वानां सर्वज्ञज्ञानसहगतं धर्ममुपदर्शयितुम्। अनेनापि शारिपुत्र पर्यायेणैवं वेदितव्यम्। यथोपायकौशल्यज्ञानाभिनिर्हारिस्तथागत एकमेव महायानं देशयति।

हे शारिपुत्र ! जिस प्रकार वह पुरुष उन बालकों को उस जलते हुए घर से सकुशल बाहर निकला हुआ देखकर तथा उन्हें भय से मुक्त एवं अभयप्राप्त जानकर तथा अपने को महान् धनी समझता हुआ उन लड़कों को एक ही महान् यान दे, उसी प्रकार हे शारिपुत्र ! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भी जब देखते हैं कि अनेक करोड़ प्राणी इस त्रैधातुक संसार एवं दुःखदायी तथा भयंकर उपद्रवों से मुक्त होकर तथागत की आज्ञा से बाहर निकलकर सब प्रकार के भय एवं उपद्रवों-रूपी जंगल से मुक्त होकर शान्ति के सुख का अनुभव कर रहे हैं, तब हे शारिपुत्र ! महान् ज्ञान, बल एवं कुशलता से युक्त अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत ऐसा समझकर कि 'ये सभी मेरे पुत्र हैं', बुद्धयान के द्वारा ही उन प्राणियों को परिनिर्वाण की प्राप्ति कराते हैं। किसी भी प्राणी को वे प्रत्यात्मिक परिनिर्वाण का उपदेश नहीं देते। वे उन सभी प्राणियों को उसी विधि से परिनिर्वाण की प्राप्ति कराते हैं, जिस विधि से तथागतों को महानिर्वाण की प्राप्ति होती है। हे शारिपुत्र ! जो प्राणी इस त्रैधातुक संसार से मुक्त हो जाते हैं, उन्हें तथागत ध्यान, विमोक्षा, समाधि एवं समापत्ति-रूप श्रेष्ठ एवं परमसुखदायक सुन्दर खिलौने देते हैं, किन्तु वे सभी एक वर्ण के होते हैं। हे शारिपुत्र ! जिस प्रकार उस पुरुष का कथन झूठा नहीं है, जिसने तीन यानों की चर्चा करके उन सभी बालकों को सप्तरत्नमय, अनेक अलंकारों से विभूषित एवं विविध वस्तुओं से युक्त एक वर्णवाला एक ही महान् एवं श्रेष्ठ यान दिया, उसी प्रकार अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भी मृषावादी नहीं हैं, जो उपाय-कौशल्यों के द्वारा तीन यानों की चर्चा करके बाद में केवल महायान के द्वारा ही जीवों को परिनिर्वाण की प्राप्ति कराते हैं। ऐसा क्यों ? क्योंकि, हे शारिपुत्र ! प्रभूत, ज्ञान, बल एवं कुशलता-रूप कोष्ठागार एवं कोश से समन्वित तथागत सब जीवों को सर्वज्ञज्ञान-सहित धर्म का उपदेश देने में समर्थ हैं। हे शारिपुत्र ! इस प्रकार से भी यही समझना चाहिए कि उपाय-कौशल्य के ज्ञान का उपयोग करके तथागत एक ही महायान की देशना करते हैं।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तत्पश्चात्, भगवान् उस समय ये गाथाएँ बोले--

यथा हि पुरुषस्य भवेदगारं जीर्णं महन्तं च सुदुर्बलं च ।
विशीर्णप्रासादु तथा भवेत स्तम्भाश्च मूलेषु भवेयु पूतिकाः ।।३९।।

मान लो, किसी मनुष्य के पास एक बहुत बड़ा, किन्तु अत्यन्त कमजोर एवं पुराना मकान हो, जिसके चबूतरे छिन्न-भिन्न हो गये हों तथा खम्भे की जड़ सड़ गई हों।

गवाक्षहर्म्या गडितैकदेशा विशीर्ण कुड्यं कटलेपनञ्च ।
जीर्णु प्रवृद्धोद्धृतवेदिकं च तृणच्छदं सर्वत. ओपतन्तम् ।।४०।।

उसकी खिड़कियाँ और कमरे अंशतः नष्ट हो गये हों तथा दीवार एवं उसपर

लगा हुआ लेप भी नष्ट हो रहा हो। वेदिकाएँ पुरानी होने के कारण फूल-फूलकर उखड़ रही हों एवं तृणनिर्मित छाजन सब ओर से गिर रहे हों।

शतान पञ्चान अनूनकानां आवासु सो तत्र भवेत प्राणिनाम्।
बहूनि चा निष्कुटसंकटानि उच्चारपूर्णानि जुगुप्सितानि ।।४१।।

उसमें पूरे पाँच सौ जीवों का आवास हो, उसमें विष्ठा से पूर्ण वहुत-सी गन्दी कोठरियाँ और घेरे हों।

गोपानसी विगडित तत्र सर्वा कुड्याश्च भित्तीश्च तथैव स्रस्ताः।
गृध्राण कोट्यो निवसन्ति तत्र पारावतोलक तथान्यपक्षिणः ।।४२।।

छत की धरनें सर्वथा नष्ट हो गई हों, दीवारें और भित्तियाँ ढीली पड़ रही हों और वहाँ करोड़ों गीध, कबूतर, उल्लू तथा अन्य पक्षी निवास करते हों।

आशीविषा दारुण तत्र सन्ति देशप्रदेशेषु महाविषोग्राः।
विचित्रिका वृश्चिकमूषिकाश्च एतान आवासु सुदुष्टप्राणिनाम् ।।४३।।

हर कोने में अत्यन्त विषैले एवं भयदायक भयंकर सर्प निवास करते हों, रंग-विरंग के बिच्छू और चूहे भी हों। इस प्रकार, वह इन अत्यन्त दुष्ट जीवों का निवासस्थान वन गया हो।

देशे च देशे अमनुष्य भूयो उच्चारप्रस्रावविनाशितश्च।
कृमिकीटखद्योतकपूरितञ्च श्वभिः शृगालैश्च निनादितञ्च ।।४४।।

इसमें जगह-जगह मनुष्येतर जाति के अनेक जीव हों। वह विष्ठा और मूत्र से गन्दा कर दिया गया हो। कीड़े-मकोड़े तथा जुगनू से पूर्ण हो और कुत्तों और सियारों से निनादित हो।

भेरुण्डका दारुण तत्र सन्ति मनुष्यकुणपानि च भक्षयन्तः।
तेषां च निर्याणु प्रतीक्षमाणाः श्वानाः शृगालाश्च वसन्त्यनेके ।।४५।।

वहाँ मनुष्यों के शव का भक्षण करनेवाले भेरुण्डक निवास करते हों। उनके निर्गमन की प्रतीक्षा करते हुए असंख्य कुत्ते और सियार वहाँ खड़े हों।

ते दुर्बला नित्य क्षुधाभिभूता देशेषु देशेषु विखादमानाः।
कलहं करोन्ताश्च निनादयन्ति सुभैरवं तद्गृहमेवरूपम् ।।४६।।

नित्य भूखे रहनेवाले वे दुर्वल प्राणी अपने भोजन के लिए दर-दर घूम रहे हों एवं झगड़ा करते हुए घर को कोलाहलपूर्ण कर रहे हों।

सुरौद्रचित्ता पि वसन्ति यक्षा मनुष्यकुणपानि विकड्ढमानाः।
देशेषु देशेषु वसन्ति तत्र शतापदी गोनसकाश्च व्याडाः ।।४७।।

वहाँ मनुष्य के शवों की दुर्दशा करनेवाले भयंकर यक्ष भी रहा करते हों तथा वहाँ स्थान-स्थान पर गोजर, साँड़ और सर्प रहते हों।

देशेषु देशेषु च निक्षिपन्ति ते पोतकान्यालयनानि कृत्वा ।
न्यस्तानि न्यस्तानि च तानि तेषां ते यक्षभूयो परिभक्षयन्ति ।।४८।।

ये जानवर सभी स्थानों पर जहाँ-तहाँ निवासस्थान बनाकर अपने बच्चों को रख देते हों और उन स्थानों में रखे हुए उन अण्डों को ये यक्ष खा जाते हों ।

यदा च ते यक्ष भवन्ति तृप्ताः परसत्त्व खादित्व सुरौद्रचित्ताः ।
परसत्त्वमांसैः परितृप्तगात्राः कलहं तदा तत्र करोन्ति तीव्रम् ।।४९।।

वे कठोरचित्त यक्ष जब दूसरे जीवों को खाकर तृप्त हो जाते हों, तब दूसरे के मांस से मोटे शरीरवाले वे उस स्थान पर भयंकर झगड़ा करते हों ।

विध्वस्तलेनेषु वसन्ति तत्र कुम्भाण्डका दारुणरौद्रचित्ताः ।
वितस्तिमात्रास्तथ हस्तमात्रा द्विहस्तमात्राश्चनुचंक्रमन्ति ।।५०।।

विध्वस्त स्थानों में भयंकर और कठोर स्वभाववाले कुम्भाण्डक निवास करते हों । उनमें से कुछ एक बित्ता के, कुछ एक हाथ के और कुछ दो हाथ के हों तथा वे वहाँ इधर-उधर भटकते रहते हों ।

ते चापि श्वानान् परिगृह्य पादैरुत्तानकान् कृत्व तथैव भूमौ ।
ग्रीवासु चोत्पीड्य विभर्त्सयन्तो व्याबाधयन्तश्च रमन्ति तत्र ।।५१।।

वे कुत्तों की टाँग पकड़कर उन्हें ऊपर उठाकर जमीन पर पटक देते हों एवं उनकी गरदन दबाकर उनकी दुर्दशा करते हुए और उन्हें कष्ट देते हुए वे वहाँ अत्यधिक आनन्द का अनुभव करते हों ।

नानाश्च कृष्णाश्च तथैव दुर्बला उच्चा महन्ताश्च वसन्ति प्रेताः ।
जिघत्सिता भोजन मार्गमाणा आर्तस्वरं क्रन्दिषु तत्र तत्र ।।५२।।

वहाँ बहुत-से ऊँचे, काले, दुर्बल, विशाल और मूर्ख प्रेत रहते हों, जो भोजन की खोज में भयंकर शब्द करते हुए इधर-उधर दौड़ रहे हों।

सूचीमुखा गोणमुखाश्च केचित् मनुष्यमात्रास्तथ श्वानमात्राः ।
प्रकीर्णकेशाश्च करोन्ति शब्दमाहारतृष्णापरिदह्यमानाः ।।५३।।

कुछ सूचीमुख, कुछ गोणमुख, कुछ मनुष्य के आकार के एवं कुछ कुत्ते के आकार के हों। उनके वाल उलझे हुए हों तथा वे भूख-प्यास से परितप्त होकर करुण क्रन्दन कर रहे हों।

चतुर्दिशं चात्र विलोकयन्ति गवाक्ष उल्लोकनकेहि नित्यम् ।
ते यक्षप्रेताश्च पिशाचकाश्च गृध्राश्च आहार गवेषमाणाः ।।५४।।

यहाँ स्थित वे यक्ष प्रेत, पिशाच तथा गीध आहार की खोज में खिड़कियों के मार्ग से चारों ओर देख रहे हों।

एतादृशं भैरवु तद्गृहं भवेत् महन्तमुच्चं च सुदुर्बलं च ।
विजर्जरं दुर्बलमित्वरं च पुरुषस्य एकस्य परिग्रहं भवेत् ।।५५।।

इस प्रकार का वह भयानक, ऊँचा, विशाल, अत्यन्त शीर्ण, जर्जर, दुर्बल एवं विवरों से पूर्ण घर किसी एक ही व्यक्ति की सम्पत्ति हो।

स च बाह्यतः स्यात् पुरुषो गृहस्य निवेशनं तच्च भवेत् प्रदीप्तम् ।
सहसा समन्तेन चतुर्दिशं च ज्वालासहस्रैः परिदीप्यमानम् ।।५६।।

जब कि वह व्यक्ति बाहर खड़ा हो, उसी समय उस घर में आग लग जाय और वह घर सहसा चारों ओर से अग्नि की सहस्रों लपटों से प्रदीप्त हो उठे।

वंशाश्च दारूणि च अग्नितापिताः करोन्ति शब्दं गुरुकं सुभैरवम् ।
प्रदीप्त स्तम्भाश्च तथैव भित्तयो यक्षाश्च प्रेताश्च मुचन्ति नादम् ।।५७।।

अग्नि में जलते हुए बाँस और लकड़ियाँ भयंकर और गम्भीर शब्द कर रही हों। खम्भे एवं गृहभित्तियाँ जल उठे हों तथा यक्ष और प्रेत भयंकर नाद कर रहे हों।

ज्वालूषिता गृध्रशताश्च भूयः कुम्भाण्डकाः प्लोष्टमुखा भ्रमन्ति ।
समन्ततो व्याडशताश्च तत्र नदन्ति क्रोशन्ति च दह्यमानाः ।।५८।।

लपटों में जलते हुए सैकड़ों गीध तथा जिनका मुँह जल गया हो, ऐसे कूष्माण्डक इधर-उधर दौड़ रहे हैं। अग्नि में जलते हुए सैकड़ों सर्प चारों ओर कठोर क्रन्दन कर रहे हों।

पिशाचकास्तत्र बहू भ्रमन्ति संतापिता अग्निन मन्दपुण्याः ।
दन्तेहि पाटित्व ते अन्यमन्यं रुधिरेण सिञ्चन्ति च दह्यमानाः ।।५९।।

वहाँ बहुत-से अभागे पिशाच अग्नि से सन्तप्त होकर, इधर-उधर घूम रहे हों तथा अग्नि में जलते हुए वे एक-दूसरे को दाँत से विदीर्ण करके उन्हें रक्त से सींच रहे हों।

भेरुण्डका कालगताश्च तत्र खादन्ति सत्त्वाश्च ते अन्यमन्यम् ।
उच्चार दह्यत्यमनोज्ञगन्धः प्रवायते लोकि चतुर्दिशासु ।।६०।।

मृत्यु के मुख में पड़े हुए भेरुण्डक (एक गीध जाति का भयंकर पक्षी) तथा अन्य जीव भी वहाँ एक दूसरे को खा रहे हों। विष्ठा अग्नि में जल रही हो और उसकी भयंकर दुर्गन्ध संसार में चारों दिशाओं में फैल रही हो।

शतापदीयो प्रपलायमानाः कुम्भाण्डकास्ताः परिभक्षयन्ति ।
प्रदीप्तकेशाश्च भ्रमन्ति प्रेताः क्षुधाय दाहेन च दह्यमानाः ।।६१।।

इधर-उधर भागते हुए गोजरों को कुम्भाण्डक पकड़कर खा जाते हों। भूख और अग्नि से पीडित प्रेत, जिनके केश जल रहे हों, इधर-उधर घूम रहे हों।

एतादृशं भैरव तन्निवेशनं ज्वालासहस्रैर्हि विनिश्चरद्भिः ।
पुरुषश्च सो तस्य गृहस्य स्वामी द्वारस्मि अस्थासि विपश्यमानः ।।६२।।

चतुर्दिक् फैलती हुई सहस्रों ज्वालाओं से वह गृह इस प्रकार अत्यन्त भयंकर हो रहा हो । जो उस घर का स्वामी हो, वह उस घर को देखते हुए बाहर द्वार पर खड़ा हो।

शृणोति चासौ स्वक अत्र पुत्रान् क्रीडापनैः क्रीडनसक्तबुद्धीन् ।
रमन्ति ते क्रीडनकप्रमत्ता यथापि बाला अविजानमानाः ।।६३।।

वह वहाँ खड़े होकर खिलौने खेलने में मस्त अपने पुत्रों के शब्द सुन रहा हो । वे अज्ञान बालक उन खिलौने के प्रेम में पागल बने उनके खेलने में सर्वथा मस्त हों।

श्रुत्वा च सो तत्र प्रविष्टु क्षिप्रं प्रमोचनार्थाय तदात्मजानाम् ।
मा मह्य बाला इमि सर्व दारका दह्येयु नश्येयु च क्षिप्रमेव ।।६४।।

वह अपने पुत्रों के शब्द को सुनकर उनकी रक्षा के लिए उसमें घुसना चाहे; क्योंकि वह सोचता है कि हमारे ये सभी बालक मूर्ख हैं तथा उस अग्नि में जलकर शीघ्र नष्ट हो जायेंगे।

स भाषते तेषमगारदोषान् दुःखं इदं भोः कुलपुत्र दारुणम् ।
विविधाश्च सत्त्वेह अयं च अग्नि महन्तिका दुःखपरंपरा तु ।।६५।।

उन्हें वह घर के दोषों को बारे में बतलाता है और कहता है कि हे कुलपुत्रो ! यह घर अत्यन्त भयंकर एवं दुःखदायी है । इसमें अनेक प्रकार के जीव हैं । यह अग्निमय हो रहा है तथा इसमें अन्य अनेक दुःख भी हैं।

आशीविषा यक्ष सुरौद्रचित्ताः कुम्भाण्डप्रेता बहवो वसन्ति ।
भेरुण्डका श्वानशृगालसंघा गृध्राश्च आहार गवेषमाणाः ।।६६।।

इसमें अनेक सर्प, भयंकर स्वभाववाले यक्ष, कुम्भाण्डक जाति के प्रेत, भेरुण्डक, कुत्तों और सियारों के झुण्ड तथा गिद्ध, आहार की खोज करते हुए यहाँ निवास करते हैं।

एतादृशास्मिन् बहवो वसन्ति विनापि चाग्नेः परमं सुभैरवम् ।
दुःखं इदं केवलमेवरूपं समन्ततश्चाग्निरयं प्रदीप्तः ।।६७।।

इसमें ऐसे भी बहुत-से जीव निवास करते हैं, जिनके होने से अग्नि के न रहने

पर भी यह घर अत्यन्त भयंकर, चारों ओर से अग्नि से जलता हुआ एवं अनेक दुःखों को देनेवाला है।

ते चोद्यमानास्तथ बालबुद्धयः कुमारकाः क्रीडनके प्रमत्ताः ।
न चिन्तयन्ते पितरं भणन्तं न चापि तेषां मनसीकरोन्ति ।।६८।।

पिता के द्वारा इस प्रकार प्रेरित किये जाने पर खेल में लगे हुए वे मूर्ख बालक उनकी (पिता की) बातों पर ध्यान नहीं देते और पिता की बातें उनके मन में नहीं जमतीं।

पुरुषश्च सो तत्र तदा विचिन्तयेत् सुदुःखितोऽस्मी इह पुत्रचिन्तया ।
किं मह्य पुत्रेहि अपुत्रकस्य मा नाम दह्येयुरिहाग्निना इमे ।।६९।।

तब वह मनुष्य सोचे कि मैं अपने पुत्रों की चिन्ता से अत्यन्त दुःखी हो रहा हूँ; क्योंकि यदि मैं अपुत्र हो गया, तो इन पुत्रों से क्या लाभ ? ऐसा करूँ कि ये इस आग में न जलें।

उपायु सो चिन्तयि तस्मि काले लुब्धा इमे क्रीडनकेषु बालाः ।
न चात्र क्रीडा च रती च काचिद् बालान हो यादृश मूढभावः ।।७०।।

उस समय उसने एक उपाय सोचा---ये बच्चे खिलौनों में आसक्त हैं। यद्यपि कि इसमें न तो कोई वास्तविक आकर्षण है और न आनन्द ही है, फिर भी ये बालक अपनी मूढता के कारण उसमें आसक्त हैं।

स तानवोचच्छृणुथा कुमारका नानाविधा यानक या ममास्ति ।
मृगैरजैर्गोणवरैश्च युक्ता उच्चा महन्ता समलंकृता च ।।७१।।

वह उनसे बोला---प्यारे बच्चो, सुनो ! मेरे पास मृगों, बकरों और सुन्दर बैलों से युक्त अनेक प्रकार के ऊँचे, महान् और पूर्ण रूप से अलंकृत अनेक यान हैं।

ता बाह्यतो अस्य निवेशनस्य निर्धावथा तेहि करोथ कार्यम् ।
युष्माकमर्थे मय कारितानि निर्याथि तैस्तुष्टमनाः समेत्य ।।७२।।

वे इस घर के बाहर हैं। बाहर दौड़कर आओ और उनसे खेलो। तुमलोगों के लिए ही मैंने उन्हें बनवाया है। तुम सब मिलकर बाहर आओ एवं उन्हें लेकर प्रसन्न होओ।

ते यान एतादृशका निशाम्य आरब्धवीर्यास्त्वरिता हि भूत्वा ।
निर्धावितास्तत्क्षणमेव सर्वे आकाशि तिष्ठन्ति दुखेन मुक्ताः ।।७३।।

इस प्रकार के यानों की चर्चा सुनकर वे सभी लड़के शीघ्र ही बाहर आने के लिए प्रयत्न करने लगे और उसी क्षण शीघ्रता से बाहर आ गये। दुःखों से मुक्त होकर वे बाहर खुले हुए स्थान में खड़े हो गये।

पुरुषश्च सो निर्गत दृष्ट्व दारकान् ग्रामस्य मध्ये स्थितु चत्वरस्मिन् ।
उपविश्य सिंहासनि तानुवाच अहो अहं निर्वृतु अद्य मार्षाः ।।७४।।

गाँव के बीच में चबूतरे पर रखे हुए सिंहासन पर बैठा हुआ वह पुरुष बाहर आये हुए उन बालकों को देखकर उनसे बोला—हे प्रिय बच्चो ! अब इस समय मैं निश्चिन्त हो गया हूँ ।

ये दुःखलब्धा मम ते तपस्विनः पुत्राः प्रिया औरस विंश बालाः ।
ते दारुणे दुर्गगृहे अभूवन् बहुजन्तुपूर्णे च सुभैरवे च ।।७५।।

मेरे ये बीस मूर्ख औरस पुत्र, जिन्हें मैंने बहुत कष्ट से प्राप्त किया था, अभी तक उस भयंकर, दुर्गम एवं बहुत-से जानवरों से पूर्ण घर में थे ।

आदीप्तके ज्वालसहस्रपूर्णे रता च ते क्रीडरतीषु आसन् ।
मया च ते मोचित अद्य सर्वे येनाहु निर्वाणु समागतोऽद्य ।।७६।।

अग्नि की सहस्रों लपटों में ज़लते हुए उस घर में भी वे खिलौने खेलने में रत थे। आज हमने उन्हें उससे मुक्त कर दिया है । अतः, मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है ।

सुखस्थितं तं पितरं विदित्वा उपगम्य ते दारक एवमाहुः ।
ददाहि नस्तात यथाभिभाषितं त्रिविधानि यानानि मनोरमाणि ।।७७।।

अपने पिता को सुखपूर्वक बैठे देखकर वे बालक उनके पास जाकर इस प्रकार बोले—पिताजी ! अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार हमलोगों को उन तीन प्रकार के सुन्दर यान दीजिए ।

सचेत्तव सत्यक तात सर्वं यद्भाषितं तत्र निवेशने ते ।
त्रिविधानि यानानि ह संप्रदास्ये ददस्व कालोऽयमिहाद्य तेषाम् ।।७८।।

हे तात ! इस घर में आपने हमसे कहा था—तुमलोगों को तीन प्रकार के यान दूँगा । यदि आपका कथन सत्य है, तो उन यानों को हमें दीजिए। उनके देने का यही समय है।

पुरुषश्च सो कोशबली भवेत सुवर्णरूप्यामणिमुक्तिकस्य ।
हिरण्य दासाश्च अनल्पकाः स्यरुपस्थपे एकविधा स याना ।।७९।।

उस पुरुष के पास सुवर्ण, रजत, मणि एवं मुक्ता से पूर्ण एक विशाल खजाना था। उसके पास अनेक सुवर्णमुद्राएँ एवं सेवक थे, किन्तु उसने उन्हें केवल एक प्रकार के ही यान दिये।

रत्नामया गोणरथा विशिष्टाः सवेदिकाः किङ्किणिजालनद्धाः ।
छत्रध्वजेभिः समलङ्कृताश्च मुक्तामणीजालिकछादिताश्च ।।८०।।

वे गोरथ रत्नमय, विशिष्ट वेदिकाओं से युक्त, किंकिणी-युक्त जाल से बँधे, छत्र एवं ध्वज से सुशोभित तथा मुक्ता एवं मणियों के जाल से आच्छादित थे।

सुवर्णपुष्पाण कृतैश्च दामैर्देशेषु देशेषु प्रलम्बमानैः ।
वस्त्रैरुदारैः परिसंवृताश्च प्रत्यास्तृता दुष्यवरैश्च शुक्लैः ॥८१॥

वे स्थान-स्थान पर लटकती हुई सुवर्णपुष्प की बनी मालाओं से अलंकृत एवं चतुर्दिक् सुन्दर वस्त्रों से आवृत थे तथा उनपर श्वेत तथा श्रेष्ठ मखमली (रेशमी) चादरें बिछी थीं।

मृदुकान पट्टान तथैव तत्र वरतूलिकासंस्तृत येऽपि ते रथाः ।
प्रत्यास्तृताः कोटिसहस्रमूल्यैर्वरैश्च कोच्कैर्बकहंसलक्षणैः ॥८२॥

उन रथों में एक ओर श्रेष्ठ रूई के गद्दे बिछे थे और उनपर रेशमी चादरें बिछी थीं तथा दूसरी ओर बक एवं हंस के चिह्नों से युक्त तथा सहस्रों कोटि मूल्य की श्रेष्ठ दरियाँ बिछी हुई थीं ।

श्वेताः सुपुष्टा बलवन्त गोणा महाप्रमाणा अभिदर्शनीयाः ।
ये योजिता रत्नरथेषु तेषु परिगृहीताः पुरुषैरनेकैः ॥८३॥

उन रत्नजटित रथों में ऐसे बैल जुते थे, जो श्वेत, पुष्ट, बलवान्, विशाल एवं अत्यन्त दर्शनीय थे तथा उनकी लगाम अनेक पुरुष पकड़े हुए थे।

एतादृशान् सो पुरुषो ददाति पुत्राण सर्वाण वरान् विशिष्टान्।
ते चापि तुष्टात्तमनाश्च तेहि दिशाश्च विदिशाश्च व्रजन्ति क्रीडकाः ॥८४॥

उस पुरुष ने अपने सभी पुत्रों को इस प्रकार के श्रेष्ठ एवं सुन्दर रथ दिये। वे खिलवाड़ करनेवाले लड़के भी अत्यन्त प्रसन्न होकर उन रथों पर चढ़कर दिशाओं एवं विदिशाओं में चले गये ।

एमेव हं शारिसुता महर्षी सत्त्वान त्राणञ्च पिता च भोमि ।
पुत्राश्च ते प्राणिन सर्वि मह्यं त्रैधातुके कामविलग्न बालाः ॥८५॥

हे शारिपुत्र ! इसी प्रकार मैं, जो एक महर्षि हूँ, सभी प्राणियों का पिता एवं रक्षक हूँ। इस त्रैधातुक संसार में सुखों में आसक्त ये सभी प्राणी मेरे मूर्ख पुत्र हैं।

त्रैधातुकं चो यथ तन्निवेशनं सुभैरवं दुःखशताभिकीर्णम् ।
अशेषतः प्रज्वलितं समन्ताज्जातीजराव्याधिशतैरनेकैः ॥८६॥

यह त्रैधातुक संसार भी उस घर की तरह अत्यन्त भयंकर एवं सैकड़ों दुःखों से परिपूर्ण हैं। वह अनेक शत जन्म, जरा एवं व्याधि-रूप अग्नियों से चतुर्दिक् पूर्ण रूप से प्रज्वलित हो रहा है।

अहं च त्रैधातुकमुक्त शान्तो एकान्त स्थायी पवने वसामि ।
त्रैधातुकं चो ममिदं परिग्रहो ये ह्यत्र दह्यन्ति ममैति पुत्राः ।।८७।।

त्रैधातुक संसार से मुक्त, शान्त और एकान्त में रहनेवाला मैं जंगल में वास करता हूँ। यह त्रैधातुक संसार मेरी अपनी सम्पत्ति है एवं जो यहाँ विविध दुःखों से पीडित प्राणी हैं, वे मेरे पुत्र हैं।

अहं च आदीनव तत्र दर्शयी विदित्व त्राणं अहमेव चैषाम् ।
न चैव मे ते श्रुणि सर्वि बाला यथापि कामेषु विलग्नबुद्धयः ।।८८।।

यह सोचकर कि मैं ही इनका रक्षक हूँ, मैंने इसके दोषों से उन्हें अवगत करा दिया, किन्तु उन सभी मूर्खों ने मेरी बातों को नहीं सुना; क्योंकि उनकी बुद्धि सांसारिक सुखों में आसक्त थी।

उपायकौशल्यमहं प्रयोजयी यानानि त्रीणि प्रवदामि चैषाम् ।
ज्ञात्वा च त्रैधातुकि नेकदोषान् निर्धावनार्थाय वदाम्युपायम् ।।८९।।

तब मैंने उपायकौशल्य का सहारा लिया और उनके सम्मुख तीन यानों की चर्चा की तथा इस त्रैधातुक संसार में प्राप्त होनेवाले असंख्य दुःखों का, उनको ज्ञान कराकर उनसे छटकारा पाने का उन्हें उपाय बतलाया।

मां चैव ये निश्रित भोन्ति पुत्राः षडभिज्ञत्रैविद्यमहानुभावाः ।
प्रत्येकबुद्धाश्च भवन्ति येऽत्र अविवर्तिका ये चिह बोधिसत्त्वाः ।।९०।।

जो मेरे पुत्र मुझपर आश्रित होते हैं, वे भविष्य में षडभिज्ञ, त्रैविध एवं महानुभाव प्रत्येकबुद्ध तथा अविवर्त्ती बोधिसत्त्व के पद को प्राप्त होते हैं।

समान पुत्राण हु तेष तत्क्षणमिमेन दृष्टान्तवरेण पण्डितः ।
वदामि एवं इमु बुद्धयानं परिगृह्णथा सर्वि जिना भविष्यथ ।।९१।।

तथा, अन्य प्राणी भी जो मेरे पुत्रों के समान हैं, उन्हें भी मैं इस सुन्दर दृष्टान्त के द्वारा बुद्धयान का उपदेश देता हूँ, और कहता हूँ कि इसे ग्रहण करो; क्योंकि इसके द्वारा तुम सभी जिनत्व की प्राप्ति करोगे।

तच्चा वरिष्ठं सुमनोरमं च विशिष्टरूपं चिह सर्वलोके ।
बुद्धान ज्ञानं द्विपदोत्तमानामुदाररूपं तथ वन्दनीयम् ।।९२।।

मनुष्यों में श्रेष्ठ बुद्धों का यह ज्ञान इस सारे संसार में श्रेष्ठ, सुन्दर, विशिष्टरूप, उदार और सबके द्वारा वन्दनीय है।

बलानि ध्यानानि तथा विमोक्षाः समाधिनां कोटिशता च नेका ।
अयं रथो ईदृशको वरिष्ठो रमन्ति येनो सद बुद्धपुत्राः ।।९३।।

यह यान इतना श्रेष्ठ है कि इसी का आश्रय लेकर बुद्धपुत्र सदैव बल, ध्यान, विमोक्षा एवं अनेक शत कोटि समाधियों में रमते रहते हैं।

क्रीडन्त एतेन क्षपेन्ति रात्रयो दिवसांश्च पक्षानृतवोऽथ मासान्।
संवत्सरानन्तरकल्पमेव च क्षपेन्ति कल्पान सहस्रकोट्यः ।।९४।।

इसी में रमण करते हुए उनके रात, दिन, पक्ष, महीना, ऋतु, वर्ष, अन्तरकल्प तथा सहस्रों कोटि अन्तरकल्प व्यतीत होते रहते हैं।

रत्नामयं यानमिदं वरिष्ठं गच्छन्ति येनो इह बोधिमण्डे।
विक्रीडमाना बहुबोधिसत्त्वा ये चो शृणोन्ती सुगतस्य श्रावकाः ।।९५।।

यह रत्नयुवत एवं श्रेष्ठयान है। अनेक बोधिसत्त्वों तथा सुगतों के उपदेश को सुननेवाले श्रावक बोधि-मण्डप में जाकर विविध प्रकार की क्रीडाएँ कर रहे हैं।

एवं प्रजानाहि त्वमद्य तिष्य नास्तीह यानं द्वितियं कर्हिचित्।
दिशो दशा सर्व गवेषयित्वा स्थापेत्वुपायं पुरुषोत्तमानाम् ।।९६।।

हे तिष्य! आज तुम निश्चित रूप से ऐसा समझ लो कि इस संसार में दूसरा यान कहीं नहीं है। दसों दिशाओं में खोज करने के अनन्तर तुम्हें यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि त्रिविध यान की चर्चा उपाय-कौशल्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

पुत्रा ममा यूयमहं पिता वो मया च निष्कासित यूय दुःखात्।
परिदह्यमाना बहुकल्पकोट्यस्त्रैधातुकातो भयभैरवातः ।।९७।।

तुमलोग मेरे पुत्र हो, मैं तुमलोगों का पिता हूँ। मैंने ही अनेक कोटि कल्पों तक जलते हुए तुमलोगों को दुःखों एवं अत्यन्त भयंकर इस त्रैधातुक संसार से मुक्त किया है।

एवं च हं तत्र वदामि निर्वृतिमनिर्वृता यूय तथैव चाद्य।
संसारदुःखादिह यूय मुक्ता बौद्धं तु यानं व गवेषितव्यम् ।।९८।।

मैं आज तुमलोगों को निर्वाण का उपदेश दूँगा। तुमलोग विना निर्वाण प्राप्त किये ही आज संसार के दुःखों से मुक्त हो गये, किन्तु बुद्धज्ञान की खोज तो तुम्हें करनी ही होगी।

ये बोधिसत्त्वाश्च इहास्ति केचिच्छण्वन्ति सर्वे मम बुद्धनेत्रीम्।
उपायकौशल्यमिदं जिनस्य येनो विनेती बहुबोधिसत्त्वान् ।।९९।।

वे सभी बोधिसत्त्व जो यहाँ हैं, मेरे बुद्धज्ञान के इस उपदेश को सुन रहे हैं। यह सुगत का उपाय-कौशल्य है, जिसका आश्रय लेकर उन्होंने वहुत-से बोधिसत्त्वों को उपदेश दिया है।

हीनेषु कामेषु जुगुप्सितेषु रता यदा भोन्तिमि अत्र सत्त्वाः ।
दुःखं तदा भार्षति लोकनायको अनन्यथावादिरिहार्यसत्यम् ।।१००।।

जब इस संसार के जीव निन्द्य एवं जघन्य विषयों में रत हो जाते हैं, तब सदा सत्य बोलनेवाले संसार के स्वामी सुगत दुःखनामक आर्यसत्य का उपदेश देते हैं।

ये चापि दुःखस्य अजानमाना मूलं न पश्यन्ति ह बालबुद्धयः ।
मार्गं हि तेषामनुदर्शयामि समुदागमस्तृष्ण दुःखस्य सम्भवः ।।१०१।।

जो अज्ञान एवं मूर्ख दुःख के मूल को नहीं देखते, उनको मैं यह मार्ग बतलाता हूँ कि तीव्र तृष्णा का उद्गम ही दुःख का कारण होता है।

तृष्णानिरोधोथ सदा अर्निश्रिता निरोधसत्यं तृतियं इदं मे ।
अनन्यथा येन च मुच्यते नरो मार्गं हि भावित्व विमुक्त भोति ।।१०२।।

अनासक्त भाव से सदा तृष्णा को दबाने का प्रयास करना निरोध नामक यह मेरा तीसरा आर्यसत्य है । इसके द्वारा मनुष्य निश्चित रूप से मुक्त हो जाता है; क्योंकि इस उपाय को जाननेवाले मनुष्य मुक्त हो ही जाते हैं।

कुतश्च ते शारिसुता विमुक्ता असन्तग्राहातु विमुक्त भोन्ति ।
न च ताव ते सर्वत मुक्त भोन्ति अनिर्वृतांस्तान् वदतीह नायकः ।।१०३।।

हे शारिपुत्र ! वे किससे मुक्त होते हैं ? वे असद्ग्रह से मुक्त होते हैं । वे तबतक पूर्ण मुक्त नहीं होते, जबतक कि संसार के नायक उन्हें अनिर्वृत कहते रहते हैं ।

किकारणं नास्य वदामि मोक्षमप्राप्यिमामुत्तममग्रबोधिम् ।
ममैष छन्दो अहु धर्मराजा सुखापनार्थायिह लोकि जातः ।।१०४।।

क्या कारणं है कि जबतक वे श्रेष्ठ अग्रबोधि को प्राप्त नहीं कर लेते, तबतक मैं उन्हें मुक्त नहीं कहता ? यह मेरी अपनी स्वेच्छा है । मैं धर्म का राजा हूँ एवं सुख की स्थापना के लिए ही इस संसार में उत्पन्न हुआ हूँ ।

इय शारिपुत्रा मम धर्ममुद्रा या पश्चिमे कालि मयाद्य भाषिता ।
हिताय लोकस्य सदेवकस्य दिशासु विदिशासु च देशयस्व ।।१०५।।

हे शारिपुत्र ! यह मेरा धर्म-विषयक श्रेष्ठ उपदेश है, जिसे मैंने आज अन्तिम समय में देवताओं-समेत इस संसार के हित के लिए दिया है । इसका तुम सब सभी दिशाओं एवं विदिशाओं में प्रचार करो ।

यश्चापि ते भाषिति कश्चि सत्त्वो अनुमोदयामीति वदेत वाचम् ।
मूर्ध्नेन चेदं प्रतिगृह्य सूत्रं अविवर्तिकं तं नरु धारयेस्त्वम् ।।१०६।।

इस सूत्र को आदरपूर्वक शिरोधार्य करके यदि कोई प्राणी तुमसे ऐसा कहे कि मैं इसका अनुमोदन करता हूँ, तो तुम उस मनुष्य को अविवर्त्ती समझना।

दृष्टाश्च तेनो पुरिमास्तथागताः सत्कारु तेषां च कृतो अभूषि।
श्रुतश्च धर्मो अयमेवरूपो य एत सूत्रं अभिश्रद्दधेत ॥१०७॥

जो व्यक्ति इस सूत्र में श्रद्धा रखता है, उसने अवश्य ही पूर्वकाल में तथागतों को देखा है, उनका सत्कार किया है एवं उनके धर्म का श्रवण किया है।

अहं च त्वं चैव भवेत दृष्टो अयं च सर्वो मम भिक्षुसंघः।
दृष्टाश्च सर्वे इमि बोधिसत्त्वा ये श्रद्दधे भाषितमेत मह्यम् ॥१०८॥

जो मेरे इस उपदेश में श्रद्धा रखते हैं, उन्होंने अवश्य ही पूर्वकाल में मुझे तुम्हें एवं मेरे सम्पूर्ण भिक्षुसंघ को तथा इन सारे बोधिसत्त्वों को देखा है।

सूत्रं इमं बालजनप्रमोहनमभिज्ञज्ञानान मि एतु भाषितम्।
विषयो हि नैवास्तिह श्रावकाणां प्रत्येकबुद्धान गतिर्न चात्र ॥१०९॥

यह सूत्र मूर्खों के हृदय में मोह उत्पन्न कर देता है। अतः, जिन्हें श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त नहीं है, उनके सामने मैं इसकी चर्चा नहीं करता। इसमें न तो श्रावकों का ही प्रवेश है और न प्रत्येकबुद्धों की ही इसमें गति है।

अधिमुक्तिसारस्तुव शारिपुत्र किंवा पुनर्मह्य इमेऽन्यश्रावकाः।
एतेऽपि श्रद्धाय ममैव यान्ति प्रत्यात्मिकं ज्ञानु न चैव विद्यते ॥११०॥

हे शारिपुत्र! तुम्हें निर्वाण-विषयक श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त है। इन अन्य श्रावकों के विषय में मैं ऐसा नहीं कह रहा हूँ। वे भी श्रद्धा से मेरा अनुगमन करते हैं, किन्तु उनको यह श्रेष्ठज्ञान प्राप्त नहीं है।

मा चैव त्वं स्तम्भिषु मा च मानिषु मायुक्तयोगीन वदेसि एतत्।
बाला हि कामेषु सदा प्रमत्ता अजानका धर्मु क्षिपेयु भाषितम् ॥१११॥

तुम इस धर्म की चर्चा उद्दण्ड, घमण्डी एवं साधना से रहित योगियों के सम्मुख मत करना; क्योंकि वे मूर्ख, कामों में रत, घमण्डी एवं अज्ञान होने के कारण इस धर्मोपदेश का तिरस्कार कर सकते हैं।

उपायकौशल्य क्षिपित्व मह्यं या बुद्धनेत्री सद लोकि संस्थिता।
भृकुटिं करित्वान क्षिपित्व यानं विपाकु तस्येह शृणोहि तीव्रम् ॥११२॥

मेरे इस उपाय-कौशल्य और संसार में सदा वर्त्तमान बुद्धोपदेश का अपमान करने वाले एवं भौंहें चढ़ाकर यान पर आक्षेप करनेवाले व्यक्ति जिस भयंकर परिणाम को प्राप्त करते हैं, उसे सुनो।

१०६३

क्षिपित्व सूत्रं इदमेवरूपं मयि तिष्ठमाने परिनिर्वृते वा ।
भिक्षूषु वा तेषु खिलानि कृत्वा तेषां विपाकं ममिहं शृणोहि ॥११३॥

मेरे वर्त्तमान रहते या मेरे निर्वाण प्राप्त करने के अनन्तर मेरे इस प्रकार के उपदेश पर जो आक्षेप करता है, या जो उन भिक्षुओं का अपमान करता है, वह जिस दुष्परिणाम का भागी होता है, उसके विषय में मुझसे सुनो ।

च्युत्वा मनुष्येषु अवीचि तेषां प्रतिष्ठ भोती परिपूर्णकल्पात् ।
ततश्च भूयोऽन्तरकल्पनेकांश्च्युताश्च्युतास्तत्र पतन्ति बालाः ॥११४॥

वे मनुष्य-योनि से गिरकर अनेक पूर्णकल्पों तक अवीची नामक नरक में निवास करते हैं। तदनन्तर, उन मूर्खों का अनेक अन्तरकल्पों तक निरन्तर पतन के वाद पतन होता रहता है।

यदा च नरकेषु च्युता भवन्ति ततश्च तिर्यक्षु व्रजन्ति भूयः ।
सुदुर्बलाः श्वानशृगालभताः परेष क्रीडापनका भवन्ति ॥११५॥

नरक से गिरने के अनन्तर वे तिर्यक्-योनि में जाते हैं । वहाँ वे कुत्ते एवं शृगाल का दुर्बल शरीर धारण कर दूसरों के खिलवाड़ का साधन वनते हैं ।

वर्णेन ते कालक तत्र भोन्ति कल्माषका व्राणिक कण्डुलाश्च ।
निर्लोमका दुर्बल भोन्ति भूयो विद्वेषमाणा मम अग्रबोधिम् ॥११६॥

जो मेरे इस श्रेष्ठज्ञान से द्वेष रखते हैं, उनका शरीर काले वर्ण का, धब्बे से युक्त, व्रणों से परिपूर्ण, खुजली से युक्त, कशरहित एवं दुर्बल होता है।

जुगुप्सिता प्राणिषु नित्य भोन्ति लोष्टप्रहाराभिहता रुदन्तः ।
दण्डेन सन्त्रासित तत्र तत्र क्षुधापिपासाहत शुष्कगात्राः ॥११७॥

अन्य प्राणी उनको घृणा की दृष्टि से देखते हैं। ढेले की चोट खाकर वे चिल्लाते हैं। सर्वत्र डण्डे से पीटे जाते हैं तथा भूख और प्यास से उनके अनेक सारे अंग सूख जाते हैं।

उष्ट्राथ वा गर्दभ भोन्ति भूयो भारं वहन्तः कशदण्डताडिताः ।
आहारचिन्तामनुचिन्तयन्तो ये बुद्धनेत्री क्षिपि बालबुद्धयः ॥११८॥

जो मूर्ख बुद्धोपदेश की निन्दा करते हैं, वे ऊँट या गदहे का शरीर धारण करते हैं तथा केवल पेट भरने की ही चिन्ता करनेवाले वे भार वहन करते हैं तथा बार-बार चाबुक एवं डण्डे से पीटे जाते हैं।

पुनश्च ते क्रोष्टुक भोन्ति तत्र बीभत्सकाः काणकु कुण्डकाश्च ।
उत्पीडिता ग्रामकुमारकेहि लोष्टप्रहाराभिहताश्च बालाः ॥११९॥

कभी-कभी वे मूर्ख कुरूप, काने और कोढ़ी सियार का शरीर धारण करते हैं तथा गाँव के लड़के ढेले मार-मारकर पीडित करते हैं।

ततश्च्यवित्वान च भूयु बाला: पञ्चाशतीनां सम योजनानाम् ।
दीर्घात्मभावा हि भवन्ति प्राणिनो जडाश्च मूढा: परिवर्तमाना: ॥१२०॥

वे मूर्ख इस योनि से छुटकारा पाकर पुन: ऐसे जीवों की योनि में उत्पन्न होते हैं, जो पाँच सौ योजन लम्बे शरीर को धारण करनेवाले, अपने ही स्थान पर करवटें बदलनेवाले एवं चेतनाहीन एवं जड शरीर के धारक होते हैं।

अपादका भोन्ति च कोडसविकनो विखाद्यमाना बहुप्राणिकोटिभि: ।
सुदारुणां ते अनुभोन्ति वेदनां क्षिपित्व सूत्रं इदमेवरूपम् ॥१२१॥

वे पैरों से रहित एवं पेट के सहारे चलनेवाले होते हैं । अनेक प्राणी उन्हें खाते रहते हैं। इस प्रकार, मेरे सूत्र की अवहेलना करनेवाले व्यक्ति भयंकर यातनाओं का अनुभव करते हैं।

पुरुषात्मभावं च यदा लभन्ते ते कुण्डका लङ्गक भोन्ति तत्र ।
कुब्जाथ काणा च जडा जघन्या अश्रद्दधन्ता इम सूत्र मह्यम् ॥१२२॥

मेरे इस सूत्र में श्रद्धा न रखनेवाले प्राणी जब पुरुष का शरीर धारण करते हैं, तब उस समय वे कोढ़ी, लँगड़े, कुबड़े, काने एवं मूर्ख होते हैं तथा नीच कुल में जन्म लेते हैं ।

अप्रत्यनीयाश्च भवन्ति लोके पूतीमुखात्तेष प्रवाति गन्ध: ।
यक्षग्रहो उक्रमि तेष काये अश्रद्धधन्तानिम बुद्धबोधिम् ॥१२३॥

इस बुद्ध-बोधि में श्रद्धा न रखनेवालों पर कोई विश्वास नहीं करता । उनका मुख सड़ा रहता है एवं उससे दुर्गन्ध निकलती है और उनके शरीर में यक्ष का निवास होता है।

दरिद्रका पेषणकारकाश्च उपस्थायका नित्य परस्य दुर्बला: ।
आबाध तेषां बहुकाश्च भोन्ति अनाथभूता विहरन्ति लोके ॥१२४॥

वे दरिद्र सेवकों का कार्य करते हैं, सदा दूसरों के अधीन रहते हैं एवं दुर्बल होते हैं। उन्हें अनेक बाधाएँ होती रहती हैं तथा वे अनाथ के समान इस संसार में भटकते रहते हैं।

यस्यैव ते तत्र करोन्ति सेवनामदातुकामो भवती स तेषाम् ।
दत्तंपि चो नश्यति क्षिप्रमेव फलं हि पापस्य इमेवरूपम् ॥१२५॥

इस पाप का ऐसा फल होता है कि जिसकी वे सेवा करते हैं, वह उन्हें पारिश्रमिक

नहीं देना चाहता और यदि दे भी देता है, तो वह दिया हुआ धन शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

यच्चापि ते तत्र लभन्ति औषधं सुयुक्तरूपं कुशलेहि दत्तम् ।
तेनापि तेषां रुजु भूय वर्धते सो व्याधिरन्तं न कदाचि गच्छति ।।१२६।।

यदि वे योग्य वैद्यों द्वारा दी गई सुन्दर ओषधि भी प्राप्त करते हैं, तो उससे उनका रोग बढ़ता ही है; उनकी व्याधि कभी समाप्त नहीं होती।

अन्येहि चौर्याणि कृतानि भोन्ति डमराथ डिम्बास्तथ विग्रहाश्च ।
द्रव्यापहाराश्च कृतास्तथान्यैर्निपतन्ति तस्योपरि पापकर्मणः। ।१२७।।

उनमें से कुछ चोरी करते हैं, कुछ मारपीट करते हैं एवं कुछ दूसरों से झगड़ा करते हैं। कुछ अन्य व्यक्ति दूसरों की वस्तुओं का अपहरण करते हैं और इस प्रकार वे विविध पापों के भागी बनते हैं।

न जातु सो पश्यति लोकनाथं नरेन्द्रराजं महि शासमानम् ।
तस्याक्षणेष्वेव हि वासु भोति इमां क्षिपित्वा मम बुद्धनेत्रीम् ।।१२८।।

जो मेरे इस बुद्धज्ञान का निरादर करता है, वह इस पृथ्वी पर शासन करनेवाले श्रेष्ठ राजाओं एवं लोकनायकों के दर्शन कदापि नहीं पाता; क्योंकि उसका निवास सदा अयोग्य स्थानों पर ही होता है।

न चापि सो धर्म शृणोति बालो बधिरश्च सो भोति अचेतनश्च ।
क्षिपित्व बोधीमिममेवरूपामुपशान्ति तस्या न कदाचि भोति ।।१२९।।

इस प्रकार की बुद्धबोधि का निरादर करनेवाला वह मूर्ख धर्म की चर्चा को कभी नहीं सुनता। वह अचेतन एवं बहरा होता है तथा उसे कभी शान्ति नहीं मिलती।

सहस्रनेका नयुतांश्च भूयः कल्पान कोट्यो यथ गङ्गबालिकाः।
जडात्मभावो विकलश्च भोति क्षिपित्व सूत्रं इमु पापकं फलम् ।।१३०।।

इस सूत्र के निरादर का ऐसा कुपरिणाम होता है कि वह गंगा की बालुका के समान अनेक कोटीनयुत शतसहस्र कल्पों तक मूर्ख एवं विकल बनकर इस संसार में निवास करता है।

उद्यानभूमी नरकोऽस्य भोति निवेशनं तस्य अपायभूमिः ।
खरसूकरा क्रोष्टुक भूमिसूचकाः प्रतिष्ठितस्येह भवन्ति नित्यम् ।।१३१।।

नरक ही उसकी क्रीडाभूमि होती है एवं कलुषित स्थान ही उसका निवासस्थान होता है। गदहे, सूअर, सियार और कुत्ते ही उसके साथी होते हैं।

मनुष्यभावत्वमुपेत्य चापि अन्धत्व बधिरत्व जडत्वमति ।
परप्रेष्य सो भोति दरिद्र नित्यं तत्कालि तस्याभरणानिमानि ।।१३२।।

मनुष्य-शरीर धारण करके भी वह अन्धा, बहरा, मूर्ख, दूसरों का सेवक एवं दरिद्र होता है। उस समय ये ही चीजें उसका आभूषण होती हैं।

वस्त्राणि चो व्याधयु भोन्ति तस्य व्रणान कोटीनयुताश्च काये ।
विर्चचिका कण्डु तथैव पामा कुष्ठं किलासं तथ आमगन्धः ।।१३३।।

उस समय व्याधियाँ शरीर के कोटीनयुत घाव, विर्चचिका, खुजली, पामा, कुष्ठ, किलास तथा सड़ी दुर्गन्ध, ये ही उसके शरीर के वस्त्र होते हैं।

सत्कायदृष्टिश्च घनास्य भोति उदीर्यते क्रोधबलं च तस्य ।
संरागु तस्यातिभृशं च भोति तिर्याण योनीषु च सो सदा रमी ।।१३४।।

सत्य को देखने में उसकी दृष्टि धुँधली होती है। उसके अन्दर क्रोध की तीव्रता बढ़ जाती है। उसके राग अत्यन्त तीव्र हो जाते हैं और उसे पशु-पक्षियों की योनि में आनन्द मिलता है।

सचेदहं शारिसुताद्य तस्य परिपूर्णकल्पं प्रवदेय दोषान् ।
यो ही समा एतु क्षिपेत सूत्रं पर्यन्तु दोषाण न शक्य गन्तुम् ।।१३५।।

हे शारिपुत्र ! यदि मैं इस सूत्र से घृणा करनेवाले व्यक्ति के दोषों का पूरे एक कल्प तक वर्णन करता रहूँ, तो भी मैं उसके दोषों का पार नहीं पा सकता।

संपश्यमानो इदमेव चार्थं त्वां संदिशामी अहु शारिपुत्र ।
मा हैव त्वं बालजनस्य अग्रतो भाषिष्यसे सूत्रमिमेवरूपम् ।।१३६।।

हे शारिपुत्र ! इस बात से मैं पूर्ण रूप से अवगत हूँ। इसीलिए मैं, तुम्हें आदेश देता हूँ कि तुम इस प्रकार के इस सूत्र की मूर्खों के सामने कभी व्याख्या न करना।

ये तू इह व्यक्त बहुश्रुताश्च स्मृतिमन्तु ये पण्डित ज्ञानवन्तः ।
ये प्रस्थिता उत्तममग्रबोधि तान् श्रावयेस्त्वं परमार्थमेतत् ।।१३७।।

किन्तु, जो बुद्धिमान्, बहुश्रुत, स्मृतिमान्, ज्ञानवान, पण्डित एवं श्रेष्ठ अग्रबोधि को प्राप्त हैं, ऐसे ही व्यक्तियों को तुम्हें इस परमार्थदर्शी श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश देना चाहिए।

दृष्टाश्च येही बहुबुद्धकोट्यः कुशलं च यै रोपितमप्रमेयम् ।
अध्याशयश्चा दृढ येष चो स्यात्तान् श्रावयेस्त्वं परमार्थमेतत् ।।१३८।।

तुम्हें इस परमार्थदर्शी श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश ऐसे ही प्राणियों को देना चाहिए, जिन्होंने अनेक बुद्धों को देखा है, अप्रमेय कुशल की स्थापना कराई है एवं जो दृढ निश्चयवाले हैं।

ये वीर्यवन्तः सद मैत्रचित्ता भावेन्ति मैत्रीमिह दीर्घरात्रम् ।
उत्सृष्टकाया तथ जीविते च तेषामिदं सूत्र भणेः समक्षम् ॥१३९॥

इस सूत्र का उपदेश उन्हीं को देना चाहिए, जो शक्तिसम्पन्न, दयालु, बहुत काल से दया की भावना को बढ़ानेवाले एवं शरीर एवं जीवन के विषय में निःस्पृह हैं।

अन्योन्यसंकल्प सगौरवाश्च तेषां च बालेहि न संस्तवोऽस्ति ।
ये चापि तुष्टा गिरिकन्दरेषु तान् श्रावयेस्त्वं इद सूत्र भद्रकम् ॥१४०॥

इस मंगलमय सूत्र का तुम्हें उन्हीं को उपदेश देना चाहिए, जो परस्पर प्रेम और आदर दिखलाते हैं, मूर्खों से सम्पर्क नहीं रखते तथा गिरिकन्दराओं में सन्तोषपूर्वक निवास करते हैं।

कल्याणमित्रांश्च निषेवमाणाः पापांश्च मित्रान् परिवर्जयन्ताः ।
यानीदृशान् पश्यसि बुद्धपुत्रांस्तेषामिदं सूत्र प्रकाशयेसि ॥१४१॥

यदि तुम्हें ऐसे बुद्धपुत्र मिलें, जो अच्छे मित्रों से सम्बन्ध रखनेवाले एवं दुष्ट मित्रों से सम्पर्क न रखनेवाले हों, तो उन्हें ही तुम इस सूत्र का उपदेश देना।

अच्छिद्रशीला मणिरत्नसादृशा वैपुल्यसूत्राण परिग्रहे स्थिताः ।
पश्येसि यानीदृश बुद्धपुत्रांस्तेषाग्रतः सूत्रमिदं वदेसि ॥१४२॥

यदि तुम्हें ऐसे बुद्धपुत्र मिलें, जिन्होंने अपने व्रत को नहीं तोड़ा है, जो मणि एवं रत्न के सदृश निर्मल हैं तथा जो वैपुल्यसूत्रों के अध्ययन में संलग्न हैं, तो तुम उनके सम्मुख इस सूत्र की व्याख्या करना।

अक्रोधना ये सद आर्जवाश्च कृपासमन्वागत सर्वप्राणिषु ।
सगौरवा ये सुगतस्य अन्तिके तेषाग्रतः सूत्रमिदं वदेसि ॥१४३॥

जो सदा क्रोधरहित, सरल, दूसरे जीवों के प्रति दया की भावना रखनेवाले एवं सुगतों के प्रति आदर का भाव रखनेवाले हों, ऐसे ही व्यक्तियों के सम्मुख तुम इस सूत्र की व्याख्या करना।

यो धर्म भाषे परिषाय मध्ये असङ्गप्राप्तो वदि युक्तमानसः ।
दृष्टान्तकोटीनयुतैरनेकैस्तस्येद सूत्रं उपदर्शयेसि ॥१४४॥

जो सभा के बीच में धर्म का उपदेश करता है, आसक्ति से मुक्त तथा समाधिस्थचित्त है, उसके ही सम्मुख अनेक कोटीनयुत दृष्टान्तों के द्वारा तुम इस धर्म का उपदेश देना।

मूर्ध्नाञ्जलिं यश्च करोति बद्ध्वा सर्वज्ञभावं परिमार्गमाणः ।
दशो दिशो योऽपि च चङ्क्रमेत सुभाषितं भिक्षु गवेषमाणः ।।१४५।।

जो सर्वज्ञ भाव को खोजता हुआ, बँधी हुई अंजलि अपने मस्तक पर ले जाता है एवं जो सुन्दर उपदेश देनेवाले भिक्षु की खोज में दसों दिशाओं में घूमता रहता है,

वैपुल्यसूत्राणि च धारयेत न चास्य रुच्यन्ति कदाचिदन्ये ।
एकांपि गाथां न च धारयेऽन्यतस्तं श्रावयेस्त्वं वरसूत्रमेतत् ।।१४६।।

जो वैपुल्यसूत्रों को धारण करता है, जिसे दूसरी वस्तुएँ कभी नहीं रुचतीं तथा जो दूसरी पुस्तक से एक भी गाथा नहीं जानता, ऐसे व्यक्ति को ही तुम इस श्रेष्ठ सूत्र का उपदेश देना।

तथागतस्यो यथ धातु धारयेत्तथैव यो मार्गति कोचि तं नरः ।
एमेव यो मार्गति सूत्रमीदृशं लभित्व चो मूर्धनि धारयेत ।।१४७।।

जो व्यक्ति इस प्रकार के सूत्र की खोज करता रहता है और मिल जाने पर उसे सादर मस्तक पर धारण करता है, वह उस मनुष्य की तरह है, जो तथागत के धात्ववशेषों की खोज में रहता है तथा मिल जाने पर उसे धारण करता है।

अन्येषु सूत्रेषु न काचि चिन्ता लोकायतैरन्यतरैश्च शास्त्रैः ।
बालान एतादृश भोन्ति गोचरास्तांस्त्वं विवर्जित्व प्रकाशयेरिदम् ।।१४८।।

उसे दूसरे सूत्रों एवं अन्य लोकायत शास्त्रों से कोई प्रयोजन नहीं होता; क्योंकि ये वस्तुएँ मूर्खों की ही दृष्टिगोचर होती हैं। तुम इनको त्याग कर इस सूत्र की व्याख्या करो।

पूर्णं पि कल्पं अहु शारिपुत्र वदेयमाकारसहस्रकोट्यः ।
ये प्रस्थिता उत्तममग्रबोधिं तेषाग्रतः सूत्रमिदं वदेसि ।।१४९।।

हे शारिपुत्र ! इस विषय से सम्बद्ध अनेक सहस्र कोटि विषयों का मैं पूरे एक कल्प तक विवेचन कर सकता हूँ। तुम्हें मेरा केवल इतना ही आदेश है कि तुम इस सूत्र की व्याख्या उन्हीं व्यक्तियों के सम्मुख करना, जो श्रेष्ठ अग्रबोधि को प्राप्त हैं।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याय औपम्यपरिवर्तो नाम तृतीयः ।।३।।

धर्मपर्याय-रूप श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक का औपम्यपरिवर्त नाम
तीसरा परिवर्त समाप्त हुआ।

अधिमुक्तिपरिवर्तः

अथ खल्वायुष्मान् सुभूतिरायुष्मांश्च महाकात्यायन आयुष्मांश्च महाकाश्यप आयुष्मांश्च महामौद्गल्यायन इममेवंरूपमश्रुतपूर्वं धर्मं श्रुत्वा भगवतोऽन्तिकात् संमुखमायुष्मतश्च शारिपुत्रस्य व्याकरणं श्रुत्वानुत्तरायां सम्यक्संबोधावाश्चर्यप्राप्ता अद्भुतप्राप्ता औद्बिल्यप्राप्तास्तस्यां वेलायामुत्थायासनेभ्यो येन भगवांस्तेनोपसंक्रामन्नुपसंक्रम्यैकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणं जानु पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तमभिमुखमुल्लोकयमाना अवनतकाया अभिनतकायाः प्रणतकायास्तस्यां वेलायां भगवन्तमेतदवोचन् ।

तदनन्तर, आयुष्मान् सुभूति, आयुष्मान् महाकाश्यप, आयुष्मान् महाकात्यायन, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन भगवान् के मुख से इस प्रकार के अश्रुतपूर्व धर्मोपदेश तथा आयुष्मान् शारिपुत्र की श्रेष्ठ सम्यक् सम्वोधि-प्राप्ति के विषय में भविष्यवाणी सुनकर अत्यन्त आश्चर्य, विस्मय एवं कुतूहल को प्राप्त हुए। उस समय वे अपने आसनों से उठकर जिधर भगवान् बैठे थे, उधर चल पड़े। वे वहाँ पहुँचकर अपनी चादर को एक कन्धे पर रखकर एवं दायें घुटने को पृथ्वी पर टेककर जिधर भगवान् थे, उस ओर हाथ जोड़े उनका मुख देखते हुए अवनत एवं प्रणत होकर उस समय भगवान् से इस प्रकार बोले ——

वयं हि भगवन् जीर्णा वृद्धा महल्लका अस्मिन् भिक्षुसंघे स्थविरसंमता जराजीर्णीभूता निर्वाणप्राप्ताः स्म इति भगवन्निरुद्यमा अनुत्तरायां सम्यक् संबोधावप्रतिबलाः स्माप्रतिवीर्यारम्भाः स्म । यदापि भगवान् धर्मं देशयति चिरं निषण्णश्च भगवान् भवति वयं च तस्यां धर्मदेशनायां प्रत्युपस्थिता भवामः । तदाप्यस्माकं भगवन् चिरं निषण्णानां भगवन्तं चिरं पर्युपासितानामङ्गप्रत्यङ्गानि दुःखन्ति सन्धिविसन्धयश्च दुःखन्ति । ततो वयं भगवन् भगवतो धर्मं देशयमानस्य शून्यतानिमित्ताप्रणिहितं सर्वमाविष्कुर्मो नास्माभिरेषु बुद्धधर्मेषु बुद्धक्षेत्रव्यूहेषु वा बोधिसत्त्वविक्रीडितेषु वा तथागतविक्रीडितेषु वा स्पृहोत्पादिता । तत् कस्य हेतोः । यच्चास्माद्भगवंस्त्रैधातुकान्निर्धाविता निर्वाणसंज्ञिनो वयं च जराजीर्णाः । ततो भगवन्नस्माभिरप्यन्ये बोधिसत्त्वा अववदिता अभूवन्ननुत्तरायां सम्यक्संबोधावनुशिष्टाश्च न च भगवंस्तत्रास्माभिरेकमपि स्पृहाचित्तमुत्पादितमभूत् । ते वयं भगवन्नेतर्हि भगवतोऽन्तिकाच्छ्रावकाणामपि व्याकरणमनुत्तरायां सम्यक्

संबोधौ भवतीति श्रुत्वाश्चर्याद्भुतप्राप्ताः महालाभप्राप्ताः स्म भगवन्नद्य सहसैवेममेवंरूपमश्रुतपूर्वं तथागतघोषं श्रुत्वा महारत्नप्रतिलब्धाश्च स्म भगवन्नप्रमेयरत्नप्रतिलब्धाश्च स्म । भगवन्नमार्गितमपर्येष्टमचिन्तितमप्रार्थितं चास्माभिर्भगवन्निदमेवंरूपं महारत्नं प्रतिलब्धम् । प्रतिभाति नो भगवन् प्रतिभाति नः सुगत ।

हे भगवन् ! हम जीर्ण, वृद्ध एवं अधिक आयुवाले हो गये हैं, इसलिए भिक्षुसंघ में स्थविर माने जाते हैं तथा बुढ़ापे से जीर्ण-शीर्ण हो गये हैं । हमें निर्वाण प्राप्त हो चुका है, ऐसा सोचकर हमलोग श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति में निरुद्यम एवं प्रयत्नहीन हो गये हैं । जब कभी भगवान् बहुत देर तक एक आसन पर बैठे हुए धर्म की देशना करते हैं, तब हमलोग उस धर्मोपदेश में उपस्थित रहते हैं । उस समय हे भगवन् ! बहुत देर तक बैठे रहने एवं बहुत काल तक भगवान की सेवा करते रहने के कारण हमारे अंग-प्रत्यंग एवं संधि-विसंधियाँ सभी पीडित होने लगते हे । हे भगवन् ! भगवान् के उपदेश देते रहने पर भी हमलोग यह न समझ सके कि यहाँ हर चीज शून्य, अनिमित्त एवं अस्थिर है। हमलोगों के हृदय में इन बुद्धधर्मों, बुद्धक्षेत्रों, बोधिसत्त्व की विविध क्रीडाओं एवं तथागत की विविध क्रीडाओं के विषय में स्पृहा उत्पन्न न हो सकी। ऐसा क्यों हुआ ? क्योंकि, जराजीर्ण होने के कारण हमने ऐसा मान लिया है कि हमलोग इस त्रैधातुक संसार से मुक्त हो गये हैं एवं निर्वाण भी प्राप्त कर लिया है । अतः, हे भगवन् ! हमने अन्य बोधिसत्त्वों को उपदेश दिया एवं उन्हें श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की शिक्षा दी, किन्तु हमारे अपने हृदय में एकबार भी ज्ञानप्राप्ति की तीव्र इच्छा नहीं उत्पन्न हुई । हे भगवन् ! ऐसा सुनकर कि श्रावक लोगों को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति कराने के लिए भगवान् के मुख से भविष्यवाणी होगी , हे भगवन् ! हमें महान् आश्चर्य हुआ तथा हे भगवन् ! आज सहसा तथागत के इस प्रकार के अश्रुतपूर्व घोष को सुनकर हे भगवन् ! हमें ऐसा लगा कि हमने महान् एवं अप्रमेय रत्न प्राप्त कर लिया । मैंने हे भगवन् ! आज ऐसा रत्न प्राप्त किया है, जिसकी न हमने कभी खोज की थी, न आशा की थी और न प्रार्थना ही की थी । हे भगवन् ! हमें ऐसा प्रतीत होता है, हे सुगत ! हमें ऐसा प्रतिभासित होता है ।

तद् यथापि नाम भगवन् कश्चिदेव पुरुषः पितुरन्तिकादपक्रामेत् सोऽपक्रम्यान्यतरं जनपदप्रदेशं गच्छेत् । स तत्र बहूनि वर्षाणि विप्रवसेद् विंशतिं वा त्रिंशद्वा चत्वारिंशद् वा पञ्चाशद् वा । अथ स भगवन् महान् पुरुषो भवेत् स च दरिद्रः स्यात् स च वृत्तिं पर्येषमाण आहारचीवरहेतोर्दिशो विदिशः प्रक्रामन्नन्यतरं जनपदप्रदेशं गच्छेत् । तस्य च स पितान्यतमं जनपदं प्रक्रान्तः स्याद् बहुधनधान्यहिरण्यकोशकोष्ठागारश्च भवेद् बहुसुवर्णरूप्यमणिमुक्तावैडूर्यशङ्खशिलाप्रवाडजातरूपरजतसमन्वागतश्च भवेद् बहुदासीदासकर्मकरपौरुषेयश्च

भवेद् बहुहस्त्यश्वरथगवेडकसमन्वागतश्च भवेन्महापरिवारश्च भवेन्महाजनपदेषु च धनिकः स्यादायोगप्रयोगकृषिवाणिज्यप्रभूतश्च भवेत् ।

यह वैसा ही हुआ, जैसे कोई व्यक्ति अपने पिता को छोड़कर दूर चला जाय और दूर जाकर किसी दूसरे जनपद में पहुँचे। वहाँ वह बहुत वर्षों तक यथा बीस, तीस, चालीस या पचास वर्षों तक निवास करे। हे भगवन्! वह पुरुष पहले महान् रहा हो, किन्तु अब वह दरिद्र हो जाय और वस्त्र एवं भोजन के लिए नौकरी की खोज में दिशाओं और विदिशाओं को पार करता हुआ किसी जनपद में पहुँचे। उसके पिता भी दूसरे जनपद में चले जायँ। उसके पिता के पास प्रभूत धन, धान्य, हिरण्य, कोश एवं कोष्ठागार हो, वह अनेक प्रकार के स्वर्ण, रजत, मणि, मुक्ता, वैदूर्य, शंख, शिला, प्रवाल, जातरूप एवं रजत से समन्वित हो, उसके पास अनेक दास-दासी, कर्मकर एवं नौकर तथा अनेक हाथी-घोड़े, रथ, गाय और भेड़ हों एवं उसका परिवार भी विशाल हो, बड़े-से-बड़े जनपद में भी उससे बढ़कर दूसरा धनी व्यक्ति न हो तथा उसके यहाँ आयोग, प्रयोग, कृषि और वाणिज्य आदि प्रभूत मात्रा में होते हों।

अथ खलु भगवन् स दरिद्रपुरुष आहारचीवरपर्येष्टिहेतोर्ग्रामनगरनिगमजनपदराष्ट्रराजधानीषु पर्यटमानोऽनुपूर्वेण यत्रासौ पुरुषो बहुधनहिरण्यसुवर्णकोशकोष्ठागारस्तस्यैव पिता वसति तन्नगरमनुप्राप्तो भवेत् । अथ खलु भगवन् स दरिद्रपुरुषस्य पिता बहुधनहिरण्यकोशकोष्ठागारस्तस्मिन् नगरे वसमानस्तं पञ्चाशद्वर्षनष्टं पुत्रं सततसमितमनुस्मरेत् समनुस्मरमाणश्च न कस्यचिदाचक्षेदन्यत्रैक एवात्मनाध्यात्मं संतप्येदेवं च चिन्तयेत् । अहमस्मि जीर्णो वृद्धो महल्लकः प्रभूतं मे हिरण्यसुवर्णधनधान्यकोशकोष्ठागारं संविद्यते न च मे पुत्रः कश्चिदस्ति । मा हैव मम कालक्रिया भवेत् सर्वमिदमपरिभुक्तं विनश्येत् । स तं पुनः पुनः पुत्रमनुस्मरेत् । अहो नामाहं निर्वृतिप्राप्तो भवेयं यदि मे स पुत्र इमं धनस्कन्धं परिभुञ्जीत ।

तत्पश्चात्, हे भगवन् ! वह दरिद्र पुरुष भोजन और वस्त्र की खोज में विभिन्न ग्रामों, नगरों, जनपदों, राष्ट्रों एवं राजधानियों में घूमता हुआ क्रम से उस नगर में पहुँचे, जहाँ पर प्रभूत धन, स्वर्ण, सुवर्णकोश और कोष्ठागार से सम्पन्न वह व्यक्ति रहता हो, जो उसका पिता है। तदनन्तर, हे भगवन्! उस निर्धन व्यक्ति का पिता जो प्रभूत धन, हिरण्य, कोश एवं कोष्ठागार से सम्पन्न है, उस नगर में रहता हुआ पचास वर्ष पूर्व खोये हुए अपने पुत्र की निरन्तर चिन्ता करता रहे, किन्तु चिन्ता करते हुए भी इस बात को किसी के सामने न कहे, केवल अन्दर-ही-अन्दर सन्तप्त होता हुआ ऐसा सोचे––मैं जीर्ण, वृद्ध और अधिक आयुवाला हो गया हूँ। मेरे पास प्रभूत हिरण्य, सुवर्ण, धन-धान्य, कोश और कोष्ठागार हैं, किन्तु मुझे कोई पुत्र नहीं है। ऐसा न हो कि मैं

मर जाऊँ और यह सारी सम्पत्ति भोक्ता के अभाव में विना भोगे ही नष्ट हो जाय। वह बारम्बार अपने पुत्र की चिन्ता करता रहे––यदि वह मेरा पुत्र इस प्रभूत धनराशि का उपभोग करता, तो मुझे कितनी प्रसन्नता होती।

अथ खलु भगवन् स दरिद्रपुरुष आहारचीवरं पर्येषमाणोऽनुपूर्वेण येन तस्य प्रभूतहिरण्यसुवर्णधनधान्यकोशकोष्ठागारस्य समृद्धस्य पुरुषस्य निवेशनं तेनोपसंक्रामेत् । अथ खलु भगवन् स तस्य दरिद्रपुरुषस्य पिता स्वके निवेशनद्वारे महत्या ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रपरिषदा परिवृतः पुरस्कृतो महासिंहासने सपादपीठे सुवर्णरूप्यप्रतिमण्डित उपविष्टो हिरण्यकोटीशतसहस्रैर्व्यवहारं कुर्वन् बालव्यजनेन वीज्यमानो विततविताने पृथिवीप्रदेशे मुक्तकुसुमाभिकीर्णे रत्नदामाभिप्रलम्बिते महत्यर्द्धयोपविष्टः स्यात् । अद्राक्षीत् स भगवन् दरिद्रपुरुषस्तं स्वकं पितरं स्वके निवेशनद्वारे एवं रूपयर्द्धयोपविष्टं महता जनकायेन परिवृतं गृहपतिकृत्यं कुर्वाणम् । दृष्ट्वा च पुनर्भीतस्त्रस्तः संविग्नः संहृष्टरोमकूपजात उद्विग्नमानस एवमनुविचिन्तयामास । सहसैवायं मया राजा वा राजमात्रो वासादितो नास्त्यस्माकमिह किंचित् कर्म । गच्छामो वयम् । येन दरिद्रवीथी तत्रास्माकमाहारचीवरमल्पकृच्छ्रेणैव उत्पत्स्यते । अलं मे चिरं विलम्बितेन । मा हैवाहमिह वैष्टिको वा गृह्येयान्यतरं वा दोषमनुप्राप्नुयाम् ।

तत्पश्चात्, हे भगवन्! संयोगवश वह दरिद्र पुरुष भोजन और वस्त्र की खोज में उसी मार्ग से जाय, जिसपर प्रभूत हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, कोश एवं कोष्ठागार से सम्पन्न उस धनी पुरुष का घर था। तदनन्तर, हे भगवन्! उस दरिद्र व्यक्ति का महान् संपत्तिशाली पिता अपने घर के द्वार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के विशाल समुदाय से परिवृत एवं पुरस्कृत, कोटिशः स्वर्ण-मुद्राओं से व्यवहार करता हुआ, चँवर से वीज्यमान एवं जहाँ चतुर्दिक् रत्नमालाएँ लटक रही थीं, जो मुक्ता-निर्मित पुष्पों से सुशोभित एवं विस्तृत वितान से आच्छादित थी, ऐसी भूमि पर सुवर्ण एवं रजत से मण्डित पाद-पीठ से युक्त एक विशाल सिंहासन पर विराजमान हो। हे भगवन्! वह दरिद्र पुरुष महान् जनसमुदाय से परिवृत अपने घर के द्वार पर इस प्रकार ऐश्वर्य-सम्पन्न ढंग से बैठकर गृहस्थ का कार्य करते हुए अपने पिता को देखे। उन्हें देखकर वह भीत, त्रस्त एवं संविग्न हो जाय, उसका सारा शरीर रोमाञ्चित हो जाय और वह घबराकर इस प्रकार सोचने लगे––अकस्मात् मैं किसी राजा या राजमात्र के निकट पहुँच गया हूँ। मेरे लिए यहाँ ठहरना उचित नहीं है। हम उधर ही चलें, जिधर दरिद्रों की बस्ती है। वहाँ थोड़े ही कष्ट में हमें खाने और पहनने की वस्तुएँ मिल जायेंगी। हमें अब यहाँ और देर नहीं करनी चाहिए, अन्यथा मैं यहाँ बेगार पकड़ लिया जाऊँगा या अन्य किसी प्रकार के दोषारोपण का भागी बनूँगा।

अथ खलु भगवन् स दरिद्रपुरुषो दुःखपरंपरामनसिकारभयभीतस्त्वरमाणः प्रक्रामेत् पलायेन्न तत्र संतिष्ठेत् । अथ खलु भगवन् स आढ्यः पुरुषः स्वके निवेशनद्वारे सिंहासन उपविष्टस्तं स्वकं पुत्रं सहदर्शनेनैव प्रत्यभिजानीयात् । दृष्ट्वा च पुनस्तुष्ट उदग्र आत्तमनस्कः प्रमुदितः प्रीतिसौमनस्यजातो भवेदेवं च चिन्तयेत् । आश्चर्यं यावद् यत्र हि नामास्य महतो हिरण्यसुवर्णधनधान्यकोशकोष्ठागारस्य परिभोक्तोपलब्धः । अहं चैतमेव पुनः पुनः समनुस्मरामि । अयं च स्वयमेवेहागतः । अहं च जीर्णो वृद्धो महल्लकः ।

तदनन्तर, हे भगवन् ! वह दरिद्र पुरुष अपने मन में असंख्य दुःखों की कल्पना करता हुआ भयभीत होकर शीघ्र ही वहाँ न ठहरने का निश्चय करके वहाँ से दूर चला जाय, भाग जाय । तदनन्तर, हे भगवन् ! अपने घर के द्वार पर सिंहासन पर बैठा हुआ वह धनी व्यक्ति अपने पुत्र को देखते ही पहचान जाय और उसे देखकर वह प्रसन्न, प्रमुदित, आनन्दित एवं आश्वस्त हो जाय तथा उसके हृदय में प्रीति एवं एक प्रकार की मानसिक शांति उत्पन्न हो जाय । तथा वह सोचने लगे---बड़े आश्चर्य की बात है कि प्रभूत हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, कोश एवं कोष्ठागार का उपभोग करनेवाला व्यक्ति मिल गया । इसी के विषय में मैं निरन्तर सोचता रहा हूँ । आज वह स्वयं यहाँ आ गया है । मैं भी जीर्ण, वृद्ध और अधिक आयुवाला हो गया हूँ ।

अथ खलु भगवन् स पुरुषः पुत्रतृष्णासंपीडितस्तस्मिन् क्षणलवमुहूर्ते जवनान् पुरुषान् संप्रेषयेत् । गच्छत मार्षा एतं पुरुषं शीघ्रमानयध्वम् । अथ खलु भगवंस्ते पुरुषाः सर्वे एव जवेन प्रधावितास्तं दरिद्रपुरुषमध्यालम्बेयुः । अथ खलु दरिद्रपुरुषस्तस्यां वेलायां भीतस्त्रस्तः संविग्नः संहृष्टरोमकूपजात उद्विग्नमानसो दारुणमार्त्तस्वरं मुञ्चेदारवेद् विरवेत् । नाहं युष्माकं किंचिदपराध्यामीति वाचं भाषेत । अथ खलु ते पुरुषा बलात्कारेण तं दरिद्रपुरुषं विरवन्तमप्याकर्षेयुः । अथ खलु स दरिद्रपुरुषो भीतस्त्रस्तः संविग्न उद्विग्नमानस एवं च चिन्तयेत् । मा तावदहं वध्यो दण्ड्यो भवेयं नश्यामीति । स मूर्छितो धरण्यां प्रपतेत् विसंज्ञश्च स्यादासन्ने चास्य स पिता भवेत् । स तान् पुरुषानेवं वदेत् । मा भवन्त एतं पुरुषमानयन्त्विति तमेनं शीतलन वारिणा परिसिञ्चित्वा न भूय आलपेत् । तत् कस्य हेतोः । जानाति स गृहपतिस्तस्य दरिद्रपुरुषस्य हीनाधिमुक्तिकतामात्मनश्चोदारस्थामतां जानीते च ममैष पुत्र इति ।

पुत्र को प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा से पीडित वह व्यक्ति उसी क्षण लव मुहूर्त्त में तेज दौड़नेवाले पुरुषों को भेजे---हे मित्रो ! जाओ, और उस पुरुष को शीघ्र

ले आओ। तदनन्तर, हे भगवन् ! वे सभी व्यक्ति शीघ्र दौड़कर जायँ और उस दरिद्र पुरुष को पकड़ लें। तदनन्तर, वह दरिद्र पुरुष उस समय अत्यधिक भीत त्रस्त एवं संविग्न हो जाय एवं उसके सारे शरीर में रोमाञ्च हो आये। वह घबराकर 'मुझे छोड़ दो', 'मुझे छोड़ दो' ऐसा कहता हुआ भयंकर आर्त्त स्वर से जोर-जोर से चिल्लाने एवं पुकारने लगे---'मैंने तुमलोगों का कोई अपराध नहीं किया है' ऐसा कहे; किन्तु चिल्लाते हुए उस व्यक्ति को वे पुरुष बलात् खींचकर लायें। तदनन्तर, वह दरिद्र पुरुष भीत, त्रस्त एवं संविग्न होकर ऐसा सोचे---'ऐसा न हो कि मैं मारा जाऊँ, दण्ड का भागी बनूँ एवं नाश को प्राप्त हो जाऊँ।' वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर जाय और जब होश में आये, तब देखे कि उसके पिता सामने खड़े हैं। वह अपने पुरुषों से इस प्रकार बोले---'आप लोग इस पुरुष को मत लायें, इसपर केवल ठण्डा जल छिड़कें एवं पुनः उससे कुछ न कहें।' उसने ऐसा क्यों कहा। क्योंकि, वह गृहपति उस दरिद्र व्यक्ति की नीच प्रवृत्ति तथा अपनी विशाल शक्ति को जानता हो और यह भी जानता हो कि यह मेरा पुत्र है।

अथ खलु भगवन् स गृहपतिरुपायकौशल्येन न कस्यचिदाचक्षेन्ममैष पुत्र इति। अथ खलु भगवन् स गृहपतिरन्यतरं पुरुषमामन्त्रयेत्। गच्छ त्वं भोः पुरुष। एनं दरिद्रपुरुषमेवं वदस्व। गच्छ त्वं भोः पुरुष येनाकाङ्क्षसि मुक्तोऽसि। एवं वदति स पुरुषस्तस्मै प्रतिश्रुत्य येन स दरिद्रपुरुषस्तेनोपसंकामेदुपसंक्रम्य तं दरिद्रपुरुषमेवं वदेत्। गच्छ त्वं भोः पुरुष येनाकाङ्क्षसि मुक्तोऽसीति। अथ खलु स दरिद्रपुरुष इदं वचनं श्रुत्वाश्चर्याद्भुतप्राप्तो भवेत्। स उत्थाय तस्मात् पृथिवीप्रदेशाद् येन दरिद्रवीथि तेनोपसंक्रामेदाहारचीवरपर्येष्टिहेतोः। अथ खलु स गृहपतिस्तस्य दरिद्रपुरुषस्याकर्षणहेतोरुपायकौशल्यं प्रयोजयेत्। स तत्र द्वौ पुरुषौ प्रयोजयेद् दुर्वर्णावल्पौजस्कौ। गच्छतां भवन्तौ योऽसौ पुरुष इहागतोऽभूत्। तं युवां द्विगुणया दिवसमुद्रयात्मवचनेनैव भरयित्वेह मम निवेशने कर्म कारापयेथाम्। सचेत् स एवं वदेत् किं कर्म कर्तव्यमिति स युवाभ्यामेवं वक्तव्यः संकारधानं शोधयितव्यं सहावाभ्यामिति। अथ तौ पुरुषौ तं दरिद्रपुरुषं पर्येषयित्वा तया क्रियया संपादयेताम्। अथ खलु तौ द्वौ पुरुषौ स च दरिद्रपुरुषो वेतनं गृहीत्वा तस्य महाधनस्य पुरुषस्यान्तिकात्तस्मिन्नेव निवेशने संकारधानं शोधयेयुः। तस्यैव च महाधनस्य पुरुषस्य गृहपरिसरे कटपलिकुञ्चिकायां वासं कल्पयेयुः। स चाढ्यः पुरुषो गवाक्षवातायनेन तं स्वकं पुत्रं पश्येत् संकारधानं शोधयमानम्। दृष्ट्वा च पुनराश्चर्यप्राप्तो भवेत्।

तदनन्तर, हे भगवन्! वह गृहस्थ उपायकौशल्य का आश्रय लेकर किसी से यह

नहीं कहे कि यह मेरा पुत्र है । तदनन्तर, हे भगवन् ! वह गृहस्थ अपने एक दूसरे नौकर से कहे---हे पुरुष ! तुम जाओ और इस दरिद्र पुरुष से कहो---हे पुरुष ! तुम मुक्त हो, जिधर चाहो जा सकते हो। ऐसा कहने पर उसकी बात मानकर वह पुरुष उस दरिद्र पुरुष के पास जाय और जाकर उससे ऐसा कहे---हे पुरुष ! तुम मुक्त हो, जिधर चाहो जा सकते हो । इन शब्दों को सुनकर वह दरिद्र पुरुष आश्चर्य एवं विस्मय को प्राप्त हो जाय। वह उस स्थान से उठकर जिस ओर दरिद्रों की वस्ती थी, उधर ही आहार और वस्त्र की खोज में चल पड़े । तदनन्तर, वह गृहपति उस दरिद्र पुरुष को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए एक उपायकौशल्य का प्रयोग करे । इस कार्य के लिए वह दो कुरूप एवं निस्तेज व्यक्तियों को नियुक्त करे और उनसे कहे---तुम दोनों जाओ और जो युवक यहाँ आया था, तुम अपनी ओर से दुगुनी मजदूरी देकर उसे मेरे घर में काम करने के लिए ठीक करो। यदि वह पूछे, 'मुझे कौन-सा काम करना होगा', तो तुम दोनों उससे कहना कि तुम्हें हमलोगों के साथ मिलकर इस कूड़े के ढेर को साफ करना होगा । तदनन्तर, वे दोनों व्यक्ति उस दरिद्र को खोजकर इस कार्य को करने की बात पक्की करें। तदनन्तर, वे दोनों पुरुष तथा वह दरिद्र पुरुष उस महाधनी व्यक्ति से वेतन लेकर उस घर में कूड़े के ढेर साफ करें तथा उसी महाधनी पुरुष के घर के निकट एक फूस की बनी झोपड़ी में निवास करें। वह धनी पुरुष खिड़की के मार्ग से अपने उस पुत्र को कूड़े का ढेर साफ करते हुए देखे और देखकर पुनः आश्चर्य में पड़ जाय ।

अथ खलु स गृहपतिः स्वकान्निवेशनादवतीर्यापनयित्वा माल्याभरणान्यपनयित्वा मृदुकानि वस्त्राणि चौक्षाण्युदाराणि मलिनानि वस्त्राणि प्रावृत्य दक्षिणेन पाणिना पिटकं परिगृह्य पांसुना स्वगात्रं दूषयित्वा दूरत एव संभाषमाणो येन स दरिद्रपुरुषस्तेनोपसंक्रामेदुपसंक्रम्यैवं वदेत् । वहन्तु भवन्तः पिटकानि मा तिष्ठत हरत पांसूनि । अनेनोपायेन तं पुत्रमालपेत् संलपेच्चैनं वदेत् । इहैव त्वं भोः पुरुष कर्म कुरुष्व मा भूयोऽन्यत्र गमिष्यसि । सविशेषं तेऽहं वेतनकं दास्यामि । येन येन च ते कार्यं भवेत्तद्विश्रब्धं मां याचेर्यदि वा कुण्डमूल्येन यदि वा कुण्डिकामूल्येन यदि वा स्थालिकामूल्येन यदि वा काष्ठमूल्येन यदि वा लवणमूल्येन यदि वा भोजनेन यदि वा प्रावरणेन । अस्ति मे भोः पुरुष जीर्णशाटी । सचेत्तया ते कार्यं स्याद् याचेरहं तेऽनुप्रदास्यामि । येन येन ते भोः पुरुष कार्यमेवंरूपेण परिष्कारेण तं तमेवाहं ते सर्वमनुप्रदास्यामि । निर्वृतस्त्वं भोः पुरुष भव यादृशस्ते पिता तादृशस्तेऽहं मन्तव्यः । तत् कस्य हेतोः । अहं च वृद्धस्त्वं च दहरो मम च त्वया बहु कर्म कृतमिमं संकारधानं शोधयता न च त्वया भोः

पुरुषात्र कर्म कुर्वता शाठ्यं वा वक्रता वा कौटिल्यं वा मानो वा म्रक्षो वा कृतपूर्वः करोषि वा । सर्वथा ते भोः पुरुष न समनुपश्याम्येकमपि पापकर्म यथैषामन्येषां पुरुषाणां कर्म कुर्वतामिमे दोषाः संविद्यन्ते । यादृशो मे पुत्र औरसस्तादृशस्त्वं समाद्याग्रेण भवसि ।

तदनन्तर, वह गृहपति अपने महल से उतरकर नीचे आये और माला, आभूषण तथा कोमल, श्वेत एवं कीमती वस्त्रों को उतारकर मैले वस्त्र ओढ़ ले। दाहिने हाथ में पिटारी लेकर तथा अपने शरीर पर धूलि लपेटकर दूर से ही बोलता हुआ जिस ओर वह दरिद्र पुरुष हो, वह जाय और उसके पास जाकर इस प्रकार बोले---आप इन पिटारियों को भी ढोयें, केवल धूलि साफ करने में ही न लगे रहें । इस उपाय से वह अपने पुत्र से बातचीत के क्रम में उससे कहे---हे पुरुष ! तुम यहीं हमारे काम में रहो, दूसरी जगह मत जाना। मैं तुम्हें विशेष वेतन भी दूँगा। तुम्हें जिस-जिस वस्तु की आवश्यकता हो, वह मुझसे निःसंकोच माँग लेना। कुण्ड, कुण्डिका, स्थाली, लकड़ी अथवा नमक आदि खरीदने के लिए धन की अथवा भोजन या वस्त्र की, जिसकी भी आवश्यकता हो, माँग लेना । हे पुरुष ! मेरे पास एक पुरानी शाटी है। यदि तुम्हें उसकी आवश्यकता हो और यदि तुम चाहो, तो मैं उसे दे दूँगा। हे पुरुष ! इस प्रकार की जिन वस्तुओं की तुम्हें आवश्यकता होगी, उन सभी वस्तुओं को मैं तुम्हें दूँगा। हे पुरुष ! तुम निश्चिन्त हो जाओ और मुझे अपने पिता के ही सामान समझो। मैं ऐसा क्यों कहता हूँ ? क्योंकि, मैं बूढ़ा हूँ और तुम युवक हो, तुमने इस कूड़े के ढेर को साफ करके मेरा बहुत बड़ा काम किया है। यहाँ काम करते समय तुमने दुष्टता, वक्रता, कुटिलता, मान और ईर्ष्या आदि का न कभी आश्रय लिया है और न लेते हो। हे पुरुष ! काम करनेवाले अन्य नौकरों में जो दोष होते हैं, उनमें से एक भी दोष मैं तुममें नहीं पाता हूँ । आज से तुम मेरे औरस पुत्र के समान श्रेष्ठ हो गये ।

अथ खलु भगवन् स गृहपतिस्तस्य दरिद्रपुरुषस्य पुत्र इति नाम कुर्यात् स च दरिद्रपुरुषस्तस्य गृहपतेरन्तिके पितृसंज्ञामुत्पादयेत् । अनेन भगवन् पर्यायेण स गृहपतिः पुत्रकामतृषितो विंशतिवर्षाणि तं पुत्रं संकारधानं शोधापयेत् । अथ विंशतेर्वर्षाणामत्ययेन स दरिद्रपुरुषस्तस्य गृहपतेर्निवेशने विश्रब्धो भवेन्निष्क्रमणप्रवेशे तत्रैव च कटपलिकुञ्चिकायां वासं कल्पयेत् ।

उस दिन से वह गृहपति उस दरिद्र पुरुष को पुत्र कहकर तथा वह दरिद्र पुरुष उस गृहपति को पिता कहकर पुकारे । हे भगवन् ! इस प्रकार, पुत्रप्राप्ति की तीव्र इच्छावाला वह गृहपति बीस वर्ष तक उस पुरुष से कूड़े के ढेर साफ कराये । तदनन्तर, इन बीस वर्षों के बीत जाने पर वह दरिद्र पुरुष उस गृहपति के महल में बेरोक-टोक आने-जाने लगे। किन्तु, वह अपना निवासस्थान उस फूस की झोपड़ी में ही रखे ।

अथ खलु भगवंस्तस्य गृहपतेर्ग्लान्यं प्रत्युपस्थितं भवेत् स मरणकालसमयं चात्मनः प्रत्युपस्थितं समनुपश्येत् । स तं दरिद्रपुरुषमेवं वदेत् । आगच्छ त्वं भोः पुरुष । इदं मम प्रभूतं हिरण्यसुवर्णधनधान्यकोशकोष्ठागारमस्त्यहं बाढग्लान इच्छाम्येतं यस्य दातव्यं यतश्च ग्रहीतव्यं यच्च निधातव्यं भवेत् सर्वं संजानीयाः । तत् कस्य हेतोः । यादृश एवाहमस्य द्रव्यस्य स्वामी तादृशस्त्वमपि मा च मे त्वं किंचिदतो विप्रणाशयिष्यसि ।

तत्पश्चात्, वह गृहपति एक दिन बीमार पड़े और उसे अपनी मृत्यु का समय निकट जान पड़े । वह उस दरिद्र पुरुष से इस प्रकार बोले—हे पुरुष ! यहाँ आओ ! यह मेरा विशाल हिरण्य, स्वर्ण, धन और धान्य, कोश और कोष्ठागार है । मैं बहुत बीमार हूँ । मैं चाहता हूँ कि ये वस्तुएँ जिन्हें देनी हैं, जिनसे लेनी हैं एवं जहाँ रखनी हैं—इन सबको तुम अच्छी तरह जान लो । मैं ऐसा क्यों चाहता हूँ ? क्योंकि, जिस तरह मैं इस धन का स्वामी हूँ, उसी तरह तुम भी इस धन के स्वामी हो । तुम मेरे इस धन का एक भाग भी नष्ट मत करना ।

अथ खलु भगवन् स दरिद्रपुरुषोऽनेन पर्यायेण तच्च तस्य गृहपतेः प्रभूतं हिरण्यसुवर्णधनधान्यकोशकोष्ठागारं संजानीयादात्मना च ततो निःस्पृहो भवेन्न च तस्मात् किंचित् प्रार्थयेदन्तशः सक्तुप्रस्थमूल्यमात्रमपि तत्रैव च कटपलिकुञ्चिकायां वासं कल्पयेत्तामेव दरिद्रचिन्तामनुविचिन्तयमानः ।

तदनन्तर, हे भगवन् ! वह दरिद्र पुरुष इस क्रम से उस गृहपति के विशाल हिरण्य, सुवर्ण, धन एवं धान्य, कोश और कोष्ठागार के विषय में अच्छी तरह जान ले, किन्तु स्वयं उसकी ओर से निस्पृह रहे और उस धन से अपने लिए एक पसर सतुआ की कीमत के बराबर भी धन की इच्छा न करे । वह उसी फूस की झोपड़ी में अपने को पूर्ववत् दरिद्र समझता हुआ निवास करता रहे ।

अथ खलु भगवन् स गृहपतिस्तं पुत्रं शक्तं परिपालकं परिपक्वं विदित्वावमर्दितचित्तमुदारसंज्ञया च पौर्विकया दरिद्रचिन्तयार्तीयन्तं जेह्रीयमाणं जुगुप्समानं विदित्वा मरणकालसमये प्रत्युपस्थिते तं दरिद्रपुरुषमानाय्य महतो ज्ञातिसंघस्योपनामयित्वा राज्ञो वा राजमात्रस्य वा पुरतो नैगमजानपदानां च संमुखमेवं संश्रावयेत् । शृण्वन्तु भवन्तोऽयं मम पुत्र औरसो मयैव जनितः । अमुकं नाम नगरं तस्मादेष पञ्चाशद्वर्षो नष्टः । अमुको नामैष नाम्नाहमप्यमुको नाम । ततश्चाहं नगरादेतमेव मार्गमाण इहागतः । एष मम पुत्रोऽहमस्य पिता । यः कश्चिन्ममोपभोगोऽस्ति तं सर्वमस्मै पुरुषाय निर्यातयामि यच्च मे किंचिदस्ति प्रत्यात्मकं धनं तत् सर्वमेष एव जानाति ।

तदनन्तर, हे भगवन् ! उस गृहपति ने देखा कि वह पुत्र धन के परिपालक के रूप में समर्थ एवं परिपक्व तो हो गया है, किन्तु वह अपनी पूर्वकालीन अत्यधिक दरिद्रता का चिन्तन करते हुए चिन्तित, दु:खित एवं लज्जित रहता है और अपने-आपको हीन समझता है । जब उस गृहपति की मृत्यु का समय निकट आया तब उसने उस दरिद्र पुरुष को अपने पास बुलवाकर अपने सम्बन्धियों, राजा, राजमंत्री, निगम-निवासियों एवं जनपद-निवासियों के सम्मुख यह घोषणा की––सज्जनो ! सुनिए । यह मेरे द्वारा उत्पन्न किया गया मेरा औरस पुत्र है। अमुक नामक नगर है, जहाँ से यह पचास वर्ष पूर्व भाग गया था । इसका अमुक नाम है और मेरा भी अमुक नाम है । उस नगर से इसे खोजता हुआ ही मैं यहाँ आया । यह मेरा पुत्र है और मैं इसका पिता हूँ। मेरे पास जो भी उपभोग की वस्तुएँ हैं, सब मैं इस व्यक्ति को देता हूँ। मेरी जो कुछ भी व्यक्तिगत सम्पत्ति है, उसे भी यह जानता है।

अथ खलु भगवन् स दरिद्रपुरुषस्तस्मिन् समय इममेवंरूपं घोषं श्रुत्वाश्चर्याद्भुतप्राप्तो भवेदेवं च विचिन्तयेत् सहसैव मयेदमेव तावद् हिरण्यसुवर्णधनधान्यकोशकोष्ठागारं प्रतिलब्धमिति ।

तदनन्तर, हे भगवन् ! वह दरिद्र पुरुष इस प्रकार की घोषणा को सुनकर आश्चर्य एवं विस्मय में पड़ जाय और सोचने लगे कि मुझे अकस्मात् ही हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, कोश और कोष्ठागार-रूप प्रभूत सम्पत्ति कैसे प्राप्त हो गई ।

एवमेव भगवन् वयं तथागतस्य पुत्रप्रतिरूपकाः । तथागतश्चास्माकमेवं वदति पुत्रा मम यूयमिति यथा स गृहपतिः । वयं च भगवंस्तिसृभिर्दु:खिताभिः संपीडिता अभूम । कतमाभिस्तिसृभिर्यदुत दुःखदुःखतया संस्कारदुःखतया विपरिणामदु:खतया च संसारे च हीनाधिमुक्तिकाः । ततो वयं भगवता बहून् धर्मान् प्रत्यवरान् संकारधानसदृशाननुविचिन्तयिताः । तेषु चास्म प्रयुक्ता घटमाना व्यायच्छमाना निर्वाणमात्रं च वयं भगवन् दिवसमुद्रामिव पर्येषमाणा मार्गामः । तेन च वयं भगवन्निर्वाणेन प्रतिलब्धेन तुष्टा भवामो बहु च लब्धमिति मन्यामहे तथागतस्यान्तिकादेषु धर्मेष्वभियुक्ता घटित्वा व्यायमित्वा । प्रजानाति च तथागतोऽस्माकं हीनाधिमुक्तिकतां ततश्च भगवानस्मानुपेक्षते न संभिनत्ति नाचष्टे योऽयं तथागतस्य ज्ञानकोश एष एव युष्माकं भविष्यतीति । भगवांश्चास्माकमुपायकौशल्येनास्मिस्तथागतज्ञानकोशे दायादान् संस्थापयति । निःस्पृहाश्च वयं भगवंस्तत एवं जानीम एतदेवास्माकं बहुकरं यद्वयं तथागतस्यान्तिकाद्दिवसमुद्रामिव निर्वाणं प्रतिलभामहे । ते वयं भगवन् बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां तथागतज्ञानदर्शनमारभ्योदारां धर्मदेशनां कुर्मस्तथागतज्ञानं विवरामो दर्शयाम उपदर्शयामो वयं भगवंस्ततो निःस्पृहाः समानाः ।

तत् कस्य हेतोः । उपायकौशल्येन तथागतोऽस्माकमधिमुक्ति प्रजानाति । तच्च वयं न जानीमो न बुध्यामहे यदिदं भगवतैर्तहि कथितं यथा वयं भगवतो भूताः पुत्रा भगवांश्चास्माकं स्मारयति तथागतज्ञानदायादान् । तत् कस्य हेतोः । यथापि नाम वयं तथागतस्य भूताः पुत्रा इति । अपि तु खलु पुनर्हीनाधिमुक्ताः सचेद् भगवानस्माकं पश्येदधिमुक्तिबलं बोधिसत्त्वशब्दं भगवानस्माकमुदाहरेद् वयं पुनर्भगवता द्वे कार्ये कारापिता बोधिसत्त्वानां चाग्रतो हीनाधिमुक्तिका इत्युक्तास्ते चोदारायां बुद्धबोधौ समादापिताः । अस्माकं चेदानीं भगवानधिमुक्तिबलं ज्ञात्वेदमुदाहृतवाननेन वयं भगवन् पर्यायेणैवं वदामः । सहसैवास्माभिर्निःस्पृहैराकाङ्क्षितममार्गितमपर्येषितमचिन्तितमप्रार्थितं सर्वज्ञतारत्नं प्रतिलब्धं यथापीदं तथागतस्य पुत्रैः ।

हे भगवन् ! इसी प्रकार हम भी तथागत के पुत्र के समान हैं । तथागत भी उस गृहपति के समान हमसे ऐसा कहते हैं कि तुमलोग हमारे पुत्र हो । हे भगवन् ! नीच वस्तुओं में प्रवृत्ति रखनेवाले हमलोग भी तीन प्रकार के दुःखों से पीडित थे । वे तीन दुःख कौन हैं ? वे हैं---दुःख-दुःखिता, संस्कार-दुःखिता एवं विपरिणाम-दुःखिता । तब हमें भगवान् ने कूड़े के ढेर के समान अनेक अवर धर्मों पर विचार करने के लिए प्रेरित किया । हे भगवन् ! भगवान् की प्रेरणा से उनमें लगे हुए एवं परिश्रम करते हुए हमलोग दिन-भर के वेतन के समान एकमात्र निर्वाण की ही सदा इच्छा करते हुए इसी की खोज में लगे रहते थे। हे भगवन् ! इस प्रकार के निर्वाण को प्राप्त करके हमलोग संतुष्ट थे एवं तथागत के द्वारा प्रेरित होकर इन धर्मों के आचरण में लगे हुए हमलोग ऐसा समझते थे कि हमें बहुत कुछ प्राप्त हो रहा है। तथागत हीन वस्तुओं के प्रति हमारी प्रवृत्ति को जानते ह, अतः वे हमारी उपेक्षा करते हैं तथा स्पष्ट रूप से नहीं कहते कि यह जो तथागत का ज्ञानकोश है, यह सब तुमलोगों का ही है। किन्तु, वे उपायकौशल्य के द्वारा हमें अपने इस तथागत के ज्ञान के कोश का उत्तराधिकारी बना देते हैं। हे भगवन् ! हमलोग उस श्रेष्ठ ज्ञान की ओर से निस्पृह हैं और ऐसा समझते हैं कि हमारे लिए यही बहुत है कि हमलोगों को तथागत से दिन-भर के वेतन के समान निर्वाण की प्राप्ति हो जाती है । हे भगवन् ! हम तथागत के ज्ञान एवं दर्शन के विषय में अनेक महासत्त्व बोधिसत्त्वों को विस्तृत देशना करते हैं और हे भगवन् ! स्वयं निस्पृह रहकर इस तथागत के ज्ञान का वर्णन, विवेचन एवं उपदेश करते हैं । वे ऐसा क्यों करते हैं ? क्योंकि, उपायकौशल्य के द्वारा तथागत हमारी प्रवृत्ति को जानते हैं । भगवान् के इस कथन को कि तुम सभी हमारे वास्तविक पुत्र हो, हम नहीं जानते और नहीं समझते। इसीलिए, वे हमें पुनः याद दिलाते हैं कि हम उनके तथागत-ज्ञान के उत्तराधिकारी हैं । वे ऐसा क्यों करते हैं ? क्योंकि, हम तथागत के पुत्र होते हुए भी नीच

विचारवाले हैं । भगवान् हमारे अभिनिवेश के बल को समझकर ही हमारे सम्मुख बोधिसत्त्व के ज्ञान का उपदेश प्रस्तुत करते हैं । भगवान् ने हमारे लिए दो कार्य किये— बोधिसत्त्वों के सम्मुख हमलोगों को नीच प्रवृत्तिवाला कहा तथा हमें श्रेष्ठ बुद्धज्ञान का उपदेश दिया। उस समय हमारी प्रवृत्ति की प्रबलता को दृष्टि में रखकर भगवान् ने ऐसा कहा । इसी घटना को सम्मुख रखकर हे भगवन् ! हमलोग ऐसा कहते हैं कि निस्पृह रहते हुए भी हमने विना चाहे, विना खोजे, विना प्रयास किये, विना सोचे एवं विना माँगे ही सर्वज्ञता-रूप रत्न को सहसा तथागत के अपने पुत्रों के समान ही प्राप्त कर लिया ।

अथ खल्वायुष्मान् महाकाश्यपस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तत्पश्चात् आयुष्मान् महाकाश्यप ने उस समय ये गाथाएँ कहीं—

आश्चर्यभूता स्म तथाद्भुताश्च औद्बिल्यप्राप्ता स्म श्रुणित्व घोषम् ।
सहसैव अस्माभिरयं तथाद्य मनोज्ञघोषः श्रुतु नायकस्य ।।१।।

इस घोष को सुनकर हमलोग आश्चर्य, विस्मय एवं कुतूहल में पड़ गये। हमने नायक के इस मधुर घोष को आज अकस्मात् सुना है ।

विशिष्टरत्नान महन्तराशिर्मुहूर्तमात्रेणयमद्य लब्ध ।
न चिन्तितो नापि कदाचि प्रार्थितस्तं श्रुत्व आश्चर्यगता स्म सर्वे ।।२।।

आज एक ही क्षण में हमने इन विशिष्ट रत्नों की राशि प्राप्त कर ली है, जिसके विषय में हमने न कभी सोचा था और न कभी प्रार्थना की थी। उस घोष को सुनकर सभी विस्मित हो गये हैं।

यथापि बालः पुरुषो भवेत उत्प्लावितो बालजनेन सन्तः ।
पितुः सकाशातु अपक्रमेत अन्यं च देशं व्रजि सो सुदूरम् ।।३।।

जैसे कोई मूर्ख पुरुष मूर्खों के बहकावे में पड़कर अपने पिता से दूर हटकर किसी दूसरे सुदूर देश में चला जाय,

पिता च तं शोचति तस्मि काले पलायितं ज्ञात्व स्वकं हि पुत्रम् ।
शोचन्तु सो दिग्विदिशासु अंचे वर्षाणि पन्चाशदनूनकानि ।।४।।

और पिता अपने पुत्र को भागा हुआ जानकर उस समय बहुत दुःखी हो जाय एवं सोच में पड़ा हुआ वह पूरे पचास वर्षों तक दिशाओं एवं विदिशाओं में भटकता रहे।

तथा च सो पुत्र गवेषमाणो अन्यं महन्तं नगरं हि गत्वा ।
निवेशनं मापिय तत्र तिष्ठेत् समर्पितो कामुगणेहि पन्चभिः ।।५।।

तदनन्तर, अपने पुत्र को खोजता हुआ वह एक दूसरे विशाल नगर में पहुँचे और वहाँ एक घर बनवाकर उसमें पाँच प्रकार के भोगों को भोगता हुआ निवास करे।

बहु हिरण्यं च सुवर्णरूप्यं धान्यं धनं शङ्खशिलाप्रवाड़म् ।
हस्ती च अश्वाश्च पदातयश्च गावः पशूश्चैव तथैड़काश्च ।।६।।

उसके पास प्रचुर मात्रा में हिरण्य, स्वर्ण, रजत, धन, धान्य, शंख, रत्न, प्रवाल, हाथी, घोड़े, पैदल, गाय, पशु एवं भेड़ें हों।

प्रयोग आयोग तथैव क्षेत्रा दासी च दासा बहु प्रेष्यवर्गः ।
सुसत्कृतः प्राणिसहस्रकोटिभी राज्ञश्च सो वल्लभु नित्यकालम् ।।७।।

उसको सूद तथा किराये की आय हो तथा उसके पास क्षेत्र, दास-दासी एवं असंख्य सेवक हों । सहस्रों व्यक्ति उसका आदर करते हों और वह स्वयं राजा का सदा प्रेमपात्र हो ।

कृताञ्जली तस्य भवन्ति नागरा ग्रामेषु ये चापि वसन्ति ग्रामिणः ।
बहुवाणिजास्तस्य व्रजन्ति अन्तिके बहूहि कार्येहि कृताधिकाराः ।।८।।

नगर के रहनेवाले नागरिक एवं गाँव के रहनेवाले ग्रामीण सभी उसके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े रहते हों तथा अनेक प्रकार के व्यापार में सिद्धहस्त अनेक व्यापारी उसके निकट आते रहते हों।

एतादृशो ऋद्धिमतो नरः स्याज्जीर्णश्च वृद्धश्च महल्लकश्च ।
स पुत्रशोकं अनुचिन्तयन्तः क्षपेय रात्रिंदिव नित्यकालम् ।।९।।

इस प्रकार, वह ऐश्वर्य-सम्पन्न पुरुष जीर्ण, वृद्ध एवं अधिक आयुवाला हो जाय और सदा उस पुत्र की ही चिन्ता में रात-दिन व्यतीत करे ।

स तादृशो दुर्मति मह्य पुत्रः पञ्चाश वर्षाणि तदा पलानकः ।
अयं च कोशो विपुलो ममास्ति कालक्रिया चो मम प्रत्युपस्थिता ।।१०।।

मेरा पुत्र कितना दुर्बुद्धि है। उसको भागे हुए आज पचास वर्ष हो गये। मेरे पास प्रभूत धन है और मेरी मृत्यु का समय भी निकट आ गया है ।

सो चापि बालो तद तस्य पुत्रो दरिद्रकः कृपणकु नित्यकालम् ।
ग्रामेण ग्रामं अनुचंक्रमन्तः पर्येषते भक्त तथापि चोड़म् ।।११।।

उसका वह मूर्ख पुत्र भी दरिद्रतापूर्ण एवं दुःखी जीवन व्यतीत करता हुआ भोजन और वस्त्र की खोज में सदा एक गाँव से दूसरे गाँव में मारा-मारा फिरता रहे।

पर्येषमाणोऽपि कदाचि किंचिल्लभेत किंचित् पुन नैव किंचित् ।
स शुष्यते परशरणेषु बालो दद्रूय कण्डूय च दिग्धगात्रः ।।१२।।

माँगने पर उसे कभी कुछ मिल जाता था और कभी कुछ भी नहीं मिलता था । दूसरों की दया पर जीवित रहनेवाला वह मूर्ख दुर्बल हो गया और उसका सारा शरीर दाद और खुजली से भर गया।

सो च व्रजेन्तं नगरं यहिं पिता अनुपूर्वशो तत्र गतो भवेत ।
भक्तं च चोड़ं च गवेषमाणो निवेशनं यत्र पितु स्वकस्य ।।१३।।

कुछ समय के अनन्तर घूमते-घामते वह उस नगर में पहुँचे, जहाँ पहले से ही उसका पिता रह रहा था तथा वस्त्र और भोजन की खोज में वह अपने पिता के घर पर ही चला जाय।

सो चापि आढ्यः पुरुषो महाधनो द्वारस्मि सिंहासनि संनिषण्णः ।
परिवारितः प्राणिशतैरनेकैर्वितान तस्या विततोऽन्तरीक्षे ।।१४।।

वह आढ्य एवं महाधनी पुरुष द्वार पर अनेक शत प्राणियों से घिरा हुआ सिंहासन पर बैठा हो और उसके ऊपर खुले आकाश में वितान लगा हो।

आप्तो जनश्चास्य समन्ततः स्थितो धनं हिरण्यं च गणेन्ति केचित् ।
केचित्तु लेखानपि लेखयन्ति केचित् प्रयोगं च प्रयोजयन्ति ।।१५।।

विश्वस्त पुरुष उसके चारों ओर बैठे हों। उनमें से कुछ सुवर्ण-मुद्राएँ गिन रहे हों, कुछ हिसाब लिख रहे हों एवं कुछ सूद पर रुपये दे रहे हों।

सो चा दरिद्रो तहि एतु दृष्ट्वा विभूषितं गृहपतिनो निवेशनम् ।
कहिं नु अद्य अहमत्र आगतो राजा अयं भेष्यति राजमात्रः ।।१६।।

वह दरिद्रपुरुष अनेक वस्तुओं से सुसज्जित गृहपति के घर को देखकर सोचने लगे कि आज मैं कहाँ आ गया ? यह व्यक्ति तो कोई राजा अथवा राजमात्र होगा ।

मा दानि दोषं पि लभेयमत्र गृहि्णत्व वेष्टिं पि च कारयेयम् ।
अनुचिन्तयन्तः स पलायते नरो दरिद्रवीथीं परिपृच्छमानः ।।१७।।

ऐसा न हो कि मुझपर कोई दोषारोपण हो जाय या मैं बेगार के लिंए पकड़ लिया जाऊँ। ऐसा विचार करता हुआ वह निर्धनों की टोली का रास्ता पूछता हुआ वहाँ से शीघ्र भागे ।

सो चा धनी तं स्वकु पुत्र दृष्ट्वा सिंहासनस्थश्च भवेत् प्रहृष्टः ।
स दूतकान् प्रेषयि तस्य अन्तिके आनेथ एतं पुरुषं दरिद्रम् ।।१८।।

सिंहासन पर बैठा हुआ वह धनी पुरुष अपने पुत्र को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो जाय। उस दरिद्र पुरुष को वहाँ ले आओ—ऐसा कहकर उसके निकट दूतों को भेजे।

समनन्तरं तेहि गृहीतु सो नरो गृहीतमात्रोऽथ च मूर्छं गच्छेत् ।
ध्रुवं खु मह्यं वधका उपास्थिताः किं मह्य चोडेनथ भोजनेन वा ।।१९।।

दूत वहाँ जाकर उस पुरुष को पकड़ लें और पकड़े जाते ही वह मूर्च्छित हो जाय। वह सोचने लगे कि निश्चित रूप से ये जल्लाद हैं, जो मुझे मारने के लिए यहाँ आये हैं। अब मुझे भोजन और वस्त्र की आवश्यकता नहीं रही।

दृष्ट्वा च सो पण्डितु तं महाधनी हीनाधिमुक्तो अयु बाल दुर्मतिः।
न श्रद्दधी मह्यमिमां विभूषितां पिता ममायं ति न चापि श्रद्दधीत् ॥२०॥

उसे देखकर वह बुद्धिमान् एवं महाधनसम्पन्न व्यक्ति सोचने लगे कि यह मूर्ख, दुर्मति एवं निम्न प्रवृत्तिवाला व्यक्ति है। इसे मेरे इस उदारतापूर्ण व्यवहार में विश्वास नहीं हो रहा है। मैं इसका पिता हूँ, इसे मानने को यह तैयार नहीं है।

पुरुषांश्च सो तत्र प्रयोजयेत वङ्कांश्च ये काणक कुण्ठकाश्च।
कुचैलका कृष्णक हीनसत्त्वाः पर्येषथा तं नरु कर्मकारकम् ॥२१॥

उसने तब ऐसे पुरुषों को नियुक्त किया जो कुटिल, काने, विकलेन्द्रिय, गन्दे वस्त्र धारण करनेवाले, काले वर्ण के एवं नीच थे तथा उन्हें आदेश दिया कि इस नौकरी चाहनेवाले व्यक्ति को खोजकर लाओ।

संकारधानं इमु मह्य पूतिकमुच्चारप्रस्रावविनाशितं च।
तं शोधनार्थाय करोहि कर्म द्विगुणं च ते वेतनकं प्रदास्ये ॥२२॥

उससे कहना—यह विष्ठा एवं मूत्र से परिपूर्ण सड़े हुए एवं दुर्गन्धयुक्त मल का ढेर है। उसको साफ करने के लिए मेरी नौकरी स्वीकार करो। मैं तुम्हें दुगुना वेतन दूँगा।

एतादृशं घोष श्रुणित्व सो नरो आगत्य संशोधयि तं प्रदेशम्।
तत्रैव सो आवसथं च कुर्यान्निवेशनस्योपरि कुञ्चिकेऽस्मिन् ॥२३॥

इस बात को सुनकर वह दरिद्र पुरुष आकर उक्त ढेर को साफ कर दे तथा वहीं उस महल के निकट एक फूस की झोपड़ी में निवास करने लगे।

सो चा धनी तं पुरुषं निरीक्षेद् गवाक्ष ओलोकनकेपि नित्यम्।
हीनाधिमुक्तो अयु मह्य पुत्रः संकारधानं शुचिकं करोति ॥२४॥

वह धनी पुरुष खिड़की के मार्ग से उसे निरन्तर देखता रहे और देखकर सोचे कि मेरा यह नीच प्रवृत्तिवाला पुत्र किस प्रकार इस मल के ढेर को साफ करने में व्यस्त है।

स ओतरित्वा पिटकं गृहीत्वा मलिनानि वस्त्राणि च प्रावरित्वा।
उपसंक्रमेत्तस्य नरस्य अन्तिके अवभर्त्सयन्तो न करोथ कर्म ॥२५॥

तब वह महल से उतरकर एक टोकरी लेकर तथा मैले वस्त्र पहनकर उस मनुष्य

के निकट जाय और उसकी भर्त्सना करता हुआ कहे कि कि तुम अपना काम ठीक से नहीं करते।

द्विगुणं च ते वेतनकं ददामि द्विगुणां च भूयस्तथ पादम्रक्षणम् ।
सलोणभक्तं च ददामि तुभ्य शाकं च शाटिं च पुनर्ददामि ।।२६।।

मैं तुम्हें दुगुना वेतन दूँगा एवं पैरों में लगाने के लिए दुगुना मलहम दूँगा। तुम्हें नमकीन भोजन, तरकारी तथा एक शाटिका भी दूँगा।

एवं च तं भर्त्सिय तस्मि काले संश्लेषयेत्तं पुनरेव पण्डितः ।
सुष्ठुं खलू कर्म करोषि अत्र पुत्रोऽसि व्यक्तं मम नात्र संशयः ।।२७।।

इस प्रकार, वह धनी व्यक्ति, जो अत्यन्त बुद्धिमान् था, पहले उसकी भर्त्सना करे और बाद में उसे मना ले और कहे कि तुम बड़ी अच्छी तरह काम करते हो। अवश्य ही तुम मेरे पुत्र हो इसमें कोई सन्देह नहीं।

स स्तोकस्तोकं च गृहं प्रवेशयेत् कर्म च कारापयितं मनुष्यम् ।
विंशच्च वर्षाणि सुपूरितानि क्रमेण विश्रम्भयि तं नरं सः ।।२८।।

धीरे-धीरे वह उस मनुष्य को घर के भीतर ले जाने लगा और उससे काम कराने लगा। धीरे-धीरे पूरे बीस वर्ष बीत गये। वह उस पुरुष पर पूर्ण विश्वास करने लगा।

हिरण्यु सो मौक्तिकु स्फाटिकं च प्रतिशामयेत्तत्र निवेशनस्मिन् ।
सर्वं च सो संगणनां करोति अर्थं च सर्वं अनुचिन्तयेत ।।२९।।

वह उस घर में सोना, मोती और स्फटिक को फैलाता और उन सबकी गिनती करता। घर के अन्य कार्यों की भी देखरेख वही करता।

बहिर्धा सो तस्य निवेशनस्य कुटिकाय एको वसमानु बालः।
दरिद्रचिन्तामनुचिन्तयेत न मेऽस्ति एतादृश भोगु केचित् ।।३०।।

वह मूर्ख मनुष्य महल के बाहर एक झोपड़ी में रहता था और केवल एकमात्र दरिद्रता की चिन्ता में पड़ा हुआ सोचा करता कि मेरे भाग्य में इन वस्तुओं का उपभोग नहीं बदा है।

ज्ञात्वा च सो तस्य इमेवरूपमुदारसंज्ञाभिगतो मि पुत्रः ।
स आनयित्वा सुहृज्ञातिसंघं निर्यातयिष्याम्यहु सर्वमर्थम् ।।३१।।

वह धनी व्यक्ति उसके इस रूप को देखकर समझ गया कि मेरे पुत्र के हृदय में महान् होने की भावना उत्पन्न हो गई है। अतः, वह निश्चय करे कि अपने मित्रों और सम्बन्धियों को बुलाकर उनके सम्मुख उसे अपना सारा धन दे दूँ।

राजान सो नैगमनागरांश्च समानयित्वा बहुवाणिजांश्च ।
उवाच एवं परिषाय मध्ये पुत्रो ममायं चिर विप्रनष्टकः ।।३२।।

वह राजाओं, नैगमों, नगरवासियों एवं अनेक वाणिजों को बुलाये और उनकी सभा में कहे कि यही मेरा पुत्र है, जो बहुत दिनों से खोया हुआ था।

पञ्चाश वर्षाणि सुपूर्णकानि अन्ये चऽतो विंशतिये मि दृष्टः ।
अमुकातु नगरातु ममैष नष्टो अहं च मार्गन्त इहैवमागतः ।।३३।।

पूरे पचास वर्षों तथा इधर के बीस वर्ष, जब से कि मैं इसे देख रहा हूँ व्यतीत हो गये, जब कि यह अमुक नगर से भागा था और इसे खोजता हुआ मैं यहाँ आया था ।

सर्वस्य द्रव्यस्य अयं प्रभुर्मे एतस्य निर्यातयि सर्वशेषतः ।
करोतु कार्यं च पितुर्धनेन सर्वं कुटुम्बं च ददामि एतत् ।।३४।।

यह मेरी सारी सम्पत्ति का स्वामी है । मैं इसे यह सारी सम्पत्ति देता हूँ । अपने पिता के धन का यह उपभोग करे। मैं अपनी सारी अन्य सम्पत्ति भी इसे ही देता हूँ।

आश्चर्यप्राप्तश्च भवेन्नरोऽसौ दरिद्रभावं पुरिमं स्मरित्वा ।
हीनाधिमुक्तिं च पितुश्च तान् गुणाँल्लब्ध्वा कुटुम्बं सुखितोऽस्मि अद्य ।।३५।।

वह दरिद्र व्यक्ति अपने निम्न स्वभाव और पहली दरिद्रता का स्मरण करके तथा पिता के उदारतापूर्ण व्यवहार को देखकर बहुत आश्चर्य में पड़ जाय। अपने पिता की सारी सम्पत्ति को पाकर वह सोचे कि अब आज से मैं सुखी हो गया।

तथैव चास्माक विनायकेन हीनाधिमुक्तित्व विजानियान ।
न श्रावितं बुद्ध भविष्यथेति यूयं किल श्रावक मह्य पुत्राः ।।३६।।

उसी तरह हमारे विनायक ने हमारी नीच प्रवृत्तियों को जानकर यह नहीं कहा कि तुमलोग बुद्ध होगे; केवल इतना ही कहा कि हे श्रावको ! तुमलोग हमारे पुत्र हो।

अस्मांश्च अध्येषति लोकनाथो ये प्रस्थिता उत्तममग्रबोधिम् ।
तेषां वदे काश्यप मार्गनुत्तरं यं मार्ग भावित्व भवेयु बुद्धाः ।।३७।।

लोकनाथ का आदेश है कि हे काश्यप! तुम इस श्रेष्ठ मार्ग का, जिसके द्वारा मनुष्य बुद्धत्व को प्राप्त कर सकता है, उन्हें ही उपदेश देना, जिन्होंने श्रेष्ठ अग्रबोधि की प्राप्ति कर ली है।

वयं च तेषां सुगतेन प्रेषिता बहुबोधिसत्त्वान महाबलानाम् ।
अनुत्तरं मार्ग प्रदर्शयाम दृष्टान्तहेतूनयुतानकोटिभिः ।।३८।।

सुगत के द्वारा भेजे गये हमलोग महाबलशाली बोधिसत्त्वों को असंख्य कोटि उदाहरणों एवं प्रमाणों के द्वारा इस श्रेष्ठ मार्ग का उपदेश करते हैं।.

श्रुत्वा च अस्माकु जिनस्य पुत्रा बोधाय भावेन्ति सुमार्गमग्र्यम् ।
ते व्याक्रियन्ते च क्षणस्मि तस्मिन् भविष्यथा बुद्ध इमस्मि लोके ।।३९।।

हमलोगों के उपदेशों को सुनकर सुगत के पुत्रों को ज्ञान-प्राप्ति के श्रेष्ठ मार्ग का ज्ञान प्राप्त हो जाता है । उस समय उनके विषय में भविष्यवाणी होती है कि तुमलोग इस लोक में बुद्ध वनोगे ।

एतादृशं कर्म करोमि तायिनः संरक्षमाणा इम धर्मकोशम् ।
प्रकाशयन्तश्च जिनात्मजानां वैश्वासिकस्तस्य यथा नरः सः ।।४०।।

सवके रक्षक सुगत के धर्मकोश की रक्षा के हेतु ही मैं ऐसा कार्य करता हूँ। मैं उनके धर्म को उसी तरह प्रकाशित करता हूँ, जिस प्रकार उनका कोई विश्वासपात्र शिष्य करता है ।

दरिद्रचिन्ताश्च विचिन्तयाम विश्राणयन्तो इमु बुद्धकोशम् ।
न चैव प्रार्थेम जिनस्य ज्ञानं जिनस्य ज्ञानं च प्रकाशयामः ।।४१।।

हमलोग इस बुद्ध के ज्ञानकोश का वितरण करते हैं, फिर भी हमें अपने विचारों की दरिद्रता की चिन्ता हमें सदा सताती रहती है । हम तथागत के ज्ञान का उपदेश दूसरों को करते हैं, किन्तु स्वयं अपने लिए उसकी अपेक्षा नहीं रखते ।

प्रत्यात्मिकीं निर्वृति कल्पयाम एतावता ज्ञानमिदं न भूयः ।
नास्माक हर्षोऽपि कदाचि भोति क्षेत्रेषु बुद्धान श्रुणित्व व्यहान् ।।४२।।

हम व्यक्तिगत निर्वाण की कल्पना करते हैं । हमारे ज्ञान की यही सीमा है । अनेक बुद्धक्षेत्रों में स्थित बुद्धों के व्यूह के विषय में सुनकर हमें कभी हर्ष भी नहीं होता ।

शान्ताः किला सर्विमि धर्मऽनास्रवा निरोध उत्पादविवर्जिताश्च ।
न चात्र कश्चिद् भवतीह धर्मो एवं तु चिन्तेत्व न भोति श्रद्धा ।।४३।।

ये सारे धर्म शान्त, निर्दोष तथा नाश एवं उत्पत्ति से रहित हैं, किन्तु इनमें धार्मिक श्रेष्ठता की प्राप्ति नहीं होती । ऐसा विचार करने पर इनमें श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती ।

सुनिःस्पृहा स्मा वय दीर्घरात्रं बौद्धस्य ज्ञानस्य अनुत्तरस्य ।
प्रणिधानमस्माक न जातु तत्र इयं परा निष्ठ जिनेन उक्ता ।।४४।।

आदिकाल से ही हम उस श्रेष्ठ बुद्धज्ञान की प्राप्ति के विषय में निस्पृह रहे हैं ।

हमने उसके प्रति कभी दृढ भक्ति नहीं दिखलाई। यही वह श्रेष्ठ निश्चयात्मक ज्ञान है, जिसका सुगत ने उपदेश दिया है।

निर्वाणपर्यन्ति समच्छ्रयेऽस्मिन् परिभाविता शून्यत दीर्घरात्रम्।
परिमुक्त त्रैधातुकदुःखपीडिताः कृतं च अस्माभि जिनस्य शासनम् ॥४५॥

निर्वाणपर्यवसायी इस जीवन में हमने रात-दिन शून्य का ही चिन्तन किया है। हम इस त्रैधातुक-जन्य पीडा से मुक्त हो गये हैं। इस प्रकार, हमने सुगत की आज्ञा का पालन कर लिया है।

यं हि प्रकाशेम जिनात्मजानां ये प्रस्थिता भोन्ति इहाग्रबोधौ।
तेषां च यत्किञ्चि वदाम धर्मं स्पृह तत्र अस्माक न जातु भोति ॥४६॥

इस संसार में अग्रबोधि में प्रतिष्ठित जिनपुत्रों के सम्मुख जिस धर्म का विवेचन तथा उपदेश करता हूँ, उस विषय में हमलोगों के मन में कभी स्पृहा नहीं उत्पन्न होती।

तं चास्म लोकाचरियः स्वयंभूरुपेक्षते कालमवेक्षमाणः।
न भाषते भूत पदार्थसंधि अधिमुक्तिमस्माकु गवेषमाणः ॥४७॥

संसार के उपदेशक स्वयम्भू उस काल की प्रतीक्षा करते हुए हमारी उपेक्षा करते हैं। हमारे अभिनिवेश की परीक्षा लेने के लिए वे वस्तुओं के वास्तविक सम्बन्ध की व्याख्या हमारे सम्मुख नहीं करते।

उपायकौशल्य यथैव तस्य महाधनस्य पुरुषस्य काले।
हीनाधिमुक्तं सततं दमेति दमियान चास्मै प्रददाति वित्तम् ॥४८॥

उस धनी व्यक्ति की भाँति वे उचित समय पर ही उपायकौशल्यों का प्रयोग करते हैं। उस समय वे उसके झुकावों का दमन करते हैं और तदनन्तर उसे ज्ञान-रूप धन देते हैं।

सुदुष्करं कुर्वति लोकनाथो उपायकौशल्य प्रकाशयन्तः।
हीनाधिमुक्तान् दमयन्तु पुत्रान् दमेत्व च ज्ञानमिदं ददाति ॥४९॥

लोकनाथ सचमुच में अत्यन्त कठिन कार्य उत्पन्न करते हैं, जब वे उपायकौशल्यों द्वारा अपने पुत्रों के नीच विचारों का दमन करते हैं और दमन करने के पश्चात् उन्हें इस ज्ञान का उपदेश देते हैं।

आश्चर्यप्राप्ता सहसा स्म अद्य यथा दरिद्रो लभियान वित्तम्।
फलं च प्राप्तं इह बुद्धशासने प्रथमं विशिष्टं च अनास्रवं च ॥५०॥

जिस प्रकार वह दरिद्र पुरुष धन प्राप्त करके आश्चर्य में पड़ गया था, उसी प्रकार

आज हमलोग भी सहसा आश्चर्य में पड़ गये हैं। आज पहली बार हमें बुद्धधर्म का विशिष्ट और निर्दोष फल प्राप्त हुआ है।

यच्छीलमस्माभि च दीर्घरात्रं संरक्षितं लोकविदुष्य शासने।
अस्माभि लब्धं फलमद्य तस्य शीलस्य पूर्वं चरितस्य नाथ ॥५१॥

संसार के जाननेवाले भगवान् के शासन में रहकर हमलोगों ने वहुत समय तक जिस शील की रक्षा की है, हे नाथ! उसी पूर्व आचरित शील का हमलोग फल पा रहे हैं।

यद् ब्रह्मचर्यं परमं विशुद्धं निषेवितं शासनि नायकस्य।
तस्यो विशिष्टं फलमद्य लब्धं शान्तं उदारं च अनास्रवं च ॥५२॥

संसार के नायक के शासन में रहकर हमलोगों ने जिस परम विशुद्ध ब्रह्मचर्य का सेवन किया है, आज उसी का विशिष्ट, शान्त, उदार एवं निर्दोष फल हमें प्राप्त हुआ है।

अद्यो वयं श्रावकभूतनाथ संश्रावयिष्यामथ चाग्रबोधिम्।
बोधीय शब्दं च प्रकाशयामस्तेनो वयं श्रावक भीष्मकल्पाः ॥५३॥

हे श्रावकों के सच्चे स्वामी! आज हम अग्रबोधि का उपदेश देंगे। इस अग्रबोधि के उपदेश को हम श्रावकों ने अनेक घोर कल्पों में किया है।

अर्हन्तभूता वयमद्य नाथ अर्हामिहे पूज सदेवकातः।
लोकात् समारातु सब्रह्मकातः सर्वेष सत्त्वान च अन्तिकातः ॥५४॥

हे नाथ! अर्हत्त्व को प्राप्त करके आज हम सभी इस संसार के, जिसमें देवता, मार और ब्रह्मा निवास करते हैं तथा इसमें रहनेवाले सभी जीवों की पूजा के पात्र हो गये हैं।

को नाम शक्तः प्रतिकर्त्तु तुभ्यमुद्युक्तरूपो बहुकल्पकोट्यः।
सुदुष्कराणीदृशका करोषि सुदुष्करान् यानिह मर्त्यलोके ॥५५॥

ऐसा कौन है, जो करोड़ों कल्पों तक प्रयास करने पर भी तुम्हारा प्रतीकार करने में समर्थ हो सके। तुम ऐसे कठिन कार्यों को करते हो, जो इस मर्त्यलोक में सर्वथा दुष्कर हैं।

हस्तेहि पादेहि शिरेण चापि प्रतिप्रियं दुष्करकं हि कर्तुम्।
शिरेण अंसेन च यो धरेत परिपूर्णकल्पान् यथ गङ्गवालिकाः ॥५६॥

गंगा की वालुका के समान असंख्य कल्पों तक भी यदि कोई धैर्यपूर्वक प्रयत्न करता रहे, फिर भी वह अपने हाथों, पैरों मस्तक एवं छाती से तुम्हारा कुछ भी अप्रिय करने में समर्थ नहीं हो सकता।

खाद्यं ददेद् भोजनवस्त्रपानं शयनासनं] चो विमलोत्तरच्छदम् ।
विहार कारापयि चन्दनायान् संस्तीर्य चो दूष्ययुगेहि दद्यात् ।।५७।।

यदि कोई व्यक्ति भोजन, वस्त्र, पेय, सुन्दर चादर से युक्त शय्या तथा सुन्दर चन्दन की लकड़ी का विहार वनवाकर उसे रेशमी वस्त्रों से ढककर देता है ।

गिलानभैषज्य बहुप्रकारं पूजार्थ दद्यात् सुगतस्य नित्यम् ।
ददेय कल्पान् यथ गङ्गवालिका नैवं कदाचित् प्रतिकर्तुं शक्यम् ।।५८।।

सुगत की पूजा की भावना से सदा अनेक प्रकार की रोगनाशक ओषधियाँ तथा गंगा की वालुका के समान असंख्य कल्पों तक अन्य वस्तुएँ भी दान के रूप में देता रहे, फिर भी वह भगवान् का प्रतीकार करने में कदापि समर्थ नहीं हो सकता ।

महात्मधर्मा अतुलानुभावा महर्द्धिकाः क्षान्तिबले प्रतिष्ठिताः ।
बुद्धा महाराज अनास्रवा जिना सहन्ति बालान इमीदृशानि ।।५९।।

वे सुगत उदात्तस्वभाव, अप्रतिमशक्ति एवं अलौकिक पराक्रमसम्पन्न, महती क्षमा से युक्त राजाओं में श्रेष्ठ तथा दोषों से रहित हैं । वे इस तरह के मूर्खतापूर्ण कार्यों का सहन नहीं करते ।

अनुवर्तमानस्तथ नित्यकालं निमित्तचारीण ब्रवीति धर्मम् ।
धर्मेश्वरो ईश्वरु सर्वलोके महेश्वरो लोकविनायकेन्द्रः ।।६०।।

वे संसार में पुनः-पुनः आते रहते हैं तथा बुद्धि के द्वारा निश्चित की गई चर्या का आचरण करते हुए धर्म का उपदेश देते हैं । वे धर्म के स्वामी हैं एवं वे ही इस संसार में ईश्वर, महेश्वर एवं श्रेष्ठ लोकनाथ हैं ।

प्रतिपत्ति दर्शेति बहुप्रकारं सत्त्वान स्थानानि प्रजानमानः ।
नानाधिमुक्ति च विदित्व तेषां हेतुसहस्रेहि ब्रवीति धर्मम् ।।६१।।

सभी जीवों की परिस्थितियों एवं उनके विंभिन्न झुकावों को जानकर ही वे सहस्रों हेतुओं के द्वारा धर्म का तथा उसको प्राप्त करने का उपदेश देते हैं ।

तथागतश्चर्यं प्रजानमानः सर्वेष सत्त्वान थ पुद्गलानाम् ।
बहुप्रकारं हि ब्रवीति धर्मं निदर्शयन्तो इममग्रबोधिम् ।।६२।।

वे तथागत सभी पुद्गलों एवं प्राणियों की चर्या को पूर्ण रूप से जानते हैं, अतः इस अग्रबोधि का निर्देश करते हुए विभिन्न प्रकार से धर्म का उपदेश देते हैं ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये अधिमुक्तिपरिवर्तो नाम चतुर्थः ।।४।।

श्रेष्ठसद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का अधिमुक्तिपरिवर्त्त नामक चौथा परिवर्त्त समाप्त हुआ ।

ओषधीपरिवर्तः

अथ खलु भगवानायुष्मन्तं महाकाश्यपं तांश्चान्यान् स्थविरान् महाश्रावकानामन्त्रयामास । साधु साधु महाकाश्यप साधु खलु पुनर्युष्माकं काश्यप यद्यूयं तथागतस्य भूतान् गुणवर्णान् भाषध्वे । एते च काश्यप तथागतस्य भूता गुणा अतश्चान्येऽप्रमेया असंख्येया येषां न सुकरः पर्यन्तोऽधिगन्तुमपरिमितानपि कल्पान् भाषमाणैः । धर्मस्वामी काश्यप तथागतः सर्वधर्माणां राजा प्रभुर्वशी । यं च काश्यप तथागतो धर्मं यत्रोपनिक्षिपति स तथैव भवति । सर्वधर्मांश्च काश्यप तथागतो युक्ततयोपनिक्षिपति । तथागतज्ञानेनोपनिक्षिपति । यथा ते धर्माः सर्वज्ञभूमिमेव गच्छन्ति । सर्वधर्मार्थगतिं च तथागतो व्यवलोकयति । सर्वधर्मार्थवशिताप्राप्तः सर्वधर्माध्याशयप्राप्तः सर्वधर्मविनिश्चयकौशल्यज्ञानपरमपारमिताप्राप्तः सर्वज्ञज्ञानसंदर्शकः सर्वज्ञज्ञानावतारकः सर्वज्ञज्ञानोपनिक्षेपकः काश्यप तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः ।

तदनन्तर, भगवान् आयुष्मान् महाकाश्यप तथा अन्य स्थविर महाश्रावकों से बोले—हे काश्यप ! तुम धन्य हो । हे काश्यप ! मैं पुनः तुम्हारा साधुवाद करता हूँ कि तुम तथागत के वास्तविक गुणों का वर्णन करते हो । हे काश्यप ! तथागत के ये जो वास्तविक गुण हैं तथा इनके अतिरिक्त उनके जो अन्य अप्रमेय एवं असंख्य गुण हैं, उनका असंख्य कल्पों तक वर्णन करते रहने पर भी अन्त पाना सरल नहीं है । हे काश्यप ! तथागत धर्म के स्वामी, सब धर्मों के राजा, प्रभु एवं जितेन्द्रिय हैं । हे काश्यप ! तथागत जिस धर्म को जिस रूप में निर्धारित कर देते हैं, वह उसी रूप में वर्त्तमान रहता है। हे काश्यप ! तथागत सभी धर्मों को युक्तिपूर्वक निर्धारित करते हैं। वे उन्हें अपने तथागत के ज्ञान द्वारा इस प्रकार निर्धारित करते हैं कि वे धर्म सर्वज्ञ-पद की प्राप्ति कराने में समर्थ हो जाते हैं। तथागत सभी धर्मों के वास्तविक अर्थ को भी जानते हैं । हे काश्यप ! अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध तथागत को सब धर्मों के अर्थ में प्रवेश प्राप्त है, सब धर्मों में पूर्णज्ञान प्राप्त है तथा सब धर्मों में असंदिग्ध ज्ञान, कुशलता एवं परमपारमिता भी प्राप्त है। वे सर्वज्ञ ज्ञान के संदर्शक, सर्वज्ञ ज्ञान के संस्थापक तथा सर्वज्ञ ज्ञान के विवेचक हैं।

तद् यथापि नाम काश्यपास्यां त्रिसाहस्रमहासाहस्रायां लोकधातौ यावन्तस्तृणगुल्मौषधिवनस्पतयो नानावर्णा नानाप्रकारा ओषधिग्रामा नानानामधेयाः पृथिव्यां जाताः पर्वतगिरिकन्दरेषु वा मेघश्च महावारिपरिपूर्ण उन्नमेद् उन्नमित्वा

सर्वावतीं त्रिसाहस्रमहासाहस्रां लोकधातुं संछादयेत् संछाद्य च सर्वत्र समकालं वारि प्रमुञ्चेत् । तत्र काश्यप ये तृणगुल्मौषधिवनस्पतयोऽस्यां त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातौ तत्र ये तरुणाः कोमलनाडशाखापत्रपलाशास्तृणगुल्मौषधिवनस्पतयो द्रुमा महाद्रुमाः सर्वे ते ततो महामेघप्रमुक्ताद्वारिणो यथाबलं यथाविषयमब्धातुं प्रत्यापिबन्ति ते चैकरसेन वारिणा प्रभूतेन मेघप्रमुक्तेन यथाबीजमन्वयं विवृद्धि विरूढिं विपुलतामापद्यन्ते तथा च पुष्पफलानि प्रसवन्ति ते च पृथक्पृथग् नानानामधेयानि प्रतिलभन्ते । एकधरणीप्रतिष्ठिताश्च ते सर्व ओषधिग्रामा बीजग्रामा एकरसतोयाभिष्यन्दिताः । एवमेव काश्यप तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उत्पद्यते । यथा महामेघः उन्नमते तथा तथागतोऽप्युत्पद्य सर्वावन्तं सदेवमानुषासुरं लोकं स्वरेणाभिविज्ञापयति । तद् यथापि नाम काश्यप महामेघः सर्वावतीं त्रिसाहस्रमहासाहस्रां लोकधातुमवच्छादयति । एवमेव काश्यप तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः सदेवमानुषासुरस्य लोकस्य पुरत एवं शब्दमुदीरयति घोषमनुश्रावयति । तथागतोऽस्मि भवन्तो देवमनुष्या अर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तीर्णस्तारयामि मुक्तो मोचयाम्याश्वस्त आश्वासयामि परिनिर्वृतः परिनिर्वापयामि । अहमिमं च लोकं परं च लोकं सम्यक्प्रज्ञया यथाभूतं प्रजानामि सर्वज्ञः सर्वदर्शी । उपसंक्रामन्तु मां भवन्तो देवमनुष्या धर्मश्रवणाय । अहं मार्गस्याख्याता मार्गदेशिको मार्गविन्मार्गकोविदः । तत्र काश्यप बहूनि प्राणिकोटीनयुतशतसहस्राणि तथागतस्य धर्मश्रवणायोपसंक्रामन्ति । अथ तथागतोऽपि तेषां सत्त्वानामिन्द्रियवीर्यपरापरवैमात्रतां ज्ञात्वा तांस्तान् धर्मपर्यायानुपसंसरति तां तां धर्मकथां कथयति बह्वीं विचित्रां हर्षणीयां परितोषणीयां प्रामोद्यकरणीयां हितसुखसंवर्तनकरणीयां यया कथया ते सत्त्वा दृष्ट एव धर्मे सुखिता भवन्ति कालं च कृत्वा सुगतीषूपपद्यन्ते यत्र प्रभूतांश्च कामान् परिभुञ्जन्ते धर्मं च शृण्वन्ति । श्रुत्वा च तं धर्मं विगतनीवरणा भवन्त्यनुपूर्वेण च सर्वज्ञधर्मेष्वभियुज्यन्ते यथाबलं यथाविषयं यथास्थानम् ।

हे काश्यप ! यह त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु पृथ्वी पर या पर्वत की विशाल कन्दराओं में उत्पन्न होनेवाल रंग-विरंगे नाना प्रकार के भिन्न-भिन्न नामधारी तृण, गुल्म, वनस्पति, ओषधियाँ एवं ओषधि-समूह से परिपूर्ण है। पर्याप्त जल से पूर्ण वादल उठे और उठकर इस सम्पूर्ण त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु को ढक दे और ढककर सर्वत्र एक-सा जल बरसाने लगे । हे काश्यप! वहाँ उस त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु में ज़ितने तृण, गुल्म, ओषधि, वनस्पति हैं, उनमें से जो कोमल डण्ठल, शाखा, पत्र एवं पलाश

से युक्त तरुण गुल्म ओषधी, वनस्पतियाँ, वृक्ष और बड़े-बड़े वृक्ष हैं, वे सभी विशाल मेघ के द्वारा बरसाये गये जल से अपनी शक्ति और आवश्यकता के अनुसार जल का पान करते हैं और मेघ के द्वारा बरसाये गये उस पर्याप्त एवं एकरस जल से अपने बीज की शक्ति के अनुसार अन्वय, विवृद्धि एवं विकास प्राप्त करते हुए बढ़ते हैं, पुष्प और फल उत्पन्न करते हैं एवं पृथक्-पृथक् नाम धारण करते हैं। यद्यपि वे सभी ओषधियाँ और बीज एक ही भूमि में उत्पन्न हुए थे तथा एक ही प्रकार के जल से सींचे गये थे, फिर भी उनमें अन्तर आ गया। हे काश्यप! इसी प्रकार, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत इस संसार में उत्पन्न होते हैं तथा जिस तरह महान् मेघ आकाश में उमड़ता है, उसी प्रकार तथागत उत्पन्न होकर देवताओं, मनुष्यों एवं असुरों से पूर्ण इस लोक को अपने स्वर से शब्दायमान करते हैं। हे काश्यप! जिस तरह महामेघ त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु को ढक लेता है, उसी प्रकार अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत देवताओं, मनुष्यों और असुरों से पूर्ण इस संसार के सम्मुख इस प्रकार वचन बोलते हैं एवं अपनी घोषणा सुनाते हैं—हे देवो और मनुष्यो! मैं अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत हूँ। मैंने इस संसार-सागर को पार कर लिया है, अब दूसरों को पार करता हूँ। मैं स्वयं मुक्त हूँ, अब दूसरों को मुक्त करता हूँ; मैं स्वयं आश्वस्त हूँ, अब दूसरों को आश्वस्त करता हूँ; मैं स्वयं परिनिर्वृत हूँ और अब दूसरों को परिनिर्वृत करता हूँ; मैं सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी हूँ तथा इस लोक एवं परलोक दोनों को अपनी सम्यक् प्रज्ञा के द्वारा यथार्थ रूप में जानता हूँ। हे देवो और मनुष्यो! आपलोग धर्म के श्रवण के लिए मेरे निकट आइए। मैं मोक्षमार्ग को बतानेवाला, मोक्षमार्ग का निर्देशक, मोक्षमार्ग का ज्ञाता, और मोक्षमार्ग का उपदेशक हूँ। उस समय हे काश्यप! धर्मोपदेश को सुनने के लिए अनेक कोटीनयुतशतसहस्र प्राणी वहाँ तथागत के निकट पहुँचते हैं। तथागत भी उन प्राणियों के इन्द्रियों की शक्ति की अल्पता एवं अधिकता-विषयक विषमता को जानकर तदनुकूल भिन्न-भिन्न धर्मपर्याय उपस्थित करते हैं एवं तदनुसार हर्ष उत्पन्न करनेवाली, परितोष उत्पन्न करनेवाली एवं आनन्द उत्पन्न करनेवाली तथा हित एवं सुख की वृद्धि करनेवाली अनेक विचित्र कथा कहते हैं, जिस कथा को सुनकर प्राणी वर्त्तमान जीवन में भी सुखी हो जाते हैं तथा मृत्यु के अनन्तर श्रेष्ठ योनियों में उत्पन्न होते हैं तथा वहाँ वे अनेक सुखों का भोग करते हैं और धर्मोपदेश सुनते हैं। उस धर्मोपदेश को सुनकर वे अज्ञान के आवरण से मुक्त हो जाते हैं और यथासमय अपने बल के अनुसार, विषय के अनुसार एवं स्थान के अनुसार सर्वज्ञ के द्वारा उपदिष्ट धर्मों के विषय में रुचि उत्पन्न कर लेते हैं।

तद् यथापि नाम काश्यप महामेघः सर्वावतीं त्रिसाहस्रमहासाहस्रां लोकधातुं संछाद्य समं वारि प्रमुञ्चति सर्वांश्च तृणगुल्मौषधिवनस्पतीन् वारिणा संतर्पयति यथाबलं यथाविषयं यथास्थामं च ते तृणगुल्मौषधिवनस्पतयो वार्यापिबन्ति स्वकस्वकां च जातिप्रमाणतां गच्छन्ति। एवमेव काश्यप तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो यं धर्मं भाषते सर्वः स धर्म एकरसो यदुत विमुक्ति-

रसो विरागरसो निरोधरसः सर्वज्ञज्ञानपर्यवसानः। तत्र काश्यप ये ते सत्त्वास्तथागतस्य धर्मं भाषमाणस्य शृण्वन्ति धारयन्त्यभिसंयुज्यन्ते न त आत्मनात्मानं जानन्ति वा वेदयन्ति वा बुध्यन्ति वा। तत् कस्य हेतोः। तथागत एव काश्यप तान् सत्त्वांस्तथा जानाति ये च ते यथा च ते यादृशाश्च ते। यं च ते चिन्तयन्ति यथा च ते चिन्तयन्ति येन च ते चिन्तयन्ति। यं च ते भावयन्ति यथा च ते भावयन्ति येन च ते भावयन्ति। यं च ते प्राप्नुवन्ति यथा च ते प्राप्नुवन्ति येन च ते प्राप्नुवन्ति। तथागत एव काश्यप तत्र प्रत्यक्षः प्रत्यक्षदर्शी यथा च दर्शी तेषां सत्त्वानां तासु तासु भूमिषु स्थितानां तृणगुल्मौषधिवनस्पतीनां हीनोत्कृष्टमध्यमानाम्। सोऽहं काश्यप एकरसधर्मं विदित्वा यदुत विमुक्तिरसं निर्वृतिरसं निर्वाणपर्यवसानं नित्यपरिनिर्वृतमेकभूमिकमाकाशगतिकमधिमुक्ति सत्त्वानामनुरक्षमाणो न सहसैव सर्वज्ञज्ञानं संप्रकाशयामि। आश्चर्यप्राप्ता अद्भुतप्राप्ता यूयं काश्यप यद् यूयं संधाभाषितं तथागतस्य न शक्नुथावतरितुम्। तत् कस्य हेतोः। दुर्विज्ञेयं काश्यप तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानां संधाभाषितमिति।

हे काश्यप! जिस प्रकार मेघ सम्पूर्ण त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु पर छाकर सर्वत्र बराबर जल की वर्षा करता है एवं सभी तृण, ओषधी, गुल्म एवं वनस्पतियों को जल से संतृप्त करता है तथा वे तृण, गुल्म, ओषधी और वनस्पति यथाशक्ति, यथाविषय और यथास्थान जल पीकर अपनी-अपनी जाति के अनुसार बढ़ते हैं, उसी प्रकार हे काश्यप! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत जिस धर्म का उपदेश देते हैं वह सब धर्म एकरस, अर्थात् विमुक्तिरस, विरागरस, निरोधरस, एवं सर्वज्ञज्ञानपर्यवसायी है। हे काश्यप! वहाँ पर जो प्राणी धर्मोपदेश देते हुए तथागत के उपदेश को सुनते हैं, उसे अपनी बुद्धि में धारण करते हैं एवं तदनुसार आचरण करते हैं, वे स्वयं अपने को न जानते हैं, न समझते और न पहचानते हैं---ऐसा क्यों? क्योंकि, हे काश्यप! एकमात्र तथागत ही उन जीवों के विषय में ठीक-ठीक जानते हैं कि वे कौन हैं एवं किसके समान हैं: जिसको वे सोचते हैं, जैसा सोचते हैं एवं जिससे सोचते हैं; जिसकी भावना करते हैं, जिस प्रकार भावना करते हैं एवं जिससे भावना करते हैं एवं जिसको वे प्राप्त करते हैं, जिस प्रकार प्राप्त करते हैं और जिससे प्राप्त करते हैं---आदि इन सभी बातों के हे कार्श्यप! तथागत ही प्रत्यक्ष रूप से देखनेवाले हैं। वे ही विभिन्न योनियों में स्थित हीन, उत्कृष्ट एवं मध्यम कोटि के प्राणियों एवं तृण, गुल्म, ओषधि तथा वनस्पतियों को देखते हैं। हे काश्यप! मैं विमुक्तिरस, निर्वृतिरस एवं निर्वाणपर्यवसायी नित्यपरिनिर्वृत, एकभूमिक एवं आकाशगतिक इस एकरस धर्म को जानता हूँ। फिर भी, प्राणियों के विभिन्न झुकावों को दृष्टि में रखकर इस सर्वज्ञज्ञान का उन्हें सहसा उपदेश नहीं देता। हे काश्यप!

तुमलोगों को यह जानकर आश्चर्य एवं विस्मय हो रहा है कि तुमलोग तथागत के गूढ धर्मोपदेश की गहराई तक जाने में असमर्थ हो। ऐसा क्यों? क्योंकि, हे काश्यप! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतों का यह गूढ धर्म सर्वथा दुर्विज्ञेय है।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिममेवार्थं भूयस्या मात्रया संदर्शयमान इमा गाथा अभाषत।

उस समय इसी विषय को विशेष रूप से स्पष्ट करते हुए भगवान् ने ये गाथाएँ कहीं--

धर्मराजा अहं लोक उत्पन्नो भवमर्दनः।
धर्मं भाषामि सत्त्वानामधिमुक्ति विजानिय ।।१।।

मैं धर्म का राजा हूँ और इस संसार में प्राणियों के आवागमन को नष्ट करने के लिए ही उत्पन्न हुआ हूँ। प्राणियों की प्रवृत्ति को जानकर ही तदनुसार मैं धर्म का उपदेश देता हूँ।

धीरबुद्धी महावीरा चिरं रक्षन्ति भाषितम्।
रहस्यं चापि धारेन्ति न च भाषन्ति प्राणिनाम् ।।२।।

धैर्यशाली एवं महावीर तथागत मेरे इस रहस्यमय उपदेश को समझते एवं धारण करते हैं। किन्तु, वे अन्य प्राणियों को इसका उपदेश नहीं देते।

दुर्बोध्यं चापि तज्ज्ञानं सहसा श्रुत्व बालिशाः।
काङ्क्षां कुर्युः सुदुर्मेधास्ततो भ्रष्टा भ्रमेयु ते ।।३।।

वह ज्ञान दुर्बोध है, अतः मूर्ख एवं दुर्बोध व्यक्ति उसे सहसा सुनकर तर्क-वितर्क में पड़ जायेंगे तथा पथभ्रष्ट होकर इधर-उधर भटकने लगेंगे।

यथाविषयु भाषामि यस्य यादृशकं बलम्।
अन्यमन्येहि अर्थेहि दृष्टि कुर्वामि उज्जुकाम् ।।४।।

श्रावकों की आवश्यकता, योग्यता एवं बल के अनुसार ही मैं उपदेश देता हूँ तथा विभिन्न रूपों में अपने दृष्टिकोण को श्रेष्ठ एवं सरल रूप में लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करता हूँ।

यथापि काश्यपा मेघो लोकधातूय उन्नतः।
सर्वमोनहती चापि छादयन्तो वसुंधराम् ।।५।।

हे काश्यप! जिस प्रकार इस लोक में मेघ उठता है तथा सारी वस्तुओं को ढकता हुआ सम्पूर्ण पृथ्वी को आच्छादित कर लेता है,

सो च वारिस्य संपूर्णो विद्युन्माली महाम्बुदः।
निर्नादयन्त शब्देन हर्षयेत् सर्वदेहिनः ।।६।।

जल से सम्पूर्ण एवं विद्युत् की माला धारण करनेवाला वह महामेघ गर्जन करता हुआ अपने शब्द से सभी देहधारियों को हर्षित कर,

सूर्यरश्मी निवारित्वा शीतलं कृत्व मण्डलम् ।
हस्तप्राप्तोऽवतिष्ठन्तो वारि मुञ्चेत् समन्ततः ।।७।।

सूर्य की किरणों को रोककर एवं सारे वातावरण को शीतल करता हुआ एक हाथ की दूरी पर आकर चारों ओर जल बरसाने लगे,

स चैव मम मुञ्चेत आपस्कन्धमनल्पकम् ।
प्राखरन्तः समन्तेन तर्पयेन्मेदिनीमिमाम् ।।८।।

हर दिशा में चमकता हुआ वह समरूप से प्रभूत जलराशि की वर्षा करके इस पृथ्वी को तृप्त कर दे,

इह या काचि मेदिन्यां जाता ओषधयो भवेत् ।
तृणगुल्मवनस्पत्यो द्रुमा वाथ महाद्रुमाः ।।९।।

तथा इस पृथ्वी पर कुछ ओषधियाँ, तृण, गुल्म, वनस्पतियाँ, वृक्ष एवं महावृक्ष उत्पन्न हो जायँ,

सस्यानि विविधान्येव यद्वापि हरितं भवेत् ।
पर्वते कन्दरे चैव निकुञ्जेषु च यद्भवेत् ।।१०।।

विविध प्रकार के धान्य एवं पर्वत की कन्दराओं तथा निकुंजों में जो कुछ भी हो, वह सब हरा हो जाय।

सर्वान् संतर्पयेन्मेघस्तृणगुल्मवनस्पतीन् ।
तृषितां धरणीं तर्पेत् परिषिञ्चति चौषधीः ।।११।।

वह मेघ तृण, गुल्म तथा वनस्पति सबको सम्यक् रूप से तृप्त करे, प्यासी पृथ्वी को तृप्त करे और ओषधियों को भी पूर्णरूप से सिंचित करे।

तच्च एकरसं वारि मेघमुक्तमिह स्थितम् ।
यथाबलं यथाविषयं तृणगुल्मा पिबन्ति तत् ।।१२।।

मेघ के द्वारा पृथ्वी पर बरसाये गये उस एकरस जल को तृण और गुल्म सभी अपनी शक्ति और आवश्यकता के अनुसार पीते हैं।

द्रुमाश्च ये केचि महाद्रुमाश्च क्षुद्राक मध्याश्च यथावयाश्च ।
यथाबलं सर्वे पिबन्ति वारि पिबन्ति वर्धन्ति यथेच्छकामाः ।।१३।।

छोटे, बड़े और मध्यम कोटि के जितने भी वृक्ष हैं, वे सभी अपनी आवश्यकता एवं अपनी शक्ति के अनुसार जल पीते हैं और जल पीकर मनमाना बढ़ते हैं।

काण्डेन नाडेन त्वचा यथैव शाखाप्रशाखाय तथैव पत्रैः ।
वर्धन्ति पुष्पेहि फलेहि चैव मेघाभिवृष्टेन महौषधीयः ॥१४॥

मेघ द्वारा बरसाये गये जल से सींचे जाकर इन वृक्षों की जड़ें, तने, त्वचाएँ, शाखाएँ, प्रशाखाएँ, पत्ते, पुष्प एवं फल सभी वृद्धि को प्राप्त होते हैं ।

यथाबलं ताः विषयश्च यादृशो यासां च यद् यादृशकं च बीजम् ।
स्वकस्वकं ताः प्रसवं ददन्ति वारिं च तं एकरसं प्रमुक्तम् ॥१५॥

यद्यपि मेघ के द्वारा बरसाया गया जल एकरस था, फिर भी वे वृक्ष अपनी शक्ति, आवश्यकता, योग्यता एवं बीज की शक्ति के अनुसार ही विभिन्न प्रकार के फल देते हैं ।

एमेव बुद्धोऽपि ह लोकि काश्यप उत्पद्यते वारिधरो व लोके ।
उत्पद्य च भाषति लोकनाथो भूतां चरिं दर्शयते च प्राणिनाम् ॥१६॥

हे काश्यप ! इसी प्रकार, लोकनाथ बुद्ध भी इस संसार में मेघ के समान ही उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होकर प्राणियों को धर्म का उपदेश देते हैं एवं उन्हें श्रेष्ठ चर्या का निर्देशन करते हैं ।

एवं च संश्रावयते महर्षिः पुरस्कृतो लोकि सदेवकेस्मिन् ।
तथागतोऽहं द्विपदोत्तमो जिनो उत्पन्नु लोकस्मि यथैव मेघः ॥१७॥

देवों से युक्त इस संसार में सबके द्वारा आहत होकर वे महर्षि इस प्रकार की घोषणा करते हैं—मैं मनुष्यों में श्रेष्ठ तथागत जिन हूँ और इस संसार में मेघ की तरह उत्पन्न हुआ हूँ ।

संतर्पयिष्याम्यहु सर्वसत्त्वान् संशुष्कगात्रांस्त्रिभवे विलग्नान् ।
दुःखेन शुष्यन्त सुखे स्थपेयं कामांश्च दास्याम्यहु निर्वृतिं च ॥१८॥

मैं शुष्क अंगोंवाले तथा तीन प्रकार की गतियों में चक्कर काटते हुए जीवों को संतृप्त करूँगा । दुःखों से संतप्त प्राणियों को सुखी बनाऊँगा एवं उन्हें इच्छित वस्तुएँ दूँगा एवं निर्वाण की प्राप्ति कराऊँगा ।

शृणोथ मे देवमनुष्यसंघा उपसंक्रमध्वं मम दर्शनाय ।
तथागतोऽहं भगवाननाभिभूः संतारणार्थं इह लोकि जातः ॥१९॥

हे देव एवं मनुष्यगण ! तुम सभी मेरी बातें सुनो ! मेरे दर्शन के लिए निकट आओ । मैं किसी के द्वारा अभिभूत न होनेवाला तथागत भगवान् हूँ और लोगों का उद्धार करने के लिए ही इस संसार में उत्पन्न हुआ हूँ ।

भाषामि च प्राणिसहस्रकोटिनां धर्मं विशुद्धं अभिदर्शनीयम् ।
एका च तस्यो समता तथत्वं यदिदं विमुक्तिश्चथ निर्वृती च ॥२०॥

मैं सहस्रों कोटि प्राणियों के सम्मुख विशुद्ध एवं अत्यन्त सुन्दर धर्म का उपदेश करता हूँ। इस धर्म का एकमात्र लक्ष्य समान रूप से लोगों को निर्वाण एवं शान्ति प्राप्त कराना है ।

स्वरेण चैकेन वदामि धर्मं बोधिं निदानं करियान नित्यम् ।
समं हि एतद्विषमत्व नास्ति न कश्चि विद्वेषु न रागु विद्यते ।।२१।।

मैं वोधिज्ञान को ही निर्वाण-प्राप्ति का प्रधान कारण मानता हूँ, अतः एक स्वर से मैं इस ज्ञान का उपदेश सवको देता हूँ । यह सवके लिए एक है; इसमें विषमता नहीं है; इसमें किसी के प्रति राग या द्वेष नहीं है ।

अनुनीयता मह्य न काचिदस्ति प्रेमा च दोषश्च न मे कर्हिचित् ।
समं च धर्मं प्रवदामि देहिनां यथैकसत्त्वस्य तथा परस्य ।।२२।।

मेरे मन में भी किसी के प्रति स्नेह या घृणा नहीं है । किसी को मेरी अनुनय-विनय करने की आवश्यकता नहीं है । जिस प्रकार एक जीव को धर्म का उपदेश देता हूँ, उसी प्रकार दूसरे को भी । इस प्रकार, सबको मैं समान धर्म का उपदेश देता हूँ ।

अनन्यकर्मा प्रवदामि धर्मं गच्छन्तु तिष्ठन्तु निषीदमानः ।
निषण्णशय्यासनमारुहित्वा किलासिता मह्य न जातु विद्यते ।।२३।।

चलते, खड़े रहते एवं बैठते हर समय अन्य सभी कार्यों को छोड़कर मैं एकमात्र धर्म का उपदेश ही करता रहता हूँ। एक बार आसन पर बैठ जाने पर फिर वहाँ कितनी भी देर तक बैठे रहने में मैं कभी नहीं थकता ।

संतर्पयामी इमु सर्वलोकं मेघो व वारि सम मुञ्चमानः ।
आर्येषु नीचेषु च तुल्यबुद्धिर्दुःशीलभूतेष्वथ शीलवत्सु ।।२४।।

समभाव से जल बरसानेवाले मेघ के समान मैं इस सम्पूर्ण विश्व को तृप्त करता हूँ। श्रेष्ठ एवं नीच, दुःशील एवं शीलवान्, सभी प्राणियों के प्रति मेरा समभाव रहता है ।

विनष्टचारित्र तथैव ये नराश्चारित्र-आचारसमन्विताश्च ।
दृष्टिस्थिता ये च विनष्टदृष्टी सम्यग्दृशो ये चाविशुद्धदृष्टयः ।।२५।।

वे चाहे चरित्रहीन हों, चाहे चरित्र एवं आचार से युक्त हों, विभिन्न असन्मतों को को माननेवाले हों, चाहे असन्मतों से मुक्त हों, सम्यक्दृष्टि हों, चाहे मिथ्यादृष्टि हों, सब प्राणियों को मैं समभाव से उपदेश देता हूँ ।

हीनेषु चोत्कृष्टमतीषु चापि मृद्विन्द्रियेषु प्रवदामि धर्मम् ।
किलासितां सर्व विवर्जयित्वा सम्यक् प्रमुञ्चाम्यहु धर्मवर्षम् ।।२६।।

मैं हीन अथवा उत्कृष्टबुद्धि एवं ग्रहणशील इन्द्रियोंवाले सबको धर्म का उपदेश देता हूँ। क्लेशों की परवाह न करते हुए मैं सम्यक् रीति से धर्म की वर्षा करता हूँ।

यथाबलं च श्रुणियान मह्यं विविधासु भूमीषु प्रतिष्ठहन्ति ।
देवेषु मर्त्येषु मनोरमेषु शक्रेषु ब्रह्मेष्वथ चक्रवर्तिषु ॥२७॥

मेरे उपदेश को अपनी शक्ति के अनुसार सुनकर प्राणी मनुष्यों, देवों, श्रेष्ठ जीवों, इन्द्रों, ब्रह्माओं एवं चक्रवर्त्तियों की योनियों में जन्म ग्रहण करते हैं।

क्षुद्रानुक्षुद्रा इम ओषधीयो क्षुद्रीक एता इह याव लोके ।
अन्या च मध्या महती च ओषधी शृणोथ ताः सर्व प्रकाशयिष्ये ॥२८।

इस संसार में जितने प्रकार की क्षुद्र, अनुक्षुद्र एवं अत्यन्त क्षुद्र एवं अन्य मध्यम तथा श्रेष्ठ कोटि की ओषधियाँ हैं, उन सबका विवेचन करता हूँ, सुनो।

अनास्रवं धर्म प्रजानमाना निर्वाणप्राप्ता विहरन्ति ये नराः ।
षडभिज्ञत्रैविद्य भवन्ति ये च सा क्षुद्रिका ओषधि संप्रवुत्ता ॥२९॥

वे मनुष्य क्षुद्र ओषधि की संज्ञा पाते हैं, जो निर्दोष धर्म को जानते हैं एवं निर्वाण प्राप्त करके इस संसार में विचरण करते हैं तथा छह अभिज्ञाओं एवं तीन विद्याओं के ज्ञाता होते हैं।

गिरिकन्दरेषू विहरन्ति ये च प्रत्येकबोधिं स्पृहयन्ति ये नराः ।
ये ईदृशा मध्यविशुद्धबुद्धयः सा मध्यमा ओषधि संप्रवुत्ता ॥३०॥

मध्यम ओषधि की संज्ञा उन पुरुषों को दी गई है, जो गिरिकन्दराओं में रहते हुए प्रत्येक बुद्ध के ज्ञान की प्राप्ति की इच्छा रखते हैं तथा जिनकी बुद्धि सामान्य ढंग से शुद्ध हो गई है।

ये प्रार्थयन्ते पुरुषर्षभत्वं बुद्धो भविष्ये नरदेवनाथः ।
वीर्यं च ध्यानं च निषेवमाणाः सा ओषधी अग्र इयं प्रवुच्चति ॥३१॥

उत्तम ओषधि की संज्ञा उन व्यक्तियों को दी गई है, जो श्रेष्ठ पुरुष के पद को पाना चाहते हैं तथा भविष्य में मनुष्य और देवों के स्वामी बुद्ध बनेंगे। वे सदा बल और ध्यान का सेवन करते हैं।

ये चापि युक्ताः सुगतस्य पुत्रा मैत्रीं निषेवन्तिह शान्तचर्याम् ।
निष्काङ्क्षप्राप्ता पुरुषर्षभत्वे अयं द्रुमो वुच्यति एवरूपः ॥३२॥

सुगत के वे पुत्र, जो एकाग्र भाव से मैत्री और शान्त चर्या का सेवन करते हैं और जिनका श्रेष्ठ पुरुष बनना सर्वथा निश्चित हो चुका है, वह वृक्ष कहा जाता है।

अविवर्तिचक्रं हि प्रवर्तयन्ता ऋद्धीबलस्मिन् स्थित ये च धीराः ।
प्रमोचयन्तो बहुप्राणिकोटी महाद्रुमो सो च प्रवुच्चते हि ।।३३।।

वे धीर पुरुष, जो अविवर्त्ती चक्र का प्रवर्त्तन करते हुए अलौकिक शक्ति के धारक हैं तथा अनेक कोटि मनुष्यों को मुक्त करते हैं, महावृक्ष कहे जाते हैं ।

समश्च सो धर्म जिनेन भाषितो मेघेन वा वारि समं प्रमुक्तम् ।
चित्रा अभिज्ञा इम एवरूपा यथौषधीयो धरणीतलस्थाः ।।३४।।

जिस प्रकार मेघ के द्वारा बरसाया गया जल एक है, उसी प्रकार बुद्ध के द्वारा उपदिष्ट धर्म भी एक है । किन्तु, मनुष्य की बौद्धिक शक्तियाँ पृथ्वी पर स्थित वृक्षों के समान भिन्न-भिन्न हैं ।

अनेन दृष्टान्तनिदर्शनेन उपायु जानाहि तथागतस्य ।
यथा च सो भाषति एकधर्म नानानिरुक्ती जलबिन्दवो वा ।।३५।।

इस दृष्टान्त के प्रस्तुत करने का हमारा प्रयोजन यह है कि तुम तथागत के उपाय-कौशल्य को जान सको कि किस तरह वे सबके लिए समान धर्म का उपदेश करते हैं; किन्तु उसकी व्याख्याएँ जल की विभिन्न बूँदों के समान विभिन्न प्रकार की हैं ।

ममापि चो वर्षतु धर्मवर्षं लोको ह्ययं तर्पितु भोति सर्वः ।
यथाबलं चानुविचिन्तयन्ति सुभाषितं एकरसं पि धर्मम् ।।३६।।

मैं भी धर्म की वर्षा करता हूँ कि यह सारा संसार तृप्त हो जाय। एकरस एवं सुन्दर रीति से कहे गये इस धर्म पर प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार विचार करता है ।

तृणगुल्मका वा यथ वर्षमाणे मध्या पि वा ओषधियो यथैव ।
द्रुमा पि वा ते च महाद्रुमा वा यथ शोभयन्ते दशदिक्षु सर्वे ।३७।।

जिस प्रकार वर्षा होने पर तृण, गुल्म, मध्यम कोटि की ओषधियाँ, वृक्ष एवं बड़े-बड़े वृक्ष, सभी विभिन्न दिशाओं में सुशोभित होने लगते हैं ।

इयं सदा लोकहिताय धर्मता तर्पेति धर्मेणिमु सर्वलोकम् ।
संतर्पितश्चाप्यथ सर्वलोकः प्रमुञ्चते ओषधि पुष्पकाणि ।।३८।।

उसी प्रकार, इस धर्म का स्वभाव है कि वह संपूर्ण संसार के हित के लिए है एवं सबको सदा तृप्त करता है । सम्पूर्ण संसार इसके द्वारा संतृप्त होकर उसी प्रकार उत्तम विचारों की सृष्टि करता है, जिस प्रकार वृक्ष विविध पुष्प उत्पन्न करते हैं ।

मध्यापि च ओषधियो विवर्धयी अर्हन्त ये ते स्थित आस्रवक्षये ।
प्रत्येकबुद्धा वनषण्डचारिणो निष्पादयी धर्ममिमं सुभाषितम् ।।३९।।

ऐसे वृक्ष जो मध्यम कोटि की वृद्धि प्राप्त करते हैं, वे आस्रवों से मुक्त स्थिति में वर्त्तमान रहनेवाले अर्हत् की संज्ञा प्राप्त करते हैं अथवा वनखण्डों में विचरण करते हुए श्रेष्ठ धर्म का विवेचन करनेवाले प्रत्येकबुद्ध कहलाते हैं ।

बहुबोधिसत्त्वाः स्मृतिमन्त धीराः सर्वत्र त्रैधातुकि ये गतिंगताः ।
पर्येषमाणा इममग्रबोधिं द्रुमा व वर्धन्ति ति नित्यकालम् ।।४०।।

किन्तु, वे धैर्यशाली एवं स्मृतिशाली बोधिसत्त्व, जो इस त्रैधातुक संसार की वास्तविकताओं को भली भाँति समझते हैं तथा निरन्तर अग्रबोधि की खोज में तत्पर रहते हैं, वे वृक्षों की भाँति सदा बढ़ते रहते हैं।

य ऋद्धिमन्तश्चतुध्यानध्यायिनो ये शून्यतां श्रुत्व जनेन्ति प्रीतिम् ।
रश्मीसहस्राणि प्रमुञ्चमानास्ते चैव वुच्चन्ति महाद्रुमा इह ।४१।।

वे लोग, जो अलौकिक शक्तिसम्पन्न एवं ध्यान लगानेवाले हैं, शून्यता के विषय में सुनकर आनन्दित होते हैं एवं स्वयं ज्ञान की सहस्रों किरणें बिखेरते हैं, वे इस पृथ्वी पर महावृक्ष कहे जाते हैं।

एतादृशी काश्यप धर्मदेशना मेघेन वा वारि समं प्रमुक्तम् ।
बह्वी विवर्धन्ति महौषधीयो मनुष्यपुष्पाणि अनन्तकानि ।।४२।।

हे काश्यप ! यह धर्मदेशना मेघ के द्वारा समान रूप से बरसाये गये जल के सदृश है, जिसे पाकर अनेक महौषधियाँ, असंख्य मनुष्य एवं फल-पुष्प वृद्धि को प्राप्त होते हैं ।

स्वप्रत्ययं धर्म प्रकाशयामि कालेन दर्शेमि च बुद्धबोधिम् ।
उपायकौशल्यु ममैतदग्रं सर्वेष चो लोकविनायकानाम् ।।४३।।

मैं स्वप्रत्ययधर्म को प्रकाशित करता हूँ; उचित समय पर बुद्धज्ञान का भी उपदेश देता हूँ । यह मेरा तथा अन्य सभी लोकनायकों का श्रेष्ठ उपायकौशल्य है ।

परमार्थ एवं मय भूतभाषितो ते श्रावकाः सर्वि न एन्ति निर्वृतिम् ।
चरन्ति एते वरबोधिचारिकां बुद्धा भविष्यन्तिमि सर्वश्रावकाः ।।४४।।

मैंने जो यहाँ कहा है---वस्तुतः वह सत्य और परमार्थ है। यहाँ पर जो मेरे श्रावक वर्त्तमान हैं, वे सभी निर्वाण प्राप्त करेंगे एवं श्रेष्ठ बोधिचर्या का आचरण करते हुए ये सभी श्रावक बुद्ध वन जायेंगे ।

पुनरपरं काश्यप तथागतः सत्त्वविनये समो न चासमः । तद्यथा काश्यप

चन्द्रसूर्यप्रभा सर्वलोकमवभासयति कुशलकारिणमकुशलकारिणं चोर्ध्वावस्थितमधरावस्थितं च सुगन्धि दुर्गन्धि स सर्वत्र समं प्रभा निपतति न विषमम् । एवमेव काश्यप तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानां सर्वज्ञज्ञानचित्तप्रभा सर्वेषु पञ्चगत्युपपन्नेषु सत्त्वेषु यथाधिमुक्ति महायानिकप्रत्येकबुद्धयानिकश्रावकयानिकेषु सद्धर्मदेशना समं प्रवर्तते । न च तथागतस्य ज्ञानप्रभाया ऊनता वातिरिक्तता वा यथा पुण्यज्ञानसमुदागमाय संभवति । न सन्ति काश्यप त्रीणि यानानि केवलमन्योन्यचरिताः सत्त्वास्तेन त्रीणि यानानि प्रज्ञप्यन्ते ।

पुनः हे काश्यप ! दूसरी बात यह है कि तथागत सभी जीवों को समभाव से शिक्षा देते हैं, विषम भाव से नहीं। हे काश्यप ! जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करता है--पापी और पुण्यात्मा, ऊँच और नीच सुगन्धित और दुर्गन्धित, सर्वत्र उनका प्रकाश समरूप से पड़ता है, विषम रूप से नहीं। उसी प्रकार हे काश्यप ! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतों के सर्वज्ञ ज्ञान-विषयक ज्ञान का प्रकाश एवं उनकी सद्धर्मदेशना, पाँच गतियों में उत्पन्न सभी प्राणी एवं महायानिक, प्रत्येक बुद्धयानिक एवं श्रावकयानिक, इन सबके विषय में उनकी प्रवृत्ति के अनुसार समान रूप से प्रवृत्ति होती है। तथागत के ज्ञान के प्रकाश में कमी या अधिकता नहीं होती; क्योंकि वह पवित्र ज्ञान के उद्गम के लिए होता है। हे काश्यप ! यान तीन नहीं हैं--केवल प्राणियों के विभिन्न रूपों में आचरण करने के कारण ही यान की त्रिविधता प्रतीत होती है।

एवमुक्त आयुष्मान् महाकाश्यपो भगवन्तमेतदवोचत् । यदि भगवन्न सन्ति त्रीणि यानानि किं कारणं प्रत्युत्पन्नेऽध्वनि श्रावकप्रत्येकबुद्धबोधिसत्त्वानां प्रज्ञप्तिः प्रज्ञप्यते ।

भगवान् के ऐसा कहने पर आयुष्मान् महाकाश्यप उनसे इस प्रकार बोले--हे भगवन् ! यदि यान तीन नहीं हैं, तो किस हेतु इस वर्त्तमान समय में श्रावकयान, प्रत्येकबुद्धयान और बोधिसत्त्वयान इन तीन यानों की संज्ञा प्रचलित है।

एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं महाकाश्यपमेतदवोचत् । तद्यथा काश्यप कुम्भकारः समासु मृत्तिकासु भाजनानि करोति । तत्र कानिचिद्गुडभाजनानि भवन्ति कानिचिद् घृतभाजनानि कानिचिद् दधिक्षीरभाजनानि कानिचिद् हीनान्यशुचिभाजनानि भवन्ति । न च मृत्तिकाया नानात्वमथ च द्रव्यप्रक्षेपमात्रेण भाजनानां नानात्वं प्रज्ञायते । एवमेव काश्यपैकमेवेदं यानं यदुत बुद्धयानं न द्वितीयं न तृतीयं वा यानं संविद्यते ।

आयुष्मान् महाकाश्यप के इस प्रकार पूछने पर भगवान् उनसे इस प्रकार बोले--काश्यप ! जिस प्रकार कुम्भकार समान मिट्टी से ही विभिन्न पात्र बनाता है, जिनमें

से कुछ गुड़ के पात्र, कुछ घृत के पात्र कुछ दही-दूध के पात्र और कुछ निकृष्ट एवं अपवित्र वस्तुओं के पात्र होते हैं। मिट्टी में भिन्नता न होते हुए भी रखी हुई वस्तुओं की भिन्नता के कारण ही पात्रों में भिन्नता दिखलाई पड़ती है। हे काश्यप ! उसी प्रकार यान केवल एक है और वह है बुद्धयान; दूसरा और तीसरा यान नहीं है।

एवमुक्त आयुष्मान् महाकाश्यपो भगवन्तमेतदवोचत् । यद्यपि भगवन् सत्त्वा नानाधिमुक्तयो ये त्रैधातुकान्निःसृताः किं तेषामेकं निर्वाणमुत द्वे त्रीणि वा । भगवानाह सर्वधर्मसमतावबोधाद्धि काश्यप निर्वाणम् । तच्चैकं न द्वे न त्रीणि । तेन हि काश्यपोपमां ते करिष्याम्युपमयेहैकत्या विज्ञपुरुषा भाषितस्यार्थमाजानन्ति ।

भगवान् के ऐसा कहने पर आयुष्मान् महाकाश्यप उनसे इस प्रकार बोले—हे भगवन् ! भिन्न-भिन्न प्रवृत्तिवाले प्राणी जब संसार से मुक्त होते हैं तब उन सबको एक प्रकार का निर्वाण प्राप्त होता है, अथवा दो या तीन प्रकार का ? भगवान् ने कहा—हे काश्यप ! निर्वाण की प्राप्ति तो सब धर्मों की समानता का ज्ञान होने पर ही होती है । वह एक है, दो या तीन नहीं। अतः, हे काश्यप ! मैं तुम्हें एक उदाहरण दूँगा; क्योंकि विज्ञ पुरुष दृष्टान्त के द्वारा कही हुई बात के अर्थ को सरलता से समझ जाते हैं।

तद्यथा काश्यप जात्यन्धः पुरुषः स एवं ब्रूयान्न सन्ति सुवर्णदुर्वर्णानि रूपाणि न सन्ति सुवर्णदुर्वर्णानां रूपाणां द्रष्टारो न स्तः सूर्याचन्द्रमसौ न सन्ति नक्षत्राणि न सन्ति ग्रहा न सन्ति ग्रहाणां द्रष्टारः । अथान्ये पुरुषास्तस्य जात्यन्धस्य पुरुषस्य पुरत एवं वदेयुः । सन्ति सुवर्णदुर्वर्णानि रूपाणि सन्ति सुवर्णदुर्वर्णानां रूपाणां द्रष्टारः स्तः सूर्याचन्द्रमसौ सन्ति नक्षत्राणि सन्ति ग्रहाः सन्ति ग्रहाणां द्रष्टारः । स च जात्यन्धः पुरुषस्तेषां पुरुषाणां न श्रद्दध्यान्नोक्तं गृह्णीयात् । अथ कश्चिद् वैद्यः सर्वव्याधिज्ञः स्यात् । स तं जात्यन्धं पुरुषं पश्येत् तस्यैवं स्यात् । तस्य पुरुषस्य पूर्वपापेन कर्मणा व्याधिरुत्पन्नः । ये च केचन व्याधय उत्पद्यन्ते ते सर्वे चतुर्विधा वातिकाः पैत्तिकाः श्लैष्मिकाः सान्निपातिकाश्च । अथ स वैद्यस्तस्य व्याधेर्व्युपशमनार्थं पुनः पुनरुपायं चिन्तयेत् तस्यैवं स्यात् । यानि खल्विमानि द्रव्याणि प्रचरन्ति न तैः शक्योऽयं व्याधिश्चिकित्सितुं सन्ति तु हिमवति पर्वतराजे चतस्र ओषधयः । कतमाश्चतस्रः । तद्यथा प्रथमा सर्ववर्णरसस्थानानुगता नाम द्वितीया सर्वव्याधिप्रमोचनी नाम तृतीया सर्वविषविनाशनी नाम चतुर्थी यथास्थानस्थितसुखप्रदा नाम इमाश्चतस्र: ओषधयः । अथ स वैद्यस्तस्मिन् जात्यन्धे कारुण्यमुत्पाद्य तादृशमुपायं चिन्तयेद्

यनोपायेन हिमवन्तं पर्वतराजं शक्नुयाद् गन्तुम् । गत्वा चोर्ध्वमप्यारोहेदधोऽप्यवतरेत्तिर्यगपि प्रविचिनुयात् । स एवं प्रविचिन्वंस्ताश्चतस्र ओषधीरारागयेदाराग्य च कांचिद्दन्तैः क्षोदितां कृत्वा दद्यात् कांचित् पेषयित्वा दद्यात् कांचिद यद्रव्यसंयोजितां पाचयत्वा दद्यात् कांचिदामद्रव्यसंयोजितां कृत्वा दद्यात कांचिच्छलाकया शरीरस्थानं विद्ध्वा दद्यात् कांचिदग्निना परिदाह्य दद्यात् कांचिदन्योन्यद्रव्यसंयुक्तां यावत् पानभोजनादिष्वपि योजयित्वा दद्यात् । अथ स जात्यन्धपुरुषस्तेनोपाययोगेन चक्षुः प्रतिलभेत । स प्रतिलब्धचक्षुर्बहिरध्यात्मं दूर आसन्नो च चन्द्रसूर्यप्रभां नक्षत्राणि ग्रहान् सर्वरूपाणि च पश्येत् । एवं च वदेत् अहो वताहं मूढो योऽहं पूर्वमाचक्षमाणानां न श्रद्दधामि नोक्तं गृह्णामि । सोऽहमिदानीं सर्वं पश्यामि मुक्तोऽस्मि अन्धभावात् प्रतिलब्धचक्षुश्चास्मि न च मे कश्चिद् विशिष्टतरोऽस्तीति । तेन च समयेन पञ्चाभिज्ञा ऋषयो भवेयुर्दिव्यचक्षु दव्यश्रोत्रपरचित्तज्ञानपूर्वनिवासानुस्मृतिज्ञानर्द्धिविमोक्षक्रियाकुशलास्ते तं पुरुषमेवं वदेयुः । केवलं भोः पुरुष त्वया चक्षुः प्रतिलब्धं न तु भवान् किंचिज्जानाति । कुतोऽभिमानस्ते समुत्पन्नः । न च तेऽस्ति प्रज्ञा न चासि पण्डितः । तमेनमेवं वदेयुः । यदा त्वं भोः पुरुषान्तर्गृहं निषण्णो बहिरन्या न रूपाणि न पश्यसि न च जानासि नापि ते ये सत्वाः स्निग्धचित्ता वा द्रुग्धचित्ता वा । न विजानीषे पञ्चयोजनान्तरस्थितस्य जनस्य भाषमाणस्य । भेरीशङ्खादीनां शब्दं न प्रजानासि न शृणोषि । क्रोशान्तरमप्यनुत्क्षिप्य पादौ न शक्नोषि गन्तुम् । जातसंवृद्धश्चासि मातुः कुक्षौ तां च क्रियां न स्मरसि । तत् कथमसि पण्डितः कथं न च सर्वं पश्यामीति वदसि । तत् साधु भोः पुरुष यदन्धकारं तत्प्रकाशमिति संजानीषे यच्च प्रकाशं तदन्धकारमिति संजानीषे ।

हे काश्यप ! दृष्टान्त इस प्रकार है---एक जात्यन्ध पुरुष हो और वह कहे कि संसार में सुन्दर और कुरूप आकृतियाँ नहीं हैं, सुन्दर और कुरूप आकृतियों के देखनेवाले नहीं हैं, सूर्य एवं चन्द्रमा नहीं हैं, नक्षत्र नहीं हैं, ग्रह नहीं हैं तथा ग्रहों के देखनेवाले नहीं हैं । वहाँ उपस्थित अन्य दूसरे व्यक्ति उस जात्यन्ध पुरुष के सम्मुख इस प्रकार कहें---सुन्दर और कुरूप आकृतियाँ हैं, सुन्दर और कुरूप आकृतियों के देखनेवाले हैं, सूर्य एवं चन्द्रमा हैं, नक्षत्र हैं, ग्रह हैं और ग्रहों के देखनेवाले हैं। किन्तु, वह जात्यन्ध पुरुष उनपर विश्वास नहीं करे और उनकी बात को नहीं माने । सब रोगों को जानने-

वाला एक वैद्य हो । उस जात्यन्ध पुरुष को देखे और उसके मन में यह विचार आये कि यह रोग उस मनुष्य के पूर्वजन्म-कृत पापों का ही फल है । जितनी भी व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, वे सभी वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक तथा सान्निपातिक---इन चार प्रकार की होती हैं । जात्यन्ध पुरुष के रोग के निवारण के उपाय को पुनः-पुनः सोचते हुए उस वैद्य के मन में यह विचार आये कि जो ये प्रचलित दवाएँ हैं, उनसे इस पुरुष की चिकित्सा नितान्त असम्भव है । पर्वतराज हिमालय पर चार औषधियाँ हैं। वे चारों कौन हैं : उनमें पहली का नाम सर्ववर्णरसस्थानानुगता, दूसरी का नाम सर्वव्याधिप्रमोचिनी, तीसरी का नाम सर्वविषविनाशिनी तथा चौथी का नाम यथास्थानस्थितसुखप्रदा है। ये चार औषधियाँ हैं । उस वैद्य के हृदय में उस जात्यन्ध के प्रति करुणा उत्पन्न हो जाय और वह ऐसा उपाय सोचे, जिससे कि वह पर्वतराज हिमालय पर पहुँचने में समर्थ हो जाय । वहाँ जाकर ऊपर चढ़कर, नीचे उतरकर और तिरछे जाकर औषधियों की खोज करे । इस प्रकार, खोज करते हुए वह उन चारों औषधियों को प्राप्त कर ले तथा उनको प्राप्त करके उनमें से किसी को दाँतों से चबाकर दे, किसी को पीसकर दे, किसी को दूसरी वस्तु के साथ पकाकर दे, किसी को कच्चे द्रव्य में मिलाकर दे, किसी को शलाका से शरीर को छेदकर दे, किसी को अग्नि में जलाकर दे और किसी को दूसरी-दूसरी वस्तुओं के साथ पान एवं भोजनादि में मिलाकर दे। इन उपायों से वह जात्यन्ध दृष्टि प्राप्त कर ले । दृष्टि प्राप्त करके वह बाहर और भीतर, दूर और निकट, सूर्य और चन्द्रमा की प्रभा, नक्षत्र, ग्रह और सभी रूपधारी वस्तुओं को देखे और इस प्रकार कहे---मैं बड़ा मूर्ख था, जो पहले कही हुई बातों पर विश्वास नहीं करता था एवं उनके कथन को स्वीकार नहीं करता था । अब मैं सब कुछ देखता हूँ; मैं अन्धेपन से मुक्त हो गया हूँ और मुझे दृष्टि मिल गई है । अब मुझसे बढ़कर सौभाग्यशाली इस संसार में दूसरा कोई नहीं है। उसी समय दिव्य चक्षु तथा दिव्य श्रोत्र को धारण करनेवाले, दूसरों के मन की बात को जाननेवाले---पूर्वयोनि का स्मरण रखनेवाले, ज्ञान, अलौकिक शक्ति, विमोक्षा एवं क्रिया में कुशल तथा पाँच अभिज्ञाओं से सम्पन्न कुछ ऋषि वहाँ आ जायँ और वे उस पुरुष से इस प्रकार कहें---हे पुरुष ! तुमने केवल दृष्टि प्राप्त की है, तुम्हें कुछ ज्ञान नहीं है । तुम्हारे हृदय में जानकार होने का अभिमान कहाँ से उत्पन्न हो गया । न तुम्हारे पास बुद्धि है और न तुम विद्वान् ही हो । पुनः वे उससे इस प्रकार बोले---हे पुरुष ! जब तुम घर के अन्दर बैठे रहते हो, तब बाहर के रूपवान् पदार्थों को तुम न देखते हो, न समझते हो और न तुम उन प्राणियों को ही समझ पाते हो, जो तुम्हारे प्रति चित्त में स्नेह रखते हैं अथवा द्रोह रखते हैं । पाँच योजन दूर स्थित मनुष्य के शब्द को तुम नहीं सुनते । भेरी, शंख आदि के शब्दों को दूर से न पहचान सकते हो और न सुन सकते हो। विना पैर उठाये एक कोस भी नहीं चल सकते। माता के पेट से उत्पन्न होकर बढ़ने की घटना तुम्हें याद नहीं है, तब तुम कैसे पण्डित हुए और कैसे कहते हो कि मैं सब कुछ देखता हूँ । हे मनुष्य ! तुम अन्धकार को ही प्रकाश समझते हो और प्रकाश को अन्धकार ।

अथ स पुरुषस्तान् ऋषीनेवं वदेत् । क उपायः किं वा शुभं कर्म कृत्वेदृशीं प्रज्ञां प्रातलभेय युष्माकं प्रसादाच्चैतान् गुणान् प्रतिलभेय । अथ खलु त ऋषयस्तस्य पुरुषस्यैवं कथयेयुः । यदीच्छस्यरण्ये वस पर्वतगुहासु वा निषण्णो धर्मं चिन्तय क्लेशाश्च ते प्रहातव्याः । तथा धूतगुणसमन्वागतोऽभिज्ञाः प्रतिलप्स्यसे । अथ स पुरुषस्तमर्थं गृहीत्वा प्रव्रजितः । अरण्ये वसन् एकाग्रचित्तो लोकतृष्णां प्रहाय पञ्चाभिज्ञाः प्राप्नुयात् । प्रतिलब्धाभिज्ञश्च चिन्तयेत् । यदहं पूर्वमन्यत् कर्म कृतवान् तेन मे न कश्चिद् गुणोऽधिगतः । इदानीं यथाचिन्तितं गच्छामि पूर्वं चाहमल्पप्रज्ञोऽल्पप्रतिसंवेद्यन्धभूतोऽस्म्यासीत् ।

तत्पश्चात्, वह पुरुष उन ऋषियों से इस प्रकार बोले—कौन-सा उपाय है अथवा कौन-से शुभ कर्म हैं, जिनको करने से मैं इस प्रकार की बुद्धि प्राप्त कर लूँगा तथा आपलोगों की कृपा से इन गुणों को भी प्राप्त करूँगा । तब वे ऋषि उस पुरुष से इस प्रकार बोले—'यदि ऐसा चाहते हो, तो जंगल में रहो या पर्वत की गुफाओं में बैठकर धर्म का चिन्तन करो । इससे तुम्हारे सभी क्लेश दूर हो जायेंगे । इस प्रकार तुम धत (पवित्र व्यक्ति) के गुणों से युक्त होकर अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर लोगे ।' तत्पश्चात्, उसकी बात मानकर वह व्यक्ति संन्यास ग्रहण कर ले । वह जंगल में एकाग्रचित्त होकर रहे एवं लोक की तृष्णा को छोड़कर पाँच अभिज्ञाओं को प्राप्त कर ले । अभिज्ञाएँ प्राप्त करने के अनन्तर वह सोचे—पूर्वकाल में मैंने नीच कर्म किये थे और इसी के फलस्वरूप मैंने किसी गुण की प्राप्ति नहीं की थी । इस समय मैं जिधर चाहूँ, उधर जा सकता हूँ । पहले मैं अल्पप्रज्ञ, अल्पदर्शी एवं सर्वथा अन्धा था ।

इति हि काश्यपोपमैषा कृतास्यार्थस्य विज्ञप्तये । अयं च पुनरत्रार्थो द्रष्टव्यः । जात्यन्ध इति काश्यप षड्गतिसंसारस्थितानां सत्त्वानामेतदधिवचनं ये सद्धर्मं न जानन्ति क्लेशतमोऽन्धकारं च संवर्धयन्ति ते चाविद्यान्धा अविद्यान्धाश्च संस्कारानुपविचिन्वन्ति संस्कारप्रत्ययं च नामरूपं यावदेवमस्य केवलस्य महतो दुःखस्कन्धस्य समुदयो भवति ।

हे काश्यप ! यही वह दृष्टान्त है, जो इस अर्थ को समझाने के लिए मैंने प्रस्तुत किया है । इससे यह अर्थ निकलता है—हे काश्यप ! यह जात्यन्ध छह गतियों में विद्यमान, सांसारिक प्राणियों का प्रतीक है, जो सद्धर्म को नहीं जानते एवं अविद्या के कारण अन्धे बने क्लेशरूप घने अन्धकार को बढ़ाते रहते हैं । वे अविद्या से अन्धे होकर विविध संस्कारों की रचना करके संस्कारजन्य नाम-रूपों के चक्कर में पड़ जाते हैं । इसके फलस्वरूप इस महान् दुःखस्कन्ध का उदय होता है ।

एवमविद्यान्धास्तिष्ठन्ति सत्त्वाः संसारे तथागतस्तु करुणां जनयित्वा त्रैधातुकान्निःसृतः पितेव प्रिय एकपुत्रके करुणां जनयित्वा त्रैधातुकेऽवतीर्य

सत्त्वान् संसारचक्रे परिभ्रमतः संपश्यति न च संसारान्निःसरणं प्रजानन्ति । अथ भगवांस्तान् प्रज्ञाचक्षुषा पश्यति दृष्ट्वा च जानाति । अमी सत्त्वाः पूर्वं कुशलं कृत्वा मन्दद्वेषास्तीव्ररागा मन्दरागास्तीव्रद्वेषाः केचिदल्पप्रज्ञाः केचित् पण्डिताः केचित् परिपाकशुद्धाः केचिन्मिथ्यादृष्टयस्तेषां सत्त्वानां तथागत उपायकौशल्येन त्रीणि यानानि देशयति ।

इस प्रकार, अज्ञान से अन्धे, इस संसार में फँसे रहते हैं, किन्तु त्रैधातुक संसार से मुक्त तथागत के हृदय में इनके प्रति इसी प्रकार करुणा रहती है, जिस प्रकार पिता के हृदय में अपने प्रिय पुत्र के प्रति करुणा रहती है । उस करुणा द्वारा प्रेरित होकर ही वे उस त्रैधातुक संसार में उत्पन्न होते हैं और इस संसार-चक्र में भ्रमण करते हुए प्राणियों को देखते हैं, जो इस संसार से निकलना नहीं जानते । भगवान् उन्हें प्रज्ञा की दृष्टि से देखते हैं और देखकर समझ जाते हैं कि ये जीव पूर्वजन्म-कृत सुकर्मों के कारण मन्दद्वेष एवं तीव्रराग अथवा मन्दराग एवं तीव्रद्वेष हो गये हैं तथा उनमें कुछ अल्पज्ञ हैं, कुछ पण्डित हैं, कुछ परिपक्व विचारवाले हैं एवं कुछ मिथ्यादृष्टि हैं । तथागत उन प्राणियों को उपायकौशल्य का आश्रय लेकर तीन यानों का उपदेश देते हैं ।

तत्र यथा त ऋषयः पञ्चाभिज्ञा विशुद्धचक्षुष एव बोधिसत्त्वा बोधिचित्तान्युत्पाद्यानुत्पत्तिकीं धर्मक्षान्तिं प्रतिलभ्यानुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुध्यन्ते ।

कथा में वर्णित इन पञ्च अभिज्ञाओं से युक्त एवं विशुद्ध दृष्टिवाले, ऋषियों के समान ही ये बोधिसत्त्व हैं, जो अपने अन्दर बोधिज्ञान उत्पन्न करके तथा अनादि धर्मविषयक सहिष्णुता प्राप्त करके श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति करते हैं ।

तत्र यथासौ महावैद्य एवं तथागतो द्रष्टव्यः । यथासौ जात्यन्धस्तथा मोहान्धा सत्त्वा द्रष्टव्याः । यथा वातपित्तश्लेष्माण एवं रागद्वेषमोहाः । द्वाषष्टिं च दृष्टिकृतानि द्रष्टव्यानि । यथा चतस्र ओषधयस्तथा शून्यतानिमित्ताप्रणिहितनिर्वाणद्वारं च द्रष्टव्यम् । यथा यथा द्रव्याण्युपयुज्यन्ते तथा तथा व्याधयः प्रशाम्यन्तीति । एवं शून्यतानिमित्ताप्रणिहितानि विमोक्षमुखानि भावयित्वा सत्त्वा अविद्यां निरोधयन्ति । अविद्यानिरोधात् संस्कारनिरोधः । यावदेवमस्य केवलस्य महतो दुःखस्कन्धस्य निरोधो भवति एवं चास्य चित्तं न कुशले तिष्ठति न पापे ।

उस कथा में जैसे महावैद्य हैं, वैसे ही यहाँ तथागत को समझना चाहिए । जैसा वह जात्यन्ध पुरुष था, वैसा ही इन मोहान्ध प्राणियों को समझना चाहिए । जिस प्रकार वहाँ वात, पित्त और कफ थे, उसी प्रकार यहाँ राग, द्वेष और मोह हैं । बासठ असत् दृष्टिकृत दोषों को भी इसी प्रकार समझना चाहिए । जिस प्रकार चार ओषधियाँ थीं, उसी

प्रकार शून्यता, अनिमित्तता, अप्रणिहित एवं निर्वाणद्वार----इन चारों को समझना चाहिए । जैसे-जैसे ओषधियों का प्रयोग होता है, वैसे-वैसे व्याधियाँ शान्त होती हैं। इसी प्रकार शून्यता, अनिमित्तता, अप्रणिहित एवं निर्वाणद्वार का आश्रय लेकर जीव, अविद्या का निरोध करता है । अविद्या के निरोध से संस्कार का निरोध होता है। धीरे-धीरे इस एकमात्र महान् दु:खस्कन्ध का भी निरोध हो जाता है । तब मनुष्य का मन न शुभ कर्मों में रमता है और न अशुभ कर्मों में ।

यथान्धश्चक्षुः प्रतिलभते तथा श्रावकप्रत्येकबुद्धयानीयो द्रष्टव्यः । संसारक्लेशबन्धनानि छिनत्ति क्लेशबन्धनान्निर्मुक्तः प्रमुच्यते षड्गतिकात् त्रैधातुकात् । तेन श्रावकयानीय एवं जानात्येवं च वाचं भाषते । न सन्त्यपरे धर्मा अभिसंबोद्धव्या निर्वाणप्राप्तोऽस्मीति । अथ खलु तथागतस्तस्मै धर्मं देशयति । येन सर्वधर्मा न प्राप्ताः कुतस्तस्य निर्वाणमिति । तं भगवान् बोधौ समादापयति । स उत्पन्नबोधिचित्तो न संसारस्थितो न निर्वाणप्राप्तो भवति। सोऽवबुध्य त्रैधातुकं दशसु दिक्षु शून्यं निर्मितोपमं मायोपमं स्वप्नमरीचिप्रतिश्रुत्कोपमं लोकं पश्यति । स सर्वधर्माननुत्पन्नाननिरुद्धानबद्धानमुक्तान्-नतमोऽन्धकारान् नप्रकाशान् पश्यति । य एवं गम्भीरान् धर्मान् पश्यति स पश्यत्यपश्यनया सर्वत्रैधातुकं परिपूर्णमन्योन्यसत्त्वाशयाधिमुक्तम् ।

जिस प्रकार अन्धा मनुष्य दृष्टि प्राप्त करता है, उसी प्रकार श्रावकयानिक एवं प्रत्येकबुद्धयानिक को समझना चाहिए। वह सांसारिक बन्धनों को काट देता है तथा क्लेश के बन्धनों से मुक्त होकर छह गतियोंवाले इस त्रैधातुक संसार से भी मुक्त हो जाता है । अतः, श्रावकयानिक इस बात को जानता है तथा इस प्रकार का वचन बोलता है । मुझे अब दूसरे धर्मों के समझने की आवश्यकता नहीं है, मुझे तो निर्वाण मिल गया है। तब तथागत उसे धर्म का उपदेश देकर कहते हैं---जिसने सब धर्मों को नहीं प्राप्त कर लिया, उसे निर्वाण कैसे मिल सकता है। तब भगवान् उसके अन्दर बोधि उत्पन्न करते हैं। उसके हृदय में जब बोधि उत्पन्न हो जाती है, तब न तो वह संसार में स्थित रहता है और न निर्वाण को ही प्राप्त होता है। वह ज्ञान प्राप्त करके दसों दिशाओं में इस सम्पूर्ण त्रैधातुक संसार को शून्य, नाशवान्, मायामय, स्वप्न, मृगतृष्णा एवं प्रतिध्वनि के समान समझने लगता है । उसे सभी धर्म, अनुत्पन्न, अनिरुद्ध, अबद्ध, अमुक्त, अन्धकाररहित एवं प्रकाशहीन दिखलाई पड़ते हैं । इन गम्भीर धर्मों को जो इस प्रकार देखता है, वह परस्पर सत्त्वाशयों से अधिमुक्त, त्रैधातुक से परिपूर्ण संसार को अपश्यना (अवास्तविक बुद्धि) से देखता है।

अथ खलु भगवानिममेवार्थं भूयस्या मात्रया संदर्शयमानस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तत्पश्चात् भगवान् ने इसी विषय को विशेष रूप से वर्णित करते हुए उस समय ये गाथाएँ कहीं —

चन्द्रसूर्यप्रभा यद्वन्निपतन्ति समं नृषु ।
गुणवत्स्वथ पापेषु प्रभाया नोनपूर्णता ।।४५।।

जिस प्रकार चन्द्रमा एवं सूर्य का प्रकाश सभी मनुष्यों पर, चाहे वे गुणवान् हों, चाहे पापी, समान रूप से पड़ता है। उसमें कमी या अधिकता नहीं होती।

तथागतस्य प्रज्ञाभासमा ह्यादित्यचन्द्रवत् ।
सर्वसत्त्वान् विनयते न चोना नैव चाधिका ।।४६।।

उसी प्रकार चन्द्रमा एवं सूर्य के प्रकाश के समान तथागत के ज्ञान की ज्योति भी सभी प्राणियों को समान रूप से विनीत करती है, कम अथवा अधिक नहीं होती।

यथा कुलालो मृद्भाण्डं कुर्वन् मृत्सु समास्वपि ।
भवन्ति भाजना तस्य गुडक्षीरघृताम्भसाम् ।।४७।।

जिस प्रकार कुम्हार समान मिट्टी से बरतन बनाता है और उसके वे बरतन गुड़, दूध एवं घी के बरतन हो जाते हैं।

अशुचेः कानिचित्तत्र दध्नोऽन्यानि भवन्ति तु ।
मृदमेकां स गृह्णति कुर्वन् भाण्डानि भार्गवः ।।४८।।

कुछ अशुद्ध वस्तुओं के तथा कुछ दही के बरतन हो जाते हैं, यद्यपि कुम्हार ने बरतनों को बनाते समय एक ही प्रकार की मिट्टी का प्रयोग किया था।

यादृक् प्रक्षिप्यते द्रव्यं भाजनं तेन लक्ष्यते ।
सत्त्वाविशेषेऽपि तथा रुचिभेदात्तथागताः ।।४९।।

जैसी वस्तु पात्र में रखी जाती है, उसी के अनुसार उस पात्र की संज्ञा होती है। इसी प्रकार, तथागत प्राणियों को समान मानते हुए भी रुचिभेद के अनुसार,

यानभेदं वर्णयन्ति बुद्धयानं तु निश्चितम् ।
संसारचक्रस्याज्ञानान्निर्वृतिं न विजानते ।।५०।।

भिन्न-भिन्न यानों का उपदेश देते हैं, यद्यपि बुद्धयान ही सच्चा यान है। संसार-चक्र के ज्ञान के विना मनुष्य निर्वाण की प्राप्ति नहीं करता।

यस्तु शून्यान् विजानाति धर्मानात्मविवर्जितान् ।
संबुद्धानां भगवतां बोधि जानाति तत्त्वतः ।।५१।।

किन्तु, जो प्राणी इन शून्य एवं आत्मवर्जित धर्मों को जानता है, वही वस्तुतः सम्बोधि-प्राप्त भगवान् बुद्ध के ज्ञान को समझता है।

प्रज्ञामध्यव्यवस्थानात् प्रत्येकजिन उच्यते।
शून्यज्ञानविहीनत्वाच्छ्रावकः संप्रभाष्यते ॥५२॥

प्रज्ञा के मध्य में स्थित रहने के कारण वह प्रत्येक बुद्ध कहलाता है तथा शून्य ज्ञान से रहित होने के कारण वह श्रावक कहा जाता है।

सर्वधर्मावबोधात्तु सम्यक् संबुद्ध उच्यते ।
तेनोपायशतैर्नित्यं धर्मं देशेति प्राणिनाम् ॥५३॥

जब वह सब धर्मों को जान लेता है, तब सम्यक् सम्बुद्ध कहा जाता है और वह सैकड़ों उपायों के द्वारा प्राणियों को धर्म का उपदेश देता है।

यथा हि कश्चिज्जात्यन्धः सूर्येन्दुग्रहतारकाः।
अपश्यन्नेवमाहासौ नास्ति रूपाणि सर्वशः ॥५४॥

जिस प्रकार चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र एवं तारों को न देखनेवाला एक जात्यन्ध व्यक्ति कहता है कि संसार में रूपवान् वस्तु का सर्वथा अभाव है।

जात्यन्धे तु महावैद्यः कारुण्यं संनिवेश्य ह।
हिमवन्तं स गत्वान तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ॥५५॥

किन्तु, एक महान् वैद्य उस जात्यन्ध पर दया करके हिमालय पर्वत पर जाता है और वहाँ तिरछे, ऊपर तथा नीचे सभी ओर खोजकर,

सर्ववर्णरसस्थाना नगाल्लभत ओषधीः ।
एवमादीश्चतस्रोऽथ प्रयोगमकरोत्ततः ॥५६॥

सब प्रकार की ओषधियों के जन्मस्थान-स्वरूप उस पर्वत से इस प्रकार की चार ओषधियाँ लाता है और उनका प्रयोग करता है।

दन्तैः संचूर्ण्य कांचित्तु पिष्ट्वा चान्यां तथापराम् ।
सूच्यग्रेण प्रवेश्याङ्गे जात्यन्धाय प्रयोजयेत् ॥५७॥

कुछ को दाँतों से चूर करके, कुछ को पीसकर तथा अन्य कुछ को सूई की नोंक से उसके शरीर में प्रविष्ट कराकर उस अन्धे मनुष्य के लिए उसका प्रयोग करता है ।

स लब्धचक्षुः संपश्येत् सूर्येन्दुग्रहतारकाः ।
एवं चास्य भवेत् पूर्वमज्ञानात्तदुदाहृतम् ॥५८॥

वह जन्मान्ध दृष्टि पाकर सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और तारों को देखने लगता है और वह समझ जाता है कि मैंने पहले जो कुछ कहा था, वह सब अज्ञानवश कहा था।

एवं सत्त्वा महाज्ञाना जात्यन्धाः संसरन्ति हि ।
प्रतीत्योत्पादचक्रस्य अज्ञानाद्दुःखवर्त्मनः ॥५९॥

उसी प्रकार महान् अज्ञान से युक्त पुरुष उस जात्यन्ध के समान कारण-कार्य के चक्र को न जानकर दुःख के मार्ग में भटकते रहते हैं ।

एवमज्ञानसंमूढे लोके सर्वविदुत्तमः ।
तथागतो महावैद्य उत्पन्नः करुणात्मकः ॥६०॥

अज्ञान से मूढ बने इस लोक में सर्ववित्, श्रेष्ठ और करुणा से पूर्ण हृदयवाले तथागत महावैद्य की तरह उत्पन्न होते हैं ।

उपायकुशलः शास्ता सद्धर्मं देशयत्यसौ ।
अनुत्तरां बुद्धबोधिं देशयत्यग्रयानिके ॥६१॥

उपायकौशल्यों के पूर्ण ज्ञाता ये शास्ता सद्धर्म का उपदेश देते हैं और अग्रयान में स्थित प्राणियों को श्रेष्ठ बुद्धज्ञान का उपदेश देते हैं ।

प्रकाशयति मध्यां तु मध्यप्रज्ञाय नायकः ।
संसारभीरवे बोधिमन्यां संवर्णयत्यपि ॥६२॥

मध्यम बुद्धिवाले व्यक्ति को ये संसार के नायक मध्यम ज्ञान का उपदेश देते हैं तथा संसार-चक्र से डरनेवाले व्यक्ति को अन्य प्रकार का उपदेश देते हैं ।

त्रैधातुकान्निःसृतस्य श्रावकस्य विजानतः ।
भवत्येवं मया प्राप्तं निर्वाणममलं शिवम् ॥६३॥

त्रैधातुक संसार से मुक्त ज्ञानी श्रावक के मन में ऐसा विचार आता है कि मुझे निर्मल और मंगलमय निर्वाण की प्राप्ति हो गई है।

तामेव तत्र प्रकाशेमि नैतन्निर्वाणमुच्यते ।
सर्वधर्मावबोधात्तु निर्वाणं प्राप्यतेऽमृतम् ॥६४॥

उस अवसर पर मैं स्पष्ट रूप से कहता हूँ कि यह निर्वाण नहीं है; क्योंकि शाश्वत निर्वाण की प्राप्ति तो सभी धर्मों के जानने के अनन्तर ही होती है ।

महर्षयो यथा तस्मै करुणां संनिवेश्य वै ।
कथयन्ति च मूढोऽसि मा तेऽभूज्ज्ञानवानहम् ॥६५॥

महर्षि के समान सुगत करुणा से प्रेरित होकर उससे कहते हैं कि तुम मूर्ख हो, तुम्हारे मन में ऐसा भाव कभी नहीं आना चाहिए कि मैं ज्ञानी हूँ ।

अभ्यन्तरावस्थितस्त्वं यदा भवसि कोष्ठके ।
बहिर्यद्वर्तते तद्वै न जानीषे त्वमल्पधीः ॥६६॥

जब तुम कमरे के अन्दर रहते हो, तो वाहर क्या होता है, तुम नहीं देख पाते; क्योंकि तुम्हारी बुद्धि अल्प है ।

योऽभ्यन्तरेऽवस्थितस्तु बहिर्ज्ञातं कृताकृतम् ।
सो श्रद्यापि न जानाति कुतस्त्वं वेत्स्यसेऽल्पधीः ।।६७।।

जो श्रन्दर रहता है, वह श्राजतक बाहर होने या न होनेवाली बातों को नहीं जान सका है । श्रल्पबुद्धि तुम कैसे जान सकते हो।

पञ्चयोजनमात्रं तु यः शब्दो निश्चरेदिह ।
तं श्रोतुं न समर्थोऽसि प्रागेवान्यं विदूरतः ।।६८।।

तुम यहाँ से पाँच योजन दूर पर होनेवाले शब्द को नहीं सुन सकते, फिर श्रधिक दूर के शब्द का क्या कहना ।

त्वयि ये पापचित्ता वा श्रनुनीतास्तथापरे ।
ते न शक्यं त्वया ज्ञातुमभिमानः कुतोऽस्ति ते ।।६९।।

जो तुम्हारे प्रति दुर्बुद्धि रखते हैं श्रथवा जो तुम्हारे प्रति दयालु हैं, उन्हें भी तुम नहीं जान सकते, तब फिर तुम्हारे श्रन्दर ज्ञानी होने का श्रभिमान कहाँ से श्राया ।

क्रोशमात्रेऽपि गन्तव्ये पदवीं न विना गतिः ।
मातुः कुक्षौ च यद्वृत्तं विस्मृतं तत्तदेव ते ।।७०।।

यदि तुम्हें एक कोस भी जाना है, तो तुम विना मार्ग के नहीं जा सकते । माता के उदर में तुम्हारे साथ जो घटनाएँ घटीं, उन्हें तुम वहीं तुरत भूल गये ।

श्रभिज्ञा यस्य पञ्चैताः स सर्वज्ञ इहोच्यत ।
त्वं मोहादप्यकिंचिज्ज्ञः सर्वज्ञोऽस्मीति भाषसे ।।७१।।

जो इन पांच श्रभिज्ञाश्रों से युक्त है वही इस संसार में सर्वज्ञ कहा जाता है । तुम कुछ भी नहीं जानते, फिर भी मोहवश कहते हो कि मैं सर्वज्ञ हूँ ।

सर्वज्ञत्वं प्रार्थयसे यद्यभिज्ञाभिनिर्हरेः ।
तं चाभिज्ञाभिनिर्हारमरण्यस्थो विचिन्तय ।
धर्मं विशुद्धं तेन त्वमभिज्ञाः प्रतिलप्स्यसे ।।७२।।

यदि तुम सर्वज्ञत्व चाहते हो, तो श्रभिज्ञाश्रों की प्राप्ति की श्रोर प्रयत्नशील हो एवं जंगल में रहकर उन श्रभिज्ञाश्रों की प्राप्ति के हेतु शुद्ध धर्म का चिन्तन करो। इस प्रकार, तुम श्रभिज्ञाश्रों को प्राप्त कर सकोगे ।

सोऽर्थं गृह्य गतोऽरण्यं चिन्तयेत् सुसमाहितः ।
श्रभिज्ञाः प्राप्तवान् पञ्च न चिरेण गुणान्वितः ।।७३।।

वह मनुष्य इस बात को मानकर जंगल में जाकर ध्यानपूर्वक चिन्तन करने लगा। वह गुणों से युक्त था, श्रतः उसने शीघ्र ही पाँचों श्रभिज्ञाएँ प्राप्त कर लीं।

तथैव श्रावकाः सर्वे प्राप्तनिर्वाणसंज्ञिनः ।
जिनोऽथ देशयेत्तस्मै विश्रामोऽयं न निर्वृतिः ॥७४॥

इसी प्रकार सभी श्रावक भी समझते हैं कि हमलोगों ने निर्वाण प्राप्त कर लिया है; किन्तु बुद्ध उन्हें बतलाते हैं कि जिसे तुम निर्वाण समझते हो, वह विश्राम है, न कि निर्वाण।

उपाय एष बुद्धानां वदन्ति यदिमं नयम् ।
सर्वज्ञत्वमृते नास्ति निर्वाणं तत् समारभ ॥७५॥

यह बुद्धों का उपायकौशल्य है कि वे इस नीति का उपदेश देते हैं और कहते हैं कि सर्वज्ञत्व के विना सच्चा निर्वाण नहीं प्राप्त हो सकता, अतः पहले उसे पाने का प्रयास करो।

त्र्यध्वज्ञानमनन्तं च षट् च पारमिताः शुभाः ।
शून्यतामनिमित्तं च प्रणिधानविवर्जितम् ॥७६॥

तीन मार्गों का अनन्त ज्ञान, छह शुभ पारमिताएँ, शून्यता, अनिमित्तता एवं प्रणिधान-विवर्जन।

बोधिचित्तं च ये चान्ये धर्मा निर्वाणगामिनः ।
सास्रवानास्रवाः शान्ताः सर्वे गगनसंनिभाः ॥७७॥

बोधिज्ञान, निर्वाण को प्राप्त करनेवाले अन्य सभी धर्म जो सास्रव एवं अनास्रव दोनों प्रकार के हैं, शान्त हैं तथा गगन के समान हैं।

ब्रह्मविहाराश्चत्वारः संग्रहा ये च कीर्तिताः ।
सत्त्वानां विनयार्थाय कीर्तिताः परमर्षिभिः ॥७८॥

तथा, चार ब्रह्मविहार, जो संग्रह कहे जाते हैं तथा वे धर्म, जिनका सभी जीवों के विनयन के लिए महर्षियों ने आदेश दिया है।

यश्च धर्मान् विजानाति मायास्वप्नस्वभावकान् ।
कदलीस्कन्धनिःसारान् प्रतिश्रुत्का समानकान् ॥७९॥

जो इन धर्मों को माया एवं स्वप्न के समान अस्थायी, कदली के खम्भे के समान निस्सार एवं प्रतिध्वनि के समान अस्तित्वहीन समझता है।

तत्स्वभावं च जानाति त्रैधातुकमशेषतः ।
अबद्धमविमुक्तं च न विजानाति निर्वृतिम् ॥८०॥

और, जो इस सम्पूर्ण त्रैधातुक संसार और उसके स्वभाव को जानता है, वह अबद्ध, अविमुक्त और निर्वृत्ति को नहीं जानता।

सर्वधर्मान् समान् शून्यान्निर्नानाकरणात्मकान् ।
न चैतान् प्रेक्षते नापि किंचिद्धर्मं विपश्यति ।।८१।।

जो इन सभी समान, शून्य एवं विविध प्रकार के करणों से रहित धर्मों को नहीं समझता, वह किसी भी धर्म के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ सकता ।

स पश्यति महाप्रज्ञो धर्मकायमशेषतः ।
नास्ति यानत्रयं किंचिदेकयानमिहास्ति तु ।।८२।।

किन्तु, वह व्यक्ति जो महती बुद्धि से सम्पन्न है एवं सम्पूर्ण धर्म को पूर्ण रूप से देखता है, वह समझ जाता है कि इस संसार में यान तीन नहीं है, किन्तु यान केवल एक है ।

सर्वधर्माः समाः सर्वे समाः समसमाः सदा ।
एवं ज्ञात्वा विजानाति निर्वाणममृतं शिवम् ।।८३।।

सभी धर्म समान हैं, सबके लिए समान हैं और सदा समान हैं। इस बात को जानकर ही मनुष्य अमृत और मंगलमय निर्वाण को समझने में समर्थ होता है ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याय ओषधीपरिवर्तो
नाम पञ्चमः ।।५।।

धर्मपर्याय-रूप श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक का ओषधीपरिवर्त नामक पाँचवाँ परिवर्त
समाप्त हुआ ।।५।।

व्याकरणपरिवर्तः

अथ खलु भगवानिमा गाथा भाषित्वा सर्वावन्तं भिक्षुसंघमामन्त्रयते स्म। आरोचयामि वो भिक्षवः प्रतिवेदयामि । अयं मम श्रावकः काश्यपो भिक्षुस्त्रिशतो बुद्धकोटीसहस्राणामन्तिके सत्कारं करिष्यति गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां करिष्यति तेषां च बुद्धानां भगवतां सद्धर्मं धारयिष्यति । स पश्चिमे समुच्छ्रय अवभासप्राप्तायां लोकधातौ महाव्यूहे कल्पे रश्मिप्रभासो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यति विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् । द्वादश चास्यान्तरकल्पानायुष्प्रमाणं भविष्यति । विंशति चास्यान्तरकल्पान् सद्धर्मः स्थास्यति । विशतिमेवान्तरकल्पान् सद्धर्मप्रतिरूपकः स्थास्यति । तच्चास्य बुद्धक्षेत्रं शुद्धं भविष्यति शुच्यपगतपाषाणशर्करकठल्यमपगतश्वभ्रप्रपातमपगतस्यन्दनिकागूथोडिगल्लं समं रमणीयं प्रासादिकं दर्शनीयं वैडूर्यमयं रत्नवृक्षप्रतिमण्डितं सुवर्णसूत्राष्टापदनिबद्धं पुष्पाभिकीर्णम् । बहूनि च तत्र बोधिसत्त्वशतसहस्राण्युत्पत्स्यन्ते । अप्रमेयाणि च तत्र श्रावककोटीनयुतशतसहस्राणि भविष्यन्ति । न च तत्र मारः पापीयानवतारं लप्स्यते न च मारपर्षत् प्रज्ञास्यते । भविष्यति तत्र खलु पुनर्मारश्च मारपर्षदश्च । अपि तु खलु पुनस्तत्र लोकधातौ तस्यैव भगवतो रश्मिप्रभासस्य तथागतस्य शासने सद्धर्मपरिग्रहायाभियुक्ता भविष्यन्ति ।

ये गाथाएँ कहकर भगवन् सम्पूर्ण भिक्षुसंघ से बोले—हे भिक्षुओ ! मैं तुमसे कहता हूँ, प्रतिवेदन करता हूँ कि मेरा श्रावक भिक्षुकाश्यप, जो यहाँ उपस्थित है, तीस सहस्र कोटि बुद्धों का सत्कार करेगा एवं उनके प्रति गुरु-भावना रखते हुए उनका आदर, पूजन, अर्चन और सेवा करेगा तथा उन भगवान् बुद्धों के सद्धर्म को धारण करेगा । वह अपने अन्तिम शरीर-धारण की अवस्था में महाव्यूह नामक कल्प में, अवभासप्राप्त नामक लोकधातु में स्थित इस लोक में रश्मिप्रभास नामक अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत होकर ज्ञान और सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, इन्द्रियों को वशीभूत करने वाला तथा देवता एवं मनुष्यों का शासक बुद्ध बनेगा । उसकी आयु बारह अन्तरकल्पों की होगी । उसका सद्धर्म बीस अन्तर कल्पों तक स्थित रहेगा और बीस अन्तरकल्पों तक उसके सद्धर्म का प्रतिरूप स्थित रहेगा । उनका यह बुद्धक्षेत्र पवित्र, शुद्ध, पत्थर, कंकड़ एवं बालुका से मुक्त, प्रपातों एवं झरनों से रहित, नालियों तथा विष्ठा के गड्ढों

से रहित, चौरस, सुन्दर, प्रासादिक, दर्शनीय, वैदूर्यमय, रत्नवृक्षों से सुशोभित, स्वर्णसूत्र के बने हुए अष्टापदों से संयुक्त और फूलों से आकीर्ण होगा। उसमें अनेक शतसहस्र बोधिसत्त्व उत्पन्न होंगे तथा उसमें अप्रमेय एवं कोटीनयुतशतसहस्र श्रावक भी वर्त्तमान रहेंगे। वहाँ न तो पापी मार का प्रभाव रहेगा और न मार की सभा का ही प्रभुत्व रहेगा, यद्यपि मार भी उपस्थित रहेगा एवं मार की सभा भी। वे पुनः उसी लोकधातु में उन्हीं भगवान् तथागत रश्मिप्रभ के शासन में रहकर सद्धर्म के ग्रहण में तत्पर रहेंगे।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, उस अवसर पर भगवान् ने ये गाथाएँ कहीं——

पश्याम्यहं भिक्षव बुद्धचक्षुषा स्थविरो ह्ययं काश्यप बुद्ध भेष्यति।
अनागतेऽध्वानि असंख्यकल्पे कृत्वान पूजां द्विपदोत्तमानाम् ।।१।।

हे भिक्षुओ ! मैं अपनी दिव्य दृष्टि से स्पष्ट देख रहा हूँ कि यह स्थविर काश्यप भविष्य में आनेवाले असंख्य कल्पों में मनुष्यों में श्रेष्ठ बुद्धों की पूजा करके बुद्धत्व प्राप्त करेगा।

त्रिंशत्सहस्राः परिपूर्णकोट्यो जिनानयं द्रक्ष्यति काश्यपो ह्ययम् ।
चरिष्यती तत्र च ब्रह्मचर्यं बौद्धस्य ज्ञानस्य कृतेन भिक्षवः ।।२।।

हे भिक्षुओ ! यह काश्यप पूरे तीस सहस्र कोटि जिनों के दर्शन करेगा तथा उनके संरक्षण में रहकर बुद्धज्ञान की प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य का आचरण करेगा।

कृत्वान पूजां द्विपदोत्तमानां समुदानिय ज्ञानमिदं अनुत्तरम् ।
स पश्चिमे चोच्छ्रयि लोकनाथो भविष्यते अप्रतिमो महर्षिः ।।३।।

वह द्विपदों में श्रेष्ठ बुद्ध की पूजा करके तथा इस श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करके अन्तिम शरीर-धारण की अवस्था में अप्रतिम महर्षि एवं लोकनाथ बनेगा।

क्षेत्रं च तस्य प्रवरं भविष्यति विचित्र शुद्धं शुभ दर्शनीयम् ।
मनोज्ञरूपं सद प्रेमणीयं सुवर्णसूत्रैः समलंकृतं च ।।४।।

उसका क्षेत्र विशाल विचित्र, शुद्ध, शुभ, दर्शनीय, सुन्दर, आनन्ददायक एवं सुवर्णसूत्रों से अलंकृत होगा।

रत्नामया वृक्ष तहिं विचित्रा अष्टापदस्मि तहि एकमेके ।
मनोज्ञगन्धं च विमुञ्चमाना भेष्यन्ति क्षेत्रस्मि इमस्मि भिक्षो ।।५।।

हे भिक्षुओ ! वह क्षेत्र एक अष्टापद के समान होगा तथा उसके हर भाग में सुन्दर सुगन्ध बिखेरते हुए अनेक एवं विचित्र रत्नों के वृक्ष होंगे।

पुष्करकैः समलंकृतं च विचित्रपुष्पैरुपशोभितं च ।
श्वभ्रप्रपाता न च तत्र सन्ति समं शिवं भेष्यति दर्शनीयम् ।।६।।

वह क्षेत्र अनेक फूलों से सजा रहता है और रंग-विरंग के फूल उसकी शोभा बढ़ाते हैं। उसमें गड्ढे और झरने नहीं हैं और वह समतल, सुन्दर और दर्शनीय होगा।

तहि बोधिसत्त्वान सहस्रकोट्यः सुदान्तचित्तान महर्द्धिकानाम्।
वैपुल्यसूत्रान्तधराण तायिनां बहू भविष्यन्ति सहस्रनेके ॥७॥

वहाँ मन को वश में रखनेवाले एवं अलौकिक शक्तिसम्पन्न सैकड़ों कोटि बोधिसत्त्व होंगे तथा वैपुल्यसूत्र के धारण करनेवाले अनेक सहस्र बुद्ध भी वहाँ वर्त्तमान रहेंगे।

अनास्रवा अन्तिमदेहधारिणो भेष्यन्ति ये श्रावक धर्मराज्ञः।
प्रमाणु तेषां न कदाचि विद्यते दिव्येन ज्ञानेन गणित्व कल्पान् ॥८॥

वहाँ धर्म के राजा सुगत के जो श्रावक होंगे, वे दोषरहित एवं अन्तिम देहधारी होंगे। कल्पों तक दिव्य ज्ञान के द्वारा गिनती करने पर भी उनकी संख्या का पता नहीं चलेगा।

सो द्वादश अन्तरकल्प स्थास्यति सद्धर्म विंशान्तरकल्प स्थास्यति।
प्रतिरूपकश्चान्तरकल्पविंशति रश्मिप्रभासस्य वियूह भेष्यति ॥९॥

वे स्वयं बारह अन्तरकल्पों तक स्थित रहेंगे। उनका सद्धर्म बीस अन्तरकल्पों तक स्थित रहेगा और उसका प्रतिरूप भी रश्मिप्रभास के उस बुद्धक्षेत्र में बीस अन्तरकल्पों तक स्थित रहेगा।

अथ खल्वायुष्मान् महामौद्गल्यायनः स्थविर आयुष्मांश्च सुभूतिरायुष्मांश्च महाकात्यायनः प्रवेपमानैः कायैर्भगवन्तमनिमिषैर्नेत्रैर्व्यवलोकयन्ति स्म। तस्यां च वेलायां पृथक् पृथङ्मनःसंगीत्येमा गाथा अभाषन्त।

तत्पश्चात्, आयुष्मान् स्थविर महामौद्गल्यायन, आयुष्मान् सुभूति और आयुष्मान् महाकात्यायन, जिनके शरीर काँप रहे थे, अपलक दृष्टि से भगवान् को देखने लगे एवं उसी समय वे मन को एकाग्र करके पृथक्-पृथक् ये गाथाएँ बोले—

अर्हन्त हे महावीर शाक्यसिंह नरोत्तम।
अस्माकमनुकम्पाय बुद्धशब्दमुदीरय ॥१०॥

हे अर्हत्! हे महावीर! हे शाक्यसिंह! हे नरोत्तम! हम पर कृपा करके हमें बुद्धज्ञान का उपदेश दें।

अवश्यमवसरं ज्ञात्वा अस्माकं पि नरोत्तम।
अमृतेनेव सिञ्चित्वा व्याकुरुष्व विभो जिन ॥११॥

हे नरोत्तम! हे विभो! हे जिन! अवसर देखकर अवश्य ही हम पर अमृत की वर्षा के समान धर्मोपदेश की वर्षा करें।

दुर्भिक्षादागतः कश्चिन्नरो लब्ध्वा सुभोजनम् ।
प्रतीक्ष भूय उच्येत हस्तप्राप्तस्मि भोजने ।।१२।।

दुर्भिक्ष से आये हुए मनुष्य को सुन्दर भोजन मिले और भोजन जब उसके हाथों में आये, तब कहा जाय कि अभी प्रतीक्षा करो ।

एवमेवोत्सुका अस्मो हीनयानं विचिन्तय ।
दुष्कालभुक्तसत्वा वा बुद्धज्ञानं लभामहे ।।१३।।

इसी प्रकार, हीनयान का चिन्तन करने के वाद दुर्भिक्ष से पीडित प्राणियों की तरह हमलोग भी बुद्धज्ञान को प्राप्त करने के लिए उत्सुक हैं ।

न तावदस्मान् संबुद्धो व्याकरोति महामुनिः ।
यथा हस्तस्मि प्रक्षिप्तं न तद् भुञ्जीत भोजनम् ।।१४।।

किन्तु, सम्पूर्ण ज्ञान के ज्ञाता महामुनि हमें अभी तक उसका उपदेश न देकर इस प्रकार हमें हाथ में रखे हुए भोजन के भी खाने का अवसर नहीं दे रहे हैं ।

एवं च उत्सुका वीर श्रुत्वा घोषमनुत्तरम् ।
व्याकृता यद भेष्यामस्तदा भेष्याम निर्वृता ।।१५।।

हे वीर ! उनके इसी प्रकार के उत्तम घोष को सुनकर हम अत्यन्त उत्सुक हो गये हैं । जब हम उनका उपदेश सुन लेंगे, तभी हमें निर्वाण की प्राप्ति होगी ।

व्याकरोहि महावीर हितैषी अनुकम्पकः ।
अपि दारिद्र्यचित्तानां भवेदन्तो महामुने ।।१६।।

सबका हित चाहनेवाले दयालु महावीर ! आप धर्म का उपदेश दें जिससे कि हे महामुने ! हमारे चित्त की ज्ञान-विषयक दरिद्रता का अन्त हो जाय ।

अथ खलु भगवांस्तेषां महाश्रावकाणां स्थविराणामिममेवंरूपं चेतसैव चेतःपरिवितर्कमाज्ञाय पुनरपि सर्वावन्तं भिक्षुसंघमामन्त्रयते स्म । अयं मे भिक्षवो महाश्रावकः स्थविरः सुभूतिस्त्रिशत एव बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राणां सत्कारं करिष्यति गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां करिष्यति । तत्र च ब्रह्मचर्यं चरिष्यति बोधिं च समुदानयिष्यति । एवंरूपांश्चाधिकारान् कृत्वा पश्चिमे समुच्छये शशिकेतुर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यति विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् ।

तत्पश्चात्, भगवान् उन स्थविर महाश्रावकों के मन में उठनेवाले इस प्रकार के वितर्कों का अपने मन में उठनेवाले वितर्कों से अनुमान लगाकर पुनः सम्पूर्ण भिक्षुसंघ से बोले—

हे भिक्षुओ ! यह मेरा श्रावक स्थविर सुभूति इस प्रकार तीस कोटीनयुतशतसहस्र बुद्धों का सत्कार, सम्मान, आदर, पूजन, अर्चन एवं अपचायन करेगा एवं उनके शासन में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करके बोधि प्राप्त करेगा । अपने इस प्रकार के कर्त्तव्यों को पूरा करके अन्तिम शरीर-धारण की अवस्था में वह इस लोक में शशिकेतु नामक ज्ञान एवं सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, इन्द्रियों का नियन्ता, देवताओं एवं मनुष्यों का शासक अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत होकर भगवान् बुद्ध बनेगा ।

रत्नसंभवं च नामस्य तद्बुद्धक्षेत्रं भविष्यति । रत्नावभासश्च नाम स कल्पो भविष्यति । समं च तद्बुद्धक्षेत्रं भविष्यति रमणीयं स्फटिकमयं रत्नवृक्षविचित्रितमपगतश्वभ्रप्रपातमपगतगूथोडिगल्लं मनोज्ञं पुष्पाभिकीर्णम् । कूटागारपरिभोगेषु चात्र पुरुषा वासं कल्पयिष्यन्ति । बहवश्चास्य श्रावका भविष्यन्त्यपरिमाणा येषां न शक्यं गणनया पर्यन्तोऽधिगन्तुम् । बहूनि चात्र बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि भविष्यन्ति । तस्य च भगवतो द्वादशान्तरकल्पानायुष्प्रमाणं भविष्यति । विंशतिं चान्तरकल्पान् सद्धर्मः स्थास्यति । विंशतिमेवान्तरकल्पान् सद्धर्मप्रतिरूपकः स्थास्यति । स च भगवान् वैहायसमन्तरीक्षे स्थित्वा अभीक्ष्णं धर्मं देशयिष्यति बहूनि च बोधिसत्त्वशतसहस्राणि बहूनि च श्रावकशतसहस्राणि विनेष्यति ।

उसके बुद्धक्षेत्र का नाम रत्नसम्भव होगा और उस कल्प का नाम रत्नावभास होगा । वह बुद्धक्षेत्र चौरस, सुन्दर एवं स्फटिकमय रत्नवृक्षों से सुशोभित गड्ढों, प्रपातों एवं विष्ठा के गड्ढों से रहित, रमणीय और फूलों से युक्त होगा । वहाँ के पुरुष ऊँचे प्रासादों के भवनों में निवास करेंगे । वहाँ उनके असंख्य श्रावक होंगे, जिनका गणना द्वारा अन्त पाना असम्भव होगा । वहाँ अनेक कोटीनयुतशतसहस्र बोधिसत्त्व होंगे । उन भगवान् की आयु बारह अन्तरकल्पों की होगी । वहाँ सद्धर्म बीस अन्तरकल्पों तक स्थित रहेगा एवं बीस अन्तरकल्पों तक सद्धर्म का प्रतिरूप स्थिर रहेगा । वे भगवान् खुले आकाश में स्थित होकर निरन्तर धर्म का उपदेश देंगे एवं अनेक शतसहस्र बोधिसत्त्वों को तथा अनेक शतसहस्र श्रावकों को बुद्धज्ञान में विनीत करेंगे ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तत्पश्चात् उस अवसर पर भगवान् ने ये गाथाएँ कहीं—

आरोचयामि अहमद्य भिक्षवः प्रतिवेद्याम्यद्य ममा शृणोथ ।
स्थविरः सुभूतिर्मम श्रावकोऽयं भविष्यते बुद्ध अनागतेऽध्वनि ।।१७।।

हे भिक्षुओ ! मैं आज कुछ कहता हूँ, प्रतिवेदन करता हूँ । मेरी बातों को सुनो । यह मेरा श्रावक स्थविर सुभूति भविष्य में बुद्ध बनेगा ।

बुद्धांश्च पश्यित्व महानुभावान् त्रिंशच्च पूर्णा नयुतान कोटीः ।
चरिष्यते चर्य तदानुलोमिकीमिमस्य ज्ञानस्य कृतेन चैषः ।।१८।।

पूरे तीस कोटीनयुत महानुभाव बुद्धों के दर्शन करके वह उस ज्ञान की प्राप्ति के लिए आनुलोमिकी चर्या का आचरण करेगा।

स पश्चिमे वीर समुच्छ्रयस्मिन् द्वात्रिंशतीलक्षणरूपधारी ।
सुवर्णयूपप्रतिमो महर्षिर्भविष्यते लोकहितानुकम्पी ।।१९।।

वह वीर अन्तिम शरीर-धारण की अवस्था में महर्षि होगा तथा स्वर्णस्तम्भ के समान एवं बत्तीस लक्षणों से युक्त शरीर-धारण करके सभी जीवों का हित करेगा एवं उन पर दया दिखलायगा।

सुदर्शनीयं च सुक्षेत्र भेष्यति इष्टं मनोज्ञं च महाजनस्य ।
विहरिष्यते यत्र स लोकबन्धुस्तारित्व प्राणीनयुतान कोटीः ।।२०।।

संसार का मित्र वह सुभूति जहाँ असंख्य कोटि प्राणियों का उद्धार करके विहार करेगा, वह क्षेत्र सुन्दर, मनोहर तथा लोगों को प्रिय होगा।

बहुबोधिसत्त्वात्र महानुभावा अविवर्त्यचक्रस्य प्रवर्तितारः ।
तीक्ष्णेन्द्रियास्तस्य जिनस्य शासने ये शोभयिष्यन्ति त बुद्धक्षेत्रम् ।।२१।।

उसमें महानुभाव अविवर्त्ती, चक्र के प्रवर्त्तक एवं तीक्ष्ण इन्द्रियवाले अनेक बोधिसत्त्व वर्त्तमान रहेंगे, जो सुगत के शासन में रहकर उस बुद्धक्षेत्र की शोभा बढ़ायेंगे।

बहुश्रावकास्तस्य न संख्य तेषां प्रमाणु नैवास्ति कदाचि तेषाम् ।
षडभिज्ञत्रैविद्यमहर्द्धिकाश्च अष्टाविमोक्षेषु प्रतिष्ठिताश्च ।।२२।।

वहाँ उसके अनेक श्रावक भी होंगे, जो गणना एवं प्रमाण के परे होंगे। वे छह अभिज्ञाओं, तीन विद्याओं एवं अलौकिक शक्तियों से युक्त तथा आठ प्रकार की विमोक्षाओं में स्थित होंगे।

अचिन्तियं ऋद्धिबलं च भेष्यति प्रकाशयन्तस्यिममग्रबोधिम् ।
देवा मनुष्या यथ गङ्गवालिका भेष्यन्ति तस्यो सततं कृताञ्जली ।।२३।।

इस श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश करते समय उनकी अलौकिक शक्ति अचिन्त्य हो जायगी। गंगा की बालुका के समान असंख्य देवता और मनुष्य हाथ जोड़कर सदा आदर-पूर्वक इनके सम्मुख खड़े रहेंगे।

सो द्वादशो अन्तरकल्प स्थास्यति सद्धर्मु विंशान्तरकल्प स्थास्यति ।
प्रतिरूपको विंशतिमेव स्थास्यति कल्पान्तराणि द्विपदोत्तमस्य ।।२४।।

वह सुभूति बारह कल्पों तक स्थित रहेगा। उसका सद्धर्म बीस अन्तरकल्पों तक स्थित रहेगा और मनुष्यों में श्रेष्ठ प्रतिरूप भी बीस अन्तरकल्पों तक स्थित रहेगा।

अथ खलु भगवान् पुनरेव सर्वावन्तं भिक्षुसंघमामन्त्रयते स्म । आरोचयामि वो भिक्षवः प्रतिवेदयामि । अयं मम श्रावकः स्थविरो महाकात्यायनोऽष्टानां बुद्धकोटीशतसहस्राणामन्तिके सत्कारं करिष्यति गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां करिष्यति । परिनिर्वृतानां च तेषां तथागतानां स्तूपान् करिष्यति योजनसहस्रं समुच्छ्रयेण पञ्चाशद्योजनानि परिणाहेन सप्तानां रत्नानाम । तद् यथा सुवर्णस्य रूप्यस्य वैडूर्यस्य स्फटिकस्य लोहितमुक्तेरश्मगर्भस्य मुसारगल्वस्य सप्तमस्य रत्नस्य । तेषां च स्तूपानां पूजां करिष्यति पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावैजयन्तीभिश्च । ततश्च भूयः परेण परतरेण पुनर्विंशतीनां बुद्धकोटीनामन्तिक एवंरूपमेव सत्कारं करिष्यति गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां करिष्यति । स पश्चिमे समुच्छ्रये पश्चिम आत्मभावप्रतिलम्भे जाम्बूनदप्रभासो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यति विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् । परिशुद्धं चास्य बुद्धक्षेत्रं भविष्यति समं रमणीयं प्रासादिकं दर्शनीयं स्फटिकमयं रत्नवृक्षाभिविचित्रितं सुवर्णसूत्राच्छोडितं पुष्पसंस्तरसंस्तृतमपगतनिरयतिर्यग्योनियमलोकासुरकायं बहुनरदेवप्रतिपूर्णं बहुश्रावकशतसहस्रोपशोभितं बहुबोधिसत्त्वशतसहस्रालंकृतम् । द्वादश चास्यान्तरकल्पानायुष्प्रमाणं भविष्यति। विंशतिं चास्यान्तरकल्पान् सद्धर्मः स्थास्यति । विंशतिमेवान्तरकल्पान् सद्धर्मप्रतिरूपकः स्थास्यति ।

भगवान् पुनः सम्पूर्ण भिक्षुसंघ से बोले---हे भिक्षुओ ! मैं तुमसे कहता हूँ, प्रतिवेदन करता हूँ कि यह मेरा श्रावक स्थविर, महाकात्यायन आठ कोटि शतसहस्र बुद्धों का सत्कार, आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन और अपचायन करेगा । उन परिनिर्वाण-प्राप्त तथागतों के स्तूप बनवायगा, जो हजार योजन ऊँचे, पचीस योजन चौड़े एवं सुवर्ण, चाँदी, वैदूर्य, स्फटिक, लोहित, मुक्ता, अश्मगर्भ एवं मुसारगल्व---इन सात रत्नों से युक्त होंगे । वह उन स्तूपों की पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, एवं वैजयन्ती आदि से पूजा करेगा । तदनन्तर, उससे परे एवं उससे भी परे काल में वह पुनः बीस करोड़ बुद्धों का इसी प्रकार सत्कार, आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन एवं अपचायन करेगा । वह अन्तिम शरीर-धारण की अवस्था में अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत होकर जाम्बूनदप्रभास नामक, ज्ञान एवं सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, दमनयोग्य इन्द्रियों का नियन्ता, देवताओं और मनुष्यों का शासक भगवान् बुद्ध होगा । इसका बुद्धक्षेत्र

सर्वथा शुद्ध, चौरस, रमणीय, प्रासादिक, दर्शनीय, स्फटिकमय, रत्नवृक्षों से सुशोभित स्वर्णसूत्रों से सम्बद्ध पुष्पों के आवरण से ढका हुआ, नारकियों, तिर्यक् योनिवालों यमलोकवासियों एवं असुरों से मुक्त होगा तथा असंख्य मनुष्य और देवता, अनेक शतसहस्र श्रावक तथा अनेक शतसहस्र बोधिसत्त्व उसकी शोभा बढ़ाते रहेंगे । उसकी आयु बारह अन्तरकल्पों की होगी । उसका सद्धर्म बीस अन्तरकल्पों तक स्थित रहेगा और बीस ही अन्तरकल्पों तक उसके सद्धर्म का प्रतिरूप स्थित रहेगा ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, उस अवसर पर भगवान् ये गाथाएँ बोले--

शृणोथ मे भिक्षव अद्य सर्वे उदाहरन्तस्य गिरामनन्यथाम् ।
कात्यायनः स्थविरु अयं मि श्रावकः करिष्यते पूज विनायकानाम् ।।२५।।

हे भिक्षुओ ! तुम सब आज मेरी बात सुनो । आज मैं सच्चे ज्ञान का उपदेश दे रहा हूँ । यह मेरा श्रावक स्थविर कात्यायन विनायकों की पूजा करेगा ।

सत्कारु तेषां च बहुप्रकारं बहूविधं लोकविनायकानाम् ।
स्तूपांश्च कारापयि निर्वृतानां पुष्पेहि गन्धेहि च पूजयिष्यति ।।२६।।

वह इन विनायकों का अनेक प्रकार से तथा अनेक विधि से सत्कार करेगा । उनके निर्वाण प्राप्त कर लेने पर उनके स्तूप बनवायगा और उसकी फूल और गन्ध से पूजा करेगा ।

लभित्व सो पश्चिमकं समुच्छ्रयं परिशुद्धक्षेत्रस्मि जिनो भविष्यति ।
परिपूरयित्वा इममेव ज्ञानं देशेष्यते प्राणिसहस्रकोटिनाम् ।।२७।।

वह अन्तिम शरीर-धारण करके बुद्धक्षेत्र में बुद्ध होगा एवं इस ज्ञान को पूर्ण रूप से प्राप्त करके सहस्रों कोटि प्राणियों को इसका उपदेश देगा ।

स सत्कृतो लोकि सदेवकस्मिन् प्रभाकरो बुद्ध विभुर्भविष्यति ।
जाम्बूनदाभासु स चापि नाम्ना संतारको देवमनुष्यकोटिनाम् ।।२८।।

वह देवों-समेत इस संसार में सबके द्वारा सत्कृत सर्वशक्तिमान् बुद्ध होगा । उसका नाम जम्बूनदप्रभास होगा और वह करोड़ों देव और मनुष्यों का उद्धारक होगा ।

बहुबोधिसत्त्वास्तथ श्रावकाश्च अमिता असंख्यापि च तत्र क्षेत्रे ।
उपशोभयिष्यन्ति ति बुद्धशासनं भवप्रहीणा विभवाश्च सर्वे ।।२९।।

उस क्षेत्र में संसार से मुक्त एवं शक्तिसम्पन्न अमित एवं असंख्य अनेक बोधिसत्त्व और श्रावक होंगे । वे सभी बुद्ध के शासन की शोभा बढ़ायेंगे ।

अथ खलु भगवान् पुनरेव सर्वावन्तं भिक्षुसंघमामन्त्रयते स्म। आरोचयामि वो भिक्षवः प्रतिवेदयामि। अयं मम श्रावकः स्थविरो महामौद्गल्यायनोऽष्टाविंशतिबुद्धसहस्राण्या रागयिष्यति तेषां च बुद्धानां भगवतां विविधं सत्कारं करिष्यति गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां करिष्यति। परिनिर्वृतानां च तेषां बुद्धानां भगवतां स्तूपान् कारयिष्यति सप्तरत्नमयान्। तद् यथा सुवर्णस्य रूप्यस्य वैडूर्यस्य स्फटिकस्य लोहितमुक्तेरश्मगर्भस्य मुसारगल्वस्य। योजनसहस्रं समुच्छ्रयेण पञ्चयोजनशतानि परिणाहेन। तेषां च स्तूपानां विविधां पूजां करिष्यति पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावैजयन्तीभिः। ततश्च भूयः परेण परतरेण विंशतेर्बुद्धकोटीशतसहस्राणामेवंरूपमेव सत्कारं करिष्यति गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां करिष्यति। पश्चिम चात्मभावप्रतिलम्भे तमालपत्रचन्दनगन्धो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यति विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान्। मनोऽभिरामं च नामास्य तद्बुद्धक्षेत्रं भविष्यति। रतिप्रपूर्णश्च नाम स कल्पो भविष्यति। परिशुद्धं चास्य तद्बुद्धक्षेत्रं भविष्यति समं रमणीयं प्रासादिकं सुदर्शनीयं स्फटिकमयं रत्नवृक्षाभिविचित्रितं मुक्तकुसुमाभिकीर्णं बहुनरदेवप्रतिपूर्णमृषिशतसहस्रनिषेवितं यदुत श्रावकैश्च बोधिसत्त्वैश्च चतुर्विंशति चास्यान्तरकल्पानायुष्प्रमाणं भविष्यति। चत्वारिंशच्चान्तरकल्पान् सद्धर्मः स्थास्यति। चत्वारिंशदेवान्तरकल्पान् सद्धर्मप्रतिरूपकः स्थास्यति।

तत्पश्चात्, फिर भगवान् सम्पूर्ण भिक्षुसंघ से बोले——हे भिक्षुओ ! मैं तुमसे कहता हूँ, निवेदन करता हूँ कि यह मेरा श्रावक स्थविर महामौद्गल्यायन अट्ठाइस सहस्र बुद्धों को प्रसन्न करेगा और इन भगवान् बुद्धों का विधिवत् सत्कार, आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन तथा अपचायन करेगा। उनके परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर उन भगवान् बुद्धों के सुवर्ण, चाँदी, वैदूर्य, स्फटिक, लोहित, मुक्ता, अश्मगर्भ और मुसारगल्व इन सात रत्नों से युक्त स्तूप बनवायगा, जो दस हजार योजन ऊँचे और पाँच सौ योजन विस्तृत होंगे। उन स्तूपों की वह पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वजपताका एवं वैजयन्ती के द्वारा विधिवत् पूजा करेगा। तदनन्तर, उससे परे तथा उससे भी परे काल में भी वह शतसहस्र कोटि बुद्धों का उसी प्रकार सत्कार, आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन और अपचायन करेगा। अन्तिम शरीर-धारण की अवस्था में वह तमालपत्रचन्दनगन्ध नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत होकर ज्ञान एवं सदाचार से सम्पन्न सुगत लोकविद् श्रेष्ठ दमनयोग्य इन्द्रियों का नियन्ता, देवताओं एवं मनुष्यों का शासक भगवान् बुद्ध होगा। मनोभिराम नामक उसका वह बुद्धक्षेत्र होगा एवं उस कल्प का नाम रतिपूर्ण होगा। इसका वह बुद्धक्षेत्र पूर्ण, शुद्ध, चौरस, रमणीय, प्रासादिक, सुदर्शनीय, स्फटिकमय, रत्न

के वृक्षों से सुशोभित, मुक्ता के फलों से पूर्ण, अनेक मनुष्य और देवताओं से संकुल, सैकड़ों हजार ऋषियों से सेवित तथा श्रावकों और बोधिसत्त्वों से पूर्ण होगा। इनकी आयु चौबीस अन्तरकल्पों की होगी। चालीस अन्तरकल्पों तक सद्धर्म स्थित रहेगा एवं चालीस अन्तरकल्पों तक ही सद्धर्म का प्रतिरूप स्थित रहेगा।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तत्पश्चात् उस अवसर पर भगवान् ये गाथाएँ बोले—

मौद्गल्यगोत्रो मम श्रावकोऽयं जहित्व मानुष्यकमात्मभावम् ।
विंशत्सहस्राणि जिनान तायिनामन्यांश्च अष्टौ विरजान द्रक्ष्यति ।।३०।।

मौद्गल्यगोत्रीय यह श्रावक मनुष्य-शरीर छोड़ने के अनन्तर बीस हजार शक्तिशाली जिनों तथा अन्य आठ हजार निर्दोष प्राणियों के दर्शन करेगा ।

चरिष्यते तत्र च ब्रह्मचर्यं बौद्धं इमं ज्ञान गवेषमाणः ।
सत्कारु तेषां द्विपदोत्तमानां विविधं तदा काहि विनायकानाम् ।।३१।।

उनके संरक्षण में रहकर इस बुद्धज्ञान की प्राप्ति के लिए वह ब्रह्मचर्य का आचरण करेगा । मनुष्यों में श्रेष्ठ उन विनायकों का भी वह विविध प्रकार से सत्कार करेगा ।

सद्धर्मु तेषां विपुलं प्रणीतं धारेत्व कल्पान सहस्रकोट्यः ।
पूजां च स्तूपेषु करिष्यते तदा परिनिर्वृतानां सुगतान तेषाम् ।।३२।।

उनके द्वारा प्रणीत विपुल सद्धर्म को सहस्रों कोटि कल्पों तक धारण करेगा, तदनन्तर उन निर्वाणप्राप्त सुगतों के स्तूपों की पूजा करेगा ।

रत्नामयान् स्तूप सवैजयन्तान् करिष्यते तेष जिनोत्तमानाम् ।
पुष्पेहि गन्धेहि च पूजयन्तो वाद्येहि वा लोकहितानुकम्पिनाम् ।।३३।।

लोक के हितैषी तथा दयालु उन जिनश्रेष्ठ बुद्धों के, पताकाओं से युक्त रत्नमय स्तूप बनवायगा और उनकी पुष्प, गन्ध और वाद्य से पूजा करेगा ।

तत्पश्चिमे चैव समुच्छ्रयस्मिन् प्रियदर्शने तत्र मनोज्ञक्षेत्रे ।
भविष्यते लोकहितानुक्रम्पी तमालपत्रचन्दनगन्धनाम्ना ।। ४।।

अन्तिम शरीर-धारण की अवस्था में उस सुन्दर और मनोज्ञ क्षेत्र में लोक का हित तथा उसपर दया करनेवाला वह तमालपत्रचन्दनगन्ध नामक बुद्ध होगा ।

चतुर्विंशपूर्णान्तर कल्प तस्य आयुष्प्रमाणं सुगतस्य भेष्यति ।
प्रकाशयन्तस्यिम बुद्धनेत्रीं मनुजेषु देवेषु च नित्यकालम् ।।३५।

उस सुगत की आयु पूरे चौबीस अन्तरकल्पों की होगी और वह सदा मनुष्यों और देवताओं के बीच इस बुद्धज्ञान का उपदेश करेगा ।

बहुश्रावकास्तस्य जिनस्य तत्र कोटी सहस्रा यथ गङ्गवालिकाः ।
षड़भिज्ञ त्रैविद्यमहर्द्धिकाश्च अभिज्ञप्राप्ताः सुगतस्य शासने ॥३६॥

उस सुगत के शासन में वहाँ छह अभिज्ञाओं छ सम्पन्न, तीन विद्याओं से युक्त, अलौकिक शक्तिशाली तथा ज्ञानवान् गंगा की वालुका के समान सहस्र कोटि श्रावक होंगे ।

अवैवर्त्तिकाश्चो बहुबोधिसत्त्वा आरब्धवीर्याः सद संप्रजानाः ।
अभियुक्तरूपाः सुगतस्य शासने तेषां सहस्राणि बहूनि तत्र ॥३७॥

उस सुगत के शासन में अनेक सहस्र अवैवर्त्ती, प्रयत्नशील, ज्ञानवान् और अभियोगपूर्वक काम करनेवाले बोधिसत्त्व होंगे ।

परिनिर्वृतस्यापि जिनस्य तस्य सद्धर्मु संस्थास्यति तस्मि काले ।
विंशच्च विंशान्तरकल्प पूर्णा एतत्प्रमाणं प्रतिरूपकस्य ॥३८॥

उस समय उस जिन के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर पूर्ण चौबीस अन्तरकल्पों तक सद्धर्म स्थित रहेगा । बीस अन्तरकल्पों तक ही उस सद्धर्म का प्रतिरूप प्रतिष्ठित रहेगा ।

महर्द्धिकाः पञ्चमि श्रावका ये निर्दिष्ट ये ते मय अग्रबोधये ।
अनागतेऽध्वानि जिना स्वयंभुवस्तेषां च चर्या शृणुथा ममान्तिकात् ॥३९॥

महती एवं अलौकिक शक्ति से सम्पन्न ये मेरे पाँच शिष्य हैं, जिनको मैंने अग्रबोधि के लिए निर्दिष्ट किया है एवं जो भविष्य में स्वयम्भू बुद्ध बनेंगे । अब उनकी चर्या के विषय में मुझसे सुनो ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये व्याकरणपरिवर्तो नाम षष्ठः ॥६॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का व्याकरण नामक छठा परिवर्त समाप्त हुआ ।

पूर्वयोगपरिवर्तः

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतऽध्वन्यसंख्येयैः कल्पैरसंख्येयतरैर्विपुलैरप्रमेयैरचिन्त्यैरपरिमितैरप्रमाणैस्ततः परेण परतरेण यदासीत्तेन कालेन तेन समयेन महाभिज्ञाज्ञानाभिभूर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् संभवायां लोकधातौ महारूपे कल्पे । कियच्चिरोत्पन्नः स भिक्षवस्तथागतोऽभूत् । तद् यथापि नाम भिक्षवो यावानिह त्रिसाहस्रमहासाहस्रे लोकधातौ पृथिवीधातुस्तं कश्चिदेव पुरुषः सर्वं चूर्णीकुर्यान्मषिं कुर्यात् । अथ खलु स पुरुषस्तस्माल्लोकधातोरेकं परमाणुरजो गृहीत्वा पूर्वस्यां दिशि लोकधातुसहस्रमतिक्रम्य तदेकं परमाणुरज उपनिक्षिपेत् । अथ स पुरुषो द्वितीयं च परमाणुरजो गृहीत्वा ततः परेण परतरं लोकधातुसहस्रमतिक्रम्य द्वितीयं परमाणुरज उपनिक्षिपेत् । अनेन पर्यायेण स पुरुषः सर्वावन्तं पृथिवीधातुमुपनिक्षिपेत् पूर्वस्यां दिशि । तत् किं मन्यध्वे भिक्षवः शक्यं तेषां लोकधातूनामन्तो वा पर्यन्तो वा गणनयाधिगन्तुम् । त आहुः । नो हीदं भगवन्नो हीदं सुगत । भगवानाह । शक्यं पुनर्भिक्षवस्तेषां लोकधातूनां केनचिद् गणकेन वा गणकमहामात्रेण वा गणनया पर्यन्तोऽधिगन्तुं येषु वोपनिक्षिप्तानि तानि परमाणुरजांसि येषु वा नोपनिक्षिप्तानि । न त्वेव तेषां कल्पकोटीनयुतशतसहस्राणां शक्यं गणनायोगेन पर्यन्तोऽधिगन्तुम् । यावन्तः कल्पास्तस्य भगवतो महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्यैतावान् स कालोऽभूदेवमचिन्त्य एवमप्रमाणः । तं चाहं भिक्षवस्तथागतं तावच्चिरं परिनिर्वृतमनेन तथागतज्ञानदर्शनबलाधानेन यथाद्य श्वो वा परिनिर्वृतमनुस्मरामि ।

हे भिक्षुओ ! अतीत काल में, भूतपूर्व, असंख्य, असंख्येतर, विपुल, अप्रमेय, अचिन्त्य, अपरिमित एवं अप्रमाण कल्पों से परे एवं उससे भी परे जो समय था, उसी काल में, महारूप कल्प में महाभिज्ञाज्ञानाभिभू नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत इस सम्भवा नामक लोकधातु में उत्पन्न हुए । वे ज्ञान और आचरण से सम्पन्न, लोकाचार को जाननेवाले, श्रेष्ठ इन्द्रियों को वश में रखनेवाले, मनुष्यों और देवों के शासक स्वयं भगवान् बुद्ध थे । हे भिक्षुओ ! वे तथागत कितने दिनों पूर्व उत्पन्न हुए थे । इस त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु में जितनी भी पृथ्वीधातु है, कोई उन सबको चूर्ण करके धूलि

बना दे। उसके अनन्तर वह, चूर्ण की गई इस लोकधातु से एक परमाणु लेकर पूर्व दिशा में सहस्रों लोकधातुओं को पार करके उस परमाणु को रख दे। तदनन्तर, वह व्यक्ति दूसरे परमाणु-रजकण को लेकर उससे परे एवं उससे भी परे, सहस्रों लोकधातुओं को पार कर, उस दूसरे परमाणु कण को रख दे। इसी रीति से वह व्यक्ति उस सम्पूर्ण पृथ्वीधातु को पूर्व दिशा में रख दे। हे भिक्षुओ! तुम्हारी समझ से क्या लोकधातु के इन सम्पूर्ण कणों का गणना के द्वारा अन्त या पर्यन्त प्राप्त करना सम्भव है? वे बोले—हे भगवन्! यह सम्भव नहीं है। हे सुगत! यह सम्भव नहीं है। भगवान् ने कहा—हे भिक्षुओ! कोई गणक या गणकमहामात्र गणना द्वारा इन लोकधातुओं का अन्त या पर्यन्त पा सकता है, जिनमें ये परमाणु-कण रखे गये थे अथवा जिनमें नहीं रखे गये थे। परन्तु, उन कोटीनयुत शतसहस्र कल्पों के जो कल्प उन तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू के निर्वृत होने के अनन्तर व्यतीत हो चुके हैं, गणना के द्वारा अन्त पाना सम्भव नहीं है। वह काल इस प्रकार अचिन्त्य और इस प्रकार अप्रमाण था। किन्तु, हे भिक्षुओ! अपने तथागत-विषयक ज्ञान एवं दर्शन के प्रभाव से इतने चिरकाल पूर्व निर्वाण को प्राप्त हुए उन तथागत को मैं आज या कल परिनिर्वृत हुए के समान स्मरण करता हूँ। तदनन्तर, उस अवसर पर भगवान् ने ये गाथाएँ कहीं—

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

अभू अतीता बहु कल्पकोट्यो अनुस्मरामि द्विपदानमुत्तमम्।
अभिज्ञज्ञानाभिभुवं महामुनिमभूषि तत्कालमनुत्तमो जिनः ॥१॥

अनेक कोटि कल्प व्यतीत हो चुके हैं, फिर भी मनुष्यों में श्रेष्ठ महामुनि अभिज्ञाज्ञानाभिभू के विषय में, जो उस समय सर्वश्रेष्ठ जिन थे, मुझे पूरा-पूरा स्मरण है।

यथा त्रिसाहस्रिम लोकधातुं कश्चिद् रजं कुर्य अणुप्रमाणम्।
परमाणुमेकं च ततो गृहीत्वा क्षेत्रं सहस्रं गमियान निक्षिपेत् ॥२॥

जिस प्रकार कोई व्यक्ति इस त्रिसाहस्र लोकधातु को चूर्ण करके परमाणु बना दे और इनमें से एक-एक परमाणु को सहस्रों क्षेत्रों के पार जाकर रखे।

द्वितीयं तृतीयं पि च एव निक्षिपेत् सर्वं पि सो निक्षिपि तं रजो गतम्।
रिक्ता भवेता इय लोकधातुः सर्वश्च सो पांसु भवेत क्षीणः ॥३॥

उसी प्रकार दूसरे तथा तीसरे कण को भी रखे। इसी प्रकार, वह इन सम्पूर्ण रजकणों को रख दे। यह सम्पूर्ण लोकधातु खाली हो जाय और वे सारे कण समाप्त हो जायँ।

यो लोकधातूषु भवेत तासु पांसु रजो यस्य प्रमाणु नास्ति।
रजं करित्वान अशेषतस्तं लक्ष्यं ददे कल्पशते गते च ॥४॥

इन लोकधातुओं में जो रजकण होंगे, उनका प्रमाण नहीं है (वे असंख्य हैं)।

उन सम्पूर्ण रजकणों को उदाहरण के रूप में लेकर उन्हें बीते हुए सैकड़ों कल्पों का उपमान बनाता हूँ।

एवाप्रमेया बहु कल्पकोट्यः परिनिर्वृतस्य सुगतस्य तस्य ।
परमाणु सर्वे न भवन्ति लक्ष्यास्तावद्बहु क्षीण भवन्ति कल्पाः ।।५।।

इसी प्रकार, सुगत के परिनिर्वृत हुए भी अनेक करोड़ अप्रमेय कल्प बीत गये हैं । ये बीते हुए कल्प इतने अधिक हैं कि सम्पूर्ण परमाणु भी उनके उपमान नहीं हो सकते हैं।

तावच्चिरं निर्वृतु तं विनायकं तान् श्रावकांस्तांश्चपि बोधिसत्त्वान्।
एतादृशं ज्ञानु तथागतानां स्मरामि वृत्तं यथ अद्य श्वो वा ।।६।।

उस विनायक तथा उन श्रावकों एवं बोधिसत्त्वों को निर्वृत हुए दीर्घ काल हो गया है, किन्तु तथागतों के ज्ञान का प्रभाव ऐसा है कि मुझे लगता है कि जैसे यह घटना आज या कल हुई है।

एतादृशं भिक्षव ज्ञानमेतदनन्तज्ञानस्य तथागतस्य ।
बुद्धं मया कल्पशतैरनेकैः स्मृतीय सूक्ष्माय अनास्रवाय ।।७।।

हे भिक्षुओ ! अनन्त ज्ञानशाली तथागत का ज्ञान ऐसा है । मैं अपनी सूक्ष्म एवं आस्रवरहित स्मृति के द्वारा कई सौ कल्पों पूर्व की घटना को भी जान गया ।

तस्य खलु पुनर्भिक्षवो महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य चतुष्पञ्चाशत्कल्पकोटीनयुतशतसहस्राण्यायुष्प्रमाणमभूत् ।

पुनः हे भिक्षुओ ! इन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत महाभिज्ञाज्ञानाभिभू का आयुष्प्रमाण चौअन कल्पकोटीनयुत शतसहस्रावधिक था ।

पूर्वं त्र च भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोऽनभिसंबुद्धोऽनुत्तरां सम्यक्संबोधिं बोधिमण्डवराग्रगत एव सर्वां मारसेनां प्राभञ्जीत् पराजैषीत् प्रभञ्जयित्वा पराजयित्वानुत्तरां सम्यक् संबोधिमभिसंभोत्स्यामीति । न च तावत्तस्य ते धर्मा आमुखीभवन्ति स्म । स बोधिवृक्षमूले बोधिमण्ड एकमन्तरकल्पमस्थात् । द्वितीयमप्यन्तरकल्पमस्थात् न च तावदनुत्तरां सम्यक् संबोधिमभिसंबुध्यते । तृतीयमपि चतुर्थमपि पञ्चममपि षष्ठमपि सप्तममप्यष्टममपि नवममपि दशममप्यन्तरकल्पं बोधिवृक्षमूले बोधिमण्डेऽस्थात् सकृद्वर्तनेन पर्यङ्केनान्तरादव्युत्थितः । अनिञ्जमानेन चित्तेनाचलमानेनावेपमानेन कायेनास्थान्न च तावदस्य ते धर्मा आमुखीभवन्ति स्म ।

तस्य खलु पुनर्भिक्षवो भगवतो बोधिमण्डवराग्रगतस्य देवैस्त्रयस्त्रिंशैर्महासिंहासनं प्रज्ञप्तमभूद् योजनशतसहस्रसमुच्छ्रयेण यत्र स भगवान् निषद्यानुत्तरां सम्यक् संबोधिमभिसंबुद्धः । समनन्तरनिषण्णस्य च खलु पुनस्तस्य भगवतो बोधिमण्डे अथ ब्रह्मकायिका देवपुत्रा दिव्यं पुष्पवर्षमभिप्रवर्षयामासुर्बोधिमण्डस्य परिसामन्तकेन योजनशतमन्तरिक्षे च वातान् प्रमुञ्चन्ति ये तं जीर्णपुष्पसवकर्षयन्ति । यथाप्रवर्षितं च तत् पुष्पवर्षं तस्य भगवतो बोधिमण्डे निषण्णस्याव्युच्छिन्नं प्रवर्षयन्ति परिपूर्णान् दशान्तरकल्पांस्तं भगवन्तमभ्यवकिरन्ति स्म । तथा प्रवर्षितं च तत् पुष्पवर्षं प्रवर्षयन्ति यावत् परिनिर्वाणकालसमये तस्य भगवतस्तं भगवन्तमभ्यवकिरन्ति । चातुर्महाराजकायिकाश्च देवपुत्रा दिव्यां देवदुन्दुभिमभिप्रवादयामासुस्तस्य भगवतो बोधिमण्डवराग्रगतस्य सत्कारार्थमव्युच्छिन्नं प्रवादयामासुः परिपूर्णान् दशान्तरकल्पांस्तस्य भगवतो निषण्णस्य । तत उत्तरि तानि दिव्यानि तूर्याणि सततसमितं प्रवादयामासुर्यावत्तस्य भगवतो महापरिनिर्वाणकालसमयात् ।

पूर्वकाल में उन भगवान् तथागत महाभिज्ञाज्ञानाभिभू ने, जबकि उन्हें श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त नहीं हुई थी, बोधिमण्डप के श्रेष्ठ शिखर पर बैठे-ही-बैठे मार की सारी सेना को विच्छिन्न एवं पराजित कर दिया था; क्योंकि उन्होंने निश्चय कर लिया था कि मार को विच्छिन्न एवं पराजित करके ही मैं श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करूँगा । तबतक वे धर्म उनके सम्मुख प्रकाशित नहीं हुए थे । वे बोधिवृक्ष के मूल में स्थित बोधिमण्डप पर एक अन्तर कल्प तक बैठे रहे । दूसरे अन्तरकल्प में भी वे वहीं बैठे रहे, किन्तु फिर भी उन्हें सम्यक् सम्बोधि नहीं प्राप्त हुई । तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें, आठवें, नवें तथा दसवें अन्तरकल्पों में भी वे उसी बोधिवृक्ष के नीचे बोधिमण्डप पर पर्यंकासन की मुद्रा में निश्चल भाव से बीच में विना उठे हुए बैठे रहे । उस समय उनका चित्त एकाग्र एवं शरीर निश्चल एवं निष्कम्प था। तबतक भी वे धर्म उनके सम्मुख उपस्थित नहीं हुए थे ।

पुनः हे भिक्षुओ ! जबकि वे भगवान् बोधिमण्डप के श्रेष्ठ शिखर पर विराजमान थे, उसी समय त्रयस्त्रिंश देवताओं ने सौ हजार योजन ऊँचा एक विशाल सिंहासन बनाया । उसी पर बैठकर भगवान् ने श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की । पुनः भगवान् के बोधिमण्डप पर बैठते ही ब्रह्मकायिक देवपुत्रों ने बोधिमण्डप के चतुर्दिक् सौ योजन पर्यन्त दिव्य पुष्प बरसाये तथा अन्तरिक्ष में पवनों का संचार किया । वे सूखे हुए पुष्पों को उड़ा ले जाते थे । उन्होंने जिस प्रकार पुष्पवर्षा उस समय की थी, उसी प्रकार पुष्पवर्षा वे बोधिमण्डप पर बैठे हुए भगवान् के ऊपर अविच्छिन्न रूप से पूरे दस अन्तरकल्पों तक करके भगवान् को आच्छादित करते रहे। भगवान् के ऊपर इसी प्रकार की पुष्पवर्षा वे भगवान् के निर्वाणकाल के समय तक करके भगवान् को आच्छादित

करते रहे। चातुर्महाराजकायिक देवपुत्रों ने भी बोधिमण्डप के श्रेष्ठ शिखर पर बैठे हुए उन भगवान् के सत्कारार्थ दिव्य दुन्दुभि बजाई, और वे पूर्ण दस अन्तरकल्पों तक, जबतक भगवान् वहाँ बैठे रहे, तबतक उस दुन्दुभि को निरन्तर बजाते रहे। इसके अनन्तर भी वे उन दिव्य वाद्ययन्त्रों को भगवान् के परिनिर्वाण-काल के आगमन तक निरन्तर बजाते रहे।

अथ खलु भिक्षवो दशानामन्तरकल्पानामत्ययेन स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोऽर्हन् सम्यक् संबुद्धोऽनुत्तरां सम्यक् संबोधिमभिसंबुद्धः। समनन्तराभिसंबुद्धं च तं विदित्वा ये तस्य भगवतः कुमारभूतस्य षोडश पुत्रा अभूवन्नौरसा ज्ञानाकरो नाम तेषां ज्येष्ठोऽभूत्। तेषां च खलु पुनर्भिक्षवः षोडशानां राजकुमाराणामेकैकस्य च विविधानि क्रीडनकानि रामणीयकान्यभूवन् विचित्राणि दर्शनीयानि। अथ खलु भिक्षवस्ते षोडश राजकुमारास्तानि विविधानि क्रीडनकानि रामणीयकानि विसर्जयित्वा तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धमनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धं विदित्वा मातृभिर्धातृभिश्च रुदन्तीभिः परिवृताः पुरस्कृतास्तेन च महाराज्ञा चक्रवर्तिनार्यकेण महाकोशेन राजामात्यैश्च बहुभिश्च प्राणिकोटीनयुतशतसहस्रैः परिवृताः पुरस्कृता येन भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो बोधिमण्डवराग्रगतस्तेनोपसंक्रामन्ति स्म। तस्य भगवतः सत्कारार्थाय गुरुकारार्थाय माननार्थाय पूजनार्थायार्चनार्थायापचायनार्थायोपसंक्रान्ता उपसंक्रम्य तस्य भगवतः पादौ शिरोभिर्वन्दित्वा तं भगवन्तं त्रिष्प्रदक्षिणीकृत्याञ्जलिं प्रगृह्य तं भगवन्तं संमुखमाभिर्गाथाभिः सारूप्याभिरभिष्टुवन्ति स्म।

हे भिक्षुओ! दस अन्तरकल्पों के बीत जाने पर अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू ने सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की। उन भगवान् के कुमारभूत सोलह औरस पुत्र थे, जिनमें ज्ञानाकर सबसे बड़ा था। पुनः हे भिक्षुओ! उन सोलह राजकुमारों में प्रत्येक के पास अनेक रमणीय विचित्र एवं दर्शनीय खिलौने थे। तदनन्तर हे भिक्षुओ! उनके सम्बोधि प्राप्त करते ही वे सोलह राजकुमार उन अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त जानकर अपने उन विविध तथा सुन्दर खिलौनों को फेंककर रोती हुई माताओं तथा धाइयों से घिरे हुए, चक्रवर्त्ती एवं महाकोशसम्पन्न महाराज आर्यक के द्वारा पुरस्कृत तथा अनेक राजमन्त्रियों एवं कोटीनयुत शतसहस्र जीवों से परिवृत एवं पुरस्कृत होकर जिस ओर अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू बोधिमण्डप के श्रेष्ठ शिखर पर विराजमान थे, उसी ओर दौड़े हुए पहुँचे। वे वहाँ उन भगवान् के निकट उनका सेवा-सत्कार, सम्मान, पूजन, अर्चन एवं अपचायन करने गये थे। वे निकट पहुँचकर भगवान् के चरणों में नतमस्तक होकर वन्दना करके उन भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा की तथा हाथ जोड़कर सम्मुख विराजमान भगवान् की इन सुन्दर गाथाओं द्वारा स्तुति करने लगे—

महाभिषट्कोऽसि अनुत्तरोऽसि अनन्तकल्पैः समदागतोऽसि ।
उत्तारणार्थायिह सर्वदेहिनां परिपूर्ण संकल्पु अयं ति भद्रकः ॥८॥

तुम महान् वैद्य हो । तुमसे कोई बड़ा नहीं है और तुम अनन्त कल्पों के अनन्तर अवतीर्ण हुए हो । सभी देहधारियों को संसार से मोक्ष दिलाने का तुम्हारा यह अत्यन्त कल्याणमय संकल्प पूर्ण हो गया ।

सुदुष्करा अन्तरकल्पिमान् दश कृतानि एकासनि संनिषद्य ।
न च तेऽन्तरा कायु कदाचि चालितो न हस्तपादं न पि चान्यदङ्गम् ॥९॥

इन दस अन्तरकल्पों तक एक आसन पर बैठकर तुमने अत्यन्त दुष्कर कार्य किया है । इस बीच में तुम्हारा शरीर एक बार भी नहीं हिला और न तुम्हारे हाथ-पैर ही हिले और न अन्य अंग ही ।

चित्तं पि ते शान्तगतं सुसंस्थितमनिञ्ज्यभूतं सद अप्रकम्प्यम् ।
विक्षेपु नैवास्ति कदाचिपि तव अत्यन्तशान्तस्थितु त्वं अनास्रवः ॥१०॥

तुम्हारा चित्त भी शान्त, सुसंस्थित, निश्चल एवं निष्कम्प था एवं तुम्हारे चित्त में किसी प्रकार का विक्षेप नहीं था एवं आस्रवों से मुक्त तुम अत्यन्त शान्त भाव से स्थित रहे ।

दिष्ट्यासि क्षेमेण च स्वस्तिना च अविहेठितः प्राप्त इमाग्रबोधिम् ।
अस्माकमृद्धी इयमेवरूपा दिष्ट्या च वर्धाम नरेन्द्रसिंह ॥११॥

यह भाग्य की बात है कि तुमने क्षेम तथा कुशलतापूर्वक अग्रबोधि प्राप्त कर ली है । हे नरेन्द्रसिंह! हमारे लिए यह कितने सौभाग्य की बात है कि हमने इस प्रकार की यह समृद्धि प्राप्त की है तथा वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं ।

अनायिकेयं प्रज सर्वदुःखिता उत्पाटिताक्षी व निहीनसौख्या ।
मार्गं न जानन्ति दुखान्तगामिनं न मोक्षहेतोर्जनयन्ति वीर्यम् ॥१२॥

नेता के अभाव में यह प्रजा अत्यन्त दुःखी है, नेत्रों से हीन व्यक्ति के समान सभी सुखों से वंचित हैं । ये दुःखों का अन्त करानेवाले मार्ग भी नहीं जानते एवं मोक्षप्राप्ति के लिए प्रयत्न भी नहीं करते ।

अपाय वर्धन्ति च दीर्घरात्रं दिव्याश्च कायाः परिहाणधर्माः ।
न श्रूयते जातु जिनान शब्दस्तमोऽन्धकारो अयु सर्वलोकः ॥१३॥

बहुत समय से भय बढ़ रहे हैं और श्रेष्ठ व्यक्ति अपने धर्म से च्युत हो रहे हैं । जबतक जिनों के शब्द नहीं सुनाई पड़ते, तबतक सारा संसार घोर अन्धकार में निमग्न रहता है ।

प्राप्तं च ते लोकविदू इहाद्य शिवं पदं उत्तमनास्रवं च ।
वयं च लोकश्च अनुगृहीतः शरणं च त्वा एति व्रजाम नाथ ॥१४॥

हे लोकविद् ! आज यहाँ तुम्हें कल्याणमय उत्तम एवं निष्पाप पद प्राप्त हुआ है। हम एवं यह लोक आपके अनुगृहीत हैं और हे स्वामिन् ! हम अपनी रक्षा के लिए आपकी शरण में आ रहे हैं ।

अथ खलु भिक्षवस्ते षोडश राजकुमाराः कुमारभूता एव बालकास्त भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धमाभिः सारूप्याभिर्गाथाभिः संमुखमभिष्टुत्य तं भगवन्तमध्येषन्ते स्म । धर्मचक्रप्रवर्त्तनतायै देशयतु भगवान् धर्मं देशयतु सुगतो धर्मं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां च मनुष्याणां च । तस्यां च वेलायामिमा गाथा अभाषन्त ।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! वे कुमारभूत सोलह राजकुमार, जो बालक-तुल्य थे, सम्मुख वर्त्तमान अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू की उन सुन्दर गाथाओं द्वारा स्तुति करके पुनः भगवान् की प्रार्थना करने लगे । भगवान् धर्मचक्र के प्रवर्त्तन के लिए धर्म की देशना करें । हे सुगत ! 'बहुजनहिताय', 'बहुजनसुखाय' लोकानुकम्पा के लिए, महान् जनसमुदाय के लिए एवं देवताओं तथा मनुष्यों के हित एवं सुख के लिए धर्म की देशना करें । इस अवसर पर उन्होंने ये गाथाएँ कहीं—

देशेहि धर्मं शतपुण्यलक्षणा विनायका अप्रतिमा महर्षे
लब्धं ति ज्ञानं प्रवरं विशिष्टं प्रकाशया लोकि सदेवकस्मिन् ॥१५॥

हे महर्षे ! सैकड़ों पवित्र लक्षणों से युक्त अद्वितीय नायक ! आप धर्म का उपदेश करें । आपने जो श्रेष्ठ एवं विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है, उसे देवों-समेत इस लोक में प्रकाशित करें ।

अस्मांश्च तारेहि इमांश्च सत्त्वान् निदर्शय ज्ञानु तथागतानाम् ।
यथा वयं पि इममग्रबोधिं अनु प्राप्नुयामोऽथ इमे च सत्त्वाः । १६ ।

हमारा उद्धार करो, इन जीवों को तथागत के ज्ञान का उपदेश दो, जिससे हम तथा ये जीव भी श्रेष्ठ अग्रबोधि को प्राप्त कर सकें ।

चर्यां च ज्ञानं पि च सर्व जानसि अध्याशयं पूर्वकृतं च पुण्यम् ।
अधिमुक्ति जानासि च सर्वप्राणिनां प्रवर्तया चक्रवरं अनुत्तरम् ॥१७॥ इति ।

तुम हमारी चर्या, ज्ञान, अध्याशय एवं पूर्वकृत पुण्य सबको जानते हो; सभी प्राणियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति को भी जानते हो, (अतः) श्रेष्ठ धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करो ।

तेन खलु पुनर्भिक्षवः समयेन तेन भगवता महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवा तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेनानुत्तरां सम्यकसंबोधिमभिसंबुध्यमानेन दशसु दिक्ष्वेकैकस्यां दिशि पञ्चाशल्लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्राणि षड्विकारं प्रकम्पितान्यभूवन् महता चावभासेन स्फुटान्यभूवन्। सर्वेषु च तेषु लोकधातुषु या लोकान्तरिकास्तासु य अक्षणाः संवृता अन्धकारतमिस्रा यत्रेमावपि चन्द्रसूर्यावेवं महर्द्धिकावेवं महानुभावावेवं महौजस्कावाभयाप्याभां नानुभवतो वर्णेनापि वर्णं तेजसापि तेजो नानुभवतः। तास्वपि तस्मिन् समये महतोऽवभासस्य प्रादुर्भावोऽभूत्। येऽपि तासु लोकान्तरिकासु सत्त्वा उपपन्नास्तेऽप्यन्योन्यमेवं पश्यन्त्यन्योन्यमेवं संजानन्ति। अन्येऽपि बत भोः सत्त्वाः सन्तीहोपपन्नाः। अन्येऽपि बत भोः सत्त्वाः सन्तीहोपपन्ना इति। सर्वेषु च तेषु लोकधातुषु यानि देवभवनानि देवविमानानि च यावद् ब्रह्मलोकात् षड्विकारं प्रकम्पितान्यभूवन् महता चावभासेन स्फुटान्यभूवन्नतिक्रम्य देवानां देवानुभावम्। इति हि भिक्षवस्तस्मिन् समये तेषु लोकधातुषु महतः पृथिवीचालस्य महतश्चोदारिकस्यावभासस्य लोके प्रादुर्भावोऽभूत्।

पुनः हे भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू के श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करते ही दसों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में वर्त्तमान पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातु छह प्रकार से प्रकम्पित हुए एवं महान् प्रकाशपुंज से प्रकाशित हो उठे। उन सभी लोकधातुओं में जो लोकान्तरिकाएँ थीं, जिनमें सर्वदा घोर अन्धकार छाया रहता था एवं जहाँ ये इतने तेजस्वी, प्रभावशाली तथा इतने महान् ओजस्वी सूर्य और चन्द्रमा भी अपने प्रकाश से प्रकाश का अनुभव नहीं करते थे। वर्ण से वर्ण का एवं तेज से तेज का अनुभव नहीं करते थे, उनमें भी उस समय महान् प्रकाश का प्रादुर्भाव हो गया। उन लोकान्तरिकाओं में जो भी जीव वर्त्तमान थे, वे एक दूसरे को को देखने एवं पहचानने लगे और आश्चर्यपूर्वक कहने लगे—देखो, दूसरे जीव भी यहाँ वर्त्तमान हैं। उन सभी लोकधातुओं में ब्रह्मलोक तक वर्त्तमान जितने देव-भवन और देव-विमान थे, वे छह प्रकार से काँप उठे एवं देवताओं के प्रभाव का अतिक्रमण करनेवाले महान् प्रकाश से प्रकाशित हो सठे। हे भिक्षुओ! इस प्रकार उस समय उन लोकधातुओं में वर्त्तमान लोकों में महान् भूकम्प तथा विशाल एवं विस्तृत प्रकाश का प्रादुर्भाव हुआ।

अथ पूर्वस्यां दिशि तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु यानि ब्राह्माणि विमानानि तान्यतीव भ्राजन्ति तपन्ति विराजन्ति श्रीमन्त्योजस्वीनि च। अथ खलु भिक्षवस्तेषां महाब्रह्मणामेतदभवत्। इमानि खलु पुनर्ब्राह्माणि विमानान्यतीव भ्राजन्ति तपन्ति विराजन्ति श्रीमन्त्योजस्वीनि च। कस्य

खल्विदं पूर्वनिमित्तं भविष्यतीति । अथ खलु भिक्षवस्तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु ये महाब्रह्माणस्ते सर्वेऽन्योन्यभवनानि गत्वारोचयामासुः ।

इसके अनन्तर पूर्व दिशा में उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं में जो ब्राह्म विमान थे, वे भी उस प्रकाश में अत्यधिक उद्दीप्त, तप्त, विभाजित, शोभासम्पन्न एवं ओजस्वी हो गये । हे भिक्षुओ ! उन महाब्रह्माओं के मन में यह विचार आया कि जो ये ब्राह्म विमान अतीव उद्दीप्त, तप्त, विराजित, शोभासम्पन्न एवं ओजस्वी हो रहे हैं, यह किस घटना का पूर्वनिमित्त हो सकता है ? हे भिक्षुओ ! उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं में जो महाब्रह्मा थे, वे सभी एक दूसरे के भवन में जाकर एक दूसरे से पूछने लगे ।

अथ खलु भिक्षवः सर्वसत्त्वत्राता नाम महाब्रह्मा तं महान्तं ब्रह्मगणं गाथाभिरध्यभाषत ।

हे भिक्षुओ ! तदनन्तर, सर्वसत्त्वत्राता नामक महाब्रह्मा उस विशाल ब्रह्मसमुदाय में इन गाथाओं द्वारा बोले---

अतीव नो हर्षित अद्य सर्वे विमानश्रेष्ठा इमि प्रज्वलन्ति ।
श्रिया द्युतीया च मनोरमा ये किं कारणं ईदृशु भेष्यतेऽद्य ।।१८।।

आज हमें अत्यन्त हर्ष है कि ये सभी श्रेष्ठ विमान शोभा और प्रकाश से युक्त होकर सुन्दर लग रहे हैं एवं प्रज्वलित हो रहे हैं । क्या कारण है कि आज ऐसी घटना हो रही है ।

साधु गवेषामथ एतमर्थं को देवपुत्रो उपपन्नु अद्य ।
यस्यानुभावो अयमेवरूपो अभूतपूर्वो अयमद्य दृश्यते ।।१९।।

हमलोग इस विषय की अच्छी तरह गवेषणा करें कि आज कौन-सा देवपुत्र उत्पन्न हुआ है, जिसका यह अभूतपूर्व प्रभाव आज इस प्रकार दिखलाई पड़ रहा है ।

यदि वा भवेद् बुद्ध नरेन्द्रराजा उत्पन्नु लोकस्मि कहिंचिदद्य ।
यस्यो निमित्तं इममेवरूपं श्रिया दशो दिक्षु ज्वलन्ति अद्य ।।२०।।

हो सकता है, इस संसार में कहीं पर राजाओं में श्रेष्ठ बुद्ध उत्पन्न हुए हों । जिस कारण इस प्रकार के ये निमित्त दीख पड़ रहे हैं । आज दसों दिशाएँ प्रकाश से जगमगा रही हैं ।

अथ खलु भिक्षवस्तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतश सहस्रेषु ये महाब्रह्माणस्ते सर्वे सहिताः समग्रास्तानि दिव्यानि स्वानि स्वानि ब्राह्माणि विमानान्यभिरुह्य दिव्यांश्च सुमेरुमात्रान् पुष्पपुटान् गृहीत्वा चतसृषु दिक्ष्वनुचंक्रमन्तो-

ऽनुविचरन्तः पश्चिमं दिग्भागं प्रक्रान्ताः । अद्राक्षुः खलु पुनस्तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु भिक्षवस्ते महाब्रह्माणः पश्चिमे दिग्भागे तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं बोधिमण्डवराग्रगतं बोधिवृक्षमूले सिंहासनोपविष्टं परिवृतं पुरस्कृतं देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्यैस्तैश्च पुत्रैः षोडशभी राजकुमारैरध्येष्यमाणं धर्मचक्रप्रवर्तनतायै । दृष्ट्वा च पुनर्येन स भगवांस्तेनोपसंक्रान्ताः । उपसंक्रम्य तस्य भगवतः पादौ शिरोभिर्वन्दित्वा तं भगवन्तमनेकशतसहस्रकृत्वः प्रदक्षिणीकृत्य तैश्च सुमेरुमात्रैः पुष्पपुटैस्तं भगवन्तमभ्यवकिरन्ति स्माभिप्रकिरन्ति स्म तं तं च बोधिवृक्षं दशयोजनप्रमाणम् । अभ्यवकीर्य तानि ब्राह्माणि विमानानि तस्य भगवतो निर्यातयामासुः । परिगृह्णातु भगवानिमानि ब्राह्माणि विमानान्यस्माकमनुकम्पामुपादाय । परिभुञ्जतु सुगत इमानि ब्राह्माणि विमानान्यस्माकमनुकम्पामुपादाय ।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं में जो महाब्रह्मा वर्त्तमान थे, वे सभी मिलकर शीघ्र अपने-अपने दिव्य ब्राह्म विमानों में चढ़कर सुमेरु के समान विशाल दिव्य पुष्पपुटों को लेकर चारों दिशाओं में भ्रमण एवं विचरण करते हुए पश्चिम दिशा में पहुँचे । पुनः हे भिक्षुओ ! उन महाब्रह्माओं में उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं में पश्चिम दिशा में बोधिवृक्ष के नीचे बोधिमण्डप के श्रेष्ठ शिखर पर, सिंहासन पर विराजमान देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य एवं मनुष्येतर प्राणियों के द्वारा परिवृत एवं पुरस्कृत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू को देखा । उस समय भगवान् के पुत्र वे सोलह राजकुमार धर्मचक्र-प्रवर्तन के लिए उनकी अभ्यर्थना कर रहे थे । उन्हें देखकर जिधर भगवान् थे, उधर ही वे गये । निकट जाकर वे उन भगवान् के चरणों में मस्तक झुकाकर उन भगवान् की अनेक शतसहस्र बार परिक्रमा की एवं सुमेरु के समान विशाल पुष्पपुटों में लाये गये फूलों की वर्षा भगवान् पर करने लगे । दस योजन विस्तृत बोधिवृक्ष पर भी पुष्पों की वर्षा करने लगे । पुष्पों की वर्षा करके उन्होंने अपने उन ब्राह्म विमानों को भगवान् की सेवा में अर्पित कर दिया एवं उनसे प्रार्थना की कि हे भगवन् ! आप हम पर दया करके इन ब्राह्म विमानों को ग्रहण करें। हे सुगत ! हम पर अनुकम्पा करके इन ब्राह्म विमानों का आप उपभोग करें ।

अथ खलु भिक्षवस्ते महाब्रह्माणस्तानि स्वानि स्वानि विमानानि तस्य भगवतो निर्यात्य तस्यां वेलायां तं भगवन्तं संमुखमाभिर्गाथाभिः सारूप्याभिरभिष्टुवन्ति स्म ।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! वे महाब्रह्मा अपने-अपने उन विमानों को भगवान् की सेवा

में समर्पित कर उस समय सम्मुख वर्त्तमान उन भगवान् की इन सुन्दर गाथाओं के द्वारा प्रार्थना करने लगे--

आश्चर्यभूतो जिन अप्रमेयो उत्पन्न लोकस्मि हितानुकम्पी ।
नाथोऽसि शास्तासि गुरू सिजातो अनुग्रहीता दशिमा दिशोऽद्य ।।२१।।

आश्चर्यभूत, अप्रमेय एवं लोकों का हित चाहने तथा उनपर दया करनेवाले तुम इस संसार में जिन के रूप में उत्पन्न हुए हो तथा संसार के स्वामी, शासक एवं गुरु हो। तुम्हारे उत्पन्न होने से आज सारी दिशाएँ अनुगृहीत हो उठी हैं।

पञ्चाशती कोटिसहस्रपूर्णा या लोकधातून इतो भवन्ति ।
यतो वयं वन्दन आगता जिनं विमानश्रेष्ठान् प्रजहित्व सर्वशः ।।२२।।

यहाँ से दूर जो पचास कोटि सहस्र लोकधातुएँ हैं, वहाँ से अपने श्रेष्ठ विमानों का पूर्णरूप से त्याग करके हमलोग बुद्ध की वन्दना करने के लिए यहाँ आये हैं ।

पूर्वेण कर्मेण कृतेन अस्मिन् विचित्रचित्रा हि इमे विमाना। ।
प्रतिगृह्य अस्माकमनुग्रहार्थं परिभुञ्जतां लोकविदू यथेष्टम् ।।२३।।

पूर्वजन्म में किये गये अच्छे कर्मों के फलस्वरूप इस जन्म में ये चित्र-विचित्र विमान हमें प्राप्त हुए हैं । हे लोकविद् ! हम पर अनुग्रह करके उन्हें स्वीकार करें तथा इनका यथेष्ट उपभोग करें ।

अथ खलु भिक्षवस्ते महाब्रह्माणस्तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं संमुखमाभिः सारूप्याभिर्गाथाभिरभिष्टुत्य तं भगवन्तमेतदूचुः । प्रवर्त्तयतु भगवान् धर्मचक्रं प्रवर्त्तयतु सुगतो धर्मचक्रं लोके देशयतु भगवान् निर्वृतिं तारयतु भगवान् सत्त्वाननुगृह्णातु भगवानिमं लोकं देशयतु भगवान् धर्मस्वामी धर्ममस्य लोकस्य समारकस्य सब्रह्मकस्य सश्रमणब्राह्मणिकायाः प्रजायाः सदेवमानुषासुरायाः । तद् भविष्यति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकास्यस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां च मनुष्याणां च ।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! वे महाब्रह्मा सम्मुख वर्त्तमान अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू की इन सुन्दर गाथाओं से स्तुति करके उन भगवान् से इस प्रकार बोले--हे भगवन् ! धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करें, हे सुगत ! संसार में धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करें, हे भगवन् ! निर्वाण की देशना करें, हे भगवन् ! जीवों का उद्धार करें, हे भगवन् ! इस लोक को अपना उपदेश दें । धर्म के स्वामी भगवन् ! मारों तथा ब्रह्माओं से युक्त इस सम्पूर्ण लोक तथा श्रमण ब्राह्मणिक देवता, मनुष्य और असुरों-समेत सारी प्रजा को धर्मोपदेश दें, जो 'बहुजनहिताय', बहुजनसुखाय', लोकानुकम्पा के लिए एवं महान् जनसमुदाय तथा देवों और मनुष्य के हित एवं सुख के लिए होगा।

अथ खलु भिक्षवस्तानि पञ्चाशद्ब्रह्मकोटीनयुतशतसहस्राण्येकस्वरेण समसंगीत्या तं भगवन्तमाभिः सारूप्याभिर्गाथाभिरध्यभाषन्त ।

इसके अनन्तर हे भिक्षुओ ! वे पचास कोटीनयुत शतसहस्र ब्रह्मा मिलकर एक स्वर से भगवान् से इन सुन्दर गाथाओं द्वारा बोले---

देशेहि भगवन् धर्मं देशेहि द्विपदोत्तम ।
मैत्रीबलं च देशेहि सत्त्वांस्तारेहि दुःखितान् ।।२४।।

हे भगवन् ! देशना करें । हे मनुष्यों में श्रेष्ठ ! धर्म की देशना करें । मैत्री की शक्ति की देशना करें एवं दुःखी जीवों का उद्धार करें ।

दुर्लभो लोकप्रद्योतः पुष्पमौदुम्बरं यथा ।
उत्पन्नोऽसि महावीर अध्येषामस्तथागतम् ।।२५।।

लोक को प्रकाश देनेवाले आप गूलर के फूल के समान दुर्लभ हैं । हे महावीर ! आप संयोग से उत्पन्न हुए हैं, अतः हम आप तथागत की प्रार्थना करते हैं ।

अथ खलु भिक्षवः स भगवांस्तेषां महाब्रह्मणां तूष्णीम्भावेनाधिवासयति स्म ।

हे भिक्षुओ ! तदनन्तर, भगवान् ने मौन द्वारा उन महाब्रह्माओं के प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान की ।

तेन खलु पुनर्भिक्षवः समयेन पूर्वदक्षिणे दिग्भागे तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु यानि ब्राह्माणि विमानानि तान्यतीव भ्राजन्ति तपन्ति विराजन्ति श्रीमन्त्योजस्वीनि च । अथ खलु भिक्षवस्तेषां ब्रह्मणामेतदभवत् । इमानि खलु पुनर्ब्राह्माणि विमानान्यतीव भ्राजन्ति तपन्ति विराजन्ति श्रीमन्त्योजस्वीनि च । कस्य खल्विदं पूर्वनिमित्तं भविष्यतीति । अथ खलु भिक्षवस्तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु ये महाब्रह्माणस्तेऽपि-सर्वेऽन्योन्यभवनानि गत्वारोचयामासुः । अथ खलु भिक्षवोऽधिमात्रकारुणिको नाम महाब्रह्मा तं महान्तं ब्रह्मगणं गाथाभिरध्यभाषत ।

पुनः हे भिक्षुओ ! उस समय पूर्व-दक्षिण दिशा में वर्त्तमान उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं में जो ब्राह्म विमान थे, वे अत्यधिक उद्दीप्त, तप्त, विराजित शोभासम्पन्न एवं ओजस्वी हो गये । तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! उन ब्रह्माओं के मन में ऐसा विचार हुआ, जो ये ब्राह्म विमान अत्यधिक उद्दीप्त, तप्त, विराजित, शोभासम्पन्न एवं ओजस्वी हो रहे हैं, वह घटना किस बात का पूर्वनिमित्त है । तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातु में जो महाब्रह्मा थे, वे सभी एक दूसरे के

घर जाकर इस बात की पूछताछ करने लगे । तत्पश्चात्, हे भिक्षुओ ! तब अधिमात्रकारुणिक नामक महाब्रह्मा उस महान् ब्रह्मसमुदाय से इन गाथाओं के द्वारा बोले—

कस्य पूर्वनिमित्तेन मारिषा अद्य दृश्यते ।
विमानाः सर्वि भ्राजन्ति अधिमात्रं यशस्विनः ।।२६।।

हे मित्रो ! आज यह किस (बात) का पूर्वनिमित्त दिखाई दे रहा है, कि ये सभी स्वभावतः तेजस्वी विमान आज अत्यधिक प्रकाशित हो रहे हैं ।

यदि वा देवपुत्रोऽद्य पुण्यवन्त इहागतः ।
यस्येमे अनुभावेन विमानाः सर्वि शोभिताः ।।२७।।

सम्भवतः, कोई पुण्यात्मा देवपुत्र आज यहाँ उत्पन्न हुआ है, जिसके प्रभाव से य सभी विमान सुशोभित हो रहे हैं ।

अथ वा बुद्ध लोकेऽस्मिन्नुत्पन्नो द्विपदोत्तमः ।
अनुभावेन यस्याद्य विमान इमि ईदृशाः ।।२८।।

अथवा, मनुष्यों में श्रेष्ठ बुद्ध इस संसार में उत्पन्न हुए हैं, जिनके प्रभाव से आज ये विमान इस प्रकार प्रकाशित हो रहे हैं ।

सहिताः सर्वि मार्गामो नैतत् कारणमल्पकम् ।
न खल्वेतादृशं पूर्वं निमित्तं जातु दृश्यते ।।२९।।

हम सभी मिलकर इसका पता लगायें; क्योंकि इस घटना का कोई छोटा कारण नहीं हो सकता । इस तरह का पूर्वनिमित्त कभी अकारण नहीं दिखलाई पड़ता है ।

चतुर्दिशं प्रपद्यामो अन्चामः क्षेत्रकोटियो ।
व्यक्तं लोकेऽद्य बुद्धस्य प्रादुर्भावो भविष्यति ।।३०।।

हमलोग चारों दिशाओं में जाकर करोड़ों क्षेत्रों का भ्रमण करें । यह स्पष्ट है कि आज संसार में बुद्ध का प्रादुर्भाव होगा ।

अथ खलु भिक्षवस्तान्यपि पञ्चाशद्ब्रह्मकोटीनयुतशतसहस्राणि तानि स्वानि स्वानि दिव्यानि ब्राह्माणि विमानान्यभिरुह्य दिव्यांश्च सुमेरुमात्रान् पुष्पपुटान् गृहीत्वा चतसृषु दिक्ष्वनुचंक्रमन्तोऽनुविचरन्त उत्तरपश्चिमं दिग्भागं प्रक्रान्ताः । अद्राक्षुः खलु पुनर्भिक्षवस्ते महाब्रह्माण उत्तरपश्चिमे दिग्भागे तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं बोधिमण्डवराग्रगतं बोधिवृक्षमूले सिंहासनोपविष्टं परिवृतं पुरस्कृतं देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्यैस्तैश्च पुत्रैः षोडशभी राजकुमारैरध्येष्यमाणं धर्मचक्रप्रवर्तनतायै । दृष्ट्वा च पुनर्येन स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोऽ-

र्हन् सम्यक्संबुद्धस्तेनोपसंक्रान्ताः। उपसंक्रम्य च तस्य भगवतः पादौ शिरोभिर्वन्दित्वा तं भगवन्तमनेकशतसहस्रकृत्वः प्रदक्षिणीकृत्य तैः सुमेरुमात्रैः पुष्पपुटैस्तं भगवन्तमभ्यवकिरन्ति स्माभिप्रकिरन्ति स्म तं च बोधिवृक्षं दशयोजनप्रमाणम्। अभ्यवकीर्य तानि ब्राह्माणि विमानानि तस्य भगवतो निर्यातयामासुः। परिगृह्णातु भगवानिमानि ब्राह्माणि विमानान्यस्माकमनुकम्पामुपादाय। परिभुञ्जतु सुगत इमानि ब्राह्माणि विमानान्यस्माकमनुकम्पामुपादाय।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! वे पचास कोटीनयुत शतसहस्र ब्रह्मा भी उन अपने-अपने दिव्य विमानों पर चढ़कर सुमेरु-तुल्य दिव्य पुष्पपुटों को लेकर चारों दिशाओं में भ्रमण एवं विचरण करते हुए उत्तर-पश्चिम दिशा में चले गये। उन महाब्रह्माओं ने उत्तर-पश्चिम दिशा में उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं में बोधिवृक्ष के नीचे बोधिमण्डप के श्रेष्ठ शिखर पर स्थित सिंहासन पर विराजमान अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू को देखा। उस समय देव, नाग, यक्ष, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य एवं मनुष्येतर प्राणी उन्हें आदरपूर्वक घेरकर बैठे हुए थे तथा वे सोलहों राजकुमार धर्मचक्र को प्रवर्त्तित करने के लिए उनकी अभ्यर्थना कर रहे थे। वे लोग उन्हें इस प्रकार देखकर जिधर भगवान् थे, उधर ही गये। निकट जाकर उन्होंने उन भगवान् के चरणों में मस्तक झुकाकर, भगवान् की अनेक शतसहस्र बार परिक्रमा की एवं वे भगवान् पर सुमेरु के समान पुष्पपुटों में लाये गये फूलों की वर्षा करने लगे। उन्होंने दस योजन विस्तृत बोधिवृक्ष पर भी पुष्पों की वर्षा की। पुष्पों की वर्षा करने के पश्चात् उन्होंने उन ब्राह्म विमानों को भगवान् की सेवा में समर्पित करते हुए प्रार्थना की कि हे भगवन् ! हम पर दया करके इन ब्राह्म विमानों को ग्रहण करें। हे सुगत ! हम पर अनुकम्पा करके इन ब्राह्म विमानों का आप उपभोग करें।

अथ खलु भिक्षवस्ते महाब्रह्माणस्तानि स्वानि स्वानि विमानानि तस्य भगवतो निर्यात्य तस्यां वेलायां तं भगवन्तं संमुखमाभिः सारूप्याभिर्गाथाभिरभिष्टुवन्ति स्म।

तत्पश्चात्, हे भिक्षुओ ! वे महाब्रह्मा अपने-अपने उन विमानों को भगवान् की सेवा में समर्पित कर उस समय सम्मुख वर्तमान भगवान् की इन सुन्दर गाथाओं के द्वारा स्तुति करने लगे।

नमोऽस्तु ते अप्रतिमा महर्षे देवातिदेवा कलविङ्कसुस्वरा।
विनायका लोकि सदेवकस्मिन् वन्दामि ते लोकहितानुकम्पी ॥३१॥

देवों के देव ! अद्वितीय महर्षे ! कलविंक के समान मधुर स्वरवाले तुम्हें नमस्कार हैं। देवों-समेत इस लोक के नायक एवं जीवों का हित तथा उनपर दया करनेवाले तुम्हें मैं प्रणाम करता हूँ।

आश्चर्यभतोऽसि कथंचिलोके उत्पन्नु अद्यो सुचिरेण [नाथ] ।
कल्पान पूर्णा शत शून्य आसीदशीति बुद्धैरयु जीवलोकः ।।३२।।

हे स्वामिन् ! तुम संसारवालों के लिए आश्चर्य के विषय हो, आज दीर्घ काल के अनन्तर किसी प्रकार संसार में उत्पन्न हुए हो । पूर्ण अस्सी सौ कल्पों तक यह जीवलोक बुद्धों से शून्य था ।

शून्यश्च आसीद्द्विपदोत्तमेहिं अपायभूमी तद उत्सदासि ।
दिव्याश्च कायाः परिहायिषू तदा अशीतिकल्पान शता सुपूर्णा ।।३३।।

यह संसार मनुष्यों में श्रेष्ठ आपसे शून्य था । उस समय पूर्ण अस्सी सौ कल्पों तक यहाँ नरक का साम्राज्य था और दिव्य शरीरधारी व्यक्ति अवनत दशा में थे ।

सो दानि चक्षुश्च गतिश्च लेनं त्राणं पिता चो तथ बन्धुभूतः ।
उत्पन्नु लोकस्मि हितानुकम्पी अस्माक पुण्यैरिह धर्मराजा ।।३४।।

आपही हमारी आँखें, गति, विश्रामभूमि, शरण, पिता, एवं भाई-बन्धु हैं । हे धर्मराज ! सबका हित एवं सब पर दया करनेवाले आप हमारे ही पुण्यों के फलस्वरूप इस संसार में उत्पन्न हुए हैं ।

अथ खलु भिक्षवस्ते महाब्रह्माणस्तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्सबुद्धं संमुखमाभिः सारूप्याभिर्गाथाभिरभिष्टुत्य तं भगवन्तमेतदूचुः । प्रवर्त्तयतु भगवान् धर्मचक्रं प्रवर्त्तयतु सुगतो धर्मचक्रं लोके देशयतु भगवान् निर्वृतिं तारयतु भगवान् सत्त्वान् अनुगृह्णातु भगवानिमं लोकं देशयतु भगवान् धर्मस्य लोकस्य समारकस्य सब्रह्मकस्य सश्रमणब्राह्मणिकायाः प्रजायाः सदेवमानुषासुरायाः । तद् भविष्यति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां च मनुष्याणां च ।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! वे महाब्रह्मा सम्मुख वर्त्तमान अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू की इन सुन्दर गाथाओं से स्तुति करके उन भगवान् से बोले—भगवन् ! धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करें। सुगत ! संसार में धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करें । भगवन्, निर्वाण की देशना करें। भगवन् ! जीवों का उद्धार करें । भगवन् ! इस लोक पर अनुग्रह करें । हे भगवन् ! आप धर्म के स्वामी हैं, अतः मारों तथा ब्रह्माओं-समेत इस सम्पूर्ण लोक को तथा श्रमण, ब्राह्मणिक तथा देवता, मनुष्य एवं असुरों के समेत इस सारी प्रजा को धर्मोपदेश दें । वह उपदेश 'बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय' लोकानुकम्पा के लिए एवं महान् जनसमुदाय के लिए तथा देवों और मनुष्यों के हित एवं सुख के लिए होगा ।

अथ खलु भिक्षवस्तानि पञ्चाशद्ब्रह्मकोटीनयुतशतसहस्राण्येकस्वरेण समसंगीत्या तं भगवन्तमाभ्यां सारूप्याभ्यां गाथाभ्यामध्यभाषन्त ।

इसके अनन्तर, हे भिक्षुओ ! उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र ब्रह्माओं ने मिलकर एक स्वर से उन भगवान् की इन दो सुन्दर गाथाओं द्वारा प्रार्थना की—

प्रवर्त्तया चक्रवरं महामुने प्रकाशया धर्मु दशादिशासु ।
तारेहि सत्त्वान् दुखधर्मपीडितान् प्रामोद्यहर्षं जनयस्व देहिनाम् ॥३५॥

हे महामुने ! श्रेष्ठ धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करें एवं दसों दिशाओं में धर्म को प्रकाशित करें, दुःखदायी धर्मों से पीडित जीवों का उद्धार करें तथा शरीरधारियों के हृदय में आनन्द एवं हर्ष उत्पन्न करें ।

यं श्रुत्व बोधीय भवेयु लाभिनो दिव्यानि स्थानानि व्रजेयु चापि ।
हायेयु चो आसुरकाय सर्वे शान्ताश्च दान्ताश्च सुखी भवेयुः ॥३६॥

जिसे सुनकर सभी प्राणी बोधि को प्राप्त करें तथा दिव्य स्थानों को जायें एवं अपने असुरकार्य को छोड़ दें तथा शान्त एवं सुखी हो जायें ।

अथ खलु भिक्षवः स भगवांस्तेषामपि महाब्रह्मणां तूष्णींभावेनाधिवासयति स्म ।

हे भिक्षुओ ! तत्पश्चात् भगवान् ने मौन द्वारा उन महाब्रह्माओं के प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान की ।

तेन खलु पुनर्भिक्षवः समयेन दक्षिणस्यां दिशि तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु यानि ब्राह्माणि विमानानि तान्यतीव भ्राजन्ति तपन्ति विराजन्ति श्रीमन्त्योजस्वीनि च । अथ खलु भिक्षवस्तेषां महाब्रह्मणामेतदभवत् । इमानि खलु पुनर्ब्राह्माणि विमानान्यतीव भ्राजन्ति तपन्ति विराजन्ति श्रीमन्त्योजस्वीनि च । कस्य खल्विदमेवंरूपं पूर्वनिमित्तं भविष्यति । अथ खलु भिक्षवस्तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु ये महाब्रह्माणस्ते सर्वेऽन्योन्यभवनानि गत्वारोचयामासुः । अथ खलु भिक्षवः सुधर्मो नाम महाब्रह्मा तं महान्तं ब्रह्मगणं गाथाभ्यामध्यभाषत ।

पुनः हे भिक्षुओ ! उस समय दक्षिण दिशा में उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं में जो ब्राह्म विमान थे, वे भी अत्यधिक उद्दीप्त, तप्त, विराजित, शोभासम्पन्न एवं ओजस्वी हो गये । तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! उन महाब्रह्माओं के मन में ऐसा विचार हुआ । ये ब्राह्म विमान अत्यधिक उद्दीप्त, तप्त, विराजित, शोभासम्पन्न और ओजस्वी हो गये हैं । यह घटना किस बात का पूर्वनिमित्त है, ऐसा उन्होंने सोचा । तत्पश्चात् हे भिक्षुओ ! उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं में जो महाब्रह्मा थे,

वे सभी एक दूसरे के घर जाकर इस बात की पूछताछ करने लगे। तत्पश्चात्, हे भिक्षुओ! सुधर्म नामक महाब्रह्मा इस महान् ब्रह्मसमुदाय से इन दो गाथाओं के द्वारा बोले—

नाहेतु नाकारणमद्य मार्षाः सर्वे विमाना इह जाज्वलन्ति ।
निमित्त दर्शेन्ति ह किम्पि लोके साधु गवेषाम तमेतमर्थम् ।।३७।।

हे मित्रो ! विना किसी कारण या विना किसी हेतु के आज ये सभी विमान प्रकाशित हो रहे हैं। ये निश्चित रूप से इस संसार में होनेवाले किसी निमित्त की सूचना दे रहे हैं। हमलोग इस विषय की अच्छी तरह गवेषणा करें।

अनून कल्पान शत ह्यतीता नैतादृशं जातु निमित्तमासीत् ।
यदि वोपपन्नो इह देवपुत्रो उत्पन्नु लोके यदि वेह बुद्धः ।।३८।।

सैकड़ों कल्पों से कम समय नहीं वीता है, किन्तु इस तरह का निमित्त कभी नहीं देखा गया है। या तो यहाँ कोई देवपुत्र उत्पन्न हुआ है या स्वयं बुद्ध उत्पन्न हुए हैं।

अथ खलु भिक्षवस्तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु ये महाब्रह्माणस्ते सर्वे सहिताः समग्रास्तानि दिव्यानि स्वानि स्वानि ब्राह्माणि विमानान्यभिरुह्य दिव्यांश्च सुमेरुमात्रान् पुष्पपुटान् गृहीत्वा चतसृषु दिक्ष्वनुचंक्रमन्तोऽनुविचरन्त उत्तरं दिग्भागं प्रक्रान्ताः। अद्राक्षुः खलु पुनर्भिक्षवस्ते महाब्रह्माण उत्तरं दिग्भागं तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं बोधिमण्डवराग्रगतं बोधिवृक्षमूले सिंहासनोपविष्टं परिवृतं पुरस्कृतं देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्यैस्तैश्च पुत्रैः षोडशभी राजकुमारैरध्येष्यमाणं धर्मचक्रप्रवर्त्तनतायै। दृष्ट्वा च पुनर्येन स भगवांस्तेनोपसंक्रान्ताः। उपसंक्रम्य तस्य भगवतः पादौ शिरोभिर्वन्दित्वा तं भगवन्तमनेकशतसहस्रकृत्वः प्रदक्षिणीकृत्य तैः सुमेरुमात्रैः पुष्पपुटैस्तं भगवन्तमभ्यवकिरन्ति स्माभिप्रकिरन्ति स्म। तं च बोधिवृक्षं दशयोजनप्रमाणम् अभ्यवकीर्य तानि ब्राह्माणि दिव्यानि विमानानि तस्य भगवतो निर्यातयामासुः। परिगृह्णातु भगवानिमानि ब्राह्माणि विमानान्यस्माकमनुकम्पामुपादाय। परिभुञ्जतु सुगत इमानि ब्राह्माणि विमानान्यस्माकमनुकम्पामुपादाय ।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ! वे पचास कोटीनयुत शतसहस्र ब्रह्मा भी उन अपने-अपने विमानों पर चढ़कर सुमेरुतुल्य विशाल एवं दिव्य पुष्पपुटों को लेकर चारों दिशाओं में भ्रमण एवं विचरण करते हुए उत्तर दिशा में पहुँचे। उन महाब्रह्माओं ने उत्तर दिशा में उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं में बोधिवृक्ष के नीचे बोधि-

मण्डप के श्रेष्ठ शिखर पर स्थित सिंहासन पर विराजमान अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञानाभिभू को देखा। देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य तथा मनुष्येतर प्राणी उन्हें आदरपूर्वक घेरकर बैठ थे तथा भगवान् के वे सोलहों राजकुमार धर्मचक्र को प्रवर्त्तित करने के लिए उनकी अभ्यर्थना कर रहे थे। ऐसा देखकर वे जिधर भगवान् थे, उधर ही गये। निकट जाकर उन्होंने भगवान् के चरणों में मस्तक झुकाकर उन भगवान् की अनेक शतसहस्र बार परिक्रमा की तथा वे सुमेरु के समान विशाल पुष्पपुटों में लाये गये फूलों की वर्षा भगवान् पर करने लगे। दस योजन विस्तृत बोधिवृक्ष पर भी उन्होंने पुष्पों की वर्षा की। पुष्पों की वर्षा करके उन्होंने उन ब्राह्म विमानों को भगवान् की सेवा में समर्पित कर दिये एवं प्रार्थना की—भगवन्! हम पर दया करके उन ब्राह्म विमानों को ग्रहण करें। सुगत! हम पर अनुकम्पा करके इन ब्राह्म विमानों का उपभोग करें।

अथ खलु भिक्षवस्तेऽपि महाब्रह्माणस्तानि स्वानि स्वानि विमानानि तस्य भगवतो निर्यात्य तस्यां वेलायां तं भगवन्तं संमुखमाभिः सारूप्याभिर्गाथाभिरभिष्टुवन्ति स्म।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ! वे महाब्रह्मा अपने-अपने उन विमानों को भगवान् की सेवा में समर्पित करके उस समय सम्मुख वर्त्तमान उन भगवान् की इन सुन्दर गाथाओं से प्रार्थना करने लगे—

सुदुर्लभं दर्शन नायकानां स्वभ्यागतं ते भवरागमर्दन।
सुचिरस्य ते दर्शनमद्य लोके परिपूर्णकल्पान शतेभि दृश्यसे ।।३९।।

नायकों के दर्शन अत्यन्त दुर्लभ हैं। सांसारिक मोह को नष्ट करनेवाले आपका स्वागत है। दीर्घ काल के अनन्तर इस संसार में आपके दर्शन हुए हैं। आज आप पूरे सौ कल्पों के अनन्तर दीख पड़े हैं।

तृषितां प्रजां तर्पय लोकनाथ अदृष्टपूर्वोऽसि कथंचि दृश्यसे।
औदुम्बरं पुष्प यथैव दुर्लभं तथैव दृष्टोऽसि कथंचि नायक ।।४०।।

हे लोकनाथ! प्यासी प्रजा को सन्तुष्ट करें। आपको आजतक किसी ने नहीं देखा है। अतः, आप आसानी से नहीं दिखाई पड़ते। जिस प्रकार गूलर का फूल दुर्लभ है, आसानी से नहीं दिखाई पड़ता, उसी प्रकार हे नायक! आप भी आज किसी प्रकार दिखाई पड़े हैं।

विमान अस्माकमिमा विनायक तवानुभावेन विशोभिताद्य।
परिगृह्य एतानि समन्तचक्षुः परिभुञ्ज चास्माकमनुग्रहार्थम् ।।४१।।

हे विनायक! हमारे ये विमान आज आपके ही प्रभाव से विशेष रूप से सुशोभित हो रहे हैं। सर्वत्र दृष्टि रखनेवाले भगवन्! हमलोगों पर कृपा करके इन्हें स्वीकार करें एवं इनका उपभोग करें।

अथ खलु भिक्षवस्ते महाब्राह्मणस्तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्सबुद्धं संमुखमाभिः सारूप्याभिर्गाथाभिरभिष्टुत्य तं भगवन्तमेतदूचुः । प्रवर्त्तयतु भगवान् धर्मचक्रं लोके देशयतु भगवान् निर्वृतिं तारयतु भगवान् सत्त्वाननुगृह्णातु भगवानिमं लोके देशयतु भगवान् धर्मस्य लोकस्य समारकस्य सब्रह्मकस्य सश्रमणब्राह्मणिकायाः प्रजायाः सदेवमानुषासुरायाः । तद् भविष्यति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां च मनुष्याणां च ।

तत्पश्चात्, हे भिक्षुओ ! वे महाब्रह्मा सम्मुख वर्त्तमान अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू को इन सुन्दर गाथाओं से स्तुति करके उन भगवान् से बोले—भगवन् ! धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करें । सुगत ! संसार में धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करें । भगवन् ! निर्वाण की देशना करें । भगवन् ! जीवों का उद्धार करें । भगवन्, इस लोक को देशना करें । धर्म के स्वामी भगवन् ! मारों तथा ब्राह्माओं-समेत इस सम्पूर्ण लोक तथा श्रामण और ब्राह्मणिक एवं देवता, मनुष्य और असुरों-समेत सारी प्रजा को धर्मोपदेश दें । वह धर्मोपदेश, वहुजनहिताय, वहुजनसुखाय, लोकानुकम्पा के लिए एवं महान् जनसमुदाय तथा देवों और मनुष्यों के हित एवं सुख के लिए होगा ।

अथ खलु भिक्षवस्तानि पञ्चाशद्ब्रह्मकोटीनयुतशतसहस्राण्येकस्वरेण समसंगीत्या तं भगवन्तमाभ्यां सारूप्याभ्यां गाथाभ्यामध्यभाषन्त ।

इसके अनन्तर, हे भिक्षुओ ! वे पचास कोटीनयुत शतसहस्र ब्रह्मा मिलकर एक स्वर में उन भगवान् से इन दो सुन्दर गाथाओं द्वारा बोले—

देशेहि धर्मं भगवन् विनायक प्रवर्त्तया धर्ममयं च चक्रम् ।
निर्नादया धर्ममयं च दुन्दुभिं त धर्मशङ्खं च प्रपूरयस्व ।।४२।।

हे भगवन् ! धर्म की देशना करें ! हे विनायक ! धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करें, धर्मदुन्दुभि को वजायें तथा धर्मशंख का उद्घोष करें ।

सद्धर्मवर्षं वर्षयस्व लोके वल्गुस्वरं भाष सुभाषितं च ।
अध्येषितो धर्ममुदीरयस्व मोचेहि सत्त्वानयुतान कोट्यः ।।४३।।

संसार में सद्धर्म की वर्षा करें तथा मधुर स्वर-सम्पन्न अपने सदुपदेश को सुनायें तथा लोगों द्वारा अपेक्षित धर्म की घोषणा करें और कोटिनयुत जीवों को मुक्त करें ।

अथ खलु भिक्षवः स भगवांस्तेषां महाब्रह्मणां तूष्णींभावेनाधिवासयति स्म । पेयालम् । एवं दक्षिणपश्चिमायां दिश्येवं पश्चिमायां दिश्येवं पश्चिमोत्तरस्यां दिश्येवमुत्तरस्यां दिश्येवमुत्तरपूर्वस्यां दिश्येवमधोदिशि ।

हे भिक्षुओ ! तत्पश्चात् भगवान् ने मौन द्वारा उन महाब्रह्माओं के प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान की। ऐसी ही घटना दक्षिण-पश्चिम दिशा में, ऐसी ही घटना पश्चिम दिशा में, ऐसी ही घटना पचिमोत्तर दिशा में, ऐसी ही घटना उत्तर दिशा में, ऐसी ही घटना पूर्व दिशा में तथा ऐसी ही घटना अधोदिशा में हुई ।

अथ खलु भिक्षव ऊर्ध्वायां दिशि तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु यानि ब्राह्माणि विमानानि तान्यतीव भ्राजन्ति तपन्ति विराजन्ति श्रीमन्त्योजस्वीनि च । अथ खलु भिक्षवस्तेषां महाब्रह्मणामेतदभवत् । इमानि खलु पुनर्ब्राह्माणि विमानान्यतीव भ्राजन्ति तपन्ति विराजन्ति श्रीमन्त्योजस्वीनि च । कस्य खल्विदमेवंरूपं पूर्वनिमित्तं भविष्यतीति । अथ खलु भिक्षवस्तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु ये महाब्रह्माणस्ते सर्वेऽन्योन्यभवनानि गत्वारोचयामासुः। अथ खलु भिक्षवः शिखी नाम महाब्रह्मा तं महान्तं ब्रह्मगणं गाथाभिरध्यभाषत ।

तदनन्तर, ऊर्ध्व दिशा में उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं में जो ब्राह्मविमान थे, वे अत्यधिक उद्दीप्त, तप्त, विराजित, शोभासम्पन्न एवं ओजस्वी हो गये। हे भिक्षुओ! उन महाब्रह्माओं के मन में यह विचार आया कि चूँकि ये ब्राह्म विमान अतीव उद्दीप्त, तप्त विराजित, शोभासम्पन्न एवं ओजस्वी हो रहे हैं। यह अवश्य ही किसी घटना का पूर्वनिमित्त है । हे भिक्षुओ ! उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं में जो महाब्रह्मा थे, वे सभी एक दूसरे के भवन में जाकर एक दूसरे से पूछने लगे। हे भिक्षुओ ! इसके अनन्तर शिखी नामक महाब्रह्मा उस विशाल ब्रह्मा-समुदाय से ये गाथाएँ बोले--हे मित्रो ! इसका क्या कारण है कि आज सभी विमान अत्यधिक प्रकाशित हो उठे हैं ।

कि कारणं मार्ष इदं भविष्यति येना विमानानि परिस्फुटानि ।
ओजेन वर्णेन द्युतीय चापि अधिमात्रवृद्धानि किमत्र कारणम् ।।४४।।

क्या कारण है कि इन विमानों का ओज, वर्ण एवं सौभाग्य अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त हो रहा है ।

न ईदृशं नो अभिदृष्टपूर्वं श्रुतं च केनो तथ पूर्व आसीत् ।
ओजस्फुटानि यथ अद्य एता अधिमात्र भ्राजन्ति किमत्र कारणम् ।।४५।।

आज से पहले ऐसी घटना न कभी किसी ने देखी थी और न सुनी थी । इसका क्या कारण है कि आज ये विमान विशेष रूप से प्रकाशित एवं अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं ।

यदि वा नु कश्चिद्भवि देवपुत्र शुभेन कर्मेण समन्वितो इह ।
उपपन्नु तस्यो अयमानुभावो यदि वा भवेद् बुद्ध कदाचि लोके ।।४६।।

संभव है, अपने शुभ कर्मों से समन्वित कोई देवपुत्र यहाँ उत्पन्न हुआ है और उसी का यह प्रभाव प्रकट हो रहा है। सम्भवतः स्वयं बुद्ध इस संसार में उत्पन्न हुए हैं।

अथ खलु भिक्षवस्तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु ये महाब्रह्माणस्ते सर्वे सहिताः समग्रास्तानि दिव्यानि स्वानि स्वानि ब्राह्माणि विमानान्यभिरुह्य दिव्यांश्च सुमेरुमात्रान् पुष्पपुटान् गृहीत्वा चतसृषु दिक्ष्वनुचंक्रमन्तोऽनुविचरन्तो येनाधोदिग्भागस्तेनोपसंक्रान्ताः। अद्राक्षुः खलु पुनर्भिक्षवस्ते महाब्रह्माणोऽधोदिग्भागे तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं बोधिमण्डवराग्रगतं बोधिवृक्षमूले सिंहासनोपविष्टं परिवृतं पुरस्कृतं देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्यैस्तैश्च पुत्रैः षोडशभी राजकुमारैरध्येष्यमाणं धर्मचक्रप्रवर्त्तनतायै। दृष्ट्वा च पुनर्येन स भगवांस्तेनोपसंक्रान्ताः। उपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरोभिर्वन्दित्वा तं भगवन्तमनेकशतसहस्रकृत्वः प्रदक्षिणीकृत्य तैः सुमेरुमात्रैः पुष्पपुटैस्तं भगवन्तमभ्यवकिरन्ति स्माभिप्रकिरन्ति स्म तं च बोधिवृक्षं दशयोजनप्रमाणम्। अभ्यवकीर्य तानि दिव्यानि स्वानि स्वानि ब्राह्माणि विमानानि तस्य भगवतो निर्यातयामासुः। प्रतिगृह्णातु भगवानिमानि ब्राह्माणि विमानान्यस्माकमनुकम्पामुपादाय। परिभुञ्जतु सुगत इमानि ब्राह्माणि विमानान्यस्माकमनुकम्पामुपादायेति।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ! पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं में जो महाब्रह्मा थे, वे सभी मिलकर शीघ्र अपने-अपने दिव्य ब्राह्म विमानों पर चढ़कर सुमेरु के समान विशाल दिव्य पुष्पपुटों को लेकर चारों दिशाओं में भ्रमण एवं विचरण करते हुए अधोदिशा की ओर चल पड़े। पुनः हे भिक्षुओ! उन महाब्रह्माओं ने अधोदिशा में उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं में बोधिवृक्ष के नीचे, बोधिमण्डप के श्रेष्ठ शिखर पर स्थित सिंहासन पर विराजमान अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू को देखा। देव, नाग, यक्ष, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य एवं मनुष्येतर प्राणी उन्हें उस समय आदरपूर्वक घेरे हुए थे एवं भगवान् के वे सोलह राजकुमार धर्मचक्र के प्रवर्त्तन के लिए उनकी अभ्यर्थना कर रहे थे। ऐसा देखकर वे जिधर भगवान् थे, उधर ही गये। निकट जाकर उन्होंने उन भगवान् के चरणों में मस्तक झुकाकर उन भगवान् की अनेक शतसहस्र बार परिक्रमा की एवं वे सुमेरु के समान विशाल पुष्पपुटों में लाये गये फूलों की भगवान् पर वर्षा करने लगे तथा दस योजन विस्तृत बोधिवृक्ष पर भी पुष्पों की वर्षा करने लगे। पुष्पों की वर्षा करके उन्होंने वे ब्राह्म विमान भगवान् की सेवा में समर्पित कर दिये और प्रार्थना की कि हे भगवन्! हम पर दया करके इन ब्राह्म विमानों को ग्रहण करें, हे सुगत! हम पर अनुकम्पा करके इन ब्राह्म विमानों का उपभोग करें।

अथ खलु भिक्षवस्तेऽपि महाब्रह्माणस्तानि स्वानि स्वानि विमानानि तस्य भगवतो निर्यात्य तस्यां वेलायां तं भगवन्तं संमुखमाभिः सारूप्याभिर्गाथाभिरभिष्टुवन्ति स्म ।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! वे महाब्रह्मा अपने-अपने उन विमानों को भगवान् की सेवा में समर्पित कर उस समय सम्मुख वर्त्तमान उन भगवान् की इन सुन्दर गाथाओं के द्वारा प्रार्थना करने लगे——

साधुदर्शन बुद्धानां लोकनाथान तायिनाम् ।
त्रैधातुकस्मि बुद्धा वं सत्त्वानां ये प्रमोचकाः ।।४७।।

संसार के स्वामी इन शक्तिशाली बुद्धों का दर्शन कितना सुन्दर है। इस त्रैधातुक संसार में एकमात्र बुद्ध ही ऐसे हैं, जो यहाँ रहनेवाले जीवों को मुक्ति दिलाते हैं।

समन्तचक्षु लोकेन्द्रा व्यवलोकेन्ति दिशो दश ।
विररित्वामृतद्वारमोतारेन्ति बहून् जनान् ।।४८।।

चारों ओर दृष्टि डालनेवाले ये लोकों के स्वामी दसों दिशाओं में देखते हैं तथा मोक्ष का द्वार खोलकर बहुत-से लोगों का उद्धार कर रहे हैं।

शून्या अचिन्तियाः कल्पा अतीताः पूर्वि ये अभूः ।
अदर्शना जिनेन्द्राणां अन्धा आसीद्दिशो दश ।।४९।।

पूर्वकाल में बीते हुए असंख्य कल्पों में इन बुद्धों के अभाव में ये सर्वथा शून्य थे तथा दसों दिशाएँ अन्धकार से पूर्ण थीं।

वर्धन्ति नरकास्तीव्रास्तिर्यग्योनिस्तथासुराः ।
प्रेतेषु चोपपद्यन्ते प्राणिकोट्यः सहस्रशः ।।५०।।

उस समय भयंकर नारकीय, दुष्ट पशु एवं असुर बढ़ रहे थे एवं सहस्रों कोटि प्राणी प्रेतयोनि में उत्पन्न हो रहे थे।

दिव्याः कायाश्च हीयन्ते च्युता गच्छन्ति दुर्गतिम् ।
अश्रुत्वा धर्म बुद्धानां गत्येषां भोति पापिका ।।५१।।

दिव्य शरीरधारी व्यक्तियों का अभाव हो रहा था तथा वे गिरकर दुर्गति को प्राप्त होते थे। बुद्धों के उपदेश का श्रवण न करने के कारण इन लोगों को इस प्रकार पापपूर्ण गति प्राप्त होती थी।

चर्याशुद्धिगतिप्रज्ञा हीयन्ते सर्वप्राणिनाम् ।
सुखं विनश्यती तेषां सुखसंज्ञा च नश्यति ।।५२।।

सभी प्राणियों की चर्या, शुद्धि, गति और प्रज्ञा नष्ट हो रही थी एवं उनका सुख नष्ट हो रहा था। यहाँतक कि संसार से सुख का नाम भी मिट रहा था।

अनाचाराश्च ते भोन्ति असद्धर्मे प्रतिष्ठिताः ।
अदान्ता लोकनाथेन दुर्गतिं प्रपतन्ति ते ।।५३।।

वे झूठे धर्मों का आश्रय लेकर दुराचारी हो रहे थे तथा लोकों के स्वामी बुद्ध का उपदेश न पाकर दुर्गति को प्राप्त हो रहे थे ।

दृष्टोऽसि लोकप्रद्योत सुचिरेणासि आगतः ।
उत्पन्नु सर्वसत्त्वानां कृतेन अनुकम्पकः ।।५४।।

संसार को प्रकाश देनेवाले आप अत्यन्त दीर्घ काल के अनन्तर इस संसार में आये हैं। सभी जीवों पर दया करनेवाले आप सभी जीवों के हित के लिए ही उत्पन्न हुए हैं ।

दिष्ट्या क्षेमेण प्राप्तोऽसि बुद्धज्ञानमनुत्तरम् ।
वयं ते अनुमोदामो लोकश्चैव सदेवकः ।।५५।।

भाग्य से ही आपने श्रेष्ठ बुद्ध ज्ञान को कुशलतापूर्वक प्राप्त कर लिया है । देवों समत वह लोक एवं हम आपके कार्य का अनुमोदन करते हैं।

विमानानि सुचित्राणि अनुभावेन ते विभो ।
ददाम ते महावीर प्रतिगृह्ण महामुने ।।५६।।

हे विभो ! आपके ही प्रभाव से ये विमान चमक उठे हैं । हे महावीर ! हमलोग उन्हें आपकी सेवा में अर्पित कर रहे हैं । हे महामुने ! उन्हें स्वीकार करें ।

अस्माकमनुकम्पार्थं परिभुञ्ज विनायक ।
वयं च सर्वसत्त्वाश्च अग्रां बोधिं स्पृशेमहि ।।५७।।

हे विनायक ! हम पर कृपा करके इनका उपभोग करें । ऐसा करें कि हम तथा ये सभी जीव अग्रबोधि को प्राप्त कर सकें ।

अथ खलु भिक्षवस्ते महाब्रह्माणस्तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं संमुखमाभिः सारूप्याभिर्गाथाभिरभिष्टुत्य तं भगवन्तमेतदूचुः । प्रवर्त्तयतु भगवान् धर्मचक्रं प्रवर्त्तयतु सुगतो धर्मचक्रं देशयतु भगवान् निर्वृतिं तारयतु भगवान् सर्वसत्त्वाननुगृह्णातु भगवानिमं लोकं देशयतु भगवान् धर्ममस्य लोकस्य समारकस्य सब्रह्मकस्य सश्रमणब्राह्मणिकायाः प्रजायाः सदेवमानुषासुरायाः । तद् भविष्यति बहुजनहिताय बहुजनखासुय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां च मनुष्याणां च ।

तत्पश्चात्, हे भिक्षुओ ! वे महाब्रह्मा सम्मुख वर्तमान अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू की इन सुन्दर गाथाओं से स्तुति करके उन भगवान् से बोले—हे भगवन् ! धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करें ! हे सुगत ! संसार में धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करें । भगवन् ! निर्वाण की देशना करें । भगवन्! जीवों का उद्धार करें । भगवन्! इस लोक की देशना करें । धर्म के स्वामी भगवन्! मारों तथा ब्रह्माओं-समेत इस सम्पूर्ण लोक, श्रमण, ब्राह्मणिक तथा देवता, मनुष्य एवं असुरों-समेत सारी प्रजा को धर्मोपदेश दें । वह उपदेश 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' लोकानुकम्पा के लिए एवं महान् जनसमुदाय तथा देवों और मनुष्यों के हित एवं सुख के लिए होगा ।

अथ खलु भिक्षवस्तानि पञ्चाशद्ब्रह्मकोटीनयुतशतसहस्राण्येकस्वरेण समसंगीत्या तं भगवन्तमाभ्यां सारूप्याभ्यां गाथाभ्यामध्यभाषन्त।

इसके अनन्तर, हे भिक्षुओ ! वे पचास कोटीनयुत शतसहस्र ब्रह्मा मिलकर एक स्वर से उन भगवान् से इन दो सुन्दर गाथाओं द्वारा बोले—

प्रवर्त्तया चक्रवरमनुत्तरं पराहनस्वा अमृतस्य दुन्दुभिम् ।
प्रमोचया दुःखशतैश्च सत्त्वान् निर्वाणमार्गं च प्रदर्शयस्व ।।५८।।

अलौकिक एवं श्रेष्ठ चक्र का प्रवर्त्तन करें । मोक्ष प्राप्त करानेवाली दुन्दुभि को बजायें, जीवों को सैकड़ों दुःखों से उद्धार करें तथा उन्हें निर्वाण का मार्ग दिखायें ।

अस्माभिरध्येषितु भाष धर्ममस्माननुगृह्ण इमं च लोकम् ।
वल्गुस्वरं चो मधुरं प्रमुञ्च समुदानितं कल्पसहस्रकोटिभिः ।।५९।।

हमारे द्वारा प्रार्थित धर्म का उपदेश दें । हम पर एवं इस लोक पर कृपा करें एवं सहस्रों कोटि कल्पों के अनन्तर उद्घोषित की जानेवाली अपनी मधुर एवं सुन्दर ध्वनि सुनायें ।

अथ खलु भिक्षवः स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तेषां ब्रह्मकोटीनयुतशतसहस्राणामध्येषणां विदित्वा तेषां च षोडशानां पुत्राणां राजकुमाराणां तस्यां वेलायां धर्मचक्रं प्रवर्तयामास त्रिपरिवर्तं द्वादशाकारमप्रवर्त्तितं श्रमणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेण वा ब्रह्मणा वान्येन वा केनचित् पुनर्लोके सह धर्मेण । यदिदं दुःखमयं दुःखसमुदयोऽयं दुःखनिरोध इयं दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदार्यसत्यमिति । प्रतीत्यसमुत्पादप्रवृत्तिं च विस्तरेण संप्रकाशयामास । इति हि भिक्षवोऽविद्याप्रत्ययाः संस्काराः संस्कारप्रत्ययं विज्ञानं विज्ञानप्रत्ययं नामरूपं नामरूपप्रत्ययं षडायतनं षडायतनप्रत्ययः स्पर्शः स्पर्शप्रत्यया वेदना वेदनाप्रत्यया तृष्णा तृष्णाप्रत्ययमुपादानमुपादानप्रत्ययो

भवो भवप्रत्यया जातिर्जातिप्रत्यया जरामरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासाः सम्भवन्ति । एवमस्य केवलस्य महतो दुःखस्कन्धस्य समुदयो भवति । अविद्यानिरोधात् संस्कारनिरोधः संस्कारनिरोधाद् विज्ञाननिरोधो विज्ञाननिरोधान्नामरूपनिरोधो नामरूपनिरोधात् षडायतननिरोधः षडायतननिरोधात् स्पर्शनिरोधः स्पर्शनिरोधाद् वेदनानिरोधो वेदनानिरोधात्तृष्णानिरोधस्तृष्णानिरोधादुपादाननिरोध उपादाननिरोधाद् भवनिरोधो भवनिरोधाज्जातिनिरोधो जातिनिरोधाज्जरामरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासा निरुध्यन्ते । एवमस्य केवलस्य महतो दुःखस्कन्धस्य निरोधो भवति ।

इसके अनन्तर, हे भिक्षुओ ! अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् तथागत महाभिज्ञाज्ञानाभिभू ने उन कोटीनयुत शतसहस्र ब्रह्माओं तथा उन अपने पुत्र सोलह राजकुमारों की प्रार्थना सुनकर उस समय तीन परिवर्त्तनयुक्त तथा बारह आकारवाले उस धर्मचक्र को प्रवर्त्तित किया, जो श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार अथवा ब्रह्मा या किसी अन्य के द्वारा इस लोक में विधिवत् प्रवर्त्तित नहीं किया गया था । उस धर्मचक्र का स्वरूप यह दुःख है, यह दुःखसमुदय है, यह दुःखनिरोध (है) तथा यह दुःखनिरोध की ओर ले जानेवाला मार्ग (है), ये चार आर्यसत्य हैं । उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद की प्रवृत्ति का विशद विवेचन किया । उन्होंने बताया कि हे भिक्षुओ ! संस्कार अविद्या से उत्पन्न होनेवाला, विज्ञान संस्कार से उत्पन्न होनेवाला, नामरूप विज्ञान से उत्पन्न होनेवाला, षडायतन नामरूप से उत्पन्न होनेवाला, स्पर्श षडायतन से उत्पन्न होनेवाला, वेदना स्पर्श से उत्पन्न होनेवाली, तृष्णा वेदना से उत्पन्न होनेवाली, उपादान तृष्णा से उत्पन्न होनेवाला, भव उपादान से उत्पन्न होनेवाला, जाति भव से उत्पन्न होनेवाली एवं जरामरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं उपायास जाति से उत्पन्न होनेवाले हैं । इस प्रकार, इस एकमात्र महान् दुःखस्कन्ध का उदय होता है । परन्तु, अविद्या के निरोध से संस्कार का निरोध, संस्कार के निरोध से विज्ञान का निरोध, विज्ञान के निरोध से नामरूप का निरोध, नाम-रूप के निरोध से षडायतन का निरोध, षडायतन के निरोध से स्पर्श का निरोध, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध, वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध, तृष्णा के निरोध स उपादान का निरोध, उपादान के निरोध से भव का निरोध, भव के निरोध से जाति का निरोध और जाति के निरोध से जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य तथा उपायास का निरोध होता है । इस प्रकार, इस सम्पूर्ण महान् दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है ।

सहप्रवर्त्तितं चेदं भिक्षवस्तेन भगवता महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवा तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन धर्मचक्रं सदेवकस्य लोकस्य समारकस्य सब्रह्मकस्य सश्रमणब्राह्मणिकायाः प्रजायाः सदेवमानुषासुरायाः पर्षदः पुरस्तात् । अथ तस्मिन्नेव क्षणलवमुहूर्त्ते षष्टेः प्राणिकोटीनयुतशतसहस्राणामनुपादायास्रवेभ्य-

श्चित्तानि विमुक्तानि सर्वे च ते त्रैविद्याः षडभिज्ञा अष्टविमोक्षध्यायिनः संवृत्ताः । पुनरनुपूर्वेण भिक्षवः स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो द्वितीयां धर्मदेशनामकार्षीत् तृतीयामपि धर्मदेशनामकार्षीच्चतुर्थीमपि धर्मदेशनामकार्षीत् ।

अथ खलु भिक्षवस्तस्य भगवतो महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यैकैकस्यां धर्मदेशनायां गङ्गानदीवालुकासमानां प्राणिकोटीनयुतशतसहस्राणामनुपादायास्रवेभ्यश्चित्तानि विमुक्तानि । ततः पश्चाद् भिक्षवस्तस्य भगवतो गणनासमतिक्रान्तः श्रावकसंघोऽभूत् ।

हे भिक्षुओ ! उन अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू ने इस धर्मचक्र को देवों, मारों, तथा ब्रह्माओं से युक्त इस लोक के सम्मुख श्रमण एवं ब्राह्मणों से युक्त प्रजा के सम्मुख तथा देव, मनुष्य, एवं असुरों से युक्त परिषद् के सम्मुख विधिवत् प्रवर्त्तित किया । तदनन्तर, उसी क्षण-लव-मुहूर्त्त में साठ कोटीनयुत शतसहस्र प्राणियों के अनासक्त चित्त आस्रवों से मुक्त हो गये और वे सभी त्रैविद्य, पड्विज्ञ तथा अष्टविमोक्षाध्यायी हो गये । पुनः हे भिक्षुओ ! उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू ने क्रमशः दूसरी धर्मदेशना की, तीसरी धर्मदेशना भी की एवं चौथी धर्मदेशना भी की ।

तदनन्तर हे भिक्षुओ ! उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू की एक-एक देशना पर गंगा की वालुका के समान कोटीनयुत शतसहस्र प्राणियों के अनासक्त चित, आस्रवों से मुक्त हो गये । तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! उन भगवान् के श्रावकों का एक विशाल संघ बन गया, जो गणना से परे था ।

तेन खलु पुनर्भिक्षवः समयेन ते षोडश राजकुमाराः कुमारभूता एव समानाः श्रद्धयागारादनागारिकां प्रव्रजिताः सर्वे च ते श्रामणेरा अभूवन् पण्डिता व्यक्ता मेधाविनः कुशला बहुबुद्धशतसहस्रचरिताविनोऽर्थिनश्चानुत्तरायाः सम्यक्संबोधेः । अथ खलु भिक्षवस्ते षोडश श्रामणेरास्तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धमेतदूचुः । इमानि खलु पुनर्भगवांस्तथागतस्य बहूनि श्रावककोटीनयुतशतसहस्राणि महर्द्धिकानि महानुभावानि महेशाख्यानि भगवतो धर्मदेशनया परिनिष्पन्नानि । तत् साधु भगवांस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धोऽस्माकमनुकम्पामुपादायानुत्तरां सम्यक्संबोधिमारभ्य धर्मं देशयतु यद्वयमपि तथागतस्यानुशिक्षेमहि । अर्थिनो वयं भगवंस्तथागतज्ञानदर्शनेन । भगवानेवास्माकमस्मिन्नेवार्थे साक्षी त्वं च भगवन् सर्वसत्त्वाशयज्ञो जानीषे अस्माकमध्याशयमिति ।

हे भिक्षुओ ! उस समय वे सोलह स्वाभिमानी कुमारभूत राजकुमार श्रद्धापूर्वक अपने घर से निकलकर गृहविहीन संन्यासियों का जीवन विताने लगे तथा वे सभी श्रामणेर,

पण्डित, व्यक्त मेधावी, कुशल, अनेक शतसहस्र बुद्धों के मार्ग का अनुसरण करनेवाले तथा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के अभिलाषी हो गये। तदनन्तर, हे भिक्षुओ! वे सोलह श्रामणेर उन भगवान् अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत महाभिज्ञाज्ञानाभिभू से इस प्रकार बोले--हे भगवन्! तथागत भगवान् की देशना के फलस्वरूप ये अनेक कोटीनयुत शतसहस्र श्रावक महती ऋद्धि से सम्पन्न, महान् प्रभाववाले तथा अत्यन्त शक्तिशाली हो गये हैं। अतः, हम पर अनुकम्पा करके अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत महाभिज्ञाज्ञानाभिभू श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय में पूर्ण रूप से धर्म की देशना करें, जिससे हमलोग भी तथागत की शिक्षा को प्राप्त कर लें। हे भगवन्! हमलोग तथागत के ज्ञान एवं दर्शन के अभिलाषी हैं। भगवान् ही इस विषय में हमारे साक्षी हैं। क्योंकि, हे भगवन्! आपही सब जीवों के हृदय की बात जानते हैं एवं हमारे हृदय की बात को भी जानते हैं।

तेन खलु पुनर्भिक्षवः समयेन तान् बालान् दारकान् राजकुमारान् प्रव्रजितान् श्रामणेरान् दृष्ट्वा यावांस्तस्य राज्ञश्चक्रवर्त्तिनः परिवारस्ततोऽर्धः प्रव्रजितोऽभूदशीतिप्राणिकोटीनयुतशतसहस्राणि।

पुनः हे भिक्षुओ! उस समय उन छोटे बालक-रूप राजकुमारों को श्रामणेरों के रूप में प्रव्रजित देखकर उस चक्रवर्त्ती राजा का जितना परिवार था, उसका आधा, जिसमें अस्सी कोटीनयुत शतसहस्र प्राणी थे, प्रव्रजित हो गया।

अथ खलु भिक्षवः स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तेषां श्रामणेराणामध्याशयं विदित्वा विशतेः कल्पसहस्राणामत्ययेन सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं सूत्रान्तं महावैपुल्यं बोधिसत्त्वाववादं सर्वबुद्धपरिग्रहं विस्तरेण संप्रकाशयामास तासां सर्वासां चतसृणां पर्षदाम्।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ! उन अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् तथागत महाभिज्ञाज्ञानाभिभू ने उन श्रामणेरों के आशय को जानकर बीस सहस्र कल्पों के अनन्तर सभी बुद्धों के द्वारा ग्रहण करने योग्य, एवं बोधिसत्त्वों को उपदेश देनेवाले उस विशाल धर्मपर्याय 'सद्धर्मपुण्डरीक' नामक सूत्रान्त को उन चारों परिषदों के सम्मुख विस्तृत रूप से प्रकाशित किया।

तेन खलु पुनर्भिक्षवः समयेन तस्य भगवतो भाषितं ते षोडश राजकुमाराः श्रामणेरा उद्गृहीतवन्तो धारितवन्त आराधितवन्तः पर्याप्तवन्तः।

हे भिक्षुओ! उस समय भगवान् के उपदेश को श्रामणेर बने हुए उन सोलह राजकुमारों ने समझकर धारण कर लिया एवं आदरपूर्वक उसे हृदयंगम कर लिया।

अथ खलु भिक्षवः स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तान् षोडश श्रामणेरान् व्याकार्षीदनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ। तस्य

खलु पुनर्भिक्षवो महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्येमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं भाषमाणस्य श्रावकाश्चाधिमुक्तवन्तः । ते च षोडश श्रामणेरा बहूनि च प्रोणिकोटीनयुतशतसहस्राणि विचिकित्साप्राप्तान्यभूवन् ।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! उन अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू ने उन श्रामणेरों को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय में उपदेश दिया——हे भिक्षुओ ! जिस समय वे अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू इस धर्मपर्याय सद्धर्मपुण्डरीक का उपदेश कर रहे थे, उसी समय वहाँ उपस्थित अन्य श्रावकों ने अधिमुक्ति प्राप्त कर ली, किन्तु उन सोलह श्रामणेर तथा अनेक कोटीनयुत शतसहस्र प्राणी संशय में पड़ गये ।

अथ खलु भिक्षवः स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध इमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायमष्टौ कल्पसहस्राण्यविश्रान्तो भाषित्वा विहारं प्रविष्टः प्रतिसंलयनाय तथा प्रतिसंलीनश्च भिक्षवः स तथागतश्चतुरशीतिकल्पसहस्राणि विहारस्थित एवासीत् ।

तत्पश्चात्, हे भिक्षुओ ! वे अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू इस धर्मपर्याय सद्धर्मपुण्डरीक का आठ कल्पों तक लगातार उपदेश देकर समाधि के लिए ब्रह्मविहार में प्रविष्ट हो गये और हे भिक्षुओ ! समाधि में लीन होकर तथागत चौरासी सहस्र कल्पों तक उस विहार में ही स्थित रहे ।

अथ खलु भिक्षवस्ते षोडश श्रामणेरास्तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतं प्रतिसंलीनं विदित्वा पृथक् पृथक् धर्मासनानि सिंहासनानि प्रज्ञाप्य तेषु निषण्णास्तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतं नमस्कृत्य तं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं विस्तरेण चतसृणां पर्षदां चतुरशीतिकल्पसहस्राणि संप्रकाशितवन्तः । तत्र भिक्षव एकैकः श्रामणेरो बोधिसत्त्वः षष्टिषष्टिगङ्गानदीवालुकासमानि प्राणिकोटीनयुतशतसहस्राण्यनुत्तरायां सम्यक् संबोधौ परिपाचितवान् समादापितवान् संहर्षितवान् समुत्तेजितवान् संप्रहर्षितवानवतारितवान् ।

पुनः हे भिक्षुओ ! उन सोलह श्रामणेरों ने भी तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू को समाधि में स्थित जानकर अलग-अलग धर्मासन-रूप सिंहासन बनवाकर तथा उनपर बैठकर उन तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू को नमस्कार कर उस धर्मपर्याय सद्धर्मपुण्डरीक को चारों परिषदों के सम्मुख चौरासी सहस्र कल्पों तक सविस्तर प्रकाशित किया । वहाँ पर हे भिक्षुओ ! एक-एक श्रामणेर बोधिसत्त्व ने साठ-साठ गंगा नदी की बालुका के समान कोटीनयुत शतसहस्र प्राणियों को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय में उपदेश देकर परिपक्व बना दिया । वे इसे सुनकर अत्यन्त प्रसन्न संहर्षित, समुत्तेजित, उत्साहित आनन्दित एवं उसके ज्ञाता बन गये ।

अथ खलु भिक्षवः स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तेषां चतुरशीतेः कल्पसहस्राणामत्ययेन स्मृतिमान् संप्रजानस्तस्मात् समाधेर्व्युत्तिष्ठेद् व्युत्थाय च स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतो येन तद्धर्मासनं तेनोपसंक्रामदुपसंक्रम्य प्रज्ञप्त एवासने न्यषीदत् ।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ! वे अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू उन चौरासी सहस्र कल्पों के बीत जाने पर स्मृतियुक्त एवं सम्प्रज्ञ होकर समाधि से उठे और उठकर वे तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू जिस ओर धर्मासन था, उस ओर गये और जाकर अपने लिए बने हुए आसन पर बैठ गये ।

समनन्तरनिषण्णश्च खलु पुनर्भिक्षवः स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतस्तस्मिन् धर्मासनेऽथ तावदेव सर्वावन्तं पर्षन्मण्डलमवलोक्य भिक्षुसंघमामन्त्रयामास । आश्चर्यप्राप्ता भिक्षवोऽद्भुतप्राप्ता इमे षोडश श्रामणेराः प्रज्ञावन्तो बहुबुद्धकोटीनयुतशतसहस्रपर्युपासिताश्चीर्णचरिता बुद्धज्ञानपर्युपासका बुद्धज्ञानप्रतिग्राहका बुद्धज्ञानावतारका बुद्धज्ञानसंदर्शकाः । पर्युपासध्वं भिक्षव एतान् षोडश श्रामणेरान् पुनः पुनर्ये केचिद् भिक्षवः श्रावकयानिका वा प्रत्येकबुद्धयानिका वा बोधिसत्त्वयानिका वैषां कुलपुत्राणां धर्मदेशनां न प्रतिक्षेप्स्यन्ति न प्रतिबाधिष्यन्ते सर्वे ते क्षिप्रमनुत्तरायाः सम्यक्संबोधेर्लाभिनो भविष्यन्ति सर्वे च ते तथागतज्ञानमनुप्राप्स्यन्ति ।

पुनः हे भिक्षुओ ! उस धर्मासन पर बैठने के अनन्तर ही तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू सम्पूर्ण परिषद्-समूह को देखकर भिक्षुसंघ से बोले—हे भिक्षुओ ! अनेक कोटीनयुत शतसहस्र बुद्धों की उपासना करनेवाले, अपने कर्त्तव्य को पालन करनेवाले बुद्धज्ञान की पूर्ण उपासना करनेवाले, बुद्धज्ञान का प्रतिग्रहण करनेवाले, बुद्धज्ञान के अवतारक एवं बुद्धज्ञान के सन्दर्शक ये सोलह बुद्धिमान् श्रामणेर आश्चर्य एवं विस्मय को प्राप्त हो गये हैं । हे भिक्षुओ ! इन सोलह श्रामणेरों की पुनः-पुनः उपासना करो।

तैः खलु पुनर्भिक्षवः षोडशभिः कुलपुत्रैस्तस्य भगवतः शासनेऽयं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः पुनः पुनः संप्रकाशितोऽभूत् । तैः खलु पुनर्भिक्षवः षोडशभिः श्रामणेरैर्बोधिसत्त्वैर्महासत्त्वैर्यानि तान्येकैकेन बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन षष्टिषष्टिगङ्गानदीवालुकासमानि सत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि बोधाय समादापितान्यभूवन् सर्वाणि च तानि तैरेव सार्धं तासु तासु जातिष्वनु प्रव्रजितानि तान्येव समनुपश्यन्तस्तेषामेवान्तिकाद्धर्ममश्रौषुः । तैश्चत्वारिंशद् बुद्धकोटीसहस्राण्यारागितानि केचिदद्याप्यारागयन्ति ।

हे भिक्षुओ ! जो कोई भी चाहे, वे श्रावक यानिक हों, चाहे प्रत्येक बुद्धियानिक हों या चाहे बोधिसत्त्वयानिक हों, इन कुलपुत्रों की देशना को तिरस्कृत तथा प्रतिबाधित नहीं

करेंगे। वे सभी शीघ्र ही श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करके वे सभी तथागत के ज्ञान को प्राप्त करेंगे। पुनः हे भिक्षुओ! भगवान् की आज्ञा से उन सोलह कुलपुत्रों ने इस धर्मपर्याय सद्धर्मपुण्डरीक को पुनः-पुनः पूर्णरूपेण प्रकाशित किया था। पुनः हे भिक्षुओ! उन सोलह महासत्त्व बोधिसत्त्व श्रामणेरों में से एक-एक महासत्त्व बोधिसत्त्व ने साठ-साठ गंगा की वालुका के समान जिन कोटीनयुत शतसहस्र प्राणियों को बोधि प्राप्त कराई थी, वे सभी उन्हीं के साथ उन-उन जातियों में प्रव्रजित हो गये एवं उन्हीं को देखते हुए उन्हीं से अब भी धर्म का उपदेश सुनते रहे। उन लोगों ने चालीस कोटि सहस्र बुद्धों की आराधना की तथा उनमें भी कुछ आज भी आराधना कर रहे हैं।

आरोचयामि वो भिक्षवः प्रतिवेदयामि वो ये ते षोडश राजकुमाराः कुमारभूता ये तस्य भगवतः शासने श्रामणेरा धर्मभाणका अभूवन् सर्वे तेऽनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धाः सर्वे च त एतर्हि तिष्ठन्ति ध्रियन्ते यापयन्ति दशसु दिक्षु नानाबुद्धक्षेत्रेषु बहूनां श्रावकबोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणां धर्मं देशयन्ति यदुत पूर्वस्यां दिशि भिक्षवोऽभिरत्यां लोकधातावक्षोभ्यो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो मेरुकूटश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः। पूर्वदक्षिणस्यां दिशि भिक्षवः सिंहघोषश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः सिंहध्वजश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः। दक्षिणस्यां दिशि भिक्षव आकाशप्रतिष्ठितश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो नित्यपरिनिर्वृतश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः। दक्षिणपश्चिमायां दिशि भिक्षव इन्द्रध्वजश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो ब्रह्मध्वजश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः। पश्चिमायां दिशि भिक्षवोऽमितायुश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः सर्वलोकधातूपद्रवोद्वेगप्रत्युत्तीर्णश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः। पश्चिमोत्तरस्यां दिशि भिक्षवस्तमालपत्रचन्दनगन्धाभिज्ञश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो मेरुकल्पश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः। उत्तरस्यां दिशि भिक्षवो मेघस्वरदीपश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो मेघस्वरराजश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः। उत्तरपूर्वस्यां दिशि भिक्षवः सर्वलोकभयच्छम्भितत्वविध्वंसनकरश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धोऽहं च भिक्षवः शाक्यमुनिर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः षोडशमो मध्ये खल्वस्यां सहायां लोकधातावनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः।

हे भिक्षुओ! तुम लोगों से कहता हूँ, तुम लोगों को बतलाता हूँ कि जो सोलह कुमारभूत राजकुमार भगवान् के शासन में श्रामणेर बनकर धर्मोपदेशक बन गये थे, वे सभी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त हो गये तथा वे सभी इस प्रकार रहते हैं, जीवन धारण करते हैं एवं समय व्यतीत करते हैं। वे दसों दिशाओं में स्थित विभिन्न बुद्ध-

क्षेत्रों में अनेक कोटीनयुत शतसहस्र श्रावकों और वोधिसत्त्वों को धर्म का उपदेश देते हैं। हे भिक्षुओ ! उनमें से पूर्व दिशा में अभिरति नामक लोकधातु में अक्षोभ्य नामक अर्हत्, सम्यक् सम्वुद्ध, तथागत तथा मेरुकूट नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत हैं। हे भिक्षुओ ! पूर्व-दक्षिण दिशा में सिंहघोष नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत तथा सिंहध्वज नामक अर्हत्, सम्यक् सम्वुद्ध, तथागत हुए। हे भिक्षुओ ! दक्षिण दिशा में आकाशप्रतिष्ठित नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत तथा नित्यपरिनिर्वृत नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत हुए। हे भिक्षुओ ! दक्षिण-पश्चिम दिशा में इन्द्रध्वज नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध तथागत तथा ब्रह्मध्वज नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत हुए। हे भिक्षुओ ! पश्चिम दिशा में अमितायु नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत तथा सर्वलोक, धातुपद्रवोद्वेगप्रत्युत्तीर्ण नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत हुए। हे भिक्षुओ ! पश्चिमोत्तर दिशा में तमालपत्रचन्दनगन्धाभिज्ञ नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत तथा मेरुकल्प नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत हुए। हे भिक्षुओ ! उत्तर दिशा में मेघस्वरदीप नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत तथा मेघस्वरराज नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत हुए। हे भिक्षुओ ! उत्तर-पूर्व दिशा में सर्वलोकभयच्छम्भितत्वविध्वंसकर नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत हुए। हे भिक्षुओ ! इस सहा नामक लोकधातु में श्रेष्ठ सम्यक् समाधि प्राप्त करनेवाला सोलहवाँ शाक्यमुनि नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत मैं स्वयं हूँ।

ये पुनस्ते भिक्षवस्तदास्माकं श्रामणेरभूतानां सत्त्वा धर्मं श्रुतवन्तस्तस्य भगवतः शासन एकैकस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य बहूनि गङ्गानदीवालुकासमानि सत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि यान्यस्माभिः समादापितान्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ तान्येतानि भिक्षवोऽद्यापि श्रावकभूमावेवावस्थितानि परिपाच्यन्त एवानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ। एषैवैषामानुपूर्व्यनुत्तरायाः सम्यक् संबोधेरभिसंबोधनाय। तत् कस्य हेतोः। एवं दुरधिमोच्यं हि भिक्षवस्तथागतज्ञानम्। कतमे च ते भिक्षवः सत्त्वा ये मया बोधिसत्त्वेन तस्य भगवतः शासने अप्रमेयाण्यसंख्येयानि गङ्गानदीवालुकासमानि सत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि सर्वज्ञताधर्ममनुश्रावितानि। यूयं ते भिक्षवस्तेन कालेन तेन समयेन सत्त्वा अभूवन्।

पुनः हे भिक्षुओ ! गंगा नदी की बालुका के समान जिन अनेक कोटीनयुत शतसहस्र प्राणियों ने हमारे इस श्रामणेर बने हुए वोधिसत्त्वों में एक-एक महासत्त्व भगवान् वोधिसत्त्व के शासन में रहकर धर्म को सुना एवं जिनको हमने श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय में दीक्षित किया, हे भिक्षुओ ! वे सभी आज भी श्रावक की अवस्था में ही वर्त्तमान हैं तथा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में ही परिपक्व बनाये जा रहे हैं। उन लोगों का श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति का क्रम यही है। ऐसा किस कारण से है ?

क्योंकि, हे भिक्षुओ ! तथागत के ज्ञान में प्रवेश पाना अत्यधिक कठिन है । हे भिक्षुओ ! वे प्राणी कौन हैं, जिन गंगा नदी की वालुका के समान अप्रमेय, असंख्य तथा कोटी-नयुत शतसहस्र जीवों को उन भगवान् के शासन में बोधिसत्त्व के रूप में वर्त्तमान मैंने सर्वज्ञताधर्म का उपदेश दिया था । हे भिक्षुओ ! तुम्हीं लोग उस समय उस काल में उन प्राणियों के रूप में वर्त्तमान थे ।

ये च मम परिनिर्वृतस्यानागतेऽध्वनि श्रावका भविष्यन्ति बोधिसत्त्वचर्यां च श्रोष्यन्ति न चावभोत्स्यन्ते बोधिसत्त्वा वयमिति । किं चापि ते भिक्षवः सर्वे परिनिर्वाणसंज्ञिनः परिनिर्वास्यन्ति । अपि तु खलु पुनर्भिक्षवो यदहमन्यासु लोकधातुष्वन्योन्यैर्नामधेयैर्विहरामि तत्र ते पुनरुत्पत्स्यन्ते तथागतज्ञानं पर्येषमाणास्तत्र च ते पुनरेवैतां क्रियां श्रोष्यन्ति । एकमेव तथागतानां परिनिर्वाणं नास्त्यन्यद् द्वितीयमितो बहिर्निर्वाणम् । तथागतानाम् एतद्भिक्षव उपायकौशल्यं वेदितव्यं धर्मदेशनाभिनिर्हारश्च । यस्मिन् भिक्षवः समये तथागतः परिनिर्वाणकालसमयमात्मनः समनुपश्यन्ति परिशुद्धं च पर्षदं पश्यत्यधिमुक्तिसारां शून्यधर्मगतिं गतां ध्यानवतीं महाध्यानवतीम् । अथ खलु भिक्षवस्तथागतोऽयं काल इति विदित्वा सर्वान् बोधिसत्त्वान् सर्वश्रावकांश्च संनिपात्य पश्चादेतमर्थं संश्रावयति । न भिक्षवः किंचिदस्ति लोके द्वितीयं नाम यानं परिनिर्वाणं वा कः पुनर्वादस्तृतीयस्य । उपायकौशल्यं खल्विदं भिक्षवस्तथागतानामर्हतां दूरप्रनष्टं सत्त्वधातुं विदित्वा हीनाभिरतान् कामपङ्कमग्नांस्तत एषां भिक्षवस्तथागतस्तन्निर्वाणं भाषते यदधिमुच्यन्ते ।

मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने पर भविष्यत् काल में जो मेरे श्रावक होंगे, वे भी बोधिसत्त्व की चर्चा सुनेंगे; किन्तु इस बात का अनुभव नहीं करेंगे कि हमलोग बोधिसत्त्व हैं। हे भिक्षुओ ! परिनिर्वाण को जाननेवाले वे सभी परिनिर्वृति को प्राप्त कर लेंगे एवं पुनः हे भिक्षुओ ! जब मैं अन्य लोकधातुओं में अन्य नामों से विहार करता रहूँगा, तब वहाँ वे फिर उत्पन्न होंगे और तथागत ज्ञान की खोज करते हुए वहाँ वे फिर इसी चर्चा को सुनेंगे । तथागतों का परिनिर्वाण एक ही है, इस निर्वाण के अतिरिक्त अन्य दूसरा निर्वाण नहीं है । हे भिक्षुओ ! यही तथागतों का उपायकौशल्य एवं धर्मदेशना करने की विधि समझनी चाहिए । हे भिक्षुओ ! जिस समय तथागत को अपने परिनिर्वाण-काल के आगमन का ज्ञान हो जाता है, उस समय वे परिशुद्ध उपदेश सुनने को प्रवृत्त शून्य धर्म को समझानेवाले ध्यान में मग्न एवं महती समाधि से युक्त परिषद् की ओर देखने लगते हैं । तभी हे भिक्षुओ ! समय आ गया है, ऐसा जानकर तथागत सभी बोधिसत्त्व एवं सभी श्रावकों को एकत्र करके इसी बात को सुनाते हैं । हे भिक्षुओ ! संसार में दूसरा यान या परिनिर्वाण नहीं है । तीसरे की तो बात ही

नहीं की जा सकती। हे भिक्षुओ! अर्हत् तथागतों का यह उपायकौशल्य हैं कि जीवों को अत्यधिक पतित, हीन वस्तुओं की ओर प्रवृत्त एवं वासना के पंक में निमग्न देखकर, हे भिक्षुओ! उनको वे तथागत इस प्रकार का उपदेश देते हैं कि जिससे वे निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं।

तद् यथापि नाम भिक्षव इह स्यात् पञ्चयोजनशतिकमटवीकान्तारं महांश्चात्र जनकायः प्रतिपन्नो भवेद् रत्नद्वीपं गमनाय। देशिकश्चैषामेको भवेद् व्यक्तः पण्डितो निपुणो मेधावी कुशलः खल्वटवीदुर्गाणां स च तं सार्थमटवीमवकामयेत्। अथ खलु स महाजनकायः श्रान्तः क्लान्तो भीतस्त्रस्तः एवं वदेत्। यत् खल्वार्य देशिक परिणायक जानीया वयं हि श्रान्ताः क्लान्ता भीतास्त्रस्ता अनिर्वृताः। पुनरेव प्रतिनिवर्त्तयिष्यामोऽतिदूरमितोऽटवीकान्तारमिति। अथ खलु भिक्षवः स देशिक उपायकुशलस्तान् पुरुषान् प्रतिनिवर्त्तितुकामान् विदित्वा एवं चिन्तयेत्। मा खल्विमे तपस्विनस्तादृशं महारत्नद्वीपं न गच्छेयुरिति। स तेषामनुकम्पार्थमुपायकौशल्यं प्रयोजयेत्। तस्या अटव्या मध्ये योजनशतं वा द्वियोजनशतं वा त्रियोजनशतं वातिक्रम्यर्द्धिमयं नगरमभिनिर्मिमीयात्। ततस्तान् पुरुषानेवं वदेत्। मा भवन्तो भैष्ट मा निवर्त्तध्वमयमसौ महाजनपदोऽत्र विश्राम्यत। अत्र वो यानि कानिचित् करणीयानि तानि सर्वाणि कुरुध्वमत्र निर्वाणप्राप्ता विहरध्वमत्र विश्रान्ताः। यस्य पुनः कार्यं भविष्यति स तं महारत्नद्वीपं गमिष्यति।

हे भिक्षुओ! मान लो, रत्नद्वीप जाने के लिए उद्यत एक विशाल जनसमूह पाँच सौ योजन विस्तीर्ण घोर जंगल में पहुँच जाय, वहाँ उनका एक चतुर पण्डित, निपुण, मेधावी एवं जंगल के कठिन मार्गों का कुशल मार्गप्रदर्शक हो और वह उस जनसमूह को जंगल पार कराने लगे। तदनन्तर, वह महाजन-समुदाय श्रान्त, क्लान्त, भीत एवं त्रस्त होकर इस प्रकार बोले—हे आर्यमार्गप्रदर्शक! हमारे नायक! तुम जान लो कि हमलोग श्रान्त, क्लान्त भीत, त्रस्त होकर घोर चिन्ता में पड़ गये हैं। यह घोर जंगल अत्यन्त दूर एवं लम्बा है। हमलोग यहाँ से वापस लौट चलें। तदनन्तर, हे भिक्षुओ! वह उपायकुशल मार्गप्रदर्शक उन पुरुषों को लौटने की इच्छा जानकर ऐसा सोचे—ऐसा न हो कि ये बेचारे दुर्बल प्राणी उस महारत्नद्वीप में न पहुँच सकें। वह उनपर अनुकम्पा करके उपायकौशल्य का प्रयोग करे। वह उस जंगल के मध्य में सौ योजन, दो सौ योजन, अथवा तीन सौ योजन से भी अधिक विस्तृत एक जादू का नगर निर्मित कर दे। तब उन पुरुषों से इस प्रकार बोले—आप लोग डरें मत, लौटें मत। यही वह महान् जनपद हैं, यहाँ विश्राम करें, जो कुछ कार्य आपको करने हैं, उन सबको यहाँ करें। यहाँ निश्चित रूप से आनन्दपूर्वक विहार करें एवं यहाँ विश्राम करें। पुनः जिसको आवश्यकता होगी, वह उस महारत्नद्वीप में जायगा।

अथ खलु भिक्षवस्ते कान्तारप्राप्ताः सत्त्वा आश्चर्यप्राप्ता अद्भुतप्राप्ता भवेयुर्मुक्ता वयमटवीकान्तारादिह निर्वाणप्राप्ता विहरिष्याम इति । अथ खलु भिक्षवस्ते पुरुषास्तदृद्धिमयं नगरं प्रविशेयुरागतसंज्ञिनश्च भवेयुर्निस्तीर्णसंज्ञिनश्च भवेयुः । निर्वृताः शीतीभूता स्म इति मन्येरन् । ततस्तान् देशिको विश्रान्तान् विदित्वा तदृद्धिमयं नगरमन्तर्धापयेदन्तर्धापयित्वा च तान् पुरुषानेवं वदेत् । आगच्छन्तु भवन्तः सत्त्वा अभ्यासन्न एष महारत्नद्वीपः । इदं तु मया नगरं युष्माकं विश्रामणार्थमभिनिर्मितमिति ।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! बीहड़ जंगल में पहुँचे हुए वे प्राणी आश्चर्य तथा विस्मय को प्राप्त हो जायें और सोचने लगें कि हमलोग इस घोर जंगल से मुक्त हो गये। अब हम यहीं आनन्दपूर्वक विहार करेंगे । तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! वे पुरुष अपने को लक्ष्य पर पहुँचे हुए तथा घोर जंगल से पार गये हुए समझकर उस जादू के नगर में प्रवेश करें एवं हमने निर्वाण एवं विश्रान्ति प्राप्त कर ली, ऐसा समझें । तदनन्तर, उनको विश्रान्त जानकर वह देशिक उस जादू के नगर को अन्तर्हित कर दे और अन्तर्हित करके उन पुरुषों से इस प्रकार बोले——हे पुरुषो ! आप लोग मेरे साथ आयें। यह महारत्नद्वीप निकट ही है। उस नगरी का रचना तो मैंने आपलोगों को विश्राम देने के लिए ही की थी ।

एवमेव भिक्षवस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो युष्माकं सर्वसत्त्वानां च देशिकः । अथ खलु भिक्षवस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध एवं पश्यति । महदिदं क्लेशकान्तारं निर्गन्तव्यं निष्क्रान्तव्यं प्रहातव्यम् । मा खल्विम एकमेव बुद्धज्ञानं श्रुत्वा द्रवेणैव प्रतिनिवर्त्तयेयुर्नैवोपसंक्रमेयुः । बहुपरिक्लेशमिदं बुद्धज्ञानं समुदानयितव्यमिति । तत्र तथागतः सत्त्वान् दुर्बलाशयान् विदित्वा यथा स देशिकस्तदृद्धिमयं नगरमभिनिर्मिमीते तेषां सत्त्वानां विश्रामणार्थं विश्रान्तानां चैषामेवं कथयतीदं खल्वृद्धिमयं नगरमिति । एवमेव भिक्षवस्तथागतोऽप्यर्हन् सम्यक्संबुद्धो महोपायकौशल्येनान्तरा द्वे निर्वाणभूमी सत्त्वानां विश्रामणार्थं देशयति संप्रकाशयति । यदिदं श्रावकभूमिं प्रत्येकबुद्धभूमिं च । यस्मिंश्च भिक्षवः समये ते सत्त्वास्तत्र स्थिता भवन्ति । अथ खलु भिक्षवस्तथागतोऽप्येवं संश्रावयति । न खलु पुनर्भिक्षवो यूयं कृतकृत्याः कृतकरणीयाः । अपि तु खलु पुनर्भिक्षवो युष्माकमभ्यासः । इतस्तथागतज्ञानं व्यवलोकयध्वं भिक्षवो व्यवचारयध्वं यद् युष्माकं निर्वाणं नैव निर्वाणम् । अपि तु खलु पुनरुपायकौशल्यमेतद् भिक्षवस्तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानां यत् त्रीणि यानानि संप्रकाशयन्तीति ।

हे भिक्षुओ ! इसी प्रकार, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत तुम सभी प्राणियों के मार्गदर्शक हैं । हे भिक्षुओ ! अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत इस प्रकार विचारते हैं——इस

महान् क्लेश-रूपी जंगल से निकलना है, निष्क्रमण करना है तथा इसको त्यागना है। ऐसा न हो कि लोग इस एक ही बुद्धज्ञान को सुनकर तेजी से लौट जायँ। उन्हें तो अनेक क्लेशों से परिपूर्ण इस बुद्धज्ञान को प्राप्त करना ही है। तब तथागत उन प्राणियों के दुर्बल आशय को जानकर जिस प्रकार वह देशिक उन थके हुए प्राणियों को विश्राम देने के लिए उस जादू के नगर का निर्माण करता है तथा उनके विश्राम कर लेने पर यह जादू का नगर है, ऐसा उनसे कहता है, उसी प्रकार हे भिक्षुओ! अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत प्राणियों को विश्राम देने के लिए महान् उपायकौशल्य के द्वारा बीच में स्थित दो निर्वाणभूमि बताते हैं, तथा दिखाते हैं, जो दो श्रावकभूमि एवं प्रत्येक बुद्ध-भूमि हैं। हे भिक्षुओ! जिसमें वे प्राणी उस समय वहाँ स्थित हो जाते हैं। हे भिक्षुओ! तथागत उनको इस प्रकार उपदेश देते हैं--हे भिक्षुओ! तुमने अपना कार्य नहीं किया है। तुमने अपने कर्त्तव्य को पूरा नहीं किया है, फिर भी हे भिक्षुओ! वह बुद्धज्ञान तुम्हारे निकट है। हे भिक्षुओ! यहीं खड़े रहो, तथागत ज्ञान को देखो एवं समझो कि तुमलोगों का यह निर्वाण सच्चा निर्वाण नहीं है। हे भिक्षुओ! यह अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागतों का उपायकौशल्य है कि वे तीन यानों को प्रकाशित करते हैं।

अथ खलु भगवानिममेवार्थं भूयस्या मात्रयोपदर्शयमानस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, इस बात का विस्तृत रूप से विवेचन करते हुए भगवान् उस समय ये गाथाएँ बोलें--

अभिज्ञज्ञानाभिभु लोकनायको यद्बोधिमण्डस्मि निषण्ण आसीत्।
दशेह सो अन्तर कल्प पूर्णान् न लप्सि बोधिं परमार्थदर्शी ॥६०॥

परमार्थदर्शी लोकनायक अभिज्ञज्ञानाभिभू बोधिमण्डप पर बैठे हुए थे, किन्तु उन्हें पूर्ण दस अन्तरकल्पों तक बोधि की प्राप्ति नहीं हुई।

देवाथ नागा असुराथ गुह्यका उद्युक्त पूजार्थ जिनस्य तस्य।
पुष्पाण वर्षं प्रमुमोचु तत्र बुद्धे च बोधिं नरनायकेस्मिन् ॥६१॥

जब इन नरनायक ने बोधि प्राप्त कर ली, तब उन जिन (बुद्ध) की पूजा के लिए देव, नाग, असुर तथा गुह्यक तत्परतापूर्वक उनके ऊपर फूलों की वर्षा करने लगे।

उपरिं च खे दुन्दुभयो विनेदुः सत्कारपूजार्थ जिनस्य तस्य।
सुदुःखिता चापि जिनेन तत्र चिरबुध्यमानेन अनुत्तरं पदम् ॥६२॥

उन जिन के पूजन तथा सत्कार के लिए ऊपर आकाश में दुन्दुभियाँ बज उठीं। वे मानों जिन को विलम्ब से श्रेष्ठ पद प्राप्त होने के कारण अत्यन्त दुःखी थीं।

दशान चो अन्तरकल्प अत्ययात् स्पृशे स बोधि भगवाननाभिभूः ।
हृष्टा उदग्रास्तद आसु सर्वे देवा मनुष्या भुजगासुराश्च ।।६३।।

उन भगवान् अभिज्ञाज्ञानाभिभू ने दस अन्तरकल्पों के व्यतीत होने के अनन्तर बोधि प्राप्त की । उस समय देव, मनुष्य, भुजग और असुर सभी अत्यधिक प्रसन्न हो गये ।

वीराः कुमारा अथ तस्य षोडश पुत्रा गुणाढ्या नरनायकस्य ।
उपसंक्रमी प्राणिसहस्रकोटिभिः पुरस्कृतास्तं द्विपदेन्द्रमग्र्यम् ।।६४।।

तदनन्तर, उन नरनायक के गुणसम्पन्न वे सोलहों पुत्र, जो वीर, कुमार एवं सहस्रों कोटि प्राणियों से पुरस्कृत थे, उन श्रेष्ठ नरनायक के निकट पहुँचे ।

वन्दित्व पादौ च विनायकस्य अध्येषिषू धर्म प्रकाशयस्व ।
अस्मांश्च तर्पेहि इमं च लोकं सुभाषितेनेह नरेन्द्रसिंह ।।६५।।

विनायक के पैरों की वन्दना करके उन्होंने उनसे प्रार्थना की हे नरेन्द्रसिंह ! धर्म को प्रकाशित करें तथा सुन्दर उपदेश के द्वारा हमें तथा इस लोक को तृप्त करें ।

चिरस्य लोकस्य दशद्दिशेऽस्मिन् विदितोऽसि उत्पन्नु महाविनायक ।
निमित्तसंचोदनहेतु प्राणिनां ब्राह्मा विमानानि प्रकम्पयन्तः ।।६६।।

हे महाविनायक ! चिरकाल के अनन्तर आप इस लोक में उत्पन्न हुए हैं । इस बात को लोग दसों दिशाओं में जान गये हैं । प्राणियों को निमित्त की सूचना देते हुए ब्राह्म विमान प्रकम्पित हो रहे हैं ।

दिशाय पूर्वाय सहस्रकोट्यः क्षेत्राण पञ्चाशदभूषि कम्पिताः ।
तत्रापि ये ब्राह्मविमान अग्रास्ते तेजवन्तो अधिमात्रमासि ।।६७।।

पूर्व दिशा में स्थित पचास सहस्र कोटि क्षेत्र काँप उठे हैं । वहाँ भी जो श्रेष्ठ ब्राह्मविमान थे, वे अत्यधिक प्रकाशित हो गये हैं ।

विदित्व ते पूर्वनिमित्तमीदृशमुपसंक्रमी लोकविनायकेन्द्रम् ।
पुष्पैरिहाभ्योकिरियाण नायकंमर्पेन्ति ते सर्व विमान तस्य ।।६८।।

इस प्रकार के पूर्वनिमित्त को देखकर वे लोक के नायकों में श्रेष्ठ बुद्ध के निकट गये । उनपर पुष्पों की वर्षा करके उन सबने नायक को अपने विमान सर्मापित किये ।

अध्येषिषू चक्रप्रवर्तनाय गाथाभिगीतेन अभिसंस्तविंसु ।
तूष्णीं च सो आसि नरेन्द्रराजा न ताव कालो मम धर्म भाषितुम् ।।६९।।

उन्होंने धर्मचक्र के प्रवर्त्तन के लिए उनकी प्रार्थना की एवं गाथाओं को गाकर उनकी स्तुति की; किन्तु राजाओं मे श्रेष्ठ वे चुप थे । वे सोच रहे थे कि धर्म का उपदेश करने का समय अभी नहीं आया है।

एवं दिशि दक्षिणियां पि तत्र पश्चिमा हेष्टिम उत्तरस्याम् ।
उपरिष्टिमायां विदिशासु चैव आगत्य ब्रह्माण सहस्रकोट्यः ।।७०।।

इसी प्रकार, वहाँ दक्षिण दिशा तथा पश्चिम दिशा, अधोदिशा और ऊपर की दिशा एवं विदिशाओं में सहस्र कोटि ब्रह्माओं ने आकर,

पुष्पेभि अभ्योकिरियाण नायकं पादौ च वन्दित्व विनायकस्य ।
निर्यातयित्वा च विमान सर्वानभिष्टवित्वा पुनरभ्ययाचि ।।७१।।

नायक पर फूलों की पूर्ण वर्षा की एवं विनायक के चरणों की वन्दना की । सभी उनकी सेवा में विमान सर्मापित करके उनकी स्तुति करके पुनः याचना की ।

प्रवर्तया चक्रमनन्तचक्षुः सुदुर्लभस्त्वं बहुकल्पकोटिभिः ।
दर्शेहि मैत्रीबल पूर्वसेवितमपावृणोही अमृतस्य द्वारम् ।।७२।।

हे अनन्तचक्षु ! चक्र को प्रवर्त्तित करें। आप अनेक कोटि कल्पों के अनन्तर भी दुर्लभ हैं । पूर्वकाल में सेवित मैत्री के बल को दिखायें एवं मोक्ष के द्वार को खोलो ।

अध्येषणां ज्ञात्व अनन्तचक्षुः प्रकाशते धर्म बहुप्रकारम् ।
चत्वारि सत्यानि च विस्तरेण प्रतीत्य सर्वे इमि भाव उत्थिताः ।।७३।।

लोगों की प्रार्थना को सुनकर अनन्तचक्षु अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित करते हैं। वे चार आर्यसत्यों का विस्तार से वर्णन करते हुए बताते हैं कि ये सभी वस्तुएँ अपने-अपने कारण से उत्पन्न हुई हैं ।

अविद्य आदी करियाण चक्षुमान् प्रभाषते स मरणान्तदुःखम् ।
जातिप्रसूता इमि सर्वदोषा मृत्युं च मानुष्यमिमेव जानथ ।।७४।।

वे सर्वदर्शी भगवान् अविद्या से प्रारम्भ करके मरण तक अन्त होनेवाले सभी दुःखों की चर्चा करते हैं और कहते हैं कि ये सभी दोष जन्म से उत्पन्न होते हैं तथा मृत्यु का सभी मनुष्य से सम्बन्ध है, ऐसा समझ लो ।

समनन्तरं भाषितु धर्म तेन बहुप्रकारा विविधा अनन्ताः ।
श्रुत्वानशीतीनयुतानकोट्यः सत्त्वाः स्थिताः श्रावक भूतले लघुम् ।।७५।।

तदनन्तर, उन्होंने अनेक प्रकार के विविध एवं अनन्त धर्मों की चर्चा की। उसे सुनकर इस पृथ्वीतल पर अस्सी कोटीनयुत प्राणी शीघ्र ही भगवान् के श्रावक बन गये ।

क्षणं द्वितीयं अपरं अभूषि जिनस्य तस्यो बहुधर्म भाषत ।
विशुद्धसत्त्वा यथ गङ्गवालुकाः क्षणेन ते श्रावकभूत आसीत् ।।७६।।

अनेक प्रकार के उन बुद्धधर्मों की चर्चा करते हुए उन जिन को दूसरा ही क्षण हुआ था कि गंगा की वालुका के समान असंख्य जो विशुद्ध प्राणी वहाँ उपस्थित थे वे श्रावक हो गये ।

ततोत्तरी अगणियु तस्य आसीत् संघस्तदा लोकविनायकस्य ।
कल्पान कोटीन्ययुता गणेन्त एकैक नो चान्तु लभेय तेषाम् ।।७७।।

उसके अनन्तर उन लोकविनायक के अगणित संघ हो गये । अनेक कोटि कल्पों तक गिनने पर भी कोई उनमें से एक का भी अन्त नहीं पा सकता था ।

ये चापि ते षोडश राजपुत्रा ये औरसा चैलकभूत सर्वे ।
ते श्रामणेरा अर्वाचिसु तं जिनं प्रकाशया नायक अग्रधर्मम् ।।७८।।

तदनन्तर, उन सोलह राजकुमारों ने भी जो भगवान् के औरस पुत्र थे एवं संन्यास धारण करके श्रामणेर वन गये थे, जिन से प्रार्थना की कि हे नायक ! श्रेष्ठधर्म को प्रकाशित करें,

यथा वयं लोकविद भवेम यथैव त्वं सर्वजिनानमुत्तम ।
इमे च सत्त्वा भवि सर्वि एव यथैव त्वं वीर विशुद्धचक्षुः ।।७९।।

जिससे किसी सर्वजिनों में श्रेष्ठ तुम्हारी तरह हमलोग भी लोकविद् हो जायँ तथा हे वीर ! ये सभी प्राणी भी तुम्हारी तरह विशुद्धचक्षु हो जायँ ।

सो चा जिनो आशयु ज्ञात्व तेषां कुमारभूतान तथात्मजानाम् ।
प्रकाशयी उत्तममग्रबोधिं दृष्टान्तकोटीनयुतैरनेकैः ।।८०।।

उन कुमारभूत अपने पुत्रों के आशय को जानकर उन बुद्ध ने अनेक कोटीनयुत दृष्टान्तों से श्रेष्ठ अग्रबोधि को प्रकाशित किया ।

हेतुसहस्रैरुपदर्शयन्तो अभिज्ञज्ञानं च प्रवर्तयन्तः ।
भूतां चरिं दर्शयि लोकनाथो यथा चरन्तो विदु बोधिसत्त्वाः ।।८१।।

अभिज्ञज्ञान को सहस्रों हेतुओं से उपदर्शित करते हुए तथा उसका प्रवर्त्तन करते हुए संसार के स्वामी ने वास्तविक चर्या का, जिसका सभी विद्वान् बोधिसत्त्व आचरण करते हैं, उपदेश किया ।

इदमेव सद्धर्मसुपुण्डरीकं वैपुल्यसूत्रं भगवानुवाच ।
गाथासहस्रेहि अनल्पकेहि येषां प्रमाणं यथ गङ्गवालिकाः ।।८२।।

इसी सद्धर्मपुण्डरीक नामक वैपुल्यसूत्र का भगवान् ने गंगा की बालुका के समान असंख्य सहस्र गाथाओं के द्वारा उपदेश दिया ।

सो चा जिनो भाषिय सूत्रमेतद्विहारु प्रविशित्व विलक्षयीत ।
पूर्णानशीतिञ्चतुरश्च कल्पान् समाहितैकासनि लोकनाथः ॥८३॥

इस सूत्र का उपदेश देने के अनन्तर ब्रह्मविहार में प्रवेश करके उन जिन ने समाधि धारण कर ली तथा वे लोकनाथ एक ही आसन की मुद्रा में पूर्ण चौरासी कल्पों तक समाधिस्थ बैठे रहे ।

ते श्रामणेराश्च विदित्व नायकं विहारि आसन्नमनिष्क्रमन्तम् ।
संश्रावयिसु बहुप्राणिकोटिनां बौद्धं इमं ज्ञानमनास्रवं शिवम् ॥८४॥

नायक को ब्रह्मविहार में समाधिस्थ होकर अडिग भाव से बैठे देख उन श्रामणेरों ने इस आस्रवरहित एवं पवित्र बुद्धज्ञान का अनेक कोटि प्राणियों को उपदेश दिया ।

पृथक्पृथगासन प्रज्ञपित्वा अभाषि तेषामिदमेव सूत्रम् ।
सुगतस्य तस्य तद शासनस्मिन् अधिकार कुर्वन्तिममेवरूपम् ॥८५॥

उन्होंने पृथक्-पृथक् बनवाये गये आसन पर बैठकर उनलोगों को इसी सूत्र का उपदेश दिया । तब उन सुगत के शासन में उन लोगों ने इस प्रकार का अधिकार प्राप्त कर लिया ।

गङ्गा यथा वालुक अप्रमेया सहस्रषष्टिं तद श्रावयिसु ।
एकैकु तस्य सुगतस्य पुत्रो विनेति सत्त्वानि अनल्पकानि ॥८६॥

उस समय उन्होंने गंगा की बालुका के समान अप्रमेय साठ हजार प्राणियों को ज्ञान का उपदेश दिया । इस प्रकार, उन सुगत के एक-एक पुत्र ने असंख्य प्राणियों को दीक्षित किया ।

तस्यो जिनस्य परिनिर्वृतस्य चरित्व ते पश्यिसु बुद्धकोट्यः ।
तेही तदा श्रावितकेहि सार्धं कुर्वन्ति पूजां द्विपदोत्तमानाम् ॥८७॥

उन जिन के निर्वृत हो जाने के अनन्तर उन लोगों ने चर्या करते हुए करोड़ों बुद्ध देखे । वे भी श्रावकों के साथ उन मनुष्यों में श्रेष्ठ सुगतों की पूजा कर रहे थे ।

चरित्व चर्यां विपुलां विशिष्टां बुद्धा च ते बोधि दशद्दिशासु ।
ते षोडशा तस्य जिनस्य पुत्रा दिशासु सर्वासु द्वयो द्वयो जिनाः ॥८८॥

विपुल एवं विशिष्ट चर्या का आचरण करके और दसों दिशाओं में बोधि प्राप्त करके उन जिन के वे सोलहों पुत्र सभी दिशाओं में दो-दो की संख्या में प्रतिष्ठित हो गये ।

ये चापि संश्रावितका तदासी ते श्रावका तेष जिनान सर्वे ।
इममेव बोधिं उपनामयन्ति क्रमक्रमेण विविधैरुपायैः ॥८९॥

उस समय वहाँ जो भी श्रावक उपस्थित थे, वे सभी उन जिनों के श्रावक हो गये। उन्होंने इसी ज्ञान को क्रम से विविध उपायों द्वारा प्राप्त किया ।

अहं पि अभ्यन्तरि तेष आसीन्मयापि संश्रावित सर्वि यूयम् ।
तेनो मम श्रावक यूयमद्य बोधावुपायेनिह सर्वि नेमि ॥९०॥

इन लोगों में मैं भी था । मैंने भी तुम सबको धर्म का उपदेश दिया है। अतः, आज भी तुम लोग मेरे श्रावक हो । तुम सबको उपायों द्वारा वोधिज्ञान की ओर ले जाता हूँ।

अयं खु हेतुस्तद पूर्व आसीदयं प्रत्ययो येन हु धर्म भाषे ।
नयाम्यहं येन ममाग्रबोधिं मा भिक्षवो उत्रसथेह स्थाने ॥९१॥

पूर्वकाल में भी यही हेतु था और अब भी यही कारण है, जिसके द्वारा मैं धर्म का विवेचन करता हूँ एवं जिसके द्वारा मैं सबको अपनी अग्रबोधि की ओर ले जाता हूँ । अतः, हे भिक्षुओ ! इस विषय में घबराओ मत ।

यथाटवी उग्र भवेय दारुणा शून्या निरालम्ब निराश्रया च ।
बहुश्वापदा चैव अपानिया च बालान सा भीषणिका भवेत ॥९२॥

जिस प्रकार उग्र, दारुण, शून्य, निरालम्ब एवं निराश्रय, अनेक पशुओं से संकुल एवं जल से रहित जो वन है, वह मूर्खों को डरानेवाला होता है ।

पुरुषाण चो तत्र सहस्रनेका ये प्रस्थितास्तामटवीं भवेयुः ।
अटवी च सा शून्य भवेत दीर्घा पूर्णानि पञ्चाशत योजनानि ॥९३॥

किन्तु, अनेक सहस्र व्यक्ति उस जंगल में पहुँच जायँ और वह शून्य एवं पचास शत योजन विशाल जंगल उनसे पूर्ण हो जायँ,

पुरुषश्च आढ्यः स्मृतिमन्तु व्यक्तो धीरो विनीतश्च विशारदश्च ।
यो देशिकस्तेष भवेत तत्र अटवीय दुर्गाय सुभैरवाय ॥९४॥

और वहाँ एक सम्पन्न, स्मृतिमान्, व्यक्त, धीर, विनीत एवं विशारद व्यक्ति उनका उस गहन एवं भयंकर जंगल के लिए मार्गप्रदर्शक हो ।

ते चापि खिन्ना बहुप्राणिकोट्य उवाच तं देशिक तस्मि काले ।
खिन्ना वयं आर्य न शक्नुयाम निवर्तनं अद्यिह रोचते नः ॥९५॥

वे अनेक कोटि प्राणी भी थककर उस समय उस देशिक से बोले—हे आर्य ! हमलोग थक गये हैं एवं हम आगे बढ़ने में असमर्थ हैं । हमलोग अब यहाँ से लौटना चाहते हैं ।

कुशलश्च सो पि तद पण्डितश्च प्रणायकोपाय तदा विचिन्तयेत् ।
धिक् कष्ट रत्नैरिमि सर्वि बाला अश्यन्ति आत्मान निवर्तयन्तः ।।९६।।

तब वह कुशल एवं पण्डित देशिक आगे बढ़ने के उपाय को सोचे —हाय ! ये सभी मूर्ख यहाँ से लौटकर रत्नों से हाथ धो बैठेंगे ।

यन्नून हं ऋद्धिबलेन वाद्य नगरं महन्तं अभिनिर्मिणेयम् ।
प्रतिमण्डितं वेश्मसहस्रकोटिभिर्विहार उद्यानुपशोभितं च ।।९७।।

अतः, मैं अपने ऋद्धिवल से आज सहस्र कोटि महलों से प्रतिमण्डित एवं विहार तथा उद्यानों से सुशोभित एक महान् नगर की रचना करता हूँ ।

वापी नदीयो अभिनिर्मिणेयम् आरामपुष्पे प्रतिमण्डितं च ।
प्राकारद्वारैरुपशोभितं च नारीनरैश्चाप्रतिमैरुपेतम् ।।९८।।

मैं वापी एवं नदियों की रचना करता हूँ तथा उपवन एवं पुष्पों से मण्डित, प्राकार एवं द्वारों से सुशोभित तथा अद्वितीय स्त्री-पुरुषों से युक्त एक नगर बनाता हूँ ।

निर्माणु कृत्वा इति तान् वदेय मा भायथा हर्ष करोथ चैव ।
प्राप्ता भवन्तो नगरं वरिष्ठं प्रविश्य कार्याणि कुरुष्व क्षिप्रम् ।।९९।।

इस प्रकार, इनका निर्माण करके उनसे कहूँगा—डरो मत। आनन्द मनाओ । तुमलोग एक श्रेष्ठ नगर में आ गये हो। प्रवेश करके शीघ्र अपने कार्य पूरा करो।

उदग्रचित्ता भणथेह निर्वृता निस्तीर्ण सर्वा अटवी अशेषतः ।
आश्वासनार्थाय वदेति वाचं कथं न प्रत्यागत सर्वि अस्या ।।१००।।

प्रसन्न एवं निर्वृत हो जाओ। तुमने सारे जंगल को पूर्ण रूप से पार कर लिया है—उनको आश्वासन देने के लिए वह ऐसी बातें कहता है और वे सभी थकावट से मुक्त हो जाते हैं ।

विश्रान्तरूपांश्च विदित्व सर्वान् समानयित्वा च पुनर्ब्रवीति ।
आगच्छथ मह्य शृणोथ भाषतो ऋद्धीमयं नगरमिदं विनिर्मितम् ।।१०१।।

जब वह जान लेता है कि सबने विश्राम कर लिया, तब उनको इकट्ठा करके फिर बोलता है—आओ ! मेरी बात को सुनो, यह तो मैंने जादू का नगर बनाया था ।

युष्माक खेदं च मया विदित्वा निवर्तनं मा च भविष्यतीति
उपायकौशल्यमिदं ममेति जनेथ वीर्यं गमनाय द्वीपम् ।।१०२।।

तुम लोगों की थकावट को जानकर और इस आशंका से कि कहीं तुम लोग लौट न जाओ, मैंने यह उपायकौशल्य किया है । अब उस वास्तविक द्वीप पर पहुँचने के लिए तुमलोग प्रयास करो ।

एमेव हं भिक्षव देशिको वा प्रणायकः प्राणिसहस्रकोटिनाम् ।
खिद्यन्त पश्यामि तथैव प्राणिनः क्लेशाण्डकोशं न प्रभोन्ति भेत्तुम् ।।१०३।।

हे भिक्षुओ ! इसी प्रकार मैं भी सहस्रों कोटि प्राणियों का देशिक अथवा नायक हूँ। जब मैं देखता हूँ कि प्राणी कष्ट पा रहे हैं और क्लेश के मूल के उच्छेदन करने में समर्थ नहीं होते हैं।

ततो मया चिन्तितु एष अर्थो विश्रामभूता इमि निर्वृतीकृताः ।
सर्वस्य दुःखस्य निरोध एष अर्हन्तभूमौ कृतकृत्य यूयम् ।।१०४।।

तब मैं इस विषय पर विचार करके कहता हूँ कि ये विश्राम पाकर निर्वृति को प्राप्त हुए हैं। तुम्हारे सभी दुःखों का निरोध हो गया; क्योंकि तुम अर्हत् की स्थिति में आकर कृतकृत्य हो गये हो।

समये यदा तु स्थित अत्र स्थाने पश्यामि यूयामर्हन्त तत्र सर्वान् ।
तदा च सर्वानिह संनिपात्य भूतार्थमाख्यामि यथैष धर्मः ।।१०५।।

जिस समय मैं तुम सबको अर्हत् के रूप में यहाँ बैठा देखूँगा, उस समय तुम सबको यहाँ इकट्ठा करके इस धर्म के वास्तविक अर्थ को बतलाऊँगा।

उपायकौशल्य विनायकानां यद्यान देशेन्ति त्रयो महर्षी ।
एकं हि यानं न द्वितीयमस्ति विश्रामणार्थं तु द्वियान देशिता ।।१०६।।

यह उन विनायकों का उपायकौशल्य है कि वे महर्षि तीन यान की चर्चा करते हैं। यान एक ही है, दूसरा नहीं है। दो यान तो लोगों को विश्राम देने के लिए बताये गये हैं।

ततो वदेमि अहमद्य भिक्षवो जनेथ वीर्यं परमं उदारम् ।
सर्वज्ञज्ञानेन कृतेन यूयं नैतावता निर्वृति काचि भोति ।।१०७।।

इसीलिए, हे भिक्षुओ ! मैं कहता हूँ कि आज सर्वज्ञज्ञान की प्राप्ति के लिए खूब जमकर प्रयास करो। केवल इतने प्रयास से किसी प्रकार की निर्वृति प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

सर्वज्ञज्ञानं तु यदा स्पृशिष्यथ दशो बला ये च जिनान धर्माः ।
द्वात्रिंशतीलक्षणरूपधारी बुद्धा भवित्वान भवेथ निर्वृताः ।१०८।।

जब तुम सर्वज्ञज्ञान को प्राप्त कर लोगे तथा दसों बलों को भी, जो जिनों के धर्म हैं, प्राप्त कर लोगे, तब तुम बत्तीस लक्षणों को धारण करनेवाले बुद्ध होकर निर्वाण को प्राप्त करोगे।

एतादृशी देशन नायकानां विश्रामहेतोः प्रवदन्ति निर्वृतिम् ।
विश्रान्त ज्ञात्वान च निर्वृतीये सर्वज्ञज्ञाने उपनेन्ति सर्वान् ।।१०६।।

नायकों की इस तरह की देशना होती हैं, वे प्राणियों को विश्राम के लिए निर्वृति का उपदेश देते हैं। जब वे प्राणियों को विश्रान्त जान लेते हैं, तब उन सबको निर्वृति प्राप्त करानेवाले सर्वज्ञज्ञान का उपदेश देते हैं।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये पूर्वयोगपरिवर्तो
नाम सप्तमः ।।७।।

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का सातवाँ पूर्वयोगपरिवर्त समाप्त हुआ।

पञ्चभिक्षुशतव्याकरणपरिवर्त

अथ खल्वायुष्मान् पूर्णो मैत्रायणीपुत्रो भगवतोऽन्तिकादिदमेवंरूपमुपायकौशल्यज्ञानदर्शनं संधाभाषितनिर्देशं श्रुत्वैषां च महाश्रावकाणां व्याकरणं श्रुत्वेमां च पूर्वयोगप्रतिसंयुक्तां कथां श्रुत्वेमां च भगवतो वृषभतां श्रुत्वाश्चर्यप्राप्तोऽभूदद्भुतप्राप्तोऽभून्निरामिषेण च चित्तेन प्रीतिप्रामोद्येन स्फुटोऽभूत् । महता च प्रीतिप्रामोद्येन महता च धर्मगौरवेणोत्थायासनाद् भगवतश्चरणयोः प्रणिपत्यैवं चित्तमुत्पादितवान् । आश्चर्यं भगवन्नाश्चर्यं सुगत परमदुष्करं तथागता अर्हन्तः सम्यक् संबुद्धाः कुर्वन्ति य इमं नानाधातुकं लोकमनुवर्तयन्ते बहुभिश्चोपायकौशल्यज्ञान नदर्शनैः सत्त्वानां धर्मं देशयन्ति तस्मिंस्तस्मिंश्च सत्त्वान् विलग्नानुपायकौशल्येन प्रमोचयन्ति । किमत्र भगवन्नस्माभिः शक्यं कर्तुम् । तथागत एवास्माकं जानीत आशयं पूर्वयोगचर्यां च । स भगवतः पादौ शिरसाभिवन्द्यैकान्ते स्थितोऽभूद् भगवन्तमेव नमस्कुर्वन्ननिमिषाभ्यां च नेत्राभ्यां संप्रेक्षमाणः ।

तदनन्तर, मैत्रायणीपुत्र आयुष्मान् पूर्ण भगवान् के मुख से उपायकौशल्य के ज्ञान का दर्शन करानेवाले इस प्रकार के सन्धाभाष्य के उपदेश को सुनकर तथा इन महाश्रावकों के विषय में भविष्यवाणी को सुनकर तथा इस पूर्वकालीन भक्तिविषयक कथा को सुनकर, भगवान् की इस श्रेष्ठता को सुनकर आश्चर्य को प्राप्त हो गया, विस्मय को प्राप्त हो गया तथा उसका चित्त सांसारिक वस्तुओं से विरक्त होकर प्रीति एवं आनन्द से युक्त हो गया । वह महान् प्रेम एवं आनन्द तथा महान् धर्म के गौरव से युक्त होकर आसन से उठा एवं भगवान् के चरणों में प्रणाम करके उसने ऐसा विचार व्यक्त किया—हे भगवन् ! आश्चर्य है। हे सुगत ! आश्चर्य है । तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध अत्यन्त दुष्कर कार्य करते हैं, जो वे इन विभिन्न धातुओं से निर्मित लोकों का अनुवर्त्तन करते हैं। अनेक उपायकौशल्यों के ज्ञान एवं दृष्टान्तों के द्वारा प्राणियों को धर्म की देशना करते हैं और भिन्न-भिन्न विषय में आसक्त प्राणियों को उपायकौशल्य के द्वारा मुक्त करते हैं । हे भगवन् ! इस विषय में हमलोगों से क्या करना सम्भव है ? तथागत ही हमलोगों के आशय और पूर्वजन्म की चर्या को जानते हैं । उसने भगवान् के चरणों में मस्तक झुकाकर वन्दना की एवं भगवान् को ही नमस्कार करता हुआ तथा उन्हें निर्निमेष दृष्टि से देखता हुआ एक किनारे खड़ा हो गया ।

अथ खलु भगवानायुष्मतः पूर्णस्य मैत्रायणीपुत्रस्य चित्ताशयमवलोक्य सर्वावन्तं भिक्षुसंघमामन्त्रयते स्म । पश्यथ भिक्षवो यूयमिमं श्रावकं पूर्णं

मैत्रायणीपुत्रं यो मयास्य भिक्षुसंघस्य धर्मकथिकानामग्र्यो निर्दिष्टो बहुभिश्च भूतैर्गुणैरभिष्टुतो बहुभिश्च प्रकारैरस्मिन् मम शासन सद्धर्मपरिग्रहायाभियुक्तः । चतसृणां पर्षदां संहर्षकः समादापकः समुत्तेजकः संप्रहर्षकोऽक्लान्तो धर्मदेशनया अलमस्य धर्मस्याख्याता अलमनुग्रहीता सब्रह्मचारिणाम् । मुक्त्वा भिक्षवस्तथागतं नान्यः शक्तः पूर्णं मैत्रायणीपुत्रमर्थतो वा व्यञ्जनतो वा पर्यादातुम् । तत् किं मन्यध्वे भिक्षवो ममैवायं सद्धर्मपरिग्राहक इति । न खलु पुनर्भिक्षवो युष्माभिरेवं द्रष्टव्यम् । तत् कस्य हेतोः । अभिजानाम्यहं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि नवनवतीनां बुद्धकोटीनां यत्रानेनैव तेषां बुद्धानां भगवतां शासने सद्धर्मः परिगृहीतः । तद् यथापि नाम ममैतर्हि सर्वत्र । चाग्र्यो धर्मकथिकानामभूत् सर्वत्र च शून्यतागतिंगतोऽभूत् सर्वत्र च प्रतिसंविदां लाभ्यभूत् सर्वत्र च बोधिसत्त्वाभिज्ञासु गतिंगतोऽभूत् । सुविनिश्चितधर्मदेशको निर्विचिकित्सधर्मदेशकः परिशुद्धधर्मदेशकश्चाभूत् । तेषां च बुद्धानां भगवतां शासने यावदायुष्प्रमाणं ब्रह्मचर्यं चरितवान् सर्वत्र च श्रावक इति संज्ञायते स्म । स खल्वनेनोपायेनाप्रमेयाणामसंख्येयानां सत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणामर्थमकार्षीदप्रमेयानसंख्येयांश्च सत्त्वान् परिपाचितवाननुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । सर्वत्र च बुद्धकृत्येन सत्त्वानां प्रत्युपस्थितोऽभूत् सर्वत्र चात्मनो बुद्धक्षेत्रं परिशोधयति स्म सत्त्वानां च परिपाकायाभियुक्तोऽभूत् । एषामपि भिक्षवो विपश्यिप्रमुखानां सप्तानां तथागतानां येषामहं सप्तम एष एवाग्र्यो धर्मकथिकानामभूत् ।

तत्पश्चात्, भगवान् मैत्रायणीपुत्र आयुष्मान् पूर्ण के मन के भाव को समझकर सम्पूर्ण भिक्षुसंघ से बोले—हे भिक्षुओ ! तुमलोग इस श्रावक मैत्रायणीपुत्र पूर्ण को देखो, जिसे मैंने इस भिक्षुसंघ के धर्मोपदेशकों में श्रेष्ठ बताया है और अनेक वास्तविक गुणों से युक्त होने के कारण जिसकी मैंने अनेक प्रकार प्रशंसा की है तथा जो सद्धर्म को ग्रहण करने के लिए मेरे शासन में तत्परता से संलग्न है । धर्मदेशना करने में न थकनेवाला यह इन चार परिषदों का संहर्षक, समादापक, समुत्तेजक तथा संप्रहर्षक है । वह इस धर्म का समर्थ व्याख्याता तथा अपने साथियों का समर्थ अनुग्रहीता है । हे भिक्षुओ ! तथागत को छोड़कर अन्य कोई मैत्रायणीपुत्र पूर्ण को अर्थतः या व्यञ्जनतः (वास्तविक रूप में) बराबरी करने में समर्थ नहीं है । हे भिक्षुओ ! क्या तुम समझते हो कि यह खेत मेरे ही द्वारा उद्दिष्ट सद्धर्म का धारक है ? हे भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा नहीं सोचना चाहिए । ऐसा क्यों ? क्योंकि, हे भिक्षुओ ! मुझे स्मरण है कि भूतकाल में निन्यानब्बे कोटि बुद्धों के समय में इसने ही इन भगवान् बुद्धों के शासन में रहकर सद्धर्म को ग्रहण किया था । जिस प्रकार यह मेरे धर्मभाजकों में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार

पञ्चभिक्षुशतव्याकरणपरिवर्त

अथ खल्वायुष्मान् पूर्णो मैत्रायणीपुत्रो भगवतोऽन्तिकादिदमेवंरूपमुपायकौशल्यज्ञानदर्शनं संधाभाषितनिर्देशं श्रुत्वैषां च महाश्रावकाणां व्याकरणं श्रुत्वेमां च पूर्वयोगप्रतिसंयुक्तां कथां श्रुत्वेमां च भगवतो वृषभतां श्रुत्वाश्चर्यप्राप्तोऽभूदद्भुतप्राप्तोऽभून्निरामिषेण च चित्तेन प्रीतिप्रामोद्येन स्फुटोऽभूत् । महता च प्रीतिप्रामोद्येन महता च धर्मगौरवेणोत्थायासनाद् भगवतश्चरणयोः प्रणिपत्यैवं चित्तमुत्पादितवान् । आश्चर्यं भगवन्नाश्चर्यं सुगत परमदुष्करं तथागता अर्हन्तः सम्यक् संबुद्धाः कुर्वन्ति य इमं नानाधातुकं लोकमनुवर्तयन्ते बहुभिश्चोपायकौशल्यज्ञान नदर्शनैः सत्त्वानां धर्मं देशयन्ति तस्मिंस्तस्मिंश्च सत्त्वान् विलग्नानुपायकौशल्येन प्रमोचयन्ति । किमत्र भगवन्नस्माभिः शक्यं कर्तुम् । तथागत एवास्माकं जानीत आशयं पूर्वयोगचर्यां च । स भगवतः पादौ शिरसाभिवन्द्यैकान्ते स्थितोऽभूद् भगवन्तमेव नमस्कुर्वन्ननिमिषाभ्यां च नेत्राभ्यां संप्रेक्षमाणः ।

तदनन्तर, मैत्रायणीपुत्र आयुष्मान् पूर्ण भगवान् के मुख से उपायकौशल्य के ज्ञान का दर्शन करानेवाले इस प्रकार के सन्धाभाष्य के उपदेश को सुनकर तथा इन महाश्रावकों के विषय में भविष्यवाणी को सुनकर तथा इस पूर्वकालीन भक्तिविषयक कथा को सुनकर, भगवान् की इस श्रेष्ठता को सुनकर आश्चर्य को प्राप्त हो गया, विस्मय को प्राप्त हो गया तथा उसका चित्त सांसारिक वस्तुओं से विरक्त होकर प्रीति एवं आनन्द से युक्त हो गया । वह महान् प्रेम एवं आनन्द तथा महान् धर्म के गौरव से युक्त होकर आसन से उठा एवं भगवान् के चरणों में प्रणाम करके उसने ऐसा विचार व्यक्त किया—हे भगवन् ! आश्चर्य है। हे सुगत ! आश्चर्य है । तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध अत्यन्त दुष्कर कार्य करते हैं, जो वे इन विभिन्न धातुओं से निर्मित लोकों का अनुवर्त्तन करते हैं। अनेक उपायकौशल्यों के ज्ञान एवं दृष्टान्तों के द्वारा प्राणियों को धर्म की देशना करते हैं और भिन्न-भिन्न विषय में आसक्त प्राणियों को उपायकौशल्य के द्वारा मुक्त करते हैं । हे भगवन् ! इस विषय में हमलोगों से क्या करना सम्भव है ? तथागत ही हमलोगों के आशय और पूर्वजन्म की चर्या को जानते हैं । उसने भगवान् के चरणों में मस्तक झुकाकर वन्दना की एवं भगवान् को ही नमस्कार करता हुआ तथा उन्हें निर्निमेष दृष्टि से देखता हुआ एक किनारें खड़ा हो गया ।

अथ खलु भगवानायुष्मतः पूर्णस्य मैत्रायणीपुत्रस्य चित्ताशयमवलोक्य सर्वावन्तं भिक्षुसंघमामन्त्रयते स्म । पश्यथ भिक्षवो यूयमिमं श्रावकं पूर्णं

मैत्रायणीपुत्रं यो मयास्य भिक्षुसंघस्य धर्मकथिकानामग्र्यो निर्दिष्टो बहुभिश्च भूतैर्गुणैरभिष्टुतो बहुभिश्च प्रकारैरस्मिन् मम शासने सद्धर्मपरिग्रहायाभियुक्तः । चतसृणां पर्षदां संहर्षकः समादापकः समुत्तेजकः संप्रहर्षकोऽक्लान्तो धर्मदेशनया अलमस्य धर्मस्याख्याता अलमनुग्रहीता सब्रह्मचारिणाम् । मुक्त्वा भिक्षवस्तथागतं नान्यः शक्तः पूर्णं मैत्रायणीपुत्रमर्थतो वा व्यञ्जनतो वा पर्यादातुम् । तत् किं मन्यध्वे भिक्षवो ममैवायं सद्धर्मपरिग्राहक इति । न खलु पुनर्भिक्षवो युष्माभिरेवं द्रष्टव्यम् । तत् कस्य हेतोः । अभिजानाम्यहं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि नवनवतीनां बुद्धकोटीनां यत्रानेनैव तेषां बुद्धानां भगवतां शासने सद्धर्मः परिगृहीतः । तद् यथापि नाम ममैतर्हि सर्वत्र । चाग्र्यो धर्मकथिकानामभूत् सर्वत्र च शून्यतागतिंगतोऽभूत् सर्वत्र च प्रतिसंविदां लाभ्यभूत् सर्वत्र च बोधिसत्त्वाभिज्ञासु गतिंगतोऽभूत् । सुविनिश्चितधर्मदेशको निर्विचिकित्सधर्मदेशकः परिशुद्धधर्मदेशकश्चाभूत् । तेषां च बुद्धानां भगवतां शासने यावदायुष्प्रमाणं ब्रह्मचर्यं चरितवान् सर्वत्र च श्रावक इति संज्ञायते स्म । स खल्वनेनोपायेनाप्रमेयाणामसंख्येयानां सत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणामर्थमकार्षीदप्रमेयानसंख्येयांश्च सत्त्वान् परिपाचितवाननुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । सर्वत्र च बुद्धकृत्येन सत्त्वानां प्रत्युपस्थितोऽभूत् सर्वत्र चात्मनो बुद्धक्षेत्रं परिशोधयति स्म सत्त्वानां च परिपाकायाभियुक्तोऽभूत् । एषामपि भिक्षवो विपश्यिप्रमुखानां सप्तानां तथागतानां येषामहं सप्तम एष एवाग्र्यो धर्मकथिकानामभूत् ।

तत्पश्चात्, भगवान् मैत्रायणीपुत्र आयुष्मान् पूर्ण के मन के भाव को समझकर सम्पूर्ण भिक्षुसंघ से बोले——हे भिक्षुओ ! तुमलोग इस श्रावक मैत्रायणीपुत्र पूर्ण को देखो, जिसे मैंने इस भिक्षुसंघ के धर्मोपदेशकों में श्रेष्ठ बताया है और अनेक वास्तविक गुणों से युक्त होने के कारण जिसकी मैंने अनेक प्रकार प्रशंसा की है तथा जो सद्धर्म को ग्रहण करने के लिए मेरे शासन में तत्परता से संलग्न है । धर्मदेशना करने में न थकनेवाला यह इन चार परिषदों का संहर्षक, समादापक, समुत्तेजक तथा संप्रहर्षक है । वह इस धर्म का समर्थ व्याख्याता तथा अपने साथियों का समर्थ अनुग्रहीता है । हे भिक्षुओ ! तथागत को छोड़कर अन्य कोई मैत्रायणीपुत्र पूर्ण को अर्थतः या व्यञ्जनतः (वास्तविक रूप में) बराबरी करने में समर्थ नहीं है । हे भिक्षुओ ! क्या तुम समझते हो कि यह खेत मेरे ही द्वारा उद्दिष्ट सद्धर्म का धारक है ? हे भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा नहीं सोचना चाहिए । ऐसा क्यों ? क्योंकि, हे भिक्षुओ ! मुझे स्मरण है कि भूतकाल में निन्यानब्बे कोटि बुद्धों के समय में इसने ही इन भगवान् बुद्धों के शासन में रहकर सद्धर्म को ग्रहण किया था । जिस प्रकार यह मेरे धर्मभाजकों में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार

इन बुद्धों के समय भी यह ऐसा था। सर्वत्र ही शून्यता के ज्ञान को प्राप्त, विशिष्ट लक्षणों को धारण करनेवाला तथा सर्वत्र बोधिसत्त्वों के अलौकिक ज्ञान का पूर्ण ज्ञाता था और सुनिश्चित धर्मदेशक, निर्विचिकित्स, धर्मदेशक तथा परिशुद्ध धर्मदेशक था। उसने इन भगवान् बुद्धों के शासन में जीवन-भर ब्रह्मचर्य का पालन किया और वह सर्वत्र श्रावक नाम से प्रसिद्ध था। उसने इस उपाय से अप्रमेय, असंख्य कोटि खर्व शतसहस्र प्राणियों का हित किया तथा अप्रमेय एवं असंख्य प्राणियों को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में परिपक्व बनाया। उसने सर्वत्र प्राणियों को बुद्ध के कार्यों के करने में सहायता दी, सर्वत्र अपने बुद्धक्षेत्र को शुद्ध किया और वह प्राणियों को परिपक्व बनाने में तत्पर रहा। हे भिक्षुओ! इन विपश्यी प्रमुख सात धर्मोपदेशक तथागतों में, जिनमें सातवाँ मैं हूँ, यही श्रेष्ठ था।

यदपि तद्भिक्षवो भविष्यत्यनागतेऽध्वन्यस्मिन् भद्रकल्पे चतुर्भिर्बुद्धैरूनं बुद्धसहस्रं तेषामपि शासन एषैव पूर्णो मैत्रायणीपुत्रोऽग्र्यो धर्मकथिकानां भविष्यति सद्धर्मपरिग्राहकश्च भविष्यति। एवमनागतेऽध्वन्यप्रमेयाणामसंख्येयानां बुद्धानां भगवतां सद्धर्ममाधारयिष्यति अप्रमेयाणामसंख्येयानां सत्त्वानामर्थं करिष्यत्यप्रमेयानसंख्येयांश्च सत्त्वान् परिपाचयिष्यत्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ। सततसमितं चाभियुक्तो भविष्यत्यात्मनो बुद्धक्षेत्रपरिशुद्धये सत्त्वपरिपाचनाय। स इमामेवंरूपां बोधिसत्त्वचर्यां परिपूर्याप्रमेयैरसंख्येयैः कल्पैरनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंभोत्स्यते। धर्मप्रभासो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यति विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवानस्मिन्नेव बुद्धक्षेत्र उत्पत्स्यते।

हे भिक्षुओ! भविष्य में आनेवाले समय में, हम भद्रकल्प में जो चार कम एक हजार बुद्ध होंगे, उनके भी शासन में यही मैत्रायणीपुत्र पूर्ण धर्मोपदेशकों में श्रेष्ठ होगा और सद्धर्म का उपदेशक होगा तथा भविष्य में अप्रमेय एवं असंख्य भगवान् बुद्धों के सद्धर्म को धारण करेगा, अप्रमेय एवं असंख्य प्राणियों का हित करेगा तथा अप्रमेय एवं असंख्य प्राणियों को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में परिपक्व बनायगा। अपने बुद्धक्षेत्र को शुद्ध करने तथा प्राणियों को परिपक्व बनाने में निरन्तर तत्पर रहेगा। वह इस प्रकार की इस बोधिसत्त्वचर्या को पूर्ण करके अप्रमेय एवं असंख्य कल्पों में श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करेगा। वह संसार में धर्मप्रभासन नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत होगा तथा ज्ञान एवं सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, दमनयोग्य इन्द्रियों का नियन्ता तथा मनुष्य एवं देवों में शासक भगवान् बुद्ध के रूपों में इसी बुद्धक्षेत्र में उत्पन्न होगा।

तेन खलु पुनर्भिक्षवः समयेन गङ्गानदीवालुकोपमास्त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातव एकं बुद्धक्षेत्रं भविष्यति । समं पाणितलजातं सप्तरत्नमयमपगतपर्वतं सप्तरत्नमयैः कूटागारैः परिपूर्णं भविष्यति। देवविमानानि चाकाशस्थितानि भविष्यन्ति देवा अपि मनुष्यान् द्रक्ष्यन्ति मनुष्या अपि देवान् द्रक्ष्यन्ति । तेन खलु पुनर्भिक्षवः समयेनेदं बुद्धक्षेत्रमपगतपापं भविष्यत्यपगतमातृग्रामं च । सर्वे च ते सत्त्वा औपपादुका भविष्यन्ति ब्रह्मचारिणो मनोमयैरात्मभावैः स्वयंप्रभा ऋद्धिमन्तो वैहायसंगमा वीर्यवन्तः स्मृतिमन्तः प्रज्ञावन्तः सुवर्णवर्णैः समुच्छ्रयैर्द्वात्रिंशद्भिर्महापुरुषलक्षणैः समलंकृतविग्रहाः । तेन खलु पुनर्भिक्षवः समयेन तस्मिन् बुद्धक्षेत्रे तेषां सत्त्वानां द्वावाहारौ भविष्यतः । कतमौ द्वौ । यदुत धर्मप्रीत्याहारो ध्यानप्रीत्याहारश्च । अप्रमेयाणि चासंख्येयानि बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि भविष्यन्ति सर्वेषां च महाभिज्ञाप्राप्तानां प्रतिसंविद्गतिं गतानां सत्त्वाववादकुशलानाम् । गणनासमतिक्रान्ताश्चास्य श्रावका भविष्यन्ति महर्द्धिका महानुभावा अष्टविमोक्षध्यायिनः । एवमपरिमितगुणसमन्वागतं तद्बुद्धक्षेत्रं भविष्यति । रत्नावभासश्च नाम स कल्पो भविष्यति । सुविशुद्धा च नाम सा लोकधातुर्भविष्यति। अप्रमेयानसंख्येयांश्चास्य कल्पानायुष्प्रमाणं भविष्यति। परिनिर्वृतस्य च तस्य भगवतो धर्मप्रभासस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य सद्धर्मश्चिरस्थायी भविष्यति । रत्नमयैश्च स्तूपैः सा लोकधातुः स्फुटा भविष्यति। एवमचिन्त्यगुणसमन्वागतं भिक्षवस्तस्य भगवतस्तद्बुद्धक्षेत्रं भविष्यति । इदमवोचद् भगवान् । इदं वदित्वा सुगतो ह्यथापरमेतदुवाच शास्ता ।

पुनः हे भिक्षुओ ! उस समय यह बुद्धक्षेत्र गंगा नदी की बालुका के समान असंख्य त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातुओं स निर्मित होगा । वह हथेली के समान चौरस, सात रत्नों से युक्त, पर्वतों से रहित एवं सात प्रकार के रत्नों से बने गगनचुम्बी प्रमाणों से पूर्ण होगा । उस समय देवों के विमान आकाश में खड़े होंगे तथा देवता भी मनुष्यों को देखेंगे और मनुष्य देवताओं को देखेंगे । पुनः हे भिक्षुओ ! उस समय यह बुद्धक्षेत्र पापों से रहित एवं स्त्रियों से रहित होगा । वे सभी प्राणी स्वयम्भू, ब्रह्मचारी, मनोमय शरीर के धारक स्वयंप्रकाश, अलौकिक शक्ति से सम्पन्न, आकाशगामी, बलशाली स्मृतिमान् एवं बुद्धिमान् होंगे, उनका शरीर सुवर्ण के वर्ण का होगा एवं उनके शरीर में महापुरुषों के वत्तीस लक्षण वर्त्तमान रहेंगे । पुनः हे भिक्षुओ ! उस समय उस बुद्धक्षेत्र में इन प्राणियों के दो प्रकार के आहार होंगे । वे दो प्रकार के आहार कौन-कौन होंगे ? वे होंगे––धर्मप्रीति आहार और ध्यानप्रीति आहार। उस समय ऐसे अप्रमेय एवं असंख्य कोटिखर्व शतसहस्र बोधिसत्त्व होंगे, जो सभी महाभिज्ञाओं को प्राप्त, प्रतिसंविदाओं

से सम्पन्न एवं प्राणियों को उपदेश देने में कुशल होंगे। इस बुद्ध के गणना से परे, महती शक्ति से सम्पन्न, महानुभाव तथा अष्टविमोक्षाध्यायी श्रावक होंगे। इस प्रकार, वह बुद्धक्षेत्र असंख्य गुणों से युक्त होगा। उस कल्प का नाम रत्नावभास होगा एवं उस लोकधातु का नाम सुविशुद्धा होगा। उसकी आयु अप्रमेय एवं असंख्य कल्पों की होगी। इन भगवान् अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत धर्मप्रभास के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर भी सद्धर्म चिरस्थायी रहेगा। रत्नमय स्तूपों से वह लोकधातु प्रकाशित रहेगी। हे भिक्षुओ! इस प्रकार, उन भगवान् का वह बुद्धक्षेत्र अचिन्त्य गुणों से सम्पन्न होगा। भगवान् ने इस प्रकार कहा। ऐसा कहकर सुगत एवं शास्ता इस प्रकार बोले--

शृणोथ मे भिक्षव एतमर्थं यथा चरी मह्य सुतेन चीर्णा।
उपायकौशल्य सुशिक्षितेन यथा च चीर्णा इय बोधिचर्या ॥१॥

हे भिक्षुओ! मेरी इस बात को सुनो। मैं बताता हूँ कि किस प्रकार मेरे पुत्र ने चर्या का आचरण किया है। और, किस प्रकार उपायकौशल्य को अच्छी तरह जानकर उसने इस बोधिचर्या का आचरण किया है।

हीनाधिमुक्ता इम सत्त्व ज्ञात्वा उदारयाने च समुत्त्रसन्ति।
ततु श्रावका भोन्तिमि बोधिसत्त्वाः प्रत्येकबोधिं च निदर्शयन्ति ॥२॥

ये प्राणी हीन प्रवृत्तिवाले हैं, अतः उदार यान के उपदेश को सुनकर घबरा जायेंगे--ऐसा सोचकर ये बोधिसत्त्व श्रावक हो जाते हैं और प्रत्येक बोधि का निदर्शन करते हैं।

उपायकौशल्यशतैरनेकैः परिपाचयन्ति बहु बोधिसत्त्वान्।
एवं च भाषन्ति वयं हि श्रावका दूरे वयं उत्तममग्रबोधिया ॥३॥

अनेकशत उपायकौशल्यों के द्वारा ये अनेक बोधिसत्त्वों को परिपक्व बनाते हैं। यद्यपि वे इस प्रकार कहते हैं--'हम श्रावक हैं, अतः हम श्रेष्ठ अग्रबोधि से दूर हैं।'

एतां चरिं तेष्वनुशिक्षमाणाः परिपाकु गच्छन्ति हि सत्त्वकोट्यः।
हीनाधिमुक्ताश्च कुसीदरूपा अनुपूर्व ते सर्वि भवन्ति बुद्धाः ॥४॥

उनसे इस चर्या को सीखकर वे नीच प्रवृत्तिवाले एवं आलसी करोड़ों प्राणी पूर्ण ज्ञान को प्राप्त हो जाते हैं और क्रमशः वे सभी बुद्ध बन जाते हैं।

अज्ञानचर्यां च चरन्ति एते वयं खलु श्रावक अल्पकृत्याः।
निर्विण्ण सर्वासु च्युतोपपत्तिषु स्वकं च क्षेत्रं परिशोधयन्ति ॥५॥

'हम भी अल्पकृत्य श्रावक हैं', ऐसा दिखाते हुए भी अज्ञानियों की चर्या का आचरण करते हैं एवं सभी प्रकार के उत्पत्ति के विषय में निर्विण्ण रहते ह। इस प्रकार, वे अपने क्षेत्र को शुद्ध करते हैं।

सरागतामात्म निदर्शयन्ति सदोषतां चापि समोहतां च ।
दृष्टीविलग्नांश्च विदित्व सत्त्वांस्तेषां पि दृष्टीं समुपाश्रयन्ति ।।६।।

वे अपनी सरागता, सदोषता और सम्मोहता भी निदर्शित करते हैं। प्राणियों को (कु) दृष्टियों में संलग्न देखकर वे उनकी भी दृष्टि का आश्रय लेते हैं ।

एवं चरन्तो बहु मह्य श्रावकाः सत्त्वानुपायेन विमोचयन्ति ।
उन्मादु गच्छेयु नरा अविद्वसू सचैव सर्वं चरितं प्रकाशयेत् ।।७।।

ऐसा आचरण करत हुए मेरे अनेक श्रावक मूर्ख व्यक्ति घबरा जायेंगें, ऐसा सोचकर उपायकौशल्यों के द्वारा प्राणियों को मुक्त करते हैं । क्योंकि, वे जानते हैं कि यदि उनके सामने सारी चर्या एक ही बार प्रकट कर दी जाय ।

पूर्णो अयं श्रावक मह्य भिक्षवश्चरितो पुरा बुद्धसहस्रकोटिषु ।
तेषां च सद्धर्म परिग्रहीषीद् बौद्ध इदं ज्ञान गवेषमाणः ।।८।।

हे भिक्षुओ ! यह मेरा पूर्ण नामक श्रावक है । हमने पूर्वकाल में सहस्रों कोटि बुद्धों के शासन में रहकर अपनी चर्या का आचरण किया है । तथा इस बुद्धज्ञान की खोज करते हुए उनके सद्धर्म को ग्रहण किया है ।

सर्वत्र चैषो अभु अग्रश्रावको बहुश्रुतश्चित्रकथी विशारदः ।
संहर्षकश्चा अकिलासि नित्यं सद बुद्धकृत्येन च प्रत्युपस्थितः ।।९।।

यह सर्वत्र ही बहुश्रुत विचित्र कथाएँ कहनेवाला, कुशल, संहर्ष एवं क्लेश से मुक्त अग्रश्रावक था तथा वह सदा बुद्धकृत्य करने को तैयार रहता था ।

महाअभिज्ञासु सदा गतिंगतः प्रतिसंविदानां च अभूषि लाभी ।
सत्त्वान चो इन्द्रियगोचरज्ञो धर्मं च देशेति सदा, विशुद्धम् ।।१०।।

वह सदा महाभिज्ञाओं को प्राप्त तथा प्रतिसंविदाओं का भागी था । वह प्राणियों की इन्द्रियों एवं विषयों को जानता हुआ सदा विशुद्ध धर्म की देशना करता था।

सद्धर्म श्रेष्ठं च प्रकाशयन्तः परिपाचयी सत्त्व सहस्रकोट्यः ।
अनुत्तरस्मिन्निह अग्रयाने क्षेत्रं स्वकं श्रेष्ठु विशोधयन्तः ।।११।।

श्रेष्ठ सद्धर्म को प्रकाशित करते हुए तथा अपने उत्तम क्षेत्र को शुद्ध करते हुए उसने श्रेष्ठ अग्रयान में सहस्रों कोटि प्राणियों को परिपक्व बनाया है ।

अनागते चापि तथैव अध्वे पूजेष्यती बुद्ध सहस्रकोट्यः ।
सद्धर्म श्रेष्ठं च परिग्रहीष्यति स्वकं च क्षेत्रं परिशोधयिष्यति ।।१२।।

भविष्य में भी (वह) इसी प्रकार सहस्रों कोटि बुद्धों की पूजा करेगा, श्रेष्ठ सद्धर्म को ग्रहण करेगा और अपने क्षेत्र को पूर्ण रूप से शुद्ध करेगा ।

देशेष्यती धर्म सदा विशारदो उपायकौशल्यसहस्रकोटिभिः ।
बहूंश्च सत्त्वान् परिपाचयिष्यति सर्वज्ञज्ञानस्मि अनास्रवस्मिन् । १३।।

वह कुशल पूर्ण सदा धर्म की देशना करेगा तथा सहस्र कोटि उपायकौशल्यों के द्वारा अनेक प्राणियों को उस निष्पाप सर्वज्ञज्ञान में परिपक्व बनायगा ।

सो पूज कृत्वा नरनायकानां सद्धर्मश्रेष्ठं सद धारयित्वा ।
भविष्यती बुद्ध स्वयंभु लोके धर्मप्रभासो दिशतासु विश्रुतः ।।१४।।

वह नरनायकों की पूजा करके तथा श्रेष्ठ सद्धर्म को सदा धारण करके संसार में स्वयम्भू बुद्ध बनेगा तथा दिशाओं में धर्मप्रभास नाम से प्रसिद्ध होगा ।

क्षेत्रं च तस्य सुविशुद्ध भेष्यती रत्नान सप्तान सदा विशिष्टम् ।
रत्नावभासश्च स कल्पु भेष्यती सुविशुद्धसो भेष्यति लोकधातुः ।।१५।।

उनका वह विशुद्ध क्षेत्र सदा सात रत्नों से सुशोभित होगा । उस कल्प का नाम 'रत्नावभास' होगा तथा उस लोकधातु का नाम 'सुविशुद्ध' होगा ।

बहुबोधिसत्त्वा सहस्रकोट्यो महाअभिज्ञासु सुकोविदानाम् ।
येहि स्फुटो भेष्यति लोकधातुः सुविशुद्ध शुद्धेहि महर्द्धिकेहि ।।१६।।

महाभिज्ञाओं में निष्णात सहस्र कोटि बोधिसत्त्व उनमें निवास करेंगे। उनके शुद्ध एवं महती शक्ति से सम्पन्न कार्यों के द्वारा वह लोकधातु 'सुविशुद्ध' नाम से प्रसिद्ध होगी ।

अथ श्रावकाणां पि सहस्रकोट्यः संघस्तदा भेष्यति नायकस्य ।
महर्द्धिकानष्टविमोक्षध्यायिनां प्रतिसंविदासू च गतिंगतानाम् ।।१७।।

उस समय नायक का एक विशाल संघ होगा, जो महती शक्ति से सम्पन्न, 'अष्टविमोक्षाध्यायी' एवं प्रतिसंविदाओं को प्राप्त सहस्रों श्रावकों से पूर्ण होगा ।

सर्वे च सत्त्वास्तहि बुद्धक्षेत्रे शुद्धा भविष्यन्ति च ब्रह्मचारिण ।
उपपादुकाः सर्वि सुवर्णवर्णा द्वात्रिंशतीलक्षणरूपधारिणः ।।१८।।

उस बुद्धक्षेत्र में (रहनेवाले) सभी प्राणी शुद्ध आचरणवाले एवं ब्रह्मचारी होंगे तथा सभी स्वयम्भू सुवर्ण के रंग में एवं बत्तीस लक्षणों से युक्त शरीर को धारण करनेवाले (होंगे) ।

आहारसंज्ञा च न तत्र भेष्यति अन्यत्र धर्मे रति ध्यानप्रीतिः ।
न मातृग्रामोऽपि च तत्र भेष्यति न चाप्यपायान च दुर्गतीभयम् ।।१९।।

धर्म में रति (तथा) ध्यान में प्रीति के अतिरिक्त उनका अन्य कोई आहार नहीं होगा । वहाँ स्त्रियाँ नहीं होंगी एवं अधोगति तथा दुर्गति का भय भी नहीं होगा ।

एतादृशं क्षेत्रवरं भविष्यति पूर्णस्य संपूर्णगुणान्वितस्य ।
आकीर्ण सत्त्वेहिं सुभद्रकेहिं यत् किंचिमात्रं पि इदं प्रकाशितम् ।।२०।।

सम्पूर्ण गुणों से युक्त पूर्ण का इस प्रकार श्रेष्ठ क्षेत्र होगा । वह सुन्दर प्राणियों से पूर्ण होगा । उसके विषय में यहाँ थोड़ी ही चर्चा की गई है ।

अथ खलु तेषां द्वादशानां वशीभूतशतानामेतदभवत् । आश्चर्यप्राप्ता स्माद्भुतप्राप्ताः स्म । सचेदस्माकमपि भगवान् यथेमेऽन्ये महाश्रावका व्याकृता एवमस्माकमपि तथागतः पृथक् पृथग् व्याकुर्यात् । अथ खलु भगवांस्तेषां महाश्रावकाणां चेतसैव चेतः परिवितर्कमाज्ञायायुष्मन्तं महाकाश्यपमामन्त्रयते स्म । इमानि काश्यप द्वादश वशीभूतशतानि येषामहमेतर्हि संमुखीभतः सर्वाण्येतान्यहं काश्यप द्वादश वशीभूतशतान्यनन्तरं व्याकरोमि । तत्र काश्यप कौण्डिन्यो भिक्षुर्महाश्रावको द्वाषष्टीनां बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राणां परेण परतरं समन्तप्रभासो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यति विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् । तत्र काश्यपानेनैकेन नामधेयेन पञ्च तथागतशतानि भविष्यन्ति । अतः पञ्च महाश्रावकशतानि सर्वाण्यनन्तरमनुभविष्यन्ति । तद् यथा गयाकाश्यपो नदीकाश्यप उरुविल्वकाश्यपः कालः कालोदाय्यनिरुद्धो रेवतः कप्फिणो बक्कुलश्चुन्दः स्वागत इत्येवंप्रमुखानि पञ्च वशीभूतशतानि ।

तत्पश्चात्, उन वारह सौ अर्हतों (शिष्यों) के मन में ऐसा विचार आया——हमलोग आश्चर्य एवं विस्मय को प्राप्त हो गये हैं । भगवान् ने किस प्रकार उन अन्य महाश्रावकों के विषय में भविष्यवाणी की है, उसी प्रकार से तथागत हमलोगों के विषय में भी अलग-अलग भविष्यवाणी करें । तदनन्तर, भगवान् उन महाश्रावकों के मन में उत्पन्न वितर्कों का अपने मन से अनुमान करके आयुष्मान् महाकाश्यप से बोले——हे काश्यप ! ये बारह सौ अर्हत् हैं, जिनके सम्मुख मैं इस प्रकार खड़ा हूँ । हे काश्यप ! इन सब बारह सौ अर्हतों में से एक-एक के वारे में भविष्यवाणी करता हूँ । हे काश्यप ! इनमें से यह महाश्रावक भिक्षु कौण्डिन्य वासठ कोटि खर्व शतसहस्र बुद्धों के अनन्तर तथा उससे भी परे (काल में) संसार में 'समन्तप्रभास' नामक तथागत होगा एवं अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, ज्ञान और सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, दमनयोग्य पुरुषों का नियन्ता एवं देवों और मनुष्यों का शासक भगवान् बुद्ध के रूप में प्रसिद्ध होगा । हे काश्यप ! वहाँ इसी एक नाम के धारक पाँच सौ तथागत होंगे । अतः, ये सभी पाँच सौ महाश्रावक श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करेंगे तथा सभी समन्तप्रभास नाम के धारक होंगे । उन पाँच सौ अर्हतों में गयाकाश्यप, नदीकाश्यप, उरुविल्वकाश्यप, काल, कालोदायी, अनिरुद्ध, रेवत, कप्फिण, वक्कुल, चुन्द एवं स्वागत प्रमुख होंगे ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं—

कौण्डिन्यगोत्रो मम श्रावकोऽयं तथागतो भेष्यति लोकनाथः ।
अनागतेऽध्वानि अनन्तकल्पे विनेष्यते प्राणिसहस्रकोट्यः ।२१।

मेरा यह कौण्डिन्यगोत्रीय श्रावक लोगों का स्वामी तथागत होगा तथा यह भविष्य में आनेवाले अनन्त कल्पों में सहस्र कोटि प्राणियों को उपदेश देगा ।

समन्तप्रभो नाम जिनो भविष्यति क्षत्रं च तस्य परिशुद्ध भेष्यति ।
अनन्तकल्पस्मि अनागतेऽध्वनि दृष्ट्वान बुद्धान् बहवो ह्यनन्तान् ।।२२।।

वह भविष्य में आनेवाले अनन्तकल्पों में, अनन्त एवं अनेक बुद्धों के दर्शन करके 'समन्तभद्र' नामक बुद्ध होगा और उसका क्षेत्र परिशुद्ध होगा ।

प्रभास्वरो बुद्धबलेनुपेतो विघुष्टशब्दो दशसु दिशासु ।
पुरस्कृतः प्राणिसहस्रकोटिभिर्देशेष्यती उत्तममग्रबोधिम् ।।२३।।

वह तेजस्वी बुद्ध के बल से युक्त एवं सहस्र कोटि प्राणियों से पुरस्कृत, श्रेष्ठ, अग्रबोधि का उपदेश देगा और उस समय उसके शब्द दसों दिशाओं में गूँज उठेंगे ।

ततु बोधिसत्त्वा अभियुक्तरूपा विमानश्रेष्ठान्यभिरुह्य चापि ।
विहरन्त तत्र अनुचिन्तयन्ति विशुद्धशीला सद साधुवृत्तयः ।।२४।।

वहाँ पर श्रेष्ठ रूप के धारक विशुद्ध स्वभाववाले एवं साधु आचरणवाले बोधिसत्त्व श्रेष्ठ विमानों पर चढ़कर विहार करते हुए धर्म के चिन्तन में रत रहेंगे।

श्रुत्वान धर्मं द्विपदोत्तमस्य अन्यानि क्षेत्राण्यपि चो सदा ते ।
व्रजन्ति ते बुद्धसहस्रवन्दकाः पूजां च तेषां विपुलां करोन्ति ।।२५।

मनुष्यों में श्रेष्ठ बुद्ध के धर्म को सुनकर सहस्रों बुद्धों के पूजक वे सदा अन्य क्षेत्रों में जाते हैं और उनकी विपुल पूजा करते हैं।

क्षणेन ते चापि तदास्य क्षेत्रं प्रत्यागमिष्यन्ति विनायकस्य ।
प्रभासनामस्य नरोत्तमस्य चर्याबलं तादृशकं भविष्यति ।।२६।।

उनकी चर्या की ऐसी शक्ति होगी, जिससे वे शीघ्र ही मनुष्यों में 'श्रेष्ठप्रभास' नामक इन विनायक के क्षेत्र में लौट आयेंगे ।

षष्टिः सहस्रा परिपूर्णकल्पानायुष्प्रमाणं सुगतस्य तस्य ।
ततश्च भूयो द्विगुणेन तायिनः परिनिर्वृतस्येह स धर्म स्थास्यति ।।२७।।

उन सुगत की आयु पूरे साठ सहस्र कल्पों की होगी । संसार के रक्षक उनके परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर उसके दुगुने समय तक उनका धर्म स्थित रहेगा ।

प्रतिरूपकश्चास्य भविष्यते पुनस्त्रिगुणं ततो एत्तकमेव कालम् ।
सद्धर्मभ्रष्टे तद तस्य तायिनो दुःखिता भविष्यन्ति नरा मरू च ।।२८।।

उसके तिगुने समय तक इस धर्म का प्रतिरूप स्थित रहेगा। इस संसार के स्वामी के द्वारा उपदिष्ट सद्धर्म के नष्ट हो जाने पर देवता एवं मनुष्य दुःखित हो जायेंगे।

जिनान तेषां समनामकानां समन्तप्रभाणां पुरुषोत्तमानाम् ।
परिपूर्णपञ्चाशतनायकानां एते भविष्यन्ति परंपराय ।।२९।।

समन्तप्रभ—इस समान नाम के धारण करनेवाले, पुरुषश्रेष्ठ एवं संसार के नायक वे पूरे पाँच सौ जिन एक के अनन्तर एक की परम्परा में उत्पन्न होते रहेंगे।

सर्वेष एतादृशकाश्च व्यूहा ऋद्धीबलं च तथ बुद्धक्षेत्रम् ।
गणश्च सद्धर्म तथैव ईदृशः सद्धर्मस्थानं च समं भविष्यति ।।३०।।

उन सबके इसी प्रकार के व्यूह होंगे। उनकी अलौकिक शक्ति, बुद्ध क्षेत्र, गण तथा सद्धर्म इसी प्रकार के होंगे तथा सद्धर्म का स्थान भी समान होगा।

सर्वेषमेतादृशकं भविष्यति नामं तदा लोकि सदेवकस्मिन् ।
यथा मया पूर्वि प्रकीर्त्तितासीत् समन्तप्रभासस्य नरोत्तमस्य ।।३१।।

तब देवों-समेत इस संसार में सबका यही नाम होगा, जो नाम मैंने पूर्वकाल में पुरुषों में श्रेष्ठ समन्तप्रभास के लिए बताया था।

परंपरा एव तथान्यमन्यं ते व्याकरिष्यन्ति हितानुकम्पी ।
अनन्तरायं मम अद्य भेष्यति यथैव शासाम्यहु सर्वलोकम् ।।३२।।

सबका हित एवं सब पर अनुकम्पा करनेवाले वे क्रम से एक दूसर के विषय में भविष्यवाणी करेंगे और कहेंगे कि यह मेरा उत्तराधिकारी होगा और मेरी तरह सारे लोक पर शासन करेगा।

एवं खु एते त्वमिहाद्य काश्यप धारेहि पञ्चाशतनूनकानि ।
वशिभूत ये चापि ममान्यश्रावकाः कथयाहि चान्येष्वपि श्रावकेषु ।।३३।।

हे काश्यप! इस प्रकार तुम आंज यहाँ इन पाँच सौ शिष्यों को स्वीकार करो। मेरे वशीभूत और भी जो अन्य श्रावक हैं, उन्हें एवं उनसे भिन्न अन्य श्रावकों को भी इसकी सूचना दो।

अथ खलु तानि पञ्चार्हच्छतानि भगवतः संमुखमात्मनो व्याकरणानि श्रुत्वा तुष्टा उदग्रा आत्तमनसः प्रमुदिताः प्रीतिसौमनस्यजाता येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्ता उपसंक्रम्य भगवतः पादयोः शिरोभिर्निपत्यैवमाहुः ।

अत्ययं वयं भगवन् देशयामो यैरस्माभिर्भगवन्नेवं सततसमितं चित्तं परिभावितमिदमस्माकं परिनिर्वाणम् । परिनिर्वृता वयमिति यथापीदं भगवन्नव्यक्ता अकुशला अविधिज्ञाः । तत् कस्य हेतोः । यैर्नामास्माभिर्भगवंस्तथागतज्ञानेऽभिसंबोद्धव्य एवंरूपेण परीत्तेन ज्ञानेन परितोषं गताः स्म ।

तदनन्तर, वे पाँच सौ अर्हत् भगवान् के मुख से अपने-अपने बारे में भविष्यवाणी सुनकर तुष्ट, उदग्र, आत्तमना और प्रमुदित हुए तथा उनके हृदय में प्रेम एवं सौमनस्य उत्पन्न हुए । वे जिस ओर भगवान् थे, उस ओर चल पड़े । वहाँ जाकर वे भगवान् के चरणों में सिर झुकाकर इस प्रकार बोले—हे भगवन् ! हम लोग अपने पाप को स्वीकार करते हैं । यतः, हे भगवन् ! अव्यक्त, अकुशल और अविधिज्ञ हमलोग सदा निरन्तर, अपने मन को यही समझाते रहे कि यही निर्वाण है और हमलोग निर्वृत हो गये । ऐसा क्यों कहता हूँ ? क्योंकि, हे भगवन् ! तथागत के ज्ञान में अभिसम्बोधि प्राप्त करने के अधिकारी होते हुए भी हमलोग इस प्रकार के सीमित ज्ञान से ही परितुष्ट हो गये ।

तद् यथापि नाम भगवन् कस्यचिदेव पुरुषस्य कंचिदेव मित्रगृहं प्रविष्टस्य मत्तस्य वा सुप्तस्य वा स मित्रोऽनर्घमणिरत्नं वस्त्रान्ते बध्नीयादस्येदं मणिरत्नं भवत्विति । अथ खलु भगवन् स पुरुष उत्थायासनात् प्रक्रामेत् । सोऽन्यं जनपदप्रदेशं प्रपद्येत । स तत्र कृच्छ्रप्राप्तो भवेदाहारचीवरपर्येष्टिहेतोः कृच्छ्रमापद्यत । महता च व्यायामेन कथंचित् कंचिदाहारं प्रतिलभेत तेन च सन्तुष्टो भवेदात्तमनस्कः प्रमुदितः । अथ खलु भगवंस्तस्य पुरुषस्य स पुराणमित्रः पुरुषो येन तस्य तदनर्घेयं मणिरत्नं वस्त्रान्ते बद्धं स तं पुनरेव पश्येत्तमेवं वदेत् । किं त्वं भोः पुरुष कृच्छ्रमापद्यसे आहारचीवरपर्येष्टिहेतोर्यदा यावद् भोः पुरुष मया तव सुखविहारार्थं सर्वकामनिवर्तकमनर्घेयं मणिरत्नंवस्त्रान्त उपनिबद्धम् । निर्यातितं त भोः पुरुष ममैत मणिरत्नम् । तदेवमुपनिबद्धमेव भोः पुरुष वस्त्रान्ते मणिरत्नम् । न च नाम त्वं भोः पुरुष प्रत्यवेक्षसे । किं मम बद्धं केन वा बद्धं को हेतुः किं निदानं वा बद्धम् । एतद्बालजातीयस्त्वं भोः पुरुष यस्त्वं कृच्छ्रेणाहारचीवरं पर्येषमाणस्तुष्टिमापद्यसे । गच्छ त्वं भोः पुरुषैतन्मणिरत्नं गृहीत्वा महानगरं गत्वा परिवर्तयस्व । तेन च धनेन सर्वाणि धनकरणीयानि कुरुष्वेति ।

हे भगवन् ! जैसे कोई पुरुष अपने निज के किसी घर में प्रवेश करके वहाँ पागल हो जाय या सो जाय । तदनन्तर, उसका मित्र कीमती मणिरत्न उसके वस्त्र के छोर में ऐसा सोचकर बाँध दे कि यह मणिरत्न उसका ही है । हे भगवन् ! तदनन्तर

वह पुरुष बिछावन से उठकर चला जाय। वह एक दूसरे जनपद-प्रदेश में पहुँचे, वहाँ वह कष्ट में पड़ जाय और भोजन एवं वस्त्र की खोज करने में भी उसे कष्ट प्राप्त हो। बड़े परिश्रम से किसी प्रकार कुछ आहार प्राप्त करे और उसे पाकर सन्तुष्ट, आत्तमनस्क और प्रमुदित हो जाय। तदनन्तर, हे भगवन्! उस पुरुष का वह पुराना मित्र, जिसने उसके वस्त्र की छोर में कीमती मणिरत्न बाँधा था, उसे फिर देखे और उससे इस प्रकार कहे—हे पुरुष! तुम भोजन और वस्त्र की खोज में कष्ट क्यों उठा रहे हो? जबकि हे पुरुष! मैं तुम्हारे सुख एवं आनन्द के लिए सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाले कीमती मणिरत्न तुम्हारे वस्त्र के छोर में बाँध दिया था। हे पुरुष! मैंने इस मणिरत्न को तुम्हें दे दिया है। हे पुरुष! वही मणिरत्न मैंने तुम्हारे वस्त्र के छोर में बाँध दिया है। हे पुरुष! तुम इस बात पर नहीं विचार करते कि मेरे वस्त्र में क्या बाँधा गया है, किसके द्वारा बाँधा गया है, किस हेतु और किस प्रयोजन से बाँधा गया है। हे पुरुष! तुम सचमुच में महान् मूर्ख हो कि इतने कष्ट से भोजन और वस्त्र खोजते हुए भी सन्तुष्ट रहते हो। हे पुरुष! तुम जाओ और इस मणिरत्न को लेकर किसी बड़े नगर में जाकर इसे बदल लाओ। बदले में प्राप्त धन से सम्पन्न होनेवाले सभी कार्य करो।

एवमेव भगवन्नस्माकमपि तथागतेन पूर्वमेव बोधिसत्त्वचर्यां चरता सर्वज्ञताचित्तान्युत्पादितान्यभूवन् तानि च वयं भगवन्न जानीमो न बुध्यामहे। ते वयं भगवन्नर्हद्भूमौ निर्वृताः स्म इति संजानीमः। वयं कृच्छ्रं जीवामो यद्वयं भगवन्नेवं परीत्तेन ज्ञानेन परितोषमापद्यामः सर्वज्ञज्ञानप्रणिधानेन सदा अविनष्टेन ते वयं भगवंस्तथागतन संबोध्यमानाः। मा यूयं भिक्षव एतन्निर्वाणं मन्यध्वं संविद्यन्ते भिक्षवो युष्माकं सन्ताने कुशलमूलानि यानि मया पूर्वं परिपाचितानि। एतर्हि च ममैवेदमुपायकौशल्यं धर्मदेशनाभिलापेन यद् यूयमेतर्हि निर्वाणमिति मन्यध्वे। एवं च वयं भगवता संबोधयित्वाद्यानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ व्याकृताः।

इसी प्रकार, हे भगवन्! बोधिसत्त्व की चर्या का आचरण करते हुए तथागत ने पहले ही हमारे हृदय में सर्वज्ञता ज्ञान को उत्पन्न कर दिया था। हे भगवन्! उसे हम नहीं जानते और नहीं समझते। हे भगवन्! हम केवल इतना ही जानते हैं कि हमलोग अर्हत् की स्थिति में निर्वृत हो गये। हे भगवन्! हमलोग कष्ट से जी रहे हैं कि हम इस क्षुद्रज्ञान से इस प्रकार सन्तुष्ट हो जाते हैं। यद्यपि हे भगवन्! तथागत हमलोगों को सदैव अविनष्ट, सर्वज्ञ ज्ञान के विषय में, प्रणिधान के विषय में हमें समझाते रहते हैं—हे भिक्षुओ! इसे निर्वाणामृत समझो। हे भिक्षुओ! तुम्हारे हित में जो कुशल मूल हैं, उन्हें मैंने पहले ही परिपक्व कर दिया है। यह तो धर्मोपदेश देने का मेरा उपायकौशल्य है, जिसे तुमलोग निर्वाण समझ रहे हो। इस प्रकार, हमलोगों

को सम्बोधित करके भगवान् ने हमलोगों के श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करने के विषय में भविष्यवाणी की ।

अथ खलु तानि पञ्चवशीभूतशतान्यज्ञातकौण्डिन्यप्रमुखानि तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषन्त ।

तत्पश्चात्, उस समय अज्ञातकौण्डिन्य प्रमुख पाँच सौ अर्हतों ने ये गाथाएँ कहीं—

हृष्टा प्रहृष्टा स्म श्रुणित्व एतां आश्वासनामीदृशिकामनुत्तराम् ।
यं व्याकृता स्म परमाग्रबोधये नमोऽस्तु ते नायक नन्तचक्षुः ।।३४।।

हमलोग अपने अग्रबोधि प्राप्त करने के विषय में इस प्रकार की आश्वासनपूर्ण श्रेष्ठ भविष्यवाणी को सुनकर हृष्ट एवं प्रहृष्ट हो गये। हे अनन्तचक्षुनायक ! आपको नमस्कार है ।

देशेमहे अत्ययु तुभ्यमन्तिके यथैव बाला अविदू अजानकाः ।
यं वै वयं निर्वृतिमात्रकेण परितुष्ट आसीत् सुगतस्य शासने ।।३५।।

आपके सम्मुख हम अपने दोष स्वीकार करते हैं। हमलोग इतने मूर्ख, बुद्धिहीन एवं अज्ञान थे कि सुगत के शासन में रहकर इतने ही परिनिर्वाण से सन्तुष्ट हो गये।

यथापि पुरुषो भवि कश्चिदेव प्रविष्ट स स्यादिह मित्रशालम् ।
मित्रं च तस्य धनवन्तमाढ्यं सो तस्य दद्याद् बहु खाद्यभोज्यम् ।।३६।।

जैसे कोई व्यक्ति हो, जो अपने मित्र के घर में चला जाय और उसका वह धनवान् एवं आढ्य मित्र उसको बहुत-सा खाद्य एवं भोज्य पदार्थ दे ।

संतर्पयित्वान च भोजनेन अनेकमूल्यं रतनं स दद्यात् ।
बद्धान्तरीये वसनान्ति ग्रन्थि दत्त्वा च तस्येह भवेत तुष्टः ।।३७।।

एवं भोजन से सन्तुष्ट करके उसे वह कीमती रत्न दे और उसे उसके ऊपर के वस्त्र में बाँध दे तथा उस रत्न को देकर वह सन्तुष्ट हो जाय ।

सो चापि प्रक्रान्तु भवेत बालो उत्थाय सोऽन्यं नगरं व्रजेत ।
सो कृच्छ्रप्राप्तः कृपणो गवेषी आहार पर्येषति खिद्यमान ।।३८।।

और वह मूर्ख उठकर चला जाय और दूसरे गाँव में पहुँचे । वह कष्ट में पड़ा हुआ तथा कृपण भिक्षु की तरह दुःखित होता हुआ आहार की खोज करे ।

पर्येषित भोजननिर्वृतः स्याद् भक्तं उदारं अविचिन्तयन्तः ।
तं चापि रत्नं हि भवेत विस्मृतं बद्धान्तरीये स्मृतिरस्य नास्ति ।।३९।।

अच्छे भोजन की चिन्ता किये विना वह उस माँगे हुए भोजन से ही सन्तुष्ट रहे, उस रत्न के बारे में वह भूल जाय और उसे यह स्मरण नहीं रहे कि वह रत्न उसके उत्तरीय में बँधा हुआ है ।

तमेव सो पश्यति पूर्वमित्रो येनास्य दत्तं रतनं गृहे स्वे ।
तमेव सुष्ठू परिभाषयित्वा दर्शेति रत्नं वसनान्तरस्मिन् ।।४०।।

उसका वह पुराना मित्र, जिसने उसको अपने घर में उस रत्न को दिया था, उसे देखता है । वह मित्र उसे अच्छी तरह समझाकर वस्त्र में बँधे हुए उस रत्न को उसे दिखाता है ।

दृष्ट्वा च सो परमसुखैः समर्पितो रत्नस्य तस्यो अनुभाव ईदृशः ।
महाधनी कोशबली च सो भवेत् समर्पितः कामगुणेहि पञ्चहि ।।४१।।

उस रत्न को देखकर वह (मनुष्य) अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है । उस रत्न का ऐसा प्रभाव है कि वह व्यक्ति प्रभूत धन एवं कोशबल से सम्पन्न हो जाता है और पाँच कामगुणों को प्राप्त कर लेता है ।

एमेव भगवन् वयमेवरूपम् अजानमाना प्रणिधानपूर्वकम् ।
तथागतेनैव इदं हि दत्तं भवेषु पूर्वेष्विह दीर्घरात्रम् ।।४२।।

हे भगवन् ! उसी प्रकार पूर्वभवों में दीर्घकाल से तथागत के द्वारा ही दिये गये इस प्रकार के इस पूर्वजन्म के व्रत को जानते हुए भी हमलोग,

वयं च भगवन्निह बालबुद्धयो अजानका स्मो सुगतस्य शासने ।
निर्वाणमात्रेण वयं हि तुष्टा न उत्तरी प्रार्थयि नापि चिन्तयी ।।४३।।

हे भगवन् ! यहाँ सुगत के शासन में मूर्ख एवं अज्ञान बनकर रहते थे; क्योंकि हम निर्वाण के एक भाग-मात्र से ही सन्तुष्ट रहते थे और श्रेष्ठ ज्ञान की न कभी आवश्यकता समझते और न उसकी चिन्ता करते थे ।

वयं च संबोधित लोकबन्धुना न एष एतादृश काचि निर्वृतिः ।
ज्ञानं प्रणीतं पुरुषोत्तमानां या निर्वृतीयं परमं च सौख्यम् ।।४४।।

तब लोकबन्धु ने हमलोगों को सम्बोधित करके कहा---यह सर्वथा निर्वाण नहीं है । पुरुषोत्तमों के द्वारा प्रणीत ज्ञान ही निर्वाण है और वही श्रेष्ठ सुख है ।

इदं चुदारं विपुलं बहूविधं अनुत्तरं व्याकरणं च श्रुत्वा ।
प्रीतो उदग्रा विपुला स्म जाताः परस्परं व्याकरणाय नाथ ।।४५।।

हे नाथ ! उस उदार, विपुल, बहुविद्य एवं श्रेष्ठ भविष्यवाणी को सुनकर वे परस्पर एक दूसरे की भविष्यवाणी सुनने के लिए अत्यन्त प्रसन्न एवं उदग्र हो उठे ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये पञ्चभिक्षुशतव्याकरणपरिवर्तो नामाष्टमः ।।८।।

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का आठवाँ पंचभिक्षुशतव्याकरणपरिवर्त समाप्त हुआ ।

आनन्दादिव्याकरणपरिवर्त

अथ खल्वायुष्मानानन्दस्तस्यां वेलायामेवं चिन्तयामास । अप्येव नाम वयमेवंरूपं व्याकरणं प्रतिलभेमहि । एवं च चिन्तयित्वानुविचिन्त्य प्रार्थयित्वोत्थायासनाद् भगवतः पादयोर्निपत्य आयुष्मांश्च राहुलोऽप्येवं चिन्तयित्वानुविचिन्त्य प्रार्थयित्वा भगवतः पादयोर्निपत्यैवं वाचमभाषत । अस्माकमपि तावद् भगवन्नवसरो भवत्वस्माकमपि तावत् सुगतावसरो भवतु । अस्माकं हि भगवान् पिता जनको नयनं त्राणं च । वयं हि भगवन् सदेवमानुषासुरे लोकेऽतीव चित्रीकृताः । भगवतश्चैते पुत्रा भगवतश्चोपस्थायका भगवतश्च धर्मकोशं धारयन्तीति । तन्नाम भगवन् क्षिप्रमेव प्रतिरूपं भवेद् यद् भगवानस्माकं व्याकुर्यादनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ ।

तदनन्तर, उस समय आयुष्मान् आनन्द ने ऐसा सोचा—क्यों नहीं हमलोग भी अपने विषय में इस तरह की भविष्यवाणी प्राप्त करें । ऐसा सोचकर, ऐसा विचारकर तथा ऐसा चाहता हुआ वह आसन से उठकर भगवान् के चरणों में गिर पड़ा । आयुष्मान् राहुल भी ऐसा सोचकर, ऐसा विचारकर तथा ऐसा चाहता हुआ भगवान् के चरणों में गिरकर इस प्रकार बोला—हे भगवन् ! हे सुगत ! हमें भी अपने विषय में भविष्यवाणी सुनने का अवसर मिले; क्योंकि हे भगवन् ! आप ही हमारे पिता, जनक, नेत्र एवं रक्षक हैं । हे भगवन् ! देवता, मनुष्य और असुरों से युक्त इस संसार में हमलोग अत्यन्त कुतूहल के विषय में हैं। यतः, लोग हमारे विषय में कहते हैं कि ये भगवान् के पुत्र हैं, भगवान् के सेवक हैं एवं भगवान् के धर्मकोष के धारक हैं । हे भगवन् ! यह सर्वथा उचित होगा कि आप शीघ्र ही हमलोगों की श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति के विषय में भविष्यवाणी करें ।

अन्ये च द्वे भिक्षुसहस्रे सातिरेके शैक्षाशैक्षाणां श्रावकाणामुत्थायासनेभ्य एकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वाञ्जलिं प्रगृह्य भगवतोऽभिमुखं भगवन्तमुल्लोकयमाने तस्थतुरेतामेव चिन्तामनुविचिन्तयमाने यदुतेदमेव बुद्धज्ञानम् । अप्येव नाम वयमपि व्याकरणं प्रतिलभेमह्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधाविति ।

अन्य और भी दो हजार दूसरे शैक्ष एवं अशैक्ष श्रावक अपने-अपने आसनों से उठे, अपनी चादरें एक कन्धे पर कीं और हाथ जोड़कर भगवान् की ओर देखते हुए उसी विषय का, अर्थात् बुद्धज्ञान का चिन्तन करते हुए वहाँ खड़े होकर सोचने लगे—क्यों न हमलोग भी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय में भगवान् से भविष्यवाणी प्राप्त करें ।

अथ खलु भगवानायुष्मन्तमानन्दमामन्त्रयत स्म । भविष्यसि त्वमानन्दानागतेऽध्वनि सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् । द्वाषष्टीनां बुद्धकोटीनां सत्कारं कृत्वा गुरुकारं माननां पूजनां च कृत्वा तेषां बुद्धानां भगवतां सद्धर्मं धारयित्वा शासनपरिग्रहं च कृत्वानुत्तरां सम्यक् संबोधिमभिसंभोत्स्यसि । स त्वमानन्द अनुत्तरां सम्यक्संबुद्धः समानो विंशतिगङ्गानदीवालुकासमानि बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि परिपाचयिष्यस्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । समृद्धं च ते बुद्धक्षेत्रं भविष्यति वैडूर्यमयं च । अनवनामितवैजयन्ती च नाम सा लोकधातुर्भविष्यति । मनोज्ञशब्दाभिगर्जितश्च नाम स कल्पो भविष्यति । अपरिमितांश्च कल्पांस्तस्य भगवतः सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यायुष्प्रमाणं भविष्यति येषां कल्पानां न शक्यं गणनया पर्यन्तोऽधिगन्तुम् । तावदसंख्येयानि तानि कल्पकोटीनयुतशतसहस्राणि तस्य भगवत आयुष्प्रमाणं भविष्यति । यावच्चानन्द तस्य भगवतः सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यायुष्प्रमाणं भविष्यति । तद्द्विगुणं परिनिर्वृतस्य सद्धर्मः स्थास्यति । यावांस्तस्य भगवतः सद्धर्मः स्थास्यति तद्द्विगुणं सद्धर्मप्रतिरूपकं स्थास्यति । तस्य खलु पुनरानन्द सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञस्य तथागतस्य दशसु दिक्षु बहूनि गङ्गानदीवालुकासमानि बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राणि वर्णं भाषिष्यन्ति ।

तदनन्तर, भगवान् आयुष्मान् आनन्द से बोले—हे आनन्द ! भविष्य में तुम 'सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञ' नामक तथागत होकर अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, ज्ञान और सदाचार से युक्त, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ दमनयोग्य पुरुषों के नियन्ता तथा देवों और मनुष्यों के शासक भगवान् बुद्ध बनोगे । बासठ कोटि उन भगवान् बुद्धों का सत्कार, आदर, सम्मान तथा पूजन करके उन भगवान् बुद्धों के सद्धर्म को धारण करोगे तथा उनकी आज्ञा को ग्रहण करके श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करोगे । हे आनन्द ! तुम श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करके बीस गंगा की वालुका के समान कोटीनयुत शतसहस्र बोधिसत्त्वों को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि का उपदेश दोगे । तुम्हारा वह बुद्धक्षेत्र समृद्ध एवं वैदूर्यमय होगा । उस लोकधातु का नाम 'अनवनामितवैजयन्ती' होगा । और 'मनोज्ञशब्दाभिगर्जित' नामक वह कल्प होगा । उन तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् 'सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञ' की आयु अपरिमित कल्पों की होगी, जिन कल्पों का गिनती के द्वारा अन्त पाना सम्भव नहीं है । उन भगवान् की आयु उतने असंख्य कोटीनयुत शतसहस्र कल्नों की होगी, जितनी हे आनन्द ! तथागत, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध

उन भगवान् 'सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञ' की आयु होगी। उनके परिनिर्वाण प्राप्त करने के अनन्तर उसके दुगुने समय तक सद्धर्म स्थित रहेगा। जितने समय तक उन भगवान् का सद्धर्म स्थित रहेगा, उससे दुगुने समय तक सद्धर्म का प्रतिरूप रहेगा। हे आनन्द! उन तथागत 'सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञ' की प्रशंसा दसों दिशाओं में अनेक गंगा नदी की बालुका के समान कोटि खर्व शतसहस्र बुद्ध करेंगे।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, उस समय भगवान् ने ये गाथाएँ कहीं---

आरोचयामी अहु भिक्षुसंघे आनन्दभद्रो मम धर्मधारकः ।
अनागतेऽध्वानि जिनो भविष्यति पूजित्व षष्टि सुगतान कोट्यः ।।१।।

मैं भिक्षुसंघ के सम्मुख घोषणा करता हूँ कि मेरे धर्म को धारण करनेवाला आनन्दभद्र भविष्य में साठ कोटि सुगतों की पूजा करके स्वयं बुद्ध बनेगा।

नामेन सो सागरबुद्धिधारी अभिज्ञप्राप्तो इति तत्र विश्रुतः ।
परिशुद्धक्षेत्रस्मि सुदर्शनीये अनोनतायां ध्वजवैजयन्त्याम् ।।२।।

फहराते हुए ध्वज एवं पताका से युक्त उस सुदर्शनीय परिशुद्ध नामक क्षेत्र में वह अभिज्ञाओं को प्राप्त करके सागरवरधरबुद्धिधारी नाम से प्रसिद्ध होगा।

तहि बोधिसत्त्वा यथ गङ्गवालिकास्ततश्च भूयो परिपाचयिष्यति ।
महर्द्धिकश्चो स जिनो भविष्यति दशद्दिशे लोकविघुष्टशब्दः ।।३।।

वहाँ वह गंगा की बालुका के समान तथा उससे भी अधिक बोधिसत्त्वों को बुद्ध-ज्ञान में परिपक्व बनायगा। वह महती शक्तियों से सम्पन्न बुद्ध होगा और उसके उपदेश संसार की दसों दिशाओं में गूँज उठेंगे।

अमितं च तस्यायु तदा भविष्यति यः स्थास्यते लोकहितानुकम्पकः ।
परिनिर्वृ तस्यापि जिनस्य तायिनो द्विगुणं च सद्धर्मु स तस्य स्थास्यति ।।४।।

वह लोक का हित एवं उसपर दया करनेवाला होगा एवं उसकी आयु अमित होगी। संसार के रक्षक उस बुद्ध के निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर उसके दुगुने समय तक उसका सद्धर्म स्थित होगा।

प्रतिरूपकं तद्द्विगुणेन भूयः संस्थास्यते तस्य जिनस्य शासने ।
तदापि सत्त्वा यथ गङ्गवालिका हेतुं जनेष्यन्तिह बुद्धबोधौ ।।५।।

उन जिन के शासनकाल में वर्त्तमान सद्धर्म का प्रतिरूप उससे भी दुगुने समय तक स्थित रहेगा। उस समय भी गंगा की बालुका के समान असंख्य प्राणी इस संसार में बुद्धज्ञान के विषय में अपनी इच्छा प्रकट करेंगे।

अथ खलु तस्यां पर्षदि नवयानसंप्रस्थितानामष्टानां बोधिसत्त्वसहस्राणामेतदभवत् । न बोधिसत्त्वानामपि तावदस्माभिरेवमुदारं व्याकरणं श्रुतपूर्वं कः पुनर्वादः श्रावकाणाम् । कः खल्वत्र हेतुर्भविष्यति कः प्रत्यय इति । अथ खलु भगवांस्तेषां बोधिसत्त्वानां चेतसैव चेतः परिवितर्कमाज्ञाय तान् बोधिसत्त्वानामन्त्रयामास । सममस्माभिः कुलपुत्रा एकक्षण एकमुहूर्ते मया चानन्देन चानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ चित्तमुत्पादितं धर्मगगनाभ्युद्गतराजस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य संमुखम् । तत्रैष कुलपुत्रा बाहुश्रुत्ये च सततसमितमभियुक्तोऽभूदहं च वीर्यारम्भेऽभियुक्तः । तेन मया क्षिप्रतरमनुत्तरा सम्यक्संबोधिरभिसंबुद्धा । अयं पुनरानन्दभद्रो बुद्धानां भगवतां सद्धर्मकोशधर एव भवति स्म । यदुत बोधिसत्त्वानां परिनिष्पत्तिहेतोः प्रणिधानमेतत् कुलपुत्रा अस्य कुलपुत्रस्येति ।

तत्पश्चात्, उस परिषद् में बैठे हुए आठ हजार बोधिसत्त्वों के, जिन्होंने यान को तुरत ग्रहण किया था, मन में ऐसा विचार आया---हमने बोधिसत्त्वों के विषय में भी इस प्रकार की उदार भविष्यवाणी पहले कभी नहीं सुनी थी, फिर श्रावकों के विषय में क्या कहना? इसका क्या हेतु है, क्या कारण है? तदनन्तर, भगवान् उन बोधिसत्त्वों के मन के वितर्कों का अपने वितर्कों से अनुमान लगाकर उन बोधिसत्त्वों से बोले---हे कुलपुत्रो! एक ही साथ हमने तथा आनन्द ने एक ही मुहूर्त्त में तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध 'धर्मगगनाभ्युद्गतराज' के सम्मुख श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय में ज्ञान प्राप्त किया था। हे कुलपुत्रो! उस समय यह आनन्द निरन्तर परिश्रमपूर्वक विशाल ज्ञान के अर्जन में तत्पर रहा और मैं शक्ति प्राप्त करने में संलग्न रहा। उसके फलस्वरूप अत्यन्त शीघ्र ही मुझे श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति हो गई। यह आनन्दभद्र भगवान् बुद्धों के सद्धर्म-रूप खजाने का धारक हो गया। हे कुलपुत्रो! बोधिसत्त्वों को पूर्ण निष्पन्न बनाने के लिए ही इस कुलपुत्र, आनन्द, का यह व्रत था।

अथ खल्वायुष्मानानन्दो भगवतोऽन्तिकादात्मनो व्याकरणं श्रुत्वानुत्तरायां सम्यक्संबोधावात्मनश्च बुद्धक्षेत्रगुणव्यूहान् श्रुत्वा पूर्वप्रणिधानचर्यां च श्रुत्वा तुष्ट उदग्र आत्तमनस्कः प्रमुदितः प्रीतिसौमनस्यजातोऽभूत् । तस्मिंश्च समये बहूनां बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राणां सद्धर्ममनुस्मरति स्मात्मनश्च पूर्वप्रणिधानम् ।

तत्पश्चात्, भगवान् के मुख से अपने श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के प्राप्त करने के विषय में भविष्यवाणी सुनकर, अपने बुद्धक्षेत्र में अनेक गुणों को सुनकर तथा पूर्वकाल में लिये गये अपने व्रत को सुनकर आयुष्मान् आनन्द तुष्ट, उदग्र, आत्तमनस्क और प्रमुदित हुए तथा उनके हृदय में प्रेम तथा आनन्द की उत्पत्ति हुई। उस समय उन अनेक कोटि खर्व शतसहस्र बुद्धों के सद्धर्म के उपदेश एवं अपने पूर्वकृत व्रत का स्मरण हो आया।

अथ खल्वायुष्मानानन्दस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तत्पश्चात्, आयुष्मान् आनन्द ने उस समय ये गाथाएँ कहीं—

आश्चर्यभूता जिन अप्रमेया ये स्मारयन्ति मम धर्मदेशनाम् ।
परिनिर्वृतानां हि जिनान तायिनां समनुस्मरामी यथ अद्य श्वो वा ।।६।।

उन अप्रमेय जिनों का कार्य सचमुच में आश्चर्यजनक है, जो मुझे निर्वाण प्राप्त एवं संसार के रक्षक बुद्धों को धर्मदेशना का स्मरण कराते हैं। मुझे यह बात आज या कल घटित हुई जैसी प्रतीत होतीं है।

निष्काङ्क्षप्राप्तोऽस्मि स्थितोऽस्मि बोधये उपायकौशल्य ममेदमीदृशम् ।
परिचारकोऽहं सुगतस्य भोमि सद्धर्म धारेमि च बोधिकारणात् ।।७।।

मेरा उपायकौशल्य ऐसा है कि मेरे सन्देह दूर हो गये और मैं बोधिप्राप्ति के लिए तत्पर हूँ। मैं सुगत का सेवक हो गया हूँ और बोधि के लिए सद्धर्म को धारण करता हूँ।

अथ खलु भगवानायुष्मन्तं राहुलभद्रमामन्त्रयते स्म । भविष्यसि त्वं राहुलभद्रानागतेऽध्वनि सप्तरत्नपद्मविक्रान्तगामी नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् । दशलोकधातुपरमाणुरजःसमांस्तथागतानर्हतः सम्यक्संबुद्धान् सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वार्चयित्वा सदा तेषां बुद्धानां भगवतां ज्येष्ठपुत्रो भविष्यसि तद्यथापि नाम ममैतर्हि । तस्य खलु पुना राहुलभद्र भगवतः सप्तरत्नपद्मविक्रान्तगामिनस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यैवंरूपमेवायुष्प्रमाणं भविष्यत्येवंरूपैव सर्वाकारगुणसम्पद् भविष्यति । तद्यथापि नाम तस्य भगवतः सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य सर्वाकारगुणोपेता बुद्धक्षेत्रगणव्यूहा भविष्यन्ति । तस्यापि राहुल सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य त्वमेव ज्येष्ठपुत्रो भविष्यसि । ततः पश्चात् परेणानुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंभोत्स्यसीति ।

तत्पश्चात्, भगवान् आयुष्मान् राहुलभद्र से बोले—हे राहुलभद्र! तुम भविष्य में 'सप्तरत्नपद्मविक्रान्तगामी' नामक तथागत होकर अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, ज्ञान और सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ दमनयोग्य पुरुषों के नियन्ता तथा देवों और मनुष्यों के शासक भगवान् बुद्ध बनोगे। दसलोक धातुओं के रजकणों के समान असंख्य तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों का सत्कार करके, आदर करके, सम्मान करके, पूजा करके तथा अर्चना करके तुम उन भगवान् बुद्धों के सदा ज्येष्ठ पुत्र होगे। जैसे कि इस समय तुम मेरे हो। पुनः हे राहुलभद्र! उन तथागत, अर्हत्, सम्यक सम्बुद्ध, भगवान् 'सप्तरत्नपद्म-

विक्रान्तगामी' की उतनी ही आयु होगी। इसी प्रकार से सब प्रकार की गुणसम्पत्ति होगी, जिस प्रकार तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, उन भगवान् 'सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञ' की थी। तुम्हारे बुद्धक्षेत्र के भी पूर्णरूपेण वे ही गुण होंगे, जो गुण उन तथा अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् 'सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञ' के बुद्धक्षेत्र के थे। हे राहुल ! तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, उन 'सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञ' के तुम्हीं ज्येष्ठ पुत्र होगे। उसके अनन्तर तुम श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करोगे।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तत्पश्चात्, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं--

अयं ममा राहुल ज्येष्ठपुत्रो यो औरसो आसि कुमारभावे।
बोधिं पि प्राप्तस्य ममैष पुत्रो धर्मस्य दायाद्यधरो महर्षिः ॥८॥

यह मेरा ज्येष्ठ पुत्र राहुल है, जो मेरे राजकुमार-काल में मेरा औरस पुत्र था। मेरा यह पुत्र बोधिप्राप्त मेरे धर्म की सम्पत्ति का धारक महर्षि है।

अनागतेऽध्वे बहुबुद्धकोट्यो यान् द्रक्ष्यसे येष प्रमाणु नास्ति।
सर्वेष तेषां हि जिनान पुत्रो भणिष्यती बोधि गवेषमाणः ॥९॥

ज्ञान की खोज करनेवाला यह राहुल भविष्य में गणना से परे जिन अनेक कोटि बुद्धों को देखेगा, उन सभी बुद्धों का वह पुत्र होगा।

अज्ञात चर्या इय राहुलस्य प्रणिधानमेतस्य अहं प्रजानमि।
करोति संवर्णन लोकबन्धुषु अहं किला पुत्र तथागतस्य ॥१०॥

राहुल के लिए यह चर्या अज्ञात है, किन्तु इसके पूर्वकालकृत व्रत को मैं जानता हूँ। लोकबन्धुओं के सम्मुख वह कहता है कि मैं तथागत का पुत्र हूँ।

गुणान कोटीनयुताप्रमेयाः प्रमाणु येषां न कदाचिदस्ति।
ये राहुलस्येह ममौरसस्य तथा हि एषो स्थितु बोधिकारणात् ॥११॥

मेरे इस औरस पुत्र राहुल के जो कोटि खर्व अप्रमेय गुण हैं, उनकी गणना कभी नहीं की जा सकती। फिर भी, यह राहुल इस संसार में बोधि की प्राप्ति के लिए तत्पर है।

अद्राक्षीत् खलु पुनर्भगवांस्ते द्वे श्रावकसहस्रे शैक्षाशैक्षाणां श्रावकाणां भगवन्तमवलोकयमानेऽभिमुखं प्रसन्नचित्ते मृदुचित्ते मार्दवचित्ते। अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामायुष्मन्तमानन्दमामन्त्रयते स्म। पश्यसि त्वमानन्दैते द्वे श्रावकसहस्रे शैक्षाशैक्षाणां श्रावकाणाम्। आह। पश्यामि भगवन् पश्यामि सुगत। भगवानाह। सर्व एवैत आनन्द द्वे भिक्षुसहस्रे समं बोधिसत्त्वचर्यां समुदानयिष्यन्ति पञ्चाशल्लोकधातुपरमाणुरजःसमांश्च बुद्धान् भगवतः सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वार्चयित्वापचायित्वा सद्धर्मं च

धारयित्वा पश्चिमे समुच्छ्रय एकक्षणेनैकमुहूर्तेनैकलवेनैकसंनिपातेन दशसु दिक्ष्वन्योन्यासु लोकधातुषु स्वेषु स्वेषु बुद्धक्षेत्रेष्वनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंभोत्स्यन्ते । रत्नकेतुराजा नाम तथागता अर्हंन्तः सम्यक्संबुद्धा भविष्यन्ति । परिपूर्णं चैषां कल्पमायुष्प्रमाणं भविष्यति । समाश्चैषां बुद्धक्षेत्रगुणव्यूहा भविष्यन्ति । समः श्रावकगणो बोधिसत्त्वगणश्च भविष्यति । समं चैषां परिनिर्वाणं भविष्यति । समश्चैषां सद्धर्मः स्थास्यति ।

पुनः भगवान् ने, सम्मुख वर्त्तमान भगवान् को देखते हुए प्रसन्नचित्त, मृदुचित्त एवं मार्दवचित्तवाले उन दो सहस्र शैक्ष एवं अशैक्ष श्रावकों को देखा। तदनन्तर, भगवान् ने उस समय आयुष्मान् आनन्द से कहा—हे आनन्द ! क्या तुम इन दो सहस्र शैक्ष एवं अशैक्ष श्रावकों को देख रहे हो ? आनन्द ने कहा—हे भगवन् ! देख रहा हूँ। हे सुगत ! देख रहा हूँ। भगवान् ने कहा—हे आनन्द। ये सभी दो हजार भिक्षु एक ही साथ बोधिसत्त्वचर्या को प्राप्त करेंगे तथा पचास लोकधातुओं के रजकणों के समान असंख्य भगवान् बुद्धों का सत्कार करके, सम्मान करके, पूजन करके, अर्चन करके तथा अपचायन करके एवं सद्धर्म को धारण करके अन्तिम शरीर धारण की अवस्था में, एक क्षण, लव मुहूर्त्त में एक ही साथ दसों दिशाओं में वर्त्तमान भिन्न-भिन्न लोकधातुओं में स्थित अपने-अपने बुद्धक्षेत्रों में श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करेंगे। वे रत्नकेतुराज नामक तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध होंगे। इनकी आयु पूरे एक कल्प की होगी। इनके बुद्धक्षेत्रों के गुणसमूह एक समान होंगे। इनके श्रावकगण तथा बोधिसत्त्वगण बराबर होंगे। इनका निर्वाण भी समान होगा। इनका सद्धर्म भी समान समय तक स्थित रहेगा।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तत्पश्चात्, उस समय भगवान् ने ये गाथाएँ कहीं—

द्वे वै सहस्रे इमि श्रावकाणां आनन्द ये ते मम अग्रतः स्थिताः ।
तान् व्याकरोमी अहमद्य पण्डिताननागतेऽध्वानि तथागतत्वे ।।१२।।

हे आनन्द ! जो ये दो हजार श्रावक मेरे सामने खड़े हैं, उन पण्डितों के भविष्य में तथागत्व की प्राप्ति के विषय में आज मैं भविष्यवाणी करता हूँ।

अनन्तऔपम्यनिदर्शनेहि बुद्धान अग्र्यां करियाण पूजाम् ।
आरागयिष्यन्ति ममाग्रबोधि स्थिहित्व चरिमस्मि समुच्छ्रयस्मिन् ।।१३।।

बुद्धों की श्रेष्ठ पूजा करके अनन्त दृष्टान्तों एवं निदर्शनों के द्वारा वे अपने अन्तिम शरीरधारण की अवस्था में मेरी अग्रबोधि को प्राप्त करेंगे।

एकेन नामेन दशद्दिशासु क्षणस्मि एकस्मि तथा मुहूर्ते ।
निषद्य च द्रुमप्रवराण मूले बुद्धा भविष्यन्ति स्पृशित्व ज्ञानम् ।।१४।।

दसों दिशाओं में एक ही नाम से प्रसिद्ध वे श्रेष्ठ वृक्षों के मूल में बैठे हुए एक ही मुहूर्त्त में ज्ञान को प्राप्त करके बुद्ध हो जायेंगे।

एकं च तेषामिति नाम भेष्यति रत्नस्य केतूतिह लोकि विश्रुताः।
समानि क्षेत्राणि वराणि तेषां समो गणः श्रावकबोधिसत्त्वाः ॥१५॥

उनका एक ही नाम होगा। वे 'रत्नकेतु' नाम से संसार में प्रसिद्ध होंगे। उनके श्रेष्ठ क्षेत्र समान होंगे तथा उनके श्रावकों एवं बोधिसत्त्वों का गण भी समान होगा।

ऋद्धिप्रभूता इह सर्वि लोके समन्ततस्ते दशसु दिशासु।
धर्मं प्रकाशेत्व यदापि निर्वृताः सद्धर्मु तेषां सममेव स्थास्यति ॥१६॥

इस सारे संसार में सर्वत्र दसों दिशाओं में धर्म को प्रकाशित करके अलौकिक शक्तिसम्पन्न वे जब निर्वाण को प्राप्त हो जायेंगे, तब उनका सद्धर्म उनकी स्थितिकाल के समान काल तक स्थित रहेगा।

अथ खलु ते शैक्षाशैक्षाः श्रावका भगवतोऽन्तिकात् संमुखं स्वानि स्वानि व्याकरणानि श्रुत्वा तुष्टा उदग्रा आत्तमनस्काः प्रमुदिताः प्रीतिसौमनस्यजाता भगवन्तं गाथाभ्यामध्यभाषन्त।

तत्पश्चात्, वे शैक्ष एवं अशैक्ष श्रावक भगवान् के मुख से सम्मुख ही अपने-अपने बारे में भविष्यवाणी सुनकर तुष्ट, उदग्र, आत्तमनस्क एवं प्रमुदित हो गये तथा उनके हृदय में प्रेम एवं सौमनस्य उत्पन्न हुए। वे भगवान् से दो गाथाओं के द्वारा बोले—

तृप्ता स्म लोकप्रद्योत श्रुत्वा व्याकरणं इदम्।
अमृतेन यथा सिक्ताः सुखिता स्म तथागत ॥१७॥

हे लोक के प्रकाशक! इस भविष्यवाणी को सुनकर हम तृप्त हो गये। हे तथागत! हम ऐसे सुखी हुए, मानों हमपर अमृत की वर्षा हुई हो।

नास्माकं काङक्षा विमतिर्न भेष्याम नरोत्तमाः।
अद्यास्माभिः सुखं प्राप्तं श्रुत्वा व्याकरणं इदम् ॥१८॥

हे मनुष्यश्रेष्ठ! हमें अब सन्देह एवं विमति नहीं होगी। आज इस भविष्यवाणी को सुनकर हमलोगों को अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याय आनन्दराहुलाभ्यामन्याभ्यां च
द्वाभ्यां भिक्षुसहस्राभ्यां व्याकरणपरिवर्तो नाम नवमः ॥९॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का आनन्द, राहुल और अन्य दो हजार
भिक्षुओं के द्वारा धारण किया गया नवाँ आनन्दादि-
व्याकरणपरिवर्त समाप्त हुआ।

धर्मभाणकपरिवर्त

अथ खलु भगवान् भैषज्यराजं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमारभ्य तान्यशीतिं बोधिसत्त्वसहस्राण्यामन्त्रयते स्म । पश्यसि त्वं भैषज्यराजास्यां पर्षदि बहुदेवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्यान् भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकाः श्रावकयानीयान् प्रत्येकबुद्धयानीयान् बोधिसत्त्वयानीयांश्च यैरयं धर्मपर्यायस्तथागतस्य संमुखं श्रुतः । आह । पश्यामि भगवन् पश्यामि सुगत । भगवानाह । सर्वे खल्वेते भैषज्यराज बोधिसत्त्वा महासत्त्वा यैरस्यां पर्षद्यन्तश एकापि गाथा श्रुतैकपदमपि श्रुतं यैर्वा पुनरन्तश एकचित्तोत्पादेनाप्यनुमोदितमिदं सूत्रं सर्वा एता अहं भैषज्यराज चतस्रः पर्षदो व्याकरोम्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । येऽपि केचिद् भैषज्यराज तथागतस्य परिनिर्वृतस्येमं धर्मपर्यायं श्रोष्यन्त्यन्तश एकगाथामपि श्रुत्वान्तश एकेनापि चित्तोत्पादेनाभ्यनुमोदयिष्यन्ति तानप्यहं भैषज्यराज कुलपुत्रान् वा कुलदुहितॄर्वा व्याकरोम्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । परिपूर्णबुद्धकोटीनयुतशतसहस्रपर्युपासिताविनस्ते भैषज्यराज कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा भविष्यन्ति । बुद्धकोटीनयुतशतसहस्रकृतप्रणिधानास्ते भैषज्यराज कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा भविष्यन्ति । सत्त्वानामनुकम्पार्थमस्मिन् जम्बुद्वीपे मनष्येषु प्रत्याजाता वेदितव्याः । य इतो धर्मपर्र्यायादन्तश एकगाथामपि धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति प्रकाशयिष्यन्ति संग्राहयिष्यन्ति लिखिष्यन्ति लिखित्वा चानुस्मरिष्यन्ति कालेन च कालं व्यवलोकयिष्यन्ति । तस्मिश्च पुस्तके तथागतगौरवमुत्पादयिष्यन्ति शास्तृगौरवेण सत्करिष्यन्ति गुरुकरिष्यन्ति मानयिष्यन्ति पूजयिष्यन्ति । तं च पुस्तकं पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावाद्यादिभिर्नमस्काराञ्जलिकर्मभिश्च पूजयिष्यन्ति । ये केचिद् भैषज्यराज कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वेतो धर्मपर्यायादन्तश एकगाथामपि धारयिष्यन्त्यनुमोदयिष्यन्ति वा सर्वांस्तानहं भैषज्यराज व्याकरोम्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ ।

तदनन्तर, भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज को विशेष रूप से सम्बोधित करते हुए उन अस्सी सहस्र बोधिसत्त्वों से बोले---हे भैषज्यराज ! तुम इस सभा में अनेक देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य एवं मनुष्येतर प्राणी भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, श्रावकयानीय, प्रत्येकबुद्धयानीय तथा बोधिसत्त्वयानीय

को, जिन्होंने इस धर्मपर्याय को तथागत के सम्मुख सुना है, देख रहे हो । भैषज्यराज ने कहा—हे भगवन् ! देख रहा हूँ । हे सुगत ! देख रहा हूँ । भगवान् ने कहा—हे भैषज्यराज ! ये सभी महासत्त्व बोधिसत्त्व ऐसे हैं, जिन्होंने इस सभा में मन लगाकर एक भी गाथा सुनी है अथवा उसका एक भी पद सुना है या जिन्होंने मन लगाकर एकचित्त होकर इस सूत्र का अनुमोदन किया है । हे भैषज्यराज ! मैं इन सभी चारों परिषदों के द्वारा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति के विषय में भविष्यवाणी करने जा रहा हूँ । हे भैषज्यराज ! जो भी लोग परिनिर्वाणप्राप्त तथागत के इस धर्मपर्याय को सुनेंगे एवं मन लगाकर एक भी गाथा को सुनकर तथा एकचित्त होकर उसका मन से अनुमोदन करेंगे, हे भैषज्यराज ! मैं उन कुलपुत्रों अथवा कुलकन्याओं के द्वारा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति के विषय में भविष्यवाणी करूँगा । हे भैषज्यराज ! वे कुलपुत्र या कुलकन्याएँ पूर्वकाल में कोटीनयुत शतसहस्र बुद्धों की उपासना करनेवाले होंगे । हे भैषज्यराज ! वे कुलपुत्र या कुलकन्याएँ पूर्वकाल में कोटीनयुत शतसहस्र बुद्धों का ध्यान करनेवाले होंगे । प्राणियों पर कृपा करने के लिए ही इन्हें इस जम्बूद्वीप में मनुष्यों के बीच उत्पन्न हुआ जानना चाहिए । जो मन लगाकर इस धर्मपर्याय की एक गाथा भी धारण करेंगे, उच्चारित करेंगे, प्रकाशित करेंगे, समझायेंगे, लिखेंगे, लिखकर याद करेंगे अथवा समयानुसार इसका सम्मान करेंगे तथा उस पुस्तक में तथागत के समान गौरव की भावना रखेंगे, उसे तथागत के समान गौरवपूर्ण समझेंगे और शास्ता के तुल्य गौरव के कारण उसका सत्कार करेंगे, आदर करेंगे, सम्मान करेंगे, तथा पूजा करेंगे एवं उस पुस्तक की पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका, वाद्य आदि वस्तुओं एवं प्रणाम तथा अंजलिकर्मों से पूजा करेंगे तथा हे भैषज्यराज ! जो कुलपुत्र या कुलकन्याएँ मन से इस धर्मपर्याय की एक भी गाथा धारण करेंगे या उसका अनुमोदन करेंगे, हे भैषज्यराज ! उन सबके द्वारा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति के विषय में भविष्यवाणी करता हूँ ।

तत्र भैषज्यराज यः कश्चिदन्यतरः पुरुषो वा स्त्री वैवं वदेत् । कीदृशाः खल्वपि ते सत्त्वा भविष्यन्त्यनागतेऽध्वनि तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा इति । तस्य भैषज्यराज पुरुषस्य वा स्त्रिया वा स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा दर्शयितव्यः । य इतो धर्मपर्यायादन्तशश्चतुष्पादिकामपि गाथां धारयिता श्रावयिता वादेशयिता वा सगौरवो वेह धर्मपर्याये । अयं स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा यो ह्यनागतेऽध्वनि तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो भविष्यति । एवं पश्य । तत् कस्य हेतोः । स हि भैषज्यराज कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा तथागतो वेदितव्यः सदेवकेन लोकेन । तस्य च तथागतस्यैवं सत्कारः कर्तव्यो यः खल्वस्माद्धर्मपर्यायादन्तश एकगाथामपि धारयेत् कः पुनर्वादो य इमं धर्मपर्यायं सकलसमाप्तमुद्गृह्णीयाद् धारयेद्वा वाचयेद् वा पर्यवाप्नुयाद् वा प्रकाशयेद्

वा लिखेद् वा लिखापयेद् वा लिखित्वा चानुस्मरेत् तत्र च पुस्तके सत्कारं कुर्याद् गुरुकारं कुर्यान्माननां पूजनामर्चनामपचायनां पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावाद्याञ्जलिनमस्कारैः प्रणामैः। परिनिष्पन्नः स भैषज्यराज कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ वेदितव्यस्तथागतदर्शी च वेदितव्यो लोकस्य हितानुकम्पकः प्रणिधानवशेनोपपन्नोऽस्मिन् जम्बुद्वीपे मनुष्येष्वस्य धर्मपर्यायस्य संप्रकाशनतायै। यः स्वयमुदारं धर्माभिसंस्कारमुदारां च बुद्धक्षेत्रोपपत्तिं स्थापयित्वास्य धर्मपर्यायस्य संप्रकाशन-

संस्कारमुदारां च बुद्धक्षेत्रोपपत्ति स्थापयित्वास्य धर्मपर्यायस्य संप्रकाशन-

हेतोर्मयि परिनिर्वृते सत्त्वानां हितार्थमनुकम्पार्थं चेहोपपन्नो वेदितव्यस्तथागतदूतः स भैषज्यराज कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा वेदितव्यः। तथागतकृत्यकरस्तथागतसंप्रेषितः स भैषज्यराज कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा संज्ञातव्यो य इमं धर्मपर्यायं तथागतस्य परिनिर्वृतस्य संप्रकाशयेदन्तशो रहसि चौर्येणापि कस्यचिदेकसत्त्वस्यापि संप्रकाशयेदाचक्षीत वा।

हे भैषज्यराज! उस अवसर पर यदि कोई पुरुष या स्त्री इस प्रकार पूछे कि कैसे प्राणी भविष्य में तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध होंगे, तो हे भैषज्यराज! उस पुरुष या उस स्त्री को उस कुलपुत्र या कुलकन्या के दर्शन करा देने चाहिए, जो इस धर्मपर्याय की चार चरणों वाली एक भी गाथा को इस धर्मपर्याय में गौरव-भावना रखता हुआ हृदय से धारण करेगा, सुनायगा अथवा उसका उपदेश करेगा। यही वह कुलपुत्र या कुलकन्या है, जो भविष्य में तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध होगा। ऐसा ही समझो। इसका क्या कारण है? हे भैषज्यराज! देवों-समेत इस लोक को उस कुलपुत्र या कुलदुहिता को तथागत समझना चाहिए, जबकि उस तथागत का भी, जो मन लगाकर इस धर्मपर्याय की एक भी गाथा धारण करता है, इस प्रकार स्वागत करना चाहिए, तो फिर उस तथागत का क्या कहना, जो उस सम्पूर्ण धर्मपर्याय को ग्रहण करे, धारण करे, सुनाये, प्राप्त करे, प्रकाशित करे, लिखे, लिखवाये या लिखकर याद करे और उस पुस्तक का भी पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका, वाद्य, नमस्कार एवं प्रणाम के द्वारा सत्कार करे, आदर करे, सम्मान करे, पूजन करे, अर्चन करे एवं अपचायन करे। हे भैषज्यराज! उस कुलपुत्र या कुलकन्या को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में परिपक्व समझना चाहिए, तथागत के ज्ञान का द्रष्टा समझना चाहिए तथा उसको लोक का हित तथा उसपर दया करनेवाला एवं इस जम्बूद्वीप में रहनेवाले मनुष्यों के बीच इस धर्मपर्याय के प्रकाश के व्रत को पूर्ण करने के लिए उत्पन्न हुआ समझना चाहिए। हे भैषज्यराज! जो कुलपुत्र या कुलकन्या, स्वयं उदार धर्माभिसंस्कार एवं श्रेष्ठ बुद्धक्षेत्र में निवास को छोड़कर मेरे द्वारा परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के बाद भी इस धर्मपर्याय के प्रकाशन के लिए तथा प्राणियों के हित एवं अनुकम्पा के लिए इस संसार

में उत्पन्न हुए हैं, उन्हें तथागत का दूत समझा जाना चाहिए। जो परिनिर्वाण-प्राप्त तथागत के इस धर्मपर्याय को प्रकाशित करे तथा मन लगाकर एकान्त में चोरी से भी किसी एक जीव को भी इसे समझाये या कहे उस कुलपुत्र या कुलकन्या को तथागत के कार्यों को करनेवाला एवं तथागत के द्वारा भेजा गया समझना चाहिए।

यः खलु पुनर्भैषज्यराज कश्चिदेव सत्त्वो दुष्टचित्तः पापचित्तो रौद्रचित्तस्तथागतस्य संमुखं कल्पमवर्णं भाषेत्। यश्च तेषां तथारूपाणां धर्मभाणकानामस्य सूत्रान्तस्य धारकाणां गृहस्थानां वा प्रव्रजितानां वैकामपि वाचमप्रियां संश्रावयेद् भूतां वाभूतां वा। इदमागाढतरं पापकं कर्मेति वदामि। तत् कस्य हेतोः। तथागताभरणप्रतिमण्डितः स भैषज्यराज कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा वेदितव्यः। तथागतं स भैषज्यराजांसेन परिहरति य इमं धर्मपर्यायं लिखित्वा पुस्तकगतं कृत्वांसेन परिहरति। स येन येनैव प्रक्रामेत्तेन तेनैव सत्त्वैरञ्जलीकरणीयः सत्कर्तव्यो गुरुकर्तव्यो मानयितव्यः पूजयितव्योऽर्चयितव्योऽपचायितव्यो दिव्यमानुष्यकैः पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावाद्यखाद्यभोज्यान्नपानयानैरग्रप्राप्तैश्च दिव्यै रत्नराशिभिः। स धर्मभाणकः सत्कर्तव्यो गुरुकर्तव्यो मानयितव्यः पूजयितव्यो दिव्याश्च रत्नराशयस्तस्य धर्मभाणकस्योपनामयितव्याः। तत् कस्य हेतोः। अप्येव नामैकवारमपीमं धर्मपर्यायं संश्रावयेद् यं श्रुत्वाप्रमेया असंख्येयाः सत्त्वाः क्षिप्रमनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ परिनिष्पद्येयुः।

हे भैषज्यराज! जो कोई भी दुष्टचित्त, पापचित्त एवं रौद्रचित्त प्राणी इस कल्प में तथागत के सम्मुख अनुचित बोले तथा जो उस प्रकार के उन धर्मभाणकों, इस सूत्रान्त के धारण करनेवालों, गृहस्थों या संन्यासियों को एक भी वास्तविक या काल्पनिक अप्रिय बात सुनाये, तो वह अत्यन्त घोर पापकर्म का भागी होगा। ऐसा मैं कहता हूँ। ऐसा किसलिए? क्योंकि, हे भैषज्यराज! उस कुलपुत्र या कुलकन्या को तो तथागत के सभी गुणों से सुशोभित समझना चाहिए, जो इस धर्मपर्याय को लिखकर, पुस्तकगत करके, कन्धे पर धारण करता है, हे भैषज्यराज! वह वस्तुतः तथागत को कन्धे पर धारण करता है। वह जिधर-जिधर से जाये उधर-उधर स्वर्ग एवं मनुष्यलोक के प्राणियों को उसे प्रणाम करना चाहिए, उसका सत्कार करना चाहिए, उसका आदर करना चाहिए, उसका सम्मान करना चाहिए, उसका पूजन करना चाहिए, उसका अर्चन करना चाहिए एवं अपचायन करना चाहिए। स्वर्ग एवं इस लोक में प्राप्य पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका, वाद्य, खाद्य भोज्य, अन्न, पान, यान तथा श्रेष्ठ एवं दिव्य रत्नराशियों द्वारा उस धर्मभाणक का सत्कार, आदर, सम्मान एवं पूजन किया जाना चाहिए और उस धर्मभाणक को दिव्य रत्नराशियाँ दी जानी चाहिए। ऐसा क्यों करना चाहिए! ऐसा इसीलिए कि कोई भी मनुष्य एक बार इस धर्म-

पर्याय को सुनाये, जिसे सुनकर अगणित असंख्य प्राणी शीघ्र श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में परिनिष्पन्न हो जायें।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं—

बुद्धत्वे स्थातुकामेन स्वयंभूज्ञानमिच्छता ।
सत्कर्तव्याश्च ते सत्त्वा ये धारेन्ति इमं नयम् ।।१।।

बुद्धत्व में स्थित रहने की कामना करनेवाले तथा स्वयम्भू ज्ञान की इच्छा करनेवाले व्यक्ति को उन प्राणियों का सत्कार करना चाहिए जो इस धर्म को धारण करते हैं।

सर्वज्ञत्वं च यो इच्छेत् कथं शीघ्रं भवेदिति ।
स इमं धारयेत् सूत्रं सत्कुर्याद् वापि धारकम् ।।२।।

जो सर्वज्ञत्व को चाहे और (चाहे) कि किस प्रकार वह उसे शीघ्र प्राप्त हो जाय, तो वह इस सूत्र को धारण करे अथवा इस सूत्र के धारक का सत्कार करे।

प्रेषितो लोकनाथेन सत्त्ववैनेयकारणात् ।
सत्त्वानामनुकम्पार्थं सूत्रं यो वाचयेदिदम् ।।३।।

जो इस सूत्र का वाचन करता है, वह लोकों के स्वामी द्वारा सभी प्राणियों को धर्मोपदेश देने एवं उनपर दया दिखलाने के लिए भेजा गया समझा जाना चाहिए।

उपपत्तिं शुभां त्यक्त्वा स धीर इह आगतः।
सत्त्वानामनुकम्पार्थं सूत्रं यो धारयेदिदम् ।।४।।

जो इस सूत्र को धारण करता है, वह धीर पुरुष अपने श्रेष्ठ स्थान को छोड़कर प्राणियों पर अनुकम्पा करने के लिए यहाँ आया है, ऐसा समझना चाहिए।

उपपत्ति वशा तस्य येन सो दृश्यते तहि ।
पश्चिमे कालि भाषन्तो इदं सूत्रं निरुत्तरम् ।।५।।

यह उसके श्रेष्ठ स्थान का ही प्रभाव है कि वह अन्तिम समय में वहाँ इस श्रेष्ठ सूत्र का उपदेश देते हुए दिखाई पड़ता है।

दिव्येहि पुष्पेहि च सत्करेत मानुष्यकैश्चापि हि सर्वगन्धैः ।
दिव्येहि वस्त्रेहि च छादयेया रत्नेहि अभ्योकिरि धर्मभाणकम् ।।६।।

उस धर्मोपदेशक का दिव्य एवं मनुष्यलोक के फूलों से तथा सब प्रकार के गन्धों से सत्कार करना चाहिए, उसे दिव्य वस्त्रों से आच्छादित करना चाहिए एवं उसपर रत्नों की वर्षा करनी चाहिए।

कृताञ्जली तस्य भवेत नित्यं यथा जिनेन्द्रस्य स्वयम्भुवस्तथा ।
यः पश्चिमे कालि सुभैरवेऽस्मिन् परिनिर्वृतस्य इद सूत्र धारयेत् ॥७॥

जो परिनिर्वाण-प्राप्त बुद्ध के इस सूत्र को इस अन्तिम एवं भयंकर काल में धारण करता है, उसको भी स्वयम्भू जिनेन्द्र के समान सदा सादर प्रणाम करना चाहिए ।

खाद्यं च भोज्यं च तथान्नपानं विहारशय्यासनवस्त्रकोट्यः ।
ददेय पूजार्थ जिनात्मजस्य अप्येकवारं पि वदेत सूत्रम् ॥८॥

जो एक बार भी इस सूत्र का उपदेश करे, उस बुद्धपुत्र की पूजा के लिए खाद्य, भोज्य, अन्न, पान, करोड़ों विहार एवं शय्या, आसन और वस्त्र देना चाहिए ।

तथागतानां करणीय कुर्वते मया च सो प्रेषित मानुषं भवम् ।
यः सूत्रमेतच्चरिमस्मि काले लिखेय धारेय श्रुणेय वापि ॥९॥

जो इस सूत्र को इस अन्तिम समय में लिखता है, धारण करता है अथवा सुनता है, वह तथागतों के कर्त्तव्य को पालन करनेवाला है तथा मनुष्यलोक में मेरे द्वारा भेजा गया है ।

यश्चैव स्थित्वेह जिनस्य संमुखं आवेदवर्णं परिपूर्ण कल्पम् ।
प्रदुष्टचित्तो भृकुटिं करित्वा बहुं नरोऽसौ प्रसवेत पापम् ॥१०॥

जो दुष्टप्रकृति मनुष्य भौंहें टेढ़ी करके यहाँ सुगत के सम्मुख खड़ा होकर पूरे कल्प तक अनुचित वचन बोलता है, वह घोर पाप करता है ।

यश्चापि सूत्रान्तधराण तेषां प्रकाशयन्तानिह सूत्रमेतत् ।
अवर्णमाक्रोश वदेय तेषां बहूतरं तस्य वदामि पापम् ॥११॥

तथा, जो इस लोक में इस सूत्र को प्रकाशित करनेवाले उन सूत्रधारकों के विषय में अनुचित एवं अभद्र बातें बोलता है, उसे मैं बहुत वड़ा पापी कहता हूँ ।

नरश्च यो संमुख संस्तवेथा कृताञ्जली मां परिपूर्णकल्पम् ।
गाथान कोटीनयुतैरनेकैः पर्येषमाणो इममग्रबोधिम् ॥१२॥

जो व्यक्ति इस अग्रबोधि को चाहता हुआ हाथ जोड़कर मेरे सम्मुख खड़ा होकर पूरे कल्प भर अनेक कोटीनयुत गाथाओं से मेरी स्तुति करता है,

बहुं खु सो तत्र लभेत पुण्यं मां संस्तवित्वान प्रहर्षजातः ।
अतश्च सो बहुतरकं लभेत यो वर्ण तेषां प्रवदेन्मनुष्यः ॥१३॥

वह प्रसन्नतापूर्वक मेरी स्तुति करके प्रभूत पुण्य प्राप्त करता है । इससे भी अधिक पुण्य वह व्यक्ति प्राप्त करेगा, जो उन धर्मधारकों की प्रशंसा करेगा ।

अष्टादश कल्पसहस्रकोट्यो पुस्तेषु पुस्तेषु करोति पूजाम् ।
शब्देहि रूपेहि रसेहि चापि दिव्यैश्च गन्धैश्च स्पर्शैश्च दिव्यैः ।।१४।।

जो अट्ठारह सहस्र कोटि कल्पों में उन आदरणीय धर्मधारकों की शब्दों से, रूपों से, रसों से, दिव्य गन्धों से एवं दिव्य स्पर्शों से पूजा करता है,

करित्व पुस्तान तथैव पूजां अष्टादश कल्पसहस्रकोट्यः ।
यदि श्रुणो एकश एत सूत्रं आश्चर्यलाभोऽस्य भवेन्महानिति ।।१५।।

वह अट्ठारह सहस्र कोटि कल्पों में उन धर्मोपदेशकों की पूजा करके यदि एक बार भी इस सूत्र को सुन ले, तो वह महान् एवं आश्चर्यजनक लाभ का भागी होगा ।

आरोचयामि ते भैषज्यराज प्रतिवेदयामि ते । बहवो हि मया भैषज्यराज धर्मपर्याया भाषिता भाषामि भाषिष्ये च । सर्वेषां च तेषां भैषज्यराज धर्मपर्यायाणामयमेव धर्मपर्यायः सर्वलोकविप्रत्यनीकः सर्वलोकाश्रद्दधनीयः । तथागतस्याप्येतद् भैषज्यराज आध्यात्मिकधर्मरहस्यं तथागतबलसंरक्षितमप्रतिभिन्नपूर्वमनाचक्षितपूर्वमनाख्यातमिदं स्थानम् । बहुजनप्रतिक्षिप्तोऽयं भैषज्यराज धर्मपर्यायस्तिष्ठतोऽपि तथागतस्य कः पुनर्वादः परिनिर्वृतस्य ।

हे भैषज्यराज ! मैं तुमसे कहता हूँ, घोषणा करता हूँ । हे भैषज्यराज ! मैंने अनेक धर्मपर्यायों का उपदेश दिया, उपदेश देता हूँ और उपदेश दूँगा । हे भैषज्यराज ! उन सभी धर्मपर्यायों में यही धर्मपर्याय है, जो सबका स्वीकरणीय एवं सब लोगों का श्रद्धेय नहीं है । हे भैषज्यराज ! तथागत की शक्ति के द्वारा सुरक्षित तथागत का यह आध्यात्मिक एवं रहस्यमय उपदेश अभी तक अविवेचित तथा अभी तक अनुपदिष्ट तथा अनाख्यात है । हे भैषज्यराज ! तथागत के जीवनकाल में ही यह धर्मपर्याय अनेक लोगों के द्वारा अस्वीकृत किया गया है, फिर उनके परिनिर्वाण के बाद की स्थिति का क्या कहना ? जो परिनिर्वाण-प्राप्त तथागत के इस धर्मपर्याय में श्रद्धा रखेंगे तथा इसका वाचन, लेखन, सत्कार एवं आदर करेंगे तथा इसे दूसरों को सुनायेंगे ।

अपि तु खलु पुनर्भैषज्यराज तथागतचीवरच्छन्नास्ते कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा वेदितव्याः । अन्यलोकधातुस्थितैश्च तथागतैरवलोकिताश्चाधिष्ठिताश्च । प्रत्यात्मिकं च तेषां श्रद्धाबलं भविष्यति कुशलमूलबलं च प्रणिधानबलं च । तथागतविहारैकस्थाननिवासिनश्च ते भैषज्यराज कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा भविष्यन्ति । तथागतपाणिपरिमार्जितमूर्धानश्च ते भविष्यन्ति । य इमं धर्मपर्यायं तथागतस्य परिनिर्वृतस्य श्रद्दधिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति लिखिष्यन्ति सत्करिष्यन्ति गुरुकरिष्यन्ति परेषां च संश्रावयिष्यन्ति ।

हे भैषज्यराज ! उन कुलपुत्रों एवं कुलकन्याओं को तथागत के चीवर से आच्छादित समझना चाहिए । अन्य लोकधातुओं में स्थित तथागतों के द्वारा वे अवलोकित एवं अधिष्ठित हैं । उनका श्रद्धाबल, कुशलमूलबल एवं प्रणिधानबल अत्यन्त श्रेष्ठ होगा । हे भैषज्यराज ! वे कुलकन्याएँ या कुलपुत्र तथागत के विहार के एक भाग के निवासी होंगे । उनके मस्तक तथागत के हाथ के स्पर्श से शुद्ध हो जायेंगे ।

यस्मिन् खलु पुनर्भैषज्यराज पृथिवीप्रदेशेऽयं धर्मपर्यायो भाष्येत वा देश्येत वा लिख्येत वा स्वाध्यायेत वा संगायेत वा तस्मिन् भैषज्यराज पृथिवीप्रदेशे तथागतचैत्यं कारयितव्यं महन्तं रत्नमयमुच्चं प्रगृहीतं न च तस्मिन्नवश्यं तथागतशरीराणि प्रतिष्ठापयितव्यानि । तत् कस्य हेतोः । एकघनमेव तस्मिंस्तथागतशरीरमुपनिक्षिप्तं भवति । यस्मिन् पृथिवीप्रदेशेऽयं धर्मपर्यायो भाष्येत वा देश्येत वा पठ्येत वा संगायेत वा लिख्येत वा लिखितो वा पुस्तकगतस्तिष्ठेत् तस्मिंश्च स्तूपे सत्कारो गुरुकारो मानना पूजनार्चना करणीया सर्वपुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावैजयन्तीभिः सर्वगीतवाद्यनृत्यतूर्यताडावचरसंगीतिसंप्रवादितैः पूजा करणीया । ये च खलु पुनर्भैषज्यराज सत्त्वास्तं तथागतचैत्यं लभेरन् वन्दनाय पूजनाय दर्शनाय वा सर्वे ते भैषज्यराज अभ्यासन्नीभूता वेदितव्या अनुत्तरायाः सम्यक्संबोधेः । तत् कस्य हेतोः । बहवो भैषज्यराज गृहस्थाः प्रव्रजिताश्च बोधिसत्त्वचर्यां चरन्ति न च पुनरिमं धमपर्यायं लभन्ते दर्शनाय वा श्रवणाय वा लिखनाय वा पूजनाय वा । न तावत्ते भैषज्यराज बोधिसत्त्वचर्यायां कुशला भवन्ति यावन्नेमं धर्मपर्यायं शृण्वन्ति । ये त्विमं धर्मपर्यायं शृण्वन्ति श्रुत्वा चाधिमुच्यन्त्यवतरन्ति विजानन्ति परिगृह्णन्ति तस्मिन् समये त आसन्नस्थायिनो भविष्यन्त्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधावभ्याशीभूताः ।

पुनः, हे भैषज्यराज ! पृथ्वो के जिस प्रदेश में इस धर्मपर्याय का विवेचन, देशन, लेखन, स्वाध्याय अथवा गान किया गया हो, हे भैषज्यराज ! उस भूखण्ड में तथागत का महान् ऊँचा एवं विशाल रत्नमय चैत्य बनवाया जाना चाहिए । उसमें तथागत के शरीरावशेषों का प्रतिष्ठापन आवश्यक नहीं होगा । ऐसा क्यों ? क्योंकि तथागत का शरीर एकत्र रूप में वहाँ रखा गया समझा जाना चाहिए । जिस भूखण्ड में इस धर्मपर्याय का भाषण, देशन, पठन, गान, लेखन किया गया हो अथवा वह लिखित अथवा पुस्तक, रूप में हो, उस स्थान का स्तूप के समान सत्कार, आदर, सम्मान, पूजन एवं अर्चन करना चाहिए एवं उसकी सभी प्रकार के पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका, वैजयन्ती तथा अनेक गीत, वाद्य, नृत्य, तूर्य, ताड, अवचर, संगीत एवं सम्प्रवादित आदि के द्वारा पूजा की जानी चाहिए । हे भैषज्यराज ! उन

सबको श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के अत्यन्त निकट समझना चाहिए। जो प्राणी वन्दन, पूजन और दर्शन के लिए, उस तथागत के स्तूप के निकट जाते हैं। ऐसा क्यों? (क्योंकि) हे भैषज्यराज! अनेक गृहस्थ एवं भिक्षुणी बोधिसत्त्व की चर्या का आचरण करते हैं, किन्तु उन्हें इस धर्मपर्याय के दर्शन, श्रवण, लेखन तथा पूजन का अवसर नहीं मिलता। हे भैषज्यराज! वे तबतक बोधिसत्त्व की चर्या में कुशल नहीं होते, जबतक इस धर्मपर्याय को नहीं सुनते। किन्तु, जो इस धर्मपर्याय को सुनते हैं तथा सुनकर इसमें झुकाव, गति, ज्ञान एवं अधिकार प्राप्त कर लेते हैं, वे उसी समय श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के आसन्नवर्त्ती एवं उसके निकट हो जाते हैं।

तद् यथापि नाम भैषज्यराज कश्चिदेव पुरुषो भवेदुदकार्थ्युदकगवेषी। स उदकार्थमुज्जङ्गले पृथिवीप्रदेश उदपानं खानयेत्। स यावत् पश्येच्छुष्कं पाण्डरं पांसुं निर्वाह्यमानं तावज्जानीयात् दूर इतस्तावदुदकमिति। अथ परेण समयेन स पुरुष आर्द्रपांसुमुदकसंमिश्रं कर्दमपङ्कभूतमुदकबिन्दुभिः स्रवद्भिर्निर्वाह्यमानं पश्येत् तांश्च पुरुषानुदपानखानकान् कर्दमपङ्कदिग्धाङ्गान्। अथ खलु पुनर्भैषज्यराज स पुरुषस्तत्पूर्वनिमित्तं दृष्ट्वा निष्काङ्क्षो भवेन्निर्विचिकित्स आसन्नमिदं खलूदकमिति। एवमेव भैषज्यराज दूरे ते बोधिसत्त्वा महासत्त्वा भवन्त्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ यावन्नेमं धर्मपर्यायं शृण्वन्ति नोद्गृह्णन्ति नावतरन्ति नावगाहन्ते न चिन्तयन्ति। यदा खलु पुनर्भैषज्यराज बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इमं धर्मपर्यायं शृण्वन्त्युद्गृन्ति धारयह्णन्ति वाचयन्त्यवतरन्ति स्वाध्यायन्ति चिन्तयन्ति भावयन्ति तदा तेऽभ्याशीभूता भविष्यन्त्यनुत्तरायां सम्यक् संबोधौ। सत्त्वानामितो भैषज्यराज धर्मपर्यायादनुत्तरा सम्यक्संबोधिराजायते। तत् कस्य हेतोः। परमसन्धाभाषितविवरणो ह्ययं धर्मपर्यायस्तथागतैरर्हद्भिः सम्यक्संबुद्धर्धर्मनिगूढस्थानमाख्यातं बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां परिनिष्पत्तिहेतोः। यः कश्चिद् भैषज्यराज बोधिसत्त्वोऽस्य धर्मपर्यायस्योत्त्रसेत् संत्रसेत् संत्रासमापद्येन्नवयानसंप्रस्थितः स भैषज्यराज बोधिसत्त्वो महासत्त्वो वेदितव्यः। स चेत् पुनः श्रावकयानीयोऽस्य धर्मपर्यायस्योत्त्रसेत् संत्रसेत् संत्रासमापद्येदधिमानिकः स भैषज्यराज श्रावकयानिकः पुद्गलो वेदितव्यः।

हे भैषज्यराज! यह वैसा ही है, जैसे जल की चाह और जल की खोज करनेवाला कोई एक व्यक्ति हो। वह जल के लिए एक ऊसर पृथ्वीखण्ड में कुआँ खुदवाये। जबतक वह निकाली जाती हुई सूखी एवं श्वेत मिट्टी को देखता है, तबतक समझता है कि अभी यहाँ से जल दूर है। तत्पश्चात्, कुछ समय के बाद जब वह व्यक्ति देखता है कि निकाली जाती हुई जलमिश्रित गीली मिट्टी टपकती हुई जल की बूंदों से कीचड़ बन रही है और इस कुएँ को खोदनेवाले पुरुषों के अंग कीचड़ में सने हैं,

तब हे भैषज्यराज ! वह पुरुष उस पूर्वनिमित्त को देखकर जलप्राप्ति के विषय में समयरहित और आशंकाओं से मुक्त हो जाता है और उसे विश्वास हो जाता है कि जल अत्यन्त निकट है । इस प्रकार, हे भैषज्यराज ! वे महासत्त्व बोधिसत्त्व तबतक श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि से दूर रहते हैं, जब्तक वे इस धर्मपर्याय को नहीं सुनते, नहीं समझते, गति नहीं प्राप्त करते, और नहीं सोचते तथा उसमें अवगाहन नहीं करते । हे भैषज्यराज ! जब वे महासत्त्व बोधिसत्त्व इस धर्मपर्याय को सुनते हैं, समझते हैं, धारण करते हैं, पढ़ते हैं, गति प्राप्त कर लेते हैं, अध्ययन करते हैं, सोचते हैं तथा हृदय में धारण करते हैं, तव वे श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के अत्यधिक निकट हो जाते हैं। हे भैषज्यराज ! इस धर्मपर्याय से ही प्राणियों को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त होती है । ऐसा क्यों ? क्योंकि, यह धर्मपर्याय श्रेष्ठ सन्धाभाषित का विवरण-रूप है और इस धर्मपर्याय को ही तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों ने महासत्त्व बोधिसत्त्वों के परिनिर्वाण की प्राप्ति के लिए धर्म का गूढ बिन्दु बतलाया है। हे भैषज्यराज ! जो भी बोधिसत्त्व इस धर्मापर्याय से उत्त्रस्त एवं संत्रस्त हो अथवा संत्रास को प्राप्त हो, हे भैषज्यराज ! उस महासत्त्व बोधिसत्त्व को इस यान में नवागन्तुक समझना चाहिए । यदि कोई श्रावकयानीय इस धर्मपर्याय से उत्त्रस्त एवं संत्रस्त हो अथवा संत्रास को प्राप्त हो, तो हे भैषज्यराज ! उस श्रावकयानिक को अभिमानी एवं सामान्य प्राणी समझना चाहिए ।

यः कश्चिद् भैषज्यराज बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्य पश्चिमे काले पश्चिमे समय इमं धर्मपर्यायं चतसृणां पर्षदां संप्रकाशयेत्तन भैषज्यराज बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन तथागतलयनं प्रविश्य तथागतचीवरं प्रावृत्य तथागतस्यासने निषद्यायं धर्मपर्यायश्चतसृणां पर्षदां संप्रकाशयितव्यः । कतमच्च भैषज्यराज तथागतलयनम् । सर्वसत्त्वमैत्रीविहारः खलु पुनर्भैषज्यराज तथागतलयनम् । तत्र तेन कुलपुत्रेण प्रवेष्टव्यम् । कतमच्च भैषज्यराज तथागतचीवरम् । महाक्षान्तिसौरत्यं खलु पुनर्भैषज्यराज तथागतचीवरम् । तत्तेन कुलपुत्रेण वा कुलदुहित्रा वा प्रावरितव्यम् । कतमच्च भैषज्यराज तथागतस्य धर्मासनम् । सर्वधर्मशून्यताप्रवेशः खलु पुनर्भैषज्यराज तथागतस्य धर्मासनम् । तत्र तेन कुलपुत्रेण निपत्तव्यं निषद्य चायं धर्मपर्यायश्चतसृणां पर्षदां संप्रकाशयितव्यः । अनवलीनचित्तेन बोधिसत्त्वेन पुरस्ताद् बोधिसत्त्वगणस्य बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितानां चतसृणां पर्षदां संप्रकाशयितव्यः । अन्यलोकधातुस्थितश्चाहं भैषज्यराज तस्य कुलपुत्रस्य निर्मितैः पर्षदः समावर्तयिष्यामि । निर्मितांश्च भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकाः संप्रेषयिष्यामि धर्मश्रवणाय ते तस्य धर्मभाणकस्य भाषितं न प्रतिबाधिष्यन्ति न प्रतिक्षेप्स्यन्ति । स चेत् खलु पुनररण्यगतो भविष्यति तत्राप्यहमस्य बहुदेवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुड-

किन्नरमहोरगान् संप्रेषयिष्यामि धर्मश्रवणाय । अन्यलोकधातुस्थितश्चाहं भैषज्यराज तस्य कुलपुत्रस्य मुखमुपदर्शयिष्यामि । यानि चास्यास्माद्धर्मपर्यायात् पदव्यञ्जनानि परिभ्रष्टानि भविष्यन्ति तानि तस्य स्वाध्यायतः प्रत्युच्चारयिष्यामि ।

हे भैषज्यराज ! जो कोई महासत्त्व बोधिसत्त्व तथागत के निर्वाण प्राप्त कर लेने के बाद के काल में या बाद के समय में इस धर्मपर्याय को चार परिषदों के सम्मुख प्रकाशित करना चाहे, हे भैषज्यराज ! उस महासत्त्व बोधिसत्त्व को तथागत के निवासस्थान में प्रवेश करके तथागत के वस्त्र को धारण करके एवं तथागत के आसन पर बैठकर इस धर्मपर्याय को चार परिषदों के सम्मुख प्रकाशित करना चाहिए । हे भैषज्यराज ! तथागत का निवासस्थान क्या है ? हे भैषज्यराज ! सब प्राणियों के प्रति मित्रता का व्यवहार करना ही तथागत का निवासस्थान है । उस कुलपुत्र को उसमें प्रवेश करना चाहिए । हे भैषज्यराज ! तथागत का चीवर क्या है ? 'महाक्षान्ति में प्रेम' ही, हे भैषज्यराज ! तथागत का चीवर है । उस कुलपुत्र या कुलकन्या को उसे ओढ़ना चाहिए । हे भैषज्यराज ! तथागत का धर्मासन क्या है ? हे भैषज्यराज ! 'सब वस्तुओं की शून्यता का ज्ञान' ही तथागत का धर्मासन है । उस कुलपुत्र को वहीं बैठना चाहिए और बैठकर इस धर्मपर्याय को चारों परिषदों के सम्मुख प्रकाशित करना चाहिए । बोधिसत्त्वों को, एकाग्रचित्त होकर बोधिसत्त्वों के गण के सामने या बोधिसत्त्वों के यान को प्राप्त चारों परिषदों के सम्मुख इसे प्रकाशित करना चाहिए । हे भैषज्यराज ! अन्य लोकधातु में बैठा हुआ मैं मानस जीवों के द्वारा परिषदों को उस कुलपुत्र के अनुकूल बना दूँगा । और, उन मानस भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक एवं उपासिकाओं को धर्मोपदेश सुनने के लिए भेजूँगा । वे इस धर्मभाणक के उपदेश में न बाधा पहुँचायेंगे और न उसे अस्वीकृत करेंगे । यदि वह जंगल में भी चला जायगा, तो वहाँ भी उससे धर्मोपदेश सुनने के लिए मैं अनेक देवता, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर एवं महोरगों को भेजूँगा । हे भैषज्यराज ! अन्य लोक में स्थित मैं उस कुलपुत्र को दर्शन दूँगा तथा इसके धर्मपर्याय के शब्द या वर्णन को, जिन्हें वह भूल गया होगा, उन्हें स्वाध्याय से उसके ही द्वारा उच्चरित कराऊँगा ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं--

लीयनां सर्व वर्जित्वा शृणुयात् सूत्रमीदृशम् ।
दुर्लभो वैश्रवो ह्यस्य अधिमुक्ती पि दुर्लभा ॥१६॥

सभी विक्षेपों का त्याग कर इस प्रकार के (इस) सूत्र को सुनना चाहिए। इसका सुनना दुर्लभ है, और इसकी ओर झुकाव भी दुर्लभ है ।

उदकार्थी यथा कश्चित् खानयेत् कूप जङ्गले ।
शुष्कं च पांसु पश्येत खान्यमाने पुनः पुनः ॥१७॥

जैसे कोई जल का अभिलाषी मरुभूमि में कूप खुदवाये और बार-बार खोदे जाने पर भी सूखी धूल देखे ।

सो दृष्ट्वा चिन्तयेत्तत्र दूरे वारि इतो भवेत् ।
इदं निमित्तं दूरे स्यात् शुष्कपांसुरितोच्छृतः ।।१८।।

ऐसा देखकर वह सोचे कि पानी यहाँ से दूर होगा, यतः जल के दूर होने की सूचना देनेवाली सूखी धूल निकल रही है ।

तदा तु आर्द्रं पश्येत पांसुं स्निग्धं पुनः पुनः ।
निष्ठा तस्य भवेत्तत्र नास्ति दूरे जलं इह ।।१९।।

किन्तु, जब वह बार-बार आर्द्र एवं स्निग्ध धूल देखे, तब उसे विश्वास हो जाय कि अब यहाँ जल दूर नहीं है ।

एवमेव तु ते दूरे बुद्धज्ञानस्य तादृशाः ।
अशृण्वन्त इदं सूत्रमभावित्वा पुनः पुनः ।।२०।।

उसी प्रकार वे पुरुष भी बुद्धज्ञान से दूर हैं, जिन्होंने इस सूत्र को बार-बार सुनकर हृदय में धारण नहीं किया है ।

यदा तु गम्भीरमिदं श्रावकाणां विनिश्चयम् ।
सूत्रराजं श्रुणिष्यन्ति चिन्तयिष्यन्ति वासकृत् ।।२१।।

जब वे श्रावकों को निश्चित ज्ञान देनेवाले इस गम्भीर सूत्रराज को अनेक बार सुनेंगे तथा उसका चिन्तन करेंगे,

ते भोन्ति सन्निकृष्टा वै बुद्धज्ञानस्य पण्डिताः ।
यथैव चार्द्रे पांसुस्मिन् आसन्नं जलमुच्यते ।।२२।।

तब वे विद्वान् बुद्धज्ञान के उसी प्रकार निकट हो जायेंगे, जिस प्रकार आर्द्र धूल के निकट जल का रहना कहा जाता है ।

जिनस्य लेनं प्रविशित्वा प्रावरित्वा'मि चीवरम् ।
ममासने निषीदित्वा अभीतो भाषि पण्डितः ।।२३।।

जिन के गृह में प्रवेश करके मेरे चीवर को ओढ़ करके तथा मेरे आसन पर बैठ करके वह पण्डित निर्भीक होकर धर्म का उपदेश देता है ।

मैत्रीबलं च लयनं क्षान्तिसौरत्य चीवरम् ।
शून्यता चासनं मह्यमत्रं स्थित्वा हि देशयेत् ।।२४।।

मैत्रीबल मेरा निवासस्थान है, क्षान्ति में प्रेम मेरा चीवर है और शून्यता मेरा आसन है । यहाँ बैठकर वह देशना करे ।

लोष्टं दण्डं वाथ शक्ती आक्रोश-तर्जनाथ वा ।
भाषन्तस्य भवेत्तत्र स्मरन्तो मम ता सहेत् ॥२५॥

देशना करते समय यदि उसे ढेला, डण्डा, शक्ति, गाली एवं तर्जना मिले, तो वह उनको भी मेरा स्मरण करता हुआ सह ले ।

क्षेत्रकोटीसहस्रेषु आत्मभावो दृढो मम ।
देशेमि धर्म सत्त्वानां कल्पकोटीरचिन्तियाः ॥२६॥

कोटि सहस्र क्षेत्रों में मेरा शरीर दृढ रहता है । मैं अचिन्त्य कोटि कल्पों तक प्राणियों को धर्म की देशना करता हूँ ।

अहं पि तस्य वीरस्य यो मह्य परिनिर्वृते ।
इदं सूत्रं प्रकाशेया प्रेषेष्ये बहुनिर्मितान् ॥२७॥

जो वीर मेरे परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर इस सूत्र को प्रकाशित करेगा, उसके लिए मैं भी अनेक मानस प्राणियों को भेजूँगा ।

भिक्षवो भिक्षुणीया च उपासका उपासिकाः ।
तस्य पूजां करिष्यन्ति पर्षदश्च समा अपि ॥२८॥

भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक एवं उपासिकाओं की परिषदें—ये सभी उनकी पूजा करेंगे ।

लोष्टं दण्डांस्तथाक्रोशांस्तर्जनां परिभाषणाम् ।
ये चापि तस्य दास्यन्ति धारिष्यन्ति स्य निर्मिताः ॥२९॥

यदि लोग उसके ऊपर ढेला, डण्डे, गाली, तर्जना एवं निन्दा की बौछार करेंगे, तो मेरे मानस प्राणी उसको उनसे बचायेंगे ।

यदापि चैको विहरन् स्वाध्यायन्तो भविष्यति ।
नरैर्विरहिते देशे अटव्यां पर्वतेषु वा ॥३०॥

जब भी वह स्वाध्याय करता हुआ मनुष्यों से रहित स्थान में, जंगल में एवं पर्वतों पर विचरण करता रहेगा,

ततोऽस्य अहं दर्शिष्ये आत्मभाव प्रभास्वरम् ।
स्खलितं चास्य स्वाध्यायमुच्चारिष्ये पुनः पुनः ॥३१॥

तब मैं उसे अपना प्रकाशभाव-स्वरूप दिखलाऊँगा और उसके स्वाध्याय के विस्मृत अंशों का पुनः-पुनः उससे उच्चारण करवाऊँगा ।

तर्हि च स्य विहरतो एकस्य वनचारिणः ।
देवान् यक्षांश्च प्रेषिष्ये सहायांस्तस्य नैकशः ॥३२॥

अकेले विहार करते हुए उस वनवासी की सहायता के लिए अनेक बार मैं देवों और यक्षों को भेजूँगा ।

एतादृशास्तस्य गुणा भवन्ति चतुर्ण पर्षाण प्रकाशकस्य ।
एको विहारें वनकन्दरेषु स्वाध्याय कुर्वन्तु ममाहि पश्येत् ।।३३।।

चार परिषदों को ज्ञान का उपदेश देनेवाले उसके इस प्रकार के गुण होते हैं । वन-कन्दराओं में अकेले विहार करता हुआ और स्वाध्याय करता हुआ वह मेरे दर्शन करेगा ।

प्रतिभान तस्य भवती असङ्गं निरुक्तिधर्माण बहू प्रजानति ।
तोषेति सो प्राणिसहस्रकोट्यः यथापि बुद्धेन अधिष्ठितत्वात् ।।३४।।

उसकी प्रतिभा बाधाओं से मुक्त होती है । वह अनेक निरुक्त के धर्मों को जानता है एवं बुद्ध के द्वारा अधिष्ठित होने के कारण वह सहस्रों कोटि प्राणियों को तुष्ट करता है ।

ये चापि तस्याश्रित भोन्ति सत्त्वास्ते बोधिसत्त्वा लघु भोन्ति सर्वे ।
तत्संगतिं चापि निषेवमाणाः पश्यन्ति बुद्धान यथ गङ्गवालिकाः ।।३५।।

जो प्राणी उसके आश्रित होते हैं, वे सभी शीघ्र ही बोधिसत्त्व हो जाते हैं तथा उसकी संगति में रहते हुए वे गंगा की बालुका के समान असंख्य बुद्धों के दर्शन करते हैं ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये धर्मभाणकपरिवर्तो नाम दशमः ।।१०।।

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का धर्मभाणक नामक दसवाँ परिवर्त समाप्त हुआ ।

स्तूपसंदर्शनपरिवर्त

अथ खलु भगवतः पुरस्तात्ततः पृथिवीप्रदेशात् पर्षन्मध्यात् सप्तरत्नमयः स्तूपोऽभ्युद्गतः पञ्चयोजनशतान्युच्चैस्त्वेन तदनुरूपेण च परिणाहेन । अभ्युद्गम्य वैहायसमन्तरीक्षे समवातिष्ठच्चित्रो दर्शनीयः पञ्चभिः पुष्पग्रहणीयवेदिकासहस्रैः स्वभ्यलंकृतो बहुतोरणसहस्रैः प्रतिमण्डितः पताकावैजयन्तीसहस्राभिः प्रलम्बितो रत्नदामसहस्राभिः प्रलम्बितः पट्टघण्टासहस्रैः प्रलम्बितस्तमालपत्रचन्दनगन्धं प्रमुञ्चमानस्तेन च गन्धेन सर्वावतीयं लोकधातुः संमूर्च्छिताभूत् । छत्रावली चास्य यावच्चातुर्महाराजकायिकदेवभवनानि समुच्छ्रिताभूत् सप्तरत्नमयी । तद् यथा सुवर्णस्य रूप्यस्य वैडूर्यस्य मुसारगल्वस्याश्मगर्भस्य लोहितमुक्तेः कर्केतनस्य । तस्मिंश्च स्तूपे त्रायस्त्रिंशत्कायिका देवपुत्रा दिव्यैर्मान्दारवमहामान्दारवैः पुष्पैस्तं रत्नस्तूपमवकिरन्त्यध्यवकिरन्त्यभिप्रकिरन्ति तस्माच्च रत्नस्तूपादेवंरूपः शब्दो निश्चरति स्म । साधु साधु भगवन् शाक्यमुने । सुभाषितस्तेऽयं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः । एवमेतद् भगवन्नेवमेतत् सुगत ।

तत्पश्चात्, भगवान् के सम्मुख परिषद् के बीच के उस पृथ्वी-प्रदेश से पाँच सौ योजन ऊँचा और उसी अनुपात में विस्तृत सात रत्नों से निर्मित एक स्तूप प्रकट हुआ । यह विचित्र एवं दर्शनीय स्तूप निकलकर आकाश में खड़ा हो गया । वह पुष्पनिर्मित, पाँच हजार क्रमिक वेदिकाओं से सुशोभित तथा अनेक सहस्र तोरणों से प्रतिमण्डित था । उसपर सहस्रों पताकाएँ एवं वैजयन्तियाँ फहरा रही थीं । सहस्रों रत्नों की मालाएँ लटक रही थीं तथा सहस्रों घण्टों की लड़ियाँ झूल रही थीं। उससे तमालपत्र एवं चन्दन की गन्ध निकल रही थी । तथा उस गन्ध से यह सारी लोकधातु सुवासित हो गई थी। सात रत्नों से बनी इसकी छत्रावली चातुर्महाराजकायिक देवताओं के भवनों तक ऊँची थी । वह सुवर्ण की, रूप्य की, वैदूर्य की, मुसारगल्व की, अश्मगर्भ की, लोहितमुक्ति की एवं कर्केतक की बनी थी । उस स्तूप पर वर्त्तमान त्रायस्त्रिंशत्कायिक देव उस रत्नस्तूप पर दिव्य मान्दारव तथा महामान्दारव पुष्पों को अवकीर्ण, अध्यवकीर्ण एवं अभिप्रकीर्ण कर रहे थे। उस रत्नस्तूप से इस प्रकार का शब्द निकल रहा था—हे भगवन् ! हे शाक्यमुने ! तुम धन्य हो । इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय की तुमने सुन्दर व्याख्या की है । हे भगवन् ! हे सुगत ! बात ऐसी ही है ।

अथ खलु ताश्चतस्रः पर्षदस्तं महान्तं रत्नस्तूपं दृष्ट्वा वैहायसमन्तरीक्षे स्थितं संजातहर्षाः प्रीतिप्रामोद्यप्रसादप्राप्ताः । तस्यां वेलायामुत्थायासनेभ्योऽञ्जलिं प्रगृह्यावस्थिताः ।

तत्पश्चात्, वे चार परिषदें उस महान् रत्नस्तूप को आकाश में खड़ा देखकर हर्षित हो गई और प्रीति, प्रमोद एवं प्रसाद को प्राप्त हुईं । उस समय (वे परिषदें) आसनों से उठकर हाथ जोड़कर खड़ी हो गईं ।

अथ खलु तस्यां वेलायां महाप्रतिभानो नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वः सदेवमानुषासुरं लोकं कौतूहलप्राप्तं विदित्वा भगवन्तमेतदवोचत् । को भगवन् हेतुः कः प्रत्ययोऽस्यैवंरूपस्य महारत्नस्तूपस्य लोके प्रादुर्भावाय । को वा भगवन्नस्मान्महारत्नस्तूपादेवंरूपं शब्दं निश्चारयति । एवमुक्ते भगवान् महाप्रतिभानं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत् । अस्मिन् महाप्रतिभान महारत्नस्तूपे तथागतस्यात्मभावस्तिष्ठत्येकघनस्तस्यैष स्तूपः । स एष शब्दं निश्चारयति । अस्ति महाप्रतिभानाधस्तायां दिश्यसंख्येयानि लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्राण्यतिक्रम्य रत्नविशुद्धा नाम लोकधातुः । तस्यां प्रभूतरत्नो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धोऽभूत् । तस्यैतद् भगवतः पूर्वप्रणिधानमभूत् । अहं खलु पूर्वं बोधिसत्त्वचर्यां चरमाणो न तावन्निर्यातोऽनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ यावन्मयायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायो बोधिसत्त्वाववादो न श्रुतोऽभूत् । यदा तु मयायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः श्रुतस्तदा पश्चादहं परिनिष्पन्नोऽभूवमनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । तेन खलु पुनर्महाप्रतिभान भगवता प्रभूतरत्नेन तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन परिनिर्वाणकालसमये सदेवकस्य लोकस्य समारकस्य सब्रह्मकस्य सश्रमणब्राह्मणिकायाः प्रजायाः पुरस्तादेवमारोचितम् । मम खलु भिक्षवः परिनिर्वृतस्यास्य तथागतात्मभावविग्रहस्यैको महारत्नस्तूपः कर्तव्यः । शेषाः पुनस्तूपा ममोद्दिश्य कर्तव्याः । तस्य खलु पुनर्महाप्रतिभान भगवतः प्रभूतरत्नस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यैतदधिष्ठानमभूत् । अयं मम स्तूपो दशसु दिक्षु सर्वलोकधातुषु येषु बुद्धक्षेत्रेष्वयं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः संप्रकाश्येत तेषु तेष्वयं ममात्मभावविग्रहस्तूपः समभ्युद्गच्छेत् । तैस्तैर्बुद्धैर्भगवद्भिरस्मिन् सद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये भाष्यमाणे पर्षन्मण्डलस्योपरिवैहायसं तिष्ठेत् । तेषां च बुद्धानां भगवतामिमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं भाषमाणानामयं ममात्मभावविग्रहस्तूपः साधुकारं दद्यात् । तदयं महाप्रतिभान तस्य भगवतः

प्रभूतरत्नस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य शरीरस्तूपोऽस्यां सहायां लोकधातावस्मिन् सद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये मया भाष्यमाणेऽस्मात् पर्षन्मण्डलमध्यादभ्युद्गम्योपर्यन्तरीक्षे वैहायसं स्थित्वा साधुकारं ददाति स्म ।

तदनन्तर, उस समय महाप्रतिभान नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व देवों, मनुष्यों एवं असुरों से युक्त सम्पूर्ण लोक को आश्चर्य में पड़ा देखकर भगवान् से इस प्रकार बोला––हे भगवन् ! इस प्रकार के इस महान् रत्नस्तूप के इस संसार में प्रकट होने का क्या हेतु है ? क्या कारण है ? इस महान् रत्नस्तूप से हे भगवन् ! कौन इस प्रकार का शब्द निकाल रहा है ? ऐसा कहे जाने पर भगवान् महाप्रतिभान नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व से इस प्रकार बोले––हे महाप्रतिभान ! इस महान् रत्नस्तूप में तथागत का जो अपना शरीर घनीभूत अवस्था में विराजमान है, उसी का यह स्तूप है । वही इस शब्द को निकाल रहा है । हे महाप्रतिभान ! नीचे की दिशा में असंख्य कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुओं के परे रत्नविशुद्धा नामक लोकधातु है । उसमें प्रभूतरत्न नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत रहते थे । उन भगवान् का यह पहला व्रत था । मैंने पूर्वकाल में बोधिसत्त्व की चर्या का आचरण करते हुए तवतक श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति नहीं की, जवतक मैंने बोधिसत्त्वों को उपदेश के देनेवाले इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय को नहीं सुन लिया । किन्तु, जव मैंने सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय को सुन लिया, तब उसके पश्चात् मैं श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में परिपक्व हो गया । हे महाप्रतिभान ! पुनः उस समय तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न ने अपने निर्वाणकाल के समय देवों, मारों एवं ब्रह्माओं के समेत लोक के एवं श्रमणों तथा ब्राह्मणों-समेत प्रजा के सामने इस प्रकार कहा––हे भिक्षुओ ! मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर तथागत के इस अपने शरीर के लिए एक महान् रत्नस्तूप बनवाया जाना चाहिए । पुनः शेष स्तूप मुझे उदिष्ट करके बनवाये जाने चाहिए । हे महाप्रतिभान ! पुनः तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, इन भगवान् प्रभूतरत्न का इस प्रकार आदेश हुआ––दसों दिशाओं में स्थित सभी लोकधातुओं में वर्त्तमान जिन बुद्धक्षेत्रों में यह सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय सम्प्रकाशित हो, उन बुद्धक्षेत्रों में मेरे अपने शरीर का धारक यह मेरा स्तूप ऊपर उठे तथा उन असंख्य भगवान् बुद्धों के द्वारा इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय के उपदेश के समय वह परिषद्-समूह के ऊपर आकाश में खड़ा रहे । इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का उपदेश करते हुए उन भगवान् बुद्धों को मेरे अपने शरीर का धारक यह स्तूप साधुवाद दे । अतः, हे महाप्रतिभान ! तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, उन भगवान् प्रभूतरत्न का यह शरीरस्तूप इस सहा नामक लोकधातु में मेरे इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय के उपदेश देने के समय उन परिषदों के मध्य से निकलकर ऊपर अन्तरिक्ष में खड़ा होकर साधुवाद देने लगा ।

अथ खलु महाप्रतिभानो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत् । पश्याम वयं भगवन्नेतं तथागतविग्रहं भगवतोऽनुभावेन । एवमुक्ते भगवान्

महाप्रतिभानं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत् । तस्य खलु पुनर्महाप्रतिभान भगवतः प्रभूतरत्नस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य प्रणिधानं गुरुकमभूत् । एतदस्य प्रणिधानम् । यदा खल्वन्येषु बुद्धक्षेत्रेषु बुद्धा भगवन्त इमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं भाषेयुस्तदायं ममात्मभावविग्रहस्तूपोऽस्य सद्धर्मपुण्डरीकस्य धर्मपर्यायस्य श्रवणाय गच्छेत्तथागतानामन्तिकम् । यदा पुनस्ते बुद्धा भगवन्तो ममात्मभावविग्रहमुद्घाट्य दर्शयितुकामा भवेयुश्चतसृणां पर्षदाम् । अथ तैस्तथागतैर्दशसु दिक्ष्वन्योन्येषु बुद्धक्षेत्रेषु य आत्मभावनिर्मितास्तथागतविग्रहा अन्योन्यनामधेयास्तेषु तेषु बुद्धक्षेत्रेषु सत्त्वानां धर्मं देशयन्ति तान् सर्वान् संनिपात्य तैरात्मभावनिर्मितैस्तथागतविग्रहैः सार्धं पश्चादयं ममात्मभावविग्रहस्तूपः समुद्घाट्योपदर्शयितव्यश्चतसृणां पर्षदाम् । तन्मयाऽपि महाप्रतिभान बहवस्तथागतविग्रहा निर्मिता ये दशसु दिक्ष्वन्योन्येषु बुद्धक्षेत्रेषु लोकधातुसहस्रेषु सत्त्वानां धर्मं देशयन्ति ते सर्वे खल्विहानयितव्या भविष्यन्ति ।

तत्पश्चात्, महाप्रतिभान नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व भगवान् से इस प्रकार बोला—हे भगवन् ! हम आपके प्रभाव से इस तथागत के शरीर को देख रहे हैं । ऐसा कहने पर भगवान् महाप्रतिभान नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व से इस प्रकार बोले—पुनः हे महाप्रतिभान ! तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध उन भगवान् प्रभूतरत्न का व्रत बहुत बड़ा था। उनका व्रत यह था—जब अन्य बुद्धक्षेत्रों में भगवान् बुद्ध उस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का उपदेश दें, तब मेरे अपने शरीर का धारक यह स्तूप इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय के श्रवण के लिए तथागतों के निकट जाये । पुनः जब वे भगवान् बुद्ध मेरे अपने शरीर के विग्रह को उद्घाटित करके चारों परिषदों को दिखाना चाहें, तब उन तथागतों द्वारा दसों दिशाओं में स्थित विभिन्न बुद्धक्षेत्रों में जो अपने-अपने शरीरांश से निर्मित तथा विभिन्न नाम धारण करनेवाले तथागत के विग्रह विभिन्न बुद्धक्षेत्रों में प्राणियों को धर्म की देशना करते हैं, उन सबको एकत्र करके इन अपने-अपने शरीरांश से निर्मित तथागत के विग्रहों के साथ बाद में यह मेरे शरीरांश का धारक स्तूप खोलकर चारों परिषदों को दिखा दिया जाना चाहिए । हे महाप्रतिभान ! मैंने भी अनेक तथागत के विग्रह बनवाये, जो दसों दिशाओं में स्थित विभिन्न बुद्धक्षेत्रों में वर्तमान सहस्रों लोकधातुओं में प्राणियों को धर्म की देशना करते हैं । उन सबको यहाँ लाना होगा ।

अथ खलु महाप्रतिभानो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत् । तानपि तावद् भगवंस्तथागतात्मभावांस्तथागतनिर्मितान् सर्वान् वन्दामहे ।

तदनन्तर, महाप्रतिभान नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व भगवान् से इस प्रकार बोला—हे भगवन् ! तथागतों के द्वारा निर्मित उन सभी तथागतों के शरीरों की हम वन्दना करते हैं ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामूर्णाकोशाद् रश्मिं प्रामुञ्चत्। यया रश्म्या समनन्तरप्रमुक्तया पूर्वस्यां दिशि पञ्चाशत्सु गङ्गानदीवालुकासमेषु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु ये बुद्धा भगवन्तो विहरन्ति स्म ते सर्वे संदृश्यन्ते स्म। तानि च बुद्धक्षेत्राणि स्फटिकमयानि संदृश्यन्ते स्म रत्नवृक्षैश्च चित्राणि संदृश्यन्ते स्म दूष्यपट्टदामसमलंकृतानि बहुबोधिसत्त्वशतसहस्रपरिपूर्णानि वितानविततानि सप्तरत्नहेमजालप्रतिच्छन्नानि। तेषु तेषु बुद्धा भगवन्तो मधुरेण वल्गुना स्वरेण सत्त्वानां धर्मं देशयमानाः संदृश्यन्ते स्म। बोधिसत्त्वशतसहस्रैश्च परिपूर्णानि तानि बुद्धक्षेत्राणि संदृश्यन्ते स्म। एवं पूर्वदक्षिणस्यां दिशि। एवं दक्षिणस्यां दिशि। एवं दक्षिणपश्चिमायां दिशि। एवं पश्चिमायां दिशि। एवं पश्चिमोत्तरायां दिशि। एवमुत्तरायां दिशि। एवमुत्तरपूर्वस्यां दिशि। एवमधस्तायां दिशि। एवमूर्ध्वायां दिशि। एवं समन्ताद्दशसु दिक्ष्वेकैकस्यां दिशि बहूनि गङ्गानदीवालुकोपमानि बुद्धक्षेत्रकोटीनयुतशतसहस्राणि बहुषु गङ्गानदीवालुकोपमेषु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु ये बुद्धा भगवन्तस्तिष्ठन्ति ते सर्वे संदृश्यन्ते स्म।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय अपनी भौंहों के बालों के बीच से एक रश्मि विकीर्ण की। उस रश्मि के विकीर्ण होते ही पूर्व दिशा में गंगा नदी की बालुका के समान असंख्य पचास कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुओं में जो अनेक भगवान् बुद्ध विहार कर रहे थे, वे सभी दिखाई पड़ने लगे तथा स्फटिकमय रत्नवृक्षों से सुशोभित सुन्दर वस्त्र की लड़ियों से समलंकृत अनेक शतसहस्र बोधिसत्त्वों से परिपूर्ण विशाल वितानों से सम्पन्न एवं सप्तरत्नजटित स्वर्ण के जाल से सुशोभित वे बुद्धक्षेत्र स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे। उन विभिन्न बुद्धक्षेत्रों में अनेक भगवान् बुद्ध (मधुर) एवं धीरे स्वर से प्राणियों को धर्म की देशना करते हुए दिखाई पड़ने लगे। वे बुद्धक्षेत्र सैकड़ों सहस्र बोधिसत्त्वों से परिपूर्ण दिखाई पड़ रहे थे। ऐसा ही पूर्व-दक्षिण दिशा में हुआ, ऐसा ही दक्षिण-दिशा में हुआ, ऐसा ही दक्षिण-पश्चिम दिशा में हुआ, ऐसा ही पश्चिम दिशा में हुआ, ऐसा ही पश्चिमोत्तर दिशा में हुआ, ऐसा ही उत्तर दिशा में हुआ, ऐसा ही उत्तर-पूरब दिशा में हुआ, ऐसा ही अधोदिशा में हुआ, ऐसा ही ऊपर की दिशा में हुआ। इसी प्रकार, चारों ओर दसों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में गंगा नदी की बालुका के समान असंख्य अनेक कोटि नयुत शतसहस्र बुद्धक्षेत्र दिखाई पड़ने लगे एवं गंगा नदी की बालुका के समान अनेक कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुओं में वर्त्तमान जो भगवान् बुद्ध थे, वे सब भी दिखाई पड़ने लगे।

अथ खलु ते दशसु दिक्षु तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्वान् स्वान् बोधिसत्त्वगणानामन्त्रयन्ति स्म। गन्तव्यं खलु पुनः कुलपुत्रा भविष्यत्यस्माभिः

सहां लोकधातुं भगवतः शाक्यमुनेस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यान्तिकं प्रभूतरत्नस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्सम्बुद्धस्य शरीरस्तूपवन्दनाय। अथ खलु ते बुद्धा भगवन्तः स्वैः स्वैरुपस्थायकैः सार्धमात्मद्वितीया आत्मतृतीया इमां सहां लोकधातुमागच्छन्ति स्म। इति हि तस्मिन् समय इयं सर्वावती लोकधातू रत्नवृक्षप्रतिमण्डिताभूद् वैडूर्यमयी सप्तरत्नहेमजालसंछन्ना महारत्नगन्धधूपनधूपिता मान्दारवमहामान्दारवपुष्पसंस्तीर्णा किङ्किणीजालालंकृता सुवर्णसूत्राष्टापदनिबद्धा अपगतग्रामनगरनिगमजनपदराष्ट्रराजधानी अपगतकालपर्वतापगतमुचिलिन्दमहामुचिलिन्दपर्वतापगतचक्रवाड-महाचक्रवाड-पर्वतापगतसुमेरुपर्वतापगततदन्यमहापर्वतापगतमहासमुद्रापगतनदीमहानदीपरिसंस्थिताभूदपगतदेवमनुष्यासुरकायापगतनिरयतिर्यग्योनियमलोका। इति हि तस्मिन् समये येऽस्यां सहायां लोकधातौ षड्गत्युपपन्नाः सत्त्वास्ते सर्वेऽन्येषु लोकधातुषूपनिक्षिप्ता अभूवन् स्थापयित्वा ये तस्यां पर्षदि संनिपतिता अभूवन्। अथ खलु ते बुद्धा भगवन्त उपस्थायकद्वितीया उपस्थायकतृतीया इमां सहां लोकधातुमागच्छन्ति स्म। आगतागताश्च ते तथागता रत्नवृक्षमूले सिंहासनमुपनिश्रित्य विहरन्ति स्म। एकैकश्च रत्नवृक्षः पञ्चयोजनशतान्युच्चैस्त्वेनाभूदनुपूर्वशाखापत्रपलाशपरिणाहः पुष्पफलप्रतिमण्डितः। एकैकस्मिंश्च रत्नवृक्षमूले सिंहासनं प्रज्ञप्तमभूत् पञ्चयोजनशतान्युच्चैस्त्वेन महारत्नप्रतिमण्डितम्। तस्मिन्नेकैकस्तथागतः पर्यङ्कं बद्ध्वा निषण्णोऽभूत्। अनेन पर्यायेण सर्वस्यां त्रिसाहस्रमहासाहस्रायां लोकधातौ सर्वरत्नवृक्षमूलेषु तथागताः पर्यङ्कं बद्ध्वा निषण्णा अभूवन्।

तदनन्तर, दसों दिशाओं में वर्त्तमान वे तथागत, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध अपने-अपने बोधिसत्त्वों से बोले––पुनः हे कुलपुत्रो! हमलोगों को तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, प्रभूतरत्न के शरीरस्तूप की वन्दना करने के लिए सहा नामक लोकधातुओं में तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि के निकट जाना है। तदनन्तर, वे भगवान् बुद्ध अपने-अपने एक-एक दो-दो अनुचरों के साथ इस सहा लोकधातु में आये। उस समय यह सारी लोकधातु रत्नवृक्षों से सुशोभित, वैदूर्यमय सप्तरत्नजटित, स्वर्णजाल से संछन्न, महान् रत्नों के सुगन्धित धूप से धूपित, मान्दारव एवं महामान्दारव फूलों से आच्छादित, किंकिणिजाल से अलंकृत, स्वर्णसूत्रनिर्मित अष्टापदों से निबद्ध, ग्राम, नगर, निगम, जनपद, राष्ट्र एवं राजधानी से रहित, कालपर्वत से रहित, मुचिलिन्द एवं महामुचिलिन्द पर्वतों से रहित, चक्रवाड एवं महाचक्रवाड पर्वतों से रहित सुमेरुपर्वत से रहित, अन्य विशाल पर्वतों, से रहित, महासमुद्रों से रहित, नदियों एवं महानदियों से रहित, देव, मनुष्य

असुर, शरीरधारियों से रहित, नरक और तिर्यक् योनि में उत्पन्न प्राणियों से रहित एवं यमलोक से रहित हो गई। उस समय इस सहा लोकधातु में षड्गतियों में वर्त्तमान जो प्राणी थे, वे सभी उन लोगों को छोड़कर, जो उस परिषद् में एकत्र थे, अन्य लोकधातु में भेज दिये गये। तदनन्तर, वे भगवान् बुद्ध एक-एक या दो-दो अनुचरों के साथ इस सहा लोकधातु में आये। वे तथागत क्रम से जाकर रत्नवृक्ष के नीचे स्थापित उस सिंहासन पर बैठकर विहार करने लगे। प्रत्येक रत्नवृक्ष पाँच सौ योजन ऊँचा, उसी अनुपात में शाखाओं, पत्रों, पलाशों एवं घेरे से युक्त तथा फूल और फल से सुशोभित था। प्रत्येक रत्नवृक्ष के नीचे पाँच सौ योजन ऊँचा, रत्नों से जटित एवं सुसज्जित विशाल सिंहासन रखा था। उनपर एक-एक तथागत पर्यंक की मुद्रा में बैठे थे। इसी क्रम से सम्पूर्ण त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु में सभी रत्नवृक्षों के नीचे वे तथागत पर्यंकासन की मुद्रा में बैठ गये।

तेन खलु पुनः समयेनेयं त्रिसाहस्रमहासाहस्री लोकधातुस्तथागतपरिपूर्णाभून्न तावद् भगवतः शाक्यमुनेस्तथागतस्यात्मभावनिर्मिता एकस्मादपि दिग्भागात् सर्व आगता अभूवन्। अथ खलु पुनर्भगवान् शावयमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तेषां तथागतविग्रहाणामागतागतानावकाशं निर्मिमीते स्म। समन्तादष्टभ्यो दिग्भ्यो विंशतिबुद्धक्षेत्रकोटीनयुतशतसहस्राणि सर्वाणि वैडूर्यमयानि सप्तरत्नहेमजालसंछन्नानि किङ्किणीजालालंकृतानि मान्दारवमहामान्दारवपुष्पसंस्तीर्णानि दिव्यवितानविततानि दिव्यपुष्पदामाभिप्रलम्बितानि दिव्यगन्धधूपनधूपितानि। सर्वाणि च तानि विंशतिबुद्धक्षेत्रकोटीनयुतशतसहस्राण्यपगतग्रामनगरनिगमजनपदराष्ट्रराजधानीन्यपगतकालपर्वतान्यपगतमुचिलिन्दमहामुचिलिन्द पर्वतान्यपगतचक्रवाडमहाचक्रवाडपर्वतान्यपगतसुमेरुपर्वतान्यपगततदन्यमहापर्वतान्यपगतमहासमुद्राण्यपगतनदीमहानदीनि परिसंस्थापयत्यपगतदेवमनुष्यासुरकायान्यपगतनिरयतिर्यग्योनियमलोकानि। तानि च सर्वाणि बहुबुद्धक्षेत्राण्येकमेव बुद्धक्षेत्रमेकमेव पृथिवीप्रदेशं परिसंस्थापयामास समं रमणीयं सप्तरत्नमयैश्च वृक्षैश्चित्रितं तेषां च रत्नवृक्षाणां पञ्चयोजनशतान्यारोहपरिणाहोऽनुपूर्वशाखापत्रपुष्पफलोपेतः। सर्वस्मिश्च रत्नवृक्षमूले पञ्चयोजनशतान्यारोहपरिणाहं दिव्यरत्नमयं विचित्रं दर्शनीयं सिंहासनं प्रज्ञप्तमभूत्। तेषु रत्नवृक्षमूलेष्वागतागतास्तथागताः सिंहासनेषु पर्यङ्कं बद्ध्वा निषीदन्ते स्म। अनेन पर्यायेण पुनरपराणि विंशतिलोकधातुकोटीनयुतशतसहस्राण्येकैकस्यां दिशि शाक्यमुनिस्तथागतः परिशोधयति स्म। तेषां तथागतानामागतागतानामवकाशार्थं तान्यपि विंशतिलोकधातुकोटीनयुतशतसहस्राण्येकैकस्यां दिश्यपगत-

ग्रामनगरनिगमजनपदराष्ट्रराजधानीन्यपगतकालपर्वतान्यपगतमुचिलिन्दमहामुचिलिन्दपर्वतान्यपगतचक्रवाडमहाचक्रवाडपर्वतान्यपगतसुमेरुपर्वतान्यपगततदन्यमहापर्वतान्यपगतमहासमुद्राण्यपगतनदीमहानदीनि परिसंस्थापयत्यपगतदेवमनुष्यासुरकायान्यपगतनिरयतिर्यग्योनियमलोकानि । ते च सर्वसत्त्वा अन्येषु लोकधातुषूपनिक्षिप्ताः । तान्यपि बुद्धक्षेत्राणि वैडूर्यमयानि सप्तरत्नहेमजालप्रतिच्छन्नानि किंकिणीजालालंकृतानि मान्दारवमहामान्दारवपुष्पसंस्तीर्णानि दिव्यवितानविततानि दिव्यपुष्पदामाभिप्रलम्बितानि दिव्यगन्धधूपनधूपितानि रत्नवृक्षोपशोभितानि। सर्वे च ते रत्नवृक्षाः पञ्चयोजनशतप्रमाणाः पञ्चयोजनप्रमाणानि च सिंहासनान्यभिनिर्मितानि । ततस्ते तथागता निषीदन्ते स्म पृथक् पृथक् सिंहासनेषु रत्नवृक्षमूलेषु पर्यङ्कं बद्ध्वा ।

पुनः, उस समय यह त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु तथागतों से परिपूर्ण हो गई, किन्तु तबतक तथागत भगवान् शाक्यमुनि के अपने शरीर से निर्मित सभी प्राणी एक भी दिशा से नहीं आये थे। पुनः तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि उन क्रमशः आनेवाले तथागत के विग्रहों के लिए स्थान बनवाने लगे । आठों दिशाओं में चारों ओर उन्होंने बीस कोटि नयुत शतसहस्र बुद्धक्षेत्र निर्मित किये, जो सभी वैदूर्यमय, सप्तरत्नजटित, स्वर्णजाल से संछन्न, किंकिणिजाल से अलंकृत, मान्दारव एवं महामान्दारव पुष्पों से आकीर्ण, दिव्य वितानों से वितीर्ण, लटकती हुई दिव्य मालाओं से सुशोभित एवं दिव्यगन्धयुक्त धूप से धूपित थे । वे सभी बीस कोटि नयुत शतसहस्र बुद्धक्षेत्र ग्राम, नगर, निगम, जनपद, राष्ट्र एवं राजधानी से रहित, कालपर्वत से रहित, मुचिलिन्द एवं महामुचिलिन्द पर्वतों से रहित, चक्रवाड एवं महाचक्रवाड पर्वतों से रहित, सुमेरुपर्वत से रहित, अन्य पर्वतों से रहित, महासमुद्रों से रहित, नदी और महानदियों से रहित, देवता और मनुष्य, असुर एवं अन्य शरीरधारियों से रहित तथा नरक तिर्यक् योनि या यमलोक से रहित थे । वे सभी अनेक बुद्धक्षेत्र एक ही बुद्धक्षेत्र को एवं चौरस, रमणीय तथा सप्त रत्नवृक्षों से सुशोभित एक ही पृथ्वी-प्रदेश को परिसंस्थापित करते थे । उन रत्नवृक्षों की ऊँचाई एवं घेरा पाँच सौ योजन का था तथा इसी अनुपात में उनकी शाखाएँ पत्र, पुष्प और फल थे । सभी रत्नवृक्षों के नीचे पाँच सौ योजन ऊँचा और चौड़ा दिव्य रत्नमय विचित्र एवं दर्शनीय सिंहासन बना हुआ था । उन रत्नवृक्षों के नीचे क्रम से आये हुए तथागत उन सिंहासनों पर पर्यंक की मुद्रा में बैठ जाते थे । पुनः इसी क्रम से शाक्यमुनि तथागत ने प्रत्येक दिशा में बीस कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुओं को क्रम से आनेवाले उन तथागतों को अवकाश देने के लिए निर्मित किया । अब प्रत्येक दिशा में निर्मित वे बीस कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुएँ, ग्राम, नगर, निगम, जनपद, राष्ट्र एवं राजधानी से रहित, कालपर्वत से रहित, मुचिलिन्द एवं महामुचिलिन्द पर्वतों से रहित, चक्रवाड एवं महाचक्रवाड पर्वतों से रहित, सुमेरुपर्वत से रहित, अन्य

महापर्वतों से रहित, महासमुद्रों से रहित, नदियों और महानदियों से रहित, देवों, मनुष्यों एवं असुरों से रहित तथा नरक तिर्यक् योनि एवं यमलोक से रहित थीं। वे सभी जीव अन्य लोकधातुओं में भेज दिये गये। वे भी बुद्धक्षेत्र वैदूर्यमय सप्तरत्नजटित स्वर्णजाल से प्रतिच्छन्न, किंकिणिजाल से अलंकृत, मान्दारव एवं महामान्दारव के फूलों से संस्तीर्ण, दिव्य वितान से आच्छादित, लटकती हुई दिव्य पुष्पमालाओं से सुशोभित दिव्य गन्ध-धूप से धूपित एवं रत्नवृक्षों से सुशोभित थे। वे सभी रत्नवृक्ष पाँच सौ योजन प्रमाण के थे तथा पाँच सौ योजन प्रमाण के सिंहासन भी बनाये गये थे। तदनन्तर, वे तथागत रत्नवृक्षों के मूल में स्थित उन सिंहासनों पर पर्यंक की मुद्रा में अलग-अलग बैठ गये।

तेन खलु पुनः समयेन भगवता शाक्यमुनिना ये निर्मितास्तथागताः पूर्वस्यां दिशि सत्त्वानां धर्मं देशयन्ति स्म गंगानदीवालुकोपमेषु बुद्धक्षेत्रकोटीनयुतशतसहस्रेषु ते सर्वे समागता दशभ्यो दिग्भ्यस्ते चागता अष्टासु दिक्षु निषण्णा अभूवन्। तेन खलु पुनः समयेनैकैकस्यां दिशि त्रिंशल्लोकधातुकोटीशतसहस्राण्यष्टभ्यो दिग्भ्यः समन्तात्तैस्तथागतैराक्रान्ता अभूवन्। अथ खलु ते तथागताः स्वेषु स्वेषु सिंहासनेषूपविष्टाः स्वान् स्वानुपस्थायकान् संप्रेषयन्ति स्म भगवतः शाक्यमुनेरन्तिकं रत्नपुष्पपुटान् दत्त्वैवं वदन्ति स्म। गच्छत यूयं गृध्रकूटं पर्वतं गत्वा च पुनस्तस्मिंस्तं भगवन्तं शाक्यमुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं वन्दित्वास्मद्वचनादल्पाबाधतां मन्दग्लानतां च बलं च स्पर्शविहारतां च परिपृच्छध्वं सार्धं बोधिसत्त्वगणेन श्रावकगणेन। अनेन च रत्नराशिनाभ्यवकिरध्वमेवं च वदध्वम्। ददाति खलु पुनर्भगवांस्तथागतश्छन्दमस्य महारत्नस्तूपस्य समुद्घाटने। एवं ते तथागताः सर्वे स्वान् स्वानुपस्थायकान् संप्रेषयामासुः।

पुनः, उस समय भगवान् शाक्यमुनि के द्वारा बनाये गये जो तथागत पूर्व दिशा में गंगा नदी की बालुका के समान असंख्य कोटि नयुत शतसहस्र बुद्धक्षेत्रों में प्राणियों को धर्म की देशना कर रहे थे, वे सभी दसों दिशाओं से आ गये तथा आकर वे आठ दिशाओं में बैठ गये, उस समय प्रत्येक दिशा में तीस कोटि शतसहस्र लोकधातुएँ आठ दिशाओं से आये हुए उन तथागतों से चारों ओर से भर गईं। तत्पश्चात्, अपने-अपने आसनों पर बैठे हुए तथागत अपने-अपने अनुचरों को भगवान् शाक्यमुनि के निकट भेजते हुए रत्नपुष्प के पुटों को देकर इस प्रकार बोले—तुम लोग जाकर गृध्रकूट पर्वत पर विराजमान तथागत, अर्हत्, सम्यक्, सम्वुद्ध उन भगवान् शाक्यमुनि की वन्दना करके हमारी ओर से बोधिसत्त्वों एवं श्रावकगणों के समेत उनकी कुशलता, स्वस्थता, शक्ति और स्पर्शविहारता के बारे में पूछना। इस रत्नराशि की उनपर वर्षा करना और उनसे ऐसा

कहना—क्या भगवन् ! इस महारत्नस्तूप के उद्घाटन करने की कृपा करेंगे? ऐसा कहकर उन तथागतों ने अपने-अपने अनुचरों को भेजा।

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतस्तस्यां वेलायां स्वान्निर्मितानशेषतः समागतान् विदित्वा पृथक्पृथक्सिंहासनेषु निषण्णांश्च विदित्वा तांश्चोपस्थायकांस्तेषां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामागतान् विदित्वा छन्दं च तैस्तथागतैरर्हद्भिः सम्यक्संबुद्धैरारोचितं विदित्वा तस्यां वेलायां स्वकाद्धर्मासनादुत्थाय वैहायसमन्तरीक्षेऽतिष्ठत्। ताश्च सर्वाश्चतस्रः परिषदः उत्थायासनेभ्योऽञ्जलीः परिगृह्य भगवतो मुखमुल्लोकयन्तस्तस्थुः। अथ खलु भगवांस्तं महान्तं रत्नस्तूपं वैहायसं स्थितं दक्षिणया हस्ताङ्गुल्या मध्ये समुद्घाटयति स्म समुद्घाट्य च द्वे भित्ती प्रविसारयति स्म। तद्यथापि नाममहानगरद्वारेषु महाकपाटसंपुटावर्गलविमुक्तौ प्रविसार्येते। एवमेव भगवांस्तं महान्तं रत्नस्तूपं वैहायसं स्थितं दक्षिणया हस्ताङ्गुल्या मध्ये समुद्घाट्यापावृणोति स्म। समनन्तरविवृतस्य खलु पुनस्तस्य महारत्नस्तूपस्य। अथ खलु भगवान् प्रभूतरत्नस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः सिंहासनोपविष्टः पर्यङ्कं बद्ध्वा परिशुष्कगात्रः संघटितकायो यथा समाधिसमापन्नस्तथा संदृश्यते स्म। एवं च वाचमभाषत। साधु साधु भगवन् शाक्यमुने। सुभाषितस्तेऽयं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः। साधु खलु पुनस्त्वं भगवन् शाक्यमुने यस्त्वमिमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं पर्षन्मध्ये भाषसे। अस्यैवाहं भगवन् सद्धर्मपुण्डरीकस्य धर्मपर्यायस्य श्रवणायेहागतः।

तदनन्तर, तथागत भगवान् शाक्यमुनि उस समय अपने द्वारा निर्मित सभी प्राणियों को आया हुआ जानकर तथा उन्हें पृथक्-पृथक् सिंहासनों पर बैठा हुआ जानकर तथा उन तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों के उन अनुचरों को आया हुआ जानकर एवं उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों द्वारा की गई प्रार्थना को जानकर उस समय अपने धर्मासन से उठकर नक्षत्र के समान आकाश में खड़े हो गये। चार परिषदों में वर्त्तमान सभी प्राणी अपने-अपने आसनों से उठकर हाथ जोड़कर भगवान् का मुख देखते हुए खड़े हो गये। तदनन्तर, भगवान् ने आकाशस्थित उस महान् रत्नस्तूप को हाथ की दाहिनी उँगली द्वारा बीच से उद्घाटित कर दिया और उद्घाटित करके दो भागों में बाँट दिया। जिस प्रकार नगर के महान् द्वार में लगे हुए दो पटों (पल्लों) को अर्गला (सिकड़ी) खोलकर अलग कर दिया जाता है, उसी प्रकार भगवान् ने आकाशस्थित उस महान् रत्नस्तूप को हाथ की दाहिनी उँगली द्वारा उद्घाटित करके खोल दिया। तदनन्तर, उस महान् रत्नस्तूप के खुलते ही पर्यंकासन की मुद्रा में बैठे हुए दुर्बलेन्द्रिय एवं क्षीणकाय तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न समाधिस्थ की मुद्रा में दिखाई

पड़े। वे ऐसा वचन बोले—हे भगवन्, हे शाक्यमुने! तुम धन्य हो। तुमने बड़े सुन्दर ढंग से इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय की व्याख्या की है। पुनः हे भगवन्! हे शाक्यमुने! तुम धन्य हो। जो तुम इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का सभा के बीच में उपदेश देते हो। हे भगवान्! इसी सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय को सुनने के लिए यहाँ आया हूँ।

अथ खलु ताश्चतस्रः पर्षदस्तं भगवन्तं प्रभूतरत्नं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं बहुकल्पकोटीनयुतशतसहस्रपरिनिर्वृतं तथा भाषमाणं दृष्ट्वाश्चर्यप्राप्ता अद्भुतप्राप्ता अभूवन्। तस्यां वेलायां तं भगवन्तं प्रभूतरत्नं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं तं च भगवन्तं शाक्यमुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं दिव्यमानुष्यकै रत्नराशिभिरभ्यवकिरन्ति स्म। अथ खलु भगवान् प्रभूतरत्नस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो भगवतः शाक्यमुनेस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य तस्मिन्नेव सिंहासनेऽर्धासनमदासीत्तस्यैव महारत्नस्तूपाभ्यन्तर एवं च वदति। इहैव भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतो निषीदतु। अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतस्मिन्नर्धासने निषसाद तेनैव तथागतेन सार्धमुभौ च तौ तथागतौ तस्य महारत्नस्तूपस्य मध्ये सिंहासनोपविष्टौ वैहायसमन्तरीक्षस्थौ संदृश्येते।

तदनन्तर, अनेक कोटि नयुत शतसहस्र कल्पों पूर्व परिनिर्वाण को प्राप्त तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, उन भगवान् प्रभूतरत्न को इस प्रकार बोलते हुए देखकर वे चारों परिषदें आश्चर्य को प्राप्त हो गईं, अचम्भा को प्राप्त हो गईं। उस समय (उन लोगों ने) तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध उन भगवान् प्रभूतरत्न के एवं तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, उन भगवान् शाक्यमुनि के ऊपर दिव्य एवं मानुष्यक (मनुष्यलोक के) रत्नराशियों की वर्षा की। तदनन्तर, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न ने तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि को उसी महान् रत्नस्तूप के अन्दर उसी सिंहासन पर आधा स्थान दिया और इस प्रकार कहा—तथागत! भगवान् शाक्यमुनि यहीं बैठें। तदनन्तर, तथागत भगवान् शाक्यमुनि उन्हीं तथागत के साथ उसी आधे आसन पर बैठे। उस महान् रत्नस्तूप के बीच सिंहासन पर बैठे हुए वे दोनों तथागत आकाश में स्थित दो नक्षत्रों की तरह दिखाई पड़ रहे थे।

अथ खलु तासां चतसृणां पर्षदामेतदभवत्। दूरस्था वयमाभ्यां तथागताभ्याम्। यन्नूनं वयमपि तथागतानुभावेन वैहायसमभ्युद्गच्छेम इति। अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतस्तासां चतसृणां पर्षदां चेतसैव चेतःपरिवितर्कमाज्ञाय तस्यां वेलायामृद्धिबलेन ताश्चतस्रः पर्षदो वैहायसमुपर्यन्तरीक्षे प्रतिष्ठापयति स्म। अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतस्तस्यां वेलायां

ताश्चतस्रः पर्षद आमन्त्रयते स्म। को भिक्षवो युष्माकमुत्सहते तस्यां सहायां लोकधाताविमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं संप्रकाशयितुम् । अयं स कालोऽयं स समयः संमुखीभूतस्तथागतः परिनिर्वायितुकामो भिक्षवस्तथागत इमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायमुपनिक्षिप्य ।

तदनन्तर, उन चार परिषदों के मन में ऐसा विचार हुआ--इन तथागतों से हमलोग दूर हैं, अतः क्यों न हमलोग भी तथागत के प्रभाव से आकाश में ऊपर उनके निकट चले जायँ । तदनन्तर, तथागत भगवान् शाक्यमुनि ने उन चारों परिषदों के मन के वितर्क का अपने मन के वितर्कों से अनुभव-अनुमान लगाकर उस समय अपनी अलौकिक शक्ति के द्वारा उन चार परिषदों को ऊपर आकाश में पहुँचा दिया । तदनन्तर, तथागत भगवान् शाक्यमुनि उस समय उन चार परिषदों से बोले--हे भिक्षुओ ! तुममें से किसके हृदय में उस महालोकधातु में इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय को प्रकाशित करने का उत्साह है । हे भिक्षुओ ! यह समय (आ गया) है । यह काल (आ गया) है । जब तथागत सम्मुख उपस्थित हुए हैं और इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय के उपदेश द्वारा वे तथागत लोगों को निर्वाण प्राप्त कराना चाहते हैं ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं--

अयमागतो निर्वृतको महर्षी रतनामयं स्तूप प्रविश्य नायकः ।
श्रवणार्थ धर्मस्य इमस्य भिक्षवः को धर्महेतोर्न जनेत वीर्यम् ।।१।।

हे भिक्षुओ ! (देखो) । यह निर्वाणप्राप्त महर्षि एवं संसार के नायक रत्नमय स्तूप में प्रविष्ट होकर इस धर्म को सुनने के लिए आ गये हैं। कौन ऐसा है, जो ऐसे धर्म की प्राप्ति के लिए अपनी सारी शक्ति नहीं लगायगा ।

बहुकल्पकोटीपरिनिर्वृतोऽपि सो नाम अद्यापि शृणोति धर्मम् ।
तर्हि तर्हि गच्छति धर्महेतोः सुदुर्लभो धर्म यमेवरूपः ।।२।।

यद्यपि उन्होंने अनेक कोटि कल्पों के पूर्व निर्वाण प्राप्त कर लिया है, तथापि वे आज धर्म को सुन रहे ,हैं और इस धर्म को सुनने के लिए उन स्थानों पर आते हैं, जहाँ इसकी चर्चा होती है । अतः, यह धर्म अत्यन्त दुर्लभ है ।

प्रणिधानमेतस्य विनायकस्य निषेवितं पूर्वभवे यदासीत् ।
परिनिर्वृतोपी इमु सर्वलोकं पर्येषती सर्वदशद्दिशासु ।।३।।

उन विनायक का यह व्रत है । इसका सेवन उन्होंने पूर्वजन्म में भी किया था । परिनिर्वाण को प्राप्त कर लेने पर भी ये सारे संसार में दसों दिशाओं में भ्रमण करते रहते हैं ।

इमे च सर्वे मम आत्मभावाः सहस्रकोट्यो यथ गङ्गवालिकाः ।
ते धर्मकृत्यस्य कृतेन आगताः परिनिर्वृते च इमु द्रष्टु नाथम् ।।४।।

गंगा की बालुका के समान सहस्र कोटि ये सभी (प्राणी) मेरे ही अपने शरीर हैं। वे धर्मकृत्य के लिए तथा परिनिर्वाण-प्राप्त इस संसार के स्वामी को देखने के लिए आये हैं ।

छोरित्व क्षेत्राणि स्वकस्वकानि तथ श्रावकान्नरमरुतश्च सर्वान् ।
सद्धर्मसंरक्षणहेतु सर्वे कथं चिरं तिष्ठिय धर्मनेत्री ।।५।।

सभी सद्धर्म के संरक्षण के हेतु अपने-अपने क्षेत्रों का निर्वाण करके एवं सभी श्रावकों, मनुष्यों एवं देवों को (निर्मित करके) सद्धर्म की रक्षा के लिए जिससे कि यह धर्ममार्ग का प्रदर्शक चिरकाल तक स्थित रहे,

एतेष बुद्धान निषीदनार्थं बहुलोकधातून सहस्रकोट्यः ।
संक्रामिता मे तथ सर्वसत्त्वा ऋद्धीबलेन परिशोधिताश्च ।।६।।

इन बुद्धों के बैठने के लिए मैंने अनेक शत सहस्र लोकधातुओं का संक्रमण किया है तथा सभी प्राणियों को अपने ऋद्धि बल के द्वारा परिशुद्ध कर दिया है।

एतादृशी उत्सुकता इयं मे कथं प्रकाशेदिय धर्मनेत्री
इमे च बुद्धा स्थित अप्रमेया द्रुमाण मूले यथ पद्मराशिः ।।७।।

मेरी इस प्रकार की यह उत्सुकता रही है कि मैं किस प्रकार इस धर्मनेत्री को प्रकाशित करूँ । कमलों के समूह के समान ये अप्रमेय बुद्ध वृक्षों के नीचे स्थित हैं ।

द्रुममूलकोटीय अनल्पकायो सिंहासनस्थेहि विनायकेहि ।
शोभन्ति तिष्ठन्ति च नित्यकाल हुताशनेनेव यथान्धकारम् ।।८।।

अनेक कोटि वृक्षों का मूल सिंहासन पर बैठे हुए विनायकों से, जो यहाँ निरन्तर विराजमान रहते हैं, उसी प्रकार सुशोभित हो रहा है, जिस प्रकार अग्नि से अन्धकार सुशोभित होता है ।

गन्धो मनोज्ञो दशसू दिशासु प्रवायते लोकविनायकानाम् ।
येना इमे मूर्च्छित सर्वसत्त्वा वाते प्रवाते इह नित्यकालम् ।।९।।

लोकविनायकों की सुन्दर गन्ध दसों दिशाओं से फैल रही है । पवन के चलने पर उसके द्वारा ये सभी प्राणी मतवाले हो जाते हैं ।

मयि निर्वृते यो एतं धर्मपर्यायु धारयेत् ।
क्षिप्रं व्याहरतां वाचं लोकनाथान संमुखम् ।।१०।।

मेरे निर्वाण प्राप्त करने पर जो इस धर्मपर्याय को धारण करेगा, वह शीघ्र ही लोकनायकों के सम्मुख ऐसा वचन कहेगा ।

परिनिर्वृतो हि सबुद्धः प्रभूतरतनो मुनिः ।
सिंहनाद श्रुणे तस्य व्यवसायं करोति यः ॥११॥

क्योंकि, परिनिर्वाण-प्राप्त प्रभूतरत्न मुनि पुनः जग गये हैं और जो ऐसा व्यवसाय करेगा, उसके सिंहनाद वे सुनेंगे ।

अहं द्वितीयो बहवो इमे च ये कोटियो आगत नायकानाम् ।
व्यवसाय श्रोष्यामि जिनस्य पुत्रात् यो उत्सहेद्धर्ममिमं प्रकाशितुम् ॥१२॥

दूसरा मैं सुनूँगा तथा यहाँ आये हुए अनेक कोटि नायक उस जिनपुत्र के व्यवसाय को सुनेंगे, जो (जिनपुत्र) इस धर्म को प्रकाशित करने का उत्साह करेगा ।

अहं च तेन भवि पूजितः सदा प्रभूतरत्नश्च जिनः स्वयम्भूः ।
यो गच्छते दिशविदिशासु नित्यं श्रवणाय धर्मं इमेमवरूपम् ॥१३॥

उसके द्वारा मैं सदा पूजित होऊँगा तथा प्रभूतरत्न नामक स्वयम्भू जिन प्रभावित होंगे, जो सदा इस प्रकार के धर्म को सुनने के लिए सदा दिशाओं एवं विदिशाओं में जाते रहते हैं ।

इमे च ये आगत लोकनाथा विचित्रिता यैरिय शोभिता भूः ।
तेषां पि पूजा विपुला अनल्पका कृता भवेत् सूत्रप्रकाशनेन ॥१४॥

यहाँ जितने भी लोकनाथ आये हुए हैं तथा जिनके द्वारा यह भूमि विचित्रित एवं शोभित हो रही है, उन सबकी भी इस सूत्र के प्रकाशित करने से विपुल एवं महती पूजा हो जायगी ।

अहं च दृष्टो इह आसनस्मिन् भगवांश्च योऽयं स्थितु स्तूपमध्ये ।
इमे च अन्ये बहुलोकनाथा ये आगताः क्षेत्रशतैरनेकैः ॥१५॥

इस आसन पर बैठा हुआ मैं दिखाई पड़ रहा हूँ तथा यह भगवान् भी जो स्तूप के भीतर बैठे हुए हैं एवं ये अन्य अनेक लोकनाथ, जो अनेकशत क्षेत्रों से आये हैं, दिखाई पड़ रहे हैं ।

चिन्तेथ कुलपुत्रा हो सर्वसत्त्वानुकम्पया ।
सुदुष्करमिदं स्थानमुत्सहन्ति विनायकाः ॥१६॥

हे कुलपुत्रो ! सब जीवों पर दया करो। ध्यान रखो कि यह अत्यन्त कठिन कार्य है, जिनको करने के लिए ये विनायक उत्सुक हैं ।

बहुसूत्रसहस्राणि यथा गङ्गायवालिकाः ।
तानि कश्चित् प्रकाशेत न तद् भवति दुष्करम् ।।१७।।

गंगा की बालुका के समान जो अनेक सहस्र सूत्र हैं, यदि उनको भी कोई प्रकाशित करे, तो उसका यह कार्य दुष्कर नहीं होगा ।

सुमेरु यश्च हस्तेन अध्यालम्बित्व मुष्टिना ।
क्षिपेत क्षेत्रकोटीयो न तद् भवति दुष्करम् ।।१८।।

यदि कोई सुमेरु को मुट्ठी से पकड़कर करोड़ों क्षेत्र (के पार) फेंक दे, तो उसका भी यह कार्य दुष्कर नहीं है ।

यश्च इमां त्रिसाहस्रीं पादाङ्गुष्ठेन कम्पयेत् ।
क्षिपेत क्षेत्रकोटीयो न तद् भवति दुष्करम् ।।१९।।

जो इस त्रिसाहस्री को पैर क अंगूठे से कँपाये तथा करोड़ों क्षेत्र (के परे) फेंक दे, उसका भी यह कार्य दुष्कर नहीं है ।

भवाग्रे यश्च तिष्ठित्वा धर्म भाषेन्नरो इह ।
अन्य सूत्रसहस्राणि न तद् भवति दुष्करम् ।।२०।।

जो मनुष्य भवाग्रों पर बैठकर इस संसार में धर्म का विवेचन करता है या अन्य सहस्रों सूत्रों का विवेचन करता है, तो उसका भी यह कार्य दुष्कर नहीं है ।

निर्वृतस्मिन् तु लोकेन्द्र पश्चात् काले सुदारुणे ।
य इदं धारयेत् सूत्रं भाषेद्वा तत् सुदुष्करम् ।।२१।।

किन्तु, लोकेन्द्र के निर्वाण प्राप्त कर लेने के पश्चात् आनेवाले भयंकर काल में जो इस सूत्र को धारण करेगा या उसका विवेचन करेगा, वही सचमुच अत्यन्त दुष्कर कार्य करेगा ।

आकाशधातुं यः सर्वामेकमुष्टिं तु निक्षिपेत् ।
प्रक्षिपित्वा च गच्छेत न तद् भवति दुष्करम् ।।२२।।

जो सारी आकाशधातु को एक ही मुट्ठी में रखकर फेंकते हुए चले, तो उसका भी यह कार्य दुष्कर नहीं है ।

यस्तु ईदृशकं सूत्रं निर्वृतस्मिन् तदा मयि ।
पश्चात्काले लिखेच्चापि इदं भवति दुष्करम् ।।२३।।

किन्तु, मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर (जो इस सूत्र को लिखेगा), वह सचमुच दुष्कर कार्य करेगा ।

पृथिवीधातुं च यः सर्वां नखाग्रे संप्रवेशयेत् ।
प्रक्षिपित्वा च गच्छेत ब्रह्मलोकं पि आरुहेत् ॥२४॥

जो सम्पूर्ण पृथ्वीधातु को नख के अग्रभाग पर धारण करके उसे उछालता हुआ ब्रह्मलोक तक आरोहण कर जाता है,

न दुष्करं हि सो कुर्यान्न च वीर्यस्य तत्तकम् ।
तं दुष्करं करित्वा न सर्वलोकस्यिहाग्रतः ॥२५॥

वह भी कोई दुष्कर कार्य नहीं करता । इस में विशेष शक्ति की आवश्यकता नहीं है । उस दुष्कर कार्य को करके वह उस सम्पूर्ण लोक में श्रेष्ठता का अधिकारी नहीं है ।

अतोऽपि दुष्करतरं निर्वृतस्य तदा मम ।
पश्चात्काले इदं सूत्रं वदेया यो मुहूर्तकम् ॥२६॥

किन्तु, इससे भी अधिक दुष्कर उसका कार्य होगा, जो मेरे निर्वाण प्राप्त करने के अनन्तर एक मुहूर्त्त के लिए भी इसकी चर्चा करेगा ।

न दुष्करमिदं लोके कल्पदाहस्मि यो नरः ।
मध्ये गच्छेददह्यन्तस्तृणभारं वहेत च ॥२७॥

इस संसार में उसका कार्य दुष्कर नहीं है, जो मनुष्य घास का बोझ लेकर कल्पाग्नि के मध्य में विना जले हुए चला जाय ।

अतोऽपि दुष्करतरं निर्वृतस्य तदा मम ।
धारयित्वा इदं सूत्रमेकसत्त्वं पि श्रावयेत् ॥२८॥

इससे भी दुष्कर उसका कार्य है, जो मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर इस सूत्र को धारण करके एक भी प्राणी को इसका उपदेश दे,

धर्मस्कन्धसहस्राणि चतुरशीति धारयेत् ।
सोपदेशान् यथाप्रोक्तान् देशयेत् प्राणिकोटिनाम् ॥२९॥

चौरासी धर्मस्कन्धों को धारण करे और उपदेश के साथ बताई गई राति से करोड़ों प्राणियों को (उसकी) देशना करे ।

न ह्येतं दुष्करं भोति तस्मिन् कालस्मि भिक्षुणाम् ।
विनयेच्छ्रावकान् मह्यं पञ्चाभिज्ञासु स्थापयेत् ॥३०॥

उस समय भिक्षुओं का यह कार्य दुष्कर नहीं होता है, जो वह मेरे श्रावकों को दीक्षित करता है और उन्हें पंच अभिज्ञाओं में स्थापित करता है ।

तस्येदं दुष्करतरं इदं सूत्रं च धारयेत् ।
श्रद्दधेदधिमुच्येद्वा भाषेद्वापि पुनः पुनः ।।३१।।

उसका यह कार्य अन्यन्त दुष्कर है कि वह इस सूत्र को धारण करे, उसमें श्रद्धा करे या ध्यान लगाये अथवा पुनः-पुनः उसका उपदेश करे।

कोटीसहस्रान् बहवः अर्हत्त्वे योऽपि स्थापयेत् ।
षडभिज्ञान्महाभागान् यथा गङ्गायवालिकाः ।।३२।।

और जो गंगा की बालुका के समान अनेक कोटि सहस्र षडभिज्ञ एवं महाभाग (प्राणियों) को अर्हत्-पद पर प्रतिष्ठित कर दे ।

अतो बहुतरं कर्म करोति स नरोत्तमः ।
निर्वृतस्य हि यो मह्यं सूत्रं धारयते वरम् ।।३३।।

किन्तु, इससे भी अधिक दुष्कर कार्य वह श्रेष्ठ मनुष्य करता है, जो मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के पश्चात् मेरे इस श्रेष्ठ सूत्र को धारण करता है ।

लोकधातुसहस्रेषु बहु मे धर्म भाषिताः ।
अद्यापि चाहं भाषामि बुद्धज्ञानस्य कारणात् ।।३४।।

सहस्र लोकधातुओं में मेरे धर्म का अनेक बार उपदेश दिया गया है । आज भी मैं बुद्धज्ञान (की प्राप्ति) के हेतु (इसका) उपदेश करता हूँ ।

इदं तु सर्वसूत्रेषु सूत्रमग्रं प्रवुच्यते ।
धारेति यो इदं सूत्रं स धारे जिनविग्रहम् ।।३५।।

यह सूत्र सभी सूत्रों में श्रेष्ठ कहा जाता है । जो इस सूत्र को धारण करता है, वह जिन के विग्रह को धारण करता है ।

भाषध्वं कुलपुत्राहो संमुखं वस्तथागतः ।
य उत्सहति वः कश्चित् पश्चात् कालस्मि धारणम् ।।३६।।

हे कुलपुत्रो ! तुमलोगों के सम्मुख तथागत वर्त्तमान हैं । बताओ, तुमलोगों में ऐसा कोई है, जिसमें बाद के समय मे (इस सूत्र को) धारण करने का उत्साह है।

महत्प्रियं कृतं भोति लोकनाथान सर्वशः ।
दुराधारमिदं सूत्रं धारयेद् यो मुहूर्तकम् ।।३७।।

वह सभी लोकनाथों का महान् प्रिय कार्य करता है, जो इस दुराधार सूत्र को मुहूर्त्त-भर के लिए भी धारण करता है ।

संवर्णितश्च सो भोति लोकनाथेहि सर्वदा ।
शूरः शौटीर्यवांश्चापि क्षिप्राभिज्ञश्च बोधये ।।३८।।

शूर, शौर्यवान् एवं शीघ्र ही ज्ञान को प्राप्त करनेवाले उसकी लोकनाथ सदा प्रशंसा करते है।

धुरावाहश्च सो भोति लोकनाथान औरसः ।
दान्तभूमिमनुप्राप्तः सूत्रं धारेति यो इदम् ॥३९॥

वह औरस पुत्र के समान लोकनाथों के बोझ को धारण करता है, जो दान्तभूमि को प्राप्त करके इस सूत्र को धारण करता है।

चक्षुभूतश्च सो भोति लोके सामरमानुषे ।
इदं सूत्रं प्रकाशित्वा निर्वृते नरनायके ॥४०॥

नरनायक के निर्वाण प्राप्त कर लेने पर इस सूत्र को प्रकाशित करनेवाला वह देवों और मनुष्यों से युक्त इस संसार में (सबके) नेत्र के समान होता है।

वन्दनीयश्च सो भोति सर्वसत्त्वान पण्डितः ।
पश्चिमे कालि यो भाषेत् सूत्रमेकं मुहूर्तकम् ॥४१॥

वह पण्डित भी सभी प्राणियों का वन्दनीय होता है, जो भगवान् की निर्वाणप्राप्ति के बाद के समय में इस सूत्र का एक भी मुहूर्त्त के लिए विवेचन करता है।

अथ खलु भगवान् कृत्स्नं बोधिसत्त्वगणं ससुरासुरं च लोकमामन्त्र्यैतदवोचत् । भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्यहमप्रमेयासंख्येयान् कल्पान् सद्धर्मपुण्डरीकं सूत्रं पर्येषितवानखिन्नोऽविश्रान्तः । पूर्वं चाहमनेकान् कल्पाननेकानि कल्पशतसहस्राणि राजाभूवम् । अनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ कृतप्रणिधानो न च मे चित्तव्यावृत्तिरभूत् । षण्णां च पारमितानां परिपूर्यं उद्युक्तोऽभूवमप्रमेयदानप्रदः सुवर्णमणिमुक्तावैडूर्यशंखशिलाप्रवाड़जातरूपरजताश्मगर्भमुसारगल्वलोहितमुक्ताग्रामनगरनिगमजनपदराष्ट्रराजधानीभार्यापुत्रदुहितृदासीदासकर्मकरपौरुषेयहस्त्यश्वरथयावदात्मशरीरपरित्यागी करचरणशिरोत्तमाङ्गप्रत्यङ्गजीवितदाता । न च मे कदाचिदाग्रहचित्तमुत्पन्नम् । तेन च समयेनायं लोको दीर्घायुरभूदनेकवर्षशतसहस्रजीवितेन चाहं कालेन धर्मार्थं राज्यं कारितवान् न विषयार्थम् । सोऽहं ज्येष्ठं कुमारं राज्येऽभिषिच्य चतुर्दिशं ज्येष्ठधर्मगवेषणायोद्युक्तोऽभूवमेवं घण्टया घोषापयितवान् । यो मे ज्येष्ठं धर्ममनुप्रदास्यत्यर्थं चाख्यास्यति तस्याहं दासो भूयासम् । तेन च कालेनर्षिरभूत् स मामेतदवोचत् । अस्ति महाराज सद्धर्मपुण्डरीकं नाम सूत्रं ज्येष्ठधर्मनिर्देशकम् । तद्यदि दास्यमभ्युपगच्छसि, ततस्तेऽहं तं धर्मं श्रावयिष्यामि सोऽहं श्रुत्वा तस्यर्षेर्वचनं हृष्टस्तुष्ट उदग्र आत्तमना: प्रीतिसौमनस्य-

G-7 १०३३

जातो येन स ऋषिस्तेनोपयिवानुपेत्यावोचत् । यत्ते दासेन कर्म करणीयं तत् करोमि । सोऽहं तस्यर्षेर्दासभावमभ्युपेत्य तृणकाष्ठपानीयकन्दमूलफलादीनि प्रेष्यकर्माणि कृतवान् यावद्द्वाराध्यक्षोऽप्यहमासम् । दिवसं चैवंविधं कर्म कृत्वा रात्रौ शयानस्य मञ्चके पादान् धारयामि । न च मे कायक्लमो न चेतसि क्लमोऽभूत् । एवं च मे कुर्वतः परिपूर्णं वर्षसहस्रं गतम् ।

तदनन्तर, भगवान् सम्पूर्ण बोधिसत्त्वों को, देवों एवं असुरों के समेत प्राणियों को सम्बोधन करते हुए इस प्रकार बोले—हे भिक्षुओ ! पूर्व समय में, बीते दिनों में मैंने इस सद्धर्मपुण्डरीक को विना थके एवं विना विश्राम किये अप्रमेय तथा असंख्य कल्पों तक खोजा है । अनेक कल्पों के पूर्व अनेक शतसहस्र कल्पों तक मैं राजा था । मैंने श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि (की प्राप्ति) के लिए व्रत ले लिया था । अतः, मेरा चित्त कभी चंचल नहीं हुआ । मैंने प्रभूत दान देकर छह पारमिताओं को पूर्णरूप से प्राप्त करने का उद्योग किया । मैंने सुवर्ण, मणि, मुक्ता, वैदूर्य, शंख, शिला, प्रवाल, जातरूप, रजत, अश्मगर्भ, मुसारगल्व, लोहितमुक्ता, गाँव, नगर, निगम, जनपद, राष्ट्र, राजधानी, भार्या, पुत्र, दुहिता, दासी, दास, नौकर, चाकर, हाथी, घोड़ा एवं रथ से लेकर अपने शरीर तक का परित्याग किया एवं अपने हाथ, पैर, मस्तक, ललाट, प्रत्येक अंग एवं प्राणों को भी दे दिया । किन्तु, मेरे मन में कभी दुराग्रह की भावना नहीं उत्पन्न हुई । उस समय यहाँ के लोगों की आयु लम्बी थी तथा अनेक शतसहस्र वर्षों के अपने जीवनकाल में मैंने धर्म के लिए, न कि विषयभोग के लिए राज्य किया । पुनः मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य पर अभिषिक्त करके ज्येष्ठ धर्म की खोज में चारो दिशाओं में घूमने लगा और मैंने घण्टा के द्वारा घोषणा कराई । जो मुझे ज्येष्ठ धर्म (का उपदेश) देगा और उसका अर्थ कहेगा, उसका मैं दास वन जाऊँगा । उस समय एक ऋषि था । वह मुझसे इस प्रकार बोला—हे महाराज! ज्येष्ठ धर्म को बतानेवाला सद्धर्मपुण्डरीक नामक सूत्र है । यदि मेरी दासता स्वीकार करो, तो मैं तुम्हें उस धर्म को सुनाऊँगा । उस ऋषि के वचन को सुनकर मैं हृष्ट, तुष्ट, उदग्र एवं आत्तमना हो गया और (मेरे हृदय में) प्रीति और सौमनस्य की उत्पत्ति हुई । जिस ओर वह ऋषि था, उस ओर मैं गया और जाकर बोला—मैं तुम्हारे दास के कामों को करूँगा । तदनन्तर, मैं उस ऋषि का दास बनकर उसके लिए घास, लकड़ी, जल, मूल, कन्द, फल आदि लाने के कार्यों को करने लगा । यहाँतक कि मैं उसका द्वारपाल भी बन गया । दिन में इस प्रकार के कार्य करके रात्रि में जब वह बिस्तरे पर सोता था, तब मैं उसके पैर को धारण करता था (छाती से लगाये रहता था) । इस कार्य को करने में न मेरा शरीर थकता था और न मेरा मन ही थकता था । यही कार्य करते-करते मुझे पूरे हजार वर्ष हो गये ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामेतमेवार्थं परिद्योतयन्निमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, इसी अर्थ को स्पष्ट करते हुए भगवान् उस समय ये गाथाएँ बोले—

कल्पानतीतान् समनुस्मरामि यदाहमासं धार्मिको धर्मराजा ।
राज्यं च मे धर्महेतोः कृतं तन्न च कामहेतोर्ज्येष्ठधर्महेतोः ।।४२।।

मुझे उन बीते हुए कल्पों का स्मरण है, जंव मैं धर्मपूर्वक (शासन करनेवाला) धार्मिक राजा था । मैं धर्म के लिए, ज्येष्ठ धर्म के लिए राज्य करता था, काम के लिए नहीं ।

चतुर्दिशं मे कृत घोषणोऽयं धर्मं वचेद् यस्तस्य दास्यं व्रजेयम् ।
आसीदृषिस्तेन कालेन धीमान् सूत्रस्य सद्धर्मनाम्नः प्रवक्ता ।।४३।।

चारों दिशाओं में मैंने घोषणा करा दी कि जो भी मुझे इस धर्म का उपदेश देगा, मैं उसका दासत्व स्वीकार करूँगा । उस समय सद्धर्म नामक सूत्र का प्रवर्त्तक एक ऋषि था ।

स मामवोचद् यदि ते धर्मकांक्षा उपेहि दास्यं धर्ममतः प्रवक्ष्ये ।
तुष्टश्चाहं वचनं तं निशाम्य कर्माकरोद्दासयोग्यं तदा यं ।।४४।।

उसने मुझसे कहा---यदि तुम्हें धर्म को जानने की आकांक्षा है, तो मेरा दासत्व स्वीकार करो । तुम्हें मैं धर्म का उपदेश दूँगा । उसके वचनों को सुनकर मैं प्रसन्न हो गया और उसकी सेवा के कार्यों को करने लगा ।

न कायचित्तक्लमथो स्पृशेन्मां सद्धर्महेतोर्दासमागतस्य ।
प्रणिधिस्तदा मे भवि सत्त्वहेतोर्नात्मानमुद्दिश्य न कामहेतोः ।।४५।।

इस कार्य को करने में न मेरा शरीर थकता था और न मेरा मन ही थकता था। यतः, मैंने सद्धर्म को जानने के लिए दासत्व स्वीकार किया था । उस समय यह मेरा व्रत सत्त्वप्राप्ति के लिए था, अपने स्वार्थ अथवा कामपूर्त्ति के उद्देश्य से नहीं ।

स राज आसीत्तदा लब्धवीर्यो अनन्यकर्माणि दशद्दिशासु ।
परिपूर्णकल्पान सहस्रखिन्नो यावत् सूत्रं लब्धवान् धर्मनामं ।।४६।।

तब सभी कार्यों को छोड़कर वह राजा दसों दिशाओं में पूरे सहस्र कल्पों तक परिश्रमपूर्वक विना थके हुए तबतक भ्रमण करता रहा, जबतक कि उसने सद्धर्म नामक सूत्र को प्राप्त नहीं कर लिया ।

तत् किं मन्यध्वे भिक्षवोऽन्यः स तेन कालेन तेन समयेन राजाभूत् । न खलु पुनरेवं द्रष्टव्यम् । तत् कस्य हेतोः । अहं स तेन कालेन तेन समयेन राजाभूवम् । स्यात् खलु पुनर्भिक्षवोऽन्यः स तेन कालेन तेन समयेनर्षिरभूत् । न खलु पुनरेवं द्रष्टव्यम् । अयमेव स तेन कालेन तेन समयेन देवदत्तो भिक्षु-

ऋषिरभूत्। देवदत्तो हि भिक्षवो मम कल्याणमित्रम् । देवदत्तमेव चागम्य मया षट् पारमिताः परिपूरिता महामैत्री महाकरुणा महामुदिता महोपेक्षा द्वात्रिंशन्महापुरुषलक्षणान्यशीत्यनुव्यञ्जनानि सुवर्णवर्णच्छविता दशबलानि चत्वारि वैशारद्यानि चत्वारि संग्रहवस्तून्यष्टादशावेणिकबुद्धधर्मा महर्द्धिबलता दशदिक्सत्त्वनिस्तारणता सर्वमेतद्देवदत्तमागम्य । आरोचयामि वो भिक्षवः प्रतिवेदयाम्येष देवदत्तो भिक्षुरनागतेऽध्वन्यप्रमेयैः कल्पैरसंख्येयैर्देवराजो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो भविष्यति विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च भगवान् देवसोपानायां लोकधातौ । देवराजस्य खलु पुनर्भिक्षवस्तथागतस्य विंशत्यन्तरकल्पानायुष्प्रमाणं भविष्यति । विस्तरेण च धर्मं देशयिष्यति । गङ्गानदीवालुकासमाश्च सत्त्वाः सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्करिष्यन्ति । अनेके च सत्त्वाः प्रत्येकबोधौ चित्तमुत्पादयिष्यन्ति । गङ्गानदीवालुकासमाश्च सत्त्वा अनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ चित्तमुत्पादयिष्यन्त्यवैवर्तिकक्षान्तिप्रतिलब्धाश्च भविष्यन्ति । देवराजस्य खलु पुनर्भिक्षवस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्य विंशन्त्यन्तरकल्पान् सद्धर्मः स्थास्यति । न च शरीरं धातुभेदेन भेत्स्यते । एकघनं चास्य शरीरं भविष्यति सप्तरत्नस्तूपं प्रविष्टम् । स च स्तूपः षष्टियोजनशतान्युच्चैस्त्वेन भविष्यति, चत्वारिंशद्योजनान्यायामेन । सर्वे च तत्र देवमनुष्याः पूजां करिष्यन्ति पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकाभिर्गाथाभिर्गीतेन च भिष्टोष्यन्ति । ये च तं स्तूपं प्रदक्षिणं करिष्यन्ति प्रणामं वा तेषां केचिदग्रफलमर्हत्त्वं साक्षात्करिष्यन्ति केचित् प्रत्येकबोधिमनुप्राप्स्यन्ते । अचिन्त्याश्चाप्रमेया देवमनुष्या अनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ चित्तान्युत्पाद्याविनिवर्तनीया भविष्यन्ति ।

हे भिक्षुओ ! क्या तुम समझते हो कि उस काल में उस समय वह राजा कोई दूसरा व्यक्ति था ? ऐसा नहीं सोचना चाहिए । ऐसा क्यों ? (क्योंकि) उस समय उस काल वह राजा मैं ही था । हे भिक्षुओ ! तुमलोग समझते होगे, उस समय, उस काल में, वह ऋषि कोई दूसरा रहा होगा । ऐसा नहीं समझना चाहिए ! यही भिक्षु देवदत्त उस समय उस काल में वह ऋषि था । हे भिक्षुओ ! यतः, देवदत्त मेरा कल्याणमित्र है । अतः, देवदत्त की ही सहायता से मैंने छह पारमिताओं में पूर्णता प्राप्त की है । महामैत्री, महाकरुणा, महामुदिता, महोपेक्षा, महापुरुषों के बत्तीस लक्षण, अस्सी अनुव्यंजन, सुवर्णवर्णच्छविता, दशबल, चार वैशारद्य, चार संग्रह-वस्तुएँ, अट्ठारह आवेणिक बुद्धधर्म, महर्द्धिबलता, दशदिक्सत्त्वनिस्तारण––इन सबको देवदत्त के पास ही आकर मैंने प्राप्त किया है । हे भिक्षुओ ! मैं तुमसे कहता हूँ । तुमसे प्रतिवेदन

करता हूँ (कि) यह भिक्षु देवदत्त भविष्य में अप्रमेय एवं असंख्य कल्पों के अनन्तर देव सोपानालोकधातु में देवराज नामक तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध ज्ञान एवं सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, दमनयोग्य पुरुषों का नियन्ता, देवों और मनुष्यों का शास्ता भगवान् बुद्ध होगा। हे भिक्षुओ! देवराज की आयु बीस अन्तरकल्पों की होगी। वह विस्तार से धर्म की देशना करेगा। गंगा की बालुका के समान (असंख्य) प्राणी सभी क्लेशों के नष्ट हो जाने के कारण अर्हत्-पद का साक्षात्कार करेंगे तथा अनेक प्राणी प्रत्येक बोधि में अनुराग उत्पन्न करेंगे। गंगा नदी की बालुका के समान (असंख्य) प्राणी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में अनुराग प्राप्त करेंगे एवं अवैवर्त्तिक शान्ति का लाभ करेंगे। पुनः हे भिक्षुओ! तथागत देवराज के परिनिर्वाण प्राप्त करने के अनन्तर बीस अन्तरकल्पों तक सद्धर्म स्थित रहेगा। (देवराज का) शरीर (विभिन्न) धातुओं में विभक्त नहीं होगा। सात रत्नों से निर्मित स्तूप में प्रविष्ट होकर इसका शरीर एकघन रहेगा। वह स्तूप साठ सौ योजन ऊँचा और चालीस योजन चौड़ा होगा। वहाँ सभी देव एवं मनुष्य पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज एवं पताका से उनकी पूजा करेंगे और गाथाओं एवं गीत से उनकी स्तुति करेंगे। जो उस स्तूप की प्रदक्षिणा करेंगे या उसको प्रणाम करेंगे, उनमें से कुछ अर्हत्त्व-रूप श्रेष्ठ फल का साक्षात्कार करेंगे एवं कुछ प्रत्येकबोधि को प्राप्त करेंगे। अचिन्त्य एवं अप्रमेय देव एवं मनुष्य श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में अनुराग प्राप्त करके अविनिवर्तनीय हो जायेंगे——निर्वाण प्राप्त कर लेंगे।

अथ खलु भगवान् पुनरेव भिक्षुसंघमामन्त्रयते स्म। यः कश्चिद् भिक्षवोऽनागतेऽध्वनि कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वेदं सद्धर्मपुण्डरीकं सूत्रपरिवर्तं श्रोष्यति, श्रुत्वा च न काङ्क्षिष्यति न विचिकित्सिष्यति विशुद्धचित्तश्चाधिमोक्ष्यते। तेन तिसृणां दुर्गतीनां द्वारं पिथितं भविष्यति। नरकतिर्यग्योनियमलोकोपपत्तिषु न पतिष्यति। दशदिग्बुद्धक्षेत्रोपपन्नश्चेदमेव सूत्रं जन्मनि जन्मनि श्रोष्यति। देवमनुष्यलोकोपपन्नस्य चास्य विशिष्टस्थानप्राप्तिर्भविष्यति। यस्मिंश्च बुद्धक्षेत्र उपपत्स्यते तस्मिन्नौपपादुके सप्तरत्नमये पद्म उपपत्स्यते तथागतस्य संमुखम्

तदनन्तर, भगवान् ने पुनः भिक्षुसंघ से कहा——हे भिक्षुओ! भविष्य में जो कोई कुलपुत्र या कुलकन्या इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) सूत्रपरिवर्त्त को सुनेगा तथा सुनकर सन्देह नहीं करेगा (तथा) विचिकित्सा नहीं करेगा वह विशुद्धचित्त (होकर) अधिमुक्ति (धर्म के प्रति झुकाव) प्राप्त कर लेगा। जिससे तीन दुर्गतियों का द्वार बन्द हो जायगा और वह नरक तिर्यक् योनि एवं यमलोक में जन्म नहीं लेगा एवं वह प्रत्येक जन्म में दसों दिशाओं में वर्त्तमान बुद्धक्षेत्रों में जन्म लेकर इस सूत्र का श्रवण करेगा। देव और मनुष्यलोक में उत्पन्न होने पर उसे विशिष्ट स्थान प्राप्त होगा।

जिस बुद्ध क्षेत्र में वह उत्पन्न होगा, उसमें वह तथागत के सम्मुख सप्तरत्नमय स्वयम्भू कमल में जन्म ग्रहण करेगा।

अथ खलु तस्यां वेलायामधस्ताद्दिशः प्रभूतरत्नस्य तथागतस्य बुद्धक्षेत्रादागतः प्रज्ञाकूटो नाम बोधिसत्त्वः। स तं प्रभूतरत्नं तथागतमेतदवोचत्। गच्छामो भगवन् स्वकं बुद्धक्षेत्रम्। अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतः प्रज्ञाकूटं बोधिसत्त्वमेतदवोचत्। मुहूर्तं तावत् कुलपुत्रागमयस्व यावन्मदीयेन बोधिसत्त्वेन मञ्जुश्रिया कुमारभूतेन सार्धं कंचिदेव धर्मविनिश्चयं कृत्वा पश्चात् स्वकं बुद्धक्षेत्रं गमिष्यसि। अथ खलु तस्यां वेलायां मञ्जुश्रीः कुमारभूतः सहस्रपत्रे पद्मे शकटचक्रप्रमाणमात्रे निषण्णोऽनेकबोधिसत्त्वपरिवृतः पुरस्कृतः समुद्रमध्यात् सागरनागराजभवनादभ्युद्गम्योपरि वैहायसं खगपथेन गृध्रकूटे पर्वते भगवतोऽन्तिकमुपसंक्रान्तः। अथ मञ्जुश्रीः कुमारभूतः पद्मादवतीर्य भगवतः शाक्यमुनेः प्रभूतरत्नस्य च तथागतस्य पादौ शिरसाभिवन्दित्वा येन प्रज्ञाकूटो बोधिसत्त्वस्तेनोपसंक्रान्त उपसंक्रम्य प्रज्ञाकूटेन बोधिसत्त्वेन सार्धं संमुखं संमोदनीं संरञ्जनीं विविधां कथामुपसंगृह्यैकान्ते न्यषीदत्। अथ खलु प्रज्ञाकूटो बोधिसत्त्वो मञ्जुश्रियं कुमारभूतमेतदवोचत्। समुद्रमध्यगतेन त्वया मञ्जुश्रीः कियान् सत्त्वधातुर्विनीतः। मञ्जुश्रीराह। अनेकान्यप्रमेयाण्यसंख्येयानि सत्त्वानि विनीतानि। तावदप्रमेयाण्यसंख्येयानि यावद्वाचा न शक्यं विज्ञापयितुं चित्तेन वा चिन्तयितुम्। मुहूर्तं तावत् कुलपुत्रागमयस्व यावत् पूर्वनिमित्तं द्रक्ष्यसि। समनन्तरभाषिता चेयं मञ्जुश्रिया कुमारभूतेन वाक् तस्यां वेलायामनेकानि पद्मसहस्राणि समुद्रमध्यादभ्युद्गतान्युपरिवैहायसं तेषु च पद्मेष्वनेकानि बोधिसत्त्वसहस्राणि संनिषण्णानि। अथ ते बोधिसत्त्वास्तेनैव खगपथेन येन गृध्रकूटः पर्वतस्तेनोपसंक्रान्ता उपसंक्रम्य ततश्चोपरिवैहायसं स्थिताः संदृश्यन्ते स्म। सर्वे च ते मञ्जुश्रिया कुमारभूतेन विनीता अनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ। तत्र ये बोधिसत्त्वा महायानसंप्रस्थिताः पूर्वमभूवंस्ते महायानगुणान् षट्पारमिताः संवर्णयन्ति। श्रावकपूर्वा बोधिसत्त्वास्ते श्रावकयानमेव संवर्णयन्ति। सर्वे च ते सर्वधर्मान् शून्यानिति संजानन्ति स्म महायानगुणांश्च। अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतः प्रज्ञाकूटं बोधिसत्त्वमेतदवोचत्। सर्वोऽयं कुलपुत्र मया समुद्रमध्यगतेन सत्त्वविनयः कृतः स चायं संदृश्यते। अथ खलु प्रज्ञाकूटो बोधिसत्त्वो मञ्जुश्रियं कुमारभूतं गाथाभिर्गीतेन परिपृच्छति स्म।

तदनन्तर, उस समय नीचे की दिशा में वर्तमान तथागत प्रभूतरत्न के बुद्धक्षेत्र से प्रज्ञाकूट नामक बोधिसत्त्व आया। वह उन तथागत प्रभूतरत्न से इस प्रकार बोला—हे भगवन्! मैं अपने बुद्धक्षेत्र में जा रहा हूँ। तब तथागत भगवान् शाक्यमुनि बोधिसत्त्व प्रज्ञाकूट से यह बोले—हे कुलपुत्र! केवल एक मुहूर्त्त के लिए ठहरो। मेरे कुमारभूत बोधिसत्त्व मञ्जुश्री के साथ धर्म के विषय में निश्चय करने के पश्चात् अपने बुद्धक्षेत्र में चले जाना। तदनन्तर, उस समय कुमारभूत मञ्जुश्री गाड़ी के पहिये के समान (विशाल) सहस्रदल कमल पर बैठे हुए अनेक बोधिसत्त्वों से परिवृत एवं पुरस्कृत सागर-रूपी नागराज के भवन के समान समुद्र के मध्य से निकलकर ऊपर उठकर आकाशमार्ग से गृध्रकूट पर्वत पर भगवान् के निकट आये। तत्पश्चात्, कुमारभूत मञ्जुश्री कमल से उतरकर भगवान् शाक्यमुनि एवं तथागत प्रभूतरत्न के चरणों में मस्तक झुकाकर जिधर बोधिसत्त्व प्रज्ञाकूट थे, उधर गये और निकट जाकर बोधिसत्त्व प्रज्ञाकूट के साथ विविध सम्मोहिनी एवं संरंजनी कथा करके एकान्त में बैठ गये। तदनन्तर, बोधिसत्त्व प्रज्ञाकूट ने कुमारभूत मञ्जुश्री से यह पूछा—हे मञ्जुश्री! समुद्र के मध्य से आकर तुमने कितने प्राणियों को विनीत किया। मञ्जुश्री बोले—अनेक अप्रमेय एवं असंख्य प्राणियों को विनीत किया। वे इतने अप्रमेय एवं असंख्य हैं कि उनको वचन से नहीं कहा जा सकता और उनको मन से भी नहीं सोचा जा सकता। हे कुलपुत्र! एक मुहूर्त्त के लिए आओ। तुम्हें पूर्वनिमित्त दिखाई पड़ेगा। कुमारभूत मञ्जुश्री के यह वचन कहने के अनन्तर ही उस समय समुद्र के मध्य से अनेक सहस्र कमल ऊपर आकाश में निकले और उन कमलों में अनेक सहस्र बोधिसत्त्व बैठे थे। वे बोधिसत्त्व उसी मार्ग से, जिधर गृध्रकूट पर्वत था, गये और जाकर वहाँ से ऊपर आकाश में स्थित दिखाई पड़ने लगे। वे सभी कुमारभूत मञ्जुश्री के द्वारा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में विनीत किये गये थे। वहाँ पर वे बोधिसत्त्व, जिन्होंने पूर्वकाल में महायान की प्राप्ति की थी, महायान एवं छह पारमिताओं का वर्णन करने लगते हैं। जो बोधिसत्त्व पूर्वकाल में श्रावक थे वे श्रावकयान का वर्णन करते हैं। वे सभी सब धर्मों की शून्यता को तथा महायान के गुणों को जानते हैं। तदनन्तर, कुमारभूत मञ्जुश्री बोधिसत्त्व प्रज्ञाकूट से यह बोले—हे कुलपुत्र! समुद्र के मध्य में रहते हुए मैंने जितने प्राणियों को विनीत किया है, वे सभी यहाँ दिखाई दे रहे हैं। तदनन्तर, बोधिसत्त्व प्रज्ञाकूट ने कुमारभूत मञ्जुश्री से इन गाथाओं को गाते हुए पूछा—

महाभद्र प्रज्ञया सूरनामन्नसंख्येया ये विनीतास्त्वयाद्य।
सत्त्वा अमी कस्य चायं प्रभावस्तद्ब्रूहि पृष्टो नरदेव त्वमेतत्॥४७॥

हे महाभद्र! हे बुद्धि के कारण सूरनामधारिन्! हे नरदेव! मैं इसके बारे में पूछता हूँ। आज तुम मुझे यह बताओ कि इन असंख्य जीवों को किसके प्रभाव से तुमने विनीत किया है।

कं वा धर्मं देशितवानसि त्वं किं वा सूत्रं बोधिमार्गोपदेशम् ।
यच्छ्रुत्वामी बोधये जातचित्ताः सर्वज्ञत्वे निश्चितं लब्धगाधाः ।।४८।।

तुमने किस धर्म की अथवा बोधिमार्ग के उपदेश के किस सूत्र की देशना की है, जिसको सुनकर उनके हृदय में बोधिसत्त्व के लिए अनुराग उत्पन्न हो गया तथा इन्होंने सर्वज्ञत्व में निश्चित गति प्राप्त कर ली है ।

मञ्जुश्रीराह । समुद्रमध्ये सद्धर्मपुण्डरीकं सूत्रं भाषितवान्न चान्यत् । प्रज्ञाकूट आह । इदं सूत्रं गम्भीरं सूक्ष्मं दुर्दृशं न चानेन सूत्रेण किंचिदन्यत् सूत्रं सममस्ति । अस्ति कश्चित् सत्त्वो य इदं सूत्ररत्नं सत्कुर्यादवबोद्धुमनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबोद्धुम् । मञ्जुश्रीराह । अस्ति कुलपुत्र सागरस्य नागराज्ञो दुहिताष्टवर्षा जात्या महाप्रज्ञा तीक्ष्णेन्द्रिया ज्ञानपूर्वंगमेन कायवाङ्मनस्कर्मणा समन्वागता सर्वतथागतभाषितव्यञ्जनार्थोद्ग्रहणे धारणीप्रतिलब्धा सर्वधर्मसत्त्वसमाधानसमाधिसहस्रैकक्षणप्रतिलाभिनी । बोधिचित्ताविनिर्वर्तिनी विस्तीर्णप्रणिधाना सर्वसत्त्वेष्वात्मप्रेमानुगता गुणोत्पादने च समर्था न च तेभ्यः परिहीयते । स्मितमुखी परमया शुभवर्णपुष्करतया समन्वागता मैत्रचित्ता करुणां च वाचं भाषते । सा सम्यक्संबोधिमभिसंबोद्धुं समर्था । प्रज्ञाकूटो बोधिसत्त्व आह । दृष्टो मया भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतो बोधाय घटमानो बोधिसत्त्वभूतोऽनेकानि पुण्यानि कृतवाननेकानि च कल्पसहस्राणि न कदाचिद् वीर्यं स्रंसितवान् । त्रिसाहस्रमहासाहस्रायां लोकधातौ नास्ति कश्चिदन्तशः सर्षपमात्रोऽपि पृथिवीप्रदेशो यत्रानेन शरीरं न निक्षिप्तं सत्त्वहितहेतोः । पश्चाद् बोधिमभिसंबुद्धः । क एवं श्रद्दध्याद् यदनया शक्यं मुहूर्तेनानुत्तरां सम्यक् संबोधिमभिसंबोद्धुम् ।

मञ्जुश्री बोले—समुद्र के मध्य सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) सूत्र का, न कि अन्य किसी का उपदेश किया था । प्रज्ञाकूट बोले—यह सूत्र गम्भीर, सूक्ष्म एवं दुर्दर्श है, तथा इस सूत्र के समान कोई दूसरा सूत्र नहीं है । है कोई ऐसा पुरुष, जो इस सूत्रान्त को समझने एवं इसके द्वारा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करने में समर्थ हो । मञ्जुश्री बोले—हे कुलपुत्र ! नागराज सागर की आठ वर्ष की पुत्री (ऐसी है), जो जन्म से ही अत्यन्त बुद्धिमती, तीक्ष्ण इन्द्रियोंवाली, शरीर, वचन तथा मन के पूर्वकालिक शुभकर्म से युक्त सभी तथागतों के उपदेश के शब्द एवं अर्थों को समझने में धारणीप्राप्त तथा एक ही क्षण में सभी धर्मतत्त्वों तथा सहस्रों समाधान एवं समाधि को प्राप्त करनेवाली है । वह बोधि से अपने चित्त को न हटानेवाली, विस्तृत व्रत लेनेवाली

सब प्राणियों से अपने समान प्रेम करनेवाली, गुणों को उत्पन्न करने में समर्थ एवं उन गुणों से कभी रहित नहीं होनेवाली है। विशिष्ट स्मिति से पूर्ण मुखवाली, श्वेत कमल के समान शरीर से युक्त एवं सबके प्रति मित्रता का भाव रखनेवाली वह करुणापूर्ण वचन बोलती है। वह सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करने में समर्थ है। प्रज्ञाकूट बोधिसत्त्व बोले--मैंने देखा है कि तथागत भगवान् शाक्यमुनि बोधिसत्त्व की अवस्था में बोधि के लिए प्रयास करते समय अनेक पुण्यों को करते थे तथा सहस्रों कल्प तक कभी अपने प्रयत्न को ढीला नहीं होने देते थे। त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु में सरसों के बराबर भी एक भी ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ इन्होंने प्राणियों की भलाई के लिए अपने शरीर को निक्षिप्त न किया हो। उन्होंने बाद में बोधि को प्राप्त किया। कौन इस बात पर विश्वास करेगा कि यह एक ही मुहूर्त्त में श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करने में समर्थ है।

अथ खलु तस्यां वेलायां सागरनागराजदुहिताग्रतः स्थिता संदृश्यते स्म। सा भगवतः पादौ शिरसाभिवन्द्यैकान्तेऽस्थात्। तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, उस समय सागर नागराज की पुत्री सामने खड़ी दिखाई पड़ी। वह भगवान् के चरणों में मस्तक झुकाकर एक किनारे बैठ गई। उस समय वह ये गाथाएँ बोली--

पुण्यं पुण्यं गम्भीरं च दिशः स्फुरति सर्वशः।
सूक्ष्मं शरीरं द्वात्रिंशल्लक्षणैः समलंकृतम् ।।४९।।

बत्तीस लक्षणों से सुशोभित पुण्य, पवित्र, गम्भीर एवं सूक्ष्म शरीर सभी दिशाओं में स्फुरित हो रहा है।

अनुव्यञ्जनयुक्तं च सर्वसत्त्वनमस्कृतम्।
सर्वसत्त्वाभिगम्यं च अन्तरापणवद् यथा ।।५०।।

वह अनुव्यंजनाओं से युक्त सभी प्राणियों के द्वारा नमस्कृत एवं खुले बाजार की तरह सबकी पहुँच के अन्दर है।

यथेच्छया मे संबोधिः साक्षी मेऽत्र तथागतः।
विस्तीर्णं देशयिष्यामि धर्मं दुःखप्रमोचनम् ।।५१।।

मैंने यथेच्छ सम्बोधि प्राप्त कर ली है। इस विषय में तथागत मेरे साक्षी हैं। मैं दुःखों से मुक्त करानेवाले धर्म की विस्तारपूर्वक देशना करूँगी।

अथ खलु तस्यां वेलायामायुष्मान् शारिपुत्रस्तां सागरनागराजदुहितरमेतदवोचत्। केवलं कुलपुत्रि बोधाय चित्तमुत्पन्नमविवर्त्याप्रमेयप्रज्ञा चासि

सम्यक्संबुद्धत्वं तु दुर्लभम् । अस्ति कुलपुत्रि स्त्री न च वीर्यं स्त्रंसयत्यनेकानि च कल्पशतान्यनेकानि च कल्पसहस्राणि पुण्यानि करोति षट्पारमिताः परिपूरयति न चाद्यापि बुद्धत्वं प्राप्नोति । किं कारणम् । पञ्च स्थानानि स्त्र्यद्यापि न प्राप्नोति । कतमानि पञ्च । प्रथमं ब्रह्मस्थानं द्वितीयं शक्रस्थानं तृतीयं महाराजस्थानं चतुर्थं चक्रवर्तिस्थानं पञ्चममवैवर्तिकबोधिसत्त्वस्थानम् ।

तब उस अवसर पर आयुष्मान् शारिपुत्र उन सागर नागराज की कन्या से यह बोले---हे कुलपुत्रि ! तुममें बोध के लिए भावना उत्पन्न हो गई है और तुममें अविवर्त्ती एवं अप्रमेय प्रज्ञा उत्पन्न हो गई है । किन्तु, सम्यक् सम्बुद्धत्व प्राप्त करना दुर्लभ है । हे कुलपुत्रि ! ऐसी स्त्री हो सकती है, जिसने अनेकशत कल्पों तक अपने प्रयत्न को ढीला नहीं होने दिया । पुण्य कर्म करती रही । छह पारमिताओं को पूर्ण करती रही, किन्तु उसने आजतक बुद्धत्व नहीं प्राप्त किया । क्या कारण है ? स्त्री आज भी पाँच स्थानों को प्राप्त नहीं करती । वे पाँच स्थान कौन हैं ? पहला ब्रह्मस्थान, दूसरा शुक्रस्थान, तीसरा महाराजस्थान, चौथा चक्रवर्त्तिस्थान और पाँचवाँ अवैवर्त्तिक बोधिसत्त्वस्थान ।

अथ खलु तस्यां वेलायां सागरनागराजदुहितुरेको मणिरस्ति यः कृत्स्नां महासाहस्रां लोकधातुं मूल्यं क्षमते । स च मणिस्तया सागरनागराजदुहित्रा भगवते दत्तः । स भगवता चानुकम्पामुपादाय प्रतिगृहीतः । अथ सागरनागराजदुहिता प्रज्ञाकूटं बोधिसत्त्वं स्थविरं च शारिपुत्रमेतदवोचत् । योऽयं मणिर्मया भगवतो दत्तः स च भगवता शीघ्रं प्रतिगृहीतो नेति । स्थविर आह । त्वया च शीघ्रं दत्तो भगवता च शीघ्रं प्रतिगृहीतः । सागरनागराजदुहिताह । यद्यहं भदन्त शारिपुत्र महर्द्धिकी स्यां शीघ्रतरं सम्यक्संबोधिमभिसंबुध्येयं न चास्य मणेः प्रतिग्राहकः स्यात् ।

उस समय उस सागर नागराज की कन्या के पास एक मणि थी, जिसकी कीमत सम्पूर्ण महासाहस्र लोकधातु के (मूल्य के) बराबर थी । उस मणि को सागर नागराज की कन्या ने भगवान् को दे दिया । उस मणि को भगवान् ने उसपर कृपा करके स्वीकार कर लिया । तदनन्तर, सागर नागराज की पुत्री बोधिसत्त्व प्रज्ञाकूट एवं स्थविर शारिपुत्र से यह बोली---जो मणि मैंने भगवान् को दिया है, उसे भगवान् ने तुरत ग्रहण कर लिया या नहीं ? स्थविर (शारिपुत्र) बोले---तुमने शीघ्र दिया और भगवान् ने शीघ्र ग्रहण कर लिया । सागर नागराज की पुत्री बोली---हे भदन्त शारिपुत्र ! यदि मैं महती ऋद्धि से सम्पन्न होकर इससे भी शीघ्र सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त हो जाऊँ, तो उस मणि का (कोई) ग्रहण करनेवाला नहीं रहेगा ।

अथ तस्यां वेलायां सागरनागराजदुहिता सर्वलोकप्रत्यक्षं स्थविरस्य च शारिपुत्रस्य प्रत्यक्षं तत् स्त्रीन्द्रियमन्तर्हितं पुरुषेन्द्रियं च प्रादुर्भूतं बोधिसत्त्वभूतं

चात्मानं संदर्शयति । तस्यां वेलायां दक्षिणां दिशं प्रक्रान्तः । अथ दक्षिणस्यां दिशि विमला नाम लोकधातुस्तत्र सप्तरत्नमये बोधिवृक्षमूले निषण्णमभिसंबुद्धमात्मानं संदर्शयति स्म द्वात्रिंशल्लक्षणधरं सर्वानुव्यञ्जनरूपं प्रभया च दशदिशं स्फुरित्वा धर्मदेशनां कुर्वाणम् । ये च सहायां लोकधातौ सत्त्वास्ते सर्वे तं तथागतं पश्यन्ति स्म सर्वैश्च देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमनुष्यामनुष्यैर्नमस्यमानं धर्मदेशनां च कुर्वन्तम् । ये च सत्त्वास्तस्य तथागतस्य धर्मदेशनां शृण्वन्ति सर्वे तेऽविनिवर्तनीया भवन्त्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । सा च विमला लोकधातुरियं च सहा लोकधातुः षड्विकारं प्राकम्पत् । भगवतश्च शाक्यमुनेः पर्षन्मण्डलानां त्रयाणां प्राणिसहस्राणामनुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिप्रतिलाभोऽभूत् । त्रयाणां च प्राणिशतसहस्राणामनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ व्याकरणप्रतिलाभोऽभूत् ।

तदनन्तर, उस समय सभी लोगों के सामने एवं स्थविर शारिपुत्र के सामने उसका स्त्रीन्द्रिय लुप्त हो गया एवं पुरुषेन्द्रिय प्रकट हो गया और उस सागर नागराज की पुत्री ने अपने को बोधिसत्त्व के रूप में दिखाया । (जो बोधिसत्त्व) उस समय दक्षिण दिशा की ओर चला गया । दक्षिण दिशा में विमला नाम की लोकधातु है । अपने आपको सप्तरत्न बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए अभिसम्बुद्ध बत्तीस लक्षणों को धारण करनेवाले सभी अनुव्यंजनाओं से युक्त एवं प्रकाश से दसों दिशाओं को प्रकाशित करके धर्म की देशना करनेवाले के रूप में दिखाया । जो प्राणी उस तथागत की धर्म-देशना को सुनते हैं, वे सभी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में सदा के लिए लीन हो जाते हैं । यह विमला लोकधातु तथा यह सहा लोकधातु छह प्रकार से काँप उठी । भगवान् शाक्यमुनि की परिषद् में बैठे हुए तीन सहस्र प्राणियों को अनुत्पत्तिक धर्म एवं क्षान्ति की प्राप्ति हुई । तीन शतसहस्र प्राणियों को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के प्राप्त करने के विषय में भविष्यवाणी प्राप्त हुई ।

अथ प्रज्ञाकूटो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः स्थविरश्च शारिपुत्रस्तूष्णीमभूताम् ।

तदनन्तर, बोधिसत्त्व प्रज्ञाकूट स्थविर शारिपुत्र चुप हो गये ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये स्तूपसंदर्शनपरिवर्तो नामैकादशमः ।।११।।

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का स्तूपसंदर्शन नामक ग्यारहवाँ परिवर्त समाप्त हुआ ।

उत्साहपरिवर्त

अथ खलु भैषज्यराजो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो महाप्रतिभानश्च बोधिसत्त्वो महासत्त्वो विंशतिबोधिसत्त्वशतसहस्रपरिवारो भगवतः संमुखमिमां वाचमभाषेताम् । अल्पोत्सुको भगवान् भवत्वस्मिन्नर्थे । वयमिमं भगवन् धर्मपर्यायं तथागतस्य परिनिर्वृतस्य सत्त्वानां देशयिष्यामः संप्रकाशयिष्यामः । किं चापि भगवन् शठकाः सत्त्वास्तस्मिन् काले भविष्यन्ति परीत्तकुशलमूला अधिमानिका लाभसत्कारसंनिश्रिता अकुशलमूलप्रतिपन्ना दुर्दमा अधिमुक्तिविरहिता अनधिमुक्तिबहुलाः । अपि तु खलु पुनर्वयं भगवन् क्षान्तिबलमुपदर्शयित्वा तस्मिन् काल इदं सूत्रमुद्देक्ष्यामो धारयिष्यामो देशयिष्यामो लिखिष्यामः सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः पूजयिष्यामः कायजीवितं च वयं भगवन्नुत्सृज्येदं सूत्रं प्रकाशयिष्यामः । अल्पोत्सुको भगवान् भवत्विति ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज तथा महासत्त्व बोधिसत्त्व महाप्रतिभान बीस शतसहस्र बोधिसत्त्वों के समुदाय के साथ भगवान् के सम्मुख ऐसा वचन बोले--हे भगवन्! इस विषय में चिन्ता न करें। हे भगवन्! तथागत के निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर हमलोग इस धर्मपर्याय को प्राणियों (के सम्मुख) देशित एवं सम्प्रकाशित करेंगे। यद्यपि कि हे भगवन्! उस समय अल्पकुशलमूलसम्पन्न, अभिमानी, लाभ एवं सत्कार के इच्छुक, कुशलमूल को प्रतिपन्न, दुर्दम, (सदा) झुकावों से रहित एवं झुकाव की हीनता से परिपूर्ण (अनेक) दुष्ट प्राणी भी वर्त्तमान रहेंगे। किन्तु, हमलोग हे भगवन्! उस समय अपनी सहनशीलता की शक्ति दिखाकर इस सूत्र को पढ़ेंगे, धारेंगे, कहेंगे, लिखेंगे, सत्कार करेंगे, आदर करेंगे, मानेंगे, पूजेंगे तथा हे भगवन्! अपने शरीर एवं प्राणों की बाजी लगाकर इस सूत्र को प्रकाशित करेंगे। भगवान् सर्वथा चिन्ता न करें।

अथ खलु तस्यां पर्षदि शैक्षाशैक्षाणां भिक्षूणां पञ्चमात्राणि भिक्षुशतानि भगवन्तमेतदूचुः । वयमपि भगवन्नुत्सहामह इमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयितुमपि तु खलु पुनर्भगवन्नन्यासु लोकधातुष्विति । अथ खलु यावन्तस्ते भगवतः श्रावकाः शैक्षाशैक्षा भगवता व्याकृता अनुत्तरायां सम्यक्संबोधावष्टौ भिक्षुसहस्राणि सर्वाणि तानि येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणमय्य भगवन्तमेतदूचुः । अल्पोत्सुको भगवान् भवतु वयमपीमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयिष्यामस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्य पश्चिमे काले पश्चिमे समयेऽपि त्वन्यासु लोकधातुषु । तत् कस्य हेतोः । अस्यां

भगवन् सहायां लोकधातावधिमानिकाः सत्त्वा अल्पकुशलमूला नित्यं व्यापन्नचित्ताः शठा वङ्कजातीयाः ।

तदनन्तर, उस सभा में (वर्त्तमान) पाँच सौ शैक्ष एवं अशैक्ष भिक्षु भगवान् से इस प्रकार बोले—हे भगवन् ! हमलोग इस धर्मपर्याय को अन्य लोकधातुओं में सम्प्रकाशित करने के लिए तत्पर हैं । तदनन्तर, भगवान् के वे सभी शैक्ष एवं अशैक्ष श्रावक, जिनके श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के प्राप्त करने के विषय में भगवान् ने भविष्यवाणी की थी, (तथा) वे सभी आठ सहस्र भिक्षु जिस ओर भगवान् थे, उस ओर हाथ जोड़कर भगवान् से इस प्रकार बोले—भगवन् ! चिन्ता न करें । तथागत के निर्वाण प्राप्त कर लेने के बाद के काल में, बाद के समय में, हमलोग भी इस धर्मपर्याय को अन्य लोकधातु में सम्प्रकाशित करेंगे । अन्य लोकों में क्यों ? (क्योंकि) हे भगवन् ! इस सहालोकधातु में (रहनेवाले) प्राणी अभिमानी, अल्पकुशलमूल, नित्यदुष्ट विचारवाले, शठ एवं स्वभावतः विपरीतबुद्धि हैं ।

अथ खलु महाप्रजापती गौतमी भगवतो मातृभगिनी षड्भिर्भिक्षुणीसहस्रैः सार्धं शैक्षाशैक्षाभिर्भिक्षुणीभिरुत्थायासनाद् येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणमय्य भगवन्तमुल्लोकयन्ती स्थिताभूत् । अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायां महाप्रजापतीं गौतमीमामन्त्रयामास । किं त्वं गौतमि दुर्मनस्विनी स्थिता तथागतंव्यवलोकयसि । नाहं परिकीर्तिता व्याकृता चानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । अपि नु खलु पुनर्गौतमि सर्वपर्षद्व्याकरणेन व्याकृतासि । अपि तु खलु पुनस्त्वं गौतमि इत उपादायाष्टात्रिंशतां बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राणामन्तिके सत्कारं गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां कृत्वा बोधिसत्त्वो महासत्त्वो धर्मभाणको भविष्यसि । इमान्यपि षड्भिक्षुणीसहस्राणि शैक्षाशैक्षाणां भिक्षुणीनां त्वयैव सार्धं तेषां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामन्तिके बोधिसत्त्वा धर्मभाणका भविष्यन्ति । ततः परेण परतरेण बोधिसत्त्वचर्यां परिपूर्य सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यसि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् । स च गौतमि सर्वसत्त्वप्रियदर्शनस्तथागतोऽर्हन् सम्यक् संबुद्धस्तानि षड्बोधिसत्त्वसहस्राणि परंपराव्याकरणेन व्याकरिष्यत्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ ।

तदनन्तर, भगवान् की मौसी महाप्रजापती गौतमी छह हजार शैक्ष एवं अशैक्ष भिक्षुणियों के साथ आसन से उठकर जिस ओर भगवान् थे, उस ओर हाथ जोड़कर भगवान् को देखती हुई खड़ी रही । तब उस समय भगवान् महाप्रजापती गौतमी से बोले—हे गौतमी ! इतनी उदास होकर तथागत को क्यों देखती हो ? न मेरी चर्चा हुई है और न मेरे

श्रेष्ठ सम्यक सम्बोधि् के पाने के विषय में भविष्यवाणी ही हुई है । हे गौतमी ! सारी सभा की भविष्यवाणी के साथ तुम्हारी भी भविष्यवाणी हो गई है । पुनः हे गौतमी ! तुम आज से अड़तीस करोड़ नयुत शतसहस्र बुद्धों के निकट (रहकर) (उनका) सत्कार, आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन एवं अपचायन करके धर्मभाणक महासत्त्व बोधिसत्त्व बनोगी । ये भी दस हजार शैक्ष एवं अशैक्ष भिक्षुणियाँ तुम्हारे ही साथ उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों के निकट ही धर्मभाणक बोधिसत्त्व बनेंगी । उसके परे एवं उससे भी परे बोधिसत्त्वचर्या को परिपूर्ण करके संसार में सर्वसत्त्वप्रियदर्शन नामक तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध ज्ञान एवं सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, दमनयोग्य पुरुषों के नियन्ता, देवों एवं मनुष्यों के शास्ता, भगवान् बुद्ध बनेंगी । हे गौतमी ! वह तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध सर्वसत्त्वप्रियदर्शी उन छह हजार बोधिसत्त्वों के श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करने के सम्बन्ध में क्रम से भविष्यवाणी करेगा ।

अथ खलु राहुलमातुर्यशोधराया भिक्षुण्या एतदभवत् । न मे भगवता नामधेयं परिकीर्तितम् । अथ खलु भगवान् यशोधराया भिक्षुण्याश्चेतसैव चेतःपरिवितर्कमाज्ञाय यशोधरां भिक्षुणीमेतदवोचत् । आरोचयामि ते यशोधरे प्रतिवेदयामि ते । त्वमपि दशानां बुद्धकोटीसहस्राणामन्तिके सत्कारं गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां कृत्वा बोधिसत्त्वो धर्मभाणको भविष्यसि । बोधिसत्त्वचर्यां चानुपूर्वेण परिपूर्य रश्मिशतसहस्रपरिपूर्णध्वजो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यसि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् भद्रायां लोकधातौ। अपरिमितं च तस्य भगवतो रश्मिशतसहस्रपरिपूर्णध्वजस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यायुष्प्रमाणं भविष्यति ।

तदनन्तर, राहुल की माता भिक्षुणी यशोधरा के (मन में) ऐसा (विचार) आया---भगवान् ने मेरा नाम नहीं लिया । तदनन्तर, भगवान् भिक्षुणी यशोधरा के मन के वितर्क को अपने मन से जानकर भिक्षुणी यशोधरा से इस प्रकार बोले---हे यशोधरे ! मैं तुमसे कहता हूँ, प्रतिवेदन करता हूँ । तुम भी दस कोटि सहस्र बुद्धों के निकट (रहकर उनका) सत्कार, आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन तथा अपचायन करके धर्मभाणक बोधिसत्त्व बनोगी । क्रम से बोधिसत्त्वचर्या को पूर्ण करके इस संसार में (स्थित) भद्रा लोकधातु में रश्मिशतसहस्रपरिपूर्णध्वज नामक तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध बनोगी । तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् रश्मिशतसहस्रपरिपूर्णध्वज की आयु अपरिमित होगी ।

अथ खलु महाप्रजापती गौतमी भिक्षुणी षड्भिक्षुणीसहस्रपरिवारा यशोधरा च भिक्षुणी चतुर्भिक्षुणीसहस्रपरिवारा भगवतोऽन्तिकात् स्वकं व्याकरणं

श्रुत्वानुत्तरायां सम्यक्संबोधावाश्चर्यप्राप्ता अद्भुतप्राप्ताश्च तस्यां वेलायामिमां गाथामभाषन्त ।

तदनन्तर, छह हजार भिक्षुणियों से घिरी हुई भिक्षुणी महाप्रजापती गौतमी तथा चार हजार भिक्षुणियों से घिरी हुई भिक्षुणी यशोधरा भगवान् के मुख से अपने-अपने श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करने के विषय में भविष्यवाणी सुनकर आश्चर्य को प्राप्त होकर, अचम्भा को प्राप्त होकर उस समय यह गाथा बोली--

भगवन् विनेतासि विनायकोऽसि शास्तासि लोकस्य सदेवकस्य ।
आश्वासदाता नरदेव पूजितो वयम्पि संतोषित अद्य नाथ ।।१।।

हे भगवन् ! देवों के समेत इस लोक के आप विनेता हैं, विनायक हैं, पूज्य हैं, आश्वासन देनेवाले एवं शास्ता हैं । हे नरदेव ! हे नाथ ! आज हमलोग भी (आपके द्वारा) सन्तुष्ट कर दिये गये हैं ।

अथ खलु ता भिक्षुण्य इमां गाथां भाषित्वा भगवन्तमेतदूचुः । वयमपि भगवन् समुत्सहामह इमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयितुं पश्चिमे काले पश्चिमे समयेऽपि त्वन्यासु लोकधातुष्विति ।

तदनन्तर, वे भिक्षुणियाँ इस गाथा को कहकर भगवान् से इस प्रकार बोलीं-- हे भगवन् ! हमलोग भी बाद के काल में बाद के समय में इस धर्मपर्याय को अन्य लोकधातुओं में भी प्रकाशित करने के लिए तत्पर हैं ।

अथ खलु भगवान् येन तान्यशीतिबोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि धारणीप्रतिलब्धानां बोधिसत्त्वानामवैवर्तिकधर्मचक्रप्रवर्तकानां तेनावलोकयामास ।

तदनन्तर, भगवान् ने उस ओर देखा, जिस ओर धारणी को प्राप्त अवैवर्त्तिक एवं धर्म चक्र के प्रवर्त्तक वे अस्सी कोटि नयुत शतसहस्र बोधिसत्त्व वर्त्तमान थे ।

अथ खलु ते बोधिसत्त्वा महासत्त्वाः समनन्तरावलोकिता भगवता उत्थायासनेभ्यो येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणाम्यैवं चिन्तयामासुः । अस्माकं भगवान् अध्येषत्यस्य धर्मपर्यायस्य संप्रकाशनतायै । ते खल्वेवमनुविचिन्त्य संप्रकम्पिताः परस्परमूचुः । कथं वयं कुलपुत्राः करिष्यामो यद् भगवानध्येषत्यस्य धर्मपर्यायस्यानागतेऽध्वनि संप्रकाशनतायै । अथ खलु ते कुलपुत्रा भगवतो गौरवेणात्मनश्च पूर्वचर्याप्रणिधानेन भगवतोऽभिमुखं सिंहनादं नदन्ते स्म । वयं भगवन्ननागतेऽध्वनीमं धर्मपर्यायं तथागते परिनिर्वृते दशसु दिक्षु गत्वा सर्वसत्त्वाँल्लेखयिष्यामः पाठयिष्यामश्चिन्तापयिष्यामः प्रकाशयिष्यामो भगवत एवानुभावेन । भगवांश्चास्माकमन्यलोकधातुस्थितो रक्षावरणगुप्तिं करिष्यति ।

भगवान् के द्वारा देखे जाने के अनन्तर ही वे महासत्त्व बोधिसत्त्व आसनों से उठकर जिस ओर भगवान् थे, उस ओर हाथ जोड़कर ऐसा सोचने लगे—भगवान् इस धर्मपर्याय का संप्रकाशन करने के लिए हमलोगों को बुलाते हैं। वे ऐसा सोचकर काँपते हुए एक दूसरे से बोले—हे कुलपुत्रो ! हमलोग भविष्य में इस धर्मपर्याय को, जिसके प्रकाशन के लिए भगवान् हमें बुलाते हैं, कैसे (प्रकाशित करेंगे) ? तदनन्तर, वे कुलपुत्र भगवान् के गौरव एवं अपनी पूर्वचर्या के व्रत (के प्रभाव) से भगवान् के सामने सिंहनाद करने लगे—हे भगवन् ! हमलोग भविष्य में तथागत के निर्वाण प्राप्त करने पर दसों दिशाओं में जाकर इस धर्मपर्याय को भगवान् के ही अनुभाव से सभी प्राणियों को लिखा देंगे, पढ़ा देंगे, समझा देंगे एवं बता देंगे। भगवान् अन्य लोकधातु में बैठे हुए हमारी रक्षा, आवरण और गुप्ति करते रहेंगे।

अथ खलु ते बोधिसत्वा महासत्त्वाः समं संगीत्या भगवन्तमाभिर्गाथाभिरध्यभाषन्त ।

तदनन्तर, वे महासत्त्व बोधिसत्त्व सम्मिलित रूप से भगवान् से उन गाथाओं के द्वारा बोले—

अल्पोत्सुकस्त्वं भगवन् भवस्व वयं तदा ते परिनिर्वृतस्य ।
स्वं पश्चिमे कालि सुभैरवस्मिन् प्रकाशयिष्यामिद सूत्रमुत्तमम् ।।२।।

हे भगवन् ! आप चिन्ता छोड़ दें। आपके परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के बाद के भयंकर काल में हमलोग इस उत्तम सूत्र को प्रकाशित करेंगे ।

आक्रोशांस्तर्जनांश्चैव दण्ड-उद्गूरणानि च ।
बालानां संसहिष्यामोऽधिवासिष्याम नायक ।।३।।

हे नायक ! (हम) मूर्खों के आक्रोश, तर्जन, दण्ड एवं उद्गूरण का सहन करेंगे, स्वीकार करेंगे ।

दुर्बुद्धिनश्च वङ्काश्च शठा बालाधिमानिनः ।
अप्राप्ते प्राप्तसंज्ञी च घोरे कालस्मि पश्चिमे ।।४।।

इसके बाद के भयंकर समय में (मनुष्य) दुर्बुद्धि, कुटिल, शठ, मूर्ख, अभिमानी एवं (मोक्ष को) विना प्राप्त किये ही अपने को उसे प्राप्त किये हुए के समान समझनेवाले होंगे ।

अरण्यवृत्तकाश्चैव कन्थां प्रावरियाण च ।
संलेखवृत्तिचारि स्म एवं वक्ष्यन्ति दुर्मती ।।५।।

इसके बाद के भयंकर समय में ढोंगी (मनुष्य) अरण्यवृत्ति से जीनेवाले, कौपीनधारी, संलेखवृत्तिजीवी होंगे एवं वे दुर्बुद्धि से युक्त भाषण करेंगे।

रसेषु गृद्ध सक्ताश्च गृहीणां धर्म देशयी ।
सत्कृताश्च भविष्यन्ति षडभिज्ञा यथा तथा ।।६।।

(वे सभी) विषयों में अत्यन्त लिप्त गृहस्थों को धर्म की देशना देंगे और उनके द्वारा षडभिज्ञों के समान पूजित होंगे ।

रौद्रचित्ताश्च दुष्टाश्च गृहवित्तविचिन्तकाः ।
अरण्यगुप्ति प्रविशित्वा अस्माकं परिवादकाः ।।७।।

कठोरचित्त, दुष्ट, घर और धन की चिन्ता करनेवाले वे हमारे अरण्य-निवासों में प्रवेश करके हमारी निन्दा करेंगे ।

अस्माकं चैव वक्ष्यन्ति लाभसत्कारनिश्रिताः ।
तीर्थिका वतिमे भिक्षू स्वानि काव्यानि देशयुः ।।८।।

लाभ और सत्कार की इच्छावाले अनेक तीर्थिक भिक्षु होंगे, जो स्वयं अपने काव्यों की रचना करके हमें ही देशना देंगे ।

स्वयं सूत्राणि ग्रन्थित्वा लाभसत्कारहेतवः ।
पर्षायमध्ये भाषन्ते अस्माकमनुकुट्टकाः ।।९।।

लाभ एवं सत्कार की इच्छा से स्वयं सूत्रों का निर्माण करके (उनको) परिषद् के बीच हमारी अनुकुट्टा करते हुए विवेचित करेंगे ।

राजेषु राजपुत्रेषु राजामात्येषु वा तथा ।
विप्राणां गृहपतीनां च अन्येषां चापि भिक्षुणाम् ।।१०।।

राजाओं, राजपुत्रों, राजमन्त्रियों, ब्राह्मणों, गृहस्थों तथा अन्य भिक्षुओं के समक्ष,

वक्ष्यन्त्यवर्णमस्माकं तीर्थ्यवादं च कारयी ।
सर्वं वयं क्षमिष्यामो गौरवेण महर्षिणाम् ।।११।।

हमारी निन्दा करेंगे और तीर्थ्यवाद का प्रचार करेंगे । किन्तु, हम महर्षियों के गौरव को दृष्टि में रखते हुए सबको क्षमा कर देंगे ।

ये चास्मान् कुत्सयिष्यन्ति तस्मिन् कालस्मि दुर्मती ।
इमे बुद्धा भविष्यन्ति क्षमिष्यामथ सर्वशः ।।१२।।

वे सभी दुष्ट, जो उस समय हमारी निन्दा करेंगे, कुछ काल के अनन्तर बुद्ध हो जायेंगे । (इसीलिए) हम सबको क्षमा कर देंगे ।

कल्पसंक्षोभ भीष्मस्मिन् दारुणस्मि महाभये ।
यक्षरूपा बहू भिक्षू अस्माकं परिभाषकाः ।।१३।।

भीष्म, दारुण एवं भयावह कल्पसंक्षोभ के समय बहुत-से भिक्षु यक्ष के रूप में हमारी निन्दा करेंगे ।

गौरवेणेह लोकेन्द्रे उत्सहाम सुदुष्करम् ।
क्षान्तीय कक्ष्यां बन्धित्वा सूत्रमेतं प्रकाशये ।।१४।।

लोकों के स्वामी के प्रति गौरव की भावना के फलस्वरूप ही हम इन कठोर व्यवहारों को सहते हैं । सहनशीलतापूर्वक कमर बाँधकर हम इस सूत्र को प्रकाशित करते हैं ।

अनर्थिका स्म कायेन जीवितेन च नायक ।
अर्थिकाश्च स्म बोधीय तव निक्षेपधारकाः ।।१५।।

हे नायक ! मुझे अपने शरीर एवं प्राणी की चिन्ता नहीं है । आपकी धरोहर के धारक हम ज्ञान के ही अभिलाषी हैं ।

भगवानेव जानीते यादृशाः पापभिक्षवः ।
पश्चिमे कालि भेष्यन्ति संधाभाष्यमजानकाः ।।१६।।

भगवान् ही जानते हैं कि बाद के समय में सन्धाभाष्य को न जाननेवाले किस प्रकार पापी भिक्षु (उत्पन्न) होंगे ।

भृकुटी सर्व सोढव्या अप्रज्ञप्तिः पुनः पुनः ।
निष्कासनं विहारेभ्यो बन्धकुट्टी बहूविधा ।।१७।।

(टेढ़ी) भृकुटी, अप्रज्ञप्ति, विहारों से निकाला जाना एवं अनेक प्रकार के बन्धन तथा ताडन इनको पुनः पुनः सहने होंगे ।

आज्ञप्तिं लोकनाथस्य स्मरन्ता कालि पश्चिमे ।
भाषिष्याम इदं सूत्रं पर्षन्मध्ये विशारदाः ।।१८।।

(फिर भी) लोकनाथ की आज्ञा का स्मरण करते हुए बुद्धज्ञान में विशारद हम बाद के समय में इस सूत्र का परिषद् के बीच विवेचन करेंगे ।

नगरेष्वथ ग्रामेषु ये भेष्यन्ति इहार्थिकाः ।
गत्वा गत्वास्य दास्यामो निक्षेपं तव नायक ।।१९।।

इस संसार में नगरों एवं ग्रामों में, जो भी (इस सूत्र के उपदेश के) अभिलाषी होंगे, हे नायक ! (हम) जा-जाकर (उन्हें) आपकी धरोहर देंगे ।

प्रेषणं तव लोकेन्द्र करिष्यामो महामुने ।
अल्पोत्सुको भव त्वं हि शान्तिप्राप्तो सुनिर्वृतः ।।२०।।

हे लोकेन्द्र ! हे महामुने ! हम आपके सन्देश को सर्वत्र ले जायेंगे। अतः, आप चिन्ता से मुक्त हो जायँ एवं शान्ति तथा विश्राम को प्राप्त करें ।

सर्वे च लोकप्रद्योता आगता ये दिशो दश ।
सत्यां वाचं प्रभाषामो अधिमुक्ति विजानसि ।।२१।।

हे लोकप्रद्योत ! जो सभी दसों दिशाओं से यहाँ आये हैं, मैं सच कहता हूँ, तुम (उनके) झुकाव को जानते हो ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याय उत्साहपरिवर्तो नाम द्वादशमः ।।१२।।

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का बारहवाँ उत्साहपरिवर्त समाप्त हुआ ।

◆

सुखविहारपरिवर्त

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतो भगवन्तमेतदवोचत् । दुष्करं भगवन् परमदुष्करमेभिर्बोधिसत्त्वैर्महासत्त्वैरुत्सोढं भगवतो गौरवेण । कथं भगवन्नेभिर्बोधिसत्त्वैर्महासत्त्वैरयं धर्मपर्यायः पश्चिमे काले पश्चिमे समये संप्रकाशयितव्यः । एवमुक्ते भगवान् मञ्जुश्रियं कुमारभूतमेतदवोचत् । चतुर्षु मञ्जुश्रीर्धर्मेषु प्रतिष्ठितेन बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेनायं धर्मपर्यायः पश्चिमे काले पश्चिमे समये संप्रकाशयितव्यः । कतमेषु चतुर्षु । इह मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेनाचारगोचरप्रतिष्ठितेनायं धर्मपर्यायः पश्चिमे काले पश्चिमे समये संप्रकाशयितव्यः । कथं च मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्व आचारगोचरप्रतिष्ठितो भवति । यदा च मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वः क्षान्तो भवति दान्तो दान्तभूमिमनुप्राप्तोऽनुत्रस्तासंत्रस्तमना अनभ्यसूयको यदा च मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वो न कस्मिंश्चिद्धर्मे चरति यथाभूतं च धर्माणां स्वलक्षणं व्यवलोकयति । या खल्वेषु धर्मेष्वविचारणाऽविकल्पना अयमुच्यते मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्याचारः । कतमश्च मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य गोचरः । यदा च मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वो न राजानं संसेवते न राजपुत्रान्न राजमहामात्रान्न राजपुरुषान् संसेवते न भजते न पर्युपास्ते नोपसंक्रामति नान्यतीर्थ्यांश्चरकपरिव्राजकाजीवकनिर्ग्रन्थान्न काव्यशास्त्रप्रसृतान् सत्त्वान् संसेवते न भजते न पर्युपास्ते । न च लोकायतमन्त्रधारकान्न लोकायतिकान् सेवते न भजते न पर्युपास्ते न च तैः सार्धं संस्तवं करोति । न चण्डालान्न मौष्टिकान्न सौकरिकान्न कौक्कुटिकान्न मृगलुब्धकान्न । मांसिकान्न नटनृत्तकान्न झल्लान्न मल्लान्नान्यानि परेषां रतिक्रीडास्थानानि तानि नोपसंक्रामति । न च तैः सार्धं संस्तवं करोत्यन्यत्रोपसंक्रान्तानां कालन कालं धर्मं भाषते तं चानिश्रितो भाषते । श्रावकयानीयांश्च भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिका न सेवते न भजत न पर्युपास्ते न च तैः सार्धं संस्तवं करोति । न च तैः सह समवधानगोचरो भवति चंक्रमे वा विहारे वान्यत्रोपसंक्रान्तानां चैषां कालेन कालं धर्मं भाषते तं चानिश्रितो भाषते । अयं मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य गोचरः ।

तदनन्तर, कुमारभूत मञ्जुश्री भगवान् से यह बोले—हे भगवन् ! इन महासत्त्व बोधिसत्त्वों ने भगवान् के गौरव से ही (प्रेरित होकर) इस दुष्कर एवं अत्यन्त दुष्कर (कार्य) करने में उत्साह दिखाया है । हे भगवन् ! यह धर्मपर्याय बाद के समय में, वाद के काल में इन महासत्त्व बोधिसत्त्वों के द्वारा किस प्रकार प्रकाशित किया जाना चाहिए ? ऐसा कहने पर भगवान् कुमारभूत मञ्जुश्री से इस प्रकार बोले—हे मञ्जुश्री ! चार धर्मों में प्रतिष्ठित महासत्त्व बोधिसत्त्व के द्वारा बाद के समय में, बाद के काल में यह धर्मपर्याय प्रकाशित किया जाना चाहिए, कौन-से चार धर्मों में प्रतिष्ठित होकर ? हे मञ्जुश्री ! इस लोक में आचरण एवं गोचर में प्रतिष्ठित महासत्त्व बोधिसत्त्व के द्वारा बाद के समय में, बाद के काल में यह धर्मपर्याय प्रकाशित किया जाना चाहिए । हे मञ्जुश्री ! महासत्त्व बोधिसत्त्व किस प्रकार आचार एवं गोचर में प्रतिष्ठित होता है ? हे मञ्जुश्री ! जब महासत्त्व बोधिसत्त्व क्षान्त, दान्त, दान्तभूमिका को प्राप्त, अनुत्त्रस्त तथा असंत्रस्तमना एवं अनभ्यसूचक हो जाता है तथा जब हे मञ्जुश्री ! महासत्त्व बोधिसत्त्व किसी भी धर्म में आसक्ति नहीं रखता तथा धर्मों के वास्तविक लक्षण को देखता है, तब वह आचार में प्रतिष्ठित होता है । उन धर्मों में जो अविचारण (एवं) अविकल्पना (होती है), उसे ही हे मञ्जुश्री ! महासत्त्व बोधिसत्त्व का आचार कहते हैं । हे मञ्जुश्री ! महासत्त्व बोधिसत्त्व का कौन-सा गोचर है ? हे मञ्जुश्री ! जब महासत्त्व बोधिसत्त्व न राजा की सेवा करता है तथा न राजपुत्रों की, न राजमहामात्रों की (तथा) न राजपुरुषों की सेवा करता है, न उनकी प्रार्थना करता है, न उनके निकट बैठता है और न उनके निकट जाता है, और अन्य तीर्थिकों, चरकों, परिव्राजकों, आजीवकों, निर्ग्रन्थों तथा काव्यशास्त्र में रत प्राणियों की न सेवा करता है, न प्रार्थना करता है और न उनके निकट बैठता है, तथा लोकायत मन्त्रधारकों और लोकायतों की न सेवा करता है, न प्रार्थना करता है, न उनके निकट बैठता है और न उनके साथ बातें करता है, वह न चाण्डालों, न मुष्टिकों (जादूगरों) न सौकरिकों, न कौक्कुट्टिकों, न मृगलुब्धकों, न मांसिकों, न नटों, न नृत्तकों, न झिल्लों, न भिल्लों के निकट जाता है और न अन्य आमोद-प्रमोद के स्थानों के ही (निकट जाता है) । उन अवसरों के अतिरिक्त, जब कि वे स्वयं उसके पास आते हैं और वह उनको निर्द्वन्द्व भाव से सद्धर्मोपदेश देता है, वह उनसे बातें नहीं करता है, श्रावकयानीयों, भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उपासकों एवं उपासिकाओं की न सेवा करता है, न प्रार्थना करता है, न उनके निकट बैठता है और न उनके साथ बातें करता है । उन अवसरों के अतिरिक्त, जब कि वे स्वयं उसके पास आते हैं और वह उनको निर्द्वन्द्व भाव से धर्मोपदेश देता है, वह उनके साथ चबूतरे पर या विहार में समवधानगोचर भी नहीं होता । हे मञ्जुश्री ! यही महासत्त्व बोधिसत्त्व का गोचर है ।

पुनरपरं मञ्जुंश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वो न मातृग्रामस्यान्यतरान्यतरमनुनयनिमित्तमुद्गृह्याभीक्ष्णं धर्मं देशयति न च मातृग्रामस्याभीक्ष्णं दर्शनकामो भवति। न च कुलान्युपसंक्रमति न च दारिकां वा कन्यां वा वधुकां वाभीक्ष्णमा-

भाषितव्यां मन्यते न प्रतिसंमोदयति । न च पण्डकस्य धर्मं देशयति न च तेन सार्धं संस्तवं करोति न च प्रतिसंमोदयति । न चैकाकी भिक्षार्थमन्तर्गृहं प्रविशत्यन्यत्र तथागतानुस्मृतिं भावयमानः । स चेत् पुनर्मातृग्रामस्य धर्मं देशयति स नान्तशो धर्मसंरागेणापि धर्मं देशयति कः पुनर्वादः स्त्रीसंरागेण । नान्तशो दन्तावलीमप्युपदर्शयति कः पुनर्वाद औदारिकमुखविकारम् । न च श्रामणेरं न च श्रामणेरीं न भिक्षुं न भिक्षुणीं न कुमारकं न कुमारिकां सातीयति न च तैः सार्धं संस्तवं करोति न च संलापं करोति स च प्रतिसंलयनगुरुको भवति अभीक्ष्णं च प्रतिसंलयनं सेवते । अयमुच्यते मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य प्रथमो गोचरः ।

हे मञ्जुश्री ! पुनः महासत्त्व बोधिसत्त्व किसी-न-किसी अनुकूल परिस्थिति का लाभ उठाकर मातृसमूह (स्त्रियों के समूह) को निरन्तर धर्म की देशना नहीं देता और न मातृग्राम (स्त्रियों के समूह) को निरन्तर देखने की ही इच्छा करता है । वह कुलों के निकट नहीं जाता तथा दारिका, कन्या एवं वधू को निरन्तर उपदेश देना ठीक नहीं मानता और न उनको बदले में प्रसन्न ही करता है । तथागत के स्मरण के अतिरिक्त अन्य किसी (भावना से) अकेले भिक्षा के लिए कभी घर के अन्दर नहीं जाता । जब वह स्त्रियों को धर्म की देशना करता है, तब वह धर्म के प्रति राग की भावना से प्रेरित होकर देशना नहीं करता । स्त्री के प्रति राग की भावना से देशना करने की बात तो दूर रही, वह अपनी दन्तावली भी नहीं दिखाता । मुख के अन्य गम्भीर विकारों की बात तो दूर रही, वह न श्रामणेर को, न श्रामणेरी को, न भिक्षुकों को, न भिक्षुणी को, न कुमार को, न कुमारिका को उपदेश देता है और न उनके साथ संस्तव करता है एवं न संलाप करता है । वह प्रतिसंलयन को आदर देता है और निरन्तर प्रतिसंलयन की सेवा करता है । हे मञ्जुश्री ! यह महासत्त्व बोधिसत्त्व का प्रथम गोचर है ।

पुनरपरं मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वः सर्वधर्मान् शून्यान् व्यवलोकयति यथावत्प्रतिष्ठितान् धर्मानविपरीतस्थायिनो यथाभूतस्थितानचलानकम्प्यानविवर्त्यानपरिवर्तान् सदा यथाभूतस्थितानाकाशस्वभावान्निरुक्तिव्यवहारविवर्जितानजातानभूतान् अनसंभूतान् असंस्कृतान् असन्तानान् असत्ताभिलापप्रव्याहृतानसंगस्थानस्थितान् संज्ञाविपर्यासप्रादुर्भूतान् । एवं हि मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽभीक्ष्णं सर्वधर्मान् व्यवलोकयन् विहरति । अनेन विहारेण विहरन् बोधिसत्त्वो महासत्त्वो गोचरे स्थितो भवति । अयं मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वस्य द्वितीयो गोचरः ।

हे मञ्जुश्री ! पुनः दूसरी बात यह है कि महासत्त्व बोधिसत्त्व सब धर्मों को शून्य समझता है । वह यथावत् प्रतिष्ठित, अविपरीत, स्थायी, यथाभूतस्थित, अचल, अकम्प, अनिवार्य,

अपरिवर्त्त, यथाभूतस्थित, आकाशस्वभाव, निरुक्ति एवं व्यवहारव्यवर्जित, अजात, अभूत, अनसंभूत, असंस्कृत, असन्तान, असत्ताभिलापप्रव्याहृत, असंगस्थानस्थित एवं संज्ञाविपर्यास धर्मों को ही देखता है। हे मञ्जुश्री! इसी प्रकार वह महासत्त्व बोधिसत्त्व निरन्तर सब धर्मों को देखता हुआ विहार करता है। इस प्रकार से विहार करता हुआ महासत्त्व बोधिसत्त्व गोचर में स्थित होता है। हे मञ्जुश्री! यह बोधिसत्त्व का दूसरा गोचर है।

अथ खलु भगवानेतमेवार्थं भूयस्या मात्रया संदर्शयमानस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, इस बात को स्पष्ट रूप से दिखाते हुए भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं—

यो बोधिसत्त्व इच्छेया पश्चात्काले सुदारुणे।
इदं सूत्रं प्रकाशेतुं अनोलीनो विशारदः॥१॥

जो अनवलीन एवं विशारद बोधिसत्त्व बाद के भयंकर समय में इस सूत्र को प्रकाशित करना चाहें,

आचारगोचरं रक्षेदसंसृष्टः शुचिर्भवेत्।
वर्जयेत् संस्तवं नित्यं राजपुत्रेहि राजभिः॥२॥

उसे चाहिए कि वह आचार-गोचर की रक्षा करे, असंसृष्ट एवं शुचि रह तथा वह राजाओं एवं राजपुत्रों के साथ संस्तव न करे,

ये चापि राजपुरुषाः कुर्यात्तेहि न संस्तवम्।
चण्डालमुष्टिकैः शौण्डैस्तीर्थिकैश्चापि सर्वशः॥३॥

तथा जो राजपुरुष हों, उनके साथ भी संस्तव न करे तथा सभी चाण्डालों, मुष्टिकों, शौण्डों एवं तीर्थिकों से भी (संस्तव न करे)।

अधिमानीन्न सेवेत विनये चागमे स्थितान्।
अर्हन्तसंमतान् भिक्षून् दुःशीलांश्चैव वर्जयेत्॥४॥

आगम एवं विनय में स्थित अभिमानियों की सेवा न करे एवं अपने को अर्हत् समझनेवाले दुःशील भिक्षुओं को भी त्याग दे।

भिक्षुणीं वर्जयेन्नित्यं हास्यसंलापगोचराम्।
उपासिकाश्च वर्जेत प्राकटा या अवस्थिताः॥५॥

हास्य एवं संलापप्रिया भिक्षुणी से भी सदा दूर रहे। प्राकट एवं अवस्थित उपासिकाओं को भी त्याग दे।

या निर्वृतिं गवेषन्ति दृष्टे धर्मे उपासिकाः।
वर्जयेत् संस्तवं ताभिः आचारो अयमुच्यते॥६॥

जो उपासिकाएँ दृष्ट धर्म में (सांसारिक वस्तुओं में) निर्वृति की खोज करती हैं, उनके साथ भी संस्तव त्याग दे । यही आचार कहलाता है ।

यश्चैनमुपसंक्रम्य धर्मं पृच्छेऽग्रबोधये ।
तस्य भाषेत् सदा धीरो, अनोलीनो अनिश्रितः ।।७।।

यदि कोई व्यक्ति इस अनवलीन एवं आनिद्रित पुरुष के पास आकर अग्रबोधि की प्राप्ति के लिए धर्म के विषय में प्रश्न करे, तो उसे उस धीर (प्रश्नकर्त्ता) को धर्मोपदेश देना चाहिए ।

स्त्रीपण्डकाश्च ये सत्त्वाः संस्तवं तैर्विवर्जयेत् ।
कुलेषु चापि वधुकां कुमार्यश्च विवर्जयेत् ।।८।।

जो प्राणी नपुंसक या स्त्री हैं, उनके साथ वह संस्तव न करे । कुलों में जाने पर वधू एवं कुमारियों से भी दूर रहे ।

न ताः संमोदयेज्जातु कौशल्यं हास पृच्छितुम् ।
संस्तवं तेहि वर्जेत सौकरौरभ्रिकैः सह ।।९।।

उनकी कुशलता एवं स्वास्थ्य के बारे में प्रश्न करके कभी उन्हें प्रसन्न न करें । उन सौकरों एवं औरभ्रिकों के साथ भी संस्तव त्याग दे ।

ये चापि विविधान् प्राणीन् हिंसेयुर्भोगकारणात् ।
मांसं सूनाय विक्रेन्ति संस्तवं तैर्विवर्जयेत् ।।१०।।

जो भोग की इच्छा से विविध प्राणियों का वध करते हैं तथा जो कसाईखाने में मांस बेचते हैं, उन सबके साथ संस्तव त्याग दे ।

स्त्रीपोषकाश्च ये सत्त्वा वर्जयेत्तेहि संस्तवम् ।
नटेभिर्झल्लमल्लेभिर्ये चान्ये तादृशा जनाः ।।११।।

वेश्यावृत्ति से जीवन-यापन करनेवालों, नटों, झल्लों, मल्लों एवं इस प्रकार के अन्य व्यक्तियों के साथ भी सम्बन्ध न रखे ।

वारमुख्या न सवेत ये चान्ये भोगवृत्तिनः ।
प्रतिसंमोदनं तेभिः सर्वशः परिवर्जयेत् ।।१२।।

वेश्याओं एवं अन्य दुश्चरित्र व्यक्तियों से संपर्क न रखे, उनके साथ शिष्टाचार-सम्बन्धी व्यवहार भी पूर्ण रूप से स्थगित रखे ।

यदा च धर्मं देशेया मातृग्रामस्य पण्डितः ।
न चैकः प्रविशेत्तत्र नापि हास्यस्थितो भवेत् ।।१३।।

जब उसे किसी विद्वान् को तथा किसी स्त्री को धर्मदेशना करनी हो, तब वह उसके साथ वहाँ उपदेश के स्थान में अकेले न प्रवेश करे तथा उसके साथ हँस-हँसकर बातें न करे ।

यदापि प्रविशेद् ग्रामं भोजनार्थी पुनः पुनः।
द्वितीयं भिक्षु मार्गेत बुद्धं वा समनुस्मरेत् ।।१४।।

यदि भोजन के हेतु उसे बार-बार गाँव में प्रवेश करना हो, तो वह किसी दूसरे भिक्षु को साथ ले ले या बुद्ध का स्मरण करे ।

आचारगोचरो ह्येष प्रथमो मे निर्दशितः ।
विहरन्ति येन सप्रज्ञा धारेन्ता सूत्रमीदृशम् ।।१५।।

मैंने इस प्रथम आचार-गोचर का निर्देशन किया है । जिसके अनुसार इस सूत्र को धारण करनेवाले बुद्धिमान् आचरण करते हैं ।

यदा न चरते धर्मं हीन उत्कृष्टमध्यमे ।
संस्कृतासंस्कृते चापि भूताभूतं च सर्वशः ।।१६।।

जब वह हीन, मध्यम या उत्कृष्ट, संस्कृत या असंस्कृत तथा सत्य एवं असत्य किसी भी प्रकार के धर्म का आचरण नहीं करता;

स्त्रीति नाचरते धीरो पुरुषेति न कल्पयेत् ।
सर्वधर्म अजातत्वाद् गवेषन्तो न पश्यति ।।१७।।

जब वह धीर पुरुष 'यह स्त्री है', ऐसा नहीं कहता तथा 'यह पुरुष है', ऐसा नहीं सोचता तथा खोज करने पर भी विविध धर्मों को, जो वास्तव में असत् हैं, नहीं देखता ।

आचारो हि अयं उक्तो बोधिसत्त्वान सर्वशः ।
गोचरो यादृशस्तेषां तं शृणोथ प्रकाशतः ।।१८।।

तब इसी को पूर्ण रूप से बोधिसत्त्वों का आचार कहते हैं, उनका गोचर कैसा होना चाहिए, उसे मैं बताता हूँ । तुम सुनो ।

असन्तका धर्म इमे प्रकाशिता अप्रादुभूताश्च अजात सर्वे ।
शून्या निरीहा स्थितः नित्यकालं अयं गोचरो उच्यति पण्डितानाम् ।।१९।।

ऐसा समझना कि संसार में प्रकाशित किये जानेवाले ये सभी धर्म असत्, अप्रादुर्भूत, अजात, शून्य, निरीह, स्थित एवं नित्य हैं, पण्डितों का गोचर कहलाता है ।

विपरीतसंज्ञीहि इमे विकल्पिता, असन्तसन्ताहि अभूतभूततः ।
अनुत्थिताश्चापि अजातधर्मा जाताथ भूता विपरीतकल्पिताः ।।२०।।

विपरीत ज्ञान रखनेवालों ने इसे सत् एवं असत्, अभूत एवं भूत, अनुत्थित एवं उत्थित, अजात एवं जात, वास्तविक एवं काल्पनिक रूपों में बाँट दिया है ।

एकाग्रचित्तो हि समाहितः सदा सुमेरुकूटो यथ सुस्थितश्च ।
एवं स्थितश्चापि हि तान् निरीक्षदाकाशभतानिम सर्वधर्मान् ।।२१।।

अतः, वह एकाग्रचित्त होकर समाधिस्थ एवं सुमेरु पर्वत की तरह दृढ हो जाय, इस अवस्था में वह इन सभी धर्मों को देखे तथा इन्हें आकाश के तुल्य (शून्य एवं अस्तित्वहीन) समझे ।

सदापि आकाशसमानसारकान् अनिञ्जितान्मन्यनवर्जितांश्च ।
स्थिता हि धर्मा इमि नित्यकालं अयु गोचरो उच्यति पण्डितानाम् ।।२२।।

ये धर्म सदा आकाश के समान सारहीन स्थिर एवं तत्त्व से रहित तथा नित्य स्थित रहनेवाले हैं । इसी को विद्वानों का गोचर कहा गया है ।

ईर्यापथं यो मम रक्षमाणो भवेत भिक्षू मम निर्वृतस्य ।
प्रकाशयेत् सूत्रमिदं हि लोके न चापि संलीयन तस्य काचित् ।।२३।।

मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर जो भिक्षु मेरे इस सदाचार-मार्ग का आचरण करेगा और संसार में इस सूत्र को प्रकाशित करेगा, उसे कभी निराशा नहीं होगी ।

कालेन वा चिन्तयमानु पण्डितः प्रविश्य लेनं तथ घट्टयित्वा ।
विपश्य धर्मं इमु सर्व योनिशो उत्थाय देशेत अलीनचित्तः ।।२४।।

पण्डित व्यक्ति यथासमय चिन्तन करते हुए, ध्यान में निलीन होकर इस धर्म को देखे और जन्म-मरण से ऊपर उठकर निस्संग भाव से धर्म की देशना करे ।

राजान तस्येह करोन्ति रक्षां ये राजपुत्राश्च शृणोन्ति धर्मम् ।
अन्येऽपि चो गृहपतिब्राह्मणाश्च परिवार्य सर्वेऽस्य स्थिता भवन्ति ।।२५।।

इस लोक के राजा एवं राजपुत्र, जो इस धर्म का उपदेश सुनते हैं, उसकी रक्षा करते हैं । अन्य गृहपति एवं ब्राह्मण सभी इसे घेरकर बैठे रहते हैं ।

पुनरपरं मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्य पश्चिमे काले पश्चिमे समये सद्धर्मविप्रलोपे वर्तमाने इमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयितुकामः सुखस्थितो भवति । स सुखस्थितश्च धर्मं भाषते कायगतं वा पुस्तकगतं वा । परेषां च देशयमानो नाधिमात्रमुपालम्भजातीयो भवति न चान्यान् धर्मभाणकान् भिक्षून् परिवदति न चावर्णं भाषते न चावर्णं निश्चारयति न चान्येषां श्रावकयानीयानां भिक्षूणां नाम गृहीत्वा अवर्णं भाषत

न चावर्णं चारयति न च तेषामन्तिके प्रत्यर्थिकसंज्ञी भवति। तत् कस्य हेतोः । यथापीदं सुखस्थानस्थितत्वात् । स आगतागतानां धार्मश्रावणिकानामनुपरिग्राहिकया अनभ्यसूयया धर्मं देशयति। अविवदमानो न च प्रश्नं पृष्टः श्रावकयानेन विसर्जयति। अपि तु खलु पुनस्तथा विसर्जयति यथा बुद्धज्ञानमभिसंबुध्यते ।२

पुनः हे मञ्जुश्री ! वह महासत्त्व बोधिसत्त्व तथागत के निर्वाण प्राप्त करने के बाद के काल में, बाद के पाँच सौ वर्षों में, जबकि सद्धर्म का लोप हो रहा हो, इस धर्मपर्याय को प्रकाशित करने की इच्छा से सुखपूर्वक जमकर बैठ जाता है। वह सुखपूर्वक बैठकर कण्ठस्थ या पुस्तकगत इस धर्म की देशना करता है तथा दूसरों को उसकी देशना करते समय वह अधिक व्यंग्य नहीं करता है, अन्य दूसरे धर्मभाणक भिक्षुओं की निन्दा नहीं करता, अनुचित बातें नहीं बोलता तथा अनुचित बातें नहीं फैलाता है और न अन्य श्रावकयानीय भिक्षुओं का नाम लेकर उनको अनुचित बातें कहता तथा न उनके बारे में अनुचित बातें फैलाता ही है। उनके प्रति विरुद्ध भावनाएँ भी नहीं रखता। ऐसा क्यों करता है ? क्योंकि, वह सुखस्थिति में वर्त्तमान है। वह क्रम से आनेवाले धर्म के सुननेवालों का अनुग्रह के साथ स्वागत करता है और असूया से रहित होकर उन्हें धर्म की देशना करता है। वह विवाद नहीं करता, किन्तु यदि कोई श्रावकयानीय कुछ प्रश्न करता है, तो उसे वह टालता नहीं, अपितु ऐसा उत्तर देता है, जिससे कि उसे बुद्धज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तत्पश्चात्, उस अवसर पर भगवान् ने ये गाथाएँ कहीं—

सुखस्थितो भोति सदा विचक्षणः सुखं निषण्णस्तथ धर्मु भाषते।
उदार प्रज्ञप्त करित्व आसनं चौक्षे मनोज्ञे पृथिवीप्रदेशे ।।२६।।

वह बुद्धिमान् सदा सुखस्थिति में रहता है और ऊँचे एवं सुन्दर भूमिखण्ड पर विशाल आसन निर्मित कराकर उसपर सुखपूर्वक बैठकर ही धर्म की देशना करता है।

चौक्षं च सो चीवर प्रावरित्वा सुरक्तरङ्गं सुप्रशस्तरङ्गैः।
आसेवकां कृष्ण तथाददित्वा महाप्रमाणं च निवासयित्वा ।।२७।।

वह सुन्दर रंगों में रँगे हुए सुन्दर चीवर को धारण करके, काले आसेवक (ऊनी वस्त्र) को ग्रहण करके तथा एक लम्बे (निचले वस्त्र) को ग्रहण करके,

सपादपीठस्मि निषद्य आसने विचित्रदूष्येहि सुसंस्तृतस्मिन् ।
सुधौतपादश्च उपारुहित्वा स्निग्धेन शीर्षेण मुखेन चापि ।।२८।।

पैरों को अच्छी तरह धोकर, मस्तक एवं मुख को स्निग्ध करके, रंग-विरंगे वस्त्र से आच्छादित पादपीठ से युक्त आसन पर चढ़कर तथा उसपर बैठकर;

धर्मासने चात्र निषीदियान एकाग्रसत्त्वेषु समागतेषु ।
उपसंहरेच्चित्रकथा बहूश्च भिक्षूण चो भिक्षुणिकान चैव ॥२९॥

आये हुए प्राणियों के एकाग्र हो जाने पर भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों के सम्मुख रंग-विरंग की, अनेक प्रकार की कथाएँ कहना आरम्भ करे ।

उपासकानां च उपासिकानां राज्ञां तथा राजसुतान चैव ।
विचित्रितार्थां मधुरां कथेया अनभ्यसूयन्तु सदा स पण्डितः ॥३०॥

असूया से रहित होकर वह पण्डित उपासकों, उपासिकाओं, राजाओं एवं राजकुमारों के सम्मुख विचित्र एवं अर्थयुक्त मधुर कथाएँ कहे ।

पृष्ठोऽपि चासौ तद प्रश्न तेहि अनुलोममर्थं पुनर्निर्दिशेत ।
तथा च देशेय तमर्थजातं यथ श्रुत्व बोधीय भवेयु लाभिनः ॥३१॥

उन लोगों के द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर वह उनके अर्थ को उचित क्रम से स्पष्ट करे । उस सम्पूर्ण अर्थ को इस प्रकार बतलाये, जिसे सुनकर सभी प्राणी बोधि को प्राप्त कर सकें ।

किलासितां चापि विवर्जयित्वा न चापि उत्पादयि खेदसंज्ञाम् ।
अरतिं च सर्वां विजहेत पण्डितो मैत्रीबलं चा परिषाय भावयेत् ॥३२॥

वह पण्डित क्लेश से परे है तथा उसके मन में थकावट का नाम भी नहीं उत्पन्न होता । वह सभी अरति को त्याग दे तथा परिषद् के सम्मुख मैत्री के बल को दिखलाये ।

भाषेच्च रात्रिंदिवमग्रधर्मं दृष्टान्तकोटीनयुतैः स पण्डितः ।
संहर्षयेत् पर्ष तथैव तोषयेन्न चापि किंचित्तु जातु प्रार्थयेत् ॥३३॥

वह पण्डित रात-दिन कोटीनयुत दृष्टान्तों के द्वारा उस श्रेष्ठ धर्म का उपदेश करे । उस परिषद् को वह इतना प्रसन्न एवं सन्तुष्ट कर दे कि वह फिर (परिषद्) और अधिक की माँग न करे ।

खाद्यं च भोज्यं च तथान्नपानं वस्त्राणि शय्यासनचीवरं वा ।
गिलानभैषज्य न चिन्तयेत न विज्ञपेया परिषाय किंचित् ॥३४॥

वह अपने लिए खाद्य, भोजन, अन्न, पान, वस्त्र, चीवर, शय्या, आसन एवं रोग की दवा की कभी चिन्ता न करे तथा परिषद् से कभी किसी वस्तु की माँग न करे ।

अन्यत्र चिन्तेय सदा विचक्षणो भवेय बुद्धोऽहमिमे च सत्त्वाः ।
एतन्ममो सर्वसुखोपधानं यं धर्मं श्रावेमि हिताय लोके ॥३५॥

वह बुद्धिमान् केवल इस बात की चिन्ता करे कि मैं तथा ये प्राणी किस तरह बुद्ध बन जायें। मेरा यही कर्त्तव्य है कि मैं सभी सुखों को देनेवाले इस धर्म को संसार में सबके हित के लिए उद्घोषित करूँ।

यश्चापि भिक्ष मम निर्वृतस्य अनीर्षुको एत प्रकाशयेया।
न तस्य दुःखं न च अन्तरायो शोकोपयासा न भवेत् कदाचित् ॥३६॥

मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने पर जो भिक्षु इर्ष्या से रहित होकर इस धर्म को प्रकाशित करेगा, उसे कभी दुःख, अन्तराय, शोक एवं उपायास का सामना नहीं करना पड़ेगा।

न तस्य संत्रासनकश्चि कुर्यान्न ताडनां नापि अवर्ण भाषेत्।
न चापि निष्कासन जातु तस्य तथा हि सो क्षान्तिबले प्रतिष्ठितः ॥३७॥

उसको कोई कष्ट नहीं दे सकता। उसे कोई मार नहीं सकता एवं उसे कोई अपशब्द भी नहीं कह सकता। वह इस प्रकार के क्षान्तिबल से युक्त होगा कि कोई कभी उसका निष्कासन नहीं कर सकता।

सुखस्थितस्यो तद पण्डितस्य एवं स्थितस्यो यथ भाषितं मया।
गुणान कोटीशत भोन्त्यनेके न शक्यते कल्पशतेहि वक्तुम् ॥३८॥

जैसा मैंने अभी बतलाया है, उस सुखस्थित पण्डित के अनेक कोटिशत गुण हैं, जिनका वर्णन सैकड़ों कल्पों में भी नहीं किया जा सकता।

पुनरपरं मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्य सद्धर्मक्षयान्तकाले वर्तमान इदं सूत्रं धारयमाणो बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽनीर्षुको भवत्यशठोऽमायावी न चान्येषां बोधिसत्त्वयानीयानां पुद्गलानामवर्णं भाषते नापवदति नावसादयति। न चान्येषां भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकानां श्रावकयानीयानां वा प्रत्येकबुद्धयानीयानां वा बोधिसत्त्वयानीयानां वा कौकृत्यमुपसंहरति। दूरे यूयं कुलपुत्रा अनुत्तरायाः सम्यक्संबोधेर्न तस्यां यूयं संदृश्यध्वे। अत्यन्तप्रमादविहारिणो यूयम्। न यूयं प्रतिबलास्तं ज्ञानमभिसंबोद्धुमित्येवं न कस्यचिद् बोधिसत्त्वयानीयस्य कौकृत्यमुपसंहरति। न च धर्मविवादाभिरतो भवति न च धर्मविवादं करोति सर्वसत्त्वानां चान्तिके मैत्रीबलं न विजहाति। सर्वतथागतानां चान्तिके पितृसंज्ञामुत्पादयति सर्वबोधिसत्त्वानां चान्तिके शास्तृसंज्ञामुत्पादयति। ये च दशसु दिक्षु लोके बोधिसत्त्वा महासत्त्वास्तानभीक्ष्णमध्याशयेन गौरवेण च नमस्कुरुते। धर्मं च देशयमानोऽनूनमनधिकं धर्मं देशयति समेन धर्मप्रेम्णा न च कस्यचिदन्तशो धर्मप्रेम्णाप्यधिकतरमनुग्रहं करोतीमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयमानः।

पुनः, हे मञ्जुश्री ! तथागत के निर्वाण प्राप्त कर लेने पर, जब कि सद्धर्म ह्रासोन्मुख रहेगा, इस सूत्र को धारण करनेवाला वह महासत्त्व बोधिसत्त्व, जो ईर्ष्या से रहित, सज्जन एवं कपटहीन होता है, अन्य बोधिसत्त्वयानीय प्राणियों को न अपशब्द कहता है, न उनकी निन्दा करता है और न उन्हें किसी प्रकार का कष्ट देता है। अन्य भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उपासकों, उपासिकाओं, श्रावकयानीयों, प्रत्येकबुद्धयानीयों अथवा बोधिसत्त्वयानीयों के कुकृत्यों की चर्चा भी नहीं करता। 'हे कुलपुत्रो ! तुमलोग श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि से दूर हो। तुमलोग उसमें स्थित नहीं दिखाई देते, तुमलोग अत्यन्त प्रमादपूर्ण रीति से आचरण करते हो, तुमलोग इस ज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो।' इस प्रकार कहकर वह किसी बोधिसत्त्वयानीय के कुकृत्यों की चर्चा नहीं करता। वह धार्मिक विवादों में रुचि नहीं रखता। धर्म के सम्बन्ध में विवाद नहीं करता एवं सभी प्राणियों के प्रति अपने मैत्रीबल को अक्षुण्ण रखता है। सभी तथागतों को पितृतुल्य समझता है तथा सभी बोधिसत्त्वों को अपना गुरु समझता है। संसार की दसों दिशाओं में जो महासत्त्व बोधिसत्त्व हैं, उन्हें निरन्तर बड़े सद्भाव एवं गौरव के साथ नमस्कार करता है। धर्म की देशना करते समय वह उसका न घटाकर और न बढ़ा-चढ़ाकर ही उपदेश देता है। तथा धर्म को प्रकाशित करते समय धर्म के प्रेम में पड़कर किसी विशेष धर्म की ओर विशेष अभिरुचि नहीं दिखलाता और न किसी धर्म के प्रति अधिक पक्षपात ही दिखलाता है।

अनेन मञ्जुश्रीस्तृतीयेन धर्मेण समन्वागतो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्य सद्धर्मपरिक्षयान्तकाले वर्तमान इमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयमानः सुखस्पर्शं विहरत्यविहेठितश्चेमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयति। भवन्ति चास्य धर्मसंगीत्यां सहायका उत्पत्स्यन्ते चास्य धार्मश्रावणिका येऽस्येमं धर्मपर्यायं श्रोष्यन्ति श्रद्धास्यन्ति पत्तीयिष्यन्ति धारयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति लिखिष्यन्ति लिखापयिष्यन्ति पुस्तकगतं च कृत्वा सत्करिष्यन्ति गुरुकरिष्यन्ति मानयिष्यन्ति पूजयिष्यन्ति।

हे मञ्जुश्री ! इस तीसरे धर्म से समन्वित वह महासत्त्व बोधिसत्त्व तथागत के निर्वाण प्राप्त कर लेने पर, जब कि सद्धर्म का ह्रास एवं अन्त होता रहता है, इस धर्मपर्याय को सम्यक् रूपेण प्रकाशित करता हुआ सुखपूर्वक रहता है तथा इस धर्मपर्याय को विना थके हुए सम्प्रकाशित करता है। इस धर्म-संगीति में इसको सहायक मिल जाते हैं। उस समय इस धर्म को सुननेवाले ऐसे व्यक्ति उत्पन्न हो जायेंगे, जो इस धर्मपर्याय को सुनेंगे, इसमें श्रद्धा करेंगे, इसपर विश्वास करेंगे, इसको धारण करेंगे, समझेंगे, लिखेंगे, लिखायेंगे तथा पुस्तकगत करके इसका सत्कार, आदर, सम्मान एवं पूजन करेंगे।

इदमवोचद् भगवानिदं वदित्वा सुगतो ह्यथापरमेतदुवाच शास्ता।

भगवान् ने यह कहा, ऐसा कहकर शास्ता, सुगत ने पुनः ऐसा कहा—

शाठ्यं च मानं तथ कूटनां च अशेषतो उज्झिय धर्मभाणकः ।
ईर्ष्यां न कुर्यात्तथ जातु पण्डितो य इच्छते सूत्रमिदं प्रकाशितुम् ।।३९।।

जो पण्डित धर्मभाणक, जो इस सूत्र को प्रकशित करना चाहता है, उसे शाठ्य, मान तथा चालाकी को छोड़ देना चाहिए तथा इर्ष्या तो उसे कभी करनी ही नहीं चाहिए ।

अवर्ण जातू न वदेय कस्यचिद्दृष्टीविवादं च न जातु कुर्यात् ।
कौकृत्यस्थानं च न जातु कुर्यान्नि लप्स्यसे ज्ञानमनुत्तर त्वम् ।।४०।।

उसे किसी को अपशब्द नहीं कहना चाहिए । धर्म-सम्बन्धी विवादों में नहीं पड़ना चाहिए तथा किसी के कुकर्मों की चर्चा भी नहीं करनी चाहिए । ऐसा करने से श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति नहीं होगी ।

सदा च सो आर्जवु मार्दवश्च क्षान्तश्च भोती सुगतस्य पुत्रः ।
धर्मं प्रकाशेतु पुनः पुनश्चिमं न तस्य खेदो भवती कदाचित् ।।४१।।

वह सुगत का पुत्र सदा सरल मृदु एवं क्षमाशील होता है । इस धर्म को पुनः-पुनः प्रकाशित करते हुए भी वह कभी खेद का अनुभव नहीं करता ।

ये बोधिसत्त्वा दशसू दिशासु सत्त्वानुकम्पाय चरन्ति लोके ।
ते सर्वि शास्तार भवन्ति मह्यं गुरुगौरवं तेषु जनेत पण्डितः ।।४२।।

'वे सभी बोधिसत्त्व, जो दसों दिशाओं में प्राणियों पर दया करने के लिए इस संसार में विचरण करता है, हमारे गुरु हैं', ऐसा सोचकर वुद्धिमान् को चाहिए कि वह उनके प्रति गुरु की श्रद्धा रखे ।

स्मरित्व बुद्धान् द्विपदानमुत्तमान् जिनेषु नित्यं पितृसंज्ञ कुर्यात् ।
अधिमानसंज्ञां च विहाय सर्वां न तस्य भोती तद अन्तरायः ।।४३।।

मनुष्यों में श्रेष्ठ बुद्धों का स्मरण करके उन जिनों को पितृतुल्य समझे । सम्पूण अभिमान को त्याग देने पर उसे किसी प्रकार की बाधा नहीं होती है ।

श्रुणित्व धर्मं इममेवरूपं स रक्षितव्यस्तद पण्डितेन ।
सुखं विहाराय समाहितश्च सुरक्षितो भोति च प्राणिकोटिभिः ।।४४।।

इस प्रकार के धर्म का श्रवण करके उस पण्डित को इस धर्म की रक्षा करनी चाहिए । यदि वह सुखपूर्वक विहार करने में दत्तचित्त होगा, तो करोड़ों प्राणी उसकी रक्षा करेंगे ।

पुनरपरं मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्य सद्धर्मप्रतिक्षयान्तकाले वर्तमान इमं धर्मपर्यायं धारयितुकामस्तेन भिक्षुणा गृहस्थ-

प्रव्रजितानामन्तिकाद् दूरेण दूरं विहर्तव्यं मैत्रीविहारेण च विहर्तव्यम्। ये च सत्त्वा बोधाय संप्रस्थिता भवन्ति तेषां सर्वेषामन्तिके स्पृहोत्पादयितव्या। एवं चानेन चित्तमुत्पादयितव्यम्। महादुष्प्रज्ञजातीया बतेमे सत्त्वा ये तथागतस्योपायकौशल्यं संधाभाषितं न शृण्वन्ति न जानन्ति न बुध्यन्ते न पृच्छन्ति न श्रद्दधन्ति नाधिमुच्यन्ते। किं चाप्येते सत्त्वा इमं धर्मपर्यायं नावतरन्ति न बुध्यन्ते। अपि तु खलु पुनरहमेतामनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुध्य यो यस्मिन् स्थितो भविष्यति तं तस्मिन्नेवर्द्धिबलेनावर्जयिष्यामि पत्तीयापयिष्याम्यवतारयिष्यामि परिपाचयिष्यामि।

पुनः, हे मञ्जुश्री! जो महासत्त्व बोधिसत्त्व तथागत के निर्वाण प्राप्त कर लेने पर, जिस समय सद्धर्म का ह्रास एवं अन्त होता रहता है, उस समय इस धर्मपर्याय को धारण करना चाहेगा, उस भिक्षु को, गृहस्थों एवं प्रव्रजितों से पर्याप्त दूर रहना चाहिए और उसे मैत्री का जीवन व्यतीत करना चाहिए। जो प्राणी बोधि के लिए प्रयत्नशील हैं, उनके प्रति उसे अपने हृदय में स्पृहा उत्पन्न करनी चाहिए। उसे ऐसा सोचना चाहिए कि ये प्राणी अत्यन्त दुर्बुद्ध हैं, जो तथागत के उपायकौशल्य एवं सन्धाभाष्य को नहीं सुनते, नहीं जानते, नहीं समझते एवं नहीं पूछते तथा उसके प्रति श्रद्धा एवं झुकाव नहीं रखते, ये प्राणी इस धर्मपर्याय में प्रवेश नहीं पा सकते, तथा इसे नहीं समझ सकते। इस श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करके जो मनुष्य जहाँ भी स्थित हो जायगा, मैं उसको उसी स्थिति में अपनी अलौकिक शक्ति के द्वारा उसकी ओर आकृष्ट कराऊँगा, उसमें श्रद्धा उत्पन्न कराऊँगा, उसको वहाँ प्रविष्ट कराऊँगा एवं उसे परिपक्व बनाऊँगा।

अनेनापि मञ्जुश्रीश्चतुर्थेन धर्मेण समन्वागतो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्येमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयमानोऽव्याबाधो भवति सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकानां राज्ञां राजपुत्राणां राजामात्यानां राजमहामात्राणां नैगमजानपदानां ब्राह्मणगृहपतीनाम्। अन्तरीक्षावचराश्चास्य देवताः श्राद्धाः पृष्ठतोऽनुबद्धा भविष्यन्ति धर्मश्रवणाय देवपुत्राश्चास्य सदानुबद्धा भविष्यन्त्यारक्षायै ग्रामगतस्य वा विहारगतस्य वोपसंक्रमिष्यन्ति रात्रिंदिवं धर्मं परिपृच्छकास्तस्य च व्याकरणेन तुष्टा उदग्रा आत्तमनस्का भविष्यन्ति। तत् कस्य हेतोः। सर्वबुद्धाधिष्ठितोऽयं मञ्जुश्रीधर्मपर्यायः। अतीतानागतप्रत्युत्पन्नैर्मञ्जुश्रीस्तथागतैरर्हद्भिः सम्यक्संबुद्धैरयं धर्मपर्यायो नित्याधिष्ठितः। दुर्लभोऽस्य मञ्जुश्रीर्धर्मपर्यायस्य बहुषु लोकधातुषु शब्दो वा घोषो वा नामश्रवो वा।

हे मञ्जुश्री ! इस चतुर्थ धर्म से सम्पन्न वह महासत्त्व बोधिसत्त्व परिनिर्वाण-प्राप्त तथागत के इस धर्मपर्याय को संप्रकाशित करता हुआ बाधाओं से मुक्त हो जाता है एवं भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, राजा, राजपुत्र, राजामात्य, राजमहामात्र, नैगम, जनपद, ब्राह्मण एवं गृहपति इन सबका सत्कार करते हैं, आदर करते हैं, सम्मान करते हैं एवं पूजन करते हैं। आकाशचारी देवता इसमें श्रद्धा करेंगे एवं धर्म का श्रवण करने के लिए इसका अनुगमन करेंगे। देवपुत्र भी उसकी रक्षा के लिए इसका अनुगमन करेंगे तथा चाहे वह गाँव में रहे, चाहे विहार में रहे, धर्म के विषय में प्रश्न करने के लिए रात-दिन सदा उसके निकट जायेंगे तथा उसके द्वारा की गई व्याख्या को सुनकर, तुष्ट, उदग्र एवं आत्तमनस्क हो जायेंगे। ऐसा क्यों होगा ? क्योंकि, हे मञ्जुश्री ! सभी बुद्धों ने इस धर्म की रक्षा की है। हे मञ्जुश्री ! अतीत, भविष्यत् एवं वर्त्तमान सभी कालों में तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों ने इस धर्मपर्याय की नित्य रक्षा की है। हे मञ्जुश्री ! इस धर्मपर्याय का शब्द, घोष या नाम का श्रवण अनेक लोकधातुओं में सर्वथा दुर्लभ है।

तद् यथापि नाम मञ्जुश्री राजा भवति बलचक्रवर्ती, बलेन तं स्वकं राज्यं निर्जिनाति। ततोऽस्य प्रत्यर्थिकाः प्रत्यमित्राः प्रतिराजानस्तेन सार्धं विग्रहमापन्ना भवन्ति। अथ तस्य राज्ञो बलचक्रवर्तिनो विविधा योधा भवन्ति। ते तैः शत्रुभिः सार्धं युध्यन्ते। अथ स राजा तान् योधान् युध्यमानान् दृष्ट्वा तेषां योधानां प्रीतो भवत्यात्तमनस्कः। स प्रीत आत्तमनाः समानस्तेषां योधानां विविधानि दानानि ददाति। तद् यथा ग्रामं वा ग्रामक्षेत्राणि वा ददाति नगरं नगरक्षेत्राणि वा ददाति वस्त्राणि ददाति वेष्टनानि हस्ताभरणानि पादाभरणानि कण्ठाभरणानि कर्णाभरणानि सौवर्णसूत्राणि हारार्धहाराणि हिरण्यसुवर्णमणिमुक्तावैडूर्यशंखशिलाप्रवाड़ान्यपि ददाति हस्त्यश्वरथपत्तिदासीदासानपि ददाति यानानि शिविकाश्च ददाति। न पुनः कस्यचिच्चूडामणिं ददाति। तत् कस्य हेतोः। एक एव हि स चूडामणी राज्ञो मूर्धस्थायी। यदा पुनर्मञ्जुश्री राजा तमपि चूडामणिं ददाति तदा स सर्वो राज्ञश्चतुरङ्गबलकाय आश्चर्यप्राप्तो भवत्यद्भुतप्राप्तः। एवमेव मञ्जुश्रीस्तथागतोऽप्यर्हन् सम्यक्संबुद्धो धर्मस्वामी धर्मराजा स्वेन बाहुबलनिर्जितेन पुण्यबलनिर्जितेन त्रैधातुके धर्मेण धर्मराज्यं कारयति। तस्य मारः पापीयांस्त्रैधातुकमाक्रामति। अथ खलु तथागतस्याप्यार्या योधा मारेण सार्धं युध्यन्ते। अथ खलु मञ्जुश्रीस्तथागतोऽप्यर्हन् सम्यक्संबुद्धो धर्मस्वामी धर्मराजा तेषामार्याणां योधानां युध्यतां दृष्ट्वा विविधानि सूत्रशतसहस्राणि भाषते स्म चतसृणां पर्षदां संहर्षणार्थम्। निर्वाणनगरं चैषां महाधर्मनगरं ददाति। निर्वृत्या चैनान्

प्रलोभयति स्म। न पुनरिममेवंरूपं धर्मपर्यायं भाषते स्म। तत्र मञ्जुश्रीर्यथा स राजा बलचक्रवर्ती तेषां योधानां युध्यतां महता पुरुषकारेण विस्मापितः समानः पश्चात्तं सर्वस्वभूतं पश्चिमं चूडामणिं ददाति सर्वलोकाश्रद्धेयं विस्मयभूतम्। यथा मञ्जुश्रीस्तस्य राज्ञः स चूडामणिश्चिररक्षितो मूर्धस्थायी एवमेव मञ्जुश्री स्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्त्रैधातुके धर्मराजो धर्मण राज्यं कारयमाणो यस्मिन् समये पश्यति श्रावकांश्च बोधिसत्त्वांश्च स्कन्धमारेण वा क्लेशमारेण वा सार्धं युध्यमानान् तैश्च सार्धं युध्यमानैर्यदा रागद्वेषमोहक्षयः सर्वत्रैधातुकान्निःसरणं सर्वमारनिर्घातनं महापुरुषकारः कृतो भवति तदा तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धोऽप्यारागितः समानस्तेषामार्याणां योधानामिममेवंरूपं सर्वलोकविप्रत्यनीकं सर्वलोकाश्रद्धेयमभाषितपूर्वमनिर्दिष्टपूर्वं धर्मपर्यायं भाषते स्म। सर्वेषां सर्वज्ञताहारकं महाचूडामणिप्रख्यं तथागतः श्रावकेभ्योऽनुप्रयच्छति स्म। एषा हि मञ्जुश्रीस्तथागतानां परमा धर्मदेशनायं पश्चिमस्तथागतानां धर्मपर्यायः सर्वेषां धर्मपर्यायाणामयं धर्मपर्यायः सर्वगम्भीरः सर्वलोकविप्रत्यनीकः। योऽयं मञ्जुश्रीस्तथागतेनाद्य तेनैव राज्ञा बलचक्रवर्तिना चिरपरिरक्षितश्चूडामणिरवमुच्य योधेभ्यो दत्तः। एवमेव मञ्जुश्रीस्तथागतोऽपीमं धर्मगुह्यं चिरानुरक्षितं सर्वधर्मपर्यायाणां मूर्धस्थायि तथागतविज्ञेयं तदिदं तथागतेनाद्य संप्रकाशितमिति।

हे मञ्जुश्री ! एक बलचक्रवर्त्ती नामक राजा है । वह अपनी सेना के द्वारा अपने राज्य को (शत्रुओं से) जीत लेता है । तब उसके प्रत्यर्थी, विरोधी एवं शत्रु राजा उसके साथ युद्ध आरम्भ कर देते हैं। उस राजा बलचक्रवर्त्ती के पास अनेक योद्धा हैं। वे उन शत्रुओं के साथ युद्ध करते हैं । तदनन्तर, वह राजा उन योद्धाओं को युद्ध करते देखकर उन योद्धाओं के प्रति प्रसन्न एवं आत्तमनस्क हो जाता है । वह प्रसन्न एवं आत्तमना होकर उन योद्धाओं को विविध दान देता है । यथा---गाँव या गाँव के के क्षेत्र देता है, नगर या नगर के क्षेत्र देता ह, वस्त्र एवं पगड़ी देता है । हाथ के आभूषण, पैर के आभूषण, गले के आभूषण, कानों के आभूषण, सुवर्ण के सूत्रहार, अर्द्धहार, हिरण्य, सुवर्ण, मणि, मुक्ता, वैदूर्य, शंख, शिला एवं प्रवाल देता है तथा हाथी, घोड़ा, रथ, पदाति, दासी एवं दास देता है और यान एवं पालकियाँ देता है । किन्तु, किसी को चूडामणि नहीं देता है । ऐसा क्यों ? क्योंकि, केवल एक ही चूडामणि राजा के मस्तक पर बच गया था । हे मञ्जुश्री ! राजा जब उस चूडामणि को भी दे देता है, तब राजा की उस समय चतुरंगिणी सेना आश्चर्य को प्राप्त हो जाती है, अचम्भा को प्राप्त हो जाती है । इसी प्रकार, हे मञ्जुश्री ! तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, जो धर्म के स्वामी एवं धर्म के राजा हैं, अपने बाहुबल के द्वारा अर्जित एवं पुण्यबल के

द्वारा अर्जित धर्म के द्वारा इस त्रैधातुक संसार में धर्म का राज्य करते हैं। उनके त्रैधातुक शरीर पर पापी मार आक्रमण करता है। तब तथागत के भी श्रेष्ठ योद्धा मार के साथ युद्ध करते हैं। हे मञ्जुश्री! जब धर्म के स्वामी, धर्म के राजा, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध उन आर्य योद्धाओं को युद्ध करते देखते हैं, तब चारों परिषदों को प्रसन्न करने के लिए अनेक शतसहस्र सूत्रों का उपदेश देते हैं। इन लोगों को निर्वाण, नगर तथा महाधर्मनगर देते हैं। उन्हें निर्वाण का प्रलोभन देते हैं। किन्तु, इस प्रकार के इस धर्मपर्याय को उनके सम्मुख नहीं कहते। हे मञ्जुश्री! जिस प्रकार वह राजा बलचक्रवर्त्ती उन युद्ध करते हुए योद्धाओं के पौरुष को देखकर आश्चर्य में पड़ जाता है और बाद में अपने सर्वस्व भूल उस अन्तिम चूडामणि को भी दे देता है, जो सम्पूर्ण लौकिक श्रद्धा का पात्र एवं आश्चर्य का विषय था। हे मञ्जुश्री! जिस प्रकार वह राजा (अपने) मस्तक पर विद्यमान उस चूडामणि की चिरकाल से रक्षा करता है, उसी प्रकार हे मञ्जुश्री! तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध धर्मराज के रूप में त्रैधातुक (संसार में) धर्मपूर्वक राज्य करते हुए जिस समय श्रावकों एवं बोधिसत्त्वों को स्कन्धभार अथवा क्लेशभार के साथ युद्ध करते हुए देखते हैं और जब देखते हैं कि उसके साथ युद्ध करते हुए उन्होंने राग, द्वेष एवं मोह के नाश-रूप, सम्पूर्ण त्रैधातुक (संसार से) मुक्ति-रूप तथा सभी मारों की पराजय-रूप महान् वीरता का कार्य कर लिया है, तब तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध ने प्रसन्न होकर प्रसन्नतापूर्वक उन आर्य योद्धाओं को इस प्रकार के इस सर्वलोकविप्रत्यनीक, सर्वलोकश्रद्धेय अभाषितपूर्व अनिर्दिष्टपूर्व धर्मपर्याय को बतलाया। तथागत ने सबको सर्वज्ञता प्राप्त करानेवाले इस महाचूडामणि नामक (इस धर्मपर्याय) का उपदेश दिया। यतः, हे मञ्जुश्री! यह तथागतों की श्रेष्ठ देशना है। यह तथागतों का अन्तिम श्रेष्ठ धर्मपर्याय है। सभी धर्मपर्यायों में यह धर्मपर्याय सबसे गम्भीर एवं सर्वलोकविप्रत्यनीक है। हे मञ्जुश्री! जिस प्रकार उस राजा बलचक्रवर्त्ती ने चिरकाल से परिलक्षित (अपने) चूडामणि को उतारकर योद्धाओं को दे दिया, उसी प्रकार हे मञ्जुश्री! तथागत ने भी चिरकाल से अनुरक्षित सभी धर्मपर्यायों में श्रेष्ठ एवं तथागतों के द्वारा ज्ञातव्य इस रहस्यमय धर्म को आज सम्प्रकाशित किया है।

अथ खलु भगवानेतमेवार्थं भूयस्या मात्रया संदर्शयमानस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, भगवान् ने इस विषय की विस्तृत रूप में विवेचना करते हुए उस समय ये गाथाएँ कहीं—

मैत्रीबलं चो सद दर्शयन्तः कृपायमाणः सद सर्वसत्त्वान्।
प्रकाशयेद्धर्ममिमेवरूपं सूत्रं विशिष्टं सुगतेहि वर्णितम्॥४५॥

सदा मैत्रीबल को दिखाता हुआ एवं सदा सभी प्राणियों पर दया करता हुआ सुगतों के द्वारा वर्णित इस प्रकार के इस विशिष्ट धर्मसूत्र को सदा प्रकाशित करे।

गृहस्थ ये प्रव्रजिताश्च य स्युरथ बोधिसत्त्वास्तद कालि पश्चिमे।
सर्वेषु मैत्रीबल सो हि दर्शयी मा हैव क्षेप्स्यन्ति श्रुणित्व धर्मम् ।।४६।।

(जो) गृहस्थ हों, जो प्रव्रजित (हों) तथा जो उस समय अन्तिम काल में बोधिसत्त्व हों, उन सबके प्रति वह मैत्रीबल को दिखाये, जिससे वे भी उस धर्मोपदेश को सुनकर उसे तिरस्कृत न करें ।

अहं तु बोधिमनुप्रापुणित्वा यदा स्थितो भेष्यि तथागतत्वे ।
ततो उपानेष्यि उपायि स्थित्वा संश्रावयिष्ये इममग्रबोधिम् ।।४७।।

मैं जब बोधि प्राप्त करके तथागतत्व को प्राप्त कर लूँगा, तब मैं दूसरों को दीक्षित करूँगा एवं उपाय में स्थित होकर उस अग्रबोधि का उपदेश दूँगा ।

यथापि राजा बलचक्रवर्ती योधान दद्याद् विविधं हिरण्यम् ।
हस्तींश्च अश्वांश्च रथान् पदातीन् नगराणि ग्रामांश्च ददाति तुष्टः ।।४८।।

इस प्रकार, वह राजा बलचक्रवर्त्ती प्रसन्न होकर योद्धाओं को विविध हिरण्य देता है तथा हाथी, घोड़े, रथ, पदाति, ग्राम एवं नगर देता है ;

केषांचि हस्ताभरणानि प्रीतो ददाति रूप्यं च सुवर्णसूत्रम् ।
मुक्तामणिं शंखशिलाप्रवाड़ं विविधांश्च दासान् स ददाति प्रीतः ।।४९।।

किन्हीं को प्रसन्न होकर हाथ के आभूषण, चाँदी एवं सुवर्ण के सूत्र देता है तथा प्रसन्न होकर मुक्तामणि, शंख, शिला, प्रवाल एवं विविध प्रकार के सेवक को दान में देता है ।

यदा तु सो उत्तमसाहसेन विस्मापितो केनचि तत्र भोति ।
विज्ञाय आश्चर्यमिदं कृतं ति मुकुटं स मुञ्चित्व मणिं ददाति ।।५०।।

और, जब वह वहाँ (उनमें से) किसी के उत्तम साहस से आश्चर्यित होता है, तब यह कहकर कि 'तुमने आश्चर्यजनक कार्य किया है', वह मुकुटमणि को निकालकर दे देता है ।

तथैव बुद्धो अहु धर्मराजा क्षान्तीबलः प्रज्ञप्रभूतकोशः ।
धर्मेण शासामिमु सर्वलोकं हितानुकम्पी करुणायमानः ।।५१।।

उसी प्रकार, मैं जो बुद्ध, जो धर्मराज हूँ तथा क्षान्ति के बल एवं ज्ञान के विशाल कोश से सम्पन्न हूँ तथा सबका हित चाहता हुआ एवं उनपर अनुकम्पा एवं कृपा करता हुआ इस संसार पर धर्मपूर्वक शासन करता हूँ ।

सत्त्वांश्च दृष्ट्वाथ विहन्यमानान् भाषामि सूत्रान्त सहस्रकोट्यः ।
पराक्रमं जानिय तेष प्राणिनां ये शुद्धसत्त्वा इह क्लेशघातिनः ।।५२।।

तब मैं उन प्राणियों के, जो शुद्धभाव एवं क्लेशों को नष्ट करनेवाले हैं, पराक्रम को जानकर तथा उन प्राणियों को विहन्यमान देखकर सहस्रों कोटि सूत्रान्तों का उपदेश देता हूँ ।

अथ धर्मराजापि महाभिषट्कः पर्यायकोटीशत भाषमाणः ।
ज्ञात्वा च सत्त्वान् बलवन्तु ज्ञानी चूडामणि वा इम सूत्र देशयी ।।५३।।

वह ज्ञानी धर्मराज भी, जो महान् वैद्य के तुल्य है तथा जो कोटि शत (धर्म)-पर्यायों का उपदेश देता है, प्राणियों के बल को जानकर ही चूडामणि (के समान श्रेष्ठ) इस सूत्र की देशना करता है ।

इमु पश्चिमु लोकि वदामि सूत्रं सूत्राण सर्वेष ममाग्रभूतम् ।
संरक्षितं मे न च जातु प्रोक्तं तं श्रावयाम्यद्य शृणोथ सर्वे ।।५४।।

यह अन्तिम सूत्र है, जिसका मैं इस संसार में उपदेश देता हूँ । यह मेरे सभी सूत्रों में श्रेष्ठ है । इसे मैंने बचाकर रखा है । कभी इसका उपदेश नहीं किया । उसे आज सुना रहा हूँ । तुम सभी सुनो ।

चत्वारि धर्मा इमि एवरूपा मयि निर्वृते ये च निषेवितव्याः ।
ये चार्थिका उत्तममग्रबोधौ व्यापारणं ये च करोन्ति मह्यम् ।।५५।।

जो उत्तम अग्रबोधि के अभिलाषी हैं तथा जो मेरे लिए व्यापारण करते हैं, उन्हें मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर इस प्रकार के इन चार धर्मों का सेवन करना चाहिए ।

न तस्य शोको न पि चान्तरायो दौर्वर्णिकं नापि गिलानकत्वम् ।
न च च्छवी कृष्णिक तस्य भोति न चापि हीने नगरस्मि वासः ।।५६।।

उसे न शोक, न विघ्न, न दौर्वर्णिक एवं न बीमारी होती है और न उसका वर्ण काला होता है और न उसे कभी हीन नगर में निवास करना पड़ता हे ।

प्रियदर्शनोऽसौ सततं महर्षी तथागतो वा यथ पूज्य भोति ।
उपस्थायकास्तस्य भवन्ति नित्यं ये देवपुत्रा दहरा भवन्ति ।।५७।।

वह सदा प्रियदर्शी होता है तथा महर्षि या तथागत की तरह पूज्य होता है । साधारण कोटि के देवपुत्र भी सदा उनकी सेवा में तत्पर रहते हैं ।

न तस्य शस्त्रं न विषं कदाचित् काये क्रमे नापि च दण्डलोष्टम् ।
संमीलितं तस्य मुखं भवेय यो तस्य चाक्रोशमपी वदेया ।।५८।।

उसके शरीर पर शस्त्र, विष, डण्डे एवं ढेले कभी अपना प्रभाव नहीं डाल सकते । जो भी उसको अपशब्द कहता है, उसका मुख बन्द हो जाता है ।

सो बन्धुभूतो भवतीह प्राणिनामालोकजातो विचरन्तु मेदिनीम् ।
तिमिरं हरन्तो बहुप्राणिकोटिनां यो सूत्र धारे इमु निर्वृते मयि ।।५९।।

मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर जो इस सूत्र को धारण करता है, वह इस संसार में सबका बन्धु होता है एवं अनेक कोटि प्राणियों के अज्ञानान्धकार का हरण करता हुआ प्रकाशस्तम्भ के समान पृथ्वी पर विचरण करता है ।

सुपिनस्मि सो पश्यति भद्ररूपं भिक्षूंश्च सो पश्यति भिक्षुणीश्च ।
सिंहासनस्थं च तथात्मभावं धर्मं प्रकाशन्तु बहुप्रकारम् ।।६०।।

वह स्वप्न में बुद्ध के दर्शन करता है तथा अनेक भिक्षुओं और भिक्षुणियों को भी देखता है एवं उसे ऐसा लगता है कि वह स्वयं सिंहासन पर बैठा हुआ अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित कर रहा है ।

देवांश्च यक्षान् यथ गङ्गवालिका असुरांश्च नागांश्च बहुप्रकारान् ।
तेषां च सो भाषति अग्रधर्मं सुपिनस्मि सर्वेष कृताञ्जलीनाम् ।।६१।।

स्वप्न में वह देखता है कि उसके सम्मुख गंगा की वालुका के समान असंख्य देवता, यक्ष एवं असुर, तथा अनेक प्रकार के नाग हाथ जोड़कर खड़े हैं और वह उन सबको अग्रधर्म का उपदेश दे रहा है ।

तथागतं सो सुपिनस्मि पश्यति देशेन्त धर्मं बहुप्राणिकोटिनाम् ।
रश्मीसहस्राणि प्रमुञ्चमानं वल्गुस्वरं काञ्चनवर्णनाथम् ।।६२।।

वह स्वप्न में सहस्रों रश्मि बिखेरते हुए, मधुर स्वरवाले एवं स्वर्ण के समान तेजस्वी शरीर को धारण करनेवाले तथागत को, अनेक कोटि प्राणियों को धर्म की देशना करते हुए देखता है ।

सो चा तही भोति कृताञ्जलिस्थितो अभिष्टवन्तो द्विपदुत्तमं मुनिम् ।
सो चा जिनो भाषति अग्रधर्मं चतुर्ण पर्षाण महाभिषट्कः ।।६३।।

वह वहीं मनुष्यों में श्रेष्ठ मुनि की स्तुति करते हुए हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है और वे तथागत, जो महान् वैद्य के तुल्य हैं, चार परिषदों के सम्मुख अग्रधर्म का उपदेश देते हैं ।

सो च प्रहृष्टो भवती, श्रुणित्वा प्रामोद्यजातश्च करोति पूजाम् ।
सुपिने च सो धारणि प्रापुणोति अविवर्तियं ज्ञान स्पृशित्व क्षिप्रम् ।।६४।।

वह उनके उपदेश को सुनकर प्रसन्न हो जाता है और उसके हृदय में आनन्द उत्पन्न होता है । वह उनकी पूजा करता है और वह स्वप्न में ही शीघ्र अविवर्त्ती ज्ञान का लाभ करके धारणी को प्राप्त कर लेता है ।

ज्ञात्वा च सो आशयु लोकनाथस्तं व्याकरोती पुरुषर्षभत्वे ।
कुलपुत्र त्वं पीह अनुत्तरं शिवं स्पृशिष्यसि ज्ञानमनागतेऽध्वनि ।।६५।।

लोकनाथ उसके आशय को समझकर उसके मनुष्यों में श्रेष्ठ बनने के विषय में भविष्यवाणी करते हैं और कहते हैं कि हे कुलपुत्र ! तुम भी इस संसार में भविष्यत्काल में मंगलमय एवं श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करोगे ।

तवापि क्षेत्रं विपुलं भविष्यति पर्षाश्च चत्वारि यथैव मह्यम् ।
श्रोष्यन्ति धर्मं विपुलं अनास्रवं सगौरवा भूत्व कृताञ्जली च ।।६६।।

मेरे ही समान तुम्हारा भी क्षेत्र विशाल होगा एवं तुम्हारी भी चार परिषदें होंगी । वे हाथ जोड़कर गौरवपूर्वक तुमसे इस अनास्रव एवं विशाल धर्म के उपदेश को सुनेंगी ।

पुनश्च सो पश्यति आत्मभावं भावेन्त धर्मं गिरिकन्दरेषु ।
भावित्व धर्मं च स्पृशित्व धर्म तां समाधि सो लब्धु जिनं च पश्यति ।।६७।।

पुनः, वह अपने-आपको गिरिकन्दराओं में धर्मों का चिन्तन करते हुए देखता है । धर्म का चिन्तन करके वह ध्याता का स्पर्श करता है । तदनन्तर, समाधि को प्राप्त करके वह सुगत के दर्शन करता है ।

सुवर्णवर्णं शतपुण्यलक्षणं सुपिनस्मि दृष्ट्वा च शृणोति धर्मम् ।
श्रुत्वा च तं पर्षदि संप्रकाशयी सुपिनो खु तस्यो अयमेवरूपः ।।६८।।

वह स्वप्न में भी सौ पवित्र लक्षणों से युक्त एवं सुवर्ण के समान सुन्दर शरीर को धारण करनेवाले तथागत को देखता है और उनसे धर्म के उपदेश को सुनता है एवं उसे चार परिषदों के सम्मुख प्रकाशित करता है । इस प्रकार का उसका यह स्वप्न है ।

स्वप्नेऽपि सर्वं प्रजहित्व राज्यमन्तःपुरं ज्ञातिगणं तथैव ।
अभिनिष्क्रमी सर्व जहित्व कामानुपसंक्रमी येन च बोधिमण्डम् ।।६९।।

स्वप्न में ही सम्पूर्ण राज्य, अन्तःपुर एवं ज्ञातिगण को छोड़कर एवं सभी कामों का त्याग करके अभिनिष्क्रमण करता है और जिस ओर बोधिमण्डप है, उस ओर प्रस्थान करता है ।

सिंहासने तत्र निषीदियानो द्रुमस्य मूले तहि बोधि अर्थिकः ।
दिवसान सप्तान तथात्ययेन अनुप्राप्स्यते ज्ञानु तथागतानाम् ।।७०।।

वहाँ बोधि की प्राप्ति के लिए उस बोधिवृक्ष के नीचे सिंहासन पर बैठा हुआ वह सात दिनों के व्यतीत होने पर तथागतों के ज्ञान को प्राप्त करेगा ।

बोधिं च प्राप्तस्ततु व्युत्थहित्वा प्रवर्तयी चक्रमनास्रवं हि।
चतुर्ण पर्षाण सधर्म देशयी अचिन्तिया कल्पसहस्रकोट्यः ।।७१।।

वह बोधि को प्राप्त करने के अनन्तर वहाँ से उठकर अनास्रव धर्मचक्र को प्रवर्त्तित करता है एवं अचिन्त्य सहस्र कोटि कल्पों तक उन चारों परिषदों के सम्मुख धर्म की देशना करता है।

प्रकाशयित्वा तहि धर्म नास्रवं निर्वापयित्वा बहुप्राणिकोट्यः।
निर्वायती हेतुक्षये व दीपः सुपिनो अयं सो भवतेवरूपः ।।७२।।

वहाँ पर उस अनास्रव धर्म का प्रकाशन करके तथा अनेक कोटि प्राणियों को निर्वाण प्राप्त कराके वह स्वयं तैल के समाप्त होने पर दीपक के समान निर्वाण को प्राप्त कर लेता है। उसका स्वप्न इस प्रकार का होता है।

बहु आनुशंसाश्च अनन्तकाश्च ये मञ्जुघोषा सद तस्य भोन्ति।
यो पश्चिमे कालि इमसग्रधर्मं सूत्रं प्रकाशेय मया सुदेशितम् ।।७३।।

हे मञ्जुघोष ! मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर जो व्यक्ति मेरे द्वारा बतलाये गये इस श्रेष्ठ अग्रधर्म-रूप सूत्र को प्रकाशित करेगा, वह अनेक एवं अनन्त अनुशंसाओं का भागी बनेगा।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये सुखविहारपरिवर्तो नाम त्रयोदशमः ।।१३।।

श्रेष्ठसद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपरियाय का तेरहवाँ सुखविहारपरिवर्त समाप्त हुआ।

बोधिसत्त्वपृथिवीविवरसमुद्गमपरिवर्त

अथ खल्वन्यलोकधात्वागतानां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानामष्टौ गङ्गानदीवालुकासमा बोधिसत्त्वा महासत्त्वास्तस्मिन् समये ततः पर्षन्मण्डलादभ्युत्थिता अभूवन्। तेऽञ्जलिं प्रगृह्य भगवतोऽभिमुखा भगवन्तं नमस्यमाना भगवन्तमेतदूचुः। स चेद् भगवानस्माकमनुजानीयाद् वयमपि भगवन्निमं धर्मपर्यायं तथागतस्य परिनिर्वृतस्य तस्यां सहायां लोकधातौ संप्रकाशयेम वाचयेम लेखयेम पूजयेम अस्मिंश्च धर्मपर्याये योगमापद्येमहि। तत् साधु भगवानस्माकमपीमं धर्मपर्यायमनुजानातु। अथ खलु भगवांस्तान् बोधिसत्त्वानेतदवोचत्। अलं कुलपुत्राः किं युष्माकमनेन कृत्येन। सन्ति कुलपुत्रा इह ममैवास्यां सहायां लोकधातौ षष्टिगङ्गानदीवालुकासमानि बोधिसत्त्वसहस्राण्येकस्य बोधिसत्त्वस्य परिवारः। एवंरूपाणां च बोधिसत्त्वानां षष्ट्येव गङ्गानदीवालुकासमानि बोधिसत्त्वसहस्राणि येषामेकैकस्य बोधिसत्त्वस्येयानेव परिवारो ये मम परिनिर्वृतस्य पश्चिमे काले पश्चिमे समय इमं धर्मपर्यायं धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति संप्रकाशयिष्यन्ति।

तदनन्तर, उस समय अन्य लोकधातुओं से आये हुए महासत्त्व बोधिसत्त्वों के उस परिषद्-मण्डल से आठ गंगा नदियों की वालुका के समान (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्व निकलकर खड़े हो गये। वे भी हाथ जोड़कर, भगवान् के सम्मुख खड़े होकर भगवान् को नमस्कार करते हुए भगवान् से यह बोले—हे भगवन्! यदि भगवान् हमें आज्ञा दें, तो हमलोग भी तथागत के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर इस धर्मपर्याय को उस सहा (नामक) लोकधातु में प्रकाशित करें, पढ़ें, लिखें, पूजें तथा इस धर्मपर्याय में पूर्ण योग लगायें। अतः, भगवान् हमलोगों को भी इस धर्मपर्याय को अच्छी तरह प्रकाशित करने की आज्ञा दें। तदनन्तर, भगवान् उन बोधिसत्त्वों से यह बोले—हे कुलपुत्रो! तुमलोगों को यह कार्य करने की आवश्यकता नहीं है। हे कुलपुत्रो! इस सहा (नामक) लोकधातु में मेरे एक बोधिसत्त्व का ही साठ गंगा नदियों की बालुका के समान (असंख्य) सहस्रों बोधिसत्त्वों का परिवार है। इसी प्रकार के बोधिसत्त्वों में प्रत्येक का साठ गंगा नदियों की बालुका के समान सहस्र बोधिसत्त्वों का परिवार है। उनमें से एक-एक बोधिसत्त्व का इतना बड़ा परिवार है, जो मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर अन्तिम काल में, अन्तिम समय में उस धर्मपर्याय को धारण करेंगे, पढ़ेंगे और प्रकाशित करेंगे।

समनन्तरभाषिता चेयं भगवता वाक्। अथेयं सहा लोकधातुः समन्तात् स्फुटिता विस्फुटिताभूत् तेभ्यश्च स्फोटान्तरेभ्यो बहूनि बोधिसत्त्वकोटीनयुतशत-

सहस्राण्युत्तिष्ठन्ते स्म । सुवर्णवर्णैः कायैर्द्वात्रिंशद्भिर्महापुरुषलक्षणैः समन्वागता येऽस्यां महापृथिव्यामध आकाशधातौ विहरन्ति स्म । इमामेव सहां लोकधातु निश्रित्य ते खल्विममेवंरूपं भगवतः शब्दं श्रुत्वा पृथिव्या अधः समुत्थिताः । येषामेकैको बोधिसत्त्वः षष्टिगङ्गानदीवालुकोपमबोधिसत्त्वपरिवारो गणी महागणी गणाचार्यः । तादृशानां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां गणीनां महागणीनां गणाचार्याणां षष्टिगङ्गानदीवालुकोपमानि बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि य इतः सहाया लोकधातोर्धरणीविवरेभ्यः समुन्मज्जन्ते स्म । कः पुनर्वादः पञ्चाशद्गङ्गानदीवालुकोपमबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादश्चत्वारिंशद्गङ्गानदीवलुकोपमबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादस्त्रिंशद्गङ्गानदीवालुकोपमबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादो विंशतिबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादो दशगङ्गानदीवालुकोपमबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादः पञ्चचतुस्त्रिद्विगङ्गानदीवालुकोपमबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वाद एकगङ्गानदीवालुकोपमबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादोऽर्धगङ्गानदीवालुकोपमबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादश्चतुर्भागषड्भागाष्टभागदशभागविंशतिभागत्रिंशद्भागचत्वारिंशद्भागपञ्चाशद्भागशतभागसहस्रभागशतसहस्रभागकोटीभागकोटीशतभागकोटीसहस्रभागकोटीशतसहस्रभागकोटीनयुतशतसहस्रभागगङ्गानदीवालुकोपमबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादो बहुबोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्रपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादः कोटीपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादः शतसहस्रपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादः सहस्रपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादः पञ्चशतपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादश्चतुःशतत्रिशतद्विशतपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादः एकशतपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादः पञ्चाशद्बोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । पेयालम् । कः पुनर्वादश्चत्वारिंशत्त्रिंशद्विंशतिदशपञ्चचतुस्त्रिद्विबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वाद आत्मद्वितीयानां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । न तेषां संख्या वा गणना वोपमा वोपनिषद्वोपलभ्यते य इह

सहायां लोकधातौ धरणीविवरेभ्यो बोधिसत्त्वा महासत्त्वाः समुन्मज्जन्ते स्म। ते चोन्मज्ज्योन्मज्ज्य येन स महारत्नस्तूपो वैहायसमन्तरीक्षे स्थितो यस्मिन् स भगवान् प्रभूतरत्नस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः परिनिर्वृतो भगवता शाक्यमुनिना तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन सार्धं सिंहासने निषण्णस्तेनोपसंक्रामन्ति स्म। उपसंक्रम्य चोभययोस्तथागतयोरर्हतोः सम्यक्संबुद्धयोः पादौ शिरोभिर्वन्दित्वा सर्वांश्च तान् भगवतः शाक्यमुनेस्तथागतस्यात्मीयान् निर्मितांस्तथागतविग्रहान् ये ते समन्ततो दशसु दिक्ष्वन्योन्यासु लोकधातुषु संनिपतिता नानारत्नवृक्षमूलेषु सिंहासनोपविष्टाः। तान् सर्वानभिवन्द्य नमस्कृत्य चानेकशतसहस्रकृत्वस्तांस्तथागतानर्हतः सम्यक्संबुद्धान् प्रदक्षिणीकृत्य नानाप्रकारैर्बोधिसत्त्वस्तवैरभिष्टुत्यैकान्ते तस्थुरञ्जलिं प्रगृह्य भगवन्तं शाक्यमुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं भगवन्तं च प्रभूतरत्नं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धमभिसंमुखं नमस्कुर्वन्ति स्म।

भगवान् के यह वचन कहने के अनन्तर ही यह सहा (नामक) लोकधातु चारों ओर से स्फुटित एवं विस्फुटित हो गई तथा उन दरारों के मध्य से अनेक कोटि नयुत शतसहस्र बोधिसत्त्व निकले। वे सुवर्ण के वर्णवाले एवं महापुरुषों के बत्तीस लक्षणों से युक्त शरीर से सम्पन्न थे। और, इस महापृथ्वी के नीचे आकाशधातु में इसी सहा (नामक) लोकधातु के निकट विहार करते थे। वे भगवान् के इस प्रकार के शब्द को सुनकर पृथ्वी के नीचे से निकले थे। उनमें प्रत्येक बोधिसत्त्व गणी, महागणी, एवं गणाचार्य था तथा साठ गंगा नदियों की बालुका के समान (असंख्य) बोधिसत्त्वों के परिवार से युक्त था। वे गणी, महागणी एवं गणाचार्य महासत्त्व बोधिसत्त्व आठ गंगा नदियों की बालुका के समान कोटि नयुत शतसहस्र की संख्या में उस सहा (नामक) लोकधातु में पृथ्वी के विवरों से निकले। पुनः, पचास गंगा नदियों की बालुका के समान (असंख्य) बोधिसत्त्वों के परिवार से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? पुनः, चालीस गंगा नदियों की बालुका के समान (असंख्य) बोधिसत्त्वों के परिवारों से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? पुनः, तीस गंगा नदियों की बालुका के समान (असंख्य) बोधिसत्त्वों के परिवार से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? पुनः, बीस गंगा नदियों की बालुका के समान (असंख्य) बोधिसत्त्वों के परिवार से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? पुनः, दस गंगा नदियों की बालुका के समान (असंख्य) बोधिसत्त्वों के परिवार से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? पुनः, पाँच, चार, तीन एवं दो गंगा नदियों की बालुका के समान (असंख्य) बोधिसत्त्वों के परिवार से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? पुनः, एक गंगा नदी की बालुका के समान (असंख्य) बोधिसत्त्वों के परिवार से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? पुनः, आधी गंगा नदी की बालुका

समान (असंख्य) बोधिसत्त्वों के परिवारों से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? पुनः, चतुर्थांश, षष्ठांश, अष्टमांश, दशमांश, विंशतितमांश, त्रिंशत्तमांश, चत्वारिंशत्तमांश, पंचाशत्तमांश, शतांश, सहस्रांश, शतसहस्रांश, कोट्यंश, कोटिशतांश, कोटिसहस्रांश, कोटिशतसहस्रांश एवं कोटि नयुत शतसहस्र गंगा नदी की वालुका के समान (असंख्य) बोधिसत्त्वों के परिवार से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? अनेक कोटि नयुत शतसहस्र बोधिसत्त्वों के परिवारों से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? कोटि परिवारों से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? शतसहस्र परिवारों से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? सहस्र परिवारों से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? पाँच सौ परिवारों से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? चार सौ, तीन, सौ एवं दो सौ परिवारों से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? एक सौ परिवारों से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? पचास परिवारों से युक्त महसत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? चालीस, तीस, बीस, दस, पाँच, चार, तीन एवं दो बोधिसत्त्व के परिवारों से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? एक-एक बोधिसत्त्व से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? विना परिवार के अकेले विचरण करनेवाले महासत्त्व बोधिसत्त्वों का तो कहना ही क्या? जो यहाँ सहा (नामक) लोकधातु में पृथ्वी के विवरों से निकले, उन महासत्त्व बोधिसत्त्वों की संख्या, गणना, उपमा या तुलना की वस्तु नहीं मिल सकती। वे निकल-निकलकर आकाश में स्थित, अन्तरिक्ष में स्थित, उस महास्तूप की ओर जाने लगे, जिसमें तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, परिनिर्वाण-प्राप्त भगवान् प्रभूतरत्न, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि के साथ सिंहासन पर बैठे थे। उन्होंने उन दोनों तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों के निकट जाकर चरणों में शिरसाभिवादन करके तथागत भगवान् शाक्यमुनि के उन सभी आत्मनिर्मित तथागत-विग्रहों की भी, जो यहाँ चारों ओर दसों दिशाओं में विभिन्न लोकधातुओं में एकत्र होकर विभिन्न रत्नवृक्षों के मूल में सिंहासनों पर बैठे थे, वन्दना की। उन्होंने उन सबकी अभिवन्दना एवं नमस्कृति करके उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों की अनेक शतसहस्र बार प्रदक्षिणा करके विभिन्न बोधिसत्त्वों की स्तुतियों से उनकी स्तुति की तथा हाथ जोड़कर एक किनारे खड़े होकर तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि एवं सम्मुख वर्त्तमान तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न को नमस्कार किया।

तेन खलु पुनः समयेन तेषां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां पृथिवीविवरेभ्य उन्मज्जतां तथागतांश्च वन्दमानानां नानाप्रकारैर्बोधिसत्त्वस्तवैरभिष्टुवतां परिपूर्णाः पञ्चाशदन्तरकल्पा गच्छन्ति स्म। तांश्च पञ्चाशदन्तरकल्पान् स भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तूष्णीमभूत्। ताश्चतस्रः पर्षदस्तानेव पञ्चाशदन्तरकल्पांस्तूष्णींभावेनावस्थिता अभूवन्। अथ खलु भगवांस्तथारूप-

मृद्ध्यभिसंस्कारमकरोद् यथा रूपेणर्द्ध्यभिसंस्कारेणाभिसंस्कृतेन ताश्चतस्रः पर्षदस्तमेवैकं पश्चाद् भक्तं संजानन्ते स्म। इमां च सहां लोकंधातुं शतसहस्राकाशपरिगृहीतां बोधिसत्त्वपरिपूर्णामद्राक्षुः। तस्य खलु पुनर्महतो बोधिसत्त्वगणस्य महतो बोधिसत्त्वराशेश्चत्वारो बोधिसत्त्वा महासत्त्वा ये प्रमुखा अभूवन् तद्यथा विशिष्टचारित्रश्च नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽनन्तचारित्रश्च नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वो विशुद्धचारित्रश्च नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वः सुप्रतिष्ठितचारित्रश्च नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वः। इमे चत्वारो बोधिसत्त्वा महासत्त्वास्तस्य महतो बोधिसत्त्वगणस्य महतो बोधिसत्त्वराशेः प्रमुखा अभूवन्। अथ खलु चत्वारो बोधिसत्त्वा महासत्त्वास्तस्य महतो बोधिसत्त्वगणस्य महतो बोधिसत्त्वराशेरग्रतः स्थित्वा भगवतोऽभिमुखमञ्जलिं प्रगृह्य भगवन्तमेतदूचुः। कच्चिद् भगवतोऽल्पाबाधता मन्दग्लानता सुखसंस्पर्शविहारता च। कच्चिद् भगवन् सत्त्वाः स्वाकाराः सुविज्ञापकाः सुविनेयाः सुविशोधकाः। मा हैव भगवतः खेदमुत्पादयन्ति।

पुनः, उस समय पृथ्वी के विवर से निकलते हुए एवं नाना प्रकार की बोधिसत्त्वों की स्तुतियों से उनकी स्तुति करते हुए एवं तथागतों की वन्दना करते हुए उन महासत्त्व बोधिसत्त्वों को पूरे पचास अन्तरकल्प व्यतीत हो गये। उन पचास अन्तरकल्पों तक वे तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि मौन थे। वे चारों परिषदें भी उन पचास अन्तरकल्पों तक मौन धारण करके बैठी रहीं। तब भगवान् ने इस प्रकार की अलौकिक शक्ति दिखलाई, जिस अलौकिक शक्ति के प्रदर्शन से उन चारों परिषदों को ऐसा लगा, जैसे दोपहर से अधिक का समय नहीं बीता है। उन्होंने इस सहा (नामक) लोकधातु को शतसहस्र लोकों से युक्त एवं बोधिसत्त्वों से पूर्ण देखा। पुनः, उस महान् बोधिसत्त्वगण में, उस महान् बोधिसत्त्व की राशि में, चार प्रमुख महासत्त्व बोधिसत्त्व थे। यथा—विशिष्टचारित्र नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व, अनन्तचारित्र नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व, विशुद्धचारित्र नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व एवं सुप्रतिष्ठितचारित्र नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व। ये चारों महासत्त्व बोधिसत्त्व उस महान् बोधिसत्त्व के गण के, उस महान् बोधिसत्त्वों के समूह के प्रमुख थे। वे चारों महासत्त्व बोधिसत्त्व उस महान् बोधिसत्त्व के गण तथा महान् बोधिसत्त्व की राशि के सामने खड़े होकर भगवान् की ओर हाथ जोड़कर भगवान् से यह बोले—भगवन्! स्वस्थ तो हैं, नीरोग तो हैं, एवं सुखपूर्वक विचरण तो करते हैं? हे भगवन्! क्या प्राणी सुन्दर आकार-वाले, सुविज्ञापक, सुविनय एवं सुविशोधक तो हैं? वे भगवान् को किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं देते?

अथ खलु ते चत्वारो बोधिसत्त्वा महासत्त्वा भगवन्तमाभ्यां गाथाभ्यामध्यभाषन्त।

तदनन्तर, वे चारों महासत्त्व बोधिसत्त्व भगवान् से इन दो गाथाओं के द्वारा बोले—

कच्चित् सुखं विहरसि लोकनाथ प्रभंकर।
आबाधविप्रमुक्तोऽसि स्पर्शः काये तवानघ ॥१॥

हे लोकनाथ ! हे प्रभंकर ! आप सुखपूर्वक विहार तो करते हैं ? हे अनघ ! आप सभी बाधाओं से पूर्णरूपेण मुक्त तो हैं न ? आपके शरीर में और किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं है ?

स्वाकाराश्चैव ते सत्त्वाः सुविनेयाः सुशोधकाः।
मा हैव खेदं जनयन्ति लोकनाथस्य भाषतः ॥२॥

वे सभी प्राणी सुन्दर आकारवाले, सुविनेय एवं सुशोधक तो हैं ? जिस समय लोकनाथ भाषण देते हैं, उस समय वे किसी प्रकार का उपद्रव तो नहीं करते होंगे ?

अथ खलु भगवांस्तस्य महतो बोधिसत्त्वगणस्य महतो बोधिसत्त्वराशेः प्रमुखांश्चतुरो बोधिसत्त्वान् महासत्त्वानेतदवोचत्। एवमेतत् कुलपुत्रा एवमेतत्। सुखसंस्पर्शविहारोऽस्म्यल्पाबाधो मन्दग्लानः स्वाकाराश्च ममैव ते सत्त्वाः सुविज्ञापकाः सुविनेयाः सुविशोधका न च मे खेदं जनयन्ति विशोध्यमानाः। तत् कस्य हेतोः। ममैव ह्येते कुलपुत्राः सत्त्वाः पौर्वकेषु सम्यक् संबुद्धेषु कृतपरिकर्माणो दर्शनादेव हि कुलपुत्राः श्रवणाच्च ममाधिमुच्यन्ते बुद्धज्ञानमवतरन्त्यवगाहन्ते। यत्र येऽपि श्रावकभूमौ वा प्रत्येकबुद्धभूमौ वा कृतपरिचर्या अभूवंस्तेऽपि मयैवैतर्हि बुद्धधर्मज्ञानमवतारिता संश्राविताश्च परमार्थम्।

तदनन्तर, भगवान् उस महान् बोधिसत्त्वगण एवं महान् बोधिसत्त्वराशि के प्रमुख इन चार महासत्त्व बोधिसत्त्वों से यह बोले—हे कुलपुत्रो ! सर्वथा ऐसा ही है, सर्वथा ऐसा ही है। मैं सुखपूर्वक विहार करता हूँ, स्वस्थ हूँ और नीरोग हूँ तथा मेरे सभी प्राणी सुन्दर आकारवाले सुविज्ञापक, सुविनेय एवं सुविशोधक हैं तथा मुझे उनको शुद्ध करने में किसी तरह का कष्ट नहीं होता। ऐसा क्यों? क्योंकि, हे कुलपुत्रो ! मेरे इन प्राणियों ने पूर्वजन्म में सम्यक् सम्बुद्ध की अवस्था में अपने कार्यों को पूरा कर लिया है तथा ये मेरे दर्शन और मेरे उपदेश के श्रवण से ही अधिमुक्त हो जाते हैं और बुद्धज्ञान में अवतारण एवं अवगाहन प्राप्त कर लेते हैं। जिन्होंने श्रावक की अवस्था में अथवा प्रत्येकबुद्ध की अवस्था में अपनी चर्चा पूर्ण कर ली थी उनको भी मैंने इसी प्रकार बुद्धधर्म का ज्ञान दिया है एवं परमार्थ को सुनाया है।

अथ खलु ते बोधिसत्त्वा महासत्त्वास्तस्यां वेलायामिमे गाथे अभाषन्त।

तदनन्तर, वे महासत्त्व बोधिसत्त्व उस समय ये गाथाएँ बोले—

साधु साधु महावीर अनुमोदामहे वयम् ।
स्वाकारा येन ते सत्त्वाः सुविनेयाः सुशोधकाः ॥३॥

हे महावीर ! यह बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है । हमलोग अत्यन्त प्रसन्न हैं कि वे सभी प्राणी सुन्दर आकारवाले, सुविनेय एवं सुशोधक हैं ।

ये चेदं ज्ञानगम्भीरं श्रृण्वन्ति तव नायक ।
श्रुत्वा च अधिमुच्यन्ते उत्तरन्ति च नायक ॥४॥

हे नायक ! जो इस गम्भीर ज्ञान को सुनते हैं, वे ह नायक ! इसे सुनकर अधिमुक्त हो जाते हैं एवं बाधाओं को पार कर जाते हैं ।

एवमुक्ते भगवांस्तस्य महतो बोधिसत्त्वगणस्य महतो बोधिसत्त्वराशेः प्रमुखेभ्यश्चतुर्भ्यो बोधिसत्त्वभ्यो महासत्त्वेभ्यः साधुकारमदात् । साधु साधु कुलपुत्रा ये यूयं तथागतमभिनन्दथेति ।

ऐसा कहने पर भगवान् ने इस महान् बोधिसत्त्वगण एवं महान् बोधिसत्त्वराशि के प्रमुख उन चारों महासत्त्व बोधिसत्त्वों का साधुवाद किया । हे कुलपुत्रो ! तुमलोग धन्य हो जो तथागत का अभिनन्दन करते हो ।

तेन खलु पुनः समयेन मैत्रेयस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्यान्येषां चाष्टानां गङ्गानदीवालुकोपमानां बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणामेतदभवत् । अदृष्टपूर्वोऽयमस्माभिर्महाबोधिसत्त्वगणो महाबोधिसत्त्वराशिरश्रुतपूर्वश्च योऽयं पृथिवीविवरेभ्यः समुन्मज्ज्य भगवतः पुरतः स्थित्वा भगवन्तं सत्कुर्वन्ति गुरुकुर्वन्ति मानयन्ति पूजयन्ति भगवन्तं च प्रतिसंमोदन्ते। कुतः खल्विमे बोधिसत्त्वा महासत्त्वा आगता इति ।

पुनः, उस समय महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय के तथा आठ गंगा नदियों की बालुका के समान कोटि नयुत शतसहस्र अन्य बोधिसत्त्वों के मन में ऐसा विचार हुआ। हमलोगों ने इस महान् बोधिसत्त्वगण महान् बोधिसत्त्वराशि के बारे में न कभी सुना है और न उसे कभी देखा है; जो यह गण पृथ्वी विवर से निकलकर भगवान् के सामने खड़ा होकर भगवान् का आदर, सत्कार, सम्मान एवं पूजन कर रहा है तथा भगवान् को प्रसन्न कर रहा है । ये महासत्त्व बोधिसत्त्व कहाँ से आ गये ?

अथ खलु मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्व आत्मना विचिकित्सां कथंकथां विदित्वा तेषां गङ्गानदीवालुकोपमानां बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणां चेतसैव चेतःपरिवितर्कमाज्ञाय तस्यां वेलायामञ्जलिं प्रगृह्य भगवन्तं गाथाभिर्गीतेनैतमेवार्थं परिपृच्छति स्म ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय ने अपने अन्दर की विचिकित्सा एवं कथंकथा को जानकर तथा गंगा नदी की बालुका के समान उन कोटि नयुत शतसहस्र बोधिसत्त्वों के चित्त के वितर्कों का भी अपने मन से अनुमान लगाकर उस अवसर पर हाथ जोड़ भगवान् से इन गाथाओं के द्वारा इसी के विषय में पूछा—

बहुसहस्रा नयुताः कोटीयो च अनन्तकाः
अपूर्वा बोधिसत्त्वानामाख्याहि द्विपदोत्तम ।।५।।

यहाँ अनेक सहस्रकोटि नयुत, अनन्त एवं अदृष्टपूर्व बोधिसत्त्व उपस्थित हैं। हे द्विपदोत्तम! इनके विषय में बतलाइए।

कुतो इमे कथं वापि आगच्छन्ति महर्द्धिकाः
महात्मभावा रूपेण कुत एतेष आगमः ।।६।।

महती ऋद्धि से सम्पन्न ये कहाँ से एवं किस प्रकार आये हैं। ये विशाल शरीर के धारक हैं एवं रूपसम्पन्न हैं। इनका आगमन कहाँ से हुआ है?

धृतिमन्ताश्चिमे सर्वे स्मृतिमन्तो महर्षयः।
प्रियदर्शनाश्च रूपेण कुत एतेष आगमः ।।७।।

ये सभी धृतिमान्, स्मृतिमान् तथा महर्षि हैं एवं देखने में सुन्दर हैं। इनका आगमन कहाँ से हुआ है?

एकैकस्य च लोकेन्द्र बोधिसत्त्वस्य विज्ञिनः।
अप्रमेयपरिवारो यथा गङ्गाय वालिकाः ।।८।।

हे लोकेन्द्र! इन एक-एक विद्वान् बोधिसत्त्व का गंगा की वालुका के समान अप्रमेय परिवार है।

गङ्गावालिकसमा षष्टि परिपूर्णा यशस्विनः।
परिवारो बोधिसत्त्वस्य सर्वे बोधाय प्रस्थिताः ।।९।।

इन एक-एक यशस्वी बोधिसत्त्व के साठ गंगा नदी की सम्पूर्ण वालुका के समान (असंख्य) परिवार हैं। वे सभी बोधिसत्त्व की प्राप्ति के लिए प्रस्थित हैं।

एवंरूपाण वीराणां पर्षवन्तान तायिनाम्।
षष्टिरेव प्रमाणेन गङ्गावालिकया इमे ।।१०।।

इस प्रकार के इन परिषदों से सम्पन्न एवं शक्तिशाली वीरों (बोधिसत्त्वों) का परिवार संख्या में साठ गंगा नदी की वालुका के समान है।

अतो बहुतराश्चान्ये परिवारैरनन्तकैः।
पञ्चाशतीय गङ्गाय चत्वारिंशच्च त्रिशति ।।११।।

संख्या में इनसे भी अधिक अन्य बोधिसत्त्व हैं, जिनके पचास, चालीस या तीस गंगा नदी की बालुका के समान असंख्य परिवार हैं।

समो विंशतिगङ्गाया परिवारः समन्ततः ।
अतो बहुतराश्चान्ये येषां दश च पञ्च च ।।१२।।

इनके चारों ओर बीस गंगा नदी की बालुका के समान असंख्य परिवार ह । संख्या में इससे भी अधिक हैं । और भी, अन्य बोधिसत्त्व है, जिनके परिवार दस या पाँच गंगा नदी की बालुका के समान हैं ?

एकैकस्य परीवारो बुद्धपुत्रस्य तायिनः ।
कुतोऽयमीदृशी पर्षदागताद्य विनायक ।।१३।।

इस प्रकार,प्रत्येक शक्तिशाली बुद्धपुत्र का ऐसा ही विशाल परिवार हैं। किन्तु, हे विनायक ! आज यह इतनी विशाल परिषद् कहाँ से आ गई ?

चत्वारि त्रीणि द्वे चापि गङ्गावालिकया समाः ।
एकैकस्य परीवारा येऽनुशिक्षासहायकाः ।।१४।।

कुछ अन्य बोधिसत्त्व ऐसे हैं, जिनके शिष्यों, सहायकों एवं परिवार की संख्या चार तीन या दो गंगा नदी की बालुका के समान है ।

अतो बहुतराश्चान्ये गणना येष्वनन्तिका ।
कल्पकोटीसहस्रेषु उपमेतुं न शक्नुयात् ।।१५।।

संख्या में कुछ इससे भी अधिक बोधिसत्त्व हैं, जिनके परिवार अनन्त हैं। उनकी गणना करना कोटि सहस्र कल्पों में भी सम्भव नहीं है।

अर्धगङ्गा त्रिभागश्च दशविंशतिभागिकः ।
परिवारोऽथ वीराणां बोधिसत्त्वान तायिनाम् ।।१६।।

गंगा के अर्द्धांश, गंगा के तृतीयांश, गंगा के दशमांश एवं गंगा के विंशतितमांश की बालुका के समान उन वीर एवं शक्तिवाली बोधिसत्त्वों के परिवार भी असंख्य हैं ।

अतो बहुतराश्चान्ये प्रमाणैषां न विद्यते ।
एकैकं गणयन्तेन कल्पकोटीशतैरपि ।।१७।।

इससे भी असंख्य अन्य बोधिसत्त्वों के परिवार हैं । उनमें से एक-एक की कोटिशत कल्पों तक गिनती करते रहने पर भी पार पाना सम्भव नहीं है ।

अतो बहुतराश्चान्ये परिवारैरनन्तकैः ।
कोटी कोटी च कोटी च अर्धकोटी तथैव च ।।१८।।

संख्या में इससे भी अधिक बोधिसत्त्व हैं, जिनके परिवारों की संख्या कोटि, कोटि एवं कोटि तथा अर्द्धकोटि है ।

गणनाव्यतिवृत्ताश्च अन्ये भूयो महर्षिणाम् ।
बोधिसत्त्वा महाप्रज्ञाः स्थिताः सर्वे सगौरवाः ।।१९।।

पुनः, अन्य महर्षियों के परिवार तो गणना से सर्वथा परे हैं । वे सभी बोधिसत्त्व महती प्रज्ञा से सम्पन्न हैं एवं गौरवपूर्ण ढंग से वर्त्तमान हैं ।

परिवारसहस्रं च शतपञ्चाशदेव च ।
गणना नास्ति एतेषां कल्पकोटीशतैरपि ।।२०।।

इनका सहस्रों एवं पाँच सौ व्यक्तियों का विशाल परिवार है और इनकी कोटिशत कल्पों में भी गणना करना सम्भव नहीं है ।

विंशतिर्द्दश पञ्चाथ चत्वारि त्रीणि द्वे तथा ।
परिवारोऽथ वीराणां गणनैषां न विद्यते ।।२१।।

इन वीरों का परिवार बीस, दस, पाँच, चार, तीन एवं दो व्यक्तियों का है । उनकी गणना करना सम्भव नहीं है ।

चरन्त्येकात्मका ये च शान्ति विदन्ति चैककाः ।
गणना तेष नैवास्ति ये इहाद्य समागताः ।।२२।।

जो अकेले विचरण करते हैं एवं अकेले ही शान्ति का अनुभव करते हैं, वे भी यहा इतनी संख्या में उपस्थित हैं कि उनकी गणना करना सम्भव नहीं है ।

गङ्गावालिकासमान् कल्पान् गणयेत यदी नरः ।
शलाकां गृह्य हस्तेन पर्यन्तं नैव सो लभेत् ।।२३।।

यदि कोई व्यक्ति हाथ में शलाका लेकर गंगा की बालुका के समान (असंख्य) कल्पों तक इनकी गिनती करता रहे,तो वह भी इनका अन्त नहीं पा सकता ।

महात्मनां च सर्वेषां वीर्यवन्तान तायिनाम् ।
बोधिसत्त्वान वीराणां कुत एतेष संभवः ।।२४।।

महात्मा, वीर्यवान्, शक्तिशाली एवं वीर इन सभी बोधिसत्त्वों का कहाँ से आगमन हुआ है ?

केनैषां देशितो धर्मः केन बोधीय स्थापिताः ।
रोचन्ति शासनं कस्य कस्य शासनधारकाः ।।२५।।

किसने इनको धर्म की देशना की है, किसने इन्हें बोधि में स्थापित किया है, ये किसके शासन को पसन्द करते हैं, और ये किसकी आज्ञा को धारण करते हैं ?

भित्त्वा हिं पृथिवीं सर्वां समन्तेन चतुर्दिशम् ।
उन्मज्जन्ति महाप्रज्ञा ऋद्धिमन्ता विचक्षणाः ।।२६।।

ये महाप्राज्ञ ऋद्धिमान् एवं विचक्षण बोधिसत्त्व सम्पूर्ण पृथ्वी का भेदन करके सभी ओर चारों दिशाओं से बाहर निकल रहे हैं ।

जर्जरा लोकधात्वेयं समन्तेन कृता मुने ।
उन्मज्जमानैरेतैर्हि बोधिसत्त्वैर्विशारदैः ।।२७।।

हे मुने ! पृथ्वी से निकलनेवाले इन चतुर्बोधिसत्त्वों ने इस सम्पूर्ण लोकधातु को चारों ओर से जर्जर बना दिया है ।

न ह्येते जातु अस्माभिर्दृष्टपूर्वाः कदाचन ।
आख्याहि नो तस्य नाम लोकधातोर्विनायक ।।२८।।

हमलोगों ने इन्हें पूर्वकाल में कभी नहीं देखा है । हे विनायक ! उस लोकधातु का नाम हमलोगों को बतलाइए ।

दशादिशा हि अस्माभिरञ्चितायो पुनः पुनः ।
न च दृष्टा इमेऽस्माभिर्बोधिसत्त्वाः कदाचन ।।२९।।

हमने बार-बार दसों दिशाओं में भ्रमण किया । किन्तु, फिर भी हमलोग इन बोधिसत्त्वों को कभी नहीं देख सकते हैं ।

दृष्टो न जातुरस्माभिरेकोऽपि तनयस्तव ।
इमेऽद्य सहसा दृष्टा आख्याहि चरितं मुने ।।३०।।

आपके एक भी पुत्र को हमने आजतक कभी नहीं देखा है, किन्तु आज ये सभी सहसा दिखाई पड़ रहे हैं । हे मुने ! उनके चरित्र का वर्णन कीजिए ।

बोधिसत्त्वसहस्राणि शतानि नयुतानि च ।
सर्वे कौतूहलप्राप्ताः पश्यन्ति द्विपदोत्तमम् ।।३१।।

सभी नयुत शतसहस्र बोधिसत्त्व कौतूहल को प्राप्त होकर मनुष्यों में श्रेष्ठ (आपको) देख रहे हैं ।

व्याकुरुष्व महावीर अप्रमेय निरोपधे ।
कुत एन्ति इमे शूरा बोधिसत्त्वा विशारदाः ।।३२।।

हे असीम एवं अप्रमेय महावीर ! हमें स्पष्ट बतलाइए कि ये चतुर एवं शूर बोधिसत्त्व कहाँ से आये हैं ।

तेन खलु पुनः समयेन ये ते तथागता अर्हन्तः सम्यक् संबुद्धा अन्येभ्यो लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेभ्योऽभ्यागता भगवतः शाक्यमुनेस्तथागतस्य

निर्मिता येऽन्येषु लोकधातुषु सत्त्वानां धर्मं देशयन्ति स्म ये भगवतः शाक्यमुनेस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य समन्तादष्टभ्यो दिग्भ्यो रत्नवृक्षमूलेषु महा रत्नसिंहासनेषूपविष्टाः पर्यङ्कबद्धाः तेषां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानां ये स्वकस्वका उपस्थायकास्तेऽपि तं महान्तं बोधिसत्त्वगणं बोधिसत्त्वराशिं दृष्ट्वा समन्तात् पृथिवीविवरेभ्य उन्मज्जन्तमाकाशधातुप्रतिष्ठितं तेऽप्याश्चर्यप्राप्तास्तान् स्वान् स्वांस्तथागतानेतदूचुः। कुतो भगवन्नियन्तो बोधिसत्त्वा महा सत्त्वा आगच्छन्त्यप्रमेया असंख्येयाः। एवमुक्तास्ते तथागता अर्हन्तः सम्यक् संबुद्धास्तान् स्वान् स्वानुपस्थायकानेतदूचुः। आगमयध्वं यूयं कुलपुत्रा मुहूर्तम्। एष मैत्रेयो नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवतः शाक्यमुनेरनतन्रं व्याकृतोऽनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ। स एतं भगवन्तं शाक्यमुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक् संबुद्धमेतमर्थं परिपृच्छत्येष च भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो व्याकरिष्यति। ततो यूयं श्रोष्यथेति।

उस समय, जो तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध अन्य कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुओं से आये थे, जो तथागत भगवान् शाक्यमुनि के द्वारा निर्मित थे, जो अन्य लोकधातुओं में प्राणियों को धर्म की देशना करते थे तथा जो आठों दिशाओं से आकर तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि के चतुर्दिक् रत्नवृक्षों के मूल में, रत्ननिर्मित विशाल सिंहासनों पर पर्यंकासन की मुद्रा में बैठे थे, उन तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों के जो अपने-अपने अनुचर थे, वे भी उस महान् बोधिसत्त्वगण एवं बोधिसत्त्वराशि को चारों तरफ पृथ्वी के विवरों से निकलकर आकाश में प्रतिष्ठित होते हुए देखकर अत्यधिक आश्चर्य को प्राप्त हुए तथा इन अपने-अपने तथागतों से यह बोले—हे भगवन्! इतने अप्रमेय एवं असंख्येय महासत्त्व बोधिसत्त्व कहाँ से आ रहे हैं? ऐसा कहने पर वे तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध उन अपने-अपने अनुचरों से यह बोले—हे कुलपुत्रो! तुमलोग एक क्षण के लिए आओ। यह मैत्रेय नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व है। जो भगवान् शाक्यमुनि के अनन्तर श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि का उत्तराधिकारी बताया गया है, वह इन तथागत, अर्हत्, सम्यक्, सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि से यही बात पूछ रहा है और ये अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान्, तथागत इसका विवेचन करेंगे। उनसे तुमलोग सुनोगे।

अथ खलु भगवान् मैत्रेयं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमामन्त्रयते स्म। साधु साध्वजित। उदारमेतदजित स्थानं यत्त्वं मां परिपृच्छसि। अथ खलु भगवान् सर्वावन्तं बोधिसत्त्वगणमामन्त्रयते स्म। तेन हि कुलपुत्राः सर्व एव प्रयता भवध्वं सुसंनद्धा दृढस्थामाश्च भवध्वं सर्वश्चायं बोधिसत्त्वगणः। तथागतज्ञानदर्शनं कुलपुत्रास्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः सांप्रतं संप्रकाशयति तथागतवृषभित तथागतकर्म तथागतविक्रीडितं तथागतविजृम्भितं तथागतपराक्रममिति।

तब भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय से बोले---हे अजित ! तुम धन्य हो । हे अजित ! तुम उचित कर रहे हो, जो तुम इस अवसर पर मुझसे पूछ रहे हो । तब भगवान् सारे बोधिसत्त्वगण से बोले---अतः, हे कुलपुत्रो ! तुम सभी एकाग्र, सुसन्नद्ध एवं दृढस्थाम हो जाओ तथा बोधिसत्त्वगण भी ऐसा हो जायें । हे कुलपुत्रो ! इस समय तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध तथागतज्ञानदर्शन, तथागतवृषभिता, तथागत-कर्म, तथागतविक्रीडित, तथागतविजृम्भित एवं तथागतपराक्रम को पूर्ण रूप से प्रकाशित करने जा रहे हैं ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, उस समय भगवान् ने ये गाथाएँ कहीं---

प्रयता भवध्वं कुलपुत्र सर्वे इमां प्रमुञ्चामि गिरामनन्यथाम् ।
मा खू विषादं कुरुथेह पण्डिता अचिन्तियं ज्ञानु तथागतानाम् ।।३३।।

हे कुलपुत्र ! तुम सभी सावधान हो जाओ । मैं अन्यथा न होनेवाला वचन कहने जा रहा हूँ । हे पण्डितो ! तुमलोग इसके विषय में विवाद मत करो; क्योंकि तथागतों का ज्ञान तर्कों से परे है ।

धृतिमन्त भूत्वा स्मृतिमन्त सर्वे समाहिताः सर्वि स्थिता भवध्वम् ।
अपूर्वधर्मो श्रुणितव्यु अद्य आश्चर्यभूतो हि तथागतानाम् ।।३४।।

तुम सभी धैर्यवान्, स्मृतिमान् एवं सावधान होकर स्थित हो जाओ । आज तुम लोग तथागतों के द्वारा कहे गये । आश्चर्यजनक एवं अपूर्व धर्म को सुनोगे ।

विचिकित्स मा जातु कुरुध्व सर्वे अहं हि युष्मान् परिसंस्थपेमि ।
अनन्यथावादिरहं विनायको ज्ञानं च मे यस्य न काचि संख्या ।।३५।।

तुम सब किसी प्रकार की विचिकित्सा मत करना । यतः, मैं आज तुमलोगों को उसमें परिसंस्थापित करूँगा । मैं सबका नायक हूँ और अन्यथा होनेवाला वचन नहीं बोलता । मेरा ज्ञान ऐसा है, जिसकी गणना नहीं हो सकती ।

गम्भीरधर्माः सुगतेन बुद्धा अतर्किया येष प्रमाणु नास्ति ।
तानद्यहं धर्म प्रकाशयिष्ये शृणोथ मे यादृशका यथा च ते ।।३६।।

सुगत के द्वारा जाने गये धर्म गम्भीर हैं, अतर्क्य हैं एवं बुद्धि से परे हैं । उन धर्मों को आज मैं तुम्हारे सम्मुख वास्तविक रूप में प्रकाशित करता हूँ । उन्हें सुनो ।

अथ खलु भगवानिमा गाथा भाषित्वा तस्यां वेलायां मैत्रेयं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमामन्त्रयते स्म । आरोचयामि तेऽजित प्रतिवेदयामि । य इमेऽजित बोधिसत्त्वा अप्रमेया असंख्येया अचिन्त्या अतुल्या अगणनीया ये युष्माभि-

रदृष्टपूर्वा य एतर्हि पृथिवीविवरेभ्यो निष्क्रान्ताः । मयैतेऽजित सर्वे बोधिसत्त्वा महासत्त्वा अस्यां सहायां लोकधातावनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुध्य समादापिताः समुत्तेजिताः संप्रहर्षिता अनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ परिणामिताः । मया चैते कुलपुत्रा अस्मिन् बोधिसत्त्वधर्मे परिपाचिताः प्रतिष्ठापिता निवेशिताः परिसंस्थापिता अवतारिताः परिबोधिताः परिशोधिताः । एते चाजित बोधिसत्त्वा महासत्त्वा अस्यां सहायां लोकधातावधस्तादाकाशधातुपरिग्रहे प्रतिवसन्ति । स्वाध्यायोद्देशचिन्तायोनिशोमनसिकारप्रवृत्ता एते कुलपुत्रा असङ्गणिकारामा असंसर्गाभिरता अनिक्षिप्तधुरा आरब्धवीर्याः । एतेऽजित कुलपुत्रा विवेकारामा विवेकाभिरताः । नैते कुलपुत्रा देवमनुष्या-नुपनिश्राय विहरन्त्यसंसर्गचर्याभिरताः । एते कुलपुत्रा धर्मारामाभिरता बुद्धज्ञानेऽभियुक्ताः ।

तदनन्तर, भगवान् इन गाथाओं को कहकर उस समय महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय से बोले—हे अजित ! मैं तुमसे कहता हूँ, निवेदन करता हूँ । हे अजित ! जो ये अप्रमेय, असंख्य, अचिन्त्य, अतुल्य एवं अगणनीय बोधिसत्त्व, जिन्हें तुमने पहले कभी नहीं देखा है और जो अभी इस प्रकार पृथ्वी के विवरों से निकले हैं, हे अजित ! इन सभी महासत्त्व बोधिसत्त्वों को मैंने श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त कराके इसी सहा (नामक) लोकधातु में समादापित, समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित किया है एवं श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में परिपक्व बनाया है । हे कुलपुत्रो ! मैंने ही इन्हें इस बोधिसत्त्व-धर्म में परिचालित प्रतिष्ठापित, निवेशित, परिसंस्थापित, अवतारित, परिबोधित एवं परिशोधित किया है । हे अजित ! ये महासत्त्व बोधिसत्त्व इस सहा (नामक) लोकधातु के नीचे स्थित आकाशधातुपरिग्रह में निवास करते हैं । ये कुलपुत्र स्वाध्याय एवं अपने पाठ स्मरण करने की चिन्ता में लगे हुए उसे पूर्णरूप से समझने में प्रवृत्त, संगणिकों से विरक्त एवं जनसंसर्ग से दूर रहनेवाले हैं । वे अपने कर्त्तव्य को निबाहते हैं और परिश्रमपूर्वक कार्य करते हैं । हे अजित ! ये कुलपुत्र विवेक में आनन्द लेनेवाले एवं विवेक में ही रुचि रखनेवाले हैं । ये कुलपुत्र जनसंसर्ग में रुचि नहीं रखते । अतः, ये मनुष्यों एवं देवों के सान्निध्य में नहीं रहते । ये कुलपुत्र धर्म के आनन्द में ही मग्न रहते हैं एवं बुद्धज्ञान में अभियोग रखते हैं ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं—

ये बोधिसत्त्वा इमि अप्रमेया अचिन्तिया येष प्रमाणु नास्ति ।
ऋद्धीय प्रज्ञाय श्रुतेनुपेता बहुकल्पकोटीचरिताश्च ज्ञाने ॥३७॥

ये सभी अप्रमेय एवं अचिन्त्य बोधिसत्त्व, जिनकी गणना नहीं की जा सकती, प्रज्ञा एवं ज्ञान से सम्पन्न हैं एवं इन्होंने अनेक कोटि कल्पों तक ज्ञान का आचरण किया है ।

परिपाचिताः सर्वि मयैति बोधये ममेव क्षेत्रस्मि वसन्ति चैते ।
परिपाचिताः सर्वि मयैव एते ममैव पुत्राश्चिमि बोधिसत्त्वाः ॥३८॥

इन सबको मैंने ही बोधिप्राप्ति के लिए परिपक्व बनाया है और ये मेरे ही क्षेत्र में रहते हैं। ये सभी मेरे ही द्वारा परिपक्व बनाये गये हैं और ये सभी बोधिसत्त्व मेरे ही पुत्र हैं ।

सर्वे ति आरण्यधुताभियुक्ताः संसर्गभूमिं सद वर्जयन्ति ।
असङ्गचारी च ममैति पुत्रा ममोत्तमां चर्यनुशिक्षमाणाः ॥३९॥

ये सभी वन में निवास करनेवाले, मुनि के आचरण में अभियुक्त हैं तथा सदा जनसंसर्ग से दूर रहनेवाले हैं। मेरे ये पुत्र आसक्ति से दूर रहकर आचरण करते हैं तथा मेरी श्रेष्ठ चर्या का ही अनुसरण करते हैं ।

वसन्ति आकाशपरिग्रहेऽस्मिन् क्षेत्रस्य हेष्टा परिचारि वीराः ।
समुदानयन्ता इममग्रबोधिं उद्युक्त रात्रिंदिवमप्रमत्ताः ॥४०॥

ये वीर इस क्षेत्र के नीचे वर्तमान आकाशधातु में निवास करते हैं तथा वे रात-दिन सावधानी के साथ इस अग्रबोधि को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं ।

आरब्धवीर्या स्मृतिमन्त सर्वे प्रज्ञाबलस्मिन् स्थित अप्रमेये ।
विशारदा धर्मु कथन्ति चैते प्रभास्वरा पुत्र ममैति सर्वे ॥४१॥

ये सभी स्मृतिमान् हैं, प्रयत्नशील हैं एवं अप्रमेय प्रज्ञाबल में स्थित हैं । ये चतुर हैं एवं धर्म की चर्या करते रहते हैं । ये सभी मेरे तेजस्वी पुत्र हैं ।

मया च प्राप्य इममग्रबोधिं नगरे गयायां द्रुममूलि तत्र ।
अनुत्तरं वर्तिय धर्मचक्रं परिपाचिताः सर्वि इहाग्रबोधौ ॥४२॥

मैंने गया नामक नगर में जाकर वहाँ वृक्ष के नीचे बैठकर इस अग्रबोधि को प्राप्त करके श्रेष्ठधर्म को प्रवर्त्तित किया है और इन सबको इस अग्रबोधि में परिपक्व बनाया है ।

अनास्रवा भूत इयं मि वाचा श्रुणित्व सर्वे मम श्रद्दधध्वम् ।
एवं चिरं प्राप्त मयाग्रबोधि परिपाचिताश्चैति मयैव सर्वे ॥४३॥

मेरा यह वचन पापों से रहित एवं सत्य है। इसे सुनकर तुम सभी मुझमें श्रद्धा करो। इस प्रकार, मैंने बहुत काल पूर्व अग्रबोधि प्राप्त की है तथा इसमें मैंने इन सबको परिपक्व बनाया है।

अथ खलु मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तानि च संबहुलानि बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राण्याश्चर्यप्राप्तान्यभवन् अद्भुतप्राप्तानि विस्मयप्राप्तानि। कथं नाम भगवतानेन क्षणविहारेणाल्पेन कालान्तरेणामी एतावन्तो बोधिसत्त्वा महासत्त्वा असंख्येयाः समादापिताः परिपाचिताश्चानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ। अथ खलु मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत्। कथमिदानीं भगवंस्तथागतेन कुमारभूतेन कपिलवस्तुनः शाक्यनगरान्निष्क्रम्य गयानगरान्नातिदूरे बोधिमण्डवराग्रगतेनानुत्तरा सम्यक्संबोधिरभिसंबुद्धा। तस्याद्य भगवन् कालस्य सातिरिकाणि चत्वारिंशद्वर्षाणि। तत् कथं भगवंस्तथागतेनेयता कालान्तरेणेदमपरिमितं तथागतकृत्यं कृतं तथागतेन तथागतवृषभिता तथागतपराक्रमः कृतः। योऽयं बोधिसत्त्वगणो बोधिसत्त्वराशिरियता भगवन् कालान्तरेणानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ समादापितः परिपाचितश्चास्य भगवन् बोधिसत्त्वगणस्य बोधिसत्त्वराशेर्गण्यमानस्य कल्पकोटीनयुतशतसहस्रैरप्यन्तो नोपलभ्यते। एवमप्रमेया भगवन्निमे बोधिसत्त्वा महासत्त्वा एवमसंख्येयाश्चिरचरितब्रह्मचर्या बहुबुद्धशतसहस्रावरोपितकुशलमूला बहुकल्पशतसहस्रपरिनिष्पन्नाः।

तदनन्तर, महासत्त्व वोधिसत्त्व मैत्रेय तथा वे असंख्य कोटि नयुत शतसहस्र बोधिसत्त्व आश्चर्य को प्राप्त हुए, अचम्भा को प्राप्त हुए एवं विस्मय को प्राप्त हुए कि किस प्रकार भगवान् ने क्षण-विहार में एवं अल्पकाल में इन इतने असंख्य महासत्त्व बोधिसत्त्वों को श्रेष्ठ सम्यक् सम्वोधि में परिपक्व एवं समापन्न बना दिया। तब महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय भगवन् से यह बोला—हे भगवन्! किस प्रकार इस काल में कुमारभूत तथागत ने शाक्यों के नगर कपिलवस्तु से निकलकर गया नगर के निकट बोधि मण्ड के अग्रभाग पर पहुँचकर श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की। हे भगवन्! उस समय को बीते हुए आज चालीस वर्ष से अधिक हो गये। हे भगवन्! किस प्रकार तथागत ने इतने काल के बाद इस तथागत के अपरिमित कार्य को किया तथा किस प्रकार तथागत ने तथागत की वृषभिता एवं तथागत का पराक्रम किया। हे भगवन्! इतने समय में जो बोधिसत्त्वगण एवं बोधिसत्त्वराशि श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में समापन्न एवं परिपक्व बनाई गई है, उस बोधिसत्त्वगण एवं बोधिसत्त्वराशि की यदि गणना की जाय, तो कोटि नयुत शतसहस्र कल्पों में भी उसका अन्त नहीं मिलेगा। अतः, हे भगवन्! ये चिरकाल तक ब्रह्मचर्य का आचरण करनेवाले, अनेक शतसहस्र बुद्धों के

द्वारा कुशलमूल की स्थापना करानेवाले एवं अनेक शतसहस्र कल्पों में परिनिष्पन्न ये महासत्त्व बोधिसत्त्व इतने असंख्येय एवं इतने अप्रमेय हैं।

तद्यथापि नाम भगवन् कश्चिदेव पुरुषो नवो दहरः शिशुः कृष्णकेशः प्रथमेन वयसा समन्वागतः पञ्चविंशतिवर्षो जात्या भवेत् । स वर्षशतिकान् पुत्रानादर्शयेदेवं च वदेत् । एते कुलपुत्रा मम पुत्रा इति। ते च वर्षशतिकाः पुरुषा एवं च वदेयुः । एषोऽस्माकं पिता जनक इति। तस्य च पुरुषस्य भगवंस्तद्वचनमश्रद्धेयं भवेल्लोकस्य दुःश्रद्धेयम् । एवमेव भगवानचिराभिसंबुद्धोऽनुत्तरां सम्यक्संबोधिमिमे च बोधिसत्त्वा महासत्त्वा बह्वप्रमेया बहुकल्पकोटीनयुतशतसहस्रचीर्णचरितब्रह्मचर्या दीर्घरात्रं हि कृतनिश्चया बुद्धज्ञाने समाधिमुखशतसहस्रसमापद्यनव्युत्थानकुशला महाभिज्ञापरिकर्मनिर्याता महाभिज्ञाकृतपरिकर्माणः पण्डिता बुद्धभूमौ संगीतकुशलास्तथागतधर्माणामाश्चर्याद्भुता लोकस्य महावीर्यबलस्थामप्राप्ताः। तांश्च भगवानेवं वदति। मयैत आदित एव समादापिताः समुत्तेजिताः परिपाचिताः परिणामिताश्चास्यां बोधिसत्त्वभूमाविति । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धेन मयैष सर्ववीर्यपराक्रमः कृत इति। किं चापि वयं भगवंस्तथागतस्य वचनं श्रद्धया गमिष्यामः। अनन्यथावादी तथागत इति। तथागत एवैतमर्थं जानीयात् । नवयानसंप्रस्थिताः खलु पुनर्भगवन् बोधिसत्त्वा महासत्त्वा विचिकित्सामापद्यन्ते । अत्र स्थाने परिनिर्वृते तथागत इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा न पत्तीयिष्यन्ति न श्रद्धास्यन्ति नाधिमोक्ष्यन्ति । ततस्ते भगवन् धर्मव्यसनसंवर्तनीयेन कर्माभिसंस्कारेण समन्वागता भविष्यन्ति। तत् साधु भगवन्नेतमेवार्थं देशय यद्वयं निःसंशया अस्मिन् धर्मे भवेम अनागतेऽध्वनि बोधिसत्त्वयानीयाः कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा श्रुत्वा न विचिकित्सामापद्येरन्निति।

हे भगवन् ! उदाहरणार्थ, कोई एक पुरुष हो, जो नई उम्र का, दहर एवं शिशु हो तथा उसके केश काले हों और वह बाल्यावस्था में वर्त्तमान हो। उसकी आयु पच्चीस वर्षों की हो। वह सौ वर्ष की आयुवालों को पुत्र समझे और कहे कि ये कुलपुत्र मेरे पुत्र हैं। वे सौ वर्ष की आयुवाले पुरुष ऐसा कहें—यह हमलोगों का जन्मदाता पिता है। हे भगवन् ! उस पुरुष का वचन लोगों के लिए अश्रद्धेय एवं दुःश्रद्धेय होगा। इसी प्रकार, भगवान् ने अभी-अभी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की है तथा ये अनेक एवं अप्रमेय महासत्त्व बोधिसत्त्व अनेक कोटि नयुत शतसहस्र कल्पों म दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य का आचरण करनेवालों, बुद्धज्ञान में दृढता प्राप्त करनेवाले, सैकड़ों सहस्रों प्रकार की समाधि में मग्न होने एवं उनसे ऊपर उठने में कुशल, महाभिज्ञा-प्राप्ति

के साधनों में कुशल, महाभिज्ञाप्राप्ति के लिए कार्य करनेवाले, बुद्धभूमि में कुशल, संगीति एवं तथागत के धर्मों के आचरण में कुशल, लोगों के लिए आश्चर्य एवं प्रशंसा के विषय तथा महान् वीर्यबल एवं शक्ति के धारण करनेवाले हैं। उनसे भगवान् ऐसा कहते हैं कि उन्हें मैंने आरम्भ से ही इस बोधिसत्त्वभूमि में समादापित, समुत्तेजित, परिपाचित एवं परिणामित किया है एवं श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करके मैंने ही महती शक्ति के द्वारा सम्पन्न होनेवाला पराक्रम को किया है। ऐसी स्थिति में हे भगवन्! हमलोग किस प्रकार तथागत के वचन पर श्रद्धा करें जब कि वे कहते हैं कि तथागत मृषा वचन नहीं बोलते। तथागत को जानना चाहिए कि वे उन महासत्त्व बोधिसत्त्वों को, जिन्होंने अभी-अभी यान में प्रवेश किया है, विचिकित्सा को प्राप्त करना सर्वथा स्वाभाविक है। तथागत के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर लोग इस धर्म-पर्याय को सुनकर उसमें न विश्वास करेंगे, न श्रद्धा करेंगे और न अनुराग उत्पन्न करेंगे। तब वे भगवन्! ऐसा कार्य करने लगेंगे, जिससे धर्म का लोप एवं ह्रास होने लगेगा। अतः हे भगवन्! इस विषय की अच्छी तरह विवेचना कीजिए। जिससे हमलोग इस धर्म के विषय में संशयरहित हो जायँ और भविष्यत् काल में भी बोधिसत्त्वयान का आचरण करनेवाले कुलपुत्र या कुलकन्याएँ इसे सुनकर इसके विषय में विचिकित्सा को न प्राप्त हों।

अथ खलु मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायां भगवन्तमाभिर्गाथाभिरध्यभाषत।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय ने उस समय भगवान् से इन गाथाओं द्वारा बोले—

यदासि जातो कपिलाह्वयस्मिन् शाक्याधिवासे अभिनिष्क्रमित्वा।
प्राप्तोऽसि बोधिं नगरे गयाह्वये कालोऽयमल्पोऽत्र तु लोकनाथ ।।४४।।

आप शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु में उत्पन्न हुए थे तथा वहाँ से निष्क्रमण करके गया नामक नगर में जाकर तुमने बोधि प्राप्त की थी। हे लोकनाथ! इस घटनाओं के हुए अभी बहुत कम समय व्यतीत हुआ है।

इमे च ते आर्यविशारदा बहू ये कल्पकोटीचरिता महागणी।
ऋद्धीबले च स्थित अप्रकम्पिताः सुशिक्षिताः प्रज्ञबले गतिंगताः ।।४५।।

किन्तु, इस समय तुम्हारे सम्मुख महासत्त्वों का विशाल गण वर्त्तमान है, जो सभी अनेक कल्पों तक अपने कर्त्तव्य का पालन करनेवाला, श्रेष्ठ एवं कुशल ऋद्धि बल में निष्कंप भाव से स्थित रहनेवाला, सुशिक्षित एवं प्रज्ञाबल में पारंगत है।

अनूपलिप्ताः पदुमं व वारिणा भित्त्वा महीं ये इह अद्य आगताः।
कृताञ्जली सर्वि स्थिताः सगौरवाः स्मृतिमन्त लोकाधिपतिस्य पुत्राः ।।४६।।

वे जल में कमल के समान निर्लिप्त हैं तथा वे पृथ्वी का भेदन करके आज यहाँ उपस्थित हुए हैं। व सभी लोकाधिपति के पुत्र हैं, स्मृतिमान् हैं एवं गौरव का अनुभव करते हुए हाथ जोड़कर यहाँ खड़े हैं।

कथं इमं अद्भुतमीदृशं ते तं श्रद्दधिष्यन्तिमि बोधिसत्त्वाः।
विचिकित्सनिर्घातनहेतु भाष तं त्वं चैव देशेहि यथैव अर्थः ।।४७।।

वे बोधिसत्त्व आपके इस अद्भुत वचन पर किस प्रकार श्रद्धा करेंगे। उनकी विचिकित्सा को नष्ट करने के लिए आप उनको इसके विषय में बतलायें तथा उन्हे इसके वास्तविक रहस्य को समझायें।

यथा हि पुरुषो इह कश्चिदेव दहरो भवेया शिशु कृष्णकेशः।
जात्या च सो विंशतिरुत्तरे वा दर्शेति पुत्रान् शतवर्षजातान् ।।४८।।

जिस प्रकार इस संसार में कोई ऐसा पुरुष हो, जो अल्पवयस्क बालक हो तथा उसके सारे केश काले हों। आयु उसकी बीस वर्षों की अथवा उससे कुछ अधिक हो और वह सौ वर्ष की आयुवाले लोगों को पुत्र के समान समझे।

वलीहि पलितेहि च ते उपेता एषो च नो देहकरो ति ब्रूयुः।
दुःश्रद्दधं तद्भवि लोकनाथ दहरस्य पुत्रा इमि एवरूपाः ।।४९।।

तथा झुर्री एवं पके बालोंवाले वे पुरुष ऐसा कहे कि यह (बालक) मेरा जन्मदाता है। हें लोकनाथ! यह बात कहें कि वे वृद्ध उस बालक के पुत्र हैं, सबके लिए सर्वथा दुःश्रद्धेय है।

एमेव भगवांश्च नवो वयस्थः इमे च विज्ञा बहुबोधिसत्त्वाः।
स्मृतिमन्त प्रज्ञाय विशारदाश्च सुशिक्षिताः कल्पसहस्रकोटिषु ।।५०।।

इसी प्रकार, भगवान् नई आयुवाले हैं तथा ये अनेक विज्ञ बोधिसत्त्व, स्मृतिमान्, प्रज्ञासम्पन्न एवं विशारद बोधिसत्त्व ऐसे हैं, जिन्होंने अनेक सहस्र कोटि कल्पों में वर्त्तमान रहकर शिक्षा ग्रहण की है।

धृतिमन्त प्रज्ञाय विचक्षणाश्च प्रासादिका दर्शनियाश्च सर्वे।
विशारदा धर्मविनिश्चयेषु परिसंस्तुता लोकविनायकेहि ।।५१।।

ये सभी धृतिमान्, प्रज्ञायुक्त, विचक्षण, प्रासादिक, दर्शनीय, धर्म-सम्बन्धी चर्या करने में विशारद एवं लोकविनायकों के द्वारा परिस्संकृत किये गये हैं।

असङ्गचारी पवनेव सन्ति आकाशधातौ सततं अनिश्रिताः।
जानेन्ति वीर्यं सुगतस्य पुत्राः पर्येषमाणा इम बुद्धभूमिम् ।।५२।।

ये वायु की तरह अनासक्त भाव से आचरण करनेवाले हैं। सदा आकाशधातु में निर्लिप्त भाव से निवास करते हैं तथा बुद्धभूमि की खोज करते हुए ये बुद्ध के पुत्र सर्वदा प्रयत्नशील रहते हैं।

कथं नु श्रद्धेयमिदं भवेया परिनिर्वृते लोकविनायकस्मिन् ।
विचिकित्स अस्माक न काचिदस्ति शृणोमथा संमुख लोकनाथा ।।५३।।

लोकविनायक के निर्वाण प्राप्त करने पर लोग किसप्रकार इसमें श्रद्धा कर सकेंगे । हमलोगों को इस विषय में कोई विचिकित्सा नहीं है; क्योंकि हमलोग तो लोकनाथ के मुख से सारी बातें सम्मुख ही सुन रहे हैं ।

विचिकित्स कृत्वान इमस्मि स्थाने गच्छेयु मा दुर्गति बोधिसत्त्वाः ।
त्वं व्याकुरुष्वा भगवन् यथावत् कथ बोधिसत्त्वाः परिपाचिता इमे ।।५४।।

इस विषय में विचिकित्सा करके बोधिसत्त्व दुर्गति को प्राप्त न करें, इसलिए हे भगवन् ! आप ठीक-ठीक वतलायें कि ये बोधिसत्त्व आपके द्वारा किस तरह परिपक्व बनाये गये ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये बोधिसत्त्वपृथिवीविवरसमुद्गमपरिवर्तो नाम चतुर्दशमः ।।१४।।

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का बोधिसत्त्वपृथिवीविवरसमुद्गम नामक चौदहवाँ परिवर्त समाप्त हुआ ।

तथागतायुष्प्रमाणपरिवर्त

अथ खलु भगवान् सर्वावन्तं बोधिसत्त्वगणमामन्त्रयते स्म। अवकल्पयध्वं मे कुलपुत्रा अभिश्रद्दधध्वं तथागतस्य भूतां वाचं व्याहरतः। द्वितीयकमपि भगवांस्तान् बोधिसत्त्वानामन्त्रयते स्म। अवकल्पयध्वं मे कुलपुत्रा अभिश्रद्दधध्वं तथागतस्य भूतां वाचं व्याहरतः। तृतीयकमपि भगवांस्तान् बोधिसत्त्वानामन्त्रयते स्म। अवकल्पयध्वं मे कुलपुत्रा अभिश्रद्दधध्वं तथागतस्य भूतां वाचं व्याहरतः। अथ खलु स सर्वावान् बोधिसत्त्वगणो मैत्रेयं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमग्रतः स्थापयित्वाञ्जलिं प्रगृह्य भगवन्तमेतदवोचत् । भाषतु भगवानेतमेवार्थं भाषतु सुगतो वयं तथागतस्य भाषितमभिश्रद्धास्यामः। द्वितीयकमपि स सर्वावान् बोधिसत्त्वगणो भगवन्तमेतदवोचत् । भाषतु भगवानेतमेवार्थं भाषतु सुगतो वयं तथागतस्य भाषितमभिश्रद्धास्यामः। तृतीयकमपि स सर्वावान् बोधिसत्त्वगणो भगवन्तमेतदवोचत् । भाषतु भगवानेतमेवार्थं भाषतु सुगतो वयं तथागतस्य भाषितमभिश्रद्धास्याम इति ।

तदनन्तर, भगवान् उस सम्पूर्ण बोधिसत्त्वगण से बोले---हे कुलपुत्रो! सत्य बात कहनेवाले मुझ तथागत पर श्रद्धा करो, अवकल्पना करो। दूसरी बार भी भगवान् उन बोधिसत्त्वों से बोले---हे कुलपुत्रो! सत्य बात कहनेवाल मुझ तथागत पर श्रद्धा करो, अवकल्पना करो। तीसरी बात भी भगवान् उन बोधिसत्त्वों से बोले--- हे कुलपुत्रो! सत्य बात कहनेवाले मुझ तथागत पर श्रद्धा करो, अवकल्पना करो। तत्पश्चात्, वे सभी बोधिसत्त्व महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय को आगे करके हाथ जोड़कर भगवान् से यह बोले---भगवन्! इसी बात को कहें, सुगत! कहें। हम तथागत की बात में श्रद्धा करेंगे। दूसरी बार भी वे सभी बोधिसत्त्व भगवान् से यह बोले---भगवन्! इसी बात को कहें, सुगत! कहें। हम तथागत की बात में श्रद्धा करेंगे। तीसरी बार भी वे सभी बोधिसत्त्व भगवान् से यह बोले---भगवान्! इसी बात को कहें, सुगत! कहें। हम तथागत की बात में श्रद्धा करेंगे।

अथ खलु भगवांस्तेषां बोधिसत्त्वानां यावत् तृतीयकमप्यध्येषणां विदित्वा तान् बोधिसत्त्वानामन्त्रयते स्म । तेन हि कुलपुत्राः शृणुध्वमिदमेवंरूपं ममाधिष्ठानबलाधानं यदयं कुलपुत्राः सदेवमानुषासुरो लोक एवं संजानीते। सांप्रतं भगवता शाक्यमुनिना तथागतेन शाक्यकुलादभिनिष्क्रम्य गयाह्वये महानगरे बोधिमण्डवराग्रगतेनानुत्तरा सम्यक्संबोधिरभिसंबुद्धेति । नैवं

द्रष्टव्यम् । अपि तु खलु पुनः कुलपुत्रा बहूनि मम कल्पकोटीनयुतशतसहस्राण्यनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धस्य तद् यथापि नाम कुलपुत्राः पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु ये पृथिवीधातुपरमाणवः । अथ खलु कश्चिदेव पुरुष उत्पद्यते स एक परमाणुरजं गृहीत्वा पूर्वस्यां दिशि पञ्चाशल्लोकधात्वसंख्येयशतसहस्राण्यतिक्रम्य तदेकं परमाणुरजः समुपनिक्षिपेत् । अनेन पर्यायेण कल्पकोटीनयुतशतसहस्राणि स पुरुषः सर्वास्ताँल्लोकधातून् व्यपगतपृथिवीधातून् कुर्यात् सर्वाणि च तानि पृथिवीधातुपरमाणुरजांस्यनेन पर्यायेणानेन च लक्षनिक्षेपेण पूर्वस्यां दिश्युपनिक्षिपेत् । तत् किं मन्यध्वे कुलपुत्राः शक्यं ते लोकधातवः केनचिच्चिन्तयितुं वा गणयितुं वा तुलयितुं वोपलक्षयितुं वा । एवमुक्ते मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः स च सर्वावान् बोधिसत्त्वगणो बोधिसत्त्वराशिर्भगवन्तमेतदवोचत् । असंख्येयास्ते भगवँल्लोकधातवोऽगणनीयाश्चित्तभूमिसमतिक्रान्ताः । सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धैरपि भगवन्नार्येण ज्ञानेन न शक्यं चिन्तयितुं वा गणयितुं वा तुलयितुं वोपलक्षयितुं वा । अस्माकमपि तावद् भगवन्नवैवर्त्यभूमिस्थितानां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानामस्मिन् स्थाने चित्तगोचरो न प्रवर्तते । तावदप्रमेया भगवंस्ते लोकधातवो भवेयुरिति ।

तदनन्तर, भगवान् ने उन बोधिसत्त्वों की तीसरी प्रार्थना सुनकर उन बोधिसत्त्वों से कहा—अतः, हे कुलपुत्रो ! इस प्रकार के मेरे अधिष्ठान, बलाधान को सुनो, जिसके बारे में हे कुलपुत्रो ! देवों, मनुष्यों तथा असुरों से युक्त यह लोक इस प्रकार समझता है (कि) इस समय तथागत भगवान् शाक्यमुनि ने शाक्यकुल से अभिनिष्क्रमण करके गया नामक महान् नगर में श्रेष्ठ बोधिमण्ड के अग्रभाग पर जाकर श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की है । किन्तु, ऐसा नहीं सोचना चाहिए; क्योंकि हे कुलपुत्रो ! मुझे श्रेष्ठ सम्यक्, सम्बोधि प्राप्त किये हुए अनेक कोटि नयुत शतसहस्र कल्प व्यतीत हो गये हैं । हे कुलपुत्रो ! वे कल्प पचास कोटी नयुत शतसहस्र लोकधातुओं में वर्त्तमान पृथ्वीधातु के परमाणु-कणों के समान असंख्य हैं । कोई पुरुष उत्पन्न हो, वह एक परमाणु-कण को लेकर पूर्व दिशा में असंख्य शतसहस्र लोकधातुओं को पार कर उस एक परमाणु-कण को ले जाकर रख दे, उसी प्रकार वह पुरुष उन सभी कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुओं को पृथ्वीधातु से रहित कर दे तथा उन सभी पृथ्वीधातु के परमाणु-कणों को-उसी क्रम से लाखों की संख्या में पूर्व दिशा में रख दे । हे कुलपुत्रो ! क्या तुम समझते हो कि किसी के लिए उन लोकधातुओं को सोचना, गिनना, तौलना एवं उनका अनुमान लगाना सम्भव है ? ऐसा कहने पर वह महासत्त्व बोधिसत्त्व, मैत्रेय, सभी बोधिसत्त्वों का गण, बोधिसत्त्वों का समूह भगवान् से यह बोला—हे भगवन् ! वे लोकधातुएँ असंख्य अगणित एवं मन की भी पहुँच से बाहर हैं । हे भगवन् ! सभी श्रावक

एवं प्रत्येकबुद्ध भी श्रेष्ठज्ञान के द्वारा उनको समझने, गिनते, तौलने एवं उनका अनुमान लगाने में असमर्थ हैं। हे भगवन्! अवैवर्त्तिक पद पर स्थित हम महासत्त्व बोधिसत्त्वों की बुद्धि भी उस स्थान पर नहीं प्रवृत्त होती। हे भगवन्! इतनी अप्रमेय वे लोकधातुएँ होंगी।

एवमुक्ते भगवांस्तान् बोधिसत्त्वान् महासत्त्वानेतदवोचत्। आरोचयामि वः कुलपुत्राः प्रतिवेदयामि वो यावन्तः कुलपुत्रास्ते लोकधातवो येषु तेन पुरुषेण तानि परमाणुरजांस्युपनिक्षिप्तानि येषु च नोपनिक्षिप्तानि सर्वेषु तेषु कुलपुत्रा लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु न तावन्ति परमाणुरजांसि संविद्यन्ते यावन्ति मम कल्पकोटीनयुतशतसहस्राण्यनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धस्य। यतः प्रभृत्यहं कुलपुत्रा अस्यां सहायां लोकधातौ सत्त्वानां धर्मं देशयाम्यन्येषु च लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु। ये च मया कुलपुत्रा अत्रान्तरा तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः परिकीर्तितता दीपंकरतथागतप्रभृतयस्तेषां च तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानां परिनिर्वाणानि मयैव तानि कुलपुत्रा उपायकौशल्यधर्मदेशनाभिनिर्हारनिर्मितानि। अपि तु खलु पुनः कुलपुत्रास्तथागत आगतागतानां सत्त्वानामिन्द्रियवीर्यवैमात्रतां व्यवलोक्य तस्मिंस्तस्मिन्नात्मनो नाम व्याहरति तस्मिंस्तस्मिंश्चात्मनः परिनिर्वाणं व्याहरति तथा तथा च सत्त्वान् परितोषयति नानाविधैर्धर्मपर्यायैः। तत्र कुलपुत्रास्तथागतो नानाधिमुक्तानां सत्त्वानामल्पकुशलमूलानां बहूपक्लेशानामेवं वदति। दहरोऽहमस्मि भिक्षवो जात्याभिनिष्क्रान्तोऽचिराभिसंबुद्धोऽस्मि भिक्षवोऽनुत्तरां सम्यक्संबोधिम्। यत् खलु पुनः कुलपुत्रास्तथागत एवं चिराभिसंबुद्ध एवं व्याहरति अचिराभिसंबुद्धोऽहमस्मीति नान्यत्र सत्त्वानां परिपाचनार्थमवतारणार्थमेते धर्मपर्याया भाषिताः। सर्वे च ते कुलपुत्रा धर्मपर्यायास्तथागतेन सत्त्वानां विनयार्थाय भाषिताः। यां च कुलपुत्रास्तथागतः सत्त्वानां विनयार्थवाचं भाषत आत्मोपदर्शनेन वा परोपदर्शनेन वात्मारम्बणेन वा परारम्बणेन वा यत्किञ्चित्तथागतो व्याहरति सर्वे ते धर्मपर्यायाः सत्यास्तथागतेन भाषिता नास्त्यत्र तथागतस्य मृषावादः। तत् कस्य हेतोः। दृष्टं हि तथागतेन त्रैधातुकं यथाभूतं न जायते न म्रियतं न च्यवते नोपपद्यते न संसरति न परिनिर्वाति न भूतं नाभूतं न सन्ते नासन्तं न तथा नान्यथा न वितथा नावितथा। न तथा त्रैधातुकं तथागतेन दृष्टं यथा बालपृथग्जनाः पश्यन्ति प्रत्यक्षधर्मा तथागतः खल्वस्मिन् स्थानेऽसंप्रमोषधर्मा। तत्र तथागतो यां कांचिद्वाचं व्याहरति सर्वं तत् सत्यं न मृषा नान्यथा। अपि तु खलु पुनः सत्त्वानां नानाचरितानां नानाभिप्रायाणां

संज्ञाविकल्पचरितानां कुशलमूलसंजननार्थं विविधान् धर्मपर्यायान् विविधैरारम्बणैर्व्याहरति । यद्धि कुलपुत्रास्तथागतेन कर्तव्यं तत्तथागतः करोति । तावच्चिराभिसंबुद्धोऽपरिमितायुष्प्रमाणस्तथागतः सदा स्थितः । अपरिनिर्वृतस्तथागतः परिनिर्वाणमादर्शयति वैनयवशेन । न च तावन्मे कुलपुत्रा अद्यापि पौर्विकी बोधिसत्त्वचर्यापरिनिष्पादितायुष्प्रमाणमप्यपरिपूर्णम् । अपि तु खलु पुनः कुलपुत्रा अद्यापि तद्द्विगुणेन मे कल्पकोटीनयुतशतसहस्राणि भविष्यन्त्यायुष्प्रमाणस्यापरिपूर्णत्वात् । इदानीं खलु पुनरहं कुलपुत्रा अपरिनिर्वायमाण एव परिनिर्वाणमारोचयामि । तत् कस्य हेतोः । सत्त्वानहं कुलपुत्रा अनेन पर्यायेण परिपाचयामि मा हैव मेऽतिचिरं तिष्ठतोऽभीक्ष्णदर्शनेनाकृतकुशलमूलाः सत्त्वाः पुण्यविरहिता दरिद्रभूताः कामलोलुपा अन्धा दृष्टिजालसंछन्नास्तिष्ठति तथागत इति विदित्वा किलीकृतसंज्ञा भवेयुर्न च तथागते दुर्लभसंज्ञामुत्पादयेयुरासन्ना वयं तथागतस्येति वीर्यं नारभेयुस्त्रैधातुकान्निःसरणार्थं न च तथागते दुर्लभसंज्ञामुत्पादयेयुः । ततः कुलपुत्राः तथागत उपायकौशल्येन तेषां सत्त्वानां दुर्लभप्रादुर्भावो भिक्षवस्तथागत इति वाचं व्याहरति स्म । तत् कस्य हेतोः । तथा हि तेषां सत्त्वानां बहुभिः कल्पकोटीनयुतशतसहस्रैरपि तथागतदर्शनं भवति वा न वा । ततः खल्वहं कुलपुत्रास्तदारम्बणं कृत्वैवं वदामि । दुर्लभप्रादुर्भावा हि भिक्षवस्तथागता इति । ते भूयस्या मात्रया दुर्लभप्रादुर्भावांस्तथागतान् विदित्वाश्चर्यसंज्ञामुत्पादयिष्यन्ति शोकसंज्ञामुत्पादयिष्यन्ति । अपश्यन्तश्च तथागतानर्हतः सम्यक्संबुद्धान् तृषिता भविष्यन्ति तथागतदर्शनाय । तेषां तानि तथागतारम्बणमनस्कारकुशलमूलानि दीर्घरात्रमर्थाय हिताय सुखाय च भविष्यन्ति एतमर्थं विदित्वा तथागतोऽपरिनिर्वायन्नेव परिनिर्वाणमारोचयति सत्त्वानां वैनेयवशमुपादाय । तथागतस्यैष कुलपुत्रा धर्मपर्यायो यदेवं व्याहरति नास्त्यत्र तथागतस्य मृषावादः ।

ऐसा कहने पर भगवान् उन महासत्त्व बोधिसत्त्वों से ब्रोले—हे कुलपुत्रो ! मैं तुमसे कहता हूँ, प्रतिवेदन करता हूँ । हे कुलपुत्रो ! जितनी वे लोकधातुएँ थीं, जिनमें उस पुरुष ने उन परमाणु-कणों को फेंका और जिनमें नहीं फेंका, हे कुलपुत्रो ! उन सभी कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुओं में भी उतने परमाणु-कण नहीं हैं, जितने कोटि नयुत शतसहस्र कल्प मेरे इस श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करने के अनन्तर व्यतीत हो चुके हैं । उसी समय से हे कुलपुत्रो ! मैं इस सहा (नामक) लोकधातु में तथा अन्य कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुओं में प्राणियों को धर्म की देशना करता हूँ । हे कुलपुत्रो ! इस बीच मैंने जिन दीपंकर आदि तथागत अर्हत्, सम्यक्, सम्बुद्धों की

चर्चा की है, हे कुलपुत्रो ! उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों को उपायकौशल्यों एवं धर्म की देशनाओं के द्वारा निर्वाण प्राप्त करने के लिए मैंने ही इन निर्हारों का निर्माण किया है । पुनः हे कुलपुत्रो ! तथागत ने क्रम से आये हुए प्राणियों की विभिन्न इन्द्रियों एवं विभिन्न शक्तियों को देखकर प्रत्येक के लिए अपना-अपना (पृथक्-पृथक्) नाम निश्चित किया है, उनके योग्य विभिन्न प्रकार के निर्वाणों की चर्चा की तथा उन प्राणियों को नाना प्रकार के धर्मपर्यायों से परितुष्ट किया । हे कुलपुत्रो ! उस अवसर पर विभिन्न झुकावोंवाले, अल्प कुशलमूलवाले एवं अनेक उपक्लेशों से युक्त प्राणियों से तथागत ऐसा बोले—हे भिक्षुओ ! मैं युवक हूँ । यतः, मैंने जन्म के समय ही अभिनिष्क्रमण करके अभी शीघ्र ही श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की । हे कुलपुत्रो ! चिरकाल पूर्व अभिसम्बोधि प्राप्त करनेवाले तथागत का ऐसा कहना कि मैंने अभी-अभी अभिसम्बोधि प्राप्त की है, प्राणियों को परिपक्व एवं धर्म में अवतरित करने का एक उपाय-मात्र है । ये जितने भी धर्मपर्याय कहे गये हैं, हे कुलपुत्रो ! वे सब धर्मपर्याय तथागत के द्वारा प्राणियों को धर्म में विनीत करने के लिए कहे गये हैं । हे कुलपुत्रो ! तथागत प्राणियों को विनीत करने के लिए जो भी वचन बोलते हैं, चाहे वे स्वतः उनकी ओर से कहे गये हों या दूसरे के रूप धारण करके कहे गये हों, चाहे वे भगवान् के द्वारा स्वतः अपने को आधार बनाकर कहे गये हों अथवा दूसरे को आधार बनाकर कहे गये हों—ये सभी तथागत के द्वारा कहे गये धर्मपर्याय सत्य हैं । क्योंकि, भगवान् तथागत के वचन झूठे नहीं होते । ऐसा क्यों ? क्योंकि, तथागत त्रैधातुक संसार के वास्तविक रूप को देखते हैं, जो (संसार) न जन्म लेता है, न मरता है, न नष्ट होता है, न उत्पन्न होता है, न अस्तित्व में आता है, न चक्कर लगाता है, न अस्तित्वहीनता को प्राप्त करता है, न भूत है, न अभूत है, न सत् है, न असत् है, न तथा है, न अन्यथा है, न वितथा है और न अवितथा । तथागत इस त्रैधातुक संसार को साधारण मूर्ख व्यक्तियों की तरह नहीं देखते; क्योंकि तथागत इस स्थान पर सम्मुख उपस्थित वस्तुओं के स्वभाव को देखते हैं, अतः वस्तुओं के स्वभाव उनसे छिपे नहीं हैं । वहाँ तथागत जो कुछ भी बात बोलते हैं, वह सब सत्य होती है, झूठी एवं अन्यथा नहीं होती । पुनः, वे नाना चरितवाले, विभिन्न अभिप्रायवाले एवं विभिन्न संज्ञाओंवाले, प्राणियों के अन्दर कल्याण-कारक भावों को उत्पन्न करने के लिए विविध धर्मपर्यायों का विभिन्न आरम्बणों के द्वारा उपदेश देते हैं । हे कुलपुत्रो ! तथागत को जो कार्य करना चाहिए, उसको वे करते हैं । चिरकाल पूर्व सम्बोधि प्राप्त करनेवाले एवं अपरिमित आयुवाले वे तथागत सदा वर्तमान रहते हैं । वे वास्तव में निर्वृत न होकर केवल श्रावकों को शिक्षा देने के लिए परिनिर्वाण प्राप्त करने का अभिनय करते हैं । हे कुलपुत्रो ! अभी तक भी मैंने अपनी बोधिसत्त्व-चर्या पूरी नहीं की है, और मेरी आयु भी अभी अपरिपूर्ण है । हे कुलपुत्रो ! उससे दुगुने कोटि नयुत शतसहस्र कल्पों के व्यतीत होने पर मेरी आयु पूरी होगी । पुनः, हे कुलपुत्रो ! इस समय भी बिना निर्वाण को प्राप्त हुए ही

अपनी निर्वाण-प्राप्ति की घोषणा करता हूँ । ऐसा क्यों ? क्योंकि, हे कुलपुत्रो ! इस रीति से मैं प्राणियों को परिपक्व बनाता हूँ । अन्यथा, यदि मैं सदैव वर्त्तमान रहूँ, तो मुझे निरन्तर देखकर ये प्राणी जो कुशलमूल को न करनेवाले पुण्य से रहित, दरिद्र-तुल्य, कामलोलुप, अन्धे एवं दृष्टिदोष से आक्रान्त हैं, ऐसा सोचेंगे ; तथागत हमारे निकट वर्त्तमान हैं, और इन सब वस्तुओं को खिलवाड़ समझते हुए 'तथागत को पाना दुर्लभ है', ऐसा नहीं सोचेंगे । और 'हम तथागत के निकट हैं', ऐसा सोचकर वे त्रैधातुक संसार से मुक्त होने के लिए प्रयास नहीं करेंगे एवं तथागत के दुर्लभ होने की भावना उनके मन में नहीं उत्पन्न होगी । हे कुलपुत्रो ! तथागत जो उन प्राणियों से 'हे भिक्षुओ ! तथागत का प्रादुर्भाव दुर्लभ है', ऐसा वचन कहते हैं—यह उनका उपायकौशल्य ही है । ऐसा क्यों ? क्योंकि, उन प्राणियों को अनेक कोटि नयुत शतसहस्र कल्पों में तथागत का दर्शन कभी होता है, कभी नहीं होता । हे कुलपुत्रो ! इसी कारण से और इसी आधार पर मैं कहता हूँ कि हे भिक्षुओ ! तथागतों का प्रादुर्भाव इस संसार में दुर्लभ है। वे तथागत के प्रादुर्भाव को अत्यन्त दुर्लभ जानकर आश्चर्य का भाव उत्पन्न करेंगे और शोक का अनुभव करेंगे एवं तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों को न देखते हुए तथागत के दर्शन के लिए लालायित हो उठेंगे । उनके वे कुशलमूल जो तथागत के आरम्बण के चिन्तन से उत्पन्न होंगे, दीर्घकाल तक उनके अर्थ, हित एवं सुख के लिए होंगे । इसी बात को दृष्टि में रखकर तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त नहीं होते हुए भी वैनेय प्राणियों के हित के लिए अपने को परिनिर्वाण-प्राप्त बतलाते हैं । हे कुलपुत्रो ! तथागत का यह धर्मपर्याय है । जो वे ऐसा कहते हैं, इस विषय में तथागत के ऊपर मृषावाद का दोषारोपण नहीं किया जा सकता ।

तद् यथापि नाम कुलपुत्राः कश्चिदेव वैद्यपुरुषो भवेत् पण्डितो व्यक्तो मेधावी सुकुशलः सर्वव्याधिप्रशमनाय । तस्य च पुरुषस्य बहवः पुत्रा भवेयुर्दश वा विंशतिर्वा त्रिंशद्वा चत्वारिंशद् वा पञ्चाशद् वा शतं वा । स च वैद्यः प्रवासगतो भवेत् ते चास्य सर्वे पुत्रा गरपीडा वा विषपीडा वा भवेयुः । तेन गरेण वा विषेण वा दुःखाभिर्वेदनाभिरभिपूर्णा भवेयुः । ते तेन गरेण वा विषेण वा दह्यमानाः पृथिव्यां प्रपतेयुः । अथ स तेषां वैद्यः पिता प्रवासादागच्छेत् ते चास्य पुत्रास्तेन गरेण वा विषेण वा दुःखाभिर्वेदनाभिरार्ताः । केचिद्विपरीतसंज्ञिनो भवेयुः केचिदविपरीतसंज्ञिनो भवेयुः । सर्वे च ते तेनैव दुःखेनार्तास्तं पितरं दृष्ट्वाभिनन्देयुरेवं चैनं वदेयुः । दिष्ट्यासि तात क्षेमस्वस्तिभ्यामागतः । तदस्माकमस्मादात्मोपरोधाद् गराद्वा विषाद् वा परिमोचयस्व । ददस्व नस्तात जीवतमिति । अथ खलु स वैद्यस्तान् पुत्रान् दुःखार्तान् दृष्ट्वा वेदनाभिभूतान् दह्यतः पृथिव्यां परिचेष्टमानान् ततो महाभैषज्यं समुदानयित्वा वर्णसंपन्नं गन्धसम्पन्नं रससम्पन्नं च शिलायां पिष्ट्वा तेषां पुत्राणां पानाय दद्यादेवं चैनान्

वदेत् । पिबथ पुत्रा इदं महाभैषज्यं वर्णसंपन्नं गन्धसंपन्नं रससंपन्नम् । इदं यूयं पुत्रा महाभैषज्यं पीत्वा क्षिप्रमेवास्माद् गराद्वा विषाद् वा परिमोक्ष्यध्वे स्वस्था भविष्यथारोगाश्च । तत्र ये तस्य वैद्यस्य पुत्रा अविपरीतसंज्ञिनस्ते भैषज्यस्य वर्णं च दृष्ट्वा गन्धं चाघ्राय रसं चास्वाद्य क्षिप्रमेवाभ्यवहरेयुः । ते चाभ्यवहरन्तस्तस्मादाबाधात् सर्वेण सर्वं विमुक्ता भवेयुः । ये पुनस्तस्य पुत्रा विपरीतसंज्ञिनस्ते तं पितरमभिनन्देयुरेनं चैवं वदेयुः । दिष्ट्यासि तात क्षेमस्वस्तिभ्यामागतो यस्त्वमस्माकं चिकित्सक इति । ते चैवं वाचं भाषेरन् तच्च भैषज्यमुपनामितं न पिबेयुः । तत् कस्य हेतोः । तथाहि तेषां तया विपरीतसंज्ञया तद् भैषज्यमुपनामितं वर्णेनापि न रोचते गन्धेनापि रसेनापि न रोचते । अथ खलु स वैद्यपुरुष एवं चिन्तयेत् । इमे मम पुत्रा अनेन गरेण वा विषेण वा विपरीतसंज्ञिनः । ते खल्विदं महाभैषज्यं न पिबन्ति मां चाभिनन्दन्ति । यन्न्वहमिमान् पुत्रानुपायकौशल्येनेदं भैषज्यं पाययेयमिति । अथ खलु स वैद्यस्तान् पुत्रानुपायकौशल्येन तद्भैषज्यं पाययितुकाम एवं वदेत् । जीर्णोऽहमस्मि कुलपुत्रा वृद्धो महल्लकः कालक्रिया च मे प्रत्युपस्थिता । मा च यूयं पुत्रा शोचिष्ट मा च क्लममापद्यध्वम् । इदं वो मया महाभैषज्यमुपनीतम् । सचेदाकाङ्क्षध्वे तदेव भैषज्यं पिबध्वम् । स एवं तान् पुत्रानुपायकौशल्येनानुशिष्यान्यतरं जनपदप्रदेशं प्रक्रान्तः । तत्र गत्वा कालगतमात्मानं येषां ग्लानानां पुत्राणामारोचयेत् । ते तस्मिन् समयेऽतीव शोचयेयुरतीव परिदेवेयुः । यो ह्यस्माकं पिता नाथो जनकोऽनुकम्पकः सोऽपि नामैकः कालगतस्तेऽद्य वयमनाथाः संवृत्ताः । ते खल्वनाथभूतमात्मानं समनुपश्यन्तोऽशरणमात्मानं समनुपश्यन्तोऽभीक्ष्णं शोकार्ता भवेयुस्तेषां च तयाभीक्ष्णं शोकार्ततया सा विपरीतसंज्ञाविपरीतसंज्ञा भवेत् । यच्च तद्भैषज्यं वर्णगन्धरसोपेतं तद्वर्णगन्धरसोपेतमेव संजानीयुः । ततस्तस्मिन् समये तद्भैषज्यमभ्यवहरेयुस्ते चाभ्यवहरन्तस्तस्मादाबाधात् परिमुक्ता भवेयुः । अथ खलु स वैद्यस्तान् पुत्रानाबाधविमुक्तान् विदित्वा पुनरेवात्मानमुपदर्शयेत् । तत् किं मन्यध्वे कुलपुत्रा मा हैव तस्य वैद्यस्य तदुपायकौशल्यं कुर्वतः कश्चिन्मृषावादेन संचोदयेत् । आहुः । नो हीदं भगवन्नो हीदं सुगत । आह । एवमेव कुलपुत्रा अहमप्यप्रमेयासंख्येयकल्पकोटीनयुतशतसहस्राभिसंबुद्ध इमामनुत्तरां सम्यक्संबोधिमपि तु खलु पुनः कुलपुत्रा अहमन्तरान्तरमेवंरूपाण्युपायकौशल्यानि सत्त्वानामुपदर्शयामि विनयार्थं न च मे कश्चिदत्र स्थाने मृषावादो भवति ।

हे कुलपुत्रो ! हम एक उदाहरण लें । एक वैद्य हो, जो विद्वान् प्रख्यात, बुद्धिमान्,

एवं सभी रोगों के निराकरण में पूर्णरूप से निपुण हो। उस व्यक्ति को अनेक पुत्र हों—दस, बीस, तीस, चालीस, पचास या सौ। वह वैद्य बाहर चला जाय। उसके सभी पुत्र गर-पीडा अथवा विष-पीडा को प्राप्त हो जायँ। उस गर या विष के कारण वे दुःखदायिनी वेदनाओं से आक्रान्त हो जाय। वे उस गर अथवा विष से जलते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ें। तदनन्तर, उसका पिता वह वैद्य प्रवास से लौट आये। जिस समय उसके पुत्र उस गर या विष के कारण दुःखदायिनी वेदनाओं से आर्त्त हों। उसके पुत्रों में कुछ विपरीत ज्ञान रखनेवाले हों और कुछ ठीक ज्ञान के धारक हों। वे सभी पुत्र जो उस दुःख से दुःखी थे, अपने उस पिता को देखकर उसका अभिनन्दन करें और ऐसा कहें—हे पिता! हमारे भाग्य से ही आप सकुशल लौट आये। अतः, हमलोगों को इस गर अथवा विष के भयंकर दुःख से मुक्त करें एवं हे पिता! हमलोगों के प्राण बचायें। तदनन्तर, वह वैद्य उन पुत्रों को दुःख एवं वेदना से आक्रान्त देखकर तथा उन्हें जलते हुए एव पृथ्वी पर छटपटाते हुए देखकर वर्णसम्पन्न, गन्धसम्पन्न एवं रससम्पन्न एक श्रेष्ठ ओषधि तैयार करे और उसे पत्थर पर पीसकर उन पुत्रों को पीने के लिए दे और उनसे इस प्रकार बोले—हे पुत्रो! तुमलोग इस सुन्दर रंगवाली, सुन्दर गन्धवाली, सुन्दर रसवाली दवा को पी लो। हे पुत्रो! तुमलोग इस श्रेष्ठ दवा को पीकर शीघ्र ही उस गर या विष के कष्ट से छुटकारा पाकर स्वस्थ एवं रोगरहित हो जाओगे। तदनन्तर, वहाँ उस वैद्य के वे पुत्र जो ठीक ज्ञान रखनेवाले थे, वे उस दवा के रंग को देखते हुए, गन्ध को ग्रहण करते हुए एवं रस का स्वाद लेते हुए शीघ्र ही उसे खा जायें और उसे खाते ही उस बाधा से पूर्ण रूप से मुक्त हो जायँ। किन्तु, वहाँ उसके जो विपरीत ज्ञान रखनेवाले पुत्र थे, वे अपने पिता का अभिनन्दन करके उनसे इस प्रकार कहें—हे पिता! हमारे भाग्य से आप सकुशल लौट आये हैं। अतः, आप हमारी चिकित्सा करें। वे ऐसी बातें कहें, किन्तु उस लाई हुई दवा को न पीयें। वे ऐसा क्यों करते हैं; क्योंकि उनकी उस विपरीत संज्ञा के कारण उन्हें उस लाई हुई दवा का वर्ण रंग तथा रस अच्छा नहीं लगता था। तब वह वैद्य इस प्रकार सोचे—ये मेरे पुत्र इस गर या विष के कारण विपरीत ज्ञान रखनेवाले हो गये हैं। वे इस श्रेष्ठ ओषधि को नहीं पीते, केवल मेरा अभिनन्दन करते हैं, अतः मुझे चहिए कि मैं उन पुत्रों को उपाय्कौशल्य के द्वारा इस दवा को पिलाऊँ। तदनन्तर, उपायकौशल्य के द्वारा पुत्रों को दवा दिलाने की इच्छावाला वह वैद्य उन पुत्रों से इस प्रकार कहे—हे कुलपुत्रो! मैं जीर्ण वृद्ध एवं महल्लक हो गया हूँ तथा मेरी मृत्यु का समय निकट आ गया है। हे पुत्रो! तुम चिन्ता मत करो तथा निराश मत होओ। मैं तुम्हारे लिए यह श्रेष्ठ ओषधि लाया हूँ। यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो इस दवा को पी लो। वह इस प्रकार उन पुत्रों को उपायकौशल्य के द्वारा अनुशिष्ट करके दूसरे जनपद में चला जाय और वहाँ जाकर उन रुग्ण पुत्रों को सूचना दिलवा दे कि उसने मृत्यु प्राप्त कर ली है। उस समय वे पुत्र अत्यधिक शोक करें एवं अत्यधिक परिदेवना करें। जो हमारे रक्षक, जनक एवं अनुकम्पक पिता थे, वे भी मृत्यु को प्राप्त

हो गये । हमलोग सर्वथा अनाथ हो गये । वे अपने को अनाथ समझते हुए एवं अपने को अशरण समझते हुए निरन्तर दुःखी रहें । इस प्रकार, निरन्तर दुःखी रहने के कारण उनका विपरीत ज्ञान ठीक ज्ञान में परिवर्त्तित हो जाये । वे उस सुन्दर वर्ण, गन्ध एवं रस से सम्पन्न ओषधि को सुन्दर वर्ण, गन्ध एवं रस से सम्पन्न समझने लगें । तदनन्तर, उस समय वे उस दवा को खा लें और उसे खाते ही उस कष्ट से मुक्त हो जायँ । तदनन्तर, वह वैद्य अपने उन पुत्रों को कष्ट से मुक्त जानकर अपने-आप को पुनः उनके सम्मुख उपस्थित कर दे। हे कुलपुत्रो ! क्या तुम समझते हो कि ऐसा करने के लिए उस वद्य को कोई झूठ बोलने का दोषी ठहरायगा । वे बोले—हे भगवन् ! ऐसा नहीं होगा, हे सुगत ! ऐसा नहीं होगा । भगवान् ने कहा—हे कुलपुत्रो ! इसी प्रकार अप्रमेय एवं असंख्य कोटि नयुत शतसहस्र कल्पों के पूर्व इस श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त कर लेने पर भी हे कुलपुत्रो ! मैं उस समय समय पर इस प्रकार के उपायकौशल्यों का प्राणियों के विनयन के लिए प्रदर्शन करता हूँ । और, ऐसा करने पर मैं झूठ बोलने का भागी नहीं बनता ।

अथ खलु भगवानिमामेवार्थगतिं भूयस्या मात्रया संदर्शयमानस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, इस अर्थ को विशेष रूप से दिखाते हुए भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं—

अचिन्तिया कल्पसहस्रकोट्यो
यासां प्रमाणं न कदाचि विद्यते ।
प्राप्ता मया एष तदाग्रबोधि-
र्धर्मं च देशेम्यहु नित्यकालम् ।।१।।

जिनकी गणना नहीं हो सकती, ऐसे अचिन्त्य सहस्र कोटिकल्प व्यतीत हो गये, जब कि मैंने इस श्रेष्ठ बोधि को प्राप्त किया था। तबसे मैं सदैव इस धर्म की देशना करता रहता हूँ ।

समादपेमी बहुबोधिसत्त्वान्
बौद्धस्मि ज्ञानस्मि स्थपेमि चैव ।
सत्त्वान कोटीनयुताननेकान्
परिपाचयामी बहुकल्पकोट्यः ।।२।।

अनेक बोधिसत्त्वों को मैं बुद्धज्ञान में समादापित एवं स्थापित करता हूँ तथा अनेक कोटि कल्पों तक अनेक कोटि नयुत प्राणियों को परिपक्व बनाता रहा हूँ ।

निर्वाणभूमिं चुपदर्शयामि
विनयार्थ सत्त्वान वदाम्युपायम् ।

चापि निर्वाम्यहु तस्मि काले
इहैव चो धर्मु प्रकाशयामि ।।३।।

मैं निर्वाणभूमि का दर्शन कराता हूँ एवं प्राणियों को विनीत करने के लिए उन्हें उपाय का उपदेश देता हूँ। उस समय मैं निर्वाण को नहीं प्राप्त होता, बल्कि यहीं वर्त्तमान रहकर धर्म का संप्रकाशन करता हूँ।

तत्रापि चात्मानमधिष्ठहामि
सर्वांश्च सत्त्वान तथैव चाहम् ।
विपरीतबुद्धी च नरा विमूढाः
तत्रैव तिष्ठन्तु न पश्यिषू माम् ।।४।।

वहाँ अपने-आपको वर्त्तमान रखकर मैं सभी प्राणियों को धर्म में अधिष्ठित करता हूँ, किन्तु विपरीतबुद्धि मूढ मनुष्य वहीं रहते हैं और मुझे नहीं देखते।

परिनिर्वृतं दृष्ट्व ममात्मभावं
धातूषु पूजां विविधां करोन्ति ।
मां चा अपश्यन्ति जनेन्ति तृष्णां
ततोर्जुकं चित्त प्रभोति तेषाम् ।।५।।

किन्तु, वे जब मुझे निर्वाणप्राप्त देख लेते हैं, तब मेरे धात्ववशेषों की विविध प्रकार से पूजा करते है और मुझे न देखते हुए मेरे दर्शनों के लिए लालायित होते हैं। उस समय उनका चित्त सरल हो जाता है।

ऋजू यदा ते मृदुमार्दवाश्च
उत्सृष्टकामाश्च भवन्ति सत्त्वाः ।
ततो अहं श्रावकसंघ कृत्वा
आत्मान दर्शेम्यहु गृध्रकूटे ।।६।।

जिस समय वे प्राणी सरलचित्त एवं कोमलता से परिपूर्ण हो जाते हैं तथा सभी कामों को त्याग देते हैं, उस समय मैं अपने श्रावक-संघ के समेत अपने-आपको गृध्रकूट पर प्रकट करता हूँ।

एवं च हं तेष वदामि पश्चात्
इहैव नाहं तद आसि निर्वृतः ।
उपायकौशल्य ममेति भिक्षवः
पुनः पुनो भोम्यहु जीवलोके ।।७।।

तदनन्तर, मैं उनलोगों से इस प्रकार कहता हूँ——मैं सदा से यहीं हूँ। उस समय निर्वाण को प्राप्त नहीं हुआ था। हे भिक्षुओ! यह तो मेरा उपायकौशल्य है, जो मैं कहता हूँ कि इस संसार में पुनः-पुनः प्रकट होता हूँ।

अन्येहि सत्त्वेहि पुरस्कृतोऽहं
तेषां प्रकाशेमि ममाग्रबोधिम्।
यूयं च शब्दं न शृणोथ मह्यं
अन्यत्र सो निर्वृतु लोकनाथः ॥८॥

अन्य प्राणियों के द्वारा पुरस्कृत होकर मैं उनके सम्मुख अपनी इस श्रेष्ठ बोधि को प्रकाशित करता हूँ। तुमलोग तबतक मेरे उपदेश को नहीं सुनोगे, जबतक लोकनाथ के निर्वाण प्राप्त लेने का समाचार तुम्हें नहीं मिलेगा।

पश्याम्यहं सत्त्व विहन्यमानां
न चाहु दर्शेमि तदात्मभावम्।
स्पृहेन्तु, तावन्मम दर्शनस्य
तृषितान सद्धर्मु प्रकाशयिष्ये ॥९॥

मैं प्राणियों को कष्ट में पड़ा देखकर भी उन्हें अपना दर्शन नहीं देता हूँ। वे मेरे दर्शनों के लिए लालायित एवं तृषित होंगे, तभी मैं उनके सम्मुख सद्धर्म को प्रकाशित करूँगा।

सदाधिष्ठानं मम एतदीदृशं
अचिन्तिया कल्पसहस्रकोट्यः
न च च्यवामी इतु गृध्रकूटात्
अन्यासु शय्यासनकोटिभिश्च ॥१०॥

अचिन्त्य सहस्र कोटि कल्पों से मेरा यही दृढ निश्चय रहा है। करोड़ों शय्या एवं आसनों के कारण भी मैं इस गृध्रकूट से च्युत होकर अन्य स्थानों पर नहीं जाता।

यदापि सत्त्वा इम लोकधातुं
पश्यन्ति कल्पेन्ति च दह्यमानम्।
तदापि चेदं मम बुद्धक्षेत्रं
परिपूर्ण भोती मरुमानुषाणाम् ॥११॥

जिस समय प्राणी इस लोकधातु को देखते हैं और इसे जलती हुई समझते हैं, उस समय भी मेरा यह बुद्धक्षेत्र देवों एवं मनुष्यों से परिपूर्ण रहता है।

क्रीडा रती तेष विचित्र भोति
उद्यानप्रासादविमानकोट्यः
प्रतिमण्डितं रत्नमयैश्च पर्वतै-
र्द्रुमैस्तथा पुष्पफलैरुपेतैः ।।१२।।

वे विचित्र प्रकार की क्रीडाएँ करते हैं एवं आनन्द उठाते हैं। उनके करोड़ों उद्यान, महल एवं विमान होते हैं, जो रत्नमय पर्वतों एवं फल-फूल से सम्पन्न वृक्षों से सुशोभित होते हैं।

उपरि च देवाऽभिहनन्ति तूर्यान्
मन्दारवर्षं च विसर्जयन्ति ।
ममं च अभ्योकिरि श्रावकांश्च
ये चान्य बोधाविह प्रस्थिता विदू ।।१३।।

ऊपर आकाश में देवता तूर्य बजा रहे हैं। वे मन्दार-पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं तथा उनके द्वारा मुझे, श्रावकों एवं अन्य विद्वानों को, जो बोधि में प्रस्थित हैं, ढग रहे हैं।

एवं च मे क्षेत्रमिदं सदा स्थितं
अन्ये च कल्पेन्तिमु दह्यमानम् ।
सुभैरवं पश्यिषु लोकधातुं
उपद्रुतं शोकशताभिकीर्णम् ।।१४।।

इस प्रकार मेरा यह क्षेत्र सदा स्थिर रहता है, किन्तु दूसरे इसे जलता हुआ समझते हैं। उनकी दृष्टि में यह लोकधातु अत्यन्त भयंकर उपद्रवों से परिपूर्ण एवं सैकड़ों प्रकार के दुःखों से व्याप्त है।

चापि मे नाम श्रृणोन्ति जातु
तथागतानां बहुकल्पकोटिभिः
धर्मस्य वा मह्य गणस्य चापि
पापस्य कर्मस्य फलेवरूपम् ।।१५।।

उनके पापकर्मों का फल इस प्रकार होता है कि उन्हें अनेक कोटि कल्पों तक मेरे, अन्य तथागतों के, धर्म के एवं गण के नाम को सुनने का कभी अवसर नहीं मिलता।

यदा तु सत्त्वा मृदु मार्दवाश्च
उत्पन्न भोन्तीह मनुष्यलोके ।
उत्पन्नमात्राश्च शुभेन कर्मणा
पश्यन्ति मां धर्मु प्रकाशयन्तम् ।।१६।।

किन्तु जब इस मनुष्यलोक में मृदु एवं दयालु प्राणी उत्पन्न होते हैं, तब वे उत्पन्न होते ही अपने शुभकर्मों के फलस्वरूप धर्म को प्रकाशित करते हुए मुझे देखते हैं।

न चाहु भाषामि कदाचि तेषां
इमां क्रियामीदृशिकीमनुत्तराम् ।
तेनो अहं दृष्ट चिरस्य भोमि
ततोऽस्य भाषामि सुदुर्लभा जिनाः ।।१७।।

मैं उन लोगों को अपनी इस प्रकार की इस श्रेष्ठ पूजा के विषय में कभी कुछ नहीं बतलाता। लोगों के द्वारा मैं चिरकाल के अनन्तर देखा जाता हूँ। अतएव, मैं उनसे कहता हूँ कि तथागत का दर्शन दुर्लभ है।

एतादृशं ज्ञानबलं ममेदं
प्रभास्वरं यस्य न कश्चिदन्तः ।
आयुश्च मे दीर्घमनन्तकल्पं
समुपार्जितं पूर्व चरित्व चर्याम् ।।१८।।

मेरा यह समुज्ज्वल ज्ञानबल इस प्रकार का है, जिसका अन्त प्राप्त करना सम्भव नहीं है। मेरी आयु भी अनन्त कल्पों की होने से अत्यन्त दीर्घ है और इसे मैंने पूर्वकाल में अपनी चर्या का समुचित रूप से पालन करके प्राप्त किया है।

मा संशयं अत्र कुरुध्व पण्डिता
विचिकित्सितं चो जहथा अशेषम् ।
भूतां प्रभाषाम्यहमेत वाचं
मृषा ममा नैव कदाचि वाग् भवेत् ।।१९।।

हे पण्डितो! इस विषय में संशय मत करो एवं सम्पूर्ण विचिकित्सा को त्याग दो। मैं बिलकुल सत्य वचन बोलता हूँ, यतः मेरी वाणी कभी झूठी नहीं होती है।

यथा हि सो वैद्य उपायशिक्षितो
विपरीतसंज्ञीन सुतान हेतोः ।
जीवन्तमात्मान मृतेति ब्रूयात्
तं वैद्यु विज्ञो न मृषेण चोदयेत् ।।२०।।

जिस प्रकार उपाय को जाननेवाला वह वैद्य अपने विपरीत ज्ञान रखनेवाले पुत्रों के लिए, जीते हुए भी अपने को मृतक बतलाता है और उसपर विद्वान् झूठ बोलने का दोषारोपण नहीं करते।

यमेव हं लोकपिता स्वयम्भूः
चिकित्सकः सर्वप्रजान नाथः ।
विपरीतमूढांश्च विदित्व बालान्
अनिर्वृतो निर्वृत दर्शयामि ॥२१॥

उसी प्रकार मैं भी स्वयम्भू, लोक का पिता सभी प्रजा का स्वामी एवं विचिकित्सक हूँ और इन मूर्ख प्राणियों को विपरीत ज्ञानवाला जानकर मैं यद्यपि कि निर्वाण को प्राप्त नहीं हुआ हूँ, तथापि कहता हूँ कि निर्वाण को प्राप्त हो गया ।

किं कारणं मह्यमभीक्षणदर्शनाद्
विश्रद्ध भोन्ती अबुधा अजानकाः ।
विश्वस्त कामेषु प्रमत्त भोन्ती
प्रमादहेतोः प्रपतन्ति दुर्गतिम् ॥२२॥

क्या कारण है कि वे मूर्ख एवं अज्ञान मुझे निरन्तर देखते रहने पर भी मुझपर अश्रद्धा रखने लगते हैं और प्रसाद के कारण अपने कामों के प्रति प्रमादी हो जाते हैं और इस प्रमाद के फलस्वरूप दुर्गति को प्राप्त करते हैं ।

चर्यिं चर्यिं जानिय नित्यकालं
वदामि सत्त्वान तथा तथाहम् ।
कथं नु बोधावुपनामयेयं
कथ बुद्धधर्माण भवेयु लाभिनः ॥२३॥

मैं सदा उनकी विभिन्न चर्या को जानकर उसके अनुसार मैं उन प्राणियों उपदेश देता हूँ । मैं चाहता हूँ कि किसी प्रकार उन्हें बोधि में उपनीत कर दूँ, जिससे वे बुद्धधर्म को प्राप्त करने में समर्थ हो जायँ ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये तथागतायुष्प्रमाणपरिवर्तो
नाम पञ्चदशमः ॥१५॥

श्रेष्ठसद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का तथागतायुष्प्रमाण नामक पन्द्रहवा परिवर्त
समाप्त हुआ ।

पुण्यपर्यायपरिवर्त

अस्मिन् खलु पुनस्तथागतायुष्प्रमाणनिर्देशे निर्दिश्यमानेऽप्रमेयाणामसंख्येयानां सत्त्वानामर्थः कृतोऽभूत् । अथ खलु भगवान् मैत्रेयं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमामन्त्रयते स्म । अस्मिन् खलु पुनरजित तथागतायुष्प्रमाणनिर्देशधर्मपर्याये निर्दिश्यमानेऽष्टषष्टिगङ्गानदीवालुकासमानां बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणामनुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिरुत्पन्ना । एभ्यः सहस्रगुणेन येषां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां धारणीप्रतिलम्भोऽभूत् । अन्येषां च साहस्रिकलोकधातुपरमाणुरजःसमानां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानामिमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा असङ्गप्रतिभानताप्रतिलम्भोऽभूत् । अन्येषां च द्विसाहस्रिकलोकधातुपरमाणुरजःसमानां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां कोटीनयुतशतसहस्रपरिवर्ताया धारण्याः प्रतिलम्भोऽभूत् । अन्ये च त्रिसाहस्रिकलोकधातुपरमाणुरजःसमा बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वावैवर्त्यधर्मचक्रं प्रवर्तयामासुः । अन्ये च मध्यमकलोकधातुपरमाणुरजःसमा बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा विमलनिर्भासचक्रं प्रवर्तयामासुः । अन्ये च क्षुद्रकलोकधातुपरमाणुरजःसमा बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वाष्टजाति [प्रति] बद्धा अभूवन्ननुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । अन्ये च चतुश्चातुर्द्वीपिका लोकधातुपरमाणुरजःसमा बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा चतुर्जातिप्रतिबद्धा अभूवन्ननुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । अन्ये च त्रिचातुर्द्वीपिका लोकधातुपरमाणुरजःसमा बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा त्रिजातिप्रतिबद्धा अभूवन्ननुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । अन्ये च द्विचातुर्द्वीपिका लोकधातुपरमाणुरजःसमा बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा द्विजातिप्रतिबद्धा अभूवन्ननुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । अन्ये चैकचातुर्द्वीपिकालोकधातुपरमाणुरजःसमा बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वैकजातिप्रतिबद्धा अभूवन्ननुत्तरायां सम्यक् संबोधौ । अष्टत्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातुपरमाणुरजःसमैश्च बोधिसत्त्वैर्महासत्त्वैरिमं धर्मपर्यायं श्रुत्वानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ चित्तान्युत्पादितानि ।

इस तथागतायुष्प्रमाणपरिवर्त के निर्देशन-काल में अप्रमेय, असंख्य प्राणियों ने इससे लाभ प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात्, भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय से बोले—हे अजित ! इस तथागतायुष्प्रमाणनिर्देश नामक धर्मपर्याय के निर्देशन-काल में ही अड़सठ

गंगा नदियों की बालुका के समान कोटि नयुत शतसहस्र बोधिसत्त्वों को अनुत्पत्तिक धर्मक्षान्ति प्राप्त हो गई। इससे हजारगुना अधिक महासत्त्व बोधिसत्त्वों को धारणी की प्राप्ति हुई। इस धर्मपर्याय को सुनकर साहस्रिक लोकधातु के परमाणु-कणों के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्वों को असंगप्रतिभानता की प्राप्ति हुई। दो साहस्रिक लोकधातुओं के परमाणु-कणों के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्वों को कोटि नयुत शतसहस्र परिवर्त्तोंवाली धारणी की प्राप्ति हुई। तीन साहस्रिक लोकधातुओं के परमाणु-कणों के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्वों ने इस धर्मपर्याय को सुनकर अवैवर्त्ती धर्मचक्र को प्रवर्त्तित किया। मध्यमक लोकधातु के परमाणु-कणों के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्वों ने इस धर्मपर्याय को सुनकर विमलनिर्भासचक्र को प्रवर्त्तित किया। क्षुद्रक लोकधातु के परमाणु-कणों के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्व इस धर्मपर्याय को सुनकर आठ जन्मों तक के लिए श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में प्रतिबद्ध हो गये। चार चातुर्द्वीपिक लोकधातु के परमाणु-कणों के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्व इस धर्मपर्याय को सुनकर चार जन्मों तक के लिए श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में प्रतिबद्ध हो गये। तीन चातुर्द्वीपिक लोकधातु के परमाणु-कणों के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्व इस धर्मपर्याय को सुनकर तीन जन्मों तक के लिए श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में प्रतिबद्ध हो गये। दो चातुर्द्वीपिक लोकधातु के परमाणु-कणों के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्व इस धर्मपर्याय को सुनकर दो जन्मों तक के लिए श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में प्रतिबद्ध हो गये। एक चातुर्द्वीपिक लोकधातु के परमाणु-कणों के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्व इस धर्मपर्याय को सुनकर एक जन्म तक के लिए श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में प्रतिबद्ध हो गये। आठ त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु के परमाणु-कणों के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्वों ने इस धर्मपर्याय को सुनकर श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में चित्त (झुकाव) उत्पन्न किया।

अथ समनन्तरनिर्दिष्टे भगवतैषां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां धर्माभिसमये प्रतिष्ठाने अथ तावदेवोपरिवैहायसादन्तरीक्षान्मान्दारवमहामान्दारवाणां पुष्पाणां पुष्पवर्षमभिप्रवृष्टं तेषु च लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु यानि तानि बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राण्यागत्य रत्नवृक्षमूलेषु सिंहासनोपविष्टानि तानि सर्वाणि चावकिरन्ति स्माभ्यवकिरन्ति स्माभिप्रकिरन्ति स्म। भगवन्तं च शाक्यमुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं तं च भगवन्तं प्रभूतरत्नं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं परिनिर्वृतं सिंहासनोपविष्टमवकिरन्ति स्माभ्यवकिरन्ति स्माभिप्रकिरन्ति स्म। तं च सर्वावन्तं बोधिसत्त्वगणं ताश्चतस्रः पर्षदोऽवकिरन्ति स्माभ्यवकिरन्ति स्माभिप्रकिरन्ति स्म। दिव्यानि च चन्दनागरुचूर्णान्यन्तरीक्षात् प्रवर्षन्ति स्मोपरिष्टाच्चान्तरीक्षे वैहायसं महादुन्दुभयोऽघट्टिताः प्रणेदुर्मनोज्ञमधुरगम्भीरनिर्घोषाः। दिव्यानि च दूष्ययुग्मशतसहस्राण्युपरिष्टादन्त-

रीक्षात् प्रपतन्ति स्म । हारार्धहारमुक्ताहारमणिरत्नमहारत्नानि चोपरिष्टाद्वैहायसमन्तरीक्षे समन्तात् सर्वासु दिक्षु प्रलम्बन्ति स्म । समन्ताच्चानर्घप्राप्तस्य धूपस्य घटिकासहस्राणि रत्नमयानि स्वयमेव प्रविचरन्ति स्म । एकैकस्य च तथागतस्य रत्नमयीं छत्रावलीं यावद् ब्रह्मलोकादुपरिवैहायसमन्तरीक्षे बोधिसत्त्वा महासत्त्वा धारयामासुः । अनेन पर्यायेण सर्वेषां तेषामप्रमेयाणामसंख्येयानां बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राणां ते बोधिसत्त्वा महासत्त्वा रत्नमयीं छत्रावलीं यावद् ब्रह्मलोकादुपरिवैहायसमन्तरीक्षे धारयामासुः । पृथक् पृथग्गाथाभिर्निर्हारैर्भूतैर्बुद्धस्तवैस्तांस्तथागतानभिष्टुवन्ति स्म ।

भगवान् ने ज्योंही इन महासत्त्व बोधिसत्त्वों को धर्माभिसमय एवं प्रतिष्ठान के विषय में उपदेश देना समाप्त किया, त्योंही ऊपर आकाश से, अन्तरिक्ष से मान्दारव एवं महामान्दारव फूलों की वर्षा हुई, जिसने उन कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुओं में रत्नवृक्ष के मूल में बैठे हुए उन सभी कोटि नयुत शतसहस्र बुद्धों के ऊपर (फूल) अवकीर्ण, अभ्यवकीर्ण अभिप्रकीर्ण किये । उसने उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि तथा सिंहासन पर बैठे हुए उन निर्वाणप्राप्त तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न पर भी फूल अवकीर्ण अभ्यवकीर्ण, अभिप्रकीर्ण किये । उसने उस पूरे बोधिसत्त्वगण एवं चार परिषदों पर फूल अवकीर्ण, अभ्यवकीर्ण, अभिप्रकीर्ण किये । दिव्य चन्दन, एवं अगरुचूर्ण की अन्तरिक्ष से वर्षा हुई और ऊपर अन्तरिक्ष में, आकाश में विना बजाये ही महान् दुन्दुभियाँ मनोज्ञ, मधुर एवं गम्भीर शब्द करने लगीं । ऊपर आकाश से शतसहस्र दिव्य वस्त्रयुगल बरसने लगे । हार, अर्धहार, मुक्ताहार, मणि, रत्न एवं महारत्न ऊपर अन्तरिक्ष में, आकाश में चारों ओर सभी दिशाओं में लटकने लगे एवं चारों ओर कीमती धूप की रत्ननिर्मित सहस्रों घटिकाएँ स्वयं हिलने लगीं । प्रत्येक तथागत की आकाश में, अन्तरिक्ष में, ब्रह्मलोक तक फैली हुई रत्नमयी छत्रावली को महासत्त्व बोधिसत्त्व धारण किये हुए थे । इसी प्रकार, उन सभी अप्रमेय, असंख्य, कोटि नयुत शतसहस्र बुद्धों की आकाश में, अन्तरिक्ष में, ब्रह्मलोक तक फैली हुई रत्नमयी छत्रावली को वे महासत्त्व बोधिसत्त्व धारण किये हुए थे । वे पृथक्-पृथक् चुनी हुई स्तुति-गाथाओं द्वारा उन बुद्धों की स्तुति कर रहे थे ।

अथ खलु मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय उस समय ये गाथाएँ बोले—

आश्चर्य धर्मः सुगतेन श्रावितो न जातु अस्माभिः श्रुतैष पूर्वम् ।
महात्मता यादृशि नायकानां आयुष्प्रमाणं च यथा अनन्तम् ।।१।।

आप, सुगत ने हमें आश्चर्यजनक धर्म का उपदेश किया है। इसे हमलोगों ने पहले कभी नहीं सुना था । उन्होंने बताया है कि नायकों का माहात्म्य कितना अधिक है एवं उनकी आयु का प्रमाण कितना अनन्त है ।

एवं च धर्मं श्रुणियान अद्य विभज्यमानं सुगतेन संमुखम् ।
प्रीतिस्फुटाः प्राणसहस्रकोट्यो य औरसा लोकविनायकस्य ।।२।।

आज सुगत के द्वारा सम्मुख कहे जाते हुए इस धर्म को सुनकर लोकविनायक के औरस पुत्र के समान ये सहस्र कोटि प्राणी आनन्द में निमग्न हो गये हैं ।

अविवर्तिया केचि स्थिताग्रबोधौ केचि स्थिता धारणिये वरायाम् ।
असङ्गप्रतिभाणि स्थिताश्च केचित् कोटीसहस्राय च धारणीये ।।३।।

कुछ लोग अविवर्त्ती अग्रबोधि में स्थित हो गये हैं, कुछ लोग श्रेष्ठ धारणी में स्थित हो गये हैं, कुछ लोग असंग प्रतिभान में स्थित हो गये हैं एवं कुछ लोग कोटि सहस्र धारणी में स्थित हो गये हैं ।

परमाणु क्षेत्रस्य तथैव चान्ये ये प्रस्थिता उत्तमबुद्धज्ञाने ।
केचिच्च जातीभि तथैव चाष्टभि जिना भविष्यन्ति अनन्तदर्शिनः ।।४।।

लोकधातु के परमाणु-कणों के समान असंख्य कुछ अन्य प्राणी श्रेष्ठ बुद्धज्ञान में प्रस्थित हो गये हैं एवं कुछ लोग आठ जन्मों के अनन्तर अनन्तदर्शी सुगत हो जायेंगे ।

केचित्तु चत्वारि अतिक्रमित्वा केचित्त्रिभिश्चैव द्विभिश्च अन्ये ।
लप्स्यन्ति बोधिं परमार्थदर्शिनः श्रुणित्व धर्मं इमु नायकस्य ।।५।।

नायक के इस धर्म को सुनकर उनमें कुछ चार जन्मों के अनन्तर कुछ तीन एवं कुछ दो जन्मों के अनन्तर परमार्थदर्शी हो जायेंगे या बोधि प्राप्त करेंगे ।

केचापि एकाय स्थिहित्व जात्या सर्वज्ञ भोष्यन्ति भवान्तरेण ।
श्रुणित्व आयु इमु नायकस्य एतादृशं लब्धु फलं अनास्रवम् ।।६।।

उनमें कुछ एक जन्म के ही अनन्तर, दूसरे जन्म में सर्वज्ञ हो जायेंगे । इन नायक की आयु के विषय में सुनकर इस प्रकार का पवित्र फल प्राप्त होता है ।

अष्टान क्षेत्राण यथा रजो भवेत् एवाप्रमाणा गणनाय तत्तकाः ।
याः सत्त्वकोट्यो हि श्रुणित्व धर्मं उत्पादयिसू वरबोधिचित्तम् ।।७।।

आठ क्षेत्रों में जितने असंख्य रजःकण हैं, उतनी ही अगणित संख्या उन प्राणियों की है, जिन कोटि प्राणियों ने इस धर्म को सुनकर श्रेष्ठ बोधिज्ञान को प्राप्त किया है ।

एतादृशं कर्म कृतं महर्षिणा प्रकाशयन्तेनिम बुद्धबोधिम् ।
अनन्तकं यस्य प्रमाणु नास्ति आकाशधातू च यथाऽप्रमेयः ।।८।।

इस बुद्धज्ञान का प्रकाशन करके महर्षि ने इस तरह का कार्य किया है, जो अनन्त है, जिसका प्रमाण नहीं है एवं जो आकाशधातु के समान अप्रमेय है ।

मान्दारवाणां च प्रवर्षि वर्षं बहुदेवपुत्राण सहस्रकोट्यः ।
शक्राश्च ब्रह्मा यथ गङ्गवालिका ये आगता क्षेत्रसहस्रकोटिभिः ॥९॥

मान्दारवों की महती वर्षा हुई तथा अनेक कोटिसहस्र देवपुत्र, शक्र एवं ब्रह्माओं, जो सहस्रों कोटि क्षेत्रों से आकर वहाँ उपस्थित हुए थे, गंगा की बालुका के समान असंख्य थे ।

सुगन्धचूर्णानि च चन्दनस्य अगरुस्य चूर्णानि च मुञ्चमानाः ।
चरन्ति आकाशि यथैव पक्षी अभ्योकिरन्ता विधिवज्जिनेन्द्रान् ॥१०॥

चन्दन के सुगन्धित चूर्णों तथा अगरु के चूर्णों की वर्षा करते हुए वे आकाश में पक्षी की तरह विचरण कर रहे हैं एवं जिनेन्द्रों पर विधिपूर्वक इन वस्तुओं की वर्षा कर रहे हैं ।

उर्परि च वैहायसु दुन्दुभीयो निनादयन्तो मधुरा अघट्टिताः ।
दिव्यान दूष्याण सहस्रकोट्यः क्षिपन्ति भ्रामेन्ति च नायकानाम् ॥११॥

ऊपर आकाश में विना वजाये ही दुन्दुभियाँ मधुर स्वर करने लगीं तथा वे (देव-पुत्र) आकाश से नायकों के लिए सहस्रों कोटि दिव्यवस्त्र सुन्दर रीति से फेंकने लगे ।

अनर्घमूल्यस्य च धूपनस्य रत्नामयी घटिकसहस्रकोट्यः ।
स्वयं समन्तेन विचेरु तत्र पूजार्थ लोकाधिपतिस्य तायिनः ॥१२॥

उन शक्तिसंपन्न संसार के स्वामी की पूजा के लिए वहाँ आकाश में कीमती धूप की रत्ननिर्मित सहस्रों कोटि घटिकाएँ चारों ओर स्वतः घूमने लगीं ।

उच्चान् महन्तान् रतनामयांश्च छत्राण कोटीनयुताननन्तान् ।
धारन्तिमे पण्डित बोधिसत्त्वाः अवतंसकान् यावत ब्रह्मलोकात् ॥१३॥

ये असंख्य विद्वान् बोधिसत्त्व ब्रह्मलोक तक फैले हुए एवं आभूषण-स्वरूप इन कोटि नयुत ऊँचे, विशाल एवं रत्नमय छत्रों को धारण किये हुए हैं ।

सवैजयन्तांश्च सुदर्शनीयान् ध्वजांश्च ओरोपयि नायकानाम् ।
गाथासहस्रैश्च अभिष्टुवन्ति प्रहृष्टचित्ताः सुगतस्य पुत्राः ॥१४॥

ये सुगत के पुत्र प्रसन्नतापूर्वक वैजयन्तयुक्त सुन्दर ध्वजाओं को नायकों के ऊपर धारण किये हुए हैं तथा उनकी सहस्रों गाथाओं से स्तुति कर रहे हैं ।

एतादृशाश्चर्यविशिष्ट अद्भुता विचित्र दृश्यन्तिमि अद्य नायकाः ।
आयुष्प्रमाणस्य निदर्शनेन प्रामोद्यलब्धा इमि सर्वसत्त्वाः ॥१५॥

आज ये नायक इस प्रकार के आश्चर्यजनक अद्भुत एवं विचित्र वस्तुएँ दिखा रहे हैं। ये सभी प्राणी भी सुगत की आयु के प्रमाण की चर्चा सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हो रहे हैं !

विपुलोऽद्य अर्थो दशसू दिशासू घोषश्च अभ्युद्गतु नायकानाम् ।
संतर्पिताः प्राणिसहस्रकोट्यः कुशलेन बोधाय समन्विताश्च ।।१६।।

आज दसों दिशाओं में नायकों का विपुल एवं अर्थपूर्ण घोष उत्पन्न हो रहा है । उसे सुनकर सहस्रों कोटि प्राणी सन्तुष्ट हो गये एवं मंगलमय बोधि से समन्वित हो गये ।

अथ खलु भगवान् मैत्रेयं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमामन्त्रयते स्म । यैरजितास्मिंस्तथागतायुष्प्रमाणनिर्देशधर्मपर्याये निर्दिश्यमाने सत्त्वैरेकचित्तोत्पादिकाप्यधिमुक्तिरुत्पादिताभिश्रद्दधानता वा कृता कियत्ते कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा पुण्यं प्रसवन्तीति । तच्छृणु साधु च सुष्ठु च मनसिकुरु । भाषिष्येऽहं यावत् पुण्यं प्रसवन्तीति । तद् यथापि नामाजित कश्चिदेव कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वानुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिकाङ्क्षमाणः पञ्चसु पारमितास्वष्टौ कल्पकोटीनयुतशतसहस्राणि चरेत् । तद् यथा दानपारमितायां शीलपारमितायां क्षान्तिपारमितायां वीर्यपारमितायां ध्यानपारमितायां विरहितः प्रज्ञापारमितया । येन चाजित कुलपुत्रेण वा कुलदुहित्रा वेमं तथागतायुष्प्रमाणनिर्देशं धर्मपर्यायं श्रुत्वैकचित्तोत्पादिकाप्यधिमुक्तिरुत्पादिकाभिश्रद्दधानता वा कृता । अस्य पुण्याभिसंस्कारस्य कुशलाभिसंस्कारस्यासौ पौर्वकः पुण्याभिसंस्कारः कुशलाभिसंस्कारः पञ्चपारमिताप्रतिसंयुवतोऽष्टकल्पकोटीनयुतशतसहस्रपरिनिष्पन्नः शततमीमपि कलां नोपयाति सहस्रतमीमपि शतसहस्रतमीमपि कोटीशतसहस्रतमीमपि कोटीनयुतसहस्रतमीमपि कोटीनयुलशतसहस्रतमीपपि कलां नोपयाति संख्यामपि कलामपि गणनामप्युपमामप्युपनिषामपि न क्षमते । एवंरूपेणाजित पुण्याभिसंस्कारेण समन्वागतः कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा विवर्ततेऽनुत्तरायाः सम्यक्संबोधेरिति नैतत्स्थानं विद्यते ।

तत्पश्चात्, भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय से बोले—हे अजित ! इस तथागतायुष्प्रमाणनिर्देश नामक धर्मपर्याय के निर्देशन-काल में जिन प्राणियों ने केवल एक चित्तोत्पादिका अधिमुक्ति भी प्राप्त की तथा उसमें श्रद्धा की, वे कुलपुत्र एवं कुलकन्याएँ कितना पुण्य उत्पन्न करती हैं । मैं इसके विषय में बताता हूँ । इस बात को अच्छी तरह सुनो और अच्छी तरह मन में धारण करो । मैं बतलाऊँगा कि वे कितना पुण्य उत्पन्न करते हैं । हे अजित ! श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि का आकांक्षी कोई कुलपुत्र या कुलकन्या पाँच पारमिताओं—प्रज्ञापारिमिता के अतिरिक्त दानपारमिता, शीलपारमिता, क्षान्तिपारमिता, वीर्यपारमिता एवं ध्यानपारमिता—का आठ कोटि नयुत शतसहस्र कल्पों तक आचरण करे । हे अजित ! जिस कुलपुत्र या कुलपुत्री ने इस तथागतायुष्प्रमाणनिर्देश नामक धर्मपर्याय को सुनकर एकचित्तोत्पादिका अधिमुक्ति प्राप्त कर ली एवं उसमें श्रद्धा

उत्पन्न कर ली है, इसकी कल्याणकारिणी पुण्यराशि की तुलना में वह पहली [पंचपारमिता से युक्त एवं आठ कोटि नयुत शतसहस्र कल्पों में प्राप्त कल्याणकारिणी पुण्यराशि शतांश, सहस्रांश, शतसहस्रांश, कोटिशतसहस्रांश, कोटिनयुतसहस्रांश एवं कोटिनयुतशतसहस्रांश, भी नहीं है एवं उसकी तुलना में संख्या, कला, गणना, उपमा एवं निकट रखने की योग्यता भी इसमें नहीं है। हे अजित ! जो कुलपुत्र या कुलपुत्री इस प्रकार की पुण्यराशि से सम्पन्न हो, वह श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति में असफल होकर लौट आये, यह सर्वथा असम्भव है।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं--

यश्च पारमिताः पञ्च समादायेह वर्तते।
इदं ज्ञानं गवेषन्तो बुद्धज्ञानमनुत्तरम् ।।१७।।

जो पाँच पारमिताओं को प्राप्त करके इस संसार में इस बुद्धज्ञान-रूपी श्रेष्ठ ज्ञान की खोज में लगा रहता है;

कल्पकोटीसहस्राणि अष्टौ पूर्णानि युज्यते
दानं ददन्तो बुद्धेभ्यः श्रावकेभ्यः पुनः पुनः ।।१८।।

वह पूर्ण आठ कोटि सहस्र कल्पों तक बुद्धश्रावकों को पुनः-पुनः दान देने में लगा रहता है।

प्रत्येकबुद्धांस्तर्पेन्तो बोधिसत्त्वान कोटियः।
खाद्यभोज्यान्नपानेहि वस्त्रशय्यासनेहि च ।।१९।।

वह करोड़ों प्रत्येकबुद्धों एवं बोधिसत्त्वों को खाद्य, भोज्य, अन्न एवं पान तथा वस्त्र, शय्या एवं आसन से सन्तुष्ट करता रहता है।

प्रतिश्रयान् विहारांश्च चन्दनस्येह कारयेत्।
आरामान् रमणीयांश्च चंक्रमस्थानशोभितान् ।।२०।।

वह यहाँ चन्दन की लकड़ी का प्रतिश्रय एवं विहार तथा रमणीय चंक्रमस्थान से सुशोभित उपवन बनवाये।

एतादृशं ददित्वान दानं चित्रं बहूविधम्।
कल्पकोटीसहस्राणि दत्त्वा बोधाय नामयेत् ।।२१।।

हजारों करोड़ कल्पों तक इस प्रकार के चित्र-विचित्र एवं विविध दानों को देकर अन्त में बोधिप्राप्ति की ओर झुके।

पुनश्च शीलं रक्षेत शुद्धं संबुद्धवर्णितम्।
अखण्डं संस्तुतं विज्ञैर्बुद्धज्ञानस्य कारणात् ।।२२।।

पुनः बुद्धज्ञान की प्राप्ति के लिए सम्बुद्धों के द्वारा वर्णित एवं विज्ञों के द्वारा संस्कृत इस शुद्ध एवं अखण्ड शील की रक्षा करे।

पुनश्च क्षान्तिं भावेत दान्तभूमौ प्रतिष्ठितः।
धृतिमान् स्मृतिमांश्चैव परिभाषाः क्षमे बहूः ।। २३।।

पुनः दान्तभूमि में प्रतिष्ठित होकर, क्षान्ति का चिन्तन कर तथा धैर्यवान् एवं स्मृतिमान् होकर अनेक निन्दाओं का सहन करे।

ये चोपलम्भिकाः सत्त्वा अधिमाने प्रतिष्ठिताः।
कुत्सनं च सहेत्तेषां बुद्धज्ञानस्य कारणात् ।।२४।।

बुद्धज्ञान की प्राप्ति के हेतु वह उन प्राणियों के निन्दापूर्ण शब्दों को सहे, जो उपलम्भिक है एवं अभिमान में चूर है।

नित्योद्युक्तश्च वीर्यस्मिन् अभियुक्तो दृढस्मृतिः।
अनन्यमनसंकल्पो भवेया कल्पकोटियः ।।२५।।

वह करोड़ों कल्पों तक सदा तत्पर, बलशाली, परिश्रमी, दृढस्मृति एवं एकाग्र मन से अपने लक्ष्य की पूर्त्ति में संलग्न रहे।

अरण्यवासि तिष्ठन्तो चंक्रमं अभिरुह्य च।
स्त्यानमिद्धं च वर्जित्वा कल्पकोट्यो हि यश्चरेत् ।।२६।।

वह चाहे जंगल में रहे, चाहे संचरणशील भिक्षु का जीवन व्यतीत करे, किन्तु उसे सदा कोटि कल्पों तक आलस्य एवं प्रमाद को त्याग कर आचरण करना चाहिए।

यच्च ध्यायी महाध्यायी ध्यानारामः समाहितः।
कल्पकोट्यः स्थितो ध्यायेत् सहस्राण्यष्टऽनूनकाः ।।२७।।

जो ध्यायी, महाध्यायी, ध्यान में आनन्द लेनेवाला एवं समाधिस्थ रहनेवाला है, उसे पूरे आठ सहस्र कल्पों तक ध्यान में स्थित रहना चाहिए।

तेन ध्यानेन सो वीरः प्रार्थयेद् बोधिमुत्तमाम्।
अहं स्यामिति सर्वज्ञो ध्यानपारमितां गतः ।।२८।।

वह वीर ध्यान के द्वारा श्रेष्ठबोधि की प्राप्ति की इच्छा करे और चाहे कि मैं ध्यानपारमिता को प्राप्त करके सर्वज्ञ हो जाऊँ।

यश्च पुण्यं भवेत्तेषां निषेवित्वा इमां क्रियाम्।
कल्पकोटीसहस्राणि ये पूर्वं परिकीर्तिताः ।।२९।।

इस क्रिया का कोटि सहस्रकल्पों तक सेवन करके उन लोगों को जो पुण्य प्राप्त होंगे, उनकी चर्चा मैंने पहले ही कर दी है।

आयु च मम यो श्रुत्वा स्त्री वापि पुरुषोऽपि वा ।
एकक्षणं पि श्रद्धाति इदं पुण्यमनन्तकम् ।।३०।।

उस अनन्त पुण्यराशि को वह स्त्री या पुरुष प्राप्त करेगा, जो मेरी आयु के विषय में सुनकर उसमें एक क्षण के लिए भी श्रद्धा कर लेगा ।

विचिकित्सां च वर्जित्वा इञ्जिता मन्यितानि च ।
अधिमुच्येन्मुहूर्त्तं पि फलं तस्येदमीदृशम् ।।३१।।

विचिकित्सा, स्थिरता एवं दुराग्रहों को छोड़कर एक क्षण के लिए भी विश्वास करने लगे, तो उसे इस तरह का यह फल प्राप्त होगा ।

बोधिसत्त्वाश्च ये भोन्ति चरिताः कल्पकोटियः ।
न ते त्रसन्ति श्रुत्वेदं मम आयुरचिन्तियम् ।।३२।।

जिन बोधिसत्त्वों ने कोटिकल्पों तक इसका आचरण किया है, वे मेरी इस अचिन्त्य आयु के विषय में सुनकर त्रस्त नहीं होंगे ।

मूर्धेन च नमस्यन्ति अहमप्येदृशो भवेत् ।
अनागतस्मिन्नध्वानि तारेयं प्राणिकोटियः ।।३३।।

वे मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हैं और मन में इच्छा करते हैं कि मैं भी ऐसा ही हो जाऊँ और भविष्यत् काल में, आनेवाले समय में कोटि प्राणियों का उद्धार करूँ ।

यथा शाक्यमुनिर्नाथः शाक्यसिंहो महामुनिः ।
बोधिमण्डे निषीदित्वा सिंहनादमिदं नदेत् ।।३४।।

संसार के स्वामी महामुनि शाक्यसिंह शाक्यमुनि ने बोधिमण्ड पर बैठकर जैसा सिंहनाद किया था, वैसा ही सिंहनाद मैं भी करूँ ।

अहमप्यनागतेऽध्वानि सत्कृतः सर्वदेहिनाम् ।
बोधिमण्डे निषीदित्वा आयुं देशेष्यमीदृशम् ।।३५।।

मैं भी भविष्यत्काल में सभी प्राणियों के द्वारा सत्कृत होकर, बोधिमण्ड पर बैठकर उन्हें इसी प्रकार की आयु की देशना करूँ ।

अध्याशयेन संपन्नाः श्रुताधाराश्च ये नराः ।
संधाभाष्यं विजानन्ति काङक्षा तेषां न विद्यते ।।३६।।

जो प्राणी अध्याशय से सम्पन्न हैं, आधारभूत सिद्धान्तों का श्रवण किया है एवं सन्धाभाष्य को जानते हैं, उन्हें कभी किसी विषय में सन्देह नहीं होता ।

पुनरपरमजित य इमं तथागतायुष्प्रमाणनिर्देशं धर्मपर्यायं श्रुत्वावतरेदधिमुच्येतावगाहेतावबुध्येत सोऽस्मादप्रमेयतरं पुण्याभिसंस्कारं प्रसवद् बुद्धज्ञानसंवर्तनीयम् । कः पुनर्वादो य इममेवंरूपं धर्मपर्यायं शृणुयाच्छ्रावयेद् वाचयेद् धारयेद्वा लिखेद्वा लिखापयेद्वा पुस्तकगतं वा सत्कुर्याद् गुरुकुर्यान्मानयेत् पूजयेत् सत्कारयेद्वा पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकाभिस्तैलप्रदीपैर्वा घृतप्रदीपैर्वा गन्धतैलप्रदीपैर्वा बहुतरं पुण्याभिसंस्कारं प्रसवेद् बुद्धज्ञानसंवर्तनीयम् ।

पुनः, हे अजित ! जो (पुरुष) इस तथागतायुष्प्रमाणनिर्देश नामक धर्मपर्याय को सुनकर उसमें अवतार, अधिमुक्ति, अवगाहन एवं अवरोधन प्राप्त कर ले, वह इससे अधिक बुद्धज्ञान को प्राप्त करानेवाली अप्रमेय पुण्यराशि उत्पन्न करेगा । पुनः, उसका क्या कहना, जो इस प्रकार के इस धर्मपर्याय को सुने, सुनाये, पढ़े, धारण करे, लिखे, लिखाये, अथवा (इसको) पुस्तकगत करके इसका सत्कार, आदर, सम्मान एवं पूजन करे अथवा पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका, तैलप्रदीप, घृतप्रदीप और गन्धतैलप्रदीप से इसका सत्कार करे, वह तो बुद्धज्ञान को प्राप्त करानेवाली प्रभूत पुण्यराशि उर्त्पन्न करेगा ।

यदा चाजित स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वेमं तथागतायुष्प्रमाणनिर्देशं धर्मपर्यायं श्रुत्वाध्याशयेनाधिमुच्यते तदा तस्येदमध्याशयलक्षणं वेदितव्यं यदुत गृध्रकूटपर्वतगतं मां धर्मं निर्देशयन्तं द्रक्ष्यति बोधिसत्त्वगणपरिवृतं बोधिसत्त्वगणपुरस्कृतं श्रावकसंघमध्यगतम् । इदं च मे बुद्धक्षेत्रं सहां लोकधातुं वैडूर्यमयीं समप्रस्तरां द्रक्ष्यति सुवर्णसूत्राष्टापदविनद्धां रत्नवृक्षैर्विचित्रिताम् । कूटागारपरिभोगेषु चात्र बोधिसत्त्वान् निवसतो द्रक्ष्यति । इदमजिताध्याशयेनाधिमुक्तस्य कुलपुत्रस्य वा कुलदुहितुर्वाध्याशयलक्षणं वेदितव्यम् ।

हे अजित ! जब वह कुलपुत्र या कुलकन्या इस तथागतायुष्प्रमाणनिर्देश नामक धर्मपर्याय को सुनकर अध्याशय, अधिमुक्ति प्राप्त कर ले, तब उसकी अध्याशय-प्राप्ति का यह लक्षण समझना चाहिए। (उसे) मैं गृध्रकूट पर्वत पर विराजमान श्रावकसंघ के मध्य महासत्त्वों के गण से परिवृत्त धर्म की देशना करता हुआ दिखाई पड़ेगा । उसे यह मेरा बुद्धक्षेत्र सहा (नामक) लोकधातु वैदूर्यमय, चौरस, सुवर्ण सूत्रनिर्मित, अष्टपदों से बँधा हुआ एवं रत्नवृक्षों से सुशोभित दिखाई पड़ेगा । वह इन कूटागार की वलभियों में निवास करते हुए बोधिसत्त्वों को देखेगा । हे अजित ! यही अध्याशय प्राप्त करके मुक्त हुए कुलपुत्र या कुलकन्या के अध्याशय प्राप्त करने का लक्षण है ।

अपि तु खलु पुनरजित तानप्यहमध्याशयाधिमुक्तान् कुलपुत्रान् वदामि ये तथागतस्य परिनिर्वृतस्येमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा न प्रतिक्षेप्स्यन्त्युत्तरि चाभ्यनु-

मोदयिष्यन्ति। कः पुनर्वादो ये धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति। ततस्तथागतं सोंऽसेन परिहरति य इमं धर्मपर्यायं पुस्तकगतं कृत्वांसेन परिहरति। न मे तेनाजित कुलपुत्रेण वा कुलदुहित्रा वा स्तूपाः कर्तव्या न विहाराः कर्तव्या न भिक्षुसंघाय ग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारास्तेनानुप्रदेया भवन्ति। तत् कस्य हेतोः। कृता मे तेनाजित कुलपुत्रेण वा कुलदुहिता वा शरीरेषु शरीरपूजा सप्तरत्नमयाश्च स्तूपाः कारिता यावद् ब्रह्मलोकमुच्चैस्त्वेनानुपूर्वपरिणाहेन सच्छत्त्रपरिग्रहाः सवैजयन्तीका घण्टासमुद्गानुरताः तेषां च शरीरस्तूपानां विविधाः सत्काराः कृता नानाविधैर्दिव्यैर्मानुष्यकैः पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावैजयन्तीभिर्विविधमधुरमनोज्ञपटुपटहदुन्दुभिमहादुन्दुभिभिर्वाद्यताड़निनादनिर्घोषशब्दैर्नानाविधैश्च गीतनृत्यलास्यप्रकारैर्बहुभिरपरिमितैर्बह्वप्रमेयाणि कल्पकोटीनयुतशतसहस्राणि सत्कारः कृतो भवति। इमं धर्मपर्यायं मम परिनिर्वृतस्य धारयित्वा वाचयित्वा लिखित्वा प्रकाशयित्वा विहारा अपि तेनाजित कृता भवन्ति विपुला विस्तीर्णाः प्रगृहीताश्च लोहितचन्दनमया द्वात्रिंशत्प्रासादा अष्टतला भिक्षुसहस्रावासा आरामपुष्पोपशोभिताश्चंक्रमवनोपेताः शयनासनोपस्तब्धाः खाद्यभोज्यान्नपानग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारपरिपूर्णाः सर्वसुखोपधानप्रतिमण्डिताः। ते च बह्वप्रमेया यदुत शतं वा सहस्रं वा शतसहस्रं वा कोटी वा कोटीशतं वा कोटीसहस्रं वा कोटीशतसहस्रं वा कोटीनयुतशतसहस्रं वा। ते च मम संमुखं श्रावकसंघस्य निर्यातितास्ते च मया परिभुक्ता वेदितव्याः। य इमं धर्मपर्यायं तथागतस्य परिनिर्वृतस्य धारयेद् वा वाचयेद्वा देशयेद्वा लिखेद्वा लेखयेद्वा तदनेनाहमजित पर्यायेणैवं वदामि। न मे तेन परिनिर्वृतस्य धातुस्तूपाः कारयितव्या न संघपूजा। कः पुनर्वादोऽजित य इमं धर्मपर्यायं धारयन् दानेन वा संपादयेच्छीलेन वा क्ष्यान्त्या वा वीर्येण वा ध्यानेन वा प्रज्ञया वा संपादयेद्बहुतरं पुण्याभिसंस्कारं स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा प्रसवेद् बुद्धज्ञानसंवर्तनीयमप्रमेयमसंख्येयमपर्यन्तम्। तद् यथापि नामाजिताकाशधातुरपर्यन्तः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तराधरोर्ध्वासु दिक्षु विदिक्ष्वेवमप्रमेयासंख्येयान् स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा पुण्याभिसंस्कारान् प्रसवेद् बुद्धज्ञानसंवर्तनीयान् य इमं धर्मपर्यायं धारयेद्वा वाचयेद्वा देशयेद्वा लिखेद्वा लिखापयेद्वा। तथागतचैत्यसत्कारार्थं चाभियुक्तो भवेत्तथागतश्रावकाणां च वर्णं भाषेत बोधिसत्त्वानां च महासत्त्वानां गुणकोटीनयुतशतसहस्राणि परिकीर्तयेत् परेषां च संप्रकाशयेत् क्ष्यान्त्या च संपादयेच्छीलवांश्च भवेत् कल्याणधर्मः सुखसंवासः क्षान्तश्च भवेद्दान्तश्च

भवेदनभ्यसूयकश्चापगतक्रोधमनस्कारोऽव्यापन्नमनस्कारः स्मृतिमांश्च स्थामवांश्च भवेद् वीर्यवांश्च नित्याभियुक्तश्च भवेद् बुद्धधर्मपर्येष्ट्या ध्यायी च भवेत् प्रतिसंलयनगुरुकः प्रतिसंलयनबहुलश्च प्रश्नप्रभेदकुशलश्च भवेत् प्रश्नकोटीनयुतशतसहस्राणां विसर्जयिता। यस्य कस्यचिदजित बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्येमं धर्मपर्यायं तथागतस्य परिनिर्वृतस्य धारयत इम एवंरूपा गुणा भवेयुर्ये मया परिकीर्तिताः सोऽजित कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वैवं वेदितव्यो बोधिमण्डसंप्रस्थितोऽयं कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा बोधिमभिसंबोद्धुं बोधिवृक्षमूलं गच्छति। यत्र चाजित स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा तिष्ठेद्वा निषीदेद्वा चंक्रमेद् वा तत्राजित तथागतमुद्दिश्य चैत्यं कर्तव्यं तथागतस्तूपोऽयमिति च स वक्तव्यः सदेवकेन लोकेनेति।

पुनः, हे अजित ! मैं उन अध्याशय द्वारा अधिमुक्त कुलपुत्रों की चर्चा करता हूँ, जो परिनिर्वाण-प्राप्त तथागत के इस धेर्मपर्याय को सुनकर इसका अपमान नहीं करेंगे, अपितु इसका अनुमोदन करेंगे। पुनः, उनका क्या कहना, जो इसे धारण करेंगे अथवा पढ़ेंगे। जो इस धर्मपर्याय को पुस्तकगत करके इसे अपने कन्धे पर धारण करता है, वह (मानों) तथागत को कन्धे पर धारण करता है। हे अजित ! उस कुलपुत्र या कुलपुत्री को मेरे लिए स्तूप बनवाने की आवश्यकता नहीं है, विहार बनवाने की आवश्यकता नहीं है एवं भिक्षुसंघ के लिए, रोगी को नीरोग बनवाने के लिए दवा एवं अन्य सामग्रियों को देने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा क्यों ? हे अजित ! (उसके बारे में ऐसा समझ लेना चाहिए कि) उस कुलपुत्र या कुलकन्या ने मेरी धातुओं की पूजा कर ली है। ब्रह्मलोक तक पहुँचनेवाले (ऊँचे) तथा इसी अनुपात में चौड़े, सुन्दर क्षेत्रों से समन्वित, वैजयन्तीयुक्त, शब्द करते हुए घण्टों एवं समुदगों से युक्त सप्तरत्नमय स्तूप बनवा दिये हैं। उन शरीर-स्तूपों की विविध प्रकार के दिव्य एवं मनुष्यलोक के पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका एवं वैजयन्ती के द्वारा विविध प्रकार के मधुर एवं मनोज्ञ पटु पटह, दुन्दुभि तथा महादुन्दुभियों के वादन, ताडन और निनादन के शब्दों के द्वारा एवं अनेक अपरिमित गीत, नृत्य, लास्य के द्वारा उनकी पूजा की है तथा अपरिमित अनेक अप्रमेय कोटि नयुत शतसहस्र कल्पों तक उनका सत्कार किया है, जो मेरे निर्वाण प्राप्तकर लेने के अनन्तर मेरे इस धर्मपर्याय को धारण करेगा, पढ़ेगा, लिखेगा या प्रकाशित करेगा (तो उसके बारे में मान लेना चाहिए कि) उसने अनेक अप्रमेय या यों कहें कि शतसहस्र कोटि, कोटिशत, कोटिसहस्र, कोटिशतसहस्र, कोटि नयुत शतसहस्र विहार बनवा दिये हैं, जो विपुल, विस्तीर्ण, विशाल हैं, लाल चन्दन के बने हैं, बत्तीस कमरों से सम्पन्न हैं, आठ मंजिल के हैं, सहस्रों भिक्षुकों के रहने योग्य हैं, उपवन एवं पुष्पों से सुवासित हैं, क्रीड़ावन से युक्त हैं, शय्या से सम्पन्न हैं, खाद्य, भोज्य, अन्न, पान, रोगी की दवा आदि

सभी वस्तुओं से परिपूर्ण एवं सभी सुखों के साधनों से सम्पन्न हैं। ऐसा समझ लेना चाहिए कि उनके द्वारा ये (विहार) मेरे सामने श्रावकसंघ को दान कर दिये गये एवं मैंने उनका उपभोग किया है। तथागत के निर्वाण प्राप्त करने के अनन्तर जो इस धर्मपर्याय को धारण करे, पढ़े, देशित करे, लिखे एवं लिखाये, हे अजित! उससे मैं ऐसा कहता हूँ--मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने पर उसे मेरे लिए न धातुस्तूप बनवाने की आवश्यकता है और न संघ की पूजा करने की आवश्यकता है। पुनः हे अजित! उस कुलपुत्र या कुलकन्या का क्या कहना, जो इस धर्मपर्याय को धारण करते हुए इसे दान से, शील से, क्षान्ति से, वीर्य से, ध्यान से या प्रज्ञा से सम्पादित करेगा। वह प्रभूत पुण्यराशि उत्पन्न करेगा, जिससे उसे अप्रमेय, असंख्येय एवं अनन्त बुद्धज्ञान की प्राप्ति होगी। हे अजित! जो कुलपुत्र या कुलकन्या इस धर्मपर्याय को धारण करे, पढ़े, उपदेशित करे, लिखे या लिखाये, वह पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नीचे तथा ऊपर की दिशाओं एवं विदिशाओं में वर्तमान अनन्त आकाशधातु के समान, अप्रमेय एवं असंख्य बुद्ध ज्ञान को देनेवाली पुण्यराशियाँ उत्पन्न करेगा। वह तथागत के चैत्यों के सत्कार में तत्पर रहेगा, तथागत के श्रावकों की प्रशंसा करेगा, महासत्त्व बोधिसत्त्वों के कोटि नयुत शतसहस्र गुणों की चर्चा करेगा और दूसरों के सम्मुख उन्हें प्रकाशित करेगा, सहनशीलतापूर्वक उनका आचरण करेगा तथा शीलवान्, कल्याणकारक, साथ में सुखपूर्वक रहने योग्य, सहनशील, दान्त, अनिन्दक, क्रोध से मुक्त, पवित्रचित्त, स्मृतियुक्त, शक्तिसम्पन्न, बलशाली, सदा कार्य में तत्पर रहनेवाला, बुद्धधर्म का गवेषक, ध्यान करनेवाला, समाधि को आदर देनेवाला, अनेक समाधि धारण करनेवाला, प्रश्नों को समझने में कुशल एवं कोटि नयुत शतसहस्र निरर्थक प्रश्नों की ओर ध्यान न देनेवाला होगा। हे अजित! तथागत के निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर उस धर्मपर्याय को धारण करनेवाले जिस किसी महासत्त्व बोधिसत्त्व को इस प्रकार के ये गुण--जिनकी मैंने पहले चर्चा की है--प्राप्त हो जायँ, तो हे अजित! उस कुलपुत्र या कुलकन्या को ऐसा मानना चाहिए कि वह कुलपुत्र या कुलकन्या बोधिमण्ड पर विराजमान है अथवा बोधि को प्राप्त करने के लिए बोधिवृक्ष के मूल की ओर जा रही है। हे अजित! वह कुलपुत्र या कुलकन्या जहाँ ठहरे, जहाँ बैठे, जहाँ चले, वहाँ हे अजित! तथागत को समर्पित करके चैत्य बनवाना चाहिए तथा देवों से युक्त इस लोक से कहना चाहिए कि यह तथागत का वास्तविक स्तूप है।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

इस अवसर पर भगवान् ने ये गाथाएँ कहीं --

पुण्यस्कन्धो अपर्यन्तो वर्णितो मे पुनः पुनः।
य इदं धारयेत् सूत्रं निर्वृते नरनायके ।।३७।।

जैसा मैंने पुनः-पुनः कहा है, वह अनन्त पुण्यराशि का भागी होगा, जो नरनायक के निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर इस सूत्र को धारण करेगा।

पूजाश्च मे कृतास्तेन धातुस्तूपाश्च कारिताः।
रत्नामया विचित्राश्च दर्शनीयाः सुशोभनाः॥३८॥

उसके द्वारा मेरी विविध पूजा की गई होगी एवं उसके द्वारा मेरे लिए रत्ननिर्मित, विचित्र, दर्शनीय एवं सुशोभन धातुस्तूप बनवाये गये होंगे।

ब्रह्मलोकसमा उच्चा छत्रावड़िभिरन्विताः।
परिणाहवन्तः श्रीमन्तो वैजयन्तीसमन्विताः॥३९॥

वे स्तूप ब्रह्मलोक के समान ऊँचे, छत्रावलियों से समन्वित, विशाल आकारवाले, श्रीसम्पन्न एवं वैजयन्ती से युक्त होंगे।

पटुघण्टा रणन्तश्च पट्टदामोपशोभिताः।
वातेरितास्तथा घण्टा शोभन्ति जिनधातुषु॥४०॥

उन जिन के स्तूपों में रेशमी लड़ियों से सुशोभित सुन्दर शब्द करनेवाले घण्टे, हवा के द्वारा प्रेरित होकर बजते रहते हैं तथा अन्य प्रकार के घण्टे भी उस पर सुशोभित होते हैं।

पूजा च विपुला तेषां पुष्पगन्धविलेपनैः।
कृता वाद्यैश्च वस्त्रैश्च दुन्दुभीभिः पुनः पुनः॥४१॥

उन स्तूपों की पुष्प गन्ध, विलेपन, वाद्य, वस्त्र एवं दुन्दुभियों द्वारा पुनः-पुनः महती पूजा की गई।

मधुरा वाद्यभाण्डा च वादिता तेषु धातुषु।
गन्धतैलप्रदीपाश्च दत्तास्ते पि समन्ततः॥४२॥

उन धातुस्तूपों में मधुर वाद्यभाण्ड बजाये गये तथा चारों ओर से उसपर सुगन्धित तेल के दीपक अर्पित किये गये।

य इदं धारयेत् सूत्रं क्षयकालि च देशयेत्।
ईदृशी मे कृता तेन विविधा पूजनन्तिका॥४३॥

जो प्राणी इस काल में इस सूत्र को धारण करेगा एवं इसकी देशना करेगा, उसके विषय में ऐसा समझा जायगा कि उसने इस प्रकार की मेरी विविध एवं अनन्त पूजा की है;

अग्रा विहारकोट्योपि बहुश्चन्दनकारिताः
द्वात्रिंशती च प्रासादा उच्चैस्त्वेनाष्टवत्तलाः॥४४॥

उसको, चन्दन-निर्मित अनेक कोटि श्रेष्ठ विहार, जिसमें वत्तीस प्रासाद एवं ऊँचे-ऊँचे आठ वरामदे होंगे, बनाने का श्रेय प्राप्त होगा।

शय्यासनैरुपस्तब्धाः खाद्यभोज्यैः समन्विताः ।
प्रवेणी प्रणीत प्रज्ञप्ता आवासाश्च सहस्रशः ।।४५।।

वे शय्या एवं आसनों से युक्त, खाद्य एवं भोज्य-सामग्री से सम्पन्न, सुन्दर परदों से सुसज्जित एवं सहस्रों कमरों से सुशोभित होंगे ।

आरामाश्चंक्रमा दत्ताः पुष्पारामोपशोभिताः ।
बहु उच्छदकाश्चैव बहुरूपविचित्रिताः ।।४६।।

उनमें पुष्प-उपवनों से सुशोभित बागीचे एवं टहलने के स्थान तथा अनेक रूप के एवं चित्र-विचित्र उच्छदक वर्त्तमान होंगे ।

संघस्य विविधा पूजा कृता मे, तेन संमुखम् ।
य इदं धारयेत् सूत्रं निर्वृतस्मिन् विनायके ।।४७।।

जो व्यक्ति विनायक के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर इस सूत्र को धारण करेगा, उसके विषय में मानना पड़ेगा कि उसने मेरे संघ की मेरे सम्मुख ही विविध पूजा की है ।

अधिमुक्तिसारो यो स्यादतो बहुतरं हि सः ।
पुण्यं लभेत यो एतत् सूत्रं वाचेल्लिखेत्त वा ।।४८।।

जो अधिमुक्ति से युक्त होगा तथा इस सूत्र का उपदेश देगा अथवा इसे लिखेगा, वह उससे भी अधिक पुण्य का भागी होगा ।

लिखापयेन्नरः कश्चित् सुनिरुक्तं च पुस्तके ।
पुस्तकं पूजयेत्तच्च गन्धमाल्यविलेपनैः ।।४९।।

जो व्यक्ति इसे लिखायगा, सुन्दर ढंग से इसे पुस्तकगत करेगा तथा इस पुस्तक की गन्ध, माल्य एवं विलेपन से पूजा करेगा,

दीपं च दद्याद् यो नित्यं गन्धतैलस्य पूरितम् ।
जात्युत्पलातिमुक्तैश्च प्रकरैश्चम्पकस्य च ।।५०।।

जो सुगन्धित तेल से परिपूर्ण दीपक का सदा दान करेगा एवं जाती (चमेली) तथा कमल के पुष्पों के समेत चम्पकपुष्पों के समूह अर्पित करेगा,

कुर्यादेतादृशीं पूजां पुस्तकेषु च यो नरः ।
बहु प्रसवते पुण्यं प्रमाणं यस्य नो भवेत् ।।५१।।

जो व्यक्ति इन पुस्तकों की इस प्रकार की पूजा करेगा, वह उस प्रभूत पुण्य का भागी होगा, जिसकी गणना नहीं की जा सकती ।

यथैवाकाशधातौ हि प्रमाणं नोपलभ्यते ।
दिशासु दशसू नित्यं पुण्यस्कन्धोऽयमीदृशः ।।५२।।

दसों दिशाओं में वर्त्तमान आकाशधातु की गणना जिस प्रकार सम्भव नहीं है, उसी प्रकार यह पुण्यराशि भी सदा अप्रमेय है ।

कः पुनर्वादो यश्च स्यात् क्षान्तो दान्तः समाहितः ।
शीलवांश्चैव ध्यायी च प्रतिसंलानगोचरः ।।५३।।

पुनः, उसका क्या कहना, जो क्षान्त, दान्त, समाहित, शीलवान्, ध्यायी एवं समाधि में मग्न रहनेवाला है,

अक्रोधनो अपिशुनश्चैत्यस्मिन् गौरवे स्थितः ।
भिक्षूणां प्रणतो नित्यं नाधिमानी न चालसः ।।५४।।

जो क्रोधरहित, अपिशुन, चैत्य के प्रति आदर की भावना रखनेवाला, सदा भिक्षुओं के प्रति नम्र, अभिमान से रहित एवं आलस्य से रहित है,

प्रज्ञावांश्चैव धीरश्च प्रश्नं पृष्टो न कुप्यति ।
अनुलोमं च देशेति कृपाबुद्धी च प्राणिषु ।।५५।।

जो प्रज्ञावान् है, धैर्यशाली है, प्रश्न पूछने पर क्रुद्ध नहीं होता, उचित मार्ग का उपदेश देता है एवं प्राणियों के प्रति दयाबुद्धि रखता है,

य ईदृशो भवेत् कश्चिद् यः सूत्रं धारयेदिदम् ।
न तस्य पुण्यस्कन्धस्य प्रमाणमुपलभ्यते ।।५६।।

जो कोई इस प्रकार होता तथा इस सूत्र को धारण करता है, उसकी पुण्यराशि का प्रमाण प्राप्त करना सर्वथा असम्भव है ।

यदि कश्चिन्नरः पश्येदीदृशं धर्मभाणकम् ।
धारयन्तमिदं सूत्रं कुर्याद्वैतस्य सत्क्रियाम् ।।५७।।

यदि कोई पुरुष इस सूत्र को धारण करनेवाले इस प्रकार के धर्मभाणक को देखे, तो उसे इसका सत्कार करना चाहिए ।

दिव्यैश्च पुष्पैस्तथ ओकिरेत
दिव्यैश्च वस्त्रैरभिच्छादयेत ।
मूर्धेन वन्दित्व च तस्य पादौ
तथागतोऽयं जनयेत संज्ञाम् ।।५८।।

उसके ऊपर दिव्य पुष्पों की वर्षा करे, उसे दिव्य वस्त्रों से ढक दे, उसके चरणों में मस्तक झुकाकर प्रणाम करे एवं 'ये तथागत हैं', ऐसा विचार अपने मन में लाये ।

दृष्ट्वा च तं चिन्तयि तस्मि काले
गमिष्यते एष द्रुमस्य मूलम् ।
बुध्यिष्यते बोधिमनुत्तरा शिवां
हिताय लोकस्य सदेवकस्य ।।५९।।

उसे देखकर उस समय ऐसा सोचे कि यह वृक्ष के मूल के निकट जायगा एवं देवों के समेत इस लोक के हित के लिए वह कल्याणमयी श्रेष्ठ बोधि को प्राप्त करेगा ।

यस्मिंश्च सो चंक्रमि तादृशो विदुः
तिष्ठेत वा यत्र निषीदयेद्वा
शय्यां च कल्पेय कहिंचि धीरो
भाषन्तु गाथां पि तु एकसूत्रात् ।।६०।।

जिस स्थान पर उस तरह का वह धैर्यशाली विद्वान् चंक्रमण करे अथवा जहाँ खड़ा रहे या बैठे, अपनी शय्या रचे अथवा उस सूत्र से एक भी गाथा का उपदेश करे,

यस्मिंश्च स्तूपं पुरुषोत्तमस्य
कारापयेच्चित्र सुदर्शनीयम् ।
उद्दिश्य बुद्धं भगवन्त नायकं
पूजां च चित्रां तहि कारयेत्तथा ।।६१।।

वहाँ पुरुषोत्तम का सुन्दर एवं दर्शनीय स्तूप वनवाना चाहिए तथा संसार के नायक भगवान् बुद्ध को लक्ष्य करके वहाँ उनकी विविध पूजा करानी चाहिए ।

मया स भुक्तः पृथिवीप्रदेशो
मया स्वयं चंक्रमितं च तत्र ।
तत्रोपविष्टो अहमेव च स्यां
यत्र स्थितः सो भवि बुद्धपुत्रः ।।६२।।

उस स्थान का मैंने उपभोग किया है, वहाँ स्वयं मैंने चंक्रमण किया है एवं जहाँ वह बुद्धपुत्र बैठा था, वहाँ ऐसा समझ लो कि मैं ही बैठा था ।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये पुण्यपर्यायपरिवर्तो
नाम षोडशमः ।।१६।।

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का पुण्यपर्याय नामक सोलहवाँ
परिवर्त समाप्त हुआ ।

अनुमोदनापुण्यनिर्देशपरिवर्त

अथ खलु मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत्। यो भगवन्निमं धर्मपर्यायं देश्यमानं श्रुत्वानुमोदेत् कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा कियन्तं स भगवन् कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा पुण्यं प्रसवेदिति।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय ने भगवान् से यह पूछा––हे भगवन् ! जो कुलपुत्र या कुलकन्या निर्देश किये जाते हुए इस धर्मपर्याय को सुनकर उसका अनुमोदन करे, हे भगवन् ! उस कुलपुत्र या कुलकन्या को कितना पुण्य प्राप्त होगा ?

अथ खलु मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायामिमां गाथामभाषत।

तत्पश्चात्, महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय ने उस समय यह गाथा कही–––

यो निर्वृते महावीरे शृणुयात् सूत्रमीदृशम्।
श्रुत्वा चाभ्यनुमोदेया कियन्तं कुशलं भवेत् ।।१।।

महावीर के निर्वाण प्राप्त कर लेने पर जो इस सूत्र को सुने और सुनकर धारण करे, उसका कितना कल्याण होगा ?

अथ खलु भगवान् मैत्रेयं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत्। यः कश्चिदजित कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा तथागतस्य परिनिर्वृतस्येमं धर्मपर्यायं देश्यमानं संप्रकाश्यमानं शृणुयाद् भिक्षुर्वा भिक्षुणी वोपासको वोपासिका वा विज्ञपुरुषो वा कुमारको वा कुमारिका वा श्रुत्वा चाभ्यनुमोदेत्। सचेत्ततो धर्मश्रवणादुत्थाय प्रक्रामेत् स च विहारगतो वा गृहगतो वारण्यगतो वा वीथीगतो वा ग्रामगतो वा जनपदगतो वा तान् हेतूंस्तानि कारणानि तं धर्मं यथाश्रुतं यथोद्गृहीतं यथाबलमपरस्य सत्त्वस्याचक्षीत मातुर्वा पितुर्वा ज्ञातेर्वा संमोदितस्य वान्यस्य वा संस्तुतस्य कस्यचित् सोऽपि यदि श्रुत्वानुमोदेत् अनुमोद्य च पुनरन्यस्मा आचक्षीत। सोऽपि यदि श्रुत्वानुमोदेत् अनुमोद्य च सोऽप्यपरस्मा आचक्षीत। सोऽपि तं श्रुत्वानुमोदेत्। इत्यनेन पर्यायेण यावत् पञ्चाशत्परंपरया। अथ खल्वजित योऽसौ पञ्चाशत्तमः पुरुषो भवेत् परंपराश्रवानुमोदकस्तस्यापि तावदहमजित कुलपुत्रस्य वा कुलदुहितुर्वानुमोदनासहगतं पुण्याभिसंस्कारमभिनिर्देक्ष्यामि। तं शृणु साधु च सुष्ठु च मनसिकुरु। भाषिष्येऽहं ते।

तब भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय से यह बोले––हे अजित ! तथागत की परिनिर्वाण-प्राप्ति के अनन्तर देशित होते हुए एवं सम्प्रकाशित होते हुए इस धर्मपर्याय को जो कुलपुत्र, कुलकन्या, भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, बुद्धिमान्, कुमार या कुमारिका सुने और सुनकर अनुमोदन करे, तदनन्तर वह धर्म का श्रवण करने वहाँ से उठकर चला जाय और विहार में जाकर, घर में जाकर, गली में जाकर, गाँव में जाकर या जनपद में जाकर उन हेतुओं, उन कारणों एवं उन धर्मों को जैसा सुना था और जैसा समझा था, उसी रूप में यथाशक्ति किसी दूसरे प्राणी में (यथा) माता को, पिता को, सम्बन्धी को, मित्र को, अथवा अन्य किसी परिचित को सुनाये, वह भी सुनकर उसका अनुमोदन करे और पुनः उसे दूसरे से कहे, वह भी सुनकर अनुमोदन करे और अनुमोदन करके वह भी किसी अन्य व्यक्ति से कहे, वह भी उसे सुनकर उसका अनुमोदन करे । यही क्रम परम्परा से पचास (मनुष्यों) तक चलता रहे । हे अजित ! जो यह परम्परा से से सुनकर अनुमोदन करनेवाला पचासवाँ पुरुष होगा हे अजित ! उस कुलपुत्र या कुलकन्या की अनुमोदन द्वारा प्राप्त पुण्यराशि का वर्णन करूँगा । उसे भली भाँति सुनो और अच्छी तरह मन में धारण करो । मैं अब तुमसे कहूँगा ।

तद्यथापि नामाजित चतुर्षु लोकधातुष्वसंख्येयशतसहस्रेषु ये सत्त्वाः सन्तः संविद्यमानाः षट्सु गतिषूपपन्ना अण्डजा वा जरायुजा वा संस्वेदजा वौपपादुका वा रूपिणो वारूपिणो वा संज्ञिनो वासंज्ञिनो वा नैवसंज्ञिनो वा नासंज्ञिनो वापदा वा द्विपदा वा चतुष्पदा वा बहुपदा वा यावदेव सत्त्वाः सत्त्वधातौ संग्रहसमवसरणं गच्छन्ति । अथ कश्चिदेव पुरुषः समुत्पद्येत पुण्यकामो हितकामस्तस्य सत्त्वकायस्य सर्वकामक्रीडारतिपरिभोगानिष्टान् कान्तान् प्रियान् मनापान् दद्यात् । एकैकस्य सत्त्वस्य जम्बुद्वीपं परिपूर्णं दद्यात् कामक्रीडारतिपरिभोगाय हिरण्यसुवर्णरूप्यमणिमुक्तावैडूर्यशंखशिलाप्रवाड़ानश्वरथगोरथहस्तिरथान् दद्यात् प्रासादान् कूटागारान् । अनेन पर्यायेणाजित स पुरुषो दानपतिर्महादानपतिः परिपूर्णान्यशीतिं वर्षाणि दानं दद्यात् । अथ खल्वजित स पुरुषो दानपतिर्महानादानपतिरेवं चिन्तयेत् । इमे खलु सत्त्वाः सर्वे मया क्रीडापिता रमापिताः सुखं जीवापिताः । इमे च ते भवन्तः सत्त्वा वलिताः पलितशिरसो जीर्णवृद्धा महल्लका अशीतिवर्षिका जात्याभ्याशीभूताश्चैते कालक्रियायाः । यन्न्वहमेतांस्तथागतप्रवेदिते धर्मविनयेऽवतारयेयमनुशासयेयम् । अथ खल्वजित स पुरुषस्तान् सर्वसत्त्वान् समादापयेत् समादापयित्वा च तथागतप्रवेदिते धर्मविनयेऽवतारयेद् ग्राहयेत् । तस्य ते सत्त्वास्तं च धर्मं शृणुयुः श्रुत्वा चैकक्षणेनैकमुहूर्तेनैकलवेन सर्वे स्रोतआपन्नाः स्युः सकृदागामिनोऽनागामिनोऽनागामिफलं प्राप्नुयुर्यावदर्हन्तो भवेयुः क्षीणास्रवा

ध्यायिनो महाध्यायिनोऽष्टविमोक्षध्यायिनः । तत् किं मन्यसेऽजित अपि नु स पुरुषो दानपतिर्महादानपतिस्ततो निदानं बहु पुण्यं प्रसवेदप्रमेयमसंख्येयम् । एवमुक्ते मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत् । एवमेतद् भगवन्नेवमेतत् सुगत । अनेनैव तावद् भगवन् कारणेन स पुरुषो दानपतिर्महादानपतिर्बहुपुण्यं प्रसवेद् यस्तावतां सत्त्वानां सर्वसुखोपधानं दद्यात् कः पुनर्वादो यदुत्तर्यर्हत्त्वे प्रतिष्ठापयेत् ।

हे अजित ! यथा, इन चार लोकधातुओं में जो प्राणी वर्त्तमान, विद्यमान, छह गतियों में उत्पन्न हैं तथा अण्डज, जरायुज, संस्वेदज, औपपादुक, रूपयुक्त, रूपहीन, संज्ञी, असंज्ञी, नैवसंज्ञी, नासंज्ञी, पदहीन, द्विपद, चतुष्पद, अनेकपद आदि असंख्य शतसहस्र गतियों में विद्यमान हैं और सभी प्राणी, जिनकी इन प्राणियों में गणना हो सकती है, वहाँ वर्त्तमान थे। तदनन्तर, कोई ऐसा पुण्य का अभिलाषी एवं हित का अभिलाषी पुरुष उत्पन्न हो और उन सम्पूर्ण प्राणियों को इच्छित, सुन्दर, प्रिय एवं मनपसन्द काम, क्रीडा, रति एवं परिभोग की वस्तुएँ दे । प्रत्येक प्राणी को काम, क्रीडा, रति एवं परिभोग की पूर्त्ति के लिए सम्पूर्ण जम्बूद्वीप दे दे एवं हिरण्य, सुवर्ण, रूप्य, मणि, मुक्ता, वैदूर्य, शंख, शिला, प्रवाल, अश्वरथ, गोरथ, हस्तिरथ, प्रासाद और ऊँचे महल दे । हे अजित ! इस प्रकार, वह दानपति, महादानपति, पुरुष पूरे अस्सी वर्षों तक दान देता है । तदनन्तर, हे अजित ! वह दानपति महादानपति पुरुष ऐसा सोचे--इन सभी प्राणियों का मैंने मनोरंजन किया, उनको आनन्दित किया एवं उनको सुखपूर्वक जीवित रखा। वे सभी प्राणी अब झुर्रियों से परिपूर्ण, पके केशवाले, अस्सी वर्ष के बूढ़े, जीर्ण एवं अधिक आयुवाले हो गये हैं एवं जीवन की अन्तिम स्थिति के निकट पहुँच गये हैं । मैं उन्हें तथागत के द्वारा बतलाये गये धर्मविनय में अवतारित करूँ एवं अनुशासित करूँ । तत्पश्चात्, हे अजित ! वह पुरुष इन सभी प्राणियों को ज्ञान में समापन्न करे और समापन्न करके तथागत के द्वारा बतलाये गये धर्मविनय में उसका अवतारण करें एवं उनके द्वारा उसको ग्रहण कराये । वे प्राणी उसके इस धर्म को सुनें और सुनकर एक क्षण, एक लव, एक मुहूर्त्त में वे भी स्रोतापन्न, सकृदागामी एवं अनागामी हो जाय और अनागामी फल को प्राप्त करे तथा क्षीणास्रव, ध्यायी, महाध्यायी एवं अष्टविमोक्षाध्यायी अर्हत् हो जायँ । हे अजित ! क्या तुम समझते हो कि वह दानपति महादानपति पुरुष इस कार्य के फलस्वरूप अप्रमेय एवं असंख्य पुण्य उत्पन्न करेगा ? ऐसा कहने पर महासत्त्व बोधिसत्त्व ने भगवान् से यह कहा--हे भगवन् ! ऐसा ही है । हे सुगत ! ऐसा ही है। इसी कारण से हे भगवन् ! वह दानपति, वह महादानपति, प्रभूत पुण्य उत्पन्न करेगा, जो (दानपति) उतने प्राणियों को सारे सुखों का साधन देगा ! पुनः, उस पुण्य का क्या कहना, जो वह उन्हें अर्हत्-पद पर प्रतिष्ठित करके प्राप्त करेगा ।

एवमुक्ते भगवानजितं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत् । आरोचयामि तेऽजित प्रतिवेदयामि यश्च स दानपतिर्महादानपतिः पुरुषश्चतुर्षु लोकधातुष्व-

संख्येयशतसहस्रेषु सर्वसत्त्वानां सर्वसुखोपधानैः परिपूर्यार्हत्त्वे प्रतिष्ठाप्य पुण्यं प्रसवेद् यश्च पञ्चाशत्तमः पुरुषः परंपराश्रवानुगतः श्रवणेनेतो धमपर्यायादेकामपि गाथामेकपदमपि श्रुत्वानुमोदेत । यच्चैतस्य पुरुषस्यानुमोदनासहगतं पुण्यक्रियावस्तु यच्च तस्य पुरुषस्य दानपतेर्महादानपतेर्दानसहगतमर्हत्त्वं प्रतिष्ठापनासहगतपुण्यक्रियावस्त्विदमेव ततो बहुतरम् । योऽयं पुरुषः पञ्चाशत्तमस्ततः पुरुषः परंपरात इतो धर्मपर्यायादेकामपि गाथामेकपदमपि श्रुत्वानुमोदेत् । अस्यानुमोदनासहगतस्याजित पुण्याभिसंस्कारस्य कुशलमूलाभिसंस्कारस्यानुमोदनासहगतस्याग्रतः असौ पौर्विको दानसहगतश्चार्हत्त्वप्रतिष्ठापनासहगतश्च पुण्याभिसंस्कारः शततमीमपि कलां नोपयाति सहस्रतमीमपि शतसहस्रतमीमपि कोटीतमीमपि कोटीशततमीमपि कोटीसहस्रतमीमपि कोटीशतसहस्रतमीमपि कोटीनयुतशतसहस्रतमीमपि कलां नोपयाति संख्यामपि कलामपि गणनामप्युपमामप्युपनिषदमपि न क्षमते । एवमप्रमेयमसंख्येयमजित सोऽपि तावत् पञ्चाशत्तमः परंपराश्रवेण पुरुष इतो धमपर्यायादन्तश एकगाथामप्येकपदमप्यनुमोद्य च पुण्यं प्रसवति । कः पुनर्वादोऽजित योऽयं मम संमुखमिमं धर्मपर्यायं शृणुयाच्छ्रुत्वा चाभ्यनुमोदेत् । अप्रमेयतरमसंख्येयतरं तस्याहमजित तं पुण्याभिसंस्कारं वदामि ।

उसके ऐसा कहने पर भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व अजित से यह बोले——हे अजित ! तुमसे कहता हूँ, तुमसे प्रतिवेदन करता हूँ। एक ओर वह दानपति, महादानपति पुरुष है, जो चार असंख्य शतसहस्र लोकधातुओं में सभी प्राणियों को सभी सुखों के साधनों से युक्त करके उन्हें अर्हत्-पद पर प्रतिष्ठित करके पुण्य प्राप्त करे । और, (दूसरी) (ओर) वह परम्परा से सुननेवालों में पचासवाँ स्थान रखनेवाला पुरुष है । जो इस धर्मपर्याय से उद्धृत एक भी गाथा या एक भी पद सुनकर उसका अनुमोदन करे, जो पुण्यराशि इस पुरुष ने अनुमोदन के द्वारा प्राप्त की है और जो पुण्यराशि उस दानपति, महादानपति पुरुष ने दान से एवं अर्हत् के पद पर प्रतिष्ठापित करने से प्राप्त की है——इन दोनों में वह पुण्यराशि अधिक है, जिसे वह परम्परागत पचासवाँ पुरुष इस धर्मपर्याय से उद्धृत एक भी गाथा या एक भी शब्द सुनकर एवं उसका अनुमोदन करके प्राप्त करेगा, हे अजित् ! अनुमोदन से उत्पन्न इस पुण्यराशि तथा अनुमोदन से उत्पन्न इस कल्याणकारक कर्मों की तुलना में दान से उत्पन्न एवं अर्हत्-पद पर प्रतिष्ठित करने से उत्पन्न वह पहली पुण्यराशि शतांश, सहस्रांश, शतसहस्रांश कोट्यश, कोटिशतांश, कोटिसहस्रांश, कोटिशतसहस्रांश, कोटिनयुतशतसहस्रांश, भी नहीं है एवं संख्या, कला गणना, उपमा, आदि में भी वह इसके निकट लाने के योग्य नहीं हैं । हे अजित ! ऐसा अप्रमेय एवं असंख्य पुण्य परम्परा से सुननेवालों में वह पचासवाँ स्थान रखनेवाला पुरुष इस धर्मपर्याय से उद्धृत एक गाथा या एक पद का

अनुमोदन करके उत्पन्न करता है। हे अजित! पुनः उसका क्या कहना है, जो मेरे सम्मुख इस धर्मपर्याय को सुने और सुनकर उसका अनुमोदन करे। हे अजित! इसकी पुण्यराशि को मैं (पचासवें पुरुष की पुण्यराशि की) अपेक्षा अधिक अप्रमेय एवं असंख्य मानता हूँ।

यः खलु पुनरजितास्य धर्मपर्यायस्य श्रवणार्थं कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा स्वगृहान्निष्क्रम्य विहारं गच्छेत्। स च गत्वा तस्मिन्निमं धमपर्यायं मुहूर्तकमपि शृणुयात् स्थितो वा निषण्णो वा स सत्त्वस्तन्मात्रेण पुण्याभिसंस्कारेण कृतेनोपचितेन जातिविनिवृत्तो द्वितीये समुच्छ्र्ये द्वितीय आत्मभावप्रतिलम्भे गोरथानां लाभी भविष्यत्यश्वरथानां हस्तिरथानां शिविकानां गोयानानामृषभयानानां दिव्यानां च विमानानां लाभी भविष्यति। स चेत् पुनस्तत्र धर्मश्रवणे मुहूर्तमात्रमपि निषद्येमं धर्मपर्यायं शृणुयात् परं वा निषादयेदासनसंविभागं वा कुर्यादपरस्य सत्त्वस्य तेन स पुण्याभिसंस्कारेण लाभी भविष्यति शक्रासनानां ब्रह्मासनानां चक्रवर्तिसिंहासनानाम्। स चेत् पुनरजित कश्चिदेव कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वापरं पुरुषमेवं वदेदागच्छ त्वं भोः पुरुष सद्धर्मपुण्डरीकं नाम धर्मपर्यायं शृणुष्व स च पुरुषस्तस्य तां प्रोत्साहनामागम्य यदि मुहूर्तमात्रमपि शृणुयात् स सत्त्वस्तेन प्रोत्साहेन कुशलमूलेनाभिसंस्कृतेन धारणीप्रतिलब्धैर्बोधिसत्त्वैः सार्धं समवधानं प्रतिलभते। अजडश्च भवति तीक्ष्णेन्द्रियः प्रज्ञावान् न तस्य जातिशतसहस्रैरपि पूतिमुखं भवति न दुर्गन्धि। नाप्यस्य जिह्वारोगो भवति न मुखरोगो भवति। न च श्यामदन्तो भवति न विषदन्तो भवति न पीतदन्तो भवति न दुःसंस्थितदन्तो न खण्डदन्तो न पतितदन्तो न वक्रदन्तो न लम्बोष्ठो भवति नाभ्यन्तरोष्ठो न प्रसारितोष्ठो न खण्डोष्ठो न वङ्कोष्ठो न कृष्णोष्ठो न बीभत्सोष्ठो भवति। न चिपिठनासो भवति न वक्रनासो भवति। न दीर्घमुखो भवति न वङ्कमुखो भवति न कृष्णमुखो भवति नाप्रियदर्शनमुखः। अपि तु खल्वजित सूक्ष्मसुजातजिह्वादन्तोष्ठो भवत्यायतनासः प्रणीतमुखमण्डलः सुभ्रूः सुपरिनिक्षिप्तललाटो भवति। सुपरिपूर्णपुरुषव्यञ्जनप्रतिलाभी च भवति। तथागतं चाववादानुशासकं प्रतिलभते क्षिप्रं च बुद्धैर्भगवद्भिः सह समवधानं प्रतिलभते। पश्याजितैकसत्त्वमपि नामोत्साहयित्वेयत् पुण्यं प्रसवति। कः पुनर्वादो यः सत्कृत्य शृणुयात् सत्कृत्य वाचयेत् सत्कृत्य देशयेत् सत्कृत्य प्रकाशयेदिति।

पुनः हे अजित! जो कुलपुत्र या कुलकन्या इस धर्मपर्याय के श्रवण के लिए अपना घर छोड़कर विहार में चला जाय और उसमें जाकर वह इस धर्मपर्याय को एक क्षण भी खड़ा होकर या बैठकर सुने, तो वह प्राणी उस एकत्र एवं संचित हुए इतने

ही पुण्य के प्रभाव से जन्म लेने से मुक्त होकर दूसरे समुच्छ्रय में, दूसरे शरीर की प्राप्ति के समय, गोरथों को प्राप्त करेगा एवं अश्वरथों, हस्तिरथों, शिविकाओं, गोयानों, वृषभयानों एवं दिव्यविमानों को प्राप्त करेगा । पुनः, यदि वह धर्मश्रवण के समय एक क्षण भी बैठकर इस धर्म को सुने या दूसरे को बैठाये, या दूसरे प्राणी के आधे आसन पर बैठे, तो उस पुण्य के संस्कार से वह शक्र के आसनों को, ब्रह्मा के आसनों को तथा चक्रवर्त्ती के सिंहासनों को प्राप्त करेगा । पुनः हे अजित ! कोई कुलपुत्र या कुलकन्या दूसरे पुरुष से ऐसा कहे---'हे पुरुष ! तुम आओ । इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्म-पर्याय को सुनो' और वह पुरुष उसके उस प्रोत्साहन को मानकर यदि एक क्षण के लिए भी (उसको) सुने, तो वह प्राणी उस प्रोत्साहन एवं कुशलमूल के फलस्वरूप धारणी-प्राप्त बोधिसत्त्वों के साथ स्थान प्राप्त करता है । वह मूर्ख नहीं होता, उसकी इन्द्रिय तीक्ष्ण होती है, वह बुद्धिमान् होता है तथा सैकड़ों सहस्रों जन्मों में उसका मुख सड़ता नहीं और उससे दुर्गन्ध नहीं आती । इसको न तो जिह्वा का रोग होता है और न मुख का रोग होता है । उसके दाँत काले नहीं होते, उसके दाँत विषम नहीं होते, उसके दाँत पीले नहीं होते, उसके दाँत ऊबड़-खाबड़ नहीं होते, उसके दाँत खण्डित नहीं होते, उसके दाँत गिरते नहीं तथा उसके दाँत टेढ़े नहीं होते । उसका ओठ लम्बा नहीं होता, भीतर की ओर मुड़ा नहीं होता, फैला नहीं होता, कटा नहीं होता, टेढ़ा नहीं होता, काला नहीं होता और बीभत्स भी नहीं होता । उसकी नाक न चिपटी होती है और न टेढ़ी होती है । उसका मुख न लम्बा होता है, न टेढ़ा होता है, न काला होता है और न कुरूप होता है । बल्कि, हे अजित ! उसकी जिह्वा दाँत और ओठ पतले एवं सुन्दर होते हैं । नाक लम्बी होती है, मुखमण्डल सुन्दर होता है, भौंहें सुन्दर होती हैं और ललाट विशाल होता है । वह मनुष्य के सभी अच्छे लक्षणों से परिपूर्ण होता है । वह तथागत और धर्मभाणक को प्राप्त करता है और उसे शीघ्र भगवान् बुद्धों के साथ स्थान मिल जाता है । हे अजित ! देखो, एक प्राणी को उत्साहित करने से इतना पुण्य होता है, पुनः उसका क्या कहना है, जो इसे सत्कारपूर्वक सुनता है, सत्कारपूर्वक पढ़ता है, सत्कारपूर्वक इसे दूसरों को सुनाता है और सत्कारपूर्वक इसे प्रकाशित करता है ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, उस समय भगवान् ने ये गाथाएँ कहीं---

पञ्चाशिमो यश्च परंपरायां
सूत्रस्यिमस्यो शृणुतेकगाथाम् ।
अनुमोदयित्वा च प्रसन्नचित्तः
शृणुष्व पुण्यं भवि यत्तकं तत् ।।२।।

जो परम्परा में, पचासवाँ है तथा इस सूत्र की एक भी गाथा को सुनकर तथा उसका अनुमोदन करके प्रसन्नचित्त हो जाता है, वह कितने पुण्य का भागी होता है, सुनो (मैं बताता हूँ) ।

स चैव पुरुषो भवि दानदाता
सत्त्वान कोटीनयुतेषु नित्यम् ।
ये पूर्वमौपम्यकृता मया वै
तान् सर्वि तर्पेय अशीतिवर्षान् ।।३।।

वह पुरुष कोटीनयुत प्राणियों को नित्य दान देने वाला हो तथा जिनकी पूर्व में मेरे द्वारा उपमा दी गई है, उन सबको वह अस्सी वर्षों तक तृप्त करे ।

सो दृष्ट्व तेषां च जरामुपस्थितां
वली च खण्डं च शिरश्च पाण्डरम् ।
हाहाधिमुष्यन्ति हि सर्वसत्त्वा
यन्नून धर्मेण हु ओवदेयम् ।।४।।

उनके बुढ़ापे को उपस्थित देखकर एवं उनकी झुर्रियाँ एवं पलित मस्तक को देखकर (वह सोचता है) किस प्रकार सभी जीव नाश को प्राप्त होते हैं, मैं क्यों न धर्मोपदेश के द्वारा (उनकी इस परिस्थिति की) निन्दा करूँ ?

सो तेष धर्मं वदतीह पश्चा-
न्निर्वाणभूमिं च प्रकाशयेत ।
सर्वे भवाः फेनमरीचिकल्पा
निर्विद्यथा सर्वभवेषु क्षिप्रम् ।।५।।

वह उन लोगों को इस लोक में धर्म का उपदेश देता है एवं बाद में निर्वाणभूमि का प्रदर्शन करता है । (वह कहता है कि) सभी भव, मृगमरीचिका के समान हैं, अतः उन भावों के प्रति शीघ्र विराग धारण कर लो ।

ते सर्वसत्त्वाश्च श्रुणित्व धर्मं
तस्यैव दातुः पुरुषस्य अन्तिकात् ।
अर्हन्तभूता भवि एककाले
क्षीणास्रवा अन्तिमदेहधारिणः ।।६।।

उन उदार पुरुष के मुख से धर्म के (उपदेश) को सुनकर वे सभी प्राणी क्षीणास्रव एवं अन्तिमदेह के धारक होकर एक ही साथ अर्हत्-पद को प्राप्त हो गये ।

पुण्यं ततो बहुतरु तस्य हि स्यात्
परंपरातः श्रुणि एकगाथाम् ।
अनुमोदि वा यत्तकु तस्य पुण्यं
कल पुण्यस्कन्धः पुरिमो न भोति ।।७।।

उसे उसकी अपेक्षा बहुत अधिक पुण्य प्राप्त होगा, जो परम्परा से एक भी गाथा को सुनकर उसका अनुमोदन करता है। इस प्रकार, इस दूसरे व्यक्ति को जो पुण्यराशि प्राप्त होगी, वह पुण्यराशि उस पहले पुरुष को नहीं प्राप्त हो सकती।

एवं बहु तस्य भवेत पुण्यं
अनन्तकं यस्य प्रमाणु नास्ति।
गाथां पि श्रुत्वैक परंपराय
किं वा पुनः संमुख यो श्रुणेया ।।८।।

इस प्रकार, उसे, जो परम्परा से एक भी गाथा सुन लेता है, अनन्त, विशाल एवं प्रभूत पुण्य प्राप्त होगा। पुनः, उसका क्या कहना, जो इस उपदेश को भगवान् से सम्मुख सुनेगा।

यश्चैकसत्त्वंपि वदेय तत्र
प्रोत्साहये गच्छ शृणुष्व धर्मम्।
सुदुर्लभं सूत्रमिदं हि भोति
कल्पान कोटीनयुतैरनेकैः ।।९।।

जो (व्यक्ति) एक भी प्राणी को ऐसा कहकर प्रोत्साहित करेगा, 'जाओ, जाकर धर्मोपदेश को सुनो'; क्योंकि यह धर्मोपदेश अनेक कोटीनयुत कल्पों में भी दुर्लभ है;

स चापि प्रोत्साहितु तेन सत्त्वः
श्रुणेय सूत्रेम मुहूर्तकं पि।
तस्यापि धर्मस्य फलं शृणोहि
मुखरोग तस्य न कदाचि भोति ।।१०।।

और, वह प्राणी उसके द्वारा प्रोत्साहित होकर यदि इस सूत्र को एक मुहूर्त्त तक भी सुन ले, उसके धर्म के फल को भी सुनो, (मैं बताता हूँ) उसे कभी मुख का रोग नहीं होता।

जिह्वापि तस्य न कदाचि दुःखति
न तस्य दन्ता पतिता भवन्ति।
श्यामाथ पीता विषमा च जातु
बीभत्सितोष्ठो न च जातु भोति ।।११।।

उसकी जिह्वा में कभी पीडा नहीं होती, उसके दाँत कभी नहीं गिरते एवं उनका रंग कभी काला, पीला या विषम नहीं होता तथा उसका ओठ कभी बीभत्स नहीं होता।

कुटिलं च शुष्कं च न जातु दीर्घं
मुखं न चिपिटं स्य कदाचि भोति ।
सुसंस्थिता नास तथा ललाटं
दन्ता च ओष्ठो मुखमण्डलश्च ।।१२।।

उसका मुख भी कुटिल, शुष्क, लम्बा तथा चिपटा नहीं होता । उसकी नासिका, ललाट, दाँत, ओठ एवं मुखमण्डल सुडौल होते हैं ।

प्रियदर्शनो भोति सदा नराणां
पूर्ति च वक्त्रं न कदाचि भोति
यथोत्पलस्येह सदा सुगन्धिः
प्रवायते तस्य मुखस्य गन्धः ।।१३।।

वह मनुष्यों को देखने में प्रिय लगता है । उसके मुख से कभी दुर्गन्ध नहीं आती । संसार में जैसी गन्ध कमल से निकलती है, वैसी ही गन्ध उसके मुख से भी सदा निकलती रहती है ।

गृहाद्विहारं हि व्रजित्व धीरो
गच्छेत सूत्रं श्रवणाय एतत् ।
गत्वा च सो तत्र शृणे मुहूर्तं
प्रसन्नचित्तस्य फलं शृणोथ ।।१४।।

जो धीर पुरुष घर से प्रव्रज्या धारण करके इस सूत्र को सुनने के लिए विहार में जाता है और वहाँ जाकर प्रसन्नचित्त एक मुहूर्त्त तक भी इस सूत्र को सुनाता है, तो उससे उसे जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनो (मैं बताता हूँ) ।

सुगौरु तस्यो भवतेत्मभावः
परियाति चो अश्वरथेहि धीरः ।
हस्तीरथांश्चो अभिरुह्य उच्चान्
रतनेहि चित्राननुचंक्रमेया ।।१५।।

उसका शरीर गौरवर्ण हो जाता है, और वह धीर, अश्वरथ पर आरूढ होकर चलता है । ऊँचे-ऊँचे तथा रत्नों से सुशोभित हस्तिरथों पर चढ़कर वह भ्रमण करता है ।

विभूषितां सो शिविकां लभेत
नरैरनेकैरिह वाह्यमानाम् ।
गत्वापि धर्मं श्रवणाय तस्य
फलं शुभं भोति च एवरूपम् ।।१६।।

वह अनेक पुरुषों के द्वारा ढोई जाती हुई पालकी प्राप्त करता है। धर्म को सुनने के लिए केवल जाने पर ही उसे इस प्रकार के शुभ फल प्राप्त होते हैं।

निषद्य चासौ परिषाय तत्र
शुक्लेन कर्मेण कृतेन तेन।
शक्रासनानां भवते स लाभी
ब्रह्मासनानां च नृपासनानाम् ॥१७॥

वह वहाँ परिषद् में बैठकर अपने उस किये हुए शुक्ल कर्म के द्वारा शक्र के आसनों को, ब्रह्मा के आसनों को एवं राजा के आसनों को प्राप्त करता है।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्यायेऽनुमोदनापुण्यनिर्देशपरिवर्तो नाम सप्तदशमः ॥१७॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का सत्रहवाँ अनुमोदनापुण्यनिर्देशपरिवर्त समाप्त हुआ।

धर्मभाणकानुशंसापरिवर्त

अथ खलु भगवान् सततसमिताभियुक्तं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमामन्त्रयामास। यः कश्चित् कुलपुत्र इमं धर्मपर्यायं धारयिष्यति वाचयिष्यति वा देशयिष्यति वा लिखिष्यति वा स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वाष्टौ चक्षुर्गुणशतानि प्रतिलप्स्यते द्वादश श्रोत्रगुणशतानि प्रतिलप्स्यतेऽष्टौ घ्राणगुणशतानि प्रतिलप्स्यते द्वादश जिह्वागुणशतानि प्रतिलप्स्यतेऽष्टौ कायगुणशतानि प्रतिलप्स्यते द्वादश मनोगुणशतानि प्रतिलप्स्यते। तस्यैभिर्बहुभिर्गुणशतैः षडिन्द्रियग्रामः परिशुद्धः सुपरिशुद्धो भविष्यति। स एवं परिशुद्धेन चक्षुरिन्द्रियेण प्राकृतेन मांसचक्षुषा मातापितृसम्भवेन त्रिसाहस्रमहासाहस्रां लोकधातुं सान्तर्बहिः सशैलवनषण्डामधो यावदवींचि महानिरयमुपादायोपरि च यावद् भवाग्रं तत् सर्वं द्रक्ष्यति प्राकृतेन मांसचक्षुषा। ये च तस्मिन् सत्त्वा उपपन्नास्तान् सर्वान् द्रक्ष्यति कर्मविपाकं च तेषां ज्ञास्यतीति।

तदनन्तर, भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व सततसमिताभियुक्त से बोले—हे कुलपुत्र ! जो कोई इस धर्मपर्याय को धारण करेगा, पढ़ेगा, लिखेगा या उसकी देशना करेगा, वह कुलपुत्र या कुलकन्या आठ सौ चक्षुर्गुणों को प्राप्त करेगी, बारह सौ क्षेत्रगुणों को प्राप्त करेगी, आठ सौ घ्राणगुणों को प्राप्त करेगी, बारह सौ जिह्वागुणों को प्राप्त करेगी, आठ सौ कायगुणों को प्राप्त करेगी तथा बारह सौ मनोगुणों को प्राप्त करेगी। इन अनेक शतगुणों से उसकी छहों इन्द्रियाँ परिशुद्ध एवं सुपरिशुद्ध हो जायगी। वह इस प्रकार परिशुद्धि को प्राप्त, माता-पिता से उत्पन्न इस प्राकृत मांसचक्षु के द्वारा पर्वतों एवं वनखण्डों से सम्पन्न त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु को बाहर, भीतर, नीचे अवीचि (नामक) महानरक तक और ऊपर भवाग्र तक पूर्णरूप से देखेगा। अपनी प्राकृत मांसचक्षु के द्वारा उस (संसार) में जो प्राणी उत्पन्न हुए हैं, उन सबको देखेगा और उनके कार्य के फल को भी जानेगा।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं—

य इमं सूत्र भाषेत पर्षासु च विशारदः।
अनोलीनः प्रकाशेया गुणांस्तस्य शृणुष्व मे ॥१॥

जो चतुर (व्यक्ति) इस सूत्र को परिषदों में कहे और बिना किसी उद्विग्नता के इसे प्रकाशित करे, उसके गुणों को सुनो, मैं कहता हूँ।

अष्टौ गुणशतास्तस्य चक्षुषो भोन्ति सर्वशः ।
येनास्य विमलं भोति शुद्धं चक्षुरनाविलम् ।।२।।

उसके नेत्र के पूरे आठ सौ गुण होते हैं, जिनके द्वारा इसकी दृष्टि, विमल, शुद्ध एवं निर्मल हो जाती है ।

स मांसचक्षुषा तेन मातापितृकसंभुना ।
पश्यते लोकधात्वेमां सशैलवनकाननाम् ।।३।।

वह माता-पिता से उत्पन्न (अपनी) उस मांसचक्षु से ही पर्वत, वन एवं काननों से सम्पन्न इस लोक को देखता है ।

मेरुं सुमेरु सर्वा च चक्रवाडा स पश्यति ।
ये चान्ये पर्वताः खण्डाः समुद्रांश्चापि पश्यति ।।४।।

वह मेरु, सुमेरु तथा सभी चक्रवाडों को देखता है । जो अन्य पर्वत के खण्ड हैं, (उन्हें) तथा समुद्रों को भी देखता हैं ।

यावानवीचि हेष्टेन भवाग्रं चोपरिष्टतः ।
सर्वं स पश्यते धीरो मांसचक्षुस्य ईदृशम् ।।५।।

वह धीर, नीचे अवीचि तक और ऊपर भवाग्र तक सब कुछ देखता है। उसकी मांसचक्षु ऐसी (शक्तिशालिनी) हो जाती है ।

न ताव दिव्यचक्षुस्य भोति नो चापि जायते ।
विषयो मांसचक्षुस्य भवेत्तस्यायमीदृशः ।।६।।

तबतक भी उसने दिव्यचक्षु नहीं प्राप्त की है, वह उत्पन्न ही नहीं हुई है । इस तरह की वस्तुएँ (जिनका वर्णन किया गया है) उसकी मांसचक्षु का ही विषय है ।

पुनरपरं सततसमिताभियुक्त स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वेमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयमानः परेषां च संश्रावयमानस्तैर्द्वादशभिः श्रोत्रगुणशतैः समन्वागतः । ये त्रिसाहस्रमहासाहस्रायां लोकधातौ विविधाः शब्दा निश्चरन्ति यावदवीचिर्महानिरयो यावच्च भवाग्रं सान्तर्बहिः । तद्यथा हस्तिशब्दा वाश्वशब्दा वोष्ट्रशब्दा वा गोशब्दा वाजशब्दा वा जनपदशब्दा वा रथशब्दा वा रुदितशब्दा वा शोकशब्दा वा भैरवशब्दा वा शंखशब्दा वा घण्टाशब्दा वा पटहशब्दा वा भेरीशब्दा वा क्रीडाशब्दा वा गीतशब्दा वा नृत्यशब्दा वा तूर्यशब्दा वा वाद्यशब्दा वा स्त्रीशब्दा वा पुरुषशब्दा वा दारकशब्दा वा दारिकाशब्दा वा धर्मशब्दा वाधर्मशब्दा वा सुखशब्दा वा दुःखशब्दा वा बालशब्दा

वार्यशब्दा वा मनोज्ञशब्दा वामनोज्ञशब्दा वा देवशब्दा वा नागशब्दा वा यक्षशब्दा वा राक्षसशब्दा वा गन्धर्वशब्दा वासुरशब्दा वा गरुडशब्दा वा किन्नरशब्दा वा महोरगशब्दा वा मनुष्यशब्दा वामनुष्यशब्दा वाग्निशब्दा वा वायुशब्दा वोदकशब्दा वा ग्रामशब्दा वा नगरशब्दा वा भिक्षुशब्दा वा श्रावकशब्दा वा प्रत्येकबुद्धशब्दा वा बोधिसत्त्वशब्दा वा तथागतशब्दा वा । यावन्तः केचित्त्रिसाहस्रमहासाहस्रायां लोकधातौ सान्तर्बहिः शब्दा निश्चरन्ति तान् शब्दांस्तेन प्राकृतेन परिशुद्धेन श्रोत्रेन्द्रियेण शृणोति । न च तावद्दिव्यं श्रोत्रमभिनिर्हरति तेषां तेषां च सत्त्वानां रुतान्यवबुध्यते विभावयति विभजति तेन च प्राकृतेन श्रोत्रेन्द्रियेण तेषां तेषां च सत्त्वानां रुतानि शृण्वतस्तस्य तैः सर्वशब्दैः श्रोत्रेन्द्रियं नाभिभूयते । एवंरूपः सततसमिताभियुक्त तस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य श्रोत्रन्द्रियप्रतिलम्भो भवति न च तावद्दिव्यं श्रोत्रमभिनिर्हरति ।

पुनः, हे सततसमिताभियुक्त ! इसके अतिरिक्त, इस धर्मपर्याय को सम्प्रकाशित करता हुआ तथा दूसरों को उसे सुनाता हुआ वह कुलपुत्र या कुलकन्या कान के उन बारह सौ गुणों से सम्पन्न होती है। त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु के अवीचि (नामक) महानरक से भवाग्र तक बाहर-भीतर जितने भी विविध शब्द निकलते हैं, यथा---हाथी के शब्द, घोड़े के शब्द, ऊँट के शब्द, गाय के शब्द, बकरी के शब्द, जनपद के शब्द, रथ के शब्द, रोने के शब्द, शोक के शब्द, भयंकर शब्द, शंख के शब्द, घण्टा के शब्द, पटह के शब्द, भेरी के शब्द, क्रीडा के शब्द, गीत के शब्द, नृत्यकला के शब्द, तूर्य के शब्द, बाद्य के शब्द, स्त्री के शब्द, पुरुष के शब्द, लड़के के शब्द, लड़की के शब्द, धर्म के शब्द, अधर्म के शब्द, सुख के शब्द, दुःख के शब्द, मूर्ख के शब्द, आर्य के शब्द, सुन्दर शब्द, असुन्दर शब्द, देवों के शब्द, नागों के शब्द, यक्षों के शब्द, गन्धर्वों के शब्द, राक्षसों के शब्द, असुरों के शब्द, गरुडों के शब्द, किन्नरों के शब्द, महोरगों के शब्द, मनुष्यों के शब्द, मनुष्येतर प्राणियों के शब्द, अग्नि के शब्द, वायु के शब्द, जल के शब्द, गाँव के शब्द, नगर के शब्द, भिक्षुकों के शब्द, श्रावकों के शब्द, प्रत्येकबुद्धों के शब्द, बोधिसत्त्वों एवं तथागतों के शब्द, (इन सबको वे सुनते हैं)। त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु में बाहर या भीतर जितने भी शब्द निकलते हैं, उन सबको वे अपने प्राकृत (किन्तु) परिशुद्ध कान से सुन लेते हैं। तबतक उन्हें दिव्य कर्णेन्द्रिय की प्राप्ति नहीं हुई। (यद्यपि कि) वे विभिन्न प्राणियों के शब्दों को समझ लेते हैं, पहचान लेते हैं एवं पृथक्-पृथक् कर लेते हैं और उस प्राकृत कान से विभिन्न प्राणियों के जिन शब्दों को वे सुनते हैं वे सभी शब्द उनके कानों को अभिभूत नहीं करते। हे सततसमिताभियुक्त ! उस महासत्त्व बोधिसत्त्व को इस प्रकार के कर्णेन्द्रिय की प्राप्ति होती है, किन्तु तबतक उसे दिव्यकर्णेन्द्रिय नहीं प्राप्त हुई रहती।

इदमवोचद् भगवानिदं वदित्वा सुगतो ह्यथापरमेतदुवाच शास्ता ।

भगवान् ने यह कहा, यह बोलकर सुगत ने, शास्ता ने पुनः यह कहा---

श्रोत्रेन्द्रियं तस्य विशुद्ध भोति
अनाविलं प्राकृतकं च तावत्।
विविधान् हि येनेह शृणोति शब्दा-
निह लोकधातौ हि अशेषतोऽयम् ।।७।।

उसका कान विशुद्ध एवं निर्मल हो जाता है, यद्यपि वह तबतक प्राकृत ही रहता है । इसके द्वारा वह इस लोकधातु में विविध शब्दों को पूर्ण रूप से सुनता है ।

हस्तीन अश्वान शृणोति शब्दान्
रथान गोणान अजैडकानाम्।
भेरीमृदङ्गान सुघोषकानां
वीणान वेणूनथ वल्लकीनाम् ।।८।।

हाथी, घोड़े, रथ, गाय, अज, एडक, भेरी, मृदंग, सुघोषक, वीणा, बाँसुरी एवं वल्लकी के शब्दों को (वह) सुनता है ।

गीतं मनोज्ञं मधुरं शृणोति
न चापि सो सज्जति तत्र धीरः।
मनुष्यकोटीन शृणोति शब्दान्
भाषन्ति यं यं च यहिं यहिं ते ।।९।।

सुन्दर एवं मधुर गीत को सुनता है, किन्तु वह धीर उसमें आसक्त नहीं होता। करोड़ों मनुष्यों के शब्दों को, जिन्हें वे जिस प्रकार जहाँ-जहाँ बोलते हैं, वह सुनता है ।

देवान चो नित्य शृणोति शब्दान्
गीतस्वरं च मधुरं मनोज्ञम्।
पुरुषाण इस्त्रीण रुतानि चापि
तथ दारकाणामथ दारिकाणाम् ।।१०।।

देवों के शब्दों तथा मधुर एवं सुन्दर गीत के स्वर को नित्य सुनता है तथा पुरुष, स्त्री, लड़के, लड़की के रुदन को भी सुनता है।

ये पर्वतेष्वेव गुहानिवासी
कलविङ्कका कोकिलबर्हिणश्च।
पक्षीण ये जीवक जीवका हि
तेषां च वल्गू शृणुते हि शब्दान् ।।११।।

पर्वतों पर गुफाओं में निवास करनेवाले प्राणियों के (शब्द) सुनता है तथा कलविंक, कोकिल, मोर तथा जो पक्षियों के जीवन-यापन के साधनभूत क्षुद्र प्राणी हैं, उन सबके शब्दों का सुनता है।

नरकेषु ये वेदन वेदयन्ति
सुदारुणांश्चापि करोन्ति शब्दान्।
आहारदुःखैरवपीडितानां
यान् प्रेत कुर्वन्ति तथैव शब्दान्॥१२॥

नरकों में, दुःखों का अनुभव करते हुए (लोग) जो भयंकर शब्द करते हैं तथा आहार के अभाव में दुःख से पीडित प्रेत (लोग) जो शब्द करते हैं (उन सबको वह सुनता है)।

असुराश्च ये सागरमध्यवासिनो
मुञ्चन्ति घोषांस्तथ चान्यमन्यान्।
सर्वानिहस्थो स हि धर्मभाणकः
शृणोति शब्दान्न च ओस्तरीयति॥१३॥

सागर के अन्दर रहनेवाले असुर जो शब्द करते हैं, उन्हें तथा अन्यान्य सभी शब्दों को वह धर्मभाणक यहीं खड़ा-खड़ा सुनता है; किन्तु उनसे पराभूत नहीं होता।

तिर्याण योनीषु रुतानि यानि
अन्योन्यसंभाषणतां करोन्ति।
इह स्थितस्तानपि सो शृणोति
विविधानि शब्दानि बहूविधानि॥१४॥

पक्षियों के रुदन एवं शब्दों को, जो वे एक दूसरे से वात करते समय बोलते हैं, उन विविध शब्दों को वह यहीं खड़ा-खड़ा बहुविध सुनता है।

ये ब्रह्मलोके निवसन्ति देवा
अकनिष्ठ आभास्वर ये च देवाः।
ये चान्यमन्यस्य करोन्ति घोषान्
शृणोति तत् सर्वमशेषतोऽसौ॥१५॥

जो देव ब्रह्मलोक में निवास करते हैं तथा जो अकनिष्ठ एवं आभास्वर देव हैं—वे सव एक दूसरे से वात करते समय जो घोष करते हैं, उन सबको यह पूर्ण रूप से सुनता है।

स्वाध्याय कुर्वन्तिह ये च भिक्षवः
सुगतानिह शासनि प्रव्रजित्वा ।
पर्षासु ये देशयते च धर्मं
तेषां पि शब्दं शृणुते स नित्यम् ।।१६।।

सुगतों के शासन में प्रव्रज्या लेकर जो भिक्षु स्वाध्याय कर रहे हैं तथा जो परिषदों में धर्म की देशना कर रहे हैं, उनके भी शब्दों को वह सदा सुनता है ।

ये बोधिसत्त्वाश्चिह लोकधातौ
स्वाध्याय कुर्वन्ति परस्परेण ।
संगीति धर्मेषु च ये करोन्ति
शृणोति शब्दान् विविधांश्च तेषाम् ।।१७।।

इस लोकधातु में जो बोधिसत्त्व मिलकर स्वाध्याय करते हैं और धार्मिक सभा में भाषण करते हैं, उन सब विविध शब्दों को वह सुनता है ।

भगवान् पि बुद्धो नरदम्यसारथिः
पर्षासु धर्मं ब्रुवते यमग्रम्
तं चापि सो शृण्वति एककाले
यो बोधिसत्त्वो इमु सूत्र धारयेत् ।।१८।।

दमनयोग्य पुरुषों के नियन्ता भगवान् बुद्ध भी परिषद् में जिस श्रेष्ठधर्म की देशना करते हैं, उसे भी इस सूत्र को धारण करनेवाला वह बोधिसत्त्व उसी समय सुन लेता है ।

सर्वे त्रिसाहस्रि इमस्मि क्षेत्रे
ये सत्त्व कुर्वन्ति बहूं पि शब्दान् ।
अभ्यन्तरेणापि च बाहिरेण
अवीचि पर्यन्त भवाग्रमूर्ध्वम् ।।१९।।

इस सम्पूर्ण त्रिसाहस्र क्षेत्र में बाहर या भीतर, नीचे अवीचि तक तथा ऊपर भवाग्र तक जो प्राणी अनेक शब्द कर रहे हैं,

सर्वेष सत्त्वान शृणोति शब्दान्
न चापि क्षेत्रं उपरुध्यतेऽस्य ।
पट्विन्द्रियो जानति स्थानस्थानं
श्रोत्रेन्द्रियं प्राकृतकं हि तावत् ।।२०।।

उन सभी प्राणियों के शब्दों को वह सुनता है, इसका (श्रवण)-क्षेत्र अवरुद्ध नहीं होता। वह चतुर (कर्ण) इन्द्रियवाला व्यक्ति प्रत्येक स्थान को पहचानता है, यद्यपि कि उसके कान प्राकृत ही हैं।

न च ताव दिव्यस्मि करोति यत्नं
प्रकृत्य संतिष्ठति श्रोत्रमेतत्।
सूत्रं हि यो धारयते विशारदो
गुणास्य एतादृशका भवन्ति ॥२१॥

दिव्य कर्णेन्द्रिय के लिए तबतक वह प्रयत्न नहीं करता है। उसका वह कान (तबतक) प्राकृत ही रहता है। जो इस सूत्र को धारण करता है, उसके कानों में ये गुण आ जाते हैं।

पुनरपरं सततसमिताभियुक्तास्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्येमं धर्मपर्यायं धारयतः प्रकाशयतः स्वाध्यायतो लिखितोऽष्टाभिर्गुणशतैः समन्वागतं घ्राणेन्द्रियं परिशुद्धं भवति। स तेन परिशुद्धेन घ्राणेन्द्रियेण ये त्रिसाहस्रमहासाहस्रायां लोकधातौ सान्तर्बहिर्विविधगन्धाः संविद्यन्ते। तद् यथा पूतिगन्धा वा मनोज्ञगन्धा वा नानाप्रकाराणां सुमनसां गन्धाः। तद् यथा जातिकमल्लिकाचम्पकपाटलगन्धास्तान् गन्धान् घ्रायति। जलजानामपि पुष्पाणां विविधान् गन्धान् घ्रायति। तद् यथोत्पलपद्मकुमुदपुण्डरीकाणां गन्धान् घ्रायति। विविधानां पुष्पफलवृक्षाणां पुष्पफलगन्धान् घ्रायति। तद् यथा चन्दनतमालपत्रतगरागरुसुरभिगन्धान् घ्रायति। नानाविकाराणि गन्धविकृतिशतसहस्राणि यान्येकस्थानस्थितः सर्वाणि घ्रायति। सत्त्वानामपि विविधान् गन्धान् घ्रायति। तद्यथा हस्त्यश्वगवेडकपशुगन्धान् घ्रायति। विविधानां च तिर्यग्योनिगतानां प्राणिनामात्मभावगन्धान् घ्रायति। स्त्रीपुरुषात्मभावगन्धान् घ्रायति। दारकदारिकात्मभावगन्धान् घ्रायति। दूरस्थानामपि तृणगुल्मौषधिवनस्पतीनां गन्धान् घ्रायति। भूतान् गन्धान् विन्दति न च तैर्गन्धैः संह्रियते न संमुह्यति। स इह स्थित एवं देवानामपि गन्धान् घ्रायति। तद् यथा पारिजातकस्य कोविदारस्य मान्दारवमहामान्दारवमञ्जूषकमहामञ्जूषकानां दिव्यानां पुष्पाणां गन्धान् घ्रायति। दिव्यानामगरुचूर्णचन्दनचूर्णानां गन्धान् घ्रायति। दिव्यानां च नानाविधानां पुष्पविकृतिशतसहस्राणां गन्धान् घ्रायति नामानि चैषां संजानीते। देवपुत्रात्मभावगन्धान् घ्रायति। तद् यथा शक्रस्य देवानामिन्द्रस्यात्मभावगन्धं घ्रायति। तं च जानीते यदि वा वैजयन्ते

प्रासादे क्रीडन्तं रमन्तं परिचारयन्तं यदि वा सुधर्मायां देवसभायां देवानां त्रायस्त्रिंशानां धर्मं देशयन्तं यदि वोद्यानभूमौ निर्यान्तं क्रीडनाय। अन्येषां च देवपुत्राणां पृथक्पृथगात्मभावगन्धान् घ्रायति। देवकन्यानामपि देववधूनामप्यात्मभावगन्धान् घ्रायति। देवकुमाराणामप्यात्मभावगन्धान् घ्रायति। देवकुमारिकाणामप्यात्मभावगन्धान् घ्रायति। न च तैर्गन्धैः संह्रियते। अनेन पर्यायेण यावद् भवाग्रोपपन्नानामपि सत्त्वानामात्मभावगन्धान् घ्रायति। ब्रह्मकायिकानामपि देवपुत्राणां महाब्रह्मणामपि चात्मभावगन्धान् घ्रायति। अनेन पर्यायेण सर्वदेवनिकायानामप्यात्मभावगन्धान् घ्रायति। श्रावकप्रत्येकबुद्धबोधिसत्त्वतथागतात्मभावगन्धान् घ्रायति। तथागतासनानामपि गन्धान् घ्रायति। यस्मिंश्च स्थाने ते तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा विहरन्ति तच्च प्रजानाति। न चास्य तद् घ्राणेन्द्रियं तैस्तैर्विविधैर्गन्धैः प्रतिहन्यते नोपहन्यते न संपीड्यत आकाङ्क्षमाणश्च तांस्तान् गन्धान् परेषामपि व्याकरोति न चास्य स्मृतिरुपहन्यते।

पुनः, हे सततसमिताभियुक्त ! इसके अतिरिक्त इस धर्मपर्याय को धारण करनेवाले, इसको प्रकाशित करनेवाले, इसका अध्ययन करनेवाले तथा इसको लिखनेवाले इस महासत्त्व बोधिसत्त्व की आठ सौ गुणों से सम्पन्न नासिका भी परिशुद्ध हो जाती है। इस त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु में बाहर-भीतर जो भी विविध गन्ध हैं, उन सबको वह उस परिशुद्ध नासिका के द्वारा ग्रहण कर लेता है। जैसे, सड़ी गन्ध, सुन्दर गन्ध, या नाना प्रकार के फूलों की गन्ध एवं जाती, मल्लिका, चम्पक तथा पाटल की गन्ध—इन सभी गन्धों को वह ग्रहण कर लेता है। जल में उत्पन्न होनेवाले विविध फूलों की गन्धों को ग्रहण करता है। जैसे—उत्पल, पद्म, कुमुद एवं पुण्डरीक की गन्ध को ग्रहण करता है। विविध फूल के वृक्षों एवं फल के वृक्षों के फूल एवं फल की गन्ध को ग्रहण करता है। जैसे—चन्दन, तमालपत्र, तगर एवं अगरु के सुन्दर गन्धों को ग्रहण करता है। नाना प्रकार के सैकड़ों हजारों गन्धों की जो विकृतियाँ हैं, उन सबको एक ही स्थान पर खड़े-खड़े वह ग्रहण करता है। प्राणियों की भी विविध गन्धों को वह ग्रहण करता है। जैसे—हाथी, घोड़ा, गाय, एडक एवं अन्य पशुओं की गन्ध को ग्रहण करता है। विविध तिर्यक् योनियों में उत्पन्न प्राणियों के शरीर की गन्धों को ग्रहण करता है। स्त्री और पुरुषों के शरीरों की गन्ध को ग्रहण करता है। लड़के और लड़कियों के शरीरों की गन्ध को ग्रहण करता है। दूर पर भी स्थित तृण, गुल्म, ओषधि एवं वनस्पतियों की गन्ध को ग्रहण कर लेता है। वह वास्तविक गन्ध को ग्रहण कर लेता है, किन्तु उन गन्ध से न वह आकृष्ट होता है और न मुग्ध होता है। इसी प्रकार, इस लोक में खड़ा-खड़ा वह देवताओं की गन्ध को भी ग्रहण करता है। यथा—आर्यजात, कोविदार, मान्दारव, महामान्दारव, मञ्जूषक एवं महामञ्जूषक के दिव्यपुष्पों की गन्ध को ग्रहण

करता है। दिव्य अगरुचूर्ण एवं चन्दनपूर्ण की गन्ध को ग्रहण करता है। अनेक प्रकार के शतसहस्र दिव्यपुष्पों की गन्ध को ग्रहण करता है और उनके नामों को भी जानता है। देवपुत्रों के शरीरों की गन्ध को भी ग्रहण करता है। जैसे देवों के राजा शक्र के शरीर की गन्ध को ग्रहण करता है और उन्हें पहचान लेता है––चाहे वह वैजयन्त प्रासाद में क्रीडा, रमण एवं परिचरण कर रहे हों, चाहे सुधर्मा नामक देवसभा में त्रायस्त्रिंश देवों को धर्म की देशना कर रहे हों या चाहे क्रीडा के लिए बाहर उपवन में जाते हों। अन्य देवपुत्रों, देवकन्याओं, देवकुमारों और देवकुमारियों के पृथक्-पृथक् शरीरों की गन्धों को ग्रहण करता है, किन्तु इन गन्धों से वह आकृष्ट नहीं होता। इसी प्रकार, वह भवाग्र तक में उत्पन्न होनेवाले सभी प्राणियों के शरीर की गन्ध को ग्रहण करता है। ब्रह्मकायिक देवपुत्रों एवं महाब्रह्माओं के शरीर की गन्ध को ग्रहण करता है। इस प्रकार, सभी देवनिकायों के शरीर की गन्ध को ग्रहण करता है। श्रावक, बोधिसत्त्व, प्रत्येकबुद्ध एवं तथागत के शरीर की गन्ध को ग्रहण करता है। तथागत के आसनों की गंधों को भी ग्रहण करता है। वे तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध जिस स्थान पर विहार करते हैं, उसे वह गन्ध से पहचान लेता है। उसकी नासिका उन विविध गन्धों के द्वारा प्रतिहत, उपहत एवं संपीडित नहीं होती और चाहने पर दूसरों के सम्मुख भी उन-उन गन्धों का वर्णन कर सकता है, और उसकी स्मृति भी उपहत नहीं होती।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं––

घ्राणेन्द्रियं तस्य विशुद्ध भोति
विविधांश्च गन्धान् बहु घ्रायतेऽसौ।
ये लोकधातौ हि इमस्मि सर्वे
सुगन्धदुर्गन्ध भवन्ति केचित्॥२२॥

उसकी नासिका विशुद्ध होती है। वह विविध गन्धों को ग्रहण करता है। इस लोकधातु में जो भी सुगन्ध या दुर्गन्ध है, वह सब (उसे) प्राप्त होती है।

जातीय गन्धो अथ मल्लिकाया
तमालपत्रस्य च चन्दनस्य।
तगरस्य गन्धो अगरुष्य चापि
विविधान पुष्पाण फलान चापि॥२३॥

जाती की, मल्लिका की, तमालपत्र की, चन्दन की, तगर की, अगरु की तथा विविध फूलों एवं फलों की गन्ध को (वह जानता है);

सत्त्वान गन्धान् पि तथैव जानति
नराण नारीण च दूरत स्थितः।

कुमारकाणां च कुमारिकाणां
गन्धेन सो जानति तेष स्थानम् ।।२४।।

तथा दूर पर खड़ा-खड़ा ही वह प्राणियों, मनुष्यों एवं स्त्रियों की गन्ध को पहचान जाता है। कुमारों एवं कुमारियों की गन्ध के द्वारा ही वह उस स्थान को पहचान जाता है, जहाँ वे खड़े होते हैं।

राज्ञां पि सो जानति चक्रवर्तिनां
बलचक्रवर्तीनथ मण्डलीनाम् ।
कुमारकामात्य तथैव तेषां
गन्धेन चान्तःपुर सर्व जानति ।।२५।।

राजाओं, चक्रवर्त्तियों, बलचक्रवर्त्तियों, मण्डलाधीशों, कुमारकों एवं अमात्यों की गन्ध को वह पहचाता है एवं गन्ध से ही अन्तःपुर (की रानियों) को पहचान जाता है।

परिभोगरत्नानि बहूविधानि
कुप्यानि भूमौ निहितानि यानि ।
स्त्रीरत्नभूतानि भवन्ति यापि
गन्धेन सो जानति बोधिसत्त्वः ।।२६।।

अनेक प्रकार के परिभोग्य रत्नों तथा भूमि में पड़ी हुई धातुओं एवं श्रेष्ठ स्त्रियों को वह बोधिसत्त्व (उनकी) गन्ध से ही पहचान जाता है।

तेषां च या आभरणा भवन्ति
कायस्मि आमुक्त विचित्ररूपा ।
वस्त्रं च माल्यं च विलेपनं च
गन्धेन सो जानति बोधिसत्त्वः ।।२७।।

उसके शरीर पर धारण किये हुए जो विभिन्न प्रकार के आभूषण होते हैं, वस्त्र होता है, माला होती है एवं विलेपन होता है, उन सबको वह बोधिसत्त्व गन्ध से ही पहचान लेता है।

स्थितां निषण्णां शयितां तथैव
क्रीडारतिं ऋद्धिबलं च सर्वम् ।
सो जानती घ्राणबलेन धीरो
यो धारयेत् सूत्रमिदं वरिष्ठम् ।।२८।।

जो धीर (पुरुष) इस श्रेष्ठसूत्र को धारण करता है, वह अपनी घ्राणशक्ति के द्वारा खड़ी हुई, बैठी हुई, सोई हुई एवं रति-क्रीड़ाओं में संलग्न स्त्री को तथा अलौकिक शक्तियों को पहचानता है।

सुगन्धतैलान तथैव गन्धान्
नानाविधान् पुष्पफलान गन्धान्।
सकृत्स्थितो जानति घ्रायते च
अमुकस्मि देशस्मि इमस्मि गन्धान् ॥२९॥

वह एक ही स्थान पर खड़ा-खड़ा सुगन्धित तैलों की गन्ध को तथा पुष्प एवं फल की विभिन्न गन्धों को ग्रहण कर लेता है और यह जान जाता है कि ये गन्ध इस अमुक स्थान में (वर्त्तमान हैं)।

ये पर्वतानां विवरान्तरेषु
बहु चन्दना पुष्पित तत्र सन्ति।
ये चापि तस्मिन् निवसन्ति सत्त्वाः
सर्वेष गन्धेन विदुर्विजानति ॥३०॥

वह विद्वान् (पुरुष) पर्वतों की गुफाओं में स्थित, एवं खिलनेवाले अनेक चन्दन-वृक्षों को एवं उनमें निवास करनेवाले प्राणियों को, उनके गन्धों के द्वारा जान लेता है।

ये चक्रवाडस्य भवन्ति पार्श्वे
ये सागरस्यो निवसन्ति मध्ये।
पृथिवीय ये मध्यि वसन्ति सत्त्वाः
सर्वान् स गन्धेन विदुर्विजानति ॥३१॥

जो दिशाओं के अन्त में रहनेवाले हैं, जो सागर के मध्य में निवास करनेवाले हैं एवं जो पृथ्वी के मध्य में बसनेवाले प्राणी हैं, उन सबको वह विद्वान् पुरुष (उनकी) गन्ध से जान लेता है।

सुरांश्च जानाति तथासुरांश्च
असुराण कन्याश्च विजानतेऽसौ।
असुराण क्रीडाश्च रतिं च जानति
घ्राणस्य तस्येदृशकं बलं हि ॥३२॥

वह देवताओं को तथा असुरों को जानता है, असुरों की कन्याओं को जानता है एवं असुरों की क्रीडाओं एवं उनके योग्य विषयों को जानता है। यतः, उनकी नासिका की ऐसी शक्ति है।

अटवीषु ये केचि चतुष्पदास्ति
सिंहाश्च व्याघ्रास्तथ हस्तिनागाः।
महिषा गवा ये गवयश्च तत्र
घ्राणेन सो जानति तेष वासम् ।।३३।।

जंगलों में जो चतुष्पद, सिंह, व्याघ्र, हाथी, सर्प, महिष, गाय तथा गवय निवास करते हैं, उन सबके वास को वह घ्राण के द्वारा जान लेता है।

स्त्रियश्च या गुर्विणिका भवन्ति
कुमारकां वापि कुमारिकां वा।
धारेन्ति कुक्षौ हि किलान्तकाया
गन्धेन सो जानति यं तर्हि स्यात् ।।३४।।

ये क्लान्तकाय एवं गर्भिणी स्त्रियाँ अपनी कुक्षि में पुत्र धारण करती हैं या कन्या, इस बात को वह गन्ध के द्वारा ही जान लेता है ।

आपन्नसत्त्वां पि विजानतेऽसौ
विनाशधर्मां पि विजानतेऽसौ।
इयं पि नारी व्यपनीतदुःखा
प्रसविष्यते पुण्यमयं कुमारम् ।।३५।।

वह आपन्नसत्त्वा को पहचानता है, विनष्ट धर्मों को भी पहचानता है । (वह जानता है) कि अमुक नारी दुःखों से मुक्त होकर पवित्र पुत्र को जन्म देगी।

पुरुषाण अभिप्रायु बहुं विजानते
अभिप्रायगन्धं च तथैव घ्रायते।
रक्तान दुष्टान तथैव म्रक्षिणां
उपशान्तचित्तान च गन्ध घ्रायते ।।३६।।

वह पुरुषों के विभिन्न अभिप्रायों को जानता है। वह उनके अभिप्रायों की गन्ध को भी ग्रहण कर लेता है । वह रागियों, दुष्टों, म्रक्षों एवं उपशान्तचित्त व्यक्तियों की गन्ध ग्रहण करता है ।

पृथिवीय ये चापि निधान सन्ति
धनं हिरण्यं च सुवर्णरूप्यम्।
मन्जूष लोही च तथा सुपूर्णा
गन्धेन सो घ्रायति बोधिसत्त्वः ।।३७।।

पृथ्वी में जो (गुप्त) खजाने हैं, धन, हिरण्य, सुवर्ण एवं चाँदी है तथा (धन से) परिपूर्ण जो लौहमंजूषा है, इन सबकी गन्ध को वह बोधिसत्त्व ग्रहण करता है।

हारार्धहारान्मणिमुक्तिकाश्च
अनर्घप्राप्ता विविधा च रत्ना।
गन्धेन सो जानति तानि सर्वा
अनर्घनामं द्युतिसंस्थितं च ॥३८॥

हार, आर्यहार, मणि, मुक्तिका तथा मूल्यवान् विविध रत्न—इन सबको वह गन्ध के द्वारा जान लेता है एवं सभी कीमती एवं प्रकाशित वस्तुओं को (पहचान लेता है)।

उपरिं च देवेषु तथैव पुष्पा
मन्दारवांश्चैव मञ्जूषकांश्च।
या पारिजातस्य च सन्ति पुष्पा
इह स्थितो घ्रायति ता स धीरः ॥३९॥

ऊपर देवलोकों में जो भी मान्दारव और मंजूषक के पुष्प हैं तथा जो परिजात के पुष्प हैं, उन सबकी गन्ध को वह धीर (बोधिसत्त्व) यहीं खड़ा-खड़ा ग्रहण करता है।

विमान ये यादृशकाश्च यस्य
उदारहीनास्तथ मध्यमाश्च।
विचित्ररूपाश्च भवन्ति यत्र
इह स्थिते घ्राणबलेन घ्रायति ॥४०॥

वहाँ पर उत्तम, हीन एवं मध्यम कोटि के अनेक प्रकार के जैसे भी जिसके विमान हैं, उन सबको यहीं खड़ा-खड़ा अपनी नासिका की घ्राण शक्ति से ग्रहण कर लेता है।

उद्यानभूमिं च तथा प्रजानते
सुधर्मदेवासनि वैजयन्ते।
प्रासादश्रेष्ठे च तथा विजानते
ये चो रमन्ते तहि देवपुत्राः ॥४१॥

वह उद्यानभूमि (स्वर्ग) को जानता है, वहाँ पर सुधर्मदेव (कुबेर) के वैजयन्त (नामक) श्रेष्ठ प्रासाद में जो देवता लोग रमण करते हैं, उन्हें भी वह पहचानता है।

इह स्थितो घ्रायति गन्धु तेषां
गन्धेन सो जानति देवपुत्रान्।
यो यत्र कर्म कुरुते स्थितो वा
शेते वा गच्छति यत्र वापि ॥४२॥

यहीं खड़ा-खड़ा वह उनके गन्ध को ग्रहण करता है एवं गन्ध से ही जान जाता है कि उन देवपुत्रों में कौन क्या काम करता है, कौन कहाँ वर्त्तमान है, कौन सो रहा है और कौन चल रहा है ।

या देवकन्या बहुपुष्पमण्डिता
आमुक्तमाल्याभरणा अलंकृताः ।
रमन्ति गच्छन्ति च यत्र यत्र
गन्धेन सो जानति बोधिसत्त्वः ।।४३।।

अनेक पुष्पों से मण्डित, सुन्दर माला तथा आभरण धारण करनेवाली देवकन्याएँ जहाँ-जहाँ रमण करती हैं और जाती हैं, उन सबको वह बोधिसत्त्व गन्ध के द्वारा जान जाता है ।

यावद् भवाग्रादुपरि च देवा
ब्रह्मा महाब्रह्मविमानचारिणः ।
तांश्चापि गन्धेन तहि प्रजानते
स्थितांश्च ध्याने अथ व्युत्थितान् वा ।।४४।।

भवाग्र तक के तथा उससे भी ऊपर के देवों एवं विशाल ब्रह्म विमानों में विचरण करनेवाले ब्रह्माओं के बारे में उनकी गन्ध से ही जानकारी प्राप्त कर लेता है कि वे समाधि में स्थित हैं या उससे उठ गये हैं ।

आभास्वराञ्जानति देवपुत्रान्
च्युतोपपन्नांश्च अपूर्वकांश्च ।
घ्राणेन्द्रियं ईदृश तस्य भोति
यो बोधिसत्त्वो इमु सूत्र धारयेत् ।।४५।।

वह च्युत होकर पुनः उत्पन्न होनेवाले उन अपूर्व आभास्वर देवपुत्रों को जानता है । जो बोधिसत्त्व इस सूत्र को धारण करता है, उसकी नासिका ही ऐसी हो जाती है ।

ये केचि भिक्षू सुगतस्य शासने
अभियुक्तरूपा स्थित चंक्रमेषु
उद्देश स्वाध्यायरताश्च भिक्षवो
सर्वान् हि सो जानति बोधिसत्त्वः ।।४६।।

सुगत के शासन में अभियुक्त होकर जो कुछ निरन्तर भ्रमणशील है एवं जो भिक्षु उपदेश एवं स्वाध्याय में रत है, उन सबको वह बोधिसत्त्व जानता है ।

ये श्रावका भोन्ति जिनस्य पुत्रा
विहरन्ति केचित् सद वृक्षमूले।
गन्धेन सर्वान् विदु जानते तान्
अमुत्र भिक्षू अमुको स्थितो ति ।।४७।।

वह बुद्धिमान् (बोधिसत्त्व) जिन के इन सभी पुत्रों के बारे में--जो श्रावक हैं अथवा जो सदा वृक्षमूल में विहार करते हैं--जानता है कि कौन भिक्षु कहाँ स्थित है।

ये बोधिसत्त्वाः स्मृतिमन्त ध्यायिनो
उद्देशस्वाध्यायरताश्च ये सदा।
पर्षासु धर्मं च प्रकाशयन्ति
गन्धेन तान् जानति बोधसत्त्वः ।।४८।।

जो बोधिसत्त्व, स्मृतिमान् एवं ध्यायी हैं, जो सदा उपदेश एवं स्वाध्याय में रत हैं तथा जो परिषदों में धर्म को प्रकाशित करते हैं, उन सबको वह बोधिसत्त्व गन्ध के द्वारा जानता है।

यस्यां दिशायां सुगतो महामुनि-
र्धर्मं प्रकाशेति हितानुकम्पकः।
पुरस्कृतः श्रावकसंघमध्ये
गन्धेन सो जानति लोकनाथम् ।।४९।।

जिस दिशा में सबके हितैषी एवं सब पर दयालु महामुनि सुगत पुरस्कृत होकर श्रावकसंघ के मध्य में धर्म को प्रकाशित करते हैं, वह (बोधिसत्त्व) उन लोकनाथ को गन्ध से पहचान लेता है।

ये चापि सत्त्वास्य शृणोति धर्मं
श्रुत्वा च ये प्रीतमना भवन्ति।
इह स्थितो जानति बोधिसत्त्वो
जिनस्य पर्षामपि तत्र सर्वाम् ।।५०।।

जो प्राणी इनसे धर्मोपदेश को सुनते हैं तथा सुनकर प्रसन्न होते हैं, उन सबके विषय में वह बोधिसत्त्व यहीं खड़ा-खड़ा जानता है एवं वहाँ वर्त्तमान तथागत की सम्पूर्ण परिषद् को भी जानता है।

एतादृशं घ्राणबलं स्य भोति
न च ताव दिव्यं भवते स्य घ्राणम्।
पूर्वंगमं तस्य तु एत भोति
दिव्यस्य घ्राणस्य अनास्रवस्य ।।५१।।

इस घ्राण की ऐसी (अलौकिक) शक्ति होती है। फिर भी, उसकी नासिका दिव्य नहीं होती, किन्तु अनास्रव एवं दिव्यनासिका का पूर्वरूप उसे उपलब्ध हो जाता है।

पुनरपरं सततसमिताभियुक्त स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वेमं धर्मपर्यायं धारयमाणो देशयमानः प्रकाशयमानो लिखमानस्तैर्द्वादशभिर्जिह्वागुणशतैः समन्वागतं जिह्वेन्द्रियं प्रतिलप्स्यते। स यथारूपेण जिह्वेन्द्रियेण यान् यान् रसानास्वादयति यान् यान् रसान् जिह्वेन्द्रिय उपनिक्षेप्स्यति सर्वे ते दिव्यं महारसं मोक्ष्यन्ते। तथा चास्वादयिष्यति यथा न कंचिद् रसममन-आपमास्वादयिष्यति। येऽप्यमन-आपा रसास्तेऽपि तस्य जिह्वेन्द्रिये समुपनिक्षिप्ता दिव्यं रसं मोक्ष्यन्ते। यं च धर्मं व्याहरिष्यति पर्षन्मध्यगतस्तेन तस्य ते सत्त्वाः प्रीणितेन्द्रिया भविष्यन्ति तुष्टाः परमतुष्टाः प्रामोद्यजाताः। मधुरश्चास्य वल्गुमनोज्ञस्वरो गम्भीरो निश्चरिष्यति हृदयंगमः प्रेमणीयः। तेनास्य ते सत्त्वास्तुष्टा उदग्रचित्ता भविष्यन्ति। येषां च धर्मं देशयिष्यति ते चास्य मधुरनिर्घोषं श्रुत्वा वल्गुमनोज्ञं देवा अप्युपसंक्रमितव्यं मंस्यन्ते दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय धर्मश्रवणाय च। देवपुत्रा अपि देवकन्या अप्युपसंक्रमतिव्यं मंस्यन्ते दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय धर्मश्रवणाय च। शक्रा अपि ब्रह्माणोऽपि ब्रह्मकायिका अपि देवपुत्रा उपसंक्रमतिव्यं मंस्यन्ते दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय धर्मश्रवणाय च। नागा नागकन्या अप्युपसंक्रमितव्यं मंस्यन्ते दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय धर्मश्रवणाय च। असुरा असुरकन्या अप्युपसंक्रमितव्यं मंस्यन्ते दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय धर्मश्रवणाय च। गरुडा गरुडकन्या अप्युपसंक्रमितव्यं मंस्यन्ते दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय धर्मश्रवणाय च। किन्नराः किन्नरकन्या अपि महोरगा महोरगकन्या अपि यक्षा यक्षकन्या अपि पिशाचाः पिशाचकन्या अप्युपसंक्रमितव्यं मंस्यन्ते दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय धर्मश्रवणाय च। ते चास्य सत्कारं करिष्यन्ति गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां करिष्यन्ति। भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिका अपि दर्शनकामा भविष्यन्ति। राजानोऽपि राजपुत्रा अपि राजामात्या अपि राजमहामात्रा अपि दर्शनकामा भविष्यन्ति। बलचक्रवर्तिनोऽपि राजानश्चक्रवर्तिनोऽपि सप्तरत्नसमन्वागताः सकुमाराः सामात्याः सान्तःपुरपरिवारा दर्शनकामा भविष्यन्ति सत्कारार्थिनः। तावन्मधुरं स धर्मभाणको धर्मं भाषिष्यते यथाभूतं यथोक्तं तथागतेन। अन्येऽपि ब्राह्मणगृहपतयो नैगमजानपदास्तस्य धर्मभाणकस्य सततसमितं समनुबद्धा भविष्यन्ति यावदायुष्पर्यवसानम्। तथा-

गतश्रावका अप्यस्य दर्शनकामा भविष्यन्ति। प्रत्येकबुद्धा अप्यस्य दर्शनकामा भविष्यन्ति। बुद्धा अप्यस्य भगवन्तो दर्शनकामा भविष्यन्ति। यस्यां च दिशि स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा विहरिष्यति तस्यां दिशि तथागताभिमुखं धर्मं देशयिष्यति बुद्धधर्माणां च भाजनभूतो भविष्यति। एवं मनोज्ञस्तस्य गम्भीरो धर्मशब्दो निश्चरिष्यति।

पुनः, हे सततसमिताभियुक्त ! उस कुलपुत्र या कुलकन्या को, जो इस धर्मपर्याय को धारण करता है, इसकी देशना करता है, उसको प्रकाशित करता है एवं लिखता है, उसे उन बारह सौ जिह्वागुणों से युक्त जिह्वेन्द्रिय प्राप्त होती है। उस प्रकार की जिह्वा से वह जिन-जिन रसों का आस्वाद लेता है तथा जिन-जिन रसों को अपनी जिह्वा पर उपनिक्षिप्त करता है, वे सभी दिव्य, महारस को मुक्त करते हैं। वह उस प्रकार से आस्वाद लेगा, जिससे वह किसी प्रकार के अप्रिय स्वाद का आस्वाद नहीं लेगा। जो अप्रिय एवं कटुरस हैं, वे भी उसकी जिह्वा पर पड़कर दिव्य (मधुर) रस को ही भुक्त करेंगे। परिषद् के मध्य में स्थित होकर वह जिस धर्म का व्याहार करेगा, उसके उस धर्मोपदेश से वे सभी प्राणी आनन्दित, तुष्ट, परमतुष्ट हो जायेंगे एवं उनके हृदय में प्रामोद्य उत्पन्न हो जायगा। इसके स्वर मधुर, मनोज्ञ, गम्भीर, वल्गु, हृदयंगम एवं प्रेमोत्पादक होगा। इसके इस शब्द से प्राणी तुष्ट एवं उदग्रचित्त हो जायेंगे। जिन (देवों) को यह धर्म की देशना करेगा, वे देवता इसके मधुर वल्गु एवं मनोज्ञ निर्घोष को सुनकर ऐसा मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एवं धर्मश्रवण के लिए उसके निकट जाना चाहिए। देवपुत्र एवं देवकन्याएँ भी मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एवं धर्मश्रवण के लिए उनके निकट जाना चाहिए। शक्र, ब्रह्मा एवं ब्रह्मकायिक देवपुत्र भी मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एवं धर्मश्रवण के लिए उनके निकट जाना चाहिए। नाग एवं नागकन्या भी मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एवं धर्मश्रवण के लिए उनके निकट जाना चाहिए। असुर एवं असुरकन्याएँ भी मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एवं धर्मश्रवण के लिए उनके निकट जाना चाहिए। गरुड एवं गरुडकन्याएँ भी मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एवं धर्मश्रवण के लिए उनके निकट जाना चाहिए। किन्नर एवं किन्नरकन्याएँ, महोरग एवं महोरगकन्याएँ, यक्ष एवं यक्षकन्याएँ तथा पिशाच एवं पिशाचकन्याएँ भी मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एवं धर्मश्रवण के लिए उनके निकट जाना चाहिए। वे उनका सत्कार करेंगे एवं आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन, तथा अपचायन करेंगे। भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक एवं उपासिका भी उनके दर्शनों के इच्छुक होंगे। राजा, राजपुत्र, राजामात्य एवं राजमहाभात्र भी (उनके) दर्शनों के इच्छुक होंगे। सात रत्नों से युक्त वलचक्रवर्त्ती एवं चक्रवर्त्ती राजा भी अपने राजकुमारों, अमात्यों एवं अन्तःपुर की रानियों के साथ उनके दर्शनों के इच्छुक होंगे एवं उनका सत्कार करना चाहेंगे। उस धर्मभाणक द्वारा दिया गया धर्मोपदेश, तथागत के द्वारा दिये गये धर्मोपदेश के समान मधुर एवं सत्य होगा। अन्य दूसरे ब्राह्मण, गृहपति, नैगम एवं जानपद

उस धर्मभाणक के प्रति सर्वदा आयु के अन्त तक समनुबद्ध रहेंगे। तथागत एवं श्रावक भी उसके दर्शनों के इच्छुक रहेंगे। प्रत्येकबुद्ध भी उसके दर्शनों के इच्छुक रहेंगे। भगवान् बुद्ध भी उसके दर्शनों के इच्छुक रहेंगे। जिस दिशा में वह कुलपुत्र या कुल-कन्या विहार करेगी, उस दिशा में तथागत के अभिमुख होकर धर्म की देशना करेगी तथा बुद्ध के धर्मों का पात्र बनेगी। इस प्रकार, उसका मनोज्ञ एवं गम्भीर धर्मशब्द, निश्चरण करेगा।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं—

जिह्वेन्द्रियं तस्य विशिष्टु भोति
न जातु हीनं रस स्वादयेत।
निक्षिप्तमात्राश्च भवन्ति दिव्या
रसेन दिव्येन समन्विताश्च ।।५२।।

उसकी जिह्वा विशिष्ट होती है, वह कदापि हीन रस का आस्वादन नहीं करती। उसकी जिह्वा पर रखे जाते ही (सभी रस) दिव्य हो जाते हैं एवं दिव्यरसों से समन्वित हो जाते हैं।

वल्गुस्वरां मधुर प्रभाषते गिरां
श्रवणीयमिष्टां च मनोरमां च।
पर्षाय मध्यस्मि ह प्रेमणीयं
गम्भीरघोषं च सदा प्रभाषते ।।५३।।

वह वल्गुस्वर, मधुर, श्रवणीय इष्ट एवं मनोरम वाणी बोलता है। वह परिषद् के मध्य में सदा प्रेमपूर्ण एवं गम्भीर घोषवाले शब्दों का उच्चारण करता है।

यश्चापि धर्मं शृणुतेऽस्य भाषतो
दृष्टान्तकोटीनयुतैरनेकैः।
प्रामोद्य तत्रापि जनेति सोऽग्रं
पूजां च तस्य कुरुतेऽप्रमेयाम् ।।५४।।

जो भी व्यक्ति अनेक कोटि नयुत दृष्टान्तों के द्वारा उसके धर्मोपदेश को सुनता है, वह भी उस विषय में आनन्द का अनुभव करता है एवं उसकी अप्रमेय पूजा करता है।

देवापि नागासुरगुह्यकाश्च
द्रष्टुं तमिच्छन्ति च नित्यकालम्।

गतश्रावका अप्यस्य दर्शनकामा भविष्यन्ति। प्रत्येकबुद्धा अप्यस्य दर्शनकामा भविष्यन्ति। बुद्धा अप्यस्य भगवन्तो दर्शनकामा भविष्यन्ति। यस्यां च दिशि स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा विहरिष्यति तस्यां दिशि तथागताभिमुखं धर्मं देशयिष्यति बुद्धधर्माणां च भाजनभूतो भविष्यति। एवं मनोज्ञस्तस्य गम्भीरो धर्मशब्दो निश्चरिष्यति।

पुनः, हे सततसमिताभियुक्त ! उस कुलपुत्र या कुलकन्या को, जो इस धर्मपर्याय को धारण करता है, इसकी देशना करता है, उसको प्रकाशित करता है एवं लिखता है, उसे उन बारह सौ जिह्वागुणों से युक्त जिह्वेन्द्रिय प्राप्त होती है । उस प्रकार की जिह्वा से वह जिन-जिन रसों का आस्वाद लेता है तथा जिन-जिन रसों को अपनी जिह्वा पर उपनिक्षिप्त करता है, वे सभी दिव्य, महारस को मुक्त करते हैं । वह उस प्रकार से आस्वाद लेगा, जिससे वह किसी प्रकार के अप्रिय स्वाद का आस्वाद नहीं लेगा । जो अप्रिय एवं कटुरस हैं, वे भी उसकी जिह्वा पर पड़कर दिव्य (मधुर) रस को ही भुक्त करेंगे । परिषद् के मध्य में स्थित होकर वह जिस धर्म का व्याहार करेगा, उसके उस धर्मोपदेश से वे सभी प्राणी आनन्दित, तुष्ट, परमतुष्ट हो जायेंगे एवं उनके हृदय में प्रामोद्य उत्पन्न हो जायगा । इसके स्वर मधुर, मनोज्ञ, गम्भीर, वल्गु, हृदयंगम एवं प्रेमोत्पादक होगा । इसके इस शब्द से प्राणी तुष्ट एवं उदग्रचित्त हो जायेंगे । जिन (देवों) को यह धर्म की देशना करेगा, वे देवता इसके मधुर वल्गु एवं मनोज्ञ निर्घोष को सुनकर ऐसा मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एवं धर्मश्रवण के लिए उसके निकट जाना चाहिए। देवपुत्र एवं देवकन्याएँ भी मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एवं धर्मश्रवण के लिए उनके निकट जाना चाहिए। शक्र, ब्रह्मा एवं ब्रह्मकायिक देवपुत्र भी मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एवं धर्मश्रवण के लिए उनके निकट जाना चाहिए । नाग एवं नागकन्या भी मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एवं धर्मश्रवण के लिए उनके निकट जाना चाहिए । असुर एवं असुरकन्याएँ भी मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एवं धर्मश्रवण के लिए उनके निकट जाना चाहिए । गरुड एवं गरुडकन्याएँ भी मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एवं धर्मश्रवण के लिए उनके निकट जाना चाहिए । किन्नर एवं किन्नरकन्याएँ, महोरग एवं महोरगकन्याएँ, यक्ष एवं यक्षकन्याएँ तथा पिशाच एवं पिशाचकन्याएँ भी मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एवं धर्मश्रवण के लिए उनके निकट जाना चाहिए । वे उनका सत्कार करेंगे एवं आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन, तथा अपचायन करेंगे । भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक एवं उपासिका भी उनके दर्शनों के इच्छुक होंगे। राजा, राजपुत्र, राजामात्य एवं राजमहाभात्र भी (उनके) दर्शनों के इच्छुक होंगे । सात रत्नों से युक्त बलचक्रवर्त्ती एवं चक्रवर्त्ती राजा भी अपने राजकुमारों, अमात्यों एवं अन्तःपुर की रानियों के साथ उनके दर्शनों के इच्छुक होंगे एवं उनका सत्कार करना चाहेंगे । उस धर्मभाणक द्वारा दिया गया धर्मोपदेश, तथागत के द्वारा दिये गये धर्मोपदेश के समान मधुर एवं सत्य होगा । अन्य दूसरे ब्राह्मण, गृहपति, नैगम एवं जानपद

उस धर्मभाणक के प्रति सर्वदा आयु के अन्त तक समनुबद्ध रहेंगे । तथागत एवं श्रावक भी उसके दर्शनों के इच्छुक रहेंगे । प्रत्येकबुद्ध भी उसके दर्शनों के इच्छुक रहेंगे । भगवान् बुद्ध भी उसके दर्शनों के इच्छुक रहेंगे । जिस दिशा में वह कुलपुत्र या कुलकन्या विहार करेगी, उस दिशा में तथागत के अभिमुख होकर धर्म की देशना करेगी तथा बुद्ध के धर्मों का पात्र बनेगी । इस प्रकार, उसका मनोज्ञ एवं गम्भीर धर्मशब्द, निश्चरण करेगा ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं--

जिह्वेन्द्रियं तस्य विशिष्टु भोति
न जातु हीनं रस स्वादयेत ।
निक्षिप्तमात्राश्च भवन्ति दिव्या
रसेन दिव्येन समन्विताश्च ।।५२।।

उसकी जिह्वा विशिष्ट होती है, वह कदापि हीन रस का आस्वादन नहीं करती । उसकी जिह्वा पर रखे जाते ही (सभी रस) दिव्य हो जाते हैं एवं दिव्यरसों से समन्वित हो जाते हैं ।

वल्गुस्वरां मधुर प्रभाषते गिरां
श्रवणीयमिष्टां च मनोरमां च ।
पर्षाय मध्यस्मि ह प्रेमणीयं
गम्भीरघोषं च सदा प्रभाषते ।।५३।।

वह वल्गुस्वर, मधुर, श्रवणीय इष्ट एवं मनोरम वाणी बोलता है । वह परिषद् के मध्य में सदा प्रेमपूर्ण एवं गम्भीर घोषवाले शब्दों का उच्चारण करता है ।

यश्चापि धर्मं श्रृणुतेऽस्य भाषतो
दृष्टान्तकोटीनयुतैरनेकैः ।
प्रामोद्य तत्रापि जनेति सोऽग्रं
पूजां च तस्य कुरुतेऽप्रमेयाम् ।।५४।।

जो भी व्यक्ति अनेक कोटि नयुत दृष्टान्तों के द्वारा उसके धर्मोपदेश को सुनता है, वह भी उस विषय में आनन्द का अनुभव करता है एवं उसकी अप्रमेय पूजा करता है ।

देवापि नागासुरगुह्यकाश्च
द्रष्टुं तमिच्छन्ति च नित्यकालम् ।

शृण्वन्ति धर्मं च सगौरवाश्च
इमे गुणास्तस्य भवन्ति सर्वे ।।५५।।

देव, नाग, असुर एवं गुह्यक सदैव उसके दर्शनों की इच्छा करते हैं और गौरव-पूर्वक उसके धर्मोपदेश को सुनते हैं। ये सभी गुण उसमें होते हैं।

आकाङ्क्षमाणश्च इम लोकधातुं
स्वरेण सर्वामभिविज्ञपेया।
स्निग्ध स्वरोऽस्य मधुरश्च भोति
गम्भीर वल्गुश्च सुप्रेमणीयः ।।५६।।

यदि वह चाहता है, तो अपना स्वर इस सम्पूर्ण लोकधातु में प्रसारित करता है। उसका स्वर स्निग्ध, मधुर, गम्भीर, वल्गु एवं प्रेम करने योग्य होता है।

राजान ये क्षितिपति चक्रवर्तिनः
पूजार्थिकास्तस्युपसंक्रमन्ति ।
सपुत्रदारा करियाण अञ्जलिं
शृण्वन्ति धर्मस्य च नित्यकालम् ।।५७।।

राजा, क्षितिपति एवं चक्रवर्त्ती सभी उसकी पूजा करने की इच्छा से उसके निकट आते हैं। (वे सभी) पुत्र एवं भार्या के समेत हाथ जोड़कर उससे वहाँ धर्मोपदेश सुनते हैं।

यक्षाण चो भोति सदा पुरस्कृतो
नागान गन्धर्वगणान चैव।
पिशाचकानां च पिशाचिकानां
सुसत्कृतो मानितु पूजितश्च ।।५८।।

यक्षों, नागों, गन्धर्वों, पिशाचों एवं पिशाचिकाओं के द्वारा वह सदा पुरस्कृत, सुसत्कृत, सम्मानित एवं पूजित होता है।

ब्रह्मापि तस्य वशवर्ति भोति
महेश्वरो ईश्वर देवपुत्रः।
शक्रस्तथान्येऽपि च देवपुत्रा
बहुदेवकन्याश्चुपसंक्रमन्ति ।।५९।।

ब्रह्मा, महेश्वर, ईश्वर एवं (अन्य) देवपुत्र उसके वशवर्त्ती होते हैं। शक्र, अन्य देवपुत्र एवं अनेक देवकन्याएँ उनके निकट जाते हैं।

बुद्धाश्च ये लोकहितानुकम्पकाः
सश्रावकास्तस्य निशाम्य घोषम्।

करोन्ति रक्षां मुखदर्शनाय
तुष्टाश्च भोन्ति ब्रुवतोऽस्य धर्मम् ॥६०॥

लोक के हितैषी एवं अनुकम्पक बुद्ध भी श्रावकों-समेत उसके घोष को सुनकर उसके मुख-दर्शन के लिए उसकी रक्षा करते हैं और उसके धर्मोपदेश को सुनकर प्रसन्न होते हैं।

पुनरपरं सततसमिताभियुक्त स बोधिसत्त्वो महासत्त्व इमं धर्मपर्यायं धारयमाणो वा वाचयमानो वा प्रकाशयमानो वा देशयमानो वा लिखमानो वाष्टौ कायगुणशतानि प्रतिलप्स्यति। तस्य कायः शुद्धः परिशुद्धो वैडूर्यपरिशुद्धच्छविवर्णो भविष्यति प्रियदर्शनः सत्त्वानाम्। स तस्मिन्नात्मभावे परिशुद्धे सर्वं त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातुं द्रक्ष्यति। ये च त्रिसाहस्रमहासाहस्रे लोकधातौ सत्त्वाश्च्यवन्त्युपपद्यन्ते च हीनाः प्रणीताश्च सुवर्णा दुर्वर्णाः सुगतौ दुर्गतौ ये च चक्रवाड़महाचक्रवाड़ेषु मेरुसुमेरुषु च पर्वतराजेषु सत्त्वाः प्रतिवसन्ति ये चाधस्तादवीच्यादूर्ध्वं च यावद् भवाग्रं सत्त्वाः प्रतिवसन्ति तान् सर्वान् स्व आत्मभावे द्रक्ष्यति। ये चापि केचिदस्मिंस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रे लोकधातौ श्रावका वा प्रत्येकबुद्धा वा बोधिसत्त्वा वा तथागता वा प्रतिवसन्ति यं च ते तथागता धर्मं देशयन्ति ये च सत्त्वास्तांस्तथागतान् पर्युपासन्ते सर्वेषां तेषां सत्त्वानामात्मभावप्रतिलम्भात् स्व आत्मभावे द्रक्ष्यति। तत् कस्य हेतोः। यथापीदं परिशुद्धत्वादात्मभावस्येति।

पुनः, हे सततसमिताभियुक्त! वह महासत्त्व बोधिसत्त्व इस धर्मपर्याय को धारण करता हुआ, इसका वाचन करता हुआ, इसको प्रकाशित करता हुआ, इसकी देशना करता हुआ अथवा इसको लिखता हुआ आठ सौ कायगुणों को प्राप्त करेगा। उसका शरीर शुद्ध, परिशुद्ध, वैदूर्यमणि की निर्मल कान्ति के वर्णवाला एवं सब प्राणियों का प्रियदर्शन होगा। वह उस अपने परिशुद्ध शरीर में सम्पूर्ण त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु को देखेगा। त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु में जो भी हीन, प्रणीत, सुन्दर वर्णवाले एवं कुरूप वर्णवाले प्राणी सुगति एवं दुर्गति में च्युत एवं उत्पन्न होते हैं, जो प्राणी चक्रवाड, महाचक्रवाड, मेरु एवं सुमेरु पर्वतों पर निवास करते हैं तथा जो प्राणी नीचे अवीचि तक और ऊपर भवाग्र तक निवास करते हैं, उन सबको वह अपने शरीर में देखता है। इस त्रिसाहस्र महासाहस्र, लोकधातु में जो भी श्रावक, प्रत्येकबुद्ध, बोधिसत्त्व अथवा तथागत निवास करते हैं, वे तथागत जिस धर्म की देशना करते हैं तथा जो प्राणी उन तथागतों की पर्युपासना करते हैं, उन सब प्राणियों को वह अपने शरीर में देखेगा। यतः, वह उन प्राणियों को अपना शरीर समझता है। यह किसलिए? यतः, उसका शरीर सर्वथा परिशुद्ध है।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, उस अवसर पर भगवान् ने ये गाथाएँ कहीं--

परिशुद्ध तस्यो भवतेत्मभावो
यथापि वैडूर्यमयो विशुद्धः ।
सत्त्वान नित्यं प्रियदर्शनश्च
यः सूत्र धारेति इदं उदारम् ।।६१।।

जो इस उदार सूत्र को धारण करता है, उसका शरीर परिशुद्ध एवं विशुद्ध होता है, मानों वह वैदूर्यमणि का बना हो, साथ ही प्राणियों को देखने में प्रिय लगता है ।

आदर्शपृष्ठे यथ बिम्बु पश्येत्
लोकोऽस्य काये अयु दृश्यते तथा ।
स्वयंभु सो पश्यति नान्यि सत्त्वाः
परिशुद्धि कायस्मि इम एवरूपा ।।६२।।

जिस प्रकार दर्पण में प्रतिविम्ब दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार उसके शरीर में यह लोक प्रतिबिम्बित होता है । वह स्वयम्भू है, अतः वह अन्य प्राणियों को नहीं देखता । उसके शरीर में उस प्रकार की परिशुद्धि वर्त्तमान है ।

ये लोकधातौ हि इहास्ति सत्त्वा
मनुष्यदेवासुरगुह्यका वा ।
नरकेषु प्रेतेषु तिरश्चयोनिषु
प्रतिबिम्बु संदृश्यति तत्र काये ।।६३।।

इस लोकधातु में निवास करनेवाले सभी प्राणी मनुष्य, देव, असुर एवं गुह्यक तथा नरक में वर्त्तमान प्रेतयोनि में एवं तिर्यक् योनि में उत्पन्न सभी प्राणी उसके शरीर में प्रतिबिम्बित दिखाई पड़ते हैं ।

विमान देवान भवाग्र याव-
च्छैलं पि चो पर्वत चक्रवाडम् ।
हिमवान् सुमेरुश्च महांश्च मेरुः
कायस्मि दृश्यन्तिमि सर्वथैव ।।६४।।

भवाग्र तक वर्त्तमान देवों के विमान शैल, पर्वत, चक्रवाड, हिमवान, सुमेरु एवं महासुमेरु--ये सभी उसके शरीर में दिखाई पड़ते हैं ।

बुद्धां पि सो पश्यति आत्मभावे
सश्रावकान् बुद्धसुतांस्तथान्यान् ।

ये बोधिसत्त्वा विहरन्ति चैकका
गणे च ये धर्म प्रकाशयन्ति ॥६५॥

वह अपने शरीर में श्रावकों-समेत बुद्धों एवं अन्य बुद्धसुतों को देखता है। वे बोधिसत्त्व भी, जो अकेले विहार करते हैं तथा जो गण के मध्य में धर्म को प्रकाशित करते हैं (उसके शरीर में दिखाई पड़ते हैं)।

एतादृशी कायविशुद्धि तस्य
यहि दृश्यते सर्विय लोकधातुः।
न च ताव सो दिव्य न प्रापुणोति
प्रकृतीय कायस्यियमीदृशी भवत् ॥६६॥

उसके शरीर की विशुद्धि ऐसी है कि उसमें यह सम्पूर्ण लोकधातु दिखाई पड़ती है। तबतक उसने दिव्य शरीर नहीं प्राप्त किया है। उसके शरीर की ऐसी प्रकृति ही है।

पुनरपरं सततसमिताभियुक्तास्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य तथागते परिनिर्वृत इमं धर्मपर्यायं धारयतो देशयतः संप्रकाशयतो लिखतो वाचयतस्तैर्द्वादशभिमनस्कारगुणशतैः समन्वागते मन-इन्द्रियं परिशुद्धं भविष्यति। स तेन परिशुद्धेन मन-इन्द्रियेण यद्येकगाथामप्यन्तशः श्रोष्यति तस्य बह्वर्थमाज्ञास्यति। स तामवबुध्य तन्निदानं मासमपि धर्मं देशयिष्यति चतुर्मासमपि संवत्सरमपि धर्मं देशयिष्यति। यं च धर्मं भाषिष्यति सोऽस्य स्मृतो न स संप्रमोषं यास्यति। ये केचिल्लौकिका लोकव्यवहारा भाष्याणि वा मन्त्रा वा सर्वांस्तान् धर्मनयेन संस्यन्दयिष्यति। यावन्तश्च केचित्त्रिसाहस्रमहासाहस्रायां लोकधातौ षट्सु गतिषूपपन्नाः सत्त्वाः संसरन्ति सर्वेषां तेषां सत्त्वानां चित्तचरितविस्पन्दितानि ज्ञास्यति। इञ्जितमन्यितप्रपञ्चितानि ज्ञास्यति प्रविचिनिष्यति। अप्रतिलब्धे च तावदार्यज्ञान एवरूपं चास्य मन-इन्द्रियं परिशुद्धं भविष्यति। यां यां च धर्मनिरुक्तिमनुविचिन्त्य धर्मं देशयिष्यति सर्वं तद् भूतं देशयिष्यति। सर्वं तत्तथागतभाषितं सर्वं पूर्वजिनसूत्रपर्यायनिर्दिष्टं भाषति।

पुनः, हे सततसमिताभियुक्त! तथागत के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर इस धर्मपर्याय को धारण करनेवाले, इसकी देशना करनेवाले, इसको सम्प्रकाशित करनेवाले, इसको लिखनेवाले एवं इसका वाचन करनेवाले इस महासत्त्व बोधिसत्त्व का मन-इन्द्रिय बारह सौ मनस्कार गुणों से समन्वागत एवं परिशुद्ध हो जायगा। वह उस परिशुद्ध मन से यदि एक गाथा भी सुनेगा, तो वह उसके अर्थों को जान लेगा। उस गाथा को अच्छी तरह समझकर उसके आधार पर एक महीने तक धर्म की देशना करेगा,

चार महीने तक तथा एक वर्ष तक धर्म की देशना करेगा । जिस धर्म की वह देशना करेगा, वह इसे स्मरण रहेगा । वह कभी उसे विस्मृत नहीं होगा । जो भी लौकिक व्यवहार होंगे, भाष्य होंगे तथा मन्त्र होंगे, उन सबको वह धर्मनीति के साथ स्पन्दित कर देगा । उस त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु में छह गतियों में उत्पन्न हुए जितने भी प्राणी संसरण करते हैं, उन सभी प्राणियों के चित्त, आचरण एवं कार्यों को जानेगा। वह उनकी गति, विचार एवं प्रपञ्चों को जानेगा एवं समझेगा। उसे आर्यज्ञान नहीं हुआ रहेगा, फिर भी उसका मन शुद्ध रहेगा । वह जिस-जिस धर्मनिरुक्ति पर अनुविचिन्तन करके धर्म की देशना करेगा, वह सब धर्मदेशना ठीक ही होगी । वह सभी तथागतों द्वारा कहे गये तथा पूर्वजिनों के पर्यायसूत्रों में कहे गये धर्म को कहता है ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं—

मन-इन्द्रियं तस्य विशुद्ध भोति
प्रभास्वरं शुद्धमनाविलं च ।
सो तेन धर्मान् विविधान् प्रजानति
हीनानथोत्कृष्ट तथैव मध्यमान् ।।६७।।

उसका मन-इन्द्रिय प्रभास्वर, शुद्ध अनाविल एवं विशुद्ध होता है । वह उसके द्वारा हीन उत्कृष्ट एवं मध्यम—इन विविध धर्मों को जानता है ।

एकामपि गाथ श्रुणित्व धीरो
अर्थं बहुं जानति तस्य तत्र ।
समितं च भूतं च सदा प्रभाषते
मासान् पि चत्वारि तथापि वर्षम् ।।६८।।

वह धीर एक भी गाथा को सुनकर उसके अनेक अर्थों को जान लेता है एवं उसके समित एवं वास्तविक अर्थ को चार महीनों एवं एक वर्ष तक सदा कहता रहता है ।

ये चापि सत्त्वा इह लोकधातौ
अभ्यन्तरे बाहिरिये वसन्ति ।
देवा मनुष्यासुरगुह्यकाश्च
नागाश्च ये चापि तिरश्चयोनिषु ।।६९।।

देवता, मनुष्य, असुर, गुह्यक, नाग एवं पशु-पक्षी, जो भी इस लोकधातु में बाहर, भीतर कहीं भी रहते हैं ,

षट्सु गतीषु निवसन्ति सत्त्वा
विचिन्तितं तेष भवेत यं च।
एकक्षणे सर्वि विदुर्विजानते
धारेत्व सूत्रं इम आनुशंसाः।।७०।।

और छह गतियों में विद्यमान प्राणियों के जो भी मनोगत विचार होते हैं, उन सबको वह विद्वान् एक क्षण में ही जान लेता है। इस सूत्र को धारण करने का ऐसा प्रभाव है।

यश्चापि बुद्धः शतपुण्यलक्षणो
धर्मं प्रकाशेदिद सर्वलोके।
तस्यापि शब्दं शृणुते विशुद्धं
यं चापि सो भाषति गृह्यते तत्।।७१।।

सौ पवित्र लक्षणों से युक्त बुद्ध सारे संसार में जिस धर्म को प्रकाशित करते हैं, उस धर्म के विशुद्ध शब्द को भी वह सुनता है और उसके उपदेश के सार को भी ग्रहण कर लेता है।

बहून् विचिन्तेति च अग्रधर्मान्
बहूंश्च सो भाषति नित्यकालम्।
न चास्य संमोह कदाचि भोति
धारेत्व सूत्रं इमि आनुशंसाः।।७२।।

वह अनेक अग्रधर्मों का चिन्तन करता है और वह सदा अनेक प्रकार से उनका उपदेश करता है। उसे कभी इस विषय में सम्मोह नहीं होता। इस सूत्र को धारण करने का ऐसा प्रभाव है।

संधि विसंधि च विजानतेऽसौ
सर्वेषु धर्मेषु विलक्षणानि।
प्रजानते अर्थ निरुक्तयश्च
यथा च तं जानति भाषते तथा।।७३।।

वह सन्धि एवं विसन्धि को जानता है तथा सभी धर्मों की विलक्षणताओं को भी जानता है। वह अर्थों एवं निरुक्तियों को भी जानता है। उन्हें वह जिस रूप में समझता है, उसी रूप में उनका उपदेश देता है।

यं भाषितं भोतिह दीर्घरात्रं
पूर्वेहि लोकाचरियेहि सूत्रम्।

तं धर्म सो भाषति नित्यकालं
असंत्रसन्तो परिषाय मध्ये ।।७४।।

जिस सूत्र का पूर्वकालीन लोकाचारियों ने दीर्घकाल तक उपदेश दिया है, उसी धर्मसूत्र का वह विना थके हुए परिषदों के सम्मुख सदा विवेचन करता है।

मन-इन्द्रियं ईदृशमस्य भोति
धारेत्व सूत्रं इमु वाचयित्वा ।
न च ताव असङ्गं लभते ह ज्ञानं
पूर्वंगमं तस्य इमं तु भोति ।।७५।।

जो इस सूत्र को धारण करता है एवं इसका वाचन करता है, उसका मन-इन्द्रिय इसी प्रकार का होता है। उसने तबतक यद्यपि असंग ज्ञान को नहीं प्राप्त किया है, किन्तु उसका पूर्ववर्त्ती ज्ञान उसे अवश्य प्राप्त हो गया है।

आचार्यभूमौ हि स्थितश्च भोति
सर्वेष सत्त्वान कथेय धर्मम् ।
निरुक्तिकोटीकुशलश्च भोति
इमु धारयन्तो सुगतस्य सूत्रम् ।।७६।।

वह आचार्य की स्थिति में वर्त्तमान होता है और सभी प्राणियों को वह धर्म का उपदेश दे सकता है। सुगत के इस सूत्र को धारण करनेवाला वह करोड़ों निरुक्तियों में कुशल होता है।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये धर्मभाणकानुशंसापरिवर्तो नामाष्टादशमः ।।१८।।

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का अट्ठारहवाँ धर्मभाणकानुशंसापरिवर्त समाप्त हुआ।

सदाऽपरिभूतपरिवर्त

अथ खलु भगवान् महास्थामप्राप्तं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमामन्त्रयते स्म । अनेनापि तावन्महास्थामप्राप्तपर्यायेणैवं वेदितव्यं यथा य इममेवंरूपं धर्मपर्यायं प्रतिक्षेप्स्यन्ति । एवंरूपांश्च सूत्रान्तधारकांश्च भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिका आक्रोशिष्यन्ति परिभाषिष्यन्ति असत्यया परुषया वाचा समुदाचरिष्यन्ति तेषामेवमनिष्टो विपाको भविष्यति यो न शक्यं वाचा परिकीर्तयितुम् । ये चेममेवंरूपं सूत्रान्तं धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति देशयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयिष्यन्ति तेषामेवमिष्टो विपाको भविष्यति यादृशो मया पूर्वं परिकीर्तित एवंरूपां च चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकायमनःपरिशुद्धिमधिगमिष्यन्ति ।

तदनन्तर, भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व महास्थामप्राप्त से बोले—हे महास्थामप्राप्त! इसी पर्याय से ऐसा समझना चाहिए कि जो इस प्रकार के इस धर्मपर्याय को प्रतिक्षिप्त करेंगे, इस प्रकार के सूत्रान्तधारकों, भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उपासकों और उपासिकाओं को अपशब्द कहेंगे, निन्दित करेंगे एवं उनके प्रति झूठी एवं कठोर वाणी का व्यवहार करेंगे, उनको ऐसा अनिष्टकर फल मिलेगा, जिसका वर्णन शब्दों के द्वारा सम्भव नहीं है। जो इस प्रकार के इस सूत्रान्त को धारण करेंगे, पढ़ेंगे, इसकी देशना करेंगे, इसको समझेंगे एवं दूसरे के सम्मुख इसको विस्तारपूर्वक प्रकाशित करेंगे, उनको वैसा सुन्दर फल मिलेगा, जैसा मैंने पहले बताया है तथा वे इस प्रकार की नेत्र, कान, नाक, जिह्वा, शरीर एवं मन की पूर्ण शुद्धि प्राप्त करेंगे ।

भूतपूर्वं महास्थामप्राप्तातीतेऽध्वन्यसंख्येयैः कल्पैरसंख्येयतरैर्विपुलैरप्रमेयैरचिन्त्यैस्तेभ्यः परेण परतरेण यदासीत्तेन कालेन तेन समयेन भीष्मगर्जितस्वरराजो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् विनिर्भोगे कल्पे महासंभवायां लोकधातौ । स खलु पुनर्महास्थामप्राप्त भगवान् भीष्मगर्जितस्वरराजस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्सबुद्धस्तस्यां महासंभवायां लोकधातौ सदेवमानुषासुरस्य लोकस्य पुरतो धर्मं देशयति स्म । यदिदं श्रावकाणां चतुरार्यसत्यसंप्रयुक्तं धर्मं देशयति स्म जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायाससमतिक्रमाय निर्वाणपर्यवसानं प्रतीत्यसमुत्पादप्रवृत्तिम् । बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां षट्पारमिताप्रतिसंयुक्तानामनुत्तरां सम्यक्संबोधि-

मारस्य तथागतज्ञानदर्शनपर्यवसानं धर्मं देशयति स्म। तस्य खलु पुनर्महास्थामप्राप्त भगवतो भीष्मगर्जितस्वरराजस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य चत्वारिंशद् गङ्गानदीवालिकासमानि कल्पकोटीनयुतशतसहस्राण्यायुष्प्रमाणमभूत्। परिनिर्वृतस्य जम्बुद्वीपपरमाणुरजःसमानि कल्पकोटीनयुतशतसहस्राणि सद्धर्मस्थितोऽभूच्चतुर्द्वीपपरमाणुरजःसमानि कल्पकोटीनयुतशतसहस्राणि सद्धर्मप्रतिरूपकः स्थितोऽभूत्। तस्यां खलु पुनर्महास्थामप्राप्त महासंभवायां लोकधातौ भगवतो भीष्मगर्जितस्वरराजस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य परिनिर्वृतस्य सद्धर्मप्रतिरूपके चान्तर्हितेऽपरोऽपि भीष्मगर्जितस्वरराज एव तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान्। अनया महास्थामप्राप्त परंपरया तस्यां महासंभवायां लोकधातौ भीष्मगर्जितस्वरराजनाम्नां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानां विंशतिकोटीनयुतशतसहस्राण्यभूवन्। तत्र महास्थामप्राप्त योऽसौ तथागतः सर्वपूर्वकोऽभूद् भीष्मगर्जितस्वरराजो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान्। तस्य भगवतः परिनिर्वृतस्य सद्धर्मेऽन्तर्हिते सद्धर्मप्रतिरूपके चान्तर्धीयमाने तस्मिन् शासनेऽधिमानिकभिक्षवध्याक्रान्ते सदाऽपरिभूतो नाम बोधिसत्त्वो भिक्षुरभूत्। केन कारणेन महास्थामप्राप्त स बोधिसत्त्वो महासत्त्वः सदाऽपरिभूत इत्युच्यते। स खलु पुनर्महास्थामप्राप्त बोधिसत्त्वो महासत्त्वो यं यमेव पश्यति भिक्षुं वा भिक्षुणीं वोपासकं वोपासिकां वा तं तमुपसंक्रम्यैवं वदति नाहमायुष्मन्तो युष्माकं परिभवामि। अपरिभूता यूयम्। तत् कस्य हेतोः। सर्वे हि भवन्तो बोधिसत्त्वचर्यां चरन्तु। भविष्यथ यूयं तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा इति। अनेन महास्थामप्राप्त पर्यायेण स बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भिक्षुभूतो नोद्देशं करोति न स्वाध्यायं करोति अन्यत्र यं यमेव पश्यति दूरगतमपि सर्वं तमुपसंक्रम्यैवं संश्रावयति भिक्षुं वा भिक्षुणीं वोपासकं वोपासिकां वा तं तमुपसंक्रम्यैवं वदति। नाहं भगिन्यो युष्माकं परिभवामि। अपरिभूता यूयम्। तत् कस्य हेतोः। सर्वा यूयं बोधिसत्त्वचर्यां चरध्वं भविष्यथ यूयं तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः। यं यमेव महास्थामप्राप्त स बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्मिन् समये भिक्षुं वा भिक्षुणीं वोपासकं वोपासिकां वैवं संश्रावयति सर्वेऽस्य यद्भूयस्त्वेन क्रुध्यन्ति व्यापदन्त्यप्रसादमुत्पादयन्त्याक्रोशन्ति परिभाषन्ते। कुतोऽयमपृष्टो भिक्षुरपरिभवचित्तमित्यस्माकमुपदर्शयति। परिभूत-

मात्मानं करोति यदस्माकं व्याकरोत्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ असन्तमनाकाङ्क्षितं च। अथ खलु महास्थामप्राप्त तस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य बहूनि वर्षाणि तथाक्रुश्यतः परिभाष्यमाणस्य गच्छन्ति। न च कस्यचित् क्रुध्यति न व्यापादचित्तमुत्पादयति। य चास्यैवं संश्रावयतो लोष्टं वा दण्डं वा क्षिपन्ति स तेषां दूरत एव उच्चैःस्वरं कृत्वा संश्रावयति स्म। नाहं युष्माकं परिभवामीति । तस्य ताभिरभिमालिकभिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकाभिः सततसमितं संश्राव्यमाणाभिः सदाऽपरिभूत इति नाम कृतमभूत् ।

हे महास्थामप्राप्त ! भूतपूर्व, अतीत काल में असंख्य कल्पों के पूर्व, उससे भी परे असंख्य, विपुल, अप्रमेय एवं अचिन्त्य कल्पों से परे, उससे भी परे जो काल था, उस काल में, उस समय इस लोक में भीष्मगर्जितस्वरराज नाम से तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, ज्ञान एवं सदाचार से सम्पन्न सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, दमनीय पुरुषों के नियन्ता, तथा देवों एवं मनुष्यों के शास्ता भगवान् बुद्ध विनियोग (नामक) कल्प में, महासम्भवा (नामक) लोकधातु में उत्पन्न हुए थे । पुनः, हे महास्थामप्राप्त! वे तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् भीष्मगर्जितस्वरराज महासम्भवा (नामक) लोकधातु में देवों, मनुष्यों एवं असुरों से युक्त, लोक के सम्मुख धर्म की देशना करते थे । उन्होंने श्रावकों को इस धर्म की देशना दी, जो चार आर्यसत्यों से युक्त, प्रतीत्यसमुत्पाद से प्रवृत्त तथा जन्म, जरा, व्याधि, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं उपायास से मुक्त करानेवाला एवं निर्वाणपर्यवसायी है । वे छह पारमिताओं से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वों को को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि से लेकर तथागत के ज्ञान दर्शन तक को प्राप्त करनेवाले धर्म की देशना करते थे । हे महास्थामप्राप्त ! उन तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् भीष्मगर्जितस्वरराज की आयु चालीस गंगा नदियों की बालुका के समान (असंख्य) कोटि नयुत शतसहस्र कल्पों की थी । उनके परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर जम्बूद्वीप के परमाणु-कणों के समान कोटि नयुत शतसहस्र कल्पों तक सद्धर्म स्थित रहा एवं चार द्वीप के परमाणु-कणों के समान कोटि नयुत शतसहस्र कल्पों तक उस सद्धर्म का प्रतिरूप स्थित रहा । पुनः, हे महास्थामप्राप्त ! उस महासम्भवा (नामक) लोकधातु में निर्वाणप्राप्त उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् भीष्मगर्जितस्वरराज के सद्धर्म के प्रतिरूप के लुप्त हो जाने पर इस लोक में पुनः दूसरे भीष्मगर्जितस्वरराज नाम से तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध ज्ञान एवं सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, दमनीय पुरुषों के नियन्ता, देवों एवं मनुष्यों के शास्ता भगवान् बुद्ध उत्पन्न हुए । हे महास्थामप्राप्त ! इसी क्रम से उस महासम्भवा (नामक) लोकधातु में भीष्मगर्जितस्वरराज नाम के धारक बीस कोटि नयुत शतसहस्र तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध उत्पन्न हुए । हे महास्थामप्राप्त ! उनमें जो यह सबसे पहले भीष्मगर्जितस्वरराज नामक तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध ज्ञान एवं सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, दमन-

योग्य पुरुषों के नियन्ता, देवों और मनुष्यों के शास्ता, भगवान् बुद्ध थे, उन भगवान् के परिनिर्वाण प्राप्त करने पर, सद्धर्म के लुप्त हो जाने पर तथा सद्धर्म के प्रतिरूप के लुप्त हो जाने के समय अभिमानी भिक्षुओं से परिपूर्ण उस समय में सदाऽपरिभूत नामक बोधिसत्त्व भिक्षु के रूप में उत्पन्न हुए। हे महास्थामप्राप्त ! किस कारण से वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सदाऽपरिभूत कहे जाते हैं ? हे महास्थानप्राप्त ! वह महासत्त्व बोधिसत्त्व जिस भिक्षु या भिक्षुणी उपासक या उपासिका को देखता हैं, उसके पास जाकर कहता हैं, हे आयुष्मान् ! मैं तुमलोगों का परिभव नहीं करता हूँ। तुमलोग अपरिभूत हो। ऐसा किसलिए ? क्योंकि, आप सभी बोधिसत्त्व की चर्या का आचरण करें। आप लोग तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध होंगे। हे महास्थामप्राप्त ! इसी प्रकार से वह भिक्षु बना हुआ महासत्त्व बोधिसत्त्व न उपदेश करता है, न स्वाध्याय करता है, केवल जिसको–जिसको देखता है, चाहे वह कितनी ही दूर पर हो, उसके-उसके निकट जाकर इस बात को सुनाता है तथा भिक्षु या भिक्षुणी, उपासक या उपासिका के निकट जाकर इस प्रकार कहता है––हे बहनो ! मैं तुमलोगों का अपमान नहीं करता, तुमलोग अपरिभूत हो। ऐसा क्यों ? (यतः) तुम सभी बोधिसत्त्वचर्या का आचरण करो, तुमलोग तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध बनोगे। वह महासत्त्व बोधिसत्त्व, हे महास्थामप्राप्त ! उस समय जिस-जिस भिक्षु या भिक्षुणी, उपासक या उपासिका से ऐसा कहता है, वे सभी उस पर अत्यधिक क्रुद्ध होते हैं, उसे मारते हैं, उससे असन्तुष्ट होते हैं, उसको अपशब्द कहते हैं तथा उसकी निन्दा करते हैं। विना पूछे ही यह भिक्षु हमलोगों के प्रति क्यों अपरिभव की भावना को व्यक्त करता रहता है। हमलोगों के श्रेष्ठ सम्यक् सम्बुद्ध प्राप्त करने के विषय में भविष्यवाणी करके वह अपने-आपको अपमानित करता है। यतः, हम उस (भविष्यवाणी को) असत्य समझते हैं एवं उसकी आकांक्षा नहीं रखते हैं। उस महासत्त्व बोधिसत्त्व के, हे महास्थामप्राप्त ! इस प्रकार अपशब्द सुनते एवं निन्दित होते अनेक वर्ष बीतने लगे। वह न किसी पर क्रुद्ध होता है और न अपने मन में उनके प्रति हिंसा की भावना ही लाता है। इस प्रकार (भविष्यवाणी) सुनानेवाले उसके ऊपर जो कंकड़ या डण्डा फेंकते हैं, उनको वह दूर से ही जोर से चिल्लाकर ऐसा सुनाता था–––मैं तुमलोगों का अपमान नहीं करता हूँ। उन अभिमानी भिक्षु या भिक्षुणी उपासक या उपासिकाओं ने, जिन्हें वह सदा इस प्रकार की बातें निरन्तर सुनाया करता था, उसका नाम सदाऽपरिभूत रख दिया।

तेन खलु पुनर्महास्थामप्राप्त सदाऽपरिभूतेन बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन कालक्रियायां प्रत्युपस्थितायां मरणकालसमये प्रत्युपस्थितेऽयं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः श्रुतोऽभूत्। तेन च भगवता भीष्मगर्जितस्वरराजेन तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेनायं धर्मपर्यायो विंशतिभिर्गाथाविंशतिकोटीनयुतशतसहस्रैर्भाषितोऽभूत्। स च सदाऽपरिभूतो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो मरणकालसमयं प्रत्युपस्थितेऽन्तरीक्षनिर्घोषादिमं धर्मपर्यायमश्रौषीत्। येन केनचिद् भाषितमन्त-

रीक्षान्निर्घोषं श्रुत्वेमं धर्मपर्यायमुद्गृहीतवानिमां चैवंरूपां चक्षुर्विशुद्धिं श्रोत्रविशुद्धिं घ्राणविशुद्धिं जिह्वाविशुद्धिं कायविशुद्धिं मनोविशुद्धिं च प्रतिलब्धवान् । सहप्रतिलब्धाभिर्विशुद्धिभिः पुनरन्यानि विंशतिवर्षकोटीनयुतशतसहस्राण्यात्मनो जीवितसंस्कारमधिष्ठायेमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं संप्रकाशितवान् । ये च तेऽभिमानिकाः सत्त्वा भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिका ये पूर्वं नाहं युष्माकं परिभवामीति संश्राविता यैरस्येदं सदाऽपरिभूत इति नाम कृतमभूत्तस्योदारर्द्धिबलस्थामं प्रतिज्ञाप्रतिभानबलस्थामं प्रज्ञाबलस्थामं च दृष्ट्वा सर्वेऽनुसहायीभूता अभूवन् धर्मश्रवणाय । सर्वे तेनान्यानि च बहूनि प्राणिकोटीनयुतशतसहस्राण्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ समादापितान्यभूवन् ।

पुनः, हे महास्थामप्राप्त ! जव उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सदाऽपरिभूत के जीवन का अन्त उपस्थित होनेवाला था और उसकी मृत्यु का समय निकट था, उसने सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय का श्रवण किया । उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् भीष्मगर्जितस्वरराज ने इस धर्मपर्याय को बीस कोटि नयुत शत सहस्र गाथाओं में बीस बार में कहा था । उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सदाऽपरिभूत ने मृत्यु का समय निकट आने पर इस धर्मपर्याय को अन्तरिक्ष से आनेवाले घोष से श्रवण किया था । (उसने) किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा कहे गये आकाश से आते हुए इस घोष को सुनकर इस धर्मपर्याय को ग्रहण किया और इस प्रकार की इन आँखों की विशुद्धि, कानों की विशुद्धि, नासिका की विशुद्धि, जिह्वा की विशुद्धि, शरीर की विशुद्धि तथा मन की विशुद्धि प्राप्त की । इन विशुद्धियों को प्राप्त करते ही उसने पुनः अन्य बीस कोटि नयुत शतसहस्र वर्षों का अपना जीवन प्राप्त करके इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय को सम्प्रकाशित किया तथा वे अभिमानी प्राणी---भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका आ---जिनको इसने 'मैं तुम्हारा अपमान नहीं करता', ऐसा शब्द सुनाया था और जिन्होंने इसका 'सदाऽपरिभूत' ऐसा नाम रखा था, वे सभी उसके विशाल अलौकिक बल की शक्ति, प्रतिज्ञा एवं प्रतिभा के बल की शक्ति तथा प्रज्ञा के बल की शक्ति को देखकर धर्म का श्रवण करने के लिए उसके अनुयायी बन गये । उसने उन सबको तथा अन्य अनेक कोटि नयुत शतसहस्र प्राणियों को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में समापन्न बनाया ।

स खलु पुनर्महास्थामप्राप्त बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्ततश्च्यवित्वा चन्द्रस्वरराजसहनाम्नां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानां विंशतिकोटीशतान्याराागितवान् सर्वेषु चेमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयामास । सोऽनुपूर्वेण तेनैव पूर्वकेण कुशलमूलेन पुनरप्यनुपूर्वेण दुन्दुभिस्वरराजसहनाम्नां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानां विंशतिमेव तथागतकोटीनयुतशतसहस्राण्याराागितवान् सर्वेषु चेममेव सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायमारागितवान् संप्रकाशितवांश्चतसृणां पर्षदाम् ।

सोऽनेनैव पूर्वकेण कुशलमूलेन पुनरप्यनुपूर्वेण मेघस्वरराजसहनाम्नां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानां विंशतिमेव तथागतकोटीशतसहस्राण्यारागितवान् सर्वेषु चेममेव सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायमारागितवान् संप्रकाशितवांश्चतसृणां पर्षदाम् । सर्वेषु चैवंरूपया चक्षुःपरिशुद्ध्या समन्वागतोऽभूच् श्रोत्रपरिशुद्ध्या घ्राणपरिशुद्ध्या जिह्वापरिशुद्ध्या कायपरिशुद्ध्या मनःपरिशुद्ध्या समन्वागतोऽभूत् ।

तदनन्तर, हे महास्थामप्राप्त ! उस महासत्त्व बोधिसत्त्व (सदाऽपरिभूत) ने वहाँ से च्युत होकर चन्द्रस्वरराज इस समान नाम के धारक बीस कोटिशत तथागत, अर्हत् एवं सम्यक् सम्बुद्धों को प्रसन्न किया और उनके शासन में उस धर्मप्रकाश को सम्प्रकाशित किया । क्रम से उसी पूर्वकृत कल्याणकारक (कुशलमूल) कर्म के फलस्वरूप उसने दुन्दुभिस्वरराज इस समान नाम के धारक बीस कोटि नयुत शतसहस्र तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों को प्रसन्न किया तथा उन सबके शासन में इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्यायि की आराधना की एवं इसे चार परिषदों के सम्मुख सम्प्रकाशित किया। इन सबके शासन में ये इसी प्रकार की नेत्र की परिशुद्धि, कान की परिशुद्धि, नासिका की परिशुद्धि, जिह्वा की परिशुद्धि, शरीर की परिशुद्धि एवं मन की परिशुद्धि से सम्पन्न थे ।

स खलु पुनर्महास्थामप्राप्त सदाऽपरिभूतो बोधिसत्त्वो महासत्त्व इयतां तथागतकोटीनयुतशतसहस्राणां सत्कारं गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां कृत्वान्येषां च बहूनां बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राणां सत्कारं गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां कृत्वा सर्वेषु च तेष्विममेव सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायिमारागितवानारागयित्वा स तेनैव पूर्वकेण कुशलमूलेन परिपक्वेनानुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः । स्यात् खलु पुनस्ते महास्थामप्राप्तैवं काङ्क्षा वा विमतिर्वा विचिकित्सा वान्यः स तेन कालेन तेन समयेन सदाऽपरिभूतो नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽभूद् यस्तस्य भगवतो भीष्मगर्जितस्वरराजस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य शासने चतसृणां पर्षदां सदाऽपरिभूतः सम्मतोऽभूद् येन ते तावन्तस्तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा आरागिता अभूवन् । न खलु पुनस्ते महास्थामप्राप्तैवं द्रष्टव्यम् । तत् कस्य हेतोः । अहमेव स महास्थामप्राप्त तेन कालेन तेन समयेन सदाऽपरिभूतो नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽभूवम् । यदा मया महास्थामप्राप्त पूर्वमयं धर्मपर्यायो नोद्गृहीतोऽभविष्यन्न धारितो नाहमेवं क्षिप्रमनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धोऽभविष्यम् । यतश्चाहं महास्थामप्राप्त पौर्विकाणां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामन्तिकादिमं धर्मपर्यायं धारितवान् वाचितवान् देशितवांस्ततोऽहमेवं क्षिप्र-

मनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः । यान्यपि तानि महास्थामप्राप्त तेन सदाऽपरिभूतेन बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन भिक्षुशतानि भिक्षुणीशतानि चोपासकशतान्युपासिकाशतानि च तस्य भगवतः शासन इमं धर्मपर्यायं संश्रावितानि अभूवन् । नाहं युष्माकं परिभवामीति । सर्वे भवन्तो बोधिसत्त्वचर्यां चरन्तु । भविष्यथ यूयं तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः । यैस्तस्य बोधिसत्त्वस्यान्तिके व्यापादचित्तमुत्पादितमभूत् तैर्विंशतिकल्पकोटीनयुतशतसहस्राणि न जातु तथागतो दृष्टोऽभून्नापि धर्मशब्दो न संघशब्दः श्रुतोऽभूत् । दश च कल्पसहस्राण्यवीचौ महानरके दारुणां वेदनां वेदयामासुः । ते च सर्वे तस्मात् कर्मावरणात् परिमुक्तास्तेनैव बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन परिपाचिता अनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । स्यात् खलु पुनस्ते महास्थामप्राप्त काङक्षा वा विमतिर्वा विचिकित्सा वा कतमे तेन कालेन तेन समयेन ते सत्त्वा अभूवन् ये ते तं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमुल्लापितवन्त उच्चगिघतवन्तः । अस्यामेव महास्थामप्राप्त पर्षदि भद्रपालप्रमुखानि पञ्चबोधिसत्त्वशतानि सिंहचन्द्राप्रमुखानि पञ्चभिक्षुणीशतानि सुगतचेतनाप्रमुखानि पञ्चोपासिकाशतानि सर्वाण्यवैवर्तिकानि कृतान्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । एवमियं महास्थामप्राप्त महार्थस्य धर्मपर्यायस्य धारणा वाचना देशना बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानामनुत्तरायाः सम्यक्संबोधेराहारका संवर्तते । तस्मात्तर्हि महास्थामप्राप्तायं धर्मपर्यायो बोधिसत्त्वैर्महासत्त्वैस्तथागते परिनिर्वृत अभीक्ष्णं धारयितव्यो वाचयितव्यो देशयितव्यः संप्रकाशयितव्य इति ।

पुनः, हे महास्थामप्राप्त ! उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सदाऽपरिभूत ने कोटि नयुत शतसहस्र तथागतों का सत्कार, आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन एवं अपचायन करके तथा अन्य अनेक कोटि नयुत शतसहस्र बुद्धों का सत्कार, आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन एवं अपचायन करके उन सबके शासन में इसी सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय की आराधना की तथा आराधना करके उसने उसी पूर्वकृत कुशलमूल के परिपक्व होने पर श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की । पुनः, हे महास्थामप्राप्त ! सम्भवतः, तुम्हें इस प्रकार की कांक्षा, विमति या विचिकित्सा हो कि उस काल में, उस समय सदाऽपरिभूत नामधारी महासत्त्व बोधिसत्त्व कोई दूसरा (व्यक्ति) था, जो उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् भीष्मगर्जितस्वरराज के शासन में चार परिषदों को सदाऽपरिभूत नाम से सम्मत था तथा जिसने उतने उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों को प्रसन्न किया था । पुनः, हे महास्थामप्राप्त ! तुम्हें ऐसा नहीं सोचना चाहिए । यतः, हे महास्थामप्राप्त ! उस काल में उस समय मैं ही सदाऽपरिभूत नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व था । हे महास्थामप्राप्त ! यदि पूर्वकाल में ही मैं इस धर्मपर्याय को नहीं समझ लिया होता तथा नहीं

धारण किया होता, तो मुझे यह श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि इतनी शीघ्र नहीं प्राप्त हुई होती। यतः, हे महास्थामप्राप्त ! मैंने पूर्वकालिक तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों से इस धर्म को पाया है, पढ़ा है एवं ग्रहण किया है । अतः, मैंने इतनी जल्दी इस श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त कर लिया है । हे महास्थामप्राप्त ! वे सैकड़ों भिक्षु, सैकड़ों भिक्षुणियाँ, सैकड़ों उपासक एवं सैकड़ों उपासिकाएँ जिनको उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सदाऽपरिभूत ने उस भगवान् तथागत के इस धर्मपर्याय को सुनाया था और जिनसे कहा था कि मैं तुमलोगों का अपमान नहीं करता हूँ तुम सभी बोधिसत्त्व की चर्या का आचरण करो, तुमलोग तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध बनोगे तथा जिन लोगों ने उस बोधिसत्त्व के प्रति हिंसा का भाव उत्पन्न किया था, उन सब प्राणियों ने बीस कोटि नयुत शतसहस्र कल्पों तक न कभी तथागत के दर्शन प्राप्त किये, न कभी धर्मघोष ही सुना और न संघ की ही चर्या सुनी । दस सहस्र कल्पों तक अवीचि (नामक) नरक में दारुण वेदना सहते रहे । वे सभी उस धर्म के फल से मुक्त होने पर उसी महासत्त्व बोधिसत्त्व के द्वारा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में परिपक्व बनाये गये । हे महास्थामप्राप्त ! सम्भवतः, तुम्हारे मन में कांक्षा, विमति या विचिकित्सा हो कि उस काल में उस समय वे कौन-से प्राणी थे, जिन्होंने उस महासत्त्व बोधिसत्त्व को तिरस्कृत एवं अपमानित किया ! हे महास्थामप्राप्त ! वे सब भद्रपाल के नेतृत्व में पाँच सौ बोधिसत्त्व, सिंहचन्द्रा के नेतृत्व में पाँच सौ भिक्षुणियाँ एवं सुगत चेतना के नेतृत्व में पाँच सौ उपासिकाएँ यहीं इस सभा में वर्त्तमान हैं । वे श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति के विषय में अवैवर्तिक कर दिये गये हैं । हे महास्थामप्राप्त ! इस प्रकार महान् अर्थवाले इस धर्मपर्याय की यह धारणा, वाचना एवं देशना महासत्त्व बोधिसत्त्वों को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति करानेवाली है । अतः, इस हेतु हे महास्थामप्राप्त ! तथागत के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर महासत्त्व बोधिसत्त्वों को इस धर्मपर्याय को सदा धारण करना चाहिए, पढ़ना चाहिए, उसकी देशना करनी चाहिए एवं उसको सम्प्रकाशित करना चाहिए ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तत्पश्चात् भगवान् ने उस अवसर पर ये गाथाएँ कहीं--

अतीतमध्वानमनुस्मरामि
भीष्मस्वरो राज जिनो यदासि ।
महानुभावो नरदेवपूजितः
प्रणायको नरमरुयक्षरक्षसाम् ॥१॥

मुझे वह अतीत समय स्मरण है, जब कि मनुष्यों तथा देवों के पूज्य एवं मनुष्य, देवता, यक्ष तथा राक्षसों के नेता महानुभाव भीष्मस्वरराज (नामक) तथागत वर्त्तमान थे ।

तस्य जिनस्य परिनिर्वृतस्य
सद्धर्म संक्षोभ व्रजन्ति पश्चिमे ।

भिक्षू अभूषी तद बोधिसत्त्वो
नामेन सो सदपरिभूत उच्यते ।।२।।

उन तथागत के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के पश्चात् सद्धर्म का ह्रास होने लगा। उस समय बोधिसत्त्व भिक्षु के रूप में उत्पन्न हुए और वे सदाऽपरिभूत नाम से पुकारे जाते थे ।

उपसंक्रमित्वा तद भिक्षु अन्यान्
उपलम्भदृष्टीन तथैव भिक्षुणी ।
परिभाव मह्यं न कदाचिदस्ति
यूयं हि चर्यां चरथाग्रबोधये ।।३।।

उस समय वह अन्य भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों के, जो उपालम्भदृष्टि थे (प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तुओं में ही विश्वास करते थे), निकट जाकर (कहता)---मैं तुमलोगों का कभी अपमान नहीं करता हूँ, यतः तुमलोग अग्रबोधि की प्राप्ति के लिए चर्या का आचरण करते हो ।

एवं च संश्रावयि नित्यकालं
आक्रोशपरिभाष सहन्तु तेषाम् ।
कालक्रियायां समुपस्थितायां
श्रुतं इदं सूत्रमभूषि तेन ।।४।।

इस प्रकार, वह सदा (उन लोगों को) सुनाता रहता था एवं उनके आक्रोश एवं अपशब्द को सहता रहता था। जब उसकी मृत्यु का समय निकट आया, तब उसने उस सूत्र को सुना।

अकृत्व कालं तद पण्डितेन
अधिष्ठिहित्वा च सुदीर्घमायुः ।
प्रकाशितं सूत्रमिदं तदासीत्
तहि शासने तस्य विनायकस्य ।।५।।

वह विद्वान् मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ, बल्कि लम्वी आयु धारण करके उस समय उन्हीं विनायक के शासन में रहकर उसने वहाँ इस सूत्र को प्रकाशित किया ।

ते चापि सर्वे बहु ओपलम्भिका
बोधाय तेन परिपाचितासीत् ।
ततश्च्यवित्वान स बोधिसत्त्वो
आरागयी बुद्धसहस्रकोट्यः ।।६।।

उन सभी अनेक औपलम्भिकों को (प्रत्यक्ष देखी गई वस्तुओं में विश्वास करनेवालों को) उसने बोधिप्राप्ति के लिए परिपक्व बनाया। वहाँ से च्युत होकर उस बोधिसत्त्व ने सहस्रों कोटि बुद्धों को आरागित किया।

अनुपुर्वपुण्येन कृतेन तेन
प्रकाशयित्वा इमु सूत्र नित्यम्।
बोधि स संप्राप्त जिनस्य पुत्रो
अहमेव सो शाक्यमुनिस्तदासीत्॥७॥

निरन्तर किये गये पुण्यकर्मों के फलस्वरूप एवं इस सूत्र को प्रकाशित करने के कारण उस बुद्ध के पुत्र ने बोधि प्राप्त कर ली। मैं शाक्यमुनि ही उस समय वह बुद्धपुत्र था।

ये चापि भिक्षू तद ओपलम्भिका
या भिक्षुणी ये च उपासका वा।
उपासिकास्तत्र च या तदासीद्
ये बोधि संश्रावित पण्डितेन॥८॥

उस समय वहाँ पर जो भी औपलम्भिक भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक एवं उपासिका थे, उन सबको उस पण्डित ने बोधि का उपदेश दिया।

ते चापि दृष्ट्वा बहुबुद्धकोट्य
इमे च ते पञ्चशता अनूनकाः।
तथैव भिक्षूण च भिक्षुणी च
उपासिकाश्चापि मि मह्य संमुखम्॥९॥

जिन्होंने अनेक कोटि बुद्धों को देखा है, ऐसे वे पूरे पाँच सौ भिक्षु-भिक्षुणियाँ एवं उपासिक-उपासिकाएँ मेरे सम्मुख विद्यमान हैं।

सर्वे मया श्रावित अग्रधर्मा
ते चैव सर्वे परिपाचिता मे।
मयि निर्वृते चापिमि सर्व धीरा
इमु धारयिष्यन्ति ह सूत्रमग्रम्॥१०॥

उन सबको मैंने अग्रधर्म का उपदेश दिया है। उन सबको मैंने परिपक्व बनाया है। मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने पर ये सभी धीर इस श्रेष्ठ सूत्र को धारण करेंगे।

कल्पान कोट्यो बहुभीरचिन्त्यै-
र्न कदाचिदेतादृश धर्म श्रूयते।

बुद्धान कोटीशत चैव भोन्ति
न च ते पिमं सूत्र प्रकाशयन्ति ।।११।।

अचिन्त्य एवं अनेक कोटि कल्पों में भी कदापि ऐसा धर्म नहीं सुनाई पड़ता । सैकड़ों कोटि बुद्ध उत्पन्न होते हैं, किन्तु वे इस सूत्र को प्रकाशित नहीं करते ।

तस्माच्छ्रुणित्वा इदमेवरूपं
परिकीर्तितं धर्मु स्वयं स्वयम्भुवा ।
आरागयित्वा च पुनः पुनश्चिमं
प्रकाशयेत् सूत्र मयीह निर्वृते ।।१२।।

अतः, स्वयं स्वयम्भू के द्वारा परिकीर्त्तित इस प्रकार के इस धर्म को सुनकर तथा पुनः-पुनः इसे आरागित करके वह मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर इस सूत्र को प्रकाशित करे।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये सदाऽपरिभूतपरिवर्तो
नामैकोनविंशतितमः ।।१९।।

श्रेष्ठसद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का उन्नीसवाँ सदाऽपरिभूतपरिवर्त
समाप्त हुआ।

तथागतर्द्ध्यभिसंस्कारपरिवर्त

अथ खलु यानि तानि साहस्रलोकधातुपरमाणुरजःसमानि बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि पृथिवीविवरेभ्यो निष्क्रान्तानि तानि सर्वाणि भगवतोऽभिमुखमञ्जलिं प्रगृह्य भगवन्तमेतदूचुः । वयं भगवन्निमं धर्मपर्यायं तथागतस्य परिनिर्वृतस्य सर्वबुद्धक्षेत्रेषु यानि यानि भगवतो बुद्धक्षेत्राणि यत्र यत्र भगवान् परिनिर्वृतो भविष्यति तत्र तत्र संप्रकाशयिष्यामः । अर्थिनो वयं भगवन्ननेनैवमुदारेण धर्मपर्यायेण धारणाय वाचनाय देशनाय संप्रकाशनाय वा लिखनाय ।

तदनन्तर, जो वे साहस्र लोकधातु के परमाणु-कणों के समान कोटीनयुत शतसहस्र बोधिसत्त्व पृथ्वी के विवरों से निकले थे, वे सभी भगवान् के सम्मुख हाथ जोड़कर भगवान् से यह बोले——हे भगवन् ! हमलोग तथागत के निर्वाण प्राप्त कर लेने पर इस धर्मपर्याय को सब बुद्धक्षेत्रों में, जो-जो भगवान् के बुद्धक्षेत्र हैं एवं जहाँ-जहाँ भगवान् परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे, वहाँ-वहाँ (इस) धर्मपर्याय को प्रकाशित करेंगे। हे भगवन् ! हमलोग इस उदार धर्मपर्याय के धारण, वाचन, देशन, सम्प्रकाशन एवं लेखन के अभिलाषी हैं ।

अथ खलु मञ्जुश्रीप्रमुखानि बहूनि बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि यान्यस्यां सहायां लोकधातौ वास्तव्यानि भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिका देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्या बहवश्च गङ्गानदीवालिकोपमा बोधिसत्त्वा महासत्त्वा भगवन्तमेतदूचुः । वयमपि भगवन्निमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयिष्यामस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्यादृष्टेनात्मभावेन भगवन्नन्तरीक्षे स्थिता घोषं संश्रावयिष्यामोऽनवरोपितकुशलमूलानां च सत्त्वानां कुशलमूलान्यवरोपयिष्यामः ।

तत्पश्चात्, इस सहा (नामक) लोकधातु में रहनेवाले मञ्जुश्री-प्रमुख अनेक कोटीनयुत शतसहस्र बोधिसत्त्व भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य तथा मनुष्येतर प्राणी एवं गंगा नदी की बालुका के समान (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्व भगवान् से यह बोले——हे भगवन् ! हमलोग भी तथागत के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर इस धर्मपर्याय को सम्प्रकाशित करेंगे तथा हे भगवन् ! अदृश्य शरीर से अन्तरिक्ष में स्थित होकर (हमलोग) इसका उद्घोष करेंगे तथा अभी तक कुशलमूल की स्थापना न करनेवाले प्राणियों से कुशलमूल की स्थापना करायेंगे ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायां तेषां पौर्विकाणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां गणिनां महागणिनां गणाचार्याणामेकं प्रमुखं विशिष्टचारित्रं नाम बोधिसत्त्वं महासत्त्वं गणिनं महागणिनं गणाचार्यमामन्त्रयामास। साधु साधु विशिष्टचारित्र। एवं युष्माभिः करणीयमस्य धर्मपर्यायस्यार्थे। यूयं तथागतेन परिपाचिताः।

तदनन्तर, भगवान् उस समय इन (पूर्वकथित) गणियों, महागणियों, गणाचार्यो एवं महासत्त्व वोधिसत्त्वों में से विशिष्टचारित्र नामक एक प्रमुख गणी, महागणी, गणाचार्य, महासत्त्व बोधिसत्त्व से वोले—हे विशिष्टचारित्र ! तुम धन्य हो ! तुम लोगों को धर्मपर्याय के लिए ऐसा करना होगा। तुमलोगों को तथागत ने परिपक्व वना दिया है।

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतः स च भगवान् प्रभूतरत्नस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः परिनिर्वृतः स्तूपमध्ये सिंहासनोपविष्टौ द्वावपि स्मितं प्रादुस्कुरुतो मुखविवरान्तराभ्यां च जिह्वेन्द्रियं निर्णामयतः। ताभ्यां च जिह्वेन्द्रियाभ्यां यावद् ब्रह्मलोकमनुप्राप्नुतस्ताभ्यां च जिह्वेन्द्रियाभ्यां बहूनि रश्मिकोटीनयुतशतसहस्राणि निश्चरन्ति स्म। तासु च रश्मिष्वेकैकस्या रश्मेर्बहूनि बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि निश्चेरुः सुवर्णवर्णैः कायैर्द्वात्रिंशद्भिर्महापुरुषलक्षणैः समन्वागताः पद्मगर्भे सिंहासने निषण्णाः। ते च बोधिसत्त्वा दिग्विदिक्षु लोकधातुशतसहस्रेषु विसृताः सर्वासु दिग्विदिक्ष्वन्तरीक्षे स्थिता धर्मं देशयामासुः। यथैव भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो जिह्वेन्द्रियेणर्द्धिप्रातिहार्यं करोति प्रभूतरत्नश्च तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तथैव ते सर्वे तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा ये तेऽन्यलोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेभ्योऽभ्यागता रत्नवृक्षमूलेषु पृथक् पृथक् सिंहासनोपविष्टा जिह्वेन्द्रियेणर्द्धिप्रातिहार्यं कुर्वन्ति।

तदनन्तर, तथागत शाक्यमुनि तथा वे तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्वुद्ध परिनिर्वाण-प्राप्त भगवान् प्रभूतरत्न—इन दोनों ने स्तूप के मध्य सिंहासन पर वैठे हुए हास उत्पन्न किया तथा मुख के विवर के भीतर से अपनी-अपनी जिह्वा बाहर निकाली। वे दोनों जिह्वाएँ ब्रह्मलोक तक पहुँच गईं और उन दोनों जिह्वाओं से अनेक कोटीनयुत शतसहस्र प्रकाश-रश्मियाँ निकल पड़ीं। उन रश्मियों में प्रत्येक रश्मि के सुवर्ण के वर्णवाले एवं महापुरुषों के वत्तीस लक्षणों से युक्त शरीर से सम्पन्न कमल के अन्दर सिंहासन पर बैठे हुए अनेक कोटीनयुत शतसहस्र बोधिसत्त्व निकले। वे बोधिसत्त्व दिशाओं एवं विदिशाओं में (वर्त्तमान) शतसहस्र लोकधातुओं में फैल गये तथा सभी दिशाओं एवं विदिशाओं में आकाशस्थित होकर धर्म की देशना करने लगे। जिस प्रकार तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि तथा तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध प्रभूतरत्न अपनी

जिह्वाओं से अलौकिक प्रातिहार्य करते थे, उसी प्रकार वे सब तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध भी, जो कोटीनयुत शतसहस्र अन्य लोकधातुओं से आये थे तथा जो रत्नवृक्षों के मूल में पृथक्-पृथक् सिंहासनों पर बैठे थे, अपनी-अपनी जिह्वा के द्वारा अलौकिक प्रातिहार्य करने लगे ।

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्ते च सर्वे तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धास्तमृद्ध्यभिसंस्कारं परिपूर्णं वर्षशतसहस्रं कृतवन्तः। अथ खलु वर्षशतसहस्रस्यात्ययेन ते तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धास्तानि जिह्वेन्द्रियाणि पुनरेवोपसंहृत्यैकस्मिन्नेव क्षणलवमुहूर्ते समकालं सर्वैर्महासिंहोत्कासनशब्दः कृत एकश्चाच्छटासंघातशब्दः कृतस्तेन च महोत्कासनशब्देन महाच्छटासंघातशब्देन यावन्ति दशसु दिक्षु बुद्धक्षेत्रकोटीनयुतशतसहस्राणि तानि सर्वाण्याकम्पितान्यभूवन् प्रकम्पितानि संप्रकम्पितानि चलितानि प्रचलितानि संप्रचलितानि वेधितानि प्रवेधितानि संप्रवेधितानि। तेषु च सर्वेषु बुद्धक्षेत्रेषु यावन्तः सर्वसत्त्वा देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्यास्तेऽपि सर्वे बुद्धानुभावेन तत्रस्था एवमिमां सहां लोकधातुं पश्यन्ति स्म। तानि च सर्वतथागतकोटीनयुतशतसहस्राणि रत्नवृक्षमूलेषु पृथक् पृथक् सिंहासनोपविष्टानि भगवन्तं च शाक्यमुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं तं च भगवन्तं प्रभूतरत्नं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं परिनिर्वृतं तस्य महारत्नस्तूपस्य मध्ये सिंहासनोपविष्टं भगवता शाक्यमुनिना तथागतेन सार्धं निषण्णं ताश्चतस्रः पर्षदः पश्यन्ति स्म। दृष्ट्वा चाश्चर्यप्राप्ता अद्भुतप्राप्ता औद्बिल्यप्राप्ता अभूवन्। एवं चान्तरीक्षाद् घोषमश्रौषुः। एष मार्षा अप्रमेयाण्यसंख्येयानि लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्राण्यतिक्रम्य सहा नाम लोकधातुस्तस्यां शाक्यमुनिर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः। स एतर्हि सद्धर्मपुण्डरीकं नाम धर्मपर्यायं सूत्रान्तं महावैपुल्यं बोधिसत्त्वाववादं सर्वबुद्धपरिग्रहं बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां संप्रकाशयति। तं यूयमध्याशयेनानुमोदध्वं तं च भगवन्तं शाक्यमुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं तं च भगवन्तं प्रभूतरत्नं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं नमस्कुरुध्वम् ।

तदनन्तर, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि तथा उन सभी तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों ने उन अलौकिक प्रातिहार्यों को पूरे शतसहस्र वर्षों तक किया । तदनन्तर, शतसहस्र वर्ष व्यतीत होने के अनन्तर उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों ने अपनी जिह्वाओं को पुनः समेटकर एक ही क्षण लव मुहूर्त्त में एक ही साथ महासिंहोत्कासन का शब्द किया तथा एक अच्छटासंघात का शब्द किया । उस महोत्कासन शब्द

तथा अच्छटासंघात के शब्द से दसों दिशाओं में जितने कोटीनयुत शतसहस्र बुद्धक्षेत्र थे, वे सभी अकम्पित, प्रकम्पित, सम्प्रकम्पित, चलित, प्रचलित, सम्प्रचलित, वेधित, प्रवेधित एवं सम्प्रवेधित हुए । उन सभी बुद्धक्षेत्रों में देव, नाग, यक्ष, असुर, गन्धर्व, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य तथा मनुष्येतर जितने भी प्राणी थे, वे सब भी बुद्ध के प्रभाव से वहीं खड़े-खड़े इस सहा (नामक) लोकधातु को देखने लगे । रत्नवृक्षों के मूल में पृथक्-पृथक् सिंहासनों पर बैठे हुए उन सभी कोटीनयुत शतसहस्र तथागतों ने तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि को और तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, निर्वाण-प्राप्त उन भगवान् प्रभूतरत्न को, जो उस महान् रत्नस्तूप के मध्य में तथागत भगवान् शाक्यमुनि के साथ सिंहासन पर बैठे हुए थे, तथा उन चार परिषदों को देखा । (ऐसा) देखकर (वे) आश्चर्य को प्राप्त हो गये, अचम्भा को प्राप्त हो गये एवं सम्भ्रम को प्राप्त हो गये और आकाश से इस प्रकार के शब्द को सुना—हे मित्रो ! अप्रमेय एवं असंख्य कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं के परे जो यह सहा (नामक) लोकधातु है, उसमें शाक्यमुनि नामक तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध रहते हैं। वे वहाँ इस सद्धर्म-पुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय को महासत्त्व बोधिसत्त्वों के सम्मुख सम्प्रकाशित करते हैं, जो महावैपुल्यसूत्रान्त बोधिसत्त्वों का उपदेशक एवं सभी बुद्धों के द्वारा परिगृहीत है । तुमलोग उस सद्धर्मपुण्डरीक को ग्रहण करके उसका हृदय से अनुमोदन करो तथा उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि तथा उन तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न को प्रणाम करो ।

अथ खलु ते सर्वसत्त्वा इममेवंरूपमन्तरीक्षान्निर्घोषं श्रुत्वा तत्रस्था एव नमो भगवते शाक्यमुनये तथागतायार्हते सम्यक्संबुद्धायेति वाचं भाषन्ते स्मान्जलिं प्रगृह्य । विविधाश्च पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावैजयन्त्यो येनेयं सहा लोकधातुस्तेन क्षिपन्ति स्म नानाविधानि चाभरणानि पिनद्धानि हारार्धहारर्मणिरत्नान्यपि क्षिपन्ति स्म भगवतः शाक्यमुनेः प्रभूतरत्नस्य च तथागतस्य पूजाकर्मणे । अस्य च सद्धर्मपुण्डरीकस्य धर्मपर्यायस्य ताश्च पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावैजयन्त्यस्तानि च हारार्धहारर्मणिरत्नानि क्षिप्तानीमां सहां लोकधातुमागच्छन्ति स्म। तैश्च पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावैजयन्तीराशिभिर्हारार्धहारैर्मणिरत्नैश्चास्यां सहायां लोकधातौ सार्द्धं तैरन्यैर्लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रैरेकीभूतैर्ये तेषु तथागताः संनिषण्णास्तेषु सर्वेषु वैहायसेऽन्तरीक्षे समन्तान्महापुष्पवितानं परिसंस्थितमभूत् ।

तदनन्तर, वे सभी प्राणी अन्तरिक्ष से इस प्रकार के शब्द को सुनकर वहीं खड़े-खड़े हाथ जोड़कर—तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि को नमस्कार है, ऐसा वचन कहने लगे । उनलोगों ने सहा (नामक) लोकधातु की ओर भगवान् शाक्यमुनि,

तथागत प्रभूतरत्न एवं इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय की पूजा के लिए पुष्प,-धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, . चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका और वैजयन्ती फेंके तथा नानाविध हार, अर्घहार, मणि एवं रत्न फेंके। वे फेंके हुए पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका, वैजयन्ती, हार, अर्धहार, मणि एवं रत्न इस सहा, (नामक) लोकधातु में आये । उन पुष्प, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज-पताका, वैजयन्ती, हार अर्धहार, मणि एवं रत्नसमूह ने, जो अन्य कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं के साथ मिलकर एकीभूत हो गये थे, इस सहा (नामक) लोकधातु में जिन स्थानों पर आकाश में, अन्तरिक्ष में ये तथागत बैठे थे, उन सभी स्थानों पर चारों ओर से विशाल पुष्प का वितान खड़ा कर दिया ।

अथ खलु भगवांस्तान् विशिष्टचारित्रप्रमुखान् बोधिसत्त्वान्महासत्त्वानामन्त्रयामास । अचिन्त्यप्रभावाः कुलपुत्रास्तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः । बहून्यप्यहं कुलपुत्राः कल्पकोटीनयुतशतसहस्राण्यस्य धर्मपर्यायस्य परीन्दनार्थं नानाधर्मप्रमुखैर्बहूनानुशंसान् भाषेयं न चाहं गुणानां पारं गच्छेयमस्य धर्मपर्यायस्य भाषमाणः । संक्षेपेण कुलपुत्राः सर्वबुद्धवृषभिता सर्वबुद्धरहस्यं सर्वबुद्धगम्भीरस्थानं मयास्मिन् धर्मपर्याये देशितम् । तस्मात्तर्हि कुलपुत्रा युष्माभिस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्य सत्कृत्यायं धर्मपर्यायो धारयितव्यो देशयितव्यो लिखितव्यो वाचयितव्यः प्रकाशयितव्यो भावयितव्यः पूजयितव्यः । यस्मिंश्च कुलपुत्राः पृथिवीप्रदेशेऽयं धर्मपर्यायो वाच्येत वा प्रकाश्येत वा देश्येत वा लिख्येत वा चिन्त्येत वा भाष्येत वा स्वाध्यायेत वा पुस्तकगतो वा तिष्ठेदारामे वा विहारे वा गृहे वा वने वा नगरे वा वृक्षमूले वा प्रासादे वा लयने वा गुहायां वा तस्मिन् पृथिवीप्रदेशे तथागतमुद्दिश्य चैत्यं कर्तव्यम् । तत् कस्य हेतोः । सर्वतथागतानां हि स पृथिवीप्रदेशो बोधिमण्डो वेदितव्यस्तस्मिंश्च पृथिवीप्रदेशे सर्वतथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा अनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धा इति वेदितव्यं तस्मिंश्च पृथिवीप्रदेशे सर्वतथागतैर्धर्मचक्रं प्रवर्तितं तस्मिंश्च पृथिवीप्रदेशे सर्वतथागताः परिनिर्वृता इति वेदितव्यम् ।

तदनन्तर, भगवान् उन विशिष्टचारित्र-प्रमुख महासत्त्व बोधिसत्त्वों से बोले--हे कुलपुत्रो ! तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों का प्रभाव अचिन्त्य है। हे कुलपुत्रो ! इस धर्मपर्याय की सुरक्षा के लिए यदि मैं अनेक कोटीनयुत शतसहस्र कल्पों तक इसके अनेक गुणों का विविध धर्मसिद्धान्तों के द्वारा विवेचन करूँ, तो इस प्रकार विवेचन करता हुआ भी मैं इस धर्मपर्याय के गुणों का पार नहीं पा सकता । हे कुलपुत्रो ! मैंने इस धर्मपर्याय में बुद्ध के सभी गुणों, बुद्ध के सभी रहस्यों एवं बुद्ध के गम्भीर स्थानों का संक्षेप में विवेचन किया है । अतः, इस हेतु हे कुलपुत्रो ! तुमलोग परिनिर्वाण-

प्राप्त तथागत के सत्कारार्थ इस धर्मपर्याय को धारण करो, देशित करो, लिखो, पढ़ो, प्रकाशित करो, समझो एवं पूजित करो। हे कुलपुत्रो ! पृथ्वी के जिस भाग में, अर्थात् जिस उपवन, विहार, गृह, वन, नगर, वृक्षमूल, प्रासाद, भवन अथवा गुफा में इस धर्मपर्याय का वाचन, प्रकाशन, देशन, लेखन, चिन्तन, भाषण या स्वाध्याय होता हो अथवा यह (धर्मपर्याय) पुस्तक के रूप में वर्त्तमान हो, उस भूभाग में तथागत का चैत्य बनवा देना चाहिए। ऐसा क्यों करना चाहिए ? क्योंकि, उस भूखण्ड को सब तथागतों का बोधिमण्ड समझना चाहिए और यह समझना चाहिए कि उस भूभाग पर सभी तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों ने श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की है तथा यह भी समझना चाहिए कि उस भूभाग में सभी तथागतों ने धर्मचक्र को प्रवर्त्तित किया है तथा उस भूभाग में सभी तथागतों ने निर्वाण प्राप्त किया है।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं---

अचिन्तिया लोकहितान धर्मता
अभिज्ञज्ञानस्मि प्रतिष्ठितानाम् ।
ये ऋद्धि दर्शेन्ति अनन्तचक्षुषः
प्रामोद्यहेतोरिह सर्वदेहिनाम् ॥१॥

अभिज्ञान में प्रतिष्ठित, लोक के हितैषी, उन (बुद्धों) की धार्मिक शक्ति अचिन्त्य है, जो अनन्तचक्षु (बुद्ध) इस संसार में सभी प्राणियों को प्रसन्न करने के लिए अपनी अलौकिक शक्ति दिखलाते हैं।

जिह्वेन्द्रियं प्रापिय ब्रह्मलोकं
रश्मीसहस्राणि प्रमुञ्चमानाः ।
आश्चर्यभूता इह ऋद्धि दर्शिताः
ते सर्वि ये प्रस्थित अग्रबोधौ ॥२॥

उन्होंने सहस्रों किरणें बिखेरते हुए अपनी जिह्वा को ब्रह्मलोक तक पहुँचाकर अपनी आश्चर्यजनक अलौकिक शक्ति के द्वारा उन सबको, जो अग्रबोधि में सम्प्रस्थित थे, प्रातिहार्य दिखलाये।

उत्कासितं चापि करोति बुद्धा
एकाच्छटा ये च करोन्ति शब्दम् ।
ते विज्ञपेन्ती इमु सर्वलोकं
दशो दिशायां इम लोकधातुम् ॥३॥

द्धा ने उत्कासित एवं अच्छटा के शब्द किये। इस प्रकार, उन्होंने इस सम्पूर्ण लोकधातु को तथा दसों दिशाओं में स्थित अन्य लोकधातुओं को विज्ञापित किया।

एतानि चान्यानि च प्रातिहार्या
गुणान्निदर्शेन्ति हितानुकम्पकाः
कथं नु ते हर्षित तस्मि काले
धारेयु सूत्रं सुगतस्य निर्वृते ।।४ ।

उन हितैषी एवं दयालु भगवान् ने इन तथा अन्य अलौकिक प्रातिहार्यों को दिखलाया, जिससे कि वे प्राणी भी सुगत के निर्वाण प्राप्त कर लेने पर इस सूत्र को उस समय हर्षपूर्वक धारण करे ।

बहूपि कल्पान सहस्रकोट्यो
वदेय वर्ण सुगतात्मजानाम् ।
ये धारयिष्यन्तिम सूत्रमग्रं
परिनिर्वृते लोकविनायकस्मिन् ।।५।।

लोकविनायक के निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर जो इस श्रेष्ठ सूत्र को धारण करेंगे, उन सुगत के पुत्रों के गुणों का यदि मैं अनेक सहस्र कोटि कल्पों तक वर्णन करूँ, (तो भी पार नहीं पा सकता)।

न तेष पर्यन्त भवेद् गुणानां
आकाशधातौ हि यथा दिशासु।
अचिन्तिया तेष गुणा भवन्ति
ये सूत्र धारेन्ति इदं शुभं सदा ।।६।।

उनके गुणों का अन्त नहीं हो सकता । जो इस सूत्र को धारण करते हैं, उनके गुण दिशाओं में वर्त्तमान आकाशधातु की तरह अचिन्त्य होते हैं ।

दृष्टो अहं सर्व इमे च नायका
अयं च यो निर्वृतु लोकनायकः ।
इमे च सर्वे बहुबोधिसत्त्वाः
पर्षाश्च चत्वारि अनेन दृष्टाः ।।७।।

उन्होंने मुझे, इन सभी नायकों तथा उन निर्वाणप्राप्त लोकनायक को देखा है । (उन्होंने) इन सभी अनेक बोधिसत्त्वों एवं चारों परिषदों को देखा हैं ।

अहं च आरागितु तेनिहाद्य
इमे च आरागित सर्वि नायकाः।
अयं च यो निर्वृतको जिनेन्द्रो
ये चापि अन्ये दशसू दिशासु ।।८।।

उन्होंने आज यहाँ मुझे आरागित किया है। इन सभी नायकों को भी आरागित किया है, जो यह निर्वाणप्राप्त जिनेन्द्र हैं तथा दसों दिशाओं में जो अन्य लोग हैं—(उन सबको उन्होंने आरागित किया है)।

अनागतातीत तथा च बुद्धाः
तिष्ठन्ति ये चापि दशसु दिशासु।
ते सर्वि दृष्टाश्च सुपूजिताश्च
भवेयु यो धारयि सूत्रमेतत् ॥९॥

अनागत, अतीत एवं दसों दिशाओं में सम्प्रति वर्त्तमान जो बुद्ध हैं, वे सभी (उसके द्वारा) दृष्ट एवं पूजित समझे जायेंगे, जो इस सूत्र को धारण करता है।

रहस्यज्ञानं पुरुषोत्तमानां
यं बोधिमण्डस्मि विचिन्तितासीत्।
अनुचिन्तयेत् सो पि तु क्षिप्रमेव
यो धारयेत् सूत्रिमु भूतधर्मम् ॥१०॥

बोधिमण्ड पर चिन्तन द्वारा प्राप्त किये गये पुरुषोत्तमों के रहस्यज्ञान को वह शीघ्र प्राप्त कर लेता है, जो इस वास्तविक धर्म को (बतलानेवाले) सूत्र को धारण करता है।

प्रतिभानु तस्यापि भवेदनन्तं
यथापि वायुर्न कहिंचि सज्जति।
धर्मेपि चार्थे च निरुक्ति जानति
यो धारयेत् सूत्रमिदं विशिष्टम् ॥११॥

जो इस विशिष्ट सूत्र को धारण करता है, उसकी प्रतिमा अनन्त होती है। वायु की तरह उसकी निर्बाध गति होती है और धर्म एवं अर्थ की निरुक्ति (तत्त्व) को जानता है।

अनुसंधिसूत्राण सदा प्रजानति
संधाय यं भाषितु नायकेहि।
परिनिर्वृतस्यापि विनायकस्य
सूत्राण सो जानति भूतमर्थम् ॥१२॥

सदा थोड़े चिन्तन के ही अनन्तर नायकों के द्वारा कहे गये सूत्रों के अर्थ को समझ लेने पर भी वह सूत्रों के वास्तविक अर्थ को जानता है।

चन्द्रोपमः सूर्यसमः स भाति
आलोकप्रद्योतकरः स भोति।

विचरन्तु सो मेदिनि तेन तेन
समादपेती बहुबोधिसत्त्वान् ।।१३।।

वह चन्द्रमा एवं सूर्य की तरह सुशोभित होता है । वह आलोक एवं प्रद्योत को देनेवाला होता है । वह पृथ्वी पर जिधर भी भ्रमण करता है उधर ही अनेक बोधिसत्त्वों को समादापित कर देता है ।

तस्माद्धि ये पण्डित बोधिसत्त्वाः
श्रुत्वानिमानीदृश आनुशंसान् ।
धारेयु सूत्रं मम निर्वृतस्य
न तेष बोधाय भवेत संशयः ।।१४।।

अतः, जो विद्वान् बोधिसत्त्व इस प्रकार की इन अनुशंसाओं को सुनकर मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने पर इस सूत्र को धारण करेगा, उसके बोधि प्राप्त करने में कोई संशय नहीं है।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये तथागतर्द्ध्यभिसंस्कार-परिवर्तो नाम विंशतितमः ।।२०।।

श्रेष्ठसद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का बीसवाँ तथागतर्द्ध्यभिसंस्कारपरिवर्त समाप्त हुआ ।

धारणीपरिवर्त

अथ खलु भैषज्यराजो बोधिसत्त्वो महासत्त्व उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणाम्य भगवन्तमेतदवोचत् । कियद् भगवन् स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा पुण्यं प्रसवेद् य इमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं धारयेत् कायगतं वा पुस्तकगतं वा कृत्वा । एवमुक्ते भगवान् भैषज्यराजं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत् । यः कश्चिद् भैषज्यराज कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वाशीतिगङ्गानदीवालिकासमानि तथागतकोटीनयुतशतसहस्राणि सत्कुर्याद् गुरुकुर्यान्मानयेत् पूजयेत् तत् किं मन्यसे भैषज्यराज कियत् कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा ततो निदानं बहु पुण्यं प्रसवेत् । भैषज्यराजो बोधिसत्त्वो महासत्त्व आह । बहु भगवन् बहु सुगत । भगवानाह । आरोचयामि ते भैषज्यराज प्रतिवेदयामि । यः कश्चिद् भैषज्यराज कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वास्मात् सद्धर्मपुण्डरीकाद् धर्मपर्यायादन्तश एकामपि चतुष्पदीगाथां धारयेद् वाचयेत् पर्यवाप्नुयात् प्रतिपत्त्या च संपादयेदतः स भैषज्यराज कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा ततो निदानं बहुतरं पुण्यं प्रसवेत् ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज आसन से उठकर दुकूल को एक कन्धे पर करके दाहिने घुटने को भूमि पर टेककर जिधर भगवान् थे, उस ओर हाथ जोड़कर प्रणाम करके भगवान् से यह बोले—हे भगवन् ! उस कुलपुत्र या कुलपुत्री को कितना पुण्यलाभ होगा, जो इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय को कण्ठगत या पुस्तकगत करके धारण करे । ऐसा पूछने पर भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज से यह बोले—हे भैषज्यराज ! जो कुलपुत्र या कुलपुत्री अस्सी गंगा नदी की बालुका के समान कोटि खर्व शतसहस्र तथागतों का सत्कार करे, आदर करे, सम्मान करे तथा पूजन करे, तो हे भैषज्यराज ! क्या तुम्हारी समझ से इसके फलस्वरूप उस कुलपुत्र या कुलकन्या को पर्याप्त पुण्य प्राप्त होता है ? महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज ने कहा—हे भगवन् ! बहुत, हे सुगत ! बहुत (पुण्य प्राप्त होता है)। भगवान् ने कहा—हे भैषज्यराज ! मैं तुमसे कहता हूँ, प्रतिवेदन करता हूँ । हे भैषज्यराज ! जो कोई कुलपुत्र या कुलकन्या इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय से एक भी चतुष्पदी गाथा धारण करे, पढ़े, समझे तथा आदरपूर्वक आचरित करे, तो हे भैषज्यराज ! वह कुलपुत्र या कुलकन्या उसके फलस्वरूप (पूर्व की अपेक्षा) अधिक पुण्य उत्पन्न करेगी ।

अथ खलु भैषज्यराजो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायां भगवन्तमेतदवोचत् । दास्यामो वयं भगवंस्तेषां कुलपुत्राणां कुलदुहितॄणां वा येषामयं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः कायगतो वा स्यात् पुस्तकगतो वा रक्षावरणगुप्तये धारणीमन्त्रपदानि । तद् यथा ।

अन्ये मन्ये मने ममने चित्ते चरिते समे समिता विशान्ते
मुक्ते मुक्ततमे समे अविषमे समसमे जये क्षये अक्षये अक्षिणे
शान्ते समिते धारणि आलोकभाषे प्रत्यवेक्षणि निधिरु
अभ्यन्तर निविष्टे अभ्यन्तर पारिशुद्धिमुत्कुले अरडे
परडे सुकाङक्षि असमसमे बुद्धविलोकिते धर्मपरीक्षिते संघनिर्घोषणि निर्घोणि भयाभयविशोधनि मन्त्रे
मन्त्राक्षयते रुते रुतकौशल्ये अक्षये अक्षयवनताये
वक्कुले वलोड़ अमन्यनताये स्वाहा ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज उस समय भगवान् से यह बोले—हे भगवन् ! वे कुलपुत्र या कुलकन्याएँ जो इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय को कण्ठगत या पुस्तकगत करके रखती हैं, उनकी रक्षा, आवरण एवं गुप्ति के लिए हम धारणी-मन्त्र के पदों को देंगे । वे इस प्रकार हैं—

"अन्ये मन्ये मने ममने चित्ते चरिते समे समिता विशान्ते मुक्ते, मुक्ततमे समे अविषमे समसमे जये क्षये अक्षये अक्षिणे शान्ते समिते धारिणि आलोकभाषे प्रत्यवेक्षणि निधिरु अभ्यन्तरनिविष्टे अभ्यन्तर पारिशुद्धिमुत्कुले अरडे परडे सुकाङक्षि असमसमे बुद्धविलोकिते धर्मपरीक्षिते संघनिर्घोषिणि निर्घोणि, भयाभयविशोधिनि मन्त्रे मन्त्राक्षयते रुते रुतकौशल्ये अक्षये अक्षयवनताये वक्कुले वलोड़ अमन्यनताये स्वाहा ।"

इमानि भगवन् मन्त्रधारणीपदानि द्वाषष्टिभिर्गङ्गानदीवालिकासमैर्बुद्धैर्भगवद्भिर्भाषितानि । ते सर्वे बुद्धा भगवन्तस्तेन द्रुग्धाः स्युर्य एवंरूपान् धर्मभाणकानेवंरूपान् सूत्रान्तधारकानतिक्रामेत् ।

हे भगवन् ! ये धारणी-मन्त्र के पद बासठ गंगा नदियों की बालुका के समान (असंख्य) भगवान् बुद्धों के द्वारा कहे गये हैं । वह उन सभी भगवान् बुद्धों का द्रोही होगा, जो इस प्रकार के धर्मभाणकों एवं इस प्रकार के सूत्रान्तधारकों का अपमान करे(गा) ।

अथ खलु भगवान् भैषज्यराजाय बोधिसत्त्वाय महासत्त्वाय साधुकारमदात् । साधु साधु भैषज्यराज सत्त्वानामर्थः कृतो धारणीपदानि भाषितानि सत्त्वानामनुकम्पामुपादाय रक्षावरणगुप्तिः कृता ।

तदनन्तर, भगवान् ने महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज को साधुवाद दिया—हे भैषज्यराज ! तुमने बहुत अच्छा किया है । प्राणियों पर दया करके उन धारणी-पदों को कहकर तुमने उनका हित किया और उन प्राणियों की रक्षा, आवरण एवं गुप्ति की ।

अथ खलु प्रदानशूरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत् । अहमपि भगवन्नेवंरूपाणां धर्मभाणकानामर्थाय धारणीपदानि दास्यामि यत्तेषामेवंरूपाणां धर्मभाणकानां न कश्चिदवतारप्रेक्ष्यवतारगवेष्यवतारं लप्स्यते । तद् यथा यक्षो वा राक्षसो वा पूतनो वा कृत्यो वा कुम्भाण्डो वा प्रेतो वावतारप्रेक्ष्यवतारगवेष्यवतारं न लप्स्यत इति ।

तत्पश्चात्, महासत्त्व बोधिसत्त्व प्रदानशूर भगवान् से यह बोले—हे भगवन् ! मैं भी इस प्रकार के धर्ममाणकों के हित के लिए उन्हें इन धारणी-पदों का उपदेश दूँगा, जिससे इस प्रकार के उन धर्मभाणकों का कोई अवतारप्रेक्षी एवं अवतारगवेषी (उनके) अवतार को नहीं प्राप्त करेगा । अर्थात्, अवतारप्रेक्षी एवं अवतारगवेषी यक्ष, राक्षस, पूतन, कृत्य, कुम्भाण्ड या प्रेत उनके अवतार को नहीं प्राप्त करेगा ।

अथ खलु प्रदानशूरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायामिमानि धारणीमन्त्रपदानि भाषते स्म । तद् यथा ।

ज्वले महाज्वले उक्के तुक्के मुक्के अड़े अड़ावति नृत्ये
नृत्यावति इट्टिनि विट्टिनि चिट्टिनि नृत्यनि नृत्यावति स्वाहा ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व प्रदानशूर ने उस समय उन धारणी-मन्त्र के पदों को कहा—"यथा ज्वले महाज्वले उक्के तुक्के मुक्के अड़े अड़ावति नृत्ये नृत्यावति इट्टिनी विट्टिनी चिट्टिनि नृत्यनि नृत्यावति स्वाहा ।"

इमानि भगवन् धारणीपदानि गङ्गानदीवालिकासमैस्तथागतैरर्हद्भिः सम्यक्संबुद्धैर्भाषितान्यनुमोदितानि च । ते सर्वे तथागतास्तेन द्रुग्धाः स्युर्यस्तानेवंरूपान् धर्मभाणकानतिक्रमेत ।

हे भगवन् ! इन धारणी-पदों का गंगा नदी की बालुका के समान (असंख्य) तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों ने कथन एवं अनुमोदन किया । उन सभी तथागतों का वह द्रोही होगा, जो इस प्रकार के धर्मभाणकों का अपमान करे(गा) ।

अथ खलु वैश्रवणो महाराजो भगवन्तमेतदवोचत् । अहमपि भगवन् धारणीपदानि भाषिष्ये तेषां धर्मभाणकानां हिताय सुखायानुकम्पायै रक्षावरणगुप्तये । तद् यथा ।

अट्टे तट्टे नट्टे वनट्टे अनड़े नाड़ि कुनड़ि स्वाहा ।

तत्पश्चात्, महाराज वैश्रवण भगवान् से यह बोले—हे भगवन् ! मैं भी उन धर्म-

भाणकों के हित, सुख, अनुकम्पा, रक्षा, आवरण एवं गुप्ति के लिए धारणी-पदों को कहूँगा। जैसे—"अट्टे तट्टे नट्टे वनट्टे अनड़े नाड़ि कुनड़ि स्वाहा।"

एभिर्भगवन् धारणीपदैस्तेषां धर्मभाणकानां पुद्गलानां रक्षां करोमि योजनशताच्चाहं तेषां कुलपुत्राणां कुलदुहितॄणां चैवंरूपाणां सूत्रान्तधारकाणां रक्षा कृता भविष्यति स्वस्त्ययनं कृतं भविष्यति।

हे भगवन्! इन धारणी-पदों के द्वारा मैं सौ योजन से उन धर्मभाणक पुद्गलों की रक्षा करता हूँ तथा इस प्रकार उन कुलपुत्रों एवं कुलपुत्रियों तथा इस प्रकार के सूत्रान्तधारकों की रक्षा हो जायगी एवं कल्याण होगा।

अथ खलु विरूढको महाराजो तस्यामेव पर्षदि सन्निपतितोऽभूत् सन्निषण्णश्च कुम्भाण्डकोटीनयुतशतसहस्रैः परिवृतः पुरस्कृतः। स उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणाम्य भगवन्तमेतदवोचत्। अहमपि भगवन् धारणीपदानि भाषिष्ये बहुजनहिताय तेषां च तथारूपाणां धर्मभाणकानामेवंरूपाणां सूत्रान्तधारकाणां रक्षावरणगुप्तये धारणीमन्त्रपदानि। तद् यथा।

अगणे गणे गौरि गन्धारि चण्डालि मातङ्गि
पुक्कसि संकुले व्रूसलि सिसि स्वाहा।

तदनन्तर, कोटि नयुत शतसहस्र कुम्भाण्डों से परिवृत एवं पुरस्कृत महाराज विरूढक उसी परिषद् में आकर बैठे हुए थे। वे आसन से उठकर दुकूल को एक कन्धे पर करते हुए जिधर भगवान् थे, उस ओर हाथ जोड़कर भगवान् से यह बोले—हे भगवन्! मैं भी 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' तथा इस प्रकार के धर्मभाणकों एवं इस प्रकार के सूत्रान्तधारकों की रक्षा आवरण एवं गुप्ति के लिए (इस) धारणी-मन्त्र के पदों को कहूँगा। यथा—"अगणे गणे गौरि गन्धारि चण्डालि मातङ्गि पुक्कसि संकुले व्रूसलि सिसि स्वाहा।"

इमानि तानि भगवन् धारणीमन्त्रपदानि यानि द्वाचत्वारिंशद्भिर्बुद्धकोटीभिर्भाषितानि। ते सर्वे तेन द्रुग्धाः स्युर्यस्तानेवंरूपान् धर्मभाणकानतिक्रमेत।

हे भगवन्! ये वे धारणी, मन्त्र के पद हैं, जिनको बयालीस कोटि बुद्धों ने कहा था। वह (पुरुष) उन सबका द्रोही होगा, जो इस प्रकार के धर्मभाणकों का अपमान करेगा।

अथ खलु लम्बा च नाम राक्षसी विलम्बा च नाम राक्षसी कूटदन्ती च नाम राक्षसी पुष्पदन्ती च नाम राक्षसी मुकुटदन्ती च नाम राक्षसी केशिनी

च नाम राक्षस्यचला च नाम राक्षसी मालाधारी च नाम राक्षसी कुन्ती च नाम राक्षसी सर्वसत्त्वोजोहारी च नाम राक्षसी हारीती च नाम राक्षसी सपुत्रपरिवारा एताः सर्वा राक्षस्यो येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्ता उपसंक्रम्य सर्वास्ता राक्षस्य एकस्वरेण भगवन्तमेतदवोचन् । वयमपि भगवंस्तेषामेवंरूपाणां सूत्रान्तधारकाणां धर्मभाणकानां रक्षावरणगुप्तिं करिष्यामः स्वस्त्वयनं च करिष्यामो यथा तेषां धर्मभाणकानां न कश्चिदवतारप्रेक्ष्यवतारगवेष्यवतारं लप्स्यतीति ।

तदनन्तर, लम्बा नाम की राक्षसी, विलम्बा नाम की राक्षसी, कूटदन्ती नाम की राक्षसी, पुष्पदन्ती नाम की राक्षसी, मुकुटदन्ती नाम की राक्षसी, केशिनी नाम की राक्षसी, अचला नाम की राक्षसी, मालाधारी नाम की राक्षसी, कुन्ती नाम की राक्षसी, सर्वसत्त्वोजोहारी नाम की राक्षसी तथा हारीति नाम की राक्षसी—ये सभी राक्षसियाँ पुत्र एवं परिवार सहित जिधर भगवान् थे, उधर गईं और जाकर उन सब राक्षसियों ने एक स्वर से भगवान् से यह कहा—हे भगवन् ! हमलोग भी इस प्रकार के उन सूत्रान्तधारकों एवं धर्मभाणकों की रक्षा, आवरण एवं गुप्ति करें(गी) तथा कल्याण करें(गी), जिससे उन धर्मभाणकों के अवतार को कोई अवतारप्रेक्षी या अवतारगवेषी नहीं प्राप्त करेगा ।

अथ खलु ताः सर्वा राक्षस्य एकस्वरेण समं संगीत्या भगवत इमानि धारणीमन्त्रपदानि प्रयच्छन्ति स्म । तद्यथा ।

इति मे इति मे इति मे इति मे इति मे । निमे
निमे निमे निमे निमे । रुहे रुहे रुहे रुहे
रुहे । स्तुहे स्तुहे स्तुहे स्तुहे स्तुहे स्वाहा ।

तदनन्तर, उन सभी राक्षसियों ने एक स्वर से समवेत गान के द्वारा भगवान् के सम्मुख धारणी-मन्त्र के इन पदों को उपस्थित किया । यथा—

"इति मे इति मे इति मे इति मे इति मे । निमे
निमे निमे निमे निमे । रुहे रुहे रुहे रुहे
रुहे । स्तुहे स्तुहे स्तुहे स्तुहे स्तुहे स्वाहा ।"

इमं शीर्षं समारुह्य मा कश्चिद् द्रोही भवतु धर्मभाणकानां यक्षो वा राक्षसो वा प्रेतो वा पिशाचो वा पूतनो वा कृत्यो वा वेताड़ो वा कुम्भाण्डो वा स्तब्धो वोमारको वोस्तारको वापस्मारको वा यक्षकृत्यो वामनुष्यकृत्यो वा मनुष्यकृत्यो वा एकाहिको वा द्वैतीयको वा त्रैतीयको वा चतुर्थको वा नित्यज्वरो वा विषमज्वरो वान्तशः स्वप्नान्तरगतस्यापि स्त्रीरूपाणि वा पुरुषरूपाणि वा दारकरूपाणि वा दारिकारूपाणि वा विहेठां कुर्युर्नेदं स्थानं विद्यते ।

इस (मन्त्र) को मस्तक पर धारण करके यक्ष, राक्षस, प्रेत, पिशाच, पूतन, कृत्य, वेताल, कुम्भाण्ड, स्तब्ध, उमारक, उस्तारक, अपस्मारक, यक्षकृत्य, अमनुष्यकृत्य, मनुष्यकृत्य, ऐकाहिक, द्वैतीयक, त्रैतीयक, चतुर्थक, नित्यज्वर अथवा विषमज्वर, कोई भी धर्मभाणकों का द्रोह मत करे । स्वप्न की अवस्था में भी उस (धर्मभाणक) की हानि करने में स्त्री-रूप, पुरुष-रूप, दारक-रूप या दारिका-रूपधारी (प्राणी) सर्वथा असमर्थ रहेंगे ।

अथ खलु ता राक्षस्य एकस्वरेण समं संगीत्या भगवन्तमाभिर्गाथाभिरध्यभाषन्त ।

तदनन्तर, वे राक्षसियाँ एक स्वर से गाथाओं की समवेत संगीति के द्वारा भगवान् से बोलीं—

सप्तधास्य स्फुटेन्मूर्धा अर्जकस्येव मञ्जरी ।
य इमं मन्त्र श्रुत्वा वै अतिक्रमेद्धर्मभाणकम् ।।१।।

अर्जक की मंजरी की तरह उसका मस्तक सात टुकड़े हो जाय, जो इस मन्त्र को सुनकर भी धर्ममाणक का अपमान करे ।

या गतिर्मातृघातीनां पितृघातीन या गतिः ।
तां गतिं प्रतिगच्छेद् यो धर्मभाणकमतिक्रमेत् ।।२।।

मातृहन्ता की जो गति होती है तथा पितृहन्ता की जो गति होती है, उसी गति को वह प्राप्त करे, जो धर्मभाणक का अपमान करता है ।

या गतिस्तिलपीडानां तिलकूटानां च या गतिः ।
तां गतिं प्रतिगच्छेद् यो धर्मभाणकमतिक्रमेत् ।।३।।

तिल पेरनेवालों की जो गति होती है तथा जो तिल कूटनेवालों की गति होती है, उसी गति को वह प्राप्त करे, जो धर्मभाणक का अपमान करता है ।

या गतिस्तुलकूटानां कांस्यकूटान या गतिः ।
तां गतिं प्रतिगच्छेद् यो धर्मभाणकमतिक्रमेत् ।।४।।

तिल कूटनेवालों की जो गति होती है तथा काँसा कूटनेवालों की जो गति होती है, उसी गति को वह प्राप्त करे, जो धर्मभाणक का अपमान करता है ।

एवमुक्त्वा ताः कुन्तिप्रमुखा राक्षस्यो भगवन्तमेतदूचुः । वयमपि भगवंस्तेषामेवंरूपाणां धर्मभाणकानां रक्षां करिष्यामः स्वस्त्ययनं दण्डपरिहारं विप्रदूषणं करिष्याम इति । एवमुक्ते भगवांस्ता राक्षस्य एतदवोचत् । साधु साधु भगिन्यो यद् यूयं तेषां धर्मभाणकानां रक्षावरणगुप्तिं करिष्यध्वे येऽस्य धर्म-

पर्यायस्यान्तशो नामधेयमात्रमपि धारयिष्यन्ति। कः पुनर्वादो य इमं धर्मपर्यायं सकलसमाप्तं धारयिष्यन्ति पुस्तकगतं वा सत्कुर्युः पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावैजयन्तीभिस्तैलप्रदीपैर्वा घृतप्रदीपैर्वा गन्धतैलप्रदीपैर्वा चम्पकतैलप्रदीपैर्वा वार्षिकतैलप्रदीपैर्वोत्पलतैलप्रदीपैर्वा सुमनातैलप्रदीपैर्वं दृशैर्बहुविधैः पूजाविधानशतसहस्रैः सत्करिष्यन्ति गुरुकरिष्यन्ति ते त्वया कुन्ति सपरिवारया रक्षितव्याः।

ऐसा कहकर वे कुन्ती-प्रमुख राक्षसियाँ भगवान् से यह बोलीं कि हे भगवन्! हमलोग भी इस प्रकार के धर्मभाणकों की रक्षा करेंगी तथा (उनका) कल्याण, दण्डपरिहार एवं विषदूषण करेंगी। उनके ऐसा कहने पर भगवान् उन राक्षसियों से यह बोले—हे बहनो! बहुत अच्छा है। बहुत अच्छा है कि तुमलोग उन धर्मभाणकों की भी रक्षा, आवरण एवं गुप्ति करोगी, जो इस धर्मपर्याय को केवल नाममात्र को धारण करते हैं। फिर, उनलोगों का क्या, जो इस पूरे धर्मपर्याय को सम्पूर्ण रूप से धारण करेंगे या पुस्तकगत करके (उसका) आदर करेंगे अथवा पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका वैजयन्ती, तेल के दीपकों, घी के दीपकों, सुगन्धित तेल के दीपकों, चम्पक के तेल के दीपकों, वार्षिक तेल के दीपकों, कमल के तेल के दीपकों, सुमना तेल के दीपकों अथवा इस प्रकार के बहुविध सैकड़ों हजारों पूजन-प्रकारों से उसका सत्कार तथा आदर करेंगे। हे कुन्ति! तुम सपरिवार उनकी रक्षा करना।

अस्मिन् खलु पुनर्धारणीपरिवर्ते निर्दिश्यमान अष्टाषष्टीनां प्राणिसहस्राणामनुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिप्रतिलाभोऽभूत्।

इस धारणीपरिवर्त के निर्देशन के समय अड़सठ सहस्र प्राणियों को 'अनुत्पत्तिक धर्मक्षान्ति' की प्राप्ति हुई।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये धारणीपरिवर्तो
नामैकविंशतिमः ॥२१॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का इक्कीसवाँ धारणीपरिवर्त समाप्त हुआ।

◆

भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्त

अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत् । केन कारणेन भगवन् भैषज्यराजो बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽस्यां सहायां लोकधातौ प्रविचरति बहूनि चास्य भगवन् दुष्करकोटीनयुतशतसहस्राणि संदृश्यन्ते । तत् साधु भगवान् देशयतु तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो भैषज्यराजस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य यत्किंचिच्चर्याप्रदेशमात्रं यच्छ्रुत्वा देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्य स्तदन्यलोकधात्वागताश्च बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इमे च महाश्रावकाः श्रुत्वा सर्वे प्रीतास्तुष्टा उदग्रा आत्तमनसो भवेयुरिति ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ भगवान् से यह बोले—हे भगवन् ! महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज किस हेतु उस सहा नामक लोकधातु में विचरण करते हैं । तथा, हे भगवन् ! किस हेतु उनके कोटि नयुत शतसहस्र दुष्कर कर्म दिखलाई पड़ते हैं । अतः, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज की चर्या के किसी भी एक भाग की अच्छी तरह देशना करें, जिसको सुनकर देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य तथा मनुष्येतर (प्राणी) तथा (जिसको) सुनकर अन्य लोकधातुओं से आये हुए ये महासत्त्व बोधिसत्त्व एवं ये महाश्रावक सभी प्रसन्न तुष्ट, उदग्र तथा आत्तमना हो जायँ ।

अथ खलु भगवान् नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्याध्येषणां विदित्वा तस्यां वेलायां नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत् । भूतपूर्वं कुलपुत्रातीतेऽध्वनि गङ्गानदीवालिकासमैः कल्पैर्यदासीत्तेन कालेन तेन समयेन चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रीर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् । तस्य खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ भगवतश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रियस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्याशीतिकोट्यो बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां महासंनिपातोऽभूद् द्वासप्ततिगङ्गानदीवालिकासमाश्चास्य श्रावकसंनिपातोऽभूत् । अपगतमातृग्रामं च तत्प्रवचनमभूदपगतनिरयतिर्यग्योनिप्रेतासुरकायं समं रमणीयं पाणितलजातं च तद्बुद्धक्षेत्रमभूद् दिव्यवैडूर्यमयभूमिभागं रत्नचन्दनवृक्षसमलंकृतं च रत्नजालसमीरितं चावसक्तपट्टदामाभिप्रलम्बितं च रत्नगन्धघटिकानिर्धूपितं

च । सर्वेषु च रत्नवृक्षमूलेष्विषुक्षेपमानमात्रे रत्नव्योमकानि संस्थितान्यभूवन्न सर्वेषु च रत्नव्योमकमूर्घ्नेषु कोटीशतं देवपुत्राणां तूर्यताड़ावचरसंगीतिसंप्रभणितेनावस्थितमभूत्तस्य भगवतश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रियस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य पूजाकर्मणे । स च भगवानिमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं तेषां महाश्रावकाणां तेषां च बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां विस्तरेण संप्रकाशयति स्म सर्वसत्त्वप्रियदर्शनं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमधिष्ठानं कृत्वा । तस्य खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ भगवतश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रियस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य द्वाचत्वारिंशत्कल्पसहस्राण्यायुष्प्रमाणमभूत्तेषां च बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां तेषां च महाश्रावकाणां तावदेवायुष्प्रमाणमभूत् । स च सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्य भगवतः प्रवचने दुष्करचर्याभियुक्तोऽभूत् । स द्वादशा वर्षसहस्राणि चंक्रमाभिरूढ़ोऽभून्महावीर्यारम्भेण योगाभियुक्तोऽभूत् । स द्वादशानां वर्षसहस्राणामत्ययेन सर्वरूपसंदर्शनं नाम समाधिं प्रतिलभते स्म । सहप्रतिलम्भाच्च तस्य समाधेः स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तुष्ट उदग्र आत्तमनाः प्रमुदितः प्रीतिसौमनस्यजातस्तस्यां वेलायामेवं चिन्तयामास । इमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायमागम्यायं मया सर्वरूपसंदर्शनः समाधिः प्रतिलब्धः । तस्यां वेलायां स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्व एवं चिन्तयति स्म । यन्न्वहं भगवतश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रियस्तथागतस्य पूजां कुर्यामस्य च सद्धर्मपुण्डरीकस्य धर्मपर्यायस्य । स तस्यां वेलायां तथारूपं समाधिं समापन्नो यस्य समाधेः समनन्तरसमापन्नस्य सर्वसत्त्वप्रियदर्शनस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्याथ तावदेवोपर्यन्तरीक्षान्मान्दारवमहामान्दारवाणां पुष्पाणां महन्तं पुष्पवर्षमभिप्रवृष्टम् । कालानुसारिचन्दनमेघः कृत उरगसारचन्दनवर्षमभिप्रवृष्टम् । तादृशी च नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सा गन्धजातिर्यस्या एकः कर्ष इमां सहालोकधातुं मूल्यन्न क्षमति ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व भगवान् नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ की प्रार्थना को सुनकर उस समय महासत्त्व बोधिसत्त्व नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ से यह बोले—हे कुलपुत्र ! भूतपूर्व अतीत काल में गंगा नदी की बालुका के समान (असंख्य) कल्पों के पूर्व जो समय था, उस काल में उस समय चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री नाम से तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, ज्ञान एवं सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, दमनयोग्य पुरुषों के नियन्ता, देवों एवं मनुष्यों के शास्ता, भगवान् बुद्ध इस लोक में उत्पन्न हुए थे । पुनः, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! उन तथागत, अर्हत्, सम्यक सम्बुद्ध, भगवान् चन्द्रसूर्य-

विमलप्रभासश्री के निकट अस्सी करोड़ महासत्त्व बोधिसत्त्व का एक महान् समुदाय था तथा उनके निकट बहत्तर गंगा नदी की बालुका के समान असंख्य श्रावकों का भी एक समुदाय था। उनके प्रवचन में स्त्रियों को स्थान नहीं था। उनका बुद्धक्षेत्र नरक, तिर्यक् योनि, प्रेत एवं असुरों से रहित, चौरस, रमणीय तथा हथेली की तरह चिकना था। उसकी भूमि दिव्य वैदूर्य की बनी थी। वह रत्नवृक्षों एवं चन्दनवृक्षों से अलंकृत था। उसमें रत्न जड़े थे। उसमें लम्बे-लम्बे रेशमी फीते लटक रहे थे तथा वह रत्नों की बनी गन्ध-घटिकाओं से सुशोभित था। सभी रत्नवृक्षों के नीचे बाण के जाने भर की दूरी पर रत्नव्योमक (रत्ननिर्मित आकाशमहल) बने थे। उन सभी रत्न व्योमक की छत पर कोटि शत देवपुत्र, तूर्य एवं ताड़ के वादन, समवेत संगीत एवं कथोपकथन के द्वारा तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् चद्रसूर्यविमलप्रभासश्री के पूजनकार्य में निमग्न थे। उन भगवान् ने इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय का महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन को अधिष्ठान बनाकर उन महाश्रावकों तथा उन महासत्त्व बोधिसत्त्वों के सम्मुख विस्तारपूर्वक सम्प्रकाशन किया। पुनः, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री की आयु बयालीस सहस्र कल्पों की थी तथा महासत्त्व बोधिसत्त्वों एवं उन महाश्रावकों की आयु भी इतनी ही (लम्बी) थी। वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन उन भगवान् के शासन में (रहकर) कठोर चर्या में लगा हुआ था। वह बारह सहस्र वर्षों तक निरन्तर चलता रहा तथा महान् प्रयत्न के साथ योग (साधना) में अभियुक्त रहा। उसने बारह सहस्र वर्षों के बीतने पर 'सर्वरूपसन्दर्शन' नामक समाधि प्राप्त की। उस समाधि के प्राप्त करते ही वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन तुष्ट, उदग्र, आत्तमना एवं प्रमुदित हो उठा तथा उसके हृदय में प्रीति एवं सौमनस्य की उत्पत्ति हुई। उसने उस समय ऐसा सोचा---इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय का आश्रय लेकर मैंने यह सर्वरूपसन्दर्शन (नामक) समाधि प्राप्त की है। उस समय वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन इस प्रकार सोचने लगा कि मैं तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री तथा इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय की पूजा करूँ। उस समय उन्होंने वह समाधि प्राप्त की, जिस समाधि के प्राप्त करते ही महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन के ऊपर उसी क्षण आकाश से मान्दारव एवं महामान्दारव पुष्पों की महती वर्षा होने लगी। कालानुसारी चन्दन का मेघ बन गया तथा उरगसार चन्दन की वर्षा हुई। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! वह गन्ध ऐसी थी, जिसके एक कर्ष का मूल्य उस सहा (नामक) लोकधातु के (मूल्य के) बराबर है।

अथ खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः स्मृतिमान् संप्रजानंस्तस्मात् समाधेर्व्युदतिष्ठद् व्युत्थाय चैवं चिन्तयामास। न तदर्द्धिप्रातिहार्यसंदर्शनेन भगवतः पूजा कृता भवति यथात्मभावपरित्यागेनेति। अथ खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रिय-

दर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायामगरुतुरुष्ककुन्दुरुकरसं भक्षयति स्म चम्पकतैलं च पिबति स्म। तेन खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ पर्यायेण तस्य सर्वसत्त्वप्रियदर्शनस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य सततसमितं गन्धं भक्षयतश्चम्पकतैलं च पिबतो द्वादशवर्षाण्यतिक्रान्तान्यभूवन् । अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तेषां द्वादशानां वर्षाणामत्ययेन तं स्वमात्मभावं दिव्यैर्वस्त्रैः परिवेष्ट्य गन्धतैलप्लुतं कृत्वा स्वकर्माधिष्ठानमकरोत् स्वकमधिष्ठानं कृत्वा स्वं कायं प्रज्वालयामास तथागतस्य पूजाकर्मणेऽस्य च सद्धर्मपुण्डरीकस्य धर्मपर्यायस्य पूजार्थम् । अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ तस्य सर्वसत्त्वप्रियदर्शनस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य ताभिः कायप्रदीपप्रभाज्वालाभिरशीतिगङ्गानदीवालिकासमा लोकधातवः स्फुटा अभूवन् । तासु च लोकधातुष्वशीतिगङ्गानदीवालिकासमा एव बुद्धा भगवन्तस्ते सर्वे साधुकारं ददन्ति स्म । साधु साधु कुलपुत्र साधु खलु पुनस्त्वं कुलपुत्रायं स भूतो बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां वीर्यारम्भ इयं सा भूता तथागतपूजा धर्मपूजा । न तथा पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकापूजा नाप्यामिषपूजा नाप्युरगसारचन्दनपूजा । इयं तत्कुलपुत्राग्रप्रदानं न तथा राज्यपरित्यागदानं न प्रियपुत्रभार्यापरित्यागदानम् । इयं पुनः कुलपुत्र विशिष्टाग्रा वरा प्रवरा प्रणीता धर्मपूजा योऽयमात्मभावपरित्यागः। अथ खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ते बुद्धा भगवन्त इमां वाचं भाषित्वा तूष्णीमभूवन् ।

तदनन्तर, हे नक्षत्रराज संकुसुमिताभिज्ञ! वह स्मृतिसम्पन्न एवं ज्ञानवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन उस समाधि से उठा और उठकर उसने ऐसा सोचा—अलौकिक शक्ति (एवं) प्रातिहार्य को दिखलाकर भगवान् की वैसी पूजा सम्भव नहीं, जैसी पूजा अपने शरीर के परित्याग से (सम्भव) होती है। तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! तदनन्तर, वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन उस समय अगरु, तुरुष्क एवं कुन्दुरुक के रस को खाने लगा तथा चम्पक के तेल को पीने लगा। पुनः हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! उस क्रम से निरन्तर गन्ध का भक्षण करते हुए एवं चम्पक का तेल पीते हुए उन महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन को बारह वर्ष हो गये। तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन ने बारह वर्षों के व्यतीत होने के अनन्तर उस अपने शरीर को दिव्य वस्त्रों से परिवेष्टित करके तथा उसे गन्ध-तैल से सिक्त करके अपना अधिष्ठान किया तथा अपना अधिष्ठान करके तथागत के पूजन के लिए एवं सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय की पूजा के लिए अपने शरीर को प्रज्वलित कर (जला) दिया। तदनन्तर,

हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! उन महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन के शरीर की अग्नि की उन प्रकाशरश्मियों से अस्सी गंगा नदी की बालुका के समान (असंख्य) लोकधातुएँ प्रकाशित हो उठीं । उन लोकधातुओं से अस्सी गंगा नदी की बालुका के समान ही जो (असंख्य) भगवान् बुद्ध थे, वे सभी साधुवाद देने लगे । हे कुलपुत्र ! तुम धन्य हो, तुम धन्य हो । हे कुलपुत्र ! यही वह महासत्त्व बोधिसत्त्वों की वास्तविक शक्ति है, यही उस तथागत की सच्ची पूजा एवं धर्म की सच्ची पूजा है । पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज एवं पताका के द्वारा की गई पूजा, अन्य लौकिक वस्तुओं से की गई पूजा तथा उरगसार चन्दन के द्वारा की गई पूजा इसके समान (श्रेष्ठ) नहीं है । हे कुलपुत्र ! यही वह श्रेष्ठ दान है, इसके समान राज्य का दान एवं प्रियपुत्र तथा भार्या का भी दान नहीं है । हे कुलपुत्र ! जो यह अपने शरीर का परित्याग-रूप दान है, यही विशिष्ट, श्रेष्ठ वा प्रवर और प्रणीत धर्मपूजा है । तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! वे भगवान् बुद्ध यह बात कहकर चुप हो गये ।

तस्य खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सर्वसत्त्वप्रियदर्शनात्मभावस्य दीप्यतो द्वादश वर्षशतान्यतिक्रान्तान्यभूवन्न च प्रशमं गच्छति स्म । स पश्चाद्द्वादशानां वर्षशतानामत्ययात् प्रशान्तोऽभूत् । स खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्व एवंरूपां तथागतपूजां च धर्मपूजां च कृत्वा ततश्च्युतस्तस्यैव भगवतश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रियस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य प्रवचने राज्ञो विमलदत्तस्य गृह उपपन्न औपपादिक उत्सङ्गे पर्यङ्के प्रादुर्भूतोऽभूत् । समनन्तरोपपन्नश्च खलु पुनः स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायां स्वमातापितरौ गाथयाध्यभाषत ।

पुनः, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! उन सर्वसत्त्वप्रियदर्शन के शरीर के जलते बारह सौ वर्ष बीत गये, किन्तु उसकी (अग्नि) शान्त नहीं हुई । तत्पश्चात् बारह सौ वर्ष बीत जाने के अनन्तर ही वह अग्नि बुझी । पुनः, हे नक्षत्रराज संकुसुमिताभिज्ञ ! वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन इस प्रकार तथागत की पूजा (तथा) धर्म की पूजा करके वहाँ से च्युत होकर उन्हीं तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री के शासन में राजा विमलदत्त के घर उत्पन्न हुआ । पर्यंकासन की मुद्रा में विराजमान वह औपपादिक रूप से उत्पन्न हुआ था । उत्पन्न होते ही वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन उस समय अपने माता-पिता से इस गाथा द्वारा बोला—

अयं ममा चंक्रमु राजश्रेष्ठ यस्मिन् मया स्थितव समाधि लब्धः ।
वीर्यं दृढं आरभितं महाव्रतं परित्यजित्वा प्रियमात्मभावम् ॥१॥

हे राजश्रेष्ठ ! यह मेरा चंक्रम (भ्रमण-भूमि) है, जिसपर स्थित होकर मैंने समाधि प्राप्त की है तथा अपने प्रिय शरीर को छोड़कर बल एवं दृढता के साथ महान् व्रत का आरम्भ किया है ।

अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्व इमां गाथां भाषित्वा स्वमातापितरावेतदवोचत् । अद्याप्यम्ब तात स भगवांश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रीस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध एतर्हि तिष्ठति ध्रियते यापयति धर्मं देशयति यस्य मया भगवतश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रियस्तथागतस्य पूजां कृत्वा सर्वरुतकौशल्यधारणी प्रतिलब्धायं च सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायोऽशीतिभिर्गाथाकोटीनयुतशतसहस्रैः कङ्करैश्च विवरैश्चाक्षोभ्यैश्च तस्य भगवतोऽन्तिकाच्छ्रुतोऽभूत् । साध्वम्ब तात गमिष्याम्यहं तस्य भगवतोऽन्तिकं तस्मिश्च गत्वा भूयस्तस्य भगवतः पूजां करिष्यामीति । अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायां सप्ततालमात्रं वैहायसमभ्युद्गम्य सप्तरत्नमये कूटागारे पर्यङ्कमाभुज्य तस्य भगवतः सकाशमुपसंक्रान्त उपसंक्रम्य तस्य भगवतः पादौ शिरसाभिवन्द्य तं भगवन्तं सप्तकृत्वः प्रदक्षिणीकृत्य येन स भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणाम्य तं भगवन्तं नमस्कृत्वानया गाथयाभिष्टौति स्म ।

तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन इस गाथा को कहकर अपने माता-पिता यह बोला—हे माता ! हे पिता ! आज भी वे तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री इसी प्रकार स्थित हैं, वर्त्तमान हैं, (काल) यापन करते हैं तथा धर्म की देशना करते हैं । जिन तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री की पूजा करके मैंने सर्वसत्त्वकौशल्यधारणी प्राप्त की है तथा जिन भगवान् के निकट (रहकर) मैंने अस्सी कोटीनयुत शतसहस्र गाथाओं, कंकरों, विवरों एवं अक्षोभ्यों से युक्त सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय सुना है । हे माता ! हे पिता ! मैं उन भगवान् के निकट जाऊँगा और वहाँ जाकर पुनः उन भगवान् की पूजा करूँगा । तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन उस समय सात ताल के बराबर आकाश में ऊँचा उठकर सप्तरत्नमय कूटागार पर पर्यंकासन की मुद्रा में बैठकर उन भगवान् के पास गया और निकट जाकर उसने उन भगवान् के चरणों में शिरसाभिवादन करके तथा उन भगवान् की सात बार प्रदक्षिणा करके जिधर भगवान् थे, उस ओर प्रणाम करके हाथ जोड़कर इस गाथा के द्वारा स्तुति की—

सुविमलवदना नरेन्द्र धीरा तव प्रभ राजतियं दशद्दिशासु ।
तुभ्य सुगत कृत्व अग्रपूजां अहमिह आगतु नाथ दर्शनाय ॥२॥

हे नरेन्द्र! तुम्हारी यह अत्यन्त निर्मल एवं स्थिर प्रभा दसों दिशाओं में सुशोभित हो रही है। हे सुगत! हे नाथ! यहाँ मैं तुम्हारी अग्रपूजा करके (तुम्हारे) दर्शन के लिए आया हूँ।

अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायामिमां गाथां भाषित्वा तं भगवन्तं चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रियं तथागतमर्हन्तं सम्यक्सम्बुद्धमेतदवोचत्। अद्यापि त्वं भगवंस्तिष्ठसि। अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स भगवांश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रीस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तं सर्वसत्त्वप्रियदर्शनं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत्। परिनिर्वाणकालसमयो मे कुलपुत्रानुप्राप्तः क्षयान्तकालो मे कुलपुत्रानुप्राप्तस्तद् गच्छ त्वं कुलपुत्र मम मञ्चं प्रज्ञपयस्व परिनिर्वायिष्यामीति अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स भगवांश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रीस्तथागतस्तं सर्वसत्त्वप्रियदर्शनं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत्। इदं च ते कुलपुत्र शासनमनुपरिन्दामीमांश्च बोधिसत्त्वान्महासत्त्वानिमांश्च महाश्रावकानिमां च बुद्धबोधिमिमां च लोकधातुमिमानि च रत्नव्योमकानीमानि च रत्नवृक्षाणीमांश्च देवपुत्रान्ममोपस्थायकाननुपरिन्दामि। परिनिर्वृतस्य च मे कुलपुत्र ये धातवस्ताननुपरिन्दामि। आत्मना च त्वया कुलपुत्र मम धातूनां विपुला पूजा कर्त्तव्या वैस्तारिकाश्च ते धातवः कर्तव्याः स्तूपानां च बहूनि सहस्राणि कर्त्तव्यानि। अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स भगवांश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रीस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तं सर्वसत्त्वप्रियदर्शनं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेवमनुशिष्य तस्यामेव रात्र्यां पश्चिमे यामेऽनुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृतोऽभूत्।

तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन उस समय इस गाथा को कहकर उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री से यह बोला—हे भगवन्! आज भी तुम वर्त्तमान हो। तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! वह तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्व प्रियदर्शन से यह बोले—हे कुलपुत्र! मेरे परिनिर्वाण का समय निकट आ गया है। हे कुलपुत्र! मेरे क्षयान्त का समय निकट आ गया है। हे कुलपुत्र! तुम जाओ। मेरे लिए मंच तैयार कराओ, मैं परिनिर्वाण प्राप्त करूँगा। तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! वे तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री उन महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन से यह बोले—हे कुलपुत्र! मैं इस शासन की रक्षा का भार तुम्हें देता हूँ तथा इन महासत्त्व बोधिसत्त्वों, इन महाश्रावकों, इस बुद्धबोधि, इस लोकधातु, इन रत्नव्योमकों, इन रत्न-

वृक्षकों, इन देवपुत्रों तथा इन अनुचरों को भी तुम्हारे जिम्मे देता हूँ। हे कुलपुत्र ! तुम स्वयं मेरे धातुओं की महती पूजा करना तथा उन धातुओं को विस्तृत करना और अनेक सहस्र स्तूपों का निर्माण कराना। तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन को इस प्रकार अनुशासन देकर उसी रात्रि के अन्तिम याम में अनुपधिशेष निर्वाणधार में परिनिर्वृतु हो गये।

अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तं भगवन्तं चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रियं तथागतं परिनिर्वृतं विदित्वोरगसारचन्दनचितां कृत्वा तं तथागतात्मभावं संप्रज्वालयामास। दग्धं निशान्तं च तथागतात्मभावं विदित्वा ततो धातून् गृहीत्वा रोदति क्रन्दति परिदेवते स्म। अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो रुदित्वा क्रन्दित्वा परिदेवित्वा सप्तरत्नमयानि चतुरशीतिकुम्भसहस्राणि कारयित्वा तेषु तांस्तथागतधातून् प्रक्षिप्य सप्तरत्नमयानि चतुरशीतिस्तूपसहस्राणि प्रतिष्ठापयामास यावद् ब्रह्मलोकमुच्चैस्त्वेन छत्रावलीसमलंकृतानि पट्टघण्टासमीरितानि च। स तान् स्तूपान् प्रतिष्ठाप्यैवं चिन्तयामास। कृता मया तस्य भगवतश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रियस्तथागतस्य धातूनां पूजा अतश्च भूय उत्तरिविशिष्टतरां तथागतधातूनां पूजां करिष्यामीति। अथ खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तं सर्वावन्तं बोधिसत्त्वगणं तांश्च महाश्रावकांस्तांश्च देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यगणानामन्त्रयामास। सर्वे यूयं कुलपुत्राः समन्वाहरध्वं तस्य भगवतो धातूनां पूजां करिष्याम इति। अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायां तेषां चतुरशीतीनां तथागतधातुस्तूपसहस्राणां पुरस्ताच्छतपुण्यविचित्रितं स्वं बाहुमादीपयामासादीप्य च द्वासप्ततिवर्षसहस्राणि तेषां तथागतधातुस्तूपानां पूजामकरोत्। पूजां च कुर्वता तस्याः पर्षदोऽसंख्येयानि श्रावककोटीनयुतशतसहस्राणि विनीतानि सर्वैश्च तैर्बोधिसत्त्वैः सर्वरूपसंदर्शनसमाधिः प्रतिलब्धोऽभूत्।

तत्पश्चात्, हे नक्षत्रराज संकुसुमिताभिज्ञ ! उस समय महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन ने उन तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री को परिनिर्वृत जानकर उरगसागर चन्दन की चिता बनाकर तथागत के उस शरीर को जला दिया। जब तथागत का शरीर जलकर राख हो गया, तब वह धातुओं को लेकर रोने लगा, क्रन्दन करने लगा एवं परिदेवन करने लगा। तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! उन महासत्त्व

बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन ने रोने, क्रन्दन करने (एवं) परिदेवन करने के अनन्तर सप्तरत्नमय चौरासी सहस्र स्तूप प्रतिष्ठित किये, जो ब्रह्मलोक तक ऊँचे, छत्रावलियों से अलंकृत एवं घण्टा की लड़ियों से युक्त थे। उसने उन स्तूपों को बनवाकर ऐसा सोचा—मैंने उन तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री के धातुओं की (साधारण) पूजा की है। अतः, अब पुनः तथागत के धातुओं की श्रेष्ठ एवं विशिष्ट पूजा करूँगा। तदनन्तर हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन ने उस सम्पूर्ण बोधिसत्त्वगण, उन महाश्रावकों तथा उन देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य तथा मनुष्येतर के गणों से कहा—हे कुलपुत्रो! तुम सभी एकत्र हो जाओ! मैं उन भगवान् के धातुओं की पूजा करूँगा। तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! उन महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन ने उस समय उन चौरासी सहस्र तथागत के धातुस्तूपों के सामने सौ पवित्र लक्षणों से युक्त अपने हाथ को जलाया और जलाकर बहत्तर सहस्र वर्ष तक तथागत के उन धातुस्तूपों की पूजा की। पूजा करते हुए उसने उस परिषद् के असंख्य कोटीनयुत शतसहस्र श्रावकों को विनीत कर लिया और उन सभी बोधिसत्त्वों ने सर्वरूपसन्दर्शन (नामक) समाधि प्राप्त कर ली।

अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वावान् बोधिसत्त्वगणस्ते च सर्वे महाश्रावकास्तं सर्वसत्त्वप्रियदर्शनं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमङ्गहीनं दृष्ट्वा अश्रुमुखा रुदन्तः क्रन्दन्तः परिदेवमानाः परस्परमेतदूचुः। अयं सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽस्माकमाचार्योऽनुशासकः सोऽयं सांप्रतमङ्गहीनो बाहुहीनः संवृत्त इति। अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तान् बोधिसत्त्वांस्तांश्च महाश्रावकांस्तांश्च देवपुत्रानामन्त्रयामास। मा यूयं कुलपुत्रा मामङ्गहीनं दृष्ट्वा रुदत मा क्रन्दत मा परिदेवध्वम्। एषोऽहं कुलपुत्रा ये केचिद्दशसु दिक्ष्वनन्तापर्यन्तासु लोकधातुषु बुद्धा भगवन्तस्तिष्ठन्ति ध्रियन्ते यापयन्ति तान् सर्वान् बुद्धान् भगवतः साक्षिणः कृत्वा। तेषां पुरतः सत्याधिष्ठानं करोमि येन सत्येन सत्यवचनेन स्वं मम बाहुं तथागतपूजाकर्मणे परित्यज्य सुवर्णवर्णो मे कायो भविष्यति तेन सत्येन सत्यवचनेनायं मम बाहुर्यथा पौराणो भवित्वियं च महापृथिवी षड्विकारं प्रकम्पत्वन्तरीक्षगताश्च देवपुत्रा महापुष्पवर्षं प्रवर्षन्तु। अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ समनन्तरकृतेऽस्मिन् सत्याधिष्ठाने तेन सर्वसत्त्वप्रियदर्शनेन बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेनाथ खल्वियं त्रिसाहस्रमहासाहस्री लोकधातुः षड्विकारं प्रकम्पित उपर्यन्तरीक्षाच्च महापुष्पवर्षमभिप्रवर्षितम्। तस्य च सर्वसत्वप्रियदर्शनस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य स बाहुर्यथा पौराणः संस्थितोऽभूद् यदुत

तस्यैव बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य ज्ञानबलाधानेन पुण्यबलाधानेन च। स्यात् खलु पुनस्ते नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ काङ्क्षा वा विमतिर्वा विचिकित्सा वान्यः स तेन कालेन तेन समयेन सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽभूत्। न खलु पुनस्ते नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञैवं द्रष्टव्यम्। तत् कस्य हेतोः। अयं स नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ भैषज्यराजो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तेन कालेन तेन समयेन सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽभूत्। इयन्ति नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ भैषज्यराजो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो दुष्करकोटीनयुतशतसहस्राणि करोत्यात्मभावपरित्यागांश्च करोति। बहुतरं खल्वपि स नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितः कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वेमामनुत्तरां सम्यक्संबोधिमाकाङ्क्षमाणो यः पादाङ्गुष्ठं तथागतचैत्येष्वादीपयेदेकां हस्ताङ्गुलिं पादाङ्गुलिं वैकाङ्गं वा बाहुमादीपयेद् बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितः स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा बहुतरं पुण्याभिसंस्कारं प्रसवति न त्वेव राज्यपरित्यागान्न प्रियपुत्रदुहितृभार्यापरित्यागान्न त्रिसाहस्रमहासाहस्रीलोकधातोः सवनसमुद्रपर्वतोत्ससरस्तडागकूपारामायाः परित्यागात्। यश्च खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितः कुलदुत्रो वा कुलदुहिता वेमां त्रिसाहस्रमहासाहस्रीं लोकधातुं सप्तरत्नपरिपूर्णां कृत्वा सर्वबुद्धबोधिसत्त्वश्रावकप्रत्येकबुद्धेभ्यो दानं दद्यात् स नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा तावत् पुण्यं प्रसवति यावत् स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा यः इतः सद्धर्मपुण्डरीकाद्धर्मपर्यायादन्तशश्चतुष्पादिकामपि गाथां धारयेत्। इमं तस्य बहुतरं पुण्याभिसंस्कारं वदामि न त्वेवेमां त्रिसाहस्रमहासाहस्रीं लोकधातुं सप्तरत्नपरिपूर्णां कृत्वा दानं ददतस्तस्य सर्वबुद्धबोधिसत्त्वश्रावकप्रत्येकबुद्धेभ्यः।

तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! वह सम्पूर्ण बोधिसत्त्वगण तथा वे सभी महाश्रावक उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन को अंगहीन देखकर आँखों में आँसू भरकर रोते हुए, क्रन्दन करते हुए और परिदेवन करते हुए परस्पर कहने लगे—यह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन जो हमारे आचार्य एवं अनुशासक थे, वे इस समय अंगहीन, बाहुहीन हो गये हैं। तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन उन बोधिसत्त्वों, उन महाश्रावकों तथा उन देवपुत्रों से बोला—हे कुलपुत्रो ! तुमलोग मुझे अंगहीन देखकर रुदन मत करो, क्रन्दन मत करो, परिदेवन मत करो। हे कुलपुत्रो! दसों दिशाओं में, अनन्त लोकधातुओं में जो भी भगवान् बुद्ध स्थित हैं, वर्त्तमान हैं एवं कालयापन करते हैं, उन सभी भगवान् बुद्धों को साक्षी बनाकर यह मैं उनके सामने सत्याधिष्ठान कर रहा हूँ, जिस सत्याधिष्ठान से,

सत्य वचन से मेरे इस अपने हाथ को तथागत की पूजा में लगा देने पर मेरा शरीर सुवर्ण के वर्ण का हो जायगा। उस सत्य से, उस सत्य वचन से मेरा यह हाथ पूर्ववत् हो जाय(गा) और यह महापृथ्वी छह प्रकार से काँप उठे (गी) तथा आकाश में स्थित देवता लोग फूलों की महती वर्षा करें (गे)! तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन के इस सत्याधिष्ठान के करते ही यह त्रिसाहस्र महासाहस्री लोकधातु छह प्रकार से काँप उठी और ऊपर आकाश से फूलों की महती वर्षा हुई। उन महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन की वह भुजा भी उन्हीं महासत्त्व बोधिसत्त्व के ज्ञानबल के प्रभाव से तथा पुण्यबल के प्रभाव से पूर्ववत् ठीक हो गई। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! तुम्हें ऐसी कांक्षा, विमति या विचिकित्सा हो सकती है कि उस समय, उस काल में, महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन कोई दूसरा व्यक्ति था। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! तुम्हें ऐसा नहीं सोचना चाहिए। ऐसा क्यों (नहीं सोचना चाहिए)? (यतः) हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! यही वह महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज उस काल में, उस समय, महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन था। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज इतने कोटीनयुत शतसहस्र कठोर कार्यों को करते हैं और अपने शरीरों का परित्याग करते हैं। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! बोधिसत्त्वयान में स्थित कुलपुत्र या कुलकन्या उस श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की इच्छा करता हुआ इससे भी अधिक दुष्कर कर्म करता है, जो तथागत के चैत्यों में, पैर के अंगूठे को जलाये, हाथ की एक उँगली, पैर की एक उँगली, शरीर का एक अंग या हाथ को जलाये। बोधिसत्त्वयान में सम्प्रस्थित वह कुलपुत्र या कुलकन्या बहुत अधिक पुण्य उत्पन्न करती है। ऐसा पुण्य राज्य के त्याग के द्वारा अपने प्रिय पुत्र, कन्या एवं भार्या के त्याग द्वारा तथा वन, समुद्र, पर्वत, झरना, सर, तडाग, कूप और उपवन से युक्त त्रिसाहस्र महासाहस्री लोकधातु के त्याग के द्वारा भी नहीं प्राप्त होता। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! जो बोधिसत्त्वयान में सम्प्रस्थित कुलपुत्र या कुलकन्या इस त्रिसाहस्र महासाहस्री लोकधातु को सात रत्नों से परिपूर्ण करके सभी बोधिसत्त्वों, श्रावकों एवं प्रत्येकबुद्धों को दान कर दे, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! वह कुलपुत्र या कुलकन्या (भी) इतना पुण्य नहीं प्राप्त करती, जितना वह कुलपुत्र या कुलकन्या (प्राप्त करती है), जो इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय से एक भी चतुष्पदी गाथा को धारण करे। मैं स्पष्ट कहता हूँ कि इसकी (बादवाले की) पुण्यराशि त्रिसाहस्र महासाहस्री लोकधातु को सात रत्नों से परिपूर्ण करके सब बुद्धों, बोधिसत्त्वों, श्रावकों एवं प्रत्येकबुद्धों को दान देनेवाले व्यक्ति की (पुण्यराशि की) अपेक्षा अधिक है।

तद् यथापि नाम नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सर्वेषामुत्ससरस्तडागानां महासमुद्रो मूर्धप्राप्तः। एवमेव नक्षत्रराजसंकुमिताभिज्ञ सर्वेषां तथागतभाषितानां सूत्रान्तानामयं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायो मूर्धप्राप्तः। तद् यथापि नाम नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सर्वेषां कालपर्वतानां चक्रवाडानां

महाचक्रवाडानां च सुमेरुः पर्वतराजो मूर्धप्राप्तः । एवमेव नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः सर्वेषां तथागतभाषितानां सूत्रान्तानां राजा मूर्धप्राप्तः । तद् यथापि नाम नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सर्वेषां नक्षत्राणां चन्द्रमाः प्रभाकरोऽग्रप्राप्तः । एवमेव नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सर्वेषां तथागतभाषितानां सूत्रान्तानामयं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायश्चन्द्रकोटीनयुतशतसहस्रातिरेकप्रभाकरोऽग्रप्राप्तः । तद् यथापि नाम नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सूर्यमण्डलं सर्वं तमोऽन्धकारं विधमति । एवमेव नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः सर्वाकुशलतमोऽन्धकारं विधमति । तद् यथापि नाम नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ त्रार्यस्त्रिंशानां देवानां शक्रो देवानामिन्द्रः । एवमेव नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः सर्वेषां तथागतभाषितानां सूत्रान्तानामिन्द्रः । तद् यथापि नाम नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ब्रह्मा सहांपतिः सर्वेषां ब्रह्मकायिकानां देवानां राजा ब्रह्मलोके पितृकार्यं करोति । एवमेव नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः सर्वेषां सत्त्वानां शैक्षाशैक्षाणां च सर्वश्रावकाणां प्रत्येकबुद्धानां बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितानां च पितृकार्यं करोति। तद् यथापि नाम नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सर्वबालपृथग्जनानतिक्रान्तः स्रोत आपन्नः सकृदागाम्यनागाम्यर्हत्प्रत्येकबुद्धश्च । एवमेव नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः सर्वास्तथागतभाषितान् सूत्रान्तानतिक्रम्याभ्युद्गतो मूर्धप्राप्तो वेदितव्यः । तेऽपि नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सत्त्वा मूर्धप्राप्ता वेदितव्य या खल्विमं सूत्रराजं धारयिष्यन्ति तद् यथापि नाम नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धानां बोधिसत्त्वोऽग्र आख्यायते । एवमेव नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः सर्वेषां तथागतभाषितानां सूत्रान्तानामग्र आख्यायते । तद् यथापि नाम नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सर्वेषां श्रावकप्रत्येकबुद्धबोधिसत्त्वानां तथागतो धर्मराजः पट्टबद्धः । एवमेव नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायस्तथागतभूतो बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितानाम् । त्राता खल्वपि नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः सर्वसत्त्वानां सर्वभयेभ्यो विमोचकः सर्वदुःखेभ्यः । तडाग इव तृषितानामग्निरिव शीतार्तानां चैलमिव नग्नानां सार्थवाह इस वणिजानां मातेव पुत्राणां नौरिव पारगामिनां वैद्य इवातुराणां दीप इस तमोऽन्धकारावृतानां रत्नमिव धनार्थिनां चक्रवर्तीव सर्वकोट्टराजानां समुद्र इस सरितामुल्केव सर्वतमोऽन्धकार-

विधमनाय । एवमेव नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः । सर्वदुःखप्रमोचकः सर्वव्याधिच्छेदकः सर्वसंसारभयबन्धनसंकटप्रमोचकः । येन चायं नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः श्रुतो भविष्यति यश्च लेखयति । एषां नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ पुण्याभिसंस्काराणां बौद्धेन ज्ञानेन न शक्यं पर्यन्तोऽधिगन्तुम् । यावन्तं पुण्याभिसंस्कारं स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा प्रसविष्यति । य इमं धर्मपर्यायं धारयित्वा वाचयित्वा वा देशयित्वा वा श्रुत्वा वा लिखित्वा वा पुस्तकगतं वा कृत्वा सकुर्यात्द् गुरुकुर्यान्मानयेत् पूजयेत् पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावैजयन्तीभिर्वाद्यवस्त्राञ्जलिकर्मभिर्वा घृतप्रदीपैर्वा गन्धतैलप्रदीपैर्वा चम्पकतैलप्रदीपैर्वा सुमनातैलप्रदीपैर्वा पाटलतैलप्रदीपैर्वा वार्षिकतैलप्रदीपैर्वा नवमालिकातैलप्रदीपैर्वा बहुविधाभिश्च पूजाभिः सत्कारं कुर्याद् गुरुकारं कुर्यात् माननां कुर्यात् पूजनां कुर्यात् ।

हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! जिस प्रकार सभी झरनों, सरोवरों एवं तडागों में महासमुद्र श्रेष्ठ है, उसी प्रकार हे नक्षत्रराज संकुसुमिताभिज्ञ ! तथागत के द्वारा कहे गये सभी सूत्रान्तों में यह सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्यायि श्रेष्ठ है। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! जिस प्रकार सभी कालपर्वतों, चक्रवाडों एवं महाचक्रवाडों में पर्वतराज सुमेरु श्रेष्ठ है, उसी प्रकार हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! तथागत के द्वारा कहे गये सभी सूत्रान्तों में यह सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय राजा एवं सर्वश्रेष्ठ है । हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! जिस प्रकार सभी नक्षत्रों में प्रभाकर चन्द्रमा श्रेष्ठ है, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! उसी प्रकार तथागतों द्वारा कहे गये सभी सूत्रान्तों में यह कोटीनयुत शतसहस्र चन्द्रमाओं से अधिक प्रकाशपूर्ण सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय श्रेष्ठ है । हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! जिस प्रकार सूर्यमण्डल सम्पूर्ण तम, अन्धकार को नष्ट कर देता है, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! उसी प्रकार यह सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय सभी अमंगल-रूप तम, अन्धकार को नष्ट कर देता है । हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! जिस प्रकार त्रायस्त्रिंश देवों में शक्र (सभी) देवों में श्रेष्ठ हैं, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! उसी प्रकार यह सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय तथागतों के द्वारा कहे गये सभी सूत्रान्तों में श्रेष्ठ है । हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! जिस प्रकार सहाम्पति ब्रह्मा सभी ब्रह्मकायिक देवों के राजा हैं और ब्रह्मलोक में (सभी के) पिता का काम करते हैं, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! उसी प्रकार यह सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय सभी शैक्ष एवं अशैक्ष प्राणियों, सभी श्रावकों, प्रत्येकबुद्धों एवं बोधिसत्त्वयान में सम्प्रस्थित (बोधिसत्त्वों) के पिता का काम करता है । हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! जिस प्रकार स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत् एवं प्रत्येकबुद्ध सब मूर्ख एवं पृथक् जनों से श्रेष्ठ हैं ।

हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! उसी प्रकार उस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय को तथागतों के द्वारा कहे गये सभी सूत्रान्तों के परे एवं श्रेष्ठ समझना चाहिए। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! उन प्राणियों को भी श्रेष्ठ समझना चाहिए, जो इस सूत्रराज को धारण करेंगे। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! जिस प्रकार सभी श्रावकों एवं प्रत्येकबुद्धों में बोधिसत्त्व श्रेष्ठ समझा जाता है, उसी प्रकार हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! यह सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय तथागतों के द्वारा कहे गये सभी सूत्रान्तों में श्रेष्ठ कहा जाता है। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! जिस प्रकार सब श्रावकों, प्रत्येकबुद्धों एवं बोधिसत्त्वों में तथागत धर्मराज श्रेष्ठ हैं, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! उसी प्रकार यह सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय बोधिसत्त्वयान में सम्प्रस्थित लोगों के लिए तथागत के समान (श्रेष्ठ) है। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! यह सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय सब प्राणियों की, सब भयों से रक्षा करनेवाला तथा सब दुःखों से मुक्त करनेवाला है। जैसे, तडाग तृषार्त्तों का (रक्षक) है, अग्नि शीतार्त्तों का (रक्षक) है, वस्त्र नग्न व्यक्तियों का (रक्षक) है, सार्थवाह वणिजों का (रक्षक) है, माता पुत्रों की (रक्षिका) है, नौका पार जानेवालों का (रक्षक) है, वैद्य रोगियों का रक्षक है, दीपक तम, अन्धकार से आवृत स्थानों के लिए (उपयोगी) है, रत्न धनार्थियों के लिए (आवश्यक) हैं, चक्रवर्ती सब कोट्टराजाओं का (रक्षक) है, समुद्र नदियों का (आश्रय) है तथा उल्का सब तम, अन्धकार का नाशक है, उसी प्रकार हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! यह सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय सब दुःखों से मुक्त करनेवाला, सब रोगों को नष्ट करनेवाला एवं संसार के सब भय-बन्धन एवं कष्टों से छुटकारा दिलानेवाला है। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! जो इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय को सुनता है, जो लिखता है और लिखाता है, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! उसकी पुण्यराशि का अन्त पाना बौद्ध (बुद्धि द्वारा प्राप्त) ज्ञान के द्वारा सम्भव नहीं है। इतनी ही पुण्यराशि वह कुलपुत्र या कुलकन्या उत्पन्न करेगी, जो इस धर्मपर्याय का धारण द्वारा वाचन द्वारा, देशना द्वारा, श्रवण द्वारा, लेखन द्वारा (पूजन करे) या उसे पुस्तकगत करके (उसका) सत्कार करे, आदर करे, सम्मान करे या पूजा करे अथवा पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका, वैजयन्ती, वाद्य, वस्त्र, अंजलिकर्म, घृत, प्रदीप, गन्ध, तैलप्रदीप, चम्पकतैलप्रदीप, नवमालिकातैलप्रदीप, सुमनातैलप्रदीप, पाटलतैलप्रदीप, वार्षिकतैलप्रदीप आदि के द्वारा तथा अन्य बहुविध पूजाओं के द्वारा (इस सद्धर्मपर्याय का) सत्कार करे, आदर करे, सम्मान करे, पूजन करे।

बहु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितः कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा प्रसविष्यति य इमं भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्तं धारयिष्यति वाचयिष्यति श्रोष्यति। सचेत् पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ मातृग्राम इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वोद्ग्रहीष्यति धारयिष्यति तस्य स एव पश्चिमः स्त्रीभावो

भविष्यति । यः कश्चिन्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञेमं भषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्तं पश्चिमायां पञ्चाशत्यां श्रुत्वा मातृग्रामः प्रतिपत्स्यते स खल्वतश्च्युतः सुखावत्यां लोकधातावुपपत्स्यते । यस्यां स भगवानमितायुस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो बोधिसत्त्वगणपरिवृतस्तिष्ठति ध्रियते यापयति । स तस्यां पद्मगर्भे सिंहासने निषण्ण उपपत्स्यते न च तस्य रागो व्याबाधिष्यते न द्वेषो न मोहो न मानो न मात्सर्यं न क्रोधो न व्यापादः । सहोपपन्नश्च पञ्चाभिज्ञाः प्रतिलप्स्यत अनुत्पत्तिकधर्मक्षान्ति च प्रतिलप्स्यते । अनुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिप्रतिलब्धः स खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ बोधिसत्त्वो महासत्त्वो द्वासप्ततिगङ्गानदीवालिकासमांस्तथागतान् द्रक्ष्यति । तादृशं चास्य चक्षुरिन्द्रियं परिशुद्धं भविष्यति येन चक्षुरिन्द्रियेण परिशुद्धेन तान् बुद्धान् भगवतो द्रक्ष्यति । ते चास्य बुद्धा भगवन्तः साधुकारमनुप्रदास्यन्ति । साधु साधु कुलपुत्र यत्त्वया सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं श्रुत्वा तस्य भगवतः शाक्यमुनेस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य प्रवचन उद्दिष्टं स्वाध्यायितं भावितं चिन्तितं मनसिकृतं परसत्त्वानां च संप्रकाशितम् । अयं ते कुलपुत्र पुण्याभिसंस्कारो न शक्यमग्निना दग्धुं नोदकेन हर्तुम् । अयं ते कुलपुत्र पुण्याभिसंस्कारो न शक्यं बुद्धसहस्रेणापि निर्देष्टुम् । विहतमारप्रत्यर्थिकस्त्वं कुलपुत्रोत्तीर्णभयसंग्रामो । मर्दितशत्रुकण्टकः । बुद्धशतसहस्राधिष्ठितोऽसि । न तव कुलपुत्र सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सश्रमणब्राह्मणिकायां प्रजायां सदृशो विद्यते तथागतमेकं विनिर्मुच्य । नान्यः कश्चिच्छ्रावको वा प्रत्येकबुद्धो वा बोधिसत्त्वो वा यस्त्वां शक्तः पुण्येन वा प्रज्ञया वा समाधिना वाभिभवितुम् । एवं ज्ञानबलाधानप्राप्तः स नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ बोधिसत्त्वो भविष्यति ।

हे नक्षत्रराज संकुसुमिताभिज्ञ ! बोधिसत्त्वयान में सम्प्रस्थित वह कुलपुत्र या कुलकन्या प्रभूत (पुण्य) उत्पन्न करेगी, जो इस भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्त्त को धारण करेगी, पढ़ेगी तथा सुनेगी । हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! यदि कोई स्त्री इस धर्मपर्याय को सुनकर (इसे) ग्रहण करेगी एवं धारण करेगी, तो उसका यह स्त्रीशरीर अन्तिम स्त्री शरीर होगा । हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! जो कोई स्त्री इस भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्त्त को अन्तिम पाँच सौ वर्षों में सुनकर इसका आदर करेगी, वह वहाँ से च्युत होकर सुखावती (नामक) लोकधातु में उत्पन्न होगी । जिसमें बोधिसत्त्वों के गण से परिवृत तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् अमितायु रहते हैं, विराजते हैं एवं (समय) यापन करते हैं । वह उसमें कमल के गर्भ में सिंहासन पर बैठी हुई उत्पन्न होगी और उसे न राग बाधित करेगा, न द्वेष, न मोह, न मान, न मात्सर्य, न क्रोध और न मृत्यु ही बाधित करेगी । वह उत्पन्न होते ही पाँच अभिज्ञाएँ प्राप्त करेगी एवं अनुत्पत्तिक धर्मक्षान्ति

प्राप्त करेगी। प्राप्त करते ही वह महासत्त्व बोधिसत्त्व का रूप धारण करके बहत्तर गंगा नदियों की बालुका के समान (असंख्य) तथागतों को देखेगी। उसकी दृष्टि इतनी परिशुद्ध होगी कि वह उस परिशुद्ध दृष्टि से उन भगवान् बुद्धों को देखेगी। वे भगवान् बुद्ध उसे साधुवाद देंगे। हे कुलपुत्र! तुमने बहुत अच्छा किया है, जो उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध शाक्यमुनि के शासन में, सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय को सुनकर इसे पढ़ा, समझा, सोचा एवं मन में धारण किया है तथा इसे दूसरे प्राणियों के सम्मुख प्रकाशित किया है। हे कुलपुत्र! तुम्हारी यह पुण्यराशि न तो अग्नि के द्वारा जलाई जा सकती है, और न जल के द्वारा बहाई जा सकती है। हे कुलपुत्र! तुम्हारी इस पुण्यराशि का निर्देशन हजार बुद्धों के द्वारा भी सम्भव नहीं है। हे कुलपुत्र! तुमने दुष्ट मार को परास्त कर दिया है, भयों को पार कर लिया है एवं कण्टकरूप शत्रुओं का मर्दन कर दिया है। शतसहस्र बुद्ध तुम्हारी रक्षा कर रहे हैं। हे कुलपुत्र! देवों, मारों एवं ब्रह्माओं से युक्त इस लोक में तथा श्रमण एवं ब्राह्मणों से युक्त उस प्रजा में एक तथागत को छोड़कर तुम्हारे समान कोई नहीं है। कोई भी दूसरा श्रावक, प्रत्येकबुद्ध या बोधिसत्त्व ऐसा नहीं है, जो पुण्य, बुद्धि या समाधि, किसी में तुम्हें परास्त करने में समर्थ हो। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! उस बोधिसत्त्व को इस प्रकार के ज्ञान एवं बल की राशि प्राप्त रहेगी।

यः कश्चिन्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञेमं भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्तं भाष्यमाणं श्रुत्वा साधुकारमनुप्रदास्यति तस्योत्पलगन्धो मुखाद्वास्यति गात्रेभ्यश्चास्य चन्दनगन्धो भविष्यति। य इह धर्मपर्याये साधुकारं दास्यति तस्येम एवंरूपा दृष्टधार्मिका गुणानुशंसा भविष्यन्ति ये मयैतर्हि निर्दिष्टाः। तस्मात्तर्हि नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञानुपरिन्दाम्यहमिमं सर्वसत्त्वप्रियदर्शनस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य पूर्वयोगपरिवर्तं यथा पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चाशत्यां वर्तमानायामस्मिन् जम्बुद्वीपे प्रचरेन्नान्तर्धानं गच्छेन्न च मारः पापीयानवता लभेन्न मारकायिका देवता न नागा न यक्षा न गन्धर्वा न कुम्भाण्डा अवतारं लभेयुः। तस्मात्तर्हि नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञाधितिष्ठामीमं धर्मपर्यायमस्मिन् जम्बुद्वीपे। भैषज्यभूतो भविष्यति ग्लानानां सत्त्वानां व्याधिस्पृष्टानाम्। इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा व्याधिः काये न क्रमिष्यति न जरा नाकालमृत्युः। सचेत् पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ यः कश्चिद् बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितः पश्येदेवंरूपं सूत्रान्तधारकं भिक्षुं तं चन्दनचूर्णैर्नीलोत्पलैरभ्यवकीरेद् अभ्यवकीर्य चैवं चित्तमुत्पादयितव्यम्। गमिष्यत्ययं कुलपुत्रो बोधिमण्डम्। ग्रहीष्यत्ययं तृणानि प्रज्ञपयिष्यत्ययं बोधिमण्डे तृणसंस्तरम्। करिष्यत्ययं मारयक्षपराजयम्। प्रपूरयिष्यत्ययं धर्मष्यशङ्म्। पराहनिष्यत्ययं धर्म-

भेरीमुत्तरिष्यत्ययं भवसागरम् । एवं नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ तेन बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितेन कुलपुत्रेण वा कुलदुहित्रा वैवंरूपं सूत्रान्तधारकं भिक्षुं दृष्ट्वैवं चित्तमुत्पादयितव्यम् । इत्येतादृशाश्चास्य गुणानुशंसा भविष्यन्ति यादृशास्तथागतेन निर्दिष्टाः ।

हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! जो कोई इस उपदिष्ट भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्त्त को सुनकर साधुवाद देगा, उसके मुख से कमल की सुगन्धि निकलेगी और उसके अंगों से चन्दन की सुगन्धि निकलेगी। जो इस धर्मपर्याय का साधुवाद करेगा, उसे इस प्रकार के सांसारिक गुण प्राप्त होंगे, जिनकी मैंने अभी चर्चा की है। अतः, इस हेतु हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन के इस पूर्वयोगपरिवर्त को मैं तुम्हारे जिम्मे करता हूँ। (तुम ध्यान रखना) जिससे अन्तिम काल में, अन्तिम समय में, अन्तिम पाँच सौ वर्षों में, यह (पूर्वयोगपरिवर्त्त) इस जम्बूद्वीप में प्रचलित रहे, लुप्त न हो जाय, पापी मार अवतार न प्राप्त करे, न मारकायिक देव, न नाग, न यक्ष, न गन्धर्व और न कुम्भाण्ड ही अवतार प्राप्त करे। इस हेतु हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! इस धर्मपर्याय को मैं इस जम्बूद्वीप में प्रतिष्ठित करता हूँ। यह रोग से आक्रान्त, रुग्ण प्राणियों के लिए औषध के समान होगा। इस धर्मपर्याय को सुनने से शरीर में न रोग प्रवेश करेगा और न बुढ़ापा (आयगा) एवं न अकालमृत्यु ही (होगी)। पुनः, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! यदि बोधियान में सम्प्रस्थित कोई इस प्रकार के सूत्रान्त को धारण करनेवाले भिक्षु को देखे, तथा वह उसके ऊपर चन्दन-चूर्ण, एवं कमल की वर्षा करे और वर्षा करके ऐसा विचार करे---यह कुलपुत्र ! बोधिमण्ड को प्राप्त करेगा। यह तृण ग्रहण करेगा और बोधिमण्ड पर उस तृण का संस्तरण बनायगा। मार एवं यक्षों को यह पराजित करेगा। धर्मशंख को यह बजायगा। यह धर्मभेरी का वादन करेगा और यह भवसागर को पार करेगा तथा हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! उस बोधिसत्त्वयान में सम्प्रस्थित कुलपुत्र या कुलकन्या को एवंविध सूत्रान्त के धारक भिक्षु को देखकर मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न करना चाहिए। वह उन गुणों को प्राप्त करेगा, जिनका निर्देश तथागत ने किया है।

अस्मिन् खलु पुनर्भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्ते निर्दिश्यमाने चतुरशीतीनां बोधिसत्त्वसहस्राणां सर्वरुतकौशल्यानुगताया धारण्याः प्रतिलम्भोऽभूत् । स च भगवान् प्रभूतरत्नस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः साधुकारमदात् । साधु साधु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ यत्र हि नाम त्वमेवमचिन्त्यगुणधर्मास्तथागतेन निर्दिष्टास्त्वं चाचिन्त्यगुणधर्मसमन्वागतं तथागतं परिपृच्छसीति ।

पुनः, इस भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्त्त के निर्देशनकाल में चौरासी हजार बोधिसत्त्वों को सर्वरुतकौशल्यानुगता (नामक) धारणी प्राप्त हुई। उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध प्रभूतरत्न ने साधुवाद दिया। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ! तुम धन्य हो,

जो तुम्हें तथागत ने इन अचिन्त्य गुणों एवं धर्मों का निर्देश किया तथा अचिन्त्य गुणों एवं धर्मों से सम्पन्न तथागत से तुम प्रश्न करते हो ।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्तो नाम द्वाविंशतिमः ॥२२॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का बाईसवाँ भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्त्त
समाप्त हुआ ।

◆

गद्गदस्वरपरिवर्त

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तस्यां वेलायां महापुरुषलक्षणाद् भ्रूविवरान्तरादूर्णाकोशात् प्रभां प्रमुमोच । यया प्रभया पूर्वस्यां दिश्यष्टादशगङ्गानदीवालिकासमानि बुद्धक्षेत्रकोटीनयुतशतसहस्राण्याभया स्फुटान्यभूवन् । तानि चाष्टादशगङ्गानदीवालिकासमानि बुद्धक्षेत्रकोटीनयुतशतसहस्राण्यतिक्रम्य वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डिता नाम लोकधातुः । तत्र कमलदलविमलनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तिष्ठति ध्रियते यापयति विपुलेनायुष्प्रमाणेन विपुलेन बोधिसत्त्वसंघेन सार्धं परिवृतः पुरस्कृतो धर्मं देशयति स्म । अथ खलु या भगवता शाक्यमुनिना तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेनोर्णाकोशात् प्रभा प्रमुक्ता सा तस्यां वेलायां वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डितां लोकधातुं महत्याभया स्फुरति स्म । तस्यां खलु पुनर्वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डितायां लोकधातौ गद्गदस्वरो नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वः प्रतिवसति स्मावरोपितकुशलमूलो दृष्टपूर्वाश्च तेन बहूनां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामेवंरूपा रश्म्यवभासाः । बहुसमाधिप्रतिलब्धश्च स गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः । तद् यथा ध्वजाग्रकेयूरसमाधिप्रतिलब्धः सद्धर्मपुण्डरीकसमाधिप्रतिलब्धो विमलदत्तसमाधिप्रतिलब्धो नक्षत्रराजविक्रीडितसमाधिप्रतिलब्धोऽनिलम्भसमाधिप्रतिलब्धो ज्ञानमुद्रासमाधिप्रतिलब्धश्चन्द्रप्रदीपसमाधिप्रतिलब्धः । सर्वरुतकौशल्यसमाधिप्रतिलब्धः सर्वपुण्यसमुच्चयसमाधिप्रतिलब्धः प्रसादवतीसमाधिप्रतिलब्ध ऋद्धिविक्रीडितसमाधिप्रतिलब्धो ज्ञानोल्कासमाधिप्रतिलब्धो व्यूहराजसमाधिप्रतिलब्धो विमलप्रभाससमाधिप्रतिलब्धो विमलगर्भसमाधिप्रतिलब्धोऽप्कृत्स्नसमाधिप्रतिलब्धः सूर्यावर्तसमाधिप्रतिलब्धः । पेयालं यावद् गङ्गानदीवालिकोपमसमाधिकोटीनयुतशतसहस्रप्रतिलब्धो गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः । तस्य खलु पुनर्गद्गदस्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य सा प्रभा काये निपतिताभूत् । अथ खलु गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्व उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणाम्य तं भगवन्तं कमलदलविमलनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धमेतदवोचत् । गमिष्याम्यहं भगवंस्तां सहां लोकधातुं तं भगवन्तं शाक्य-

मुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय तं च मञ्जुश्रियं कुमारभूतं दर्शनाय तं च भैषज्यराजं बोधिसत्त्वं दर्शनाय तं च प्रदानशूरं बोधिसत्त्वं दर्शनाय तं च नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञं बोधिसत्त्वं दर्शनाय तं च विशिष्टचारित्रं बोधिसत्त्वं दर्शनाय तं च व्यूहराजं बोधिसत्त्वं दर्शनाय तं च भैषज्यराजसमुद्गतं बोधिसत्त्वं दर्शनाय।

तदनन्तर, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि ने उस समय महापुरुष के लक्षण-रूप भौंहों के मध्यभाग के बालों से प्रकाश बिखेरा, जिससे पूर्व दिशा में अट्ठारह गंगा नदी की बालुका के समान कोटि नयुत शतसहस्र बुद्धक्षेत्र प्रकाशित होकर स्पष्ट दीखने लगे। अट्ठारह गंगा नदी की बालुका के समान उन कोटि नयुत शतसहस्र बुद्धक्षेत्रों के परे वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डित नामक लोकधातु है। वहाँ कमलदलविमलनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ नामक सम्यक्, सम्बुद्ध, अर्हत्, तथागत रहते हैं एवं समय व्यतीत करते हैं (एवं) लम्बी आयुवाले बोधिसत्त्वों के विशाल समुदाय से परिवृत एवं पुरस्कृत धर्म की देशना करते हैं। तदनन्तर, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि ने अपनी भौंहों से जो प्रकाशरश्मि बिखेरी थी, वह उस समय वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डित लोकधातु को महती आभा से प्रकाशित कर रही थी। उस वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डित लोकधातु में कुशलमूल की स्थापना करनेवाला गद्गदस्वर नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व रहता था। उसने अनेक सम्यक् सम्बुद्ध अर्हतों एवं तथागतों के इस प्रकार के रश्मिप्रकाश को पहले भी देखा था। गद्गदस्वर नामक उस महासत्त्व बोधिसत्त्व ने अनेक समाधियाँ प्राप्त की थीं, जैसे उसने ध्वजाग्रकेयूरसमाधि प्राप्त की थी, सद्धर्मपुण्डरीकसमाधि प्राप्त की थी, विमलदत्तसमाधि प्राप्त की थी, नक्षत्रराजविक्रीडितसमाधि प्राप्ति की थी, अनिलम्भसमाधि प्राप्त की थी, ज्ञानमुद्रासमाधि प्राप्त की थी। चन्द्रप्रदीपसमाधि प्राप्त की थी, सर्वरुतकौशल्यसमाधि प्राप्त की थी, सर्वपुण्यसमुच्चयसमाधि प्राप्त की थी, प्रसादवतीसमाधि प्राप्त की थी, ऋद्धिविक्रीडितसमाधि प्राप्त की थी, ज्ञानोल्कासमाधि प्राप्त की थी, व्यूहराजसमाधि प्राप्त की थी, विमलप्रभाससमाधि प्राप्त की थी, विमलगर्भसमाधि प्राप्त की थी, अप्कृत्स्नसमाधि प्राप्त की थी तथा सूर्यावर्त्तसमाधि प्राप्त की थी। तात्पर्य यह कि गद्गदस्वर ने गंगा नदी की बालुका क समान कोटि नयुत शतसहस्त्र समाधियाँ प्राप्त की थीं। पुनः, वह प्रभा उस महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर के शरीर पर पड़ी। तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर आसन से उठकर चादर को एक कन्धे पर रखकर दाहिने घुटने को पृथ्वी पर टेककर जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोड़कर उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् कमलदलविमलनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ से बोले —हे भगवन्! उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि के दर्शन, वन्दना और पर्युपासन के लिए उन कुमारभूत-मञ्जुश्री के दर्शन के लिए उन बोधिसत्त्व भैषज्यराज के दर्शन के लिए, उन बोधिसत्त्व प्रदानशूर के दर्शन के लिए, उन बोधिसत्त्व नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ के दर्शन के

लिए, उन बोधिसत्त्व विशिष्टचारित्र के दर्शन के लिए, उन बोधिसत्त्व व्यूहराज के दर्शन के लिए तथा उन बोधिसत्त्व भैषज्यराज के दर्शन के लिए उस सहा लोकधातु में जाऊँगा ।

अथ खलु भगवान् कमलदलविमलनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तं गद्गदस्वरं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत् । न त्वया कुलपुत्र तस्यां सहायां लोकधातौ गत्वा हीनसंज्ञोत्पादयितव्या । सा खलु पुनः कुलपुत्र लोकधातुरुत्कूलनिकूला मृन्मयी कालपर्वताकीर्णा गूथोडिल्लपरिपूर्णा । स च भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो ह्रस्वकायस्ते च बोधिसत्त्वा ह्रस्वकायास्तव च कुलपुत्र द्वाचत्वारिंशद्योजनशतसहस्राण्यात्मभावप्रतिलाभः । मम च कुलपुत्राष्टषष्टियोजनशतसहस्राण्यात्मभावप्रतिलाभः । त्वं च कुलपुत्र प्रासादिको दर्शनीयोऽभिरूपः परमशुभवर्णपुष्करतया समन्वागतः पुण्यशतसहस्रातिरेकलक्ष्मीकः । तस्मार्त्ताह कुलपुत्र तां सहां लोकधातुं गत्वा मा हीनसंज्ञामुत्पादयिष्यसि तथागते च बोधिसत्त्वेषु च तस्मिंश्च बुद्धक्षेत्रे ।

तत्पश्चात्, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् कमलदलविमलनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ उन महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर से यह बोले––हे कुलपुत्र ! तुम्हें इस सहा (नामक) लोकधातु में जाकर हीनसंज्ञा नहीं उत्पन्न करनी चाहिए । हे कुलपुत्र ! यह लोकधातु तो ऊँची-नीची भूमि से युक्त, मृण्मयी, कालपर्वतों से व्याप्त तथा विष्ठा की नालियों से परिपूर्ण है । हे कुलपुत्र ! वे तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि नाटे कद के हैं तथा जो बोधिसत्त्व नाटे कद के हैं एवं तुम्हें तो बयालीस शतसहस्र योजन का शरीर प्राप्त है और हे कुलपुत्र ! मेरा अपना शरीर अड़सठ शतसहस्र योजन का है । हे कुलपुत्र ! तुम प्रासादिक, दर्शनीय, अभिरूप, अत्यन्त श्वेत, कमल की शोभा से सम्पन्न तथा सैकड़ों हजारों से अधिक पवित्र लक्षणों से युक्त हो । अतः, इस हेतु हे कुलपुत्र ! उस सहा लोकधातु में जाकर तथागत के प्रति, बोधिसत्त्वों के प्रति तथा उस बुद्धक्षेत्र के प्रति हीनता की भावना मत उत्पन्न करो ।

एव मुक्ते गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तं भगवन्तं कमलदलविमलनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धमेतदवोचत् । तथाहं भगवन् करिष्ये यथा तथागत आज्ञापयति । गमिष्याम्यहं भगवंस्तां सहां लोकधातुं तथागताधिष्ठानेन तथागतबलाधानेन तथागतविक्रीडितेन तथागतव्यूहेन तथागताभ्युद्गतज्ञानेन । अथ खलु गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायामनुच्चलित एव तस्माद् बुद्धक्षेत्रादनुत्थितश्चैव तस्मादासनात्तथारूपं समाधिं समापद्यते स्म यस्य समाधेः समनन्तरसमापन्नस्य गद्गदस्वरस्य बोधिसत्त्वस्याथ तावदेवेह सहायां लोकधातौ गृध्रकूटे पर्वते तस्य तथागतधर्मासनस्य

पुरस्ताच्चतुरशीतिपद्मकोटीनयुतशतसहस्राणि प्रादुर्भूतान्यभूवन् सुवर्णदण्डानि रूप्यपत्राणि पद्मकिंशुकवर्णानि संदृश्यन्ते स्म ।

ऐसा कहने पर महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्‌गदस्वर उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् कमलदलविमलनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ से ऐसा बोले —हे भगवन् ! तथागत जैसी आज्ञा देते हैं, वैसा ही करूँगा । हे भगवन् ! मैं तथागताधिष्ठान, तथागतबलाधान, तथागतविक्रीडित, तथागतव्यूह एवं तथागताभ्युद्‌गत ज्ञान के द्वारा उस सहा लोकधातु में जाऊँगा । तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्‌गदस्वर ने उस समय विना चले ही तथा उस बुद्धक्षेत्र एवं आसन से विना उठे ही वैसी समाधि धारण की कि जिस समाधि को बोधिसत्त्व गद्‌गदस्वर के धारण करने के समनन्तर ही उसी समय इस सहा लोकधातु में गृध्रकूट पर्वत पर उस तथागत के धर्मासन के सम्मुख चौरासी कोटि नयुत शतसहस्र कमल प्रादुर्भूत हुए तथा पद्म एवं किंशुक वर्ण के सुवर्ण के दण्डवाले रजतपत्र दिखाई पड़ने लगे ।

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतस्तं पद्मव्यूहप्रादुर्भावं दृष्ट्वा भगवन्तं शाक्यमुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धमेतदवोचत् । कस्येदं भगवन् पूर्वनिमित्तं येनेमानि चतुरशीतिपद्मकोटीनयुतशतसहस्राणि संदृश्यन्ते स्म सुवर्णदण्डानि रूप्यपत्राणि पद्मकिंशुकवर्णानि । एवमुक्ते भगवान् मञ्जुश्रियं कुमारभूतमेतदवोचत् । एष मञ्जुश्रीः पूर्वस्माद्दिग्भागाद्वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डिताया लोकधातोस्तस्य भगवतः कमलदलविमलनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य बुद्धक्षेत्राद् गद्‌गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वश्चतुरशीतिबोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्रैः परिवृतः पुरस्कृत इमां सहां लोकधातुमागच्छति । मम दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनायास्य च सद्धर्मपुण्डरीकस्य धर्मपर्यायस्य श्रवणाय । अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतो भगवन्तमेतदवोचत् । कस्तेन भगवन् कुलपुत्रेण कुशलसंभारः कृतो येन स कुशलसंभारेण कृतेनोपचितेनायं विशेषः प्रतिलब्धः । कतमस्मिंश्च भगवन् समाधौ स बोधिसत्त्वश्चरति । तं वयं भगवन् समाधिं शृणुयाम तत्र च वयं भगवन् समाधौ चरेम । तं च वयं भगवन् बोधिसत्त्वं महासत्त्वं पश्येम कीदृशस्तस्य बोधिसत्त्वस्य वर्णः कीदृग् रूपं कीदृग् लिङ्गं कीदृक् संस्थानं कोऽस्याचार इति । तत् साधु भगवन् करोतु तथागतस्तथारूपं निमित्तं येन निमित्तेन संचोदितः समानः स बोधिसत्त्वो महासत्त्व इमां सहां लोकधातुमागच्छेत् ।

तदनन्तर, कुमारभूतमञ्जुश्री उस पद्मसमूह के प्रादुर्भाव को देखकर तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि से यह बोला—हे भगवन् ! यह किसका पूर्वनिमित्त है, जिसके फलस्वरूप चौरासी कोटि नयुत शतसहस्र कमल एवं किंशुक के वर्णवाले सुवर्ण-

दण्डसंयुक्त रजतपत्र दिखाई पड़े। ऐसा कहने पर भगवान् कुमारभूतमञ्जुश्री से यह बोले—हे मञ्जुश्री! पूर्व दिशा से उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् कमलदलविमलनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ के बुद्धक्षेत्र, वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डित (नामक) लोकधातु से चौरासी कोटि नयुत शतसहस्र बोधिसत्त्वों से परिवृत एवं पुरस्कृत यह महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर मेरे दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एवं मुझसे सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय को सुनने के लिए इस सहा (नामक) लोकधातु में आ रहा है। तदनन्तर, कुमारभूतमञ्जुश्री भगवान् से यह बोले—हे भगवन्! इस कुलपुत्र ने ऐसा कौन-सा पुण्यसंचय किया है, जिस पुण्यसंचय को करने से (उसे) यह विशिष्टिता प्राप्त हुई है। हे भगवन्! वह कौन-सी समाधि धारण करता है। हे भगवन्! उस समाधि को हम सुनें तथा हे भगवन्! हम उस समाधि को धारण करें। हे भगवन्! उस महासत्त्व बोधिसत्त्व को हमलोग देखें कि उस बोधिसत्त्व का कैसा वर्ण है, कैसा रूप है, कैसा लक्षण है, कैसा संस्थान है और कैसा इसका आचार है। हे भगवन्! तथागत ऐसा निमित्त प्रस्तुत करें, जिस निमित्त से प्रेरित होकर वह महासत्त्व बोधिसत्त्व इस सहा (नामक) लोकधातु में आ जाय।

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तं भगवन्तं प्रभूतरत्नं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं परिनिर्वृतमेतदवोचत्। करोतु भगवांस्तथारूपं निमित्तं येन गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्व इमां सहां लोकधातुमागच्छेत्। अथ खलु भगवान् प्रभूतरत्नस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः परिनिर्वृतस्तस्यां वेलायां तथारूपं निमित्तं प्रादुश्चकार गद्गदस्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य संचोदनार्थम्। आगच्छ कुलपुत्रेमां सहां लोकधातुमयं तु मञ्जुश्रीः कुमारभूतो दर्शनमभिनन्दति। अथ खलु गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्य भगवतः कमलदलविमलनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य पादौ शिरसाभिवन्द्य त्रिष्प्रदक्षिणीकृत्य सार्धं तैश्चतुरशीतिबोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्रैः परिवृतः पुरस्कृतस्तस्या वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डिताया लोकधातोरन्तर्हित इमां सहां लोकधातुमागच्छति स्म प्रकम्पद्भिः क्षेत्रैः प्रवर्षद्भिः पद्मैः प्रवाद्यमानैस्तूर्यकोटीनयुतशतसहस्रैः। नीलोत्पलपद्मनेत्रेण वदनेन सुवर्णवर्णेन कायेन पुण्यशतसहस्रालंकृतेनात्मभावेन श्रिया जाज्वल्यमानस्तेजसा देदीप्यमानो लक्षणैर्विचित्रितगात्रो नारायणसंहननकायः। सप्तरत्नमयं कूटागारमभिरुह्य वैहायसे सप्ततालमात्रेण बोधिसत्त्वगणपरिवृतः पुरस्कृत आगच्छति स्म। स येनेयं सहा लोकधातुर्येन च गृध्रकूटः पर्वतराजस्तेनोपसंक्रामदुपसंक्रम्य तस्मात् कूटागारादवतीर्य शतसहस्रमूल्यं मुक्ताहारं गृहीत्वा येन भगवांस्तेनोपसंक्रामदुपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरसाभिवन्द्य

सप्तकृत्वः प्रदक्षिणीकृत्य तं मुक्ताहारं भगवतः पूजाकर्मणे निर्यातयामास निर्यात्य च भगवन्तमेतदवोचत् । कमलदलविमलनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञो भगवांस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो भगवतः परिपृच्छत्यल्पाबाधताम् अल्पातङ्कतां लघूत्थानतां यात्रां बलं सुखसंस्पर्शविहारताम् । एवं च स भगवानवोचत्। कच्चिच्चत्ते भगवन् क्षमणीयं कच्चिद् यापनीयं कच्चिद्धातवः प्रतिकुर्वन्ति कच्चिच्चत्ते सत्त्वाः स्वाकाराः सुवैनेयाः सुचिकित्साः कच्चिच्छुचिकाया मातीव रागचरिता मातीव द्वेषचरिता मातीव मोहचरिता मातीव भगवन् सत्त्वा ईर्ष्यालुका मा मत्सरिणो माऽमातृज्ञा माऽपितज्ञा माऽश्रामण्या माऽब्राह्मण्या मा मिथ्यादृष्टयो माऽदान्तचित्ता माऽगुप्तेन्द्रियाः। कच्चिच्चत्ते भगवन्निहतमारप्रत्यर्थिका एते सत्त्वाः । कच्चिद् भगवन् प्रभूतरत्नस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः परिनिर्वृत इमां सहां लोकधातुमागतो धर्मश्रवणाय सप्तरत्नमये स्तूपे मध्यगतः। तं च भगवन्तं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं स भगवान् परिपृच्छति । कच्चिद् भगवंस्तस्य भगवतः प्रभूतरत्नस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य क्षमणीयं कच्चिद् यापनीयं कच्चिद् भगवन् प्रभूतरत्नस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धश्चिरं स्थास्यति । वयमपि भगवंस्तस्य प्रभूतरत्नस्य तथागतास्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य धातुविग्रहं पश्येम । तत् साधु भगवान् दर्शयतु तथागतस्य भगवतः प्रभूतरत्नस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य धातुविग्रहमिति ।

तदनन्तर, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, निर्वाणप्राप्त प्रभूतरत्न से यह बोले---भगवान् तथागत ऐसा निमित्त प्रस्तुत करें, जिससे महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्‌गदस्वर इस सहा (नामक) लोकधातु में आ जाय। तदनन्तर, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, परिनिर्वाण-प्राप्त भगवान् प्रभूतरत्न ने उस समय महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्‌गदस्वर को प्रेरित करने के लिए इस प्रकार का निमित्त उत्पन्न किया। (उन्होंने कहा)---हे कुलपुत्र ! इस सहा लोकधातु में आओ । यह कुमारभूत मञ्जुश्री (तुम्हारे) दर्शन का अभिनन्दन करता है । तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्‌गदस्वर उन तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् कमलदलविमलनक्षत्रराज संकुसुमिताभिज्ञ के चरणों में शिरसाभिवादन करके, तीन बार प्रदक्षिणा करके उन चौरासी कोटि नयुत शतसहस्र बोधिसत्त्वों से परिवृत एवं पुरस्कृत उस वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डित लोकधातु से अन्तर्धान होकर इस सहा लोकधातु में आये । इनके आने के समय क्षेत्र काँप रहे थे, कमलों की वर्षा हो रही थी तथा कोटि नयुत शतसहस्र तूर्य बजाये जा रहे थे। उस समय इनका मुखमण्डल नीलकमल के समान नेत्रों से सुशोभित था । उनकी काया स्वर्ण के वर्ण की थी। उनका अपना शरीर सैकड़ों हजार पवित्र लक्षणों से युक्त था।

वे स्वयं शोभा से जाज्वल्यमान थे, तेज से देदीप्यमान थे। उनके अंग-प्रत्यंग विचित्र लक्षणों से युक्त थे एवं उनका शरीर नारायण के शरीर के समान गठित था। सप्तरत्नमय ऊंचे भवन में बैठकर आकाश में सात ताल की ऊँचाई पर बोधिसत्त्वगण के द्वारा परिवृत एवं पुरस्कृत होकर वे आये। जिधर यह सहा लोकधातु थी और जिधर गृध्रकूट पर्वतराज था, उधर वे गये और निकट जाकर उस कूटागार से उतरकर सैकड़ों सहस्र के मूल्यवाले मोती के हार को लेकर जिधर भगवान् थे, उधर गये और निकट जाकर भगवान् के चरणों में शिरसाभिवादन करके, सात बार प्रदक्षिणा करके उस मोती के हार को इन्होंने भगवान् के पूजन में अर्पित कर दिया और अर्पित करके वे भगवान् से यह बोले---तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् कमलदलविमलनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ने भगवान् के कुशल स्वास्थ्य, स्फूर्त्ति, यात्रा, बल एवं सुखसंस्पर्शविहार के बारे में पूछा है। उन भगवान् ने यह भी पूछा है---हे भगवन्! क्या कुछ आपका क्षमणीय एवं यापनीय भी है। क्या धातुएँ प्रतीकार कर रही हैं? क्या प्राणी सुन्दर आकार के सुवैनेय सवं सुविचिकित्स हैं? क्या उनका शरीर पवित्र है? हे भगवन्! मैं समझता हूँ कि वे प्राणी अधिक रागयुक्त आचरण करनेवाले नहीं हैं, अधिक द्वेषयुक्त आचरण करनेवाले नहीं हैं, अधिक मोहयुवत आचरणवाले नहीं हैं, ईर्ष्यालु नहीं हैं, मत्सरी नहीं हैं, माता के प्रति कृतघ्न नहीं हैं, पिता के प्रति कृतघ्न नहीं हैं। बुद्ध के प्रति अश्रामण्य नहीं हैं, अब्राह्मण नहीं हैं, मिथ्यादृष्टि नहीं हैं, अदान्तचित्त नहीं हैं तथा इन्द्रियों के वशीभूत नहीं हैं। हे भगवन्! क्या इन प्राणियों ने मार को नष्ट कर दिया है। हे भगवन्! क्या परिनिर्वाण-प्राप्त तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, प्रभूतरत्न सप्तरत्नमय स्तूप के बीच में बैठकर धर्म को सुनने के लिए इस सहा लोकधातु में आया था। वे भगवान् उस तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न का कुछ क्षमणीय तथा क्या कुछ यापनीय होगा? हे भगवन्! क्या तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, चिरकाल तक स्थित रहेंगे, जिससे हे भगवन्! हम भी उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध प्रभूतरत्न के धातुशरीर को देख लें। अतः, हे भगवन्! तथागत भगवान् उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न के धातुविग्रह को दिखायें।

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तं भगवन्तं प्रभूतरत्नं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं परिनिर्वृतमेतदवोचत्। अयं भगवन् गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तं प्रभूतरत्नं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं परिनिर्वृतं द्रष्टुकामः। अथ खलु भगवान् प्रभूतरत्नस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तं गद्गदस्वरं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत्। साधु साधु कुलपुत्र यत्र हि नाम त्वं भगवन्तं शाक्यमुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं द्रष्टुकामोऽभ्यागत इमं च सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं श्रवणाय मञ्जुश्रियं च कुमारभूतं दर्शनायेति।

तदनन्तर, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, निर्वाणप्राप्त प्रभूतरत्न से यह बोले--हे भगवन् ! यह महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, परिनिर्वाण-प्राप्त भगवान् प्रभूतरत्न को देखना चाहता है। तत्पश्चात्, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न उन महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर से बोले---हे भगवन्! धन्य हो, धन्य हो कि तुम तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि को देखने के लिए इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय को सुनने के लिए तथा कुमारभूतमञ्जुश्री के दर्शन के लिए आये हो ।

अथ खलु पद्मश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत् । कीदृशं भगवन् गद्गदस्वरेण बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन पूर्वं कुशलमूलमवरोपितं कस्य वा तथागतस्यान्तिके । अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः पद्मश्रियं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत् । भूतपूर्वं कुलपुत्रातीतेऽध्वन्यसंख्येये कल्पेऽसंख्येयतरे विपुलेऽप्रमेयेऽप्रमाणे यदासीत्तेन कालेन तेन समयेन मेघदुन्दुभिस्वरराजो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् सर्वरूपसंदर्शनायां लोकधातौ प्रियदर्शने कल्पे । तस्य खलु पुनः कुलपुत्र भगवतो मेघदुन्दुभिस्वरराजस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य गद्गद्स्वरेण बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन तूर्यशतसहस्रप्रवादितेन द्वादशवर्षशतसहस्राणि पूजा कृताभूत् । सप्तरत्नमयानां च भाजनानां चतुरशीतिसहस्राणि दत्तान्यभूवन् । तत्र कुलपुत्र मेघदुन्दुभिस्वरराजस्य तथागतस्य प्रवचने गद्गदस्वरेण बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेनेयमीदृशी श्रीः प्राप्ता । स्यात् खलु पुनस्ते कुलपुत्र काङ्क्षा वा विमतिर्वा विचिकित्सा वान्यः स तेन कालेन तेन समयेन गद्गदस्वरो नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽभूद् येन सा तस्य भगवतो मेघदुन्दुभिस्वरराजस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य पूजा कृता तानि चतुरशीतिभाजनसहस्राणि दत्तानि । न खलु पुनस्ते कुलपुत्रैवं द्रष्टव्यम् । तत् कस्य हेतोः । अयमेव स कुलपुत्र गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽभूद् येन सा तस्य भगवतो मेघदुन्दुभिस्वरराजस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य पूजा कृता तानि चतुरशीतिभाजनसहस्राणि दत्तानि । एवं बहुबुद्धपर्युपासितः कुलपुत्र गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो बहुबुद्धशतसहस्रावरोपितकुशलमूलः कृतबुद्धपरिकर्मा । दृष्टपूर्वश्चानेन गद्गदस्वरेण बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन गङ्गानदीवालिकासमा बुद्धा भगवन्तः । पश्यसि त्वं पद्मश्रीरेतं गद्गदस्वरं बोधिसत्त्वं महासत्त्वम् । पद्मश्रीराह । पश्यामि भगवन् पश्यामि सुगत । भगवानाह ।

एष खलु पुनः पद्मश्रीर्गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो बहुभी रूपैरिमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं देशयति स्म । तद् यथा क्वचिद् ब्रह्मरूपेण क्वचिद् रुद्ररूपेण क्वचिच्छक्ररूपेण क्वचिदीश्वररूपेण क्वचित् सेनापतिरूपेण क्वचिद् वैश्रवणरूपेण क्वचिच्चक्रवर्तिरूपेण क्वचित् कोट्टराजरूपेण क्वचिच्छ्रेष्ठिरूपेण क्वचिद् गृहपतिरूपेण क्वचिन्नैगमरूपेण क्वचिद् ब्राह्मणरूपेणेमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपयायं देशयति स्म । क्वचिद् भिक्षुरूपेण क्वचिद् भिक्षुणीरूपेण क्वचिदुपासकरूपेण क्वचिदुपासिकारूपेण क्वचिच्छ्रेष्ठिभार्यारूपेण क्वचिद् गृहपतिभार्यारूपेण क्वचिन्नैगमभार्यारूपेण क्वचिद्दारकरूपेण क्वचिद्दारिकारूपेण गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्व इमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं सत्त्वानां देशयति स्म । इयद्भिः कुलपुत्र रूपसंदर्शनैर्गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्व इमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं सत्त्वानां देशयति स्म । यावत् केषांचिद् यक्षरूपेण गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्व इमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं सत्त्वानां देशयति स्म । केषांचिदसुररूपेण केषांचिद् गरुडरूपेण केषांचिद् किन्नररूपेण केषांचिन्महोरगरूपेण गदगद्स्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्व इमं सद्धर्मपुण्रीकं धर्मपर्यायं सत्त्वानां देशयति स्म । यावन्निरयतिर्यग्योनियमलोकाक्षणोपपन्नानामपि सत्त्वानां गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्व इमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं देशयंस्त्राता भवति । यावदन्तःपुरमध्यगतानामपि सत्त्वानां गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः स्त्रीरूपमभिनिर्मायेमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं सत्त्वानां देशयति स्म । अस्यां सहायां लोकधातौ सत्त्वानां धर्मं देशयति स्म । त्राता खल्वपि पद्मश्रीर्गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः सहायां लोकधातावुपपन्नानां सत्वानाम् । तस्यां च सहायां लोकधातावेव स गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्व इयद्भी रूपनिमित्तैरिमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं सत्त्वानां देशयति । न चास्य सत्पुरुषस्यर्द्धिहानिर्नापि प्रजाहानिः । इयद्भिः कुलपुत्र ज्ञानावभासैर्गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽस्यां सहायां लोकधातौ प्रज्ञायते । अन्येषु च गङ्गानदीवालिकासमेषु लोकधातुषु बोधिसत्त्ववैनेयानां सत्त्वानां बोधिसत्त्वरूपेण धर्मं देशयति श्रावकवैनेयानां सत्त्वानां श्रावणरूपेण धर्मं देशयति । प्रत्येकबुद्धवैनेयानां सत्त्वानां प्रत्येकबुद्धरूपेण धर्मं देशयति । तथागतवैनेयानां सत्त्वानां तथागतरूपेण धर्मं देशयति । यावत्तथागतधातुवैनेयानां सत्त्वानां तथागतधातुं दर्शयति । यावत् परिनिर्वाणवैनेयानां सत्त्वानां परिनिर्वृतमात्मानं दर्शयति । एवं ज्ञानबलाधानप्राप्तः खलु पुनः पद्मश्रीर्गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः ।

तत्पश्चात्, महासत्त्व बोधिसत्त्वपद्‌मश्री भगवान् से यह बोले—हे भगवन् ! महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्‌गदस्वर ने पूर्वकाल में किस प्रकार के कुशलमूल की किस तथागत के निकट रहकर स्थापना की थी ? तब तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि महासत्त्व बोधिसत्त्व पद्‌मश्री से यह बोले—हे कुलपुत्र ! भूतपूर्व अतीत काल में असंख्य, विपुल, अप्रमेय, अप्रमाण तथा असंख्य कल्प के भी परे जो समय था, उस काल में उस समय इस लोक में मेघदुन्दुभिस्वरराज नाम से तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, ज्ञान एवं सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ दमनयोग्य पुरुषों के नियन्ता एवं देवों और मनुष्यों के गुरु भगवान् बुद्ध प्रियदर्शन कल्प में सर्वरूपसन्दर्शन (नामक) लोकधातु में उत्पन्न हुए । हे कुलपुत्र ! उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् मेघदुन्दुभिस्वरराज की महासत्त्व, बोधिसत्त्व गद्‌गदस्वर ने सैकड़ों हजार तूर्यों के वादन द्वारा बारह शतसहस्र वर्षों तक पूजा की तथा उन्हें चौरासी सहस्र सप्तरत्न पात्र दिये । हे कुलपुत्र ! वहाँ तथागत मेघदुन्दुभिस्वरराज के प्रवचन (काल) में महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्‌गदस्वर ने इस प्रकार की यह शोभा प्राप्त की । हे कुलपुत्र ! शायद तुम्हें सन्देह, विमति अथवा विचिकित्सा हो कि उस काल में उस समय वह गद्‌गदस्वर नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व, जिसने उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् मेघदुन्दुभिस्वरराज की पूजा की थी तथा उन्हें उन चौरासी सहस्र पात्रों को दिया था, कोई दूसरा रहा होगा । हे कुलपुत्र ! तुम्हें ऐसा नहीं समझना चाहिए । ऐसा क्यों नहीं (समझना चाहिए) ? हे कुलपुत्र ! यही वह महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्‌गदस्वर है, जिसने उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् मेघदुन्दुभिस्वरराज की पूजा की थी और उन्हें उन चौरासी सहस्र पात्रों को दिया था । हे कुलपुत्र ! इस प्रकार महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्‌गदस्वर ने अनेक बुद्धों की उपासना की है । अनेक शतसहस्र बुद्धों के द्वारा कुशलमूल की स्थापना कराई है तथा बुद्ध के कर्त्तव्यों का पालन किया है । इस महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्‌गदस्वर ने पूर्वकाल में गंगा नदी की बालुका के समान (असंख्य) भगवन् बुद्धों को देखा । हे पद्‌मश्री ! क्या तुम उन महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्‌गदस्वर को देख रहे हो । पद्‌मश्री ने कहा—हे भगवन् ! देख रहा हूँ । हे सुगत ! देख रहा हूँ । भगवान् ने कहा—इस महासत्त्व बोधिसत्त्व ने अनेक रूपों में उस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय की देशना की है । जैसे (उन्होंने) कभी ब्रह्मा के रूप में, कभी रुद्र के रूप में, कभी शक्र के रूप में, कभी ईश्वर के रूप में कभी सेनापति के रूप में, कभी वैश्रवण के रूप में, कभी चक्रवर्ती के रूप में, कभी कोट्टराज के रूप में, कभी श्रेष्ठी के रूप में, कभी गृहपति के रूप में, कभी नैगम के रूप में तथा कभी ब्राह्मण के रूप में इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय की देशना की । महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्‌गदस्वर ने कभी भिक्षु के रूप में, कभी भिक्षुणी के रूप में, कभी उपासक के रूप में, कभी उपासिका के रूप में, कभी श्रेष्ठी की भार्या के रूप में, कभी गृहपति की भार्या के रूप में, कभी नैगम की भार्या के रूप में, कभी लड़के के रूप में तथा कभी लड़की के रूप में इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय की देशना की ।

हे कुलपुत्र ! इतने रूपों को धारण करके महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर ने प्राणियों को इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय की देशना की। यहाँतक कि महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर ने कुछ प्राणियों को यक्ष के रूप में भी इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय की देशना की। महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर ने कुछ प्राणियों को असुर के रूप में, कुछ को गरुड के रूप में, कुछ को किन्नर के रूप में तथा कुछ को महोरग के रूप में इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय की देशना की। यहाँतक कि महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय की देशना करते हुए नरक, तिर्यक् योनि, यमलोक आदि अन्यान्य दुर्गतियों में उत्पन्न होनेवाले प्राणियों के भी रक्षक हैं। महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर ने स्त्री का रूप धारण करके अन्तःपुर में रहनेवाले प्राणियों तक को भी इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय की देशना की। इस सहा (नामक) लोकधातु में प्राणियों को धर्म की देशना की। हे पद्मश्री ! महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर सहा (नामक) लोकधातु में उत्पन्न प्राणियों के रक्षक भी हैं। उसी सहा (नामक) लोकधातु में वे महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर इतने रूपों में प्राणियों को सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय की देशना करते हैं। (इस कार्य के द्वारा) इन सत्पुरुष की न तो अलौकिक शक्ति ही कम होती है और न प्रजा की ही हानि होती है। हे कुलपुत्र ! इतने ज्ञानावभासों के द्वारा महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर इस सहा (नामक) लोकधातु में जाने जाते हैं। यह गंगानदी की वालुका के समान (असंख्य) लोकधातुओं में भी बोधिसत्त्वों के द्वारा वैनेय प्राणियों को भी बोधिसत्त्व के रूप में धर्म की देशना करते हैं। श्रावकों के द्वारा वैनेय प्राणियों को श्रावक के रूप में धर्म की देशना करते हैं, प्रत्येकबुद्धों के द्वारा वैनेय प्राणियों को वैनेय प्रत्येकबुद्ध के रूप में धर्म की देशना करते हैं एवं तथागतों के द्वारा प्राणियों को तथागत के रूप में धर्म की देशना करते हैं। यहाँतक कि तथागत की धातु के द्वारा वैनेय प्राणियों को तथागत की धातु दिखलाते हैं तथा परिनिर्वाण के द्वारा वैनेय प्राणियों के सम्मुख अपने को परिनिर्वृत के रूप में दिखलाते हैं। हे पद्मश्री ! महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर को इस प्रकार का ज्ञानबलाधान प्राप्त है।

अथ खलु पद्मश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत्। अवरोपितकुशलमूलोऽयं भगवन् गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः। कतम एष भगवन् समाधिर्यस्मिन् समाधाववस्थितेन गद्गदस्वरेण बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेनेयन्तः सत्त्वा विनीता इति। एवमुक्ते भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः पद्मश्रियं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत्। एष हि कुलपुत्र सर्वरूपसंदर्शनो नम समाधिः। अस्मिन् समाधाववस्थितेन गद्गदस्वरेण बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेनैवमप्रमेयः सत्त्वार्थः कृतः।

तत्पश्चात्, महासत्त्व बोधिसत्त्व पद्मश्री भगवान् से यह बोले---हे भगवन् ! इस महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर ने कुशलमूल की स्थापना कर ली है। हे भगवन् !

यह कौन, सी समाधि है । जिस समाधि में अवस्थित होकर महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्‌गदस्वर ने इतने प्राणियों को विनीत किया। ऐसा कहने पर तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि महासत्त्व बोधिसत्व पद्‌मश्री से यह बोले––हे कुलपुत्र ! यह सर्वरूपसन्दर्शन (नामक) समाधि है । इस समाधि में अवस्थित होकर महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्‌गदस्वर ने इस प्रकार इतने अप्रमेय प्राणियों का हित किया है ।

अस्मिन् खलु पुनर्गद्‌गदस्वरपरिवर्ते निर्दिश्यमाने यानि गद्‌गदस्वरेण बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन सार्धं चतुरशीतिबोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणीमां सहां लोकधातुमागतानि सर्वेषां तेषां सर्वरूपसंदर्शनस्य समाधेः प्रतिलम्भोऽभूत् । अस्यां च सहायां लोकधातौ गणनां समतिक्रान्तानां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां येषां सर्वरूपसंदर्शनस्य समाधेः प्रतिलम्भोऽभूत् ।

इस गद्‌गदस्वर परिवर्त के निर्देशन-काल में महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्‌गदस्वर के साथ जो चौरासी कोटि नयुत शतसहस्र बोधिसत्त्व इस सहा (नामक) लोकधातु में आये थे, उन सबको सर्वरूपसन्दर्शन (नामक) लोकसमाधि प्राप्त हो गई । इस सहा नामक लोकधातु में गणना से परे महासत्त्व बोधिसत्त्वों को भी सर्वरूपसन्दर्शन (नामक) समाधि प्राप्ति हुई ।

अथ खलु गद्‌गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवतः शाक्यमुनेस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य तस्य च भगवतः प्रभूतरत्नस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य धातुस्तूपे विपुलां विस्तीर्णां पूजां कृत्वा पुनरपि सप्तरत्नमये कूटागारेऽभिरुह्य प्रकम्पद्‌भिः क्षेत्रैः प्रवर्षद्‌भिः पद्‌मैः प्रवाद्यमानैस्तूर्यकोटीनयुतशतसहस्रैः सार्धं तैश्चतुरशीतिबोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्रैः परिवृतः पुरस्कृतः पुनरपि स्वं बुद्धक्षेत्रमभिगतः । समभिगम्य च तं भगवन्तं कमलदलविमलनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धमेतदवोचत् । कृतो मे भगवन् सहायां लोकधातौ सत्त्वार्थस्तस्य च भगवतः प्रभूतरत्नस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य धातुस्तूपो दृष्टो वन्दितश्च स च भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतो दृष्टो वन्दितश्च स च मञ्जुश्रीः कुमारभूतो दृष्टः स च भैषज्यराजो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो वीर्यबलवेगप्राप्तः स च प्रदानशूरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो दृष्टः सर्वेषां च तेषां चतुरशीतिबोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणां सर्वरूपसंदर्शनस्य समाधेः प्रतिलम्भोऽभूत् ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्‌गदस्वर तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि के एवं तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न के धातुस्तूप की विपुल एवं विस्तीर्ण पूजा करके पुनः सप्तरत्नमय कूटागार पर चढ़कर, जब कि क्षेत्र काँप रहे थे, कमल बरस रहे थे एवं कोटि खर्व शतसहस्र तूर्य बज रहे थे, उन

चौरासी कोटि नयुत शतसहस्र बोधिसत्त्वों से परिवृत एवं पुरस्कृत पुनः अपने बुद्धक्षेत्रों में लौट आये और आते ही उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् कमलदलविमलनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ से यह बोले--हे भगवन् ! मैंने सहा (नामक) लोकधातु में प्राणियों का हित किया। उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न के धातुस्तूप को देखा एवं उसकी वन्दना की। उन तथागत भगवान् शाक्यमुनि को देखा तथा उनकी वन्दना की, उस कुमारभूत मञ्जुश्री को देखा, उस महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज तथा उस वीर्य, बल और वेग से सम्पन्न बोधिसत्त्व प्रदानशूर को देखा। उन सब चौरासी कोटि नयुत शतसहस्र बोधिसत्त्वों को यह सर्वरूपसन्दर्शन (नामक) समाधि प्राप्त हो गई।

अस्मिन् खलु पुनर्गद्गदस्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य गमनागमनपरिवर्ते भाष्यमाणे द्वाचत्वारिंशतां बोधिसत्त्वसहस्राणामनुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिप्रतिलम्भोऽभूत्। पद्मश्रियश्च बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य सद्धर्मपुण्डरीकस्य समाधेः प्रतिलम्भोऽभूत्।

पुनः, इस महासत्त्व बोधिसत्त्व के गद्गदस्वर के गमनागमनपरिवर्त्त के उपदेशकाल में बयालीस शतसहस्र बोधिसत्त्वों को अनुत्पत्तिक धर्मक्षान्ति की प्राप्ति हुई तथा महासत्त्व बोधिसत्त्व पद्मश्री को सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) समाधि प्राप्त हुई।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये गद्गदस्वरपरिवर्तो नाम
त्रयोविंशतिमः ॥२३॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का तेईसवाँ गद्गदस्वरपरिवर्त्त
समाप्त हुआ।

समन्तमुखपरिवर्त

अथ खल्वक्षयमतिर्बोधिसत्त्वो महासत्त्व उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणाम्य भगवन्तमेतदवोचत् । केन कारणेन भगवन्नवलोकितेश्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽवलोकितेश्वर इत्युच्यते । एवमुक्ते भगवानक्षयमतिं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत् । इह कुलपुत्र यावन्ति सत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि यानि दुःखानि प्रत्यनुभवन्ति तानि सचेदवलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य नामधेयं शृणुयुस्ते सर्वे तस्माद्दुःखस्कन्धाद् परिमुच्येरन् । ये च कुलपुत्र सत्त्वा अवलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य नामधेयं धारयिष्यन्ति सचेत्ते महत्यग्निस्कन्धे प्रपतेयुः सर्वे तेऽवलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य तेजसा तस्मान्महतोऽग्निस्कन्धात् परिमुच्येरन् । सचेत् पुनः कुलपुत्र सत्त्वा नदीभिरुह्यमाना अवलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्याक्रन्दं कुर्युः सर्वास्ता नद्यस्तेषां सत्त्वानां गाधं दद्युः । सचेत् पुनः कुलपुत्र सागरमध्ये वहनाभिरूढानां सत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणां हिरण्यसुवर्णमणिमुक्तावज्रवैडूर्यशंखशिलाप्रवाड़ाश्मगर्भमुसारगल्वलोहितमुक्तादीनां कृतनिधीनां स पोतस्तेषां कालिकावातेन राक्षसीद्वीपे क्षिप्तः स्यात् तस्मिंश्च कश्चिदेवैकः सत्त्वः स्याद् योऽवलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्याक्रन्दं कुर्यात् सर्वे ते परिमुच्येरंस्तस्माद् राक्षसीद्वीपात् । अनेन खलु पुनः कुलपुत्र कारणेनावलोकितेश्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽवलोकितेश्वर इति संज्ञायते ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व अक्षयमति आसन से उठकर चादर को एक कन्धे पर करके दाहिने घुटने को पृथ्वी पर टेककर जिधर भगवान् थे, उस ओर हाथ जोड़कर भगवान् से बोला—किस कारण से महासत्त्व बोधिसत्त्व भगवान् अवलोकितेश्वर 'अवलोकितेश्वर' कहलाते हैं ? ऐसा पूछने पर भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व अक्षयमति से यह बोले—हे कुलपुत्र ! इस संसार में जितने भी कोटीनयुत शतसहस्र प्राणी जो दुःख का अनुभव करते हैं, वे यदि महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर का नाम सुन लें, (तो) वे सभी उस दुःख से परिमुक्त हो जायेंगे । हे कुलपुत्र ! जो प्राणी महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर के नाम को धारण करेंगे, वे यदि महान् अग्नि में जायेंगे, तो वे महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर के तेज से उस महान् अग्नि से भी परिमुक्त हो जायेंगे । हे कुलपुत्र ! यदि नदियों द्वारा बहाये जाते हुए वे प्राणी महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर

को पुकारेंगे, तो वे सभी नदियाँ उन प्राणियों को थाह दे देंगी। हे कुलपुत्र! यदि हिरण्य, सुवर्ण, मणि, मुक्ता, वज्र, वैदूर्य, शंख, शिला, प्रवाल, अश्मगर्भ, मुसारगल्व, लोहितमुक्ता आदि का खजाना लेकर समुद्र में जहाज पर चढ़े हुए उन कोटीनयुत शतसहस्र प्राणियों का वह जहाज कालिकावात के द्वारा राक्षसीद्वीपों में भेज दिया जाय और उसपर एक ही प्राणी हो, जो महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर की पुकार करे, तो वे सभी उस राक्षसीद्वीप से परिमुक्त हो जायेंगे। पुनः, हे कुलपुत्र! इसी कारण से महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर 'अवलोकितेश्वर' कहलाते हैं।

सचेत् कुलपुत्र कश्चिदेव वध्योत्सृष्टोऽवलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वास्याक्रन्दं कुर्यात् तानि तेषां वध्यघातकानां शस्त्राणि विकीर्येरन्। सचेत् खलु पुनः कुलपुत्रायं त्रिसाहस्रमहासाहस्रो लोकधातुर्यक्षराक्षसैः परिपूर्णो भवेत्तेऽवलोकितेश्वरस्य महासत्त्वस्य नामधेयग्रहणेन दुष्टचित्ता द्रष्टुमप्यशक्ताः स्युः। सचेत् खलु पुनः कुलपुत्र कश्चिदेव सत्त्वो दार्वायिस्मयैर्हडिनिगडबन्धनैर्बद्धो भवेदपराध्यनपराधी वा तस्यावलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य नामधेयग्रहणेन क्षिप्रं तानि हडिनिगडबन्धनानि विवरमनुप्रयच्छन्ति। ईदृशः कुलपुत्रावलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य प्रभावः।

हे कुलपुत्र! यदि वधदण्ड को प्राप्त कोई (व्यक्ति) महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर की पुकार करे, तो उन हत्यारों के वे शस्त्र नष्ट हो जायेंगे। पुनः, हे कुलपुत्र! यदि यह त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु यक्ष और राक्षसों से परिपूर्ण हो जाय तो महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर के नाम लेने से वे दुष्टस्वभाव (प्राणी) देखने में भी असमर्थ हो जायेंगे। पुनः, हे कुलपुत्र! यदि कोई प्राणी लकड़ी एवं लोहे की बनी हथकड़ी-बेड़ी के बन्धन में बँधा हो—चाहे वह अपराधी हो या निर्दोष—उन महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर के नाम लेने से ही उसकी हथकड़ी-बेड़ियों के बन्धन ढीले पड़ जायेंगे। हे कुलपुत्र! महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर का ऐसा प्रभाव है।

सचेत् कुलपुत्रायं त्रिसाहस्रमहासाहस्रो लोकधातुर्धूर्तैरमित्रैश्चौरैश्च शस्त्रपाणिभिः परिपूर्णो भवेत् तस्मिंश्चैकः सार्थवाहो महान्तं सार्थं रत्नाढ्यमनर्घ्यं गृहीत्वा गच्छेत्। ते गच्छन्तस्तांश्चौरान् धूर्तान् शत्रूंश्च शस्त्रहस्तान् पश्येयुः। दृष्ट्वा च पुनर्भीतास्त्रस्ता अशरणमात्मानं संजानीयुः। स च सार्थवाहस्तं सार्थमेवं ब्रूयात्। मा भैष्ट कुलपुत्रा मा भैष्टाभयंददमवलोकितेश्वरं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेकस्वरेण सर्वे समाक्रन्दध्वम्। ततो यूयमस्माच्चौरभयादमित्रभयात्क्षिप्रमेव परिमोक्ष्यध्वे। अथ खलु सर्व एव स सार्थ एकस्वरेणावलोकितेश्वरमाक्रन्देत्। नमो नमस्तस्मा अभयंददायावलोकितेश्वराय बोधिसत्त्वाय महा

सत्त्वायेति । सहनामग्रहणेनैव स सार्थः सर्वभयेभ्यः परिमुक्तो भवेत् । ईदृशः कुलपुत्रावलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य प्रभावः ।

हे कुलपुत्र ! यदि वह त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु धूर्तों, शत्रुओं, चोरों एवं शस्त्रधारियों से परिपूर्ण हो जाय और उसमें एक सार्थवाह, बहुमूल्य रत्नों से परिपूर्ण महान् सार्थको लेकर जाये । वे जाते हुए उन चोरों धूर्तों, शत्रुओं एवं शस्त्रधारियों को देख लें और देखकर भीत एवं त्रस्त हो जायें, और अपने को निःसहाय समझें । वह सार्थवाह अपने सार्थ से इस प्रकार बोले—हे कुलपुत्रो ! डरो मत, डरो मत ! अभय देनेवाले महासत्त्व बोधिसत्त्व को (तुम) सब एक स्वर से पुकारो । तब तुम इन चोरों एवं शत्रुओं के भय से शीघ्र मुक्त हो जाओगे । तदनन्तर, वह सम्पूर्ण सार्थ एक स्वर से अवलोकितेश्वर को पुकारे और उन अभय देनेवाले महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर को नमस्कार है, ऐसा कहे । नाम लेने के साथ ही वह सार्थ सभी भयों से मुक्त हो जाय । हे कुलपुत्र ! महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर का ऐसा प्रभाव है ।

ये कुलपुत्र रागचरिताः सत्त्वास्तेऽवलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य नमस्कारं कृत्वा विगतरागा भवन्ति । ये द्वेषचरिताः सत्त्वास्तेऽवलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य नमस्कारं कृत्वा विगतद्वेषा भवन्ति । ये मोहचरिताः सत्त्वास्तेऽवलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य नमस्कारं कृत्वा विगतमोहा भवन्ति । एवं महर्द्धिकः कुलपुत्रावलोकितेश्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः ।

हे कुलपुत्र ! जो रागी प्राणी हैं, वे महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर को नमस्कार करके राग से रहित हो जाते हैं । जो द्वेषयुक्त प्राणी हैं, वे महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर को नमस्कार करके द्वेष से रहित हो जाते हैं । जो मोहयुक्त प्राणी हैं वे महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर को प्रणाम करके मोह से रहित हो जाते हैं । हे कुलपुत्र ! इस प्रकार, महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर अलौकिक शक्ति से सम्पन्न हैं ।

यश्च कुलपुत्रावलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य पुत्रकामो मातृग्रामो नमस्कारं करोति तस्य पुत्रः प्रजायतेऽभिरूपः प्रासादिको दर्शनीयः पुत्रलक्षणसमन्वागतो बहुजनप्रियो मनापोऽवरोपितकुशलमूलश्च भवति। यो दारिकामभिनन्दति तस्य दारिका प्रजायतेऽभिरूपा प्रासादिका दर्शनीया परमया शुभवर्णपुष्करतया समन्वागता दारिकालक्षणसमन्वागता बहुजनप्रिया मनापावरोपितकुशलमूला च भवति । ईदृशः कुलपुत्रावलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य प्रभावः ।

हे कुलपुत्र ! जो माता पुत्र की इच्छा से महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर को नमस्कार करती है, उसे अधिरूप, प्रासादिक, दर्शनीय पुत्र के लक्षणों से सम्पन्न अनेक व्यक्तियों का प्रिय, आकर्षक एवं कुशलमूल की स्थापना करनेवाला पुत्र उत्पन्न होता है। जो पुत्री की इच्छा करती है उसे अभिरूप, प्रासादिक, दर्शनीय, श्रेष्ठ श्वेत कमल की शोभा से सम्पन्न, कन्या के लक्षणों से सम्पन्न, अनेक लोगों की प्रिय, आकर्षक एवं कुशलमूल की स्थापना करनेवाली पुत्री उत्पन्न होती है। हे कुलपुत्र ! महासत्त्व बोधिसत्त्व का ऐसा प्रभाव है।

ये च कुलपुत्रावलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य नमस्कारं करिष्यन्ति नामधेयं च धारयिष्यन्ति तेषाममोघफलं भवति । यश्च कुलपुत्रावलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य नमस्कारं करिष्यति नामधेयं च धारयिष्यति । यश्च द्वाषष्टीनां गङ्गानदीवालिकासमानां बुद्धानां भगवतां नमस्कारं कुर्यान्नामधेयानि च धारयेद् यश्च तावतामेव बुद्धानां भगवतां तिष्ठतां ध्रियतां यापयतां चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारैः पूजां कुर्यात् । तत् किं मन्यसे कुलपुत्र कियन्तं स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा ततो निदानं पुण्याभिसंस्कारं प्रसवेत् । एवमुक्तेऽक्षयमतिर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत् । बहु भगवन् बहु सुगत स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा ततो निदानं बहुं पुण्याभिसंस्कारं प्रसवेत् । भगवानाह । यश्च कुलपुत्र तावतां बुद्धानां भगवतां सत्कारं कृत्वा पुण्याभिसंस्कारो यश्चावलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्यान्तश एकमपि नमस्कारं कुर्यान्नामधेयं च धारयेत् समोऽनधिकोऽनतिरेकः पुण्याभिसंस्कार उभयतो भवेत् । यश्च तेषां द्वाषष्टीनां गङ्गानदीवालिकासमानां बुद्धानां भगवतां सत्कारं कुर्यान्नामधेयानि च धारयेत् । यश्चावलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य नमस्कारं कुर्यान्नामधेयं धारयेत् । एतावुभौ पुण्यस्कन्धौ न सुकरौ क्षपयितुं कल्पकोटीनयुतशतसहस्रैरपि । एवमप्रमेयं कुलपुत्रावलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य नामधारणात् पुण्यम् ।

हे कुलपुत्र ! जो महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर को नमस्कार करेंगे (तथा) उनके नाम को धारण करेंगे, उन्हें अमोघ बल प्राप्त होता है। हे कुलपुत्र ! जो महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर को नमस्कार करेगा एवं जो इनके नाम को धारण करेगा तथा (संख्या में) गंगा की वालुका से बासठगुना अधिक भगवान् बुद्धों को नमस्कार करे तथा उनके नाम को धारण करे एवं जो उतने ही स्थित वर्त्तमान एवं यापन करते हुए भगवान् बुद्धों की चीवर, पिण्डपात, शयन, आसन एवं रोगी की दवा आदि वस्तुओं से पूजा करे, तो हे कुलपुत्र ! तुम्हारी समझ से उस कुलपुत्र या कुलकन्या को

इसके फलस्वरूप कितना पुण्य उत्पन्न हो(गा) ? ऐसा कहने पर महासत्त्व बोधिसत्त्व अक्षयमति भगवान् से यह बोले---हे भगवन् ! बहुत, हे सुगत ! बहुत । उस कुलपुत्र या कुलदुहिता को इसके फलस्वरूप बहुत पुण्य प्राप्त होगा । भगवान् बोले---हे कुलपुत्र ! उतने भगवान् बुद्धों का सत्कार करके जो पुण्य प्राप्त होता है तथा महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर को एक बार प्रणाम करके या उनके नाम को धारण करके जो पुण्य होता है---ये दोनों सम, अधिक एवं अनतिरेक हैं । जो गंगा नदी की वालुका से बासठगुना अधिक उन भगवान् बुद्धों का सत्कार करे एवं उनके नामों को धारण करे तथा जो महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर को नमस्कार करे एवं उसके नाम को धारण करे---इन दोनों की पुण्यराशियों को कोटि खवं शतसहस्र कल्पों में भी समाप्त करना आसान नहीं है । हे कुलपुत्र ! महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर के नाम धारण करने का ऐसा अप्रमेय पुण्य है ।

अथ खल्वक्षयमतिर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत् । कथं भगवन्नवलोकितेश्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽस्यां सहायां लोकधातौ प्रविचरति । कथं सत्त्वानां धर्मं देशयति । कीदृशश्चावलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्योपायकौशल्यविषयः । एवमुक्ते भगवानक्षयमतिं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत् । सन्ति कुलपुत्र लोकधातवो येष्ववलोकितेश्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो बुद्धरूपेण सत्त्वानां धर्मं देशयति । सन्ति लोकधातवो येष्ववलोकितेश्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो बोधिसत्त्वरूपेण सत्त्वानां धर्मं देशयति । केषाञ्चित् प्रत्येकबुद्धरूपेणावलोकितेश्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः सत्त्वानां धर्मं देशयति । केषाञ्चिच्छ्रावकरूपेणावलोकितेश्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः सत्त्वानां धर्मं देशयति । केषाञ्चिद् ब्रह्मरूपेणावलोकितेश्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः सत्त्वानां धर्मं देशयति । केषाञ्चिच्छक्ररूपेणावलोकितेश्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः सत्त्वानां धर्मं देशयति । केषाञ्चिद् गन्धर्वरूपेणावलोकितेश्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः सत्त्वानां धर्मं देशयति । यक्षवैनेयानां सत्त्वानां यक्षरूपेण धर्मं देशयति । ईश्वरवैनेयानां सत्त्वानामीश्वररूपेण महेश्वरवैनेयानां सत्त्वानां महेश्वररूपेण धर्मं देशयति । चक्रवर्तिराजवैनेयानां सत्त्वानां चक्रवर्तिराजरूपेण धर्मं देशयति । पिशाचवैनेयानां सत्त्वानां पिशाचरूपेण धर्मं देशयति । वैश्रवणवैनेयानां सत्त्वानां वैश्रवणरूपेण धर्मं देशयति । सेनापतिवैनेयानां सत्त्वानां सेनापतिरूपेण धर्मं देशयति । ब्राह्मणवैनेयानां सत्त्वानां ब्राह्मणरूपेण धर्मं देशयति । वज्रपाणिवैनेयानां सत्त्वानां वज्रपाणिरूपेण धर्मं देशयति । एवमचिन्त्यगुणसमन्वागतः कुलपुत्रावलोकितेश्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः । तस्मात्तर्हि कुलपुत्रावलोकितेश्वरं बोधिसत्त्वं महा-

सत्त्वं पूजयध्वम् । एष कुलपुत्रावलोकितेश्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भीतानां सत्त्वानामभयं ददाति । अनेन कारणेनाभयंदद इति संज्ञायत इह सह्यां लोकधातौ ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व अक्षयमति भगवान् से यह बोले---हे भगवन् ! महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर इस सहा (नामक) लोकधातु में किस प्रकार विचरण करते हैं ? प्राणियों को कैसे धर्म की देशना करते हैं ? महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर के उपायकौशल्य का विषय कैसा है ? ऐसा कहने पर महासत्त्व बोधिसत्त्व भगवान् अक्षयमति से यह बोले---हे कुलपुत्र ! (कुछ) लोकधातुएँ हैं, जिनमें महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर बुद्धरूप में प्राणियों को धर्म की देशना करते हैं (कुछ) लोकधातुएँ हैं, जिनमें महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर बोधिसत्त्व के रूप में प्राणियों को धर्म की देशना करते हैं । कुछ प्राणियों को महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर प्रत्येकबुद्ध के रूप में धर्म की देशना करते हैं । कुछ प्राणियों को महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर श्रावक के रूप में धर्म की देशना करते हैं, कुछ प्राणियों को महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर शक्र के रूप में धर्म की देशना करते है। कुछ प्राणियों को महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर ब्रह्मा के रूप में धर्म की देशना करते हैं तथा कुछ प्राणियों को महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर गन्धर्व के रूप में धर्म की देशना करते हैं । यक्ष के द्वारा दीक्षित होने योग्य प्रणियों को यक्ष के रूप में धर्म की देशना करते हैं, ईश्वर के द्वारा दीक्षित होने योग्य प्राणियों को ईश्वर के रूप में तथा महेश्वर के रूप में दीक्षित होने योग्य प्राणियों को महेश्वर के रूप में धर्म की देशना करते हैं । चक्रवर्त्ती राजा के द्वारा दीक्षित होने योग्य प्राणियों को चक्रवर्त्ती राजा के रूप में धर्म की देशना करते हैं । पिशाच के द्वारा दीक्षित होने योग्य प्राणियों को पिशाच के रूप में धर्म की देशना करते हैं । वैश्रवण के द्वारा दीक्षित होने योग्य प्राणियों को वैश्रवण के रूप में धर्म की देशना करते हैं । सेनापति के द्वारा दीक्षित होने योग्य पुरुषों को सेनापति के रूप में धर्म की देशना करते हैं । ब्राह्मण के द्वारा दीक्षित होने योग्य प्राणियों को ब्राह्मण के रूप में धर्म की देशना करते हैं, वज्रपाणि के द्वारा दीक्षित होने योग्य पुरुषों को वज्रपाणि के रूप में दीक्षित करते हैं । हे कुलपुत्र ! इस प्रकार, महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर अचिन्त्य गुणों से सम्पन्न हैं । अतः, इस हेतु हे कुलपुत्र ! महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर की पूजा करो । हे कुलपुत्र ! यही महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर भयभीत प्राणियों को अभय देते हैं । इस कारण से इस सहा (नामक) लोकधातु में अभय कहे जाते हैं ।

अथ खल्वक्षयमतिर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत् । दास्यामो वयं भगवन्नवलोकितेश्वराय बोधिसत्त्वाय महासत्त्वाय धर्मप्राभृतं धर्माच्छादम् । भगवानाह । यस्येदानीं कुलपुत्र कालं मन्यसे । अथ खल्वक्षय-

मतिर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वः स्वकण्ठादवतार्य शतसहस्रमूल्यं मुक्ताहारमवलोकितेश्वराय बोधिसत्त्वाय महासत्त्वाय धर्माच्छादमनुप्रयच्छति स्म। प्रतीच्छ सत्पुरुषेमं धर्माच्छादं ममान्तिकात्। स न प्रतीच्छति स्म। अथ खल्वक्षयमतिर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽवलोकितेश्वरं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत्। प्रतिगृहाण त्वं कुलपुत्रेमं मुक्ताहारमस्माकमनुकम्पामुपादाय। अथ खल्ववलोकितेश्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽक्षयमतेर्बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्यान्तिकात् तं मुक्ताहारं प्रतिगृह्णाति स्माक्षयमतेर्बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्यानुकम्पामुपादाय तासां च चतसृणां पर्षदां तेषां च देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्याणामनुकम्पामुपादाय। प्रतिगृह्य च द्वौ प्रत्यंशौ कृतवान् कृत्वा चैकं प्रत्यंशं भगवते शाक्यमुनये ददाति स्म द्वितीयं प्रत्यंशं भगवतः प्रभूतरत्नस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य रत्नस्तूपे समुपनामयामास। ईदृश्या कुलपुत्र विकुर्वयावलोकितेश्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽस्यां सहायां लोकधातावनुविचरति।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व अक्षयमति भगवान् से यह बोले---हे भगवन्! क्या हमलोग महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर को धर्मप्राभृत एवं धर्माच्छाद दें। भगवान् ने कहा---हे कुलपुत्र! इस समय जिसके (देने का) समय समझते हो (उसे दे दो)। तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व अक्षयमति ने शतसहस्र मुद्रा के मूल्य के मोती के हार को अपने गले से उतारकर महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर को धर्माच्छाद के रूप में दिया (और कहा) ---हे सत्पुरुष! मुझसे इस धर्माच्छाद को स्वीकार करें। उन्होंने नहीं ग्रहण किया। तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व अक्षयमति महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर से यह बोले---हे कुलपुत्र! आप हम पर कृपा करके इस मुक्ताहार को ग्रहण करें। तब महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर ने महासत्त्व बोधिसत्त्व अक्षयमति पर कृपा करके तथा उन चार परिषदों तथा उन देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य तथा मनुष्येतर पर कृपा करके महासत्त्व बोधिसत्त्व अक्षयमति से उस मोती के हार को ले लिया। उसे लेकर (उन्होंने उसके) दो टुकड़े कर दिये और टुकड़े करके एक टुकड़ा भगवान् शाक्यमुनि को दिया और दूसरा टुकड़ा तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न के रत्नस्तूप में रखवा दिया। हे कुलपुत्र! इस प्रकार, विकुर्वा के द्वारा महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर इस सहा (नामक) लोकधातु में विचरण करते हैं।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं---

चित्रध्वज अक्षयोमती एतमर्थं परिपृच्छि कारणात् ।
केना जिनपुत्र हेतुना उच्यते हि अवलोकितेश्वरः ॥१॥

चित्रध्वज अक्षयमति ने यह बात पूछी---किस कारण से, किस हेतु से जिनपुत्र अवलोकितेश्वर कहे जाते हैं ।

अथ स दिशता विलोकिया प्रणिधीसागरु अक्षयोमति ।
चित्रध्वजोऽध्वभाषत शृणु चर्यामवलोकितेश्वरे ॥२॥

तदनन्तर, वास्तविक परिस्थिति को देखकर प्रणिधि के सागर चित्रध्वज अक्षयमति बोले---अवलोकितेश्वर की चर्चा सुनो ।

कल्पशतनेककोट्य चिन्तिया बहुबुद्धान सहस्रकोटिभिः ।
प्रणिधान यथा विशोधितं स्तथ शृण्वा हि मम प्रदेशतः ॥३॥

अनेक शतकोटि कल्पों तक अनेक सहस्र बुद्धों का चिन्तन करके जिस प्रकार उन्होंने अपने प्रणिधान को मेरे प्रदेश से विशुद्ध बनाया, उसे सुन लो ।

श्रवणो अथ दर्शनोऽपि च अनुपूर्वं च तथा अनुस्मृति ।
भवतीह अमोघ प्राणिनां सर्वदुःख भवशोकनाशकः ॥४॥

(उनका) क्रम से देखना, सुनना तथा क्रम से स्मरण रखना इस लोक में प्राणियों के सभी दुःख एवं सांसारिक शोकों को नष्ट करने में अमोघ होता है ।

सचि अग्निखदाय पातयेत् घतनार्थाय प्रदुष्टमानसः ।
स्मरतो अवलोकितेश्वरं अभिसिक्तो इव अग्नि शाम्यति ॥५॥

यदि कोई दुष्ट व्यक्ति मारने की इच्छा से किसी को अग्नि के गर्त्त में गिरा दे, किन्तु यदि वह अवलोकितेश्वर का नाम लेता है, तो अग्नि इस प्रकार ठण्डी हो जाती है, मानों उसपर पानी उड़ेल दिया गया हो।

सचि सागरदुर्गि पातयेन्नागमकरसुरभूत आलये ।
स्मरतो अवलोकितेश्वरं जलराजे न कदाचि सीदति ॥६॥

यदि कोई (किसी को) नाग, मकर एवं असुरों के घर दुर्गम समुद्र में गिरा दे, तो भी वह अवलोकितेश्वर का स्मरण करता हुआ कभी कष्ट नहीं पायगा।

सचि मेरुतलातु पातयेद् घतनार्थाय प्रदुष्टमानसः ।
स्मरतो अवलोकितेश्वरं सूर्यभूतो व नभे प्रतिष्ठति ॥७॥

कोई दुष्ट व्यक्ति उसे मारने के लिए मेरु पर्वत की चोटी पर से गिरा दे, तो वह अवलोकितेश्वर का स्मरण करता हुआ सूर्य बनकर आकाश में प्रतिष्ठित होता है ।

वज्रामय पर्वतो यदि घतनार्थाय हि मूर्ध्नि ओषरेत् ।
स्मरतो अवलोकितेश्वरं रोमकूप न प्रभोन्ति हिंसितुम् ।।८।।

यदि उसको मारने के लिए उसके मस्तक पर कोई वज्रमय पर्वत भी फेंक दे, तो वह अवलोकितेश्वर का स्मरण करनेवाले के एक रोमकूप को भी नष्ट करने में समर्थ नहीं होता ।

सचि शत्रुगणैः परीवृतः शस्त्रहस्तैर्विहिंसचेतसैः ।
स्मरतो अवलोकितेश्वरं मैत्रचित्त तद भोन्ति तत्क्षणम् ।।९।।

यदि मारने की इच्छा करनेवाले शत्रु हाथ में शस्त्र लिये उसे घेर लें, तो उस समय उसके अवलोकितेश्वर का स्मरण करते ही वे सब उसके मित्र बन जायेंगे ।

सचि आघतने उपस्थितो वध्यघातन वशंगतो भवेत् ।
स्मरतो अवलोकितेश्वरं खण्डखण्ड तद शस्त्र गच्छियुः ।।१०।।

यदि जल्लादों के वश में पड़ा हुआ कोई व्यक्ति वध्यभूमि में खड़ा है और वह अवलोकितेश्वर का स्मरण करता है, तो वध के वे सारे शस्त्र टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे ।

सचि दारुमयैरयोमयैर्हडिनिगडैरिह बद्ध बन्धनैः ।
स्मरतो अवलोकितेश्वरं क्षिप्रमेव विपटन्ति बन्धना ।।११।।

यदि वह लकड़ी और लोहे की बनी हथकड़ी और बेड़ी के बन्धनों में हो, तो अवलोकितेश्वर का स्मरण करते ही उसगे सभी बन्धन टूट जाते हैं ।

मन्त्रावलविद्य औषधी भूतवेताल शरीरनाशका ।
स्मरतो अवलोकितेश्वरं तान् गच्छन्ति यतः प्रवर्तिता ।।१२।।

शक्तिशाली मन्त्र, विद्या, ओषधियाँ, भूत, बैताल और अन्य शरीरनाशक जीव, ये सभी अवलोकितेश्वर का स्मरण करते ही जहाँ से आये थे, वहीं चले जाते हैं ।

सचि ओजहरैः परीवृतो नागयक्षसुरभूतराक्षसैः ।
स्मरतो अवलोकितेश्वरं रोमकूप न प्रभोन्ति हिंसितुम् ।।१३।।

यदि (व्यक्ति) तेज हरण करनेवाले नाग, यक्ष, किन्नर, भूत और राक्षसों से घिरा हुआ हो और वह अवलोकितेश्वर का स्मरण करे, तो वे उसके रोमकूप का भी कुछ नहीं बिगाड़ सकते ।

सचि व्याडमृगैः परीवृतस्तीक्ष्ण दंष्ट्रनखरैर्महाभयैः ।
स्मरतो अवलोकितेश्वरं क्षिप्र गच्छन्ति दिशा अनन्ततः ।।१४।।

कोई तेज जबड़े एवं दाँतोंवाले भयंकर व्यालों एवं पशुओं से घिरा हो और यदि वह अवलोकितेश्वर का स्मरण करे, तो वे (दुष्ट जन्तु) विभिन्न दिशाओं में शीघ्र भाग जायेंगे ।

सचि दृष्टिविषैः परीवृतो ज्वलनार्च्चिशिखिदुष्टदारुणैः ।
स्मरतो अवलोकितेश्वरं क्षिप्रमेव ते भोन्ति निर्विषाः ।।१५।।

कोई मनुष्य अग्नि की लपटोंवाले भयंकर विषैले सर्पों से घिरा हो और यदि वह अवलोकितेश्वर का स्मरण करे, तो वे (सर्प) शीघ्र ही विषहीन हो जाते हैं ।

गम्भीर सविद्यु निश्चरी मेघवज्राशनि वारिप्रस्रवाः ।
स्मरतो अवलोकितेश्वरं क्षिप्रमेव प्रशमन्ति तत्क्षणम् ।।१६।।

घोर बिजली गिरती हो, बादलों में भयंकर गड़गड़ाहट हो रही हो एवं मुसलाधार जल बरस रहा हो, तो अवलोकितेश्वर का स्मरण करत ही ये उसी क्षण शीघ्र शान्त हो जाते हैं ।

बहुदुःखशतैरुपद्रुतान् सत्त्व दृष्ट्व बहुदुःखपीडितान् ।
शुभज्ञानबलो विलोकिया तेन त्रातरु जगे सदेवके ।।१७।।

प्राणियों को अनेकशत दुःखों से आक्रान्त एवं अनेक दुःखों से पीडित देखकर अपने श्रेष्ठ ज्ञान के वल से (अवलोकितेश्वर) ने देवों-समेत इस जग की रक्षा की ।

ऋद्धीबलपारमिगतो विपुलज्ञान-उपायशिक्षितः ।
सर्वत्र दशद्दिशी जगे सर्वक्षेत्रेषु अशेष दृश्यते ।।१८।।

अलौकिक वलों में पारंगत, विशाल ज्ञान एवं उपायों में शिक्षित वह (अवलोकितेश्वर) संसार में सर्वत्र दसों दिशाओं में सभी क्षेत्रों में पूर्णरूप से दिखाई पड़ते हैं ।

ये च अक्षणदुर्गतीभया नरकतिर्यग्यमस्य शासने ।
जातीजरव्याधिपीडिता अनुपूर्वं प्रशमन्ति प्राणिनाम् ।।१९।।

नरक, तिर्यक्योनि तथा यमलोकों में पड़े हुए, भयंकर दुर्गतियों के भय से आक्रान्त एवं जन्म, जरा तथा व्याधि से पीडित प्राणियों को भी (इन अवलोकितेश्वर के दर्शन से) शान्ति मिल जाती है ।

अथ खलु अक्षयमतिर्हृष्टतुष्टमना इमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, अक्षयमति ने हृष्ट एवं सन्तुष्ट होकर ये गाथाएँ कहीं—

शुभलोचन मैत्रलोचना प्रज्ञाज्ञानविशिष्टलोचना ।
कृपलोचन शुद्धलोचना प्रेमणीय सुमुखा सुलोचना ।।२०।।

(हे अवलोकितेश्वर !) आप शुभ नेत्रोंवाले, मित्रतापूर्ण नेत्रोंवाले, प्रज्ञा एवं ज्ञान से विशिष्ट नेत्रोंवाले, कृपापूर्ण नेत्रोंवाले, शुद्ध नेत्रोंवाले, प्रेमपूर्ण एवं सुन्दर मुखवाले तथा सुन्दर नेत्रवाले हैं ।

अमलामल निर्मलप्रभा वितिमिरज्ञान दिवाकरप्रभा ।
अपहृतानिलज्वलप्रभा प्रतपन्तो जगती विरोचसे ।।२१।।

आप अमल चरित्रवाले, निर्मल प्रभावाले, विशुद्ध ज्ञानवाले, सूर्य के समान प्रकाशवाले अग्नि की प्रभा का अपहरण करनेवाले हैं तथा स्वयं प्रकाशित होते हुए इस संसार में सुशोभित होते हैं ।

कृपसद्गुणमैत्रगर्जिता शुभगुण मैत्रमना महाघना ।
क्लेशाग्नि शमेसि प्राणिनां धर्मवर्षं अमृतं प्रवर्षसि ।।२२।।

आप कृपा, सद्गुण एवं मित्रता की भावना से उद्दीप्त शुभ गुणोंवाले, मैत्रीयुक्त चित्तवाले एवं महान् मेघ हैं । आप प्राणियों के दुःख की अग्नि को शान्त करते हैं तथा अमृत-तुल्य धर्म की वर्षा करते हैं ।

कलहे च विवादविग्रहे नरसंग्रामगते महाभये ।
स्मरतो अवलोकितेश्वरं प्रशमेया अरिसंघपापका ।।२३।।

कलह, विवाद, झगड़ा, युद्धभूमि एवं अन्य महान् भय के अवसरों पर अवलोकितेश्वर का स्मरण करने से सभी शत्रु एवं पाप शान्त हो जाते हैं ।

मेघस्वर दुन्दुभिस्वरो जलधरगर्जित ब्रह्मसुस्वरः ।
स्वरमण्डलपारमिगतः स्मरणीयो अवलोकितेश्वरः ।।२४।।

मेघ के स्वरवाले, दुन्दुभि के स्वरवाले, जलधर के स्वरवाले, ब्रह्मा के स्वरवाले एवं सभी स्वरों में पारंगत अवलोकितेश्वर का स्मरण करना चाहिए ।

स्मरथा स्मरथा म काङक्षथा शुद्धसत्त्वं अवलोकितेश्वरम् ।
मरणे व्यसने उपद्रवे त्राणु भोति शरणं परायणम् ।।२५।।

शुद्धसत्त्व, अवलोकितेश्वर का पुनः-पुनः स्मरण करो । इस बात में कभी सन्देह मत करो कि जो इनका (अवलोकितेश्वर का) शरणागत होता है, उसकी वे मरण, व्यसन एवं उपद्रव के समय रक्षा करते हैं ।

सर्वगुणस्य पारमिगतः सर्वसत्त्वकृपमैत्रलोचनो ।
गुणभूत महागुणोदधी वन्दनीयो अवलोकितेश्वरः ।।२६।।

सर्वगुणों में पारंगत, सभी जीवों पर दया एवं मित्रता से पूर्ण दृष्टि रखनेवाले, गुणयुक्त एवं महान् गुणों के समुद्र अवलोकितेश्वर की वन्दना करनी चाहिए ।

कोई तेज जबड़े एवं दाँतोंवाले भयंकर व्यालों एवं पशुओं से घिरा हो और यदि वह अवलोकितेश्वर का स्मरण करे, तो वे (दुष्ट जन्तु) विभिन्न दिशाओं में शीघ्र भाग जायेंगे ।

सचि दृष्टिविषैः परीवृतो ज्वलनार्च्चिशिखिदुष्टदारुणैः ।
स्मरतो अवलोकितेश्वरं क्षिप्रमेव ते भोन्ति निर्विषाः ॥१५॥

कोई मनुष्य अग्नि की लपटोंवाले भयंकर विषैले सर्पों से घिरा हो और यदि वह अवलोकितेश्वर का स्मरण करे, तो वे (सर्प) शीघ्र ही विषहीन हो जाते हैं ।

गम्भीर सविद्यु निश्चरी मेघवज्राशनि वारिप्रस्रवाः ।
स्मरतो अवलोकितेश्वरं क्षिप्रमेव प्रशमन्ति तत्क्षणम् ॥१६॥

घोर बिजली गिरती हो, बादलों में भयंकर गड़गड़ाहट हो रही हो एवं मुसलाधार जल बरस रहा हो, तो अवलोकितेश्वर का स्मरण करत ही ये उसी क्षण शीघ्र शान्त हो जाते हैं ।

बहुदुःखशतैरुपद्रुतान् सत्त्व दृष्ट्व बहुदुःखपीडितान् ।
शुभज्ञानबलो विलोकिया तेन त्रातरु जगे सदेवके ॥१७॥

प्राणियों को अनेकशत दुःखों से आक्रान्त एवं अनेक दुःखों से पीडित देखकर अपने श्रेष्ठ ज्ञान के बल से (अवलोकितेश्वर) ने देवों-समेत इस जग की रक्षा की ।

ऋद्धीबलपारमिंगतो विपुलज्ञान-उपायशिक्षितः ।
सर्वत्र दशद्दिशी जगे सर्वक्षेत्रेषु अशेष दृश्यते ॥१८॥

अलौकिक बलों में पारंगत, विशाल ज्ञान एवं उपायों में शिक्षित वह (अवलोकितेश्वर) संसार में सर्वत्र दसों दिशाओं में सभी क्षेत्रों में पूर्णरूप से दिखाई पड़ते हैं ।

ये च अक्षणदुर्गतीभया नरकतिर्यग्यमस्य शासने ।
जातीजरव्याधिपीडिता अनुपूर्वं प्रशमन्ति प्राणिनाम् ॥१९॥

नरक, तिर्यक् योनि तथा यमलोकों में पड़े हुए, भयंकर दुर्गतियों के भय से आक्रान्त एवं जन्म, जरा तथा व्याधि से पीडित प्राणियों को भी (इन अवलोकितेश्वर के दर्शन से) शान्ति मिल जाती है ।

अथ खलु अक्षयमतिर्हृष्टतुष्टमना इमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, अक्षयमति ने हृष्ट एवं सन्तुष्ट होकर ये गाथाएँ कहीं—

शुभलोचन मैत्रलोचना प्रज्ञाज्ञानविशिष्टलोचना ।
कृपलोचन शुद्धलोचना प्रेमणीय सुमुखा सुलोचना ॥२०॥

(हे अवलोकितेश्वर !) आप शुभ नेत्रोंवाले, मित्रतापूर्ण नेत्रोंवाले, प्रज्ञा एवं ज्ञान से विशिष्ट नेत्रोंवाले, कृपापूर्ण नेत्रोंवाले, शुद्ध नेत्रोंवाले, प्रेमपूर्ण एवं सुन्दर मुखवाले तथा सुन्दर नेत्रवाले हैं ।

अमलामल निर्मलप्रभा वितिमिरज्ञान दिवाकरप्रभा ।
अपहृतानिलज्वलप्रभा प्रतपन्तो जगती विरोचसे ॥२१॥

आप अमल चरित्रवाले, निर्मल प्रभावाले, विशुद्ध ज्ञानवाले, सूर्य के समान प्रकाशवाले अग्नि की प्रभा का अपहरण करनेवाले हैं तथा स्वयं प्रकाशित होते हुए इस संसार में सुशोभित होते हैं ।

कृपसद्‌गुणमैत्रगर्जिता शुभगुण मैत्रमना महाघना ।
क्लेशाग्नि शमेसि प्राणिनां धर्मवर्ष अमृतं प्रवर्षसि ॥२२॥

आप कृपा, सद्‌गुण एवं मित्रता की भावना से उद्दीप्त शुभ गुणोंवाले, मैत्रीयुक्त चित्तवाले एवं महान् मेघ हैं । आप प्राणियों के दुःख की अग्नि को शान्त करते हैं तथा अमृत-तुल्य धर्म की वर्षा करते हैं ।

कलहे च विवादविग्रहे नरसंग्रामगते महाभये ।
स्मरतो अवलोकितेश्वरं प्रशमेया अरिसंघपापका ॥२३॥

कलह, विवाद, झगड़ा, युद्धभूमि एवं अन्य महान् भय के अवसरों पर अवलोकितेश्वर का स्मरण करने से सभी शत्रु एवं पाप शान्त हो जाते हैं ।

मेघस्वर दुन्दुभिस्वरो जलधरगर्जित ब्रह्मसुस्वरः ।
स्वरमण्डलपारमिगतः स्मरणीयो अवलोकितेश्वरः ॥२४॥

मेघ के स्वरवाले, दुन्दुभि के स्वरवाले, जलधर के स्वरवाले, ब्रह्मा के स्वरवाले एवं सभी स्वरों में पारंगत अवलोकितेश्वर का स्मरण करना चाहिए ।

स्मरथा स्मरथा म काङ्क्षथा शुद्धसत्त्वं अवलोकितेश्वरम् ।
मरणे व्यसने उपद्रवे त्राणु भोति शरणं परायणम् ॥२५॥

शुद्धसत्त्व, अवलोकितेश्वर का पुनः-पुनः स्मरण करो । इस बात में कभी सन्देह मत करो कि जो इनका (अवलोकितेश्वर का) शरणागत होता है, उसकी वे मरण, व्यसन एवं उपद्रव के समय रक्षा करते हैं ।

सर्वगुणस्य पारमिगतः सर्वसत्त्वकृपमैत्रलोचनो ।
गुणभूत महागुणोदधी वन्दनीयो अवलोकितेश्वरः ॥२६॥

सर्वगुणों में पारंगत, सभी जीवों पर दया एवं मित्रता से पूर्ण दृष्टि रखनेवाले, गुणयुक्त एवं महान् गुणों के समुद्र अवलोकितेश्वर की वन्दना करनी चाहिए ।

योऽसौ अनुकम्पको जगे बुद्ध भेष्यति अनागतेऽध्वनि ।
सर्वदुःखभयशोकनाशकं प्रणमामी अवलोकितेश्वरम् ।।२७।।

भविष्य में इस संसार में सब पर दया करनेवाले, जो बुद्ध बनेंगे उन सभी दुःख, भय तथा शोक को नष्ट करनेवाले अवलोकितेश्वर को प्रणाम करता हूँ ।

लोकेश्वर राजनायको भिक्षु धर्माकरु लोकपूजितो ।
बहुकल्पशतांश्चरित्व च प्राप्तु बोधि विरजां अनुत्तराम् ।।२८।।

लोक के स्वामी, राजाओं के नायक, भिक्षुधर्म की खान एवं लोक में पूजित होनेवाले इन्होंने (अवलोकितेश्वर ने) अनेक शत कल्पों में चर्चा करके श्रेष्ठ शुद्ध बोधि प्राप्त की है ।

स्थित दक्षिणवामतस्तथा वीजयन्त अमिताभनायकम् ।
मायोपमता समाधिना सर्वक्षेत्रे जिन गत्व पूजिषु ।।२९।।

इन्होंने अभिताभनायक के दाहिने और बायें रहकर उनके ऊपर (चँवर) डुलाया है और मायोपमान समाधि के द्वारा सभी क्षेत्रों में जाकर बुद्ध की पूजा की है ।

दिशि पश्चिमतः सुखाकरा लोकधातु विरजा सुखावती ।
यत्र एष अमिताभनायकः संप्रति तिष्ठति सत्त्वसारथिः ।।३०।।

पश्चिम दिशा में सुखदायक एवं पवित्र सुखाकर (नामक) लोकधातु है, जहाँ प्राणियों के नेता ये अभिताभनायक इस समय रहते हैं ।

न च इस्त्रिण तत्र संभवो नापि च मैथुनधर्म सर्वशः ।
उपपादुक ते जिनोरसाः पद्मगर्भेषु निषण्ण निर्मलाः ।।३१।।

न वहाँ स्त्रियाँ हैं और न वहाँ यौन सम्बन्ध ही होता है । कमल के मध्य में बैठे हुए वे बुद्ध के पवित्र पुत्र स्वयम्भू होते है ।

सो चैव अमिताभनायकः पद्मगर्भे विरजे मनोरमे ।
सिंहासनि संनिषण्णको शालराजो व यथा विराजते ।।३२।।

वे अभिताभनायक निर्मल एवं सुन्दर कमलगर्भ में सिंहासन पर बैठे हुए विशाल शालवृक्ष की तरह सुशोभित होते हैं ।

सोऽपि तथा लोकनायको यस्य नास्ति त्रिभवेऽस्मि सादृशः ।
यन्मे पुण्य स्तवित्व संचितं क्षिप्र भोमि यथ त्वं नरोत्तम ।।३३।। इति

लोकनायक ऐसे हैं, जिनकी बराबरी करनेवाला (कोई) तीन लोक में नहीं है (उनकी) स्तुति करने से मैंने जो पुण्य संचित किया है, उसके बल से हे नरोत्तम ! मैं शीघ्र ही तुम जैसा हो जाऊँगा ।

अथ खलु धरणिंधरो बोधिसत्त्वो महासत्त्व उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणाम्य भगवन्तमेतदवोचत् । न ते भगवन् सत्त्वा अवरकेण कुशलमूलेन समन्वागता भविष्यन्ति तेऽवलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्येमं धर्मपर्यायपरिवर्तं श्रोष्यन्त्यवलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य विकुर्वानिर्देशं समन्तमुखपरिवर्तं नामावलोकितेश्वरस्य बोधिसत्त्वस्य विकुर्वणप्रातिहार्यम् ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व धरणीन्धर आसन से उठकर चादर को एक कन्धे पर रखकर दाहिने घुटने को पृथ्वी पर टेककर जिधर भगवान् थे, ऊधर हाथ जोड़कर भगवान् से यह बोले—हे भगवन् ! वे प्राणी निम्नकोटि के कुशलमूल से सम्पन्न नहीं होंगे, जो महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर के इस धर्मपर्यायपरिवर्त्त को सुनेंगे तथा महासत्त्व बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर के विकुर्वानिर्देशक समन्तमुखपरिवर्त्त एवं बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर के विकुर्वण-प्रातिहार्य को सुनेंगे ।

अस्मिन् खलु पुनः समन्तमुखपरिवर्ते भगवता निर्देश्यमाने तस्या पर्षदश्चतुरशीतीनां प्राणिसहस्राणामसमसमायामनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ चित्तान्युत्पन्नान्यभूवन् ।

भगवान् के द्वारा इस समन्तमुखपरिवर्त्त के निर्देशनकाल में उस परिषद् के चौरासी सहस्र प्राणियों के चित्त इस अद्वितीय एवं श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की ओर आकृष्ट हो गये ।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये समन्तमुखपरिवर्तो
नामावलोकितेश्वरविकुर्वणनिर्देशश्चतुर्विंशतिमः ॥२४॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक धर्मपर्याय का चौबीसवाँ अवलोकितेश्वर का विकुर्वण-निर्देश
नामक समन्तमुखपरिवर्त्त समाप्त हुआ ।

शुभव्यूहराजपूर्वयोगपरिवर्त

अथ खलु भगवान् सर्वावन्तं बोधिसत्त्वगणमामन्त्रयामास । भूतपूर्वं कुलपुत्रातीतेऽध्वन्यसंख्येयैः कल्पैरसंख्येयतरैर्यदासीत्तेन कालेन तेन समयेन जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् प्रियदर्शने कल्पे वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डितायां लोकधातौ । तस्य खलु पुनः कुलपुत्रा जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञस्य तथागतस्य प्रवचने शुभव्यूहो नाम राजाभूत् । तस्य खलु पुनः कुलपुत्रा राज्ञः शुभव्यूहस्य विमलदत्ता नाम भार्याभूत् । तस्य खलु पुनः कुलपुत्रा राज्ञः शुभव्यूहस्य द्वौ पुत्रावभूतामेको विमलगर्भो नाम द्वितीयो विमलनेत्रो नाम । तौ च द्वौ दारकावृद्धिमन्तौ चाभूतां प्रज्ञावन्तौ च पुण्यवन्तौ च ज्ञानवन्तौ च बोधिसत्त्वचर्यायां चाभियुक्तावभूताम् । तद् यथा दानपारमितायामभियुक्तावभूतां शीलपारमितायां क्षान्तिपारमितायां वीर्यपारमितायां ध्यानपारमितायां प्रज्ञापारमितायामुपायकौशल्यपारमितायां मैत्र्यां करुणायां मुदितायामुपेक्षायां यावत् सप्तत्रिंशत्सु बोधिपक्षिकेषु धर्मेषु । सर्वत्र पारंगतावभूतां विमलस्य समाधेः पारंगतौ नक्षत्रराजादित्यस्य समाधेः पारंगतौ विमलनिर्भासस्य समाधेः पारंगतौ विमलभासस्य समाधेः पारंगतावलंकारशुभस्य समाधेः पारंगतौ महातेजोगर्भस्य समाधेः पारंगतावभूताम् । स च भगवांस्तेन कालेन तेन समयेनेमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं देशयामास तेषां सत्त्वानामनुकम्पायै तस्य च राज्ञः शुभव्यूहस्यानुकम्पायै । अथ खलु कुलपुत्रा विमलगर्भो दारको विमलनेत्रश्च दारको येन स्वमाता जनयित्री तेनोपसंक्रामतामुपसंक्रम्य दशनखमञ्जलिं प्रगृह्य जनयित्रीमेतदवोचत् । एह्यम्ब गमिष्यावस्तस्य भगवतो जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य सकाशं तं भगवन्तं जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय । तत्कस्य हेतोः । एष ह्यम्ब स भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः सदेवकस्य लोकस्य पुरतः सद्धर्मपुण्डरीकं नाम धर्मपर्यायं

विस्तरेण संप्रकाशयति । तं श्रवणाय गमिष्यावः । एवमुक्ते कुलपुत्रा विमलदत्ता राजभार्या विमलगर्भं दारकं विमलनेत्रं च दारकमेतदवोचत् । एष खलु कुलपुत्रौ युवयोः पिता राजा शुभव्यूहो ब्राह्मणेष्वभिप्रसन्नस्तस्मान्न लप्स्यथ तं तथागतं दर्शनायाभिगन्तुम् । अथ खलु कुलपुत्रा विमलगर्भो दारको विमलनेत्रश्च दारको दशनखमञ्जलिं प्रगृह्य तां स्वमातरं जनयित्रीमेतदवोचताम् । मिथ्यादृष्टिकुलेऽस्मिन्नावां जातावावां पुनर्धर्मराजपुत्राविति । अथ खलु कुलपुत्रा विमलदत्ता राजभार्या तौ द्वौ दारकावेतदवोचत् । साधु साधु कुलपुत्रौ युवां तस्य स्वपितू राज्ञः शुभव्यहस्यानुकम्पायै किंचिदेव प्रातिहार्यं संदर्शयताम् । अप्येव नाम युवयोरन्तिके प्रसादं कुर्यात् प्रसन्नचित्तश्चास्माकमनुजानीयात् तस्य भगवतो जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धमभिगन्तुम् ।

तदनन्तर, भगवान् सम्पूर्ण बोधिसत्त्वगण से बोले—हे कुलपुत्र ! पूर्वकाल में, विगत समय में, असंख्य (एवं) असंख्येतर कल्पों के परे जो काल था, उस काल में, उस समय इस लोक में तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, ज्ञान एवं सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ दमनीय पुरुषों के नियन्ता, देवों एवं मनुष्यों के शास्ता भगवान् बुद्ध जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ नाम से प्रियदर्शन कल्प में वैराग्यरश्मिप्रतिमण्डित नामक लोकधातु में उत्पन्न हुए । हे कुलपुत्रो ! पुनः उन तथागत जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ के प्रवचन में शुभव्यूह नाम के राजा रहते थे । पुनः, हे कुलपुत्रो ! राजा शुभव्यूह की विमलदत्ता नाम की पत्नी थी । पुनः, हे कुलपुत्रो ! उन राजा शुभव्यूह के दो पुत्र हुए—पहला विमलगर्भ नामक और दूसरा विमलनेत्र नामक । वे दोनों पुत्र ऋद्धिमान्, बुद्धिमान्, पुण्यवान् एवं ज्ञानवान् थे तथा बोधिसत्त्वचर्या में अभियुक्त थे—यथा दानपारमिता में, शीलपारमिता में, क्षान्तिपारमिता में, वीर्यपारमिता में, ध्यानपारमिता में, प्रज्ञापारमिता में, उपायकौशल्यपारमिता में, मैत्री में, करुणा में, मुदिता में, उपेक्षा में तथा सैंतीस बोधिपक्षिक धर्मों में अभियुक्त थे। वे दोनों सर्वत्र पारंगत थे। विमलसमाधि में पारंगत, नक्षत्रराजादित्यसमाधि में पारंगत विमलनिर्भाससमाधि में पारंगत, अलंकारशुभसमाधि में पारंगत तथा महातेजोगर्भसमाधि में पारंगत थे । उन भगवान् ने उस काल में, उस समय इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय का उन प्राणियों पर कृपा करने के लिए तथा राजा शुभव्यूह पर कृपा करने के लिए उपदेश किया । तदनन्तर, हे कुलपुत्रो ! विमलगर्भ (नामक) पुत्र तथा विमलनेत्र (नामक) पुत्र (दोनों) जिस ओर (उनकी) जन्मदात्री अपनी माता थीं, उस ओर गये और जाकर दसों उँगलियों को मिलाकर हाथ जोड़कर माता से यह बोले—हे माता ! आओ, हमलोग तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध उन भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ के निकट तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध उन भगवान् जलधरगर्जित

घोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ के दर्शन, वन्दन तथा पर्युपासन के लिए चलें। वह किसलिए? हे माता! वे तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ देवों से युक्त इस लोक के सामने सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय को विस्तारपूर्वक प्रकाशित करेंगे। (हम दोनों) उसको सुनने के लिए चलें। हे कुलपुत्रो! ऐसा कहने पर राजा की पत्नी विमलदत्ता विमलगर्भ (नामक) पुत्र से तथा विमलनेत्र नामक पुत्र से यह बोली—हे कुलपुत्रो! यह तुम दोनों का पिता राजा शुभव्यूह ब्राह्मणों में आसक्त हैं। अतः, तुम तथागत के दर्शन के लिए नहीं जाने पाओगे। तदनन्तर, हे कुलपुत्रो! विमलनेत्र (नामक) पुत्र तथा विमलगर्भ (नामक) पुत्र (दोनों) दसों उँगलियों को जोड़कर (हाथ जोड़कर) अपनी उस जन्मदात्री माता से यह बोले—हम दोनों इस मिथ्यादृष्टिवाले कुल में उत्पन्न हुए हैं, फिर भी हम धर्मराज के पुत्र हैं। तदनन्तर, हे कुलपुत्रो! राजा की पत्नी विमलदत्ता उन दोनों पुत्रों से यह बोली—हे कुलपुत्रो! तुम दोनों धन्य हो। तुम दोनों उन अपने पिता राजा शुभव्यूह की भलाई के लिए कोई प्रातिहार्य दिखलाओ, जिससे कि वह तुम लोगों पर कृपा करें और प्रसन्नचित्त होकर हमलोगों को उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ के निकट जाने की आज्ञा दे दें।

अथ खलु कुलपुत्रा विमलगर्भो दारको विमलनेत्रश्च दारकस्तस्यां वेलायां सप्ततालमात्रं वैहायसमभ्युद्गम्य तस्य पितू राज्ञः शुभव्यूहस्यानुकम्पायै बुद्धानुज्ञातानि यमकानि प्रातिहार्याण्यकुरुताम्। तौ तत्रैवान्तरीक्षे गतौ शय्यामकल्पयतां तत्रैवान्तरीक्षे चंक्रमतस्तत्रैवान्तरीक्षे रजो व्युधुनीतां तत्रैवान्तरीक्षेऽधःकायाद्वारिधारां प्रमुमोचतुरूर्ध्वकायादग्निस्कन्धं प्रज्वालयतः स्मोर्ध्वकायाद्वारिधारां प्रमुमोचतुरधःकायादग्निस्कन्धं प्रज्वालयतः स्म। तौ तस्मिन्नेवाकाशे महान्तौ भूत्वा खुड्डुकौ भवतः खुड्डुकौ भूत्वा महान्तौ भवतः। तस्मिन्नेवान्तरीक्षेऽन्तर्धायतः पृथिव्यामुन्मज्जतः पृथिव्यामुन्मज्जित्वाकाश उन्मज्जतः। इयद्भिः खलु पुनः कुलपुत्रा ऋद्धिप्रातिहार्यैस्ताभ्यां द्वाभ्यां दारकाभ्यां स शुभव्यूहो राजा स्वपिता विनीतः। अथ खलु कुलपुत्राः स राजा शुभव्यूहस्तयोर्दारकयोस्तमृद्धिप्रातिहार्यं दृष्ट्वा तस्यां वेलायां तुष्ट उदग्र आत्तमनाः प्रमुदितः प्रीतिसौमनस्यजातो दशनखमञ्जलिं प्रगृह्य तौ दारकावेतदवोचत्। को युवयोः कुलपुत्रौ शास्ता कस्य वा युवां शिष्याविति। अथ खलु कुलपुत्रास्तौ द्वौ दारकौ तं राजानं शुभव्यूहमेतदवोचत्। एष स महाराज भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तिष्ठति ध्रियते यापयति रत्नमये बोधिवृक्षमूले धर्मासनोपविष्टः सदेवकस्य लोकस्य पुरतः सद्धर्मपुण्डरीकं नाम धर्मपर्यायं विस्तरेण संप्रकाशयति। स

आवयोर्भगवान् शास्ता तस्यावां महाराज शिष्यौ । अथ खलु कुलपुत्राः स राजा शुभव्यूहस्तौ दारकावेतदवोचत् । पश्यामो वयं कुलपुत्रौ तं युवयोः शास्तारम् । गमिष्यामो वयं तस्य भगवतः सकाशम् ।

तदनन्तर, हे कुलपुत्रो ! विमलगर्भ (नामक) पुत्र तथा विमलनेत्र (नामक) पुत्र दोनों ने उस समय आकाश में सात ताल ऊँचे उठकर उन (अपने) पिता राजा शुभव्यूह की भलाई के लिए बुद्ध के द्वारा बताये गये यमकप्रातिहार्य किये । उन दोनों ने वहीं अन्तरिक्ष में जाकर शय्या बनवाई। (वे) वहीं अन्तरिक्ष में घूमते रहे, वहीं अन्तरिक्ष में उन्होंने धूल उड़ाई, वहीं अन्तरिक्ष में शरीर के अधोभाग से जल की धारा निकाली, ऊर्ध्वभाग से अग्नि प्रज्वलित की, शरीर के ऊर्ध्वभाग से जल की धारा निकाली तथा शरीर के अधोभाग से अग्नि प्रज्वलित की । वे उसी आकाश में कभी विशालकाय होकर लघुकाय हो गये और कभी लघुकाय होकर विशालकाय हो गये। वे दोनों उसी अन्तरिक्ष में अन्तर्हित हो गये और पृथ्वी पर निकले । पृथ्वी से निकलकर आकाश से निकले। पुनः, हे कुलपुत्रो ! इन अलौकिक प्रातिहार्यों के द्वारा उन दोनों ने अपने पिता उन राजा शुभव्यूह को दीक्षित कर दिया । तदनन्तर, हे कुलपुत्रो ! वह राजा शुभव्यूह उन दोनों पुत्रों के अलौकिक प्रातिहार्य को देखकर तुष्ट, उदग्र, आत्तमना एवं प्रमुदित हुआ तथा (उसके हृदय में) प्रीति एवं सौमनस्य उत्पन्न हुआ, वह दसों उँगलियों को मिलाकर, (हाथ जोड़कर) उन दोनों पुत्रों से यह बोला—हे कुलपुत्रो ! तुम लोगों का कौन गुरु है अथवा तुम किसके शिष्य हो । तदनन्तर, हे कुलपुत्रो ! वे दोनों पुत्र उन राजा शुभव्यूह से यह बोले—जो यह महाराज अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ विराजमान हैं, स्थिर हैं एवं यापन करते हैं, वे ही रत्नमय बोधिवृक्ष के नीचे धर्मासन पर बैठकर देवों से युक्त संसार के सामने सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय को विस्तारपूर्वक प्रकाशित करते हैं । वे ही भगवान् हमारे गुरु हैं और हे महाराज ! उन्हीं के हम शिष्य हैं । तदनन्तर, हे कुलपुत्रो ! वह राजा शुभव्यूह दोनों पुत्रों से यह बोला—हे कुलपुत्रों ! हम तुम दोनों के शास्ता को देखेंगे । उन भगवान् के निकट हम जायेंगे ।

अथ खलु कुलपुत्रास्तौ द्वौ दारकौ ततोऽन्तरीक्षादवतीर्य येन स्वमाता जनयित्री तेनोपसंक्रामतामुपसंक्रम्य दशनखमञ्जलिं प्रगृह्य स्वमातरं जनयित्रीमेतदवोचताम् । एष आवाभ्यामम्ब विनीतः स्वपितानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । कृतमावाभ्यां पितुः शास्तृकृत्यम् । तदिदानीमुत्स्रष्टुमर्हस्यावां तस्य भगवतः सकाशे प्रव्रजिष्याव इति ।

तदनन्तर, हे कुलपुत्र ! वे दोनों लड़के उस अन्तरिक्ष से उतरकर जिधर उनकी (अपनी) जन्मदात्री माता थी, उधर गये और पूर्ण रूप से हाथ जोड़कर अपनी जन्मदात्री माता से यह बोले—हे माता ! हमने अपने उन पिता को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में

दीक्षित कर लिया है । हम दोनों ने अपने पिता के गुरु का काम किया है । अतः, इस समय हम दोनों को छोड़ दो । हम दोनों उन भगवान् के निकट जाकर प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे ।

अथ खलु कुलपुत्रा विमलगर्भो दारको विमलनेत्रश्च दारकस्तस्यां वेलायां स्वमातरं जनयित्रीं गाथाभ्यामध्यभाषताम् ।

तदनन्तर, हे कुलपुत्रो ! विमलगर्भ (नामक) पुत्र तथा विमलनेत्र (नामक) पुत्र दोनों उस समय अपनी जन्मदात्री माता से इन दो गाथाओं द्वारा बोले—

अनुजानीह्यावयोरम्ब प्रव्रज्यामनगारिकाम् ।
आवां वै प्रव्रजिष्यावो दुर्लभो हि तथागतः ।।१।।

हे माता ! हम दोनों को अनगारिका-प्रव्रज्या ग्रहण करने की आज्ञा दो । हम प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे; क्योंकि तथागत दुर्लभ हैं।

औदुम्बरं यथा पुष्पं सुदुर्लभतरो जिनः ।
उत्सृज्य प्रव्रजिष्यावो दुर्लभा क्षणसंपदा ।।२।।

गूलर के फूल के समान जिन अत्यन्त दुर्लभ हैं । हम दोनों (सब कुछ) त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे, यतः ऐसा अमूल्य क्षण दुर्लभ होता है ।

विमलदत्ता राजभार्याह ।

राजमहिषी विमलदत्ता ने कहा—

उत्सृजामि युवामद्य गच्छथा साधु दारकौ ।
वयं पि प्रव्रजिष्यामो दुर्लभो हि तथागतः ।।३।। इति ।

आज मैं तुम दोनों को छोड़ देती हूँ (मुक्त कर देती हूँ) । हे पुत्रो ! अच्छी तरह जाओ । हम भी प्रव्रजित होंगे । यतः, तथागत दुर्लभ हैं ।

अथ खलु कुलपुत्रास्तौ द्वौ दारकाविमे गाथे भाषित्वा तौ मातापितरावेदवोचताम् । साध्वम्ब तातैत वयं सर्वे सहिता भूत्वा गमिष्यामस्तस्य भगतोव जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक् संबुद्धस्य सकाशमुपसंक्रमिष्यामस्तं भगवन्तं दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय धर्मश्रवणाय । तत् कस्य होतोः । दुर्लभो ह्यम्ब तात बुद्धोत्पाद उदुम्बरपुष्पसदृशो महार्णवयुगच्छिद्रकूर्मग्रीवाप्रवेशवत् । दुर्लभप्रादुर्भावा अम्ब बुद्धा भगवन्तः । तस्मात्तर्ह्यम्ब तात परमपुण्योपस्तब्धा वयमीदृशे प्रवचन उपपन्नाः । तत् साध्वम्ब तातोत्सृजध्वमावां गमिष्यावस्तस्य भगवतो जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्-

संबुद्धस्य सकाशे प्रव्रजिष्यावः । दुर्लभं ह्यम्ब तात तथागतानां दर्शनम् । दुर्लभो ह्यद्य कालः । ईदृशो धर्मराजा । परमदुर्लभेदृशी क्षणसंपत् ।

तदनन्तर, हे कुलपुत्रो ! वे दोनों लड़के ये दो गाथाएँ कहकर उन माता-पिता से यह वोले—हे माता ! हे पिता ! आओ । हम सब मिलकर उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् जलधरगर्जितवोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ के निकट उन भगवान् के दर्शन वन्दन एवं पर्युपासन तथा उनसे धर्मोपदेश सुनने के लिए चलें । यह किसलिए ? क्योंकि, हे माता ! हे पिता ! बुद्ध का उत्पन्न होना गूलर के फूल के समान एवं महासमुद्र के युगच्छिद्र में कछुआ की गरदन के प्रवेश करने के समान दुर्लभ है। हे माता ! भगवान् बुद्धों का प्रादुर्भाव दुर्लभ है, अतः हे माता ! हे पिता ! इस प्रकार के प्रवचन में उत्पन्न होकर हमलोग परम पुण्य के भागी हैं । अतः, हे माता ! हे पिता ! हम दोनों को मुक्त कर दो । हम दोनों उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ के निकट जायेंगे और प्रव्रजित होंगे । हे माता ! हे पिता ! तथागतों के दर्शन दुर्लभ हैं । आज का समय भी दुर्लभ है । इस तरह का धर्म का राजा भी दुर्लभ है । इस तरह का मूल्यवान् समय तो अत्यन्त दुर्लभ है ।

तेन खलु पुनः कुलपुत्राः समयेन तस्य राज्ञः शुभव्यूहस्यान्तःपुराच्चतुरशीतिरन्तःपुरिकासहस्राण्यस्य सद्धर्मपुण्डरीकस्य धर्मपर्यायस्य भाजनभूतान्यभूवन् । विमलनेत्रश्च दारकोऽस्मिन् धर्मपर्याये चरितावी विमलगर्भश्च दारको बहुकल्पकोटीनयुतशतसहस्राणि सर्वसत्त्वपापजहने समाधौ चरितोऽभूत् किमिति सर्वसत्त्वाः सर्वपापं जहेयुरिति । सा च तयोर्दारकयोर्माता विमलदत्ता राजभार्या सर्वबुद्धसंगीतिं सर्वबुद्धधर्मगुह्यस्थानानि च संजानीते स्म । अथ खलु कुलपुत्रा राजा शुभव्यूहस्ताभ्यां द्वाभ्यां दारकाभ्यां तथागतशासने विनीतोऽवतारितश्च परिपाचितश्च सर्वस्वजनपरिवारः सा च विमलदत्ता राजभार्या सर्वस्वजनपरिवारा तौ च द्वौ दारकौ राज्ञः शुभव्यहस्य पुत्रौ द्वाचत्वारिंशद्भिः प्राणिसहस्रैः सार्द्धं सान्तःपुरौ सामात्यौ सर्वे सहिताः समग्रा येन भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञस्तथागतोऽर्हन् सम्यक् संबुद्धस्तेनोपसंक्रामन्नुपसंक्रम्य तस्य भगवतः पादौ शिरसाभिवन्द्य तं भगवन्तं त्रिष्कृत्वः प्रदक्षिणीकृत्यैकान्ते तस्थुः ।

तदनन्तर, हे कुलपुत्रो ! उस समय उन राजा शुभव्यूह के अन्तःपुर की चौरासी सहस्र स्त्रियाँ उस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय के (उपदेश) का पात्र वन गई । विमलनेत्र (नामक) पुत्र ने इस धर्मपर्याय का आचरण किया तथा विमलगर्भ (नामक) पुत्र ने अनेक कोटीनयुत शतसहस्र कल्पों तक सर्वसत्त्वपापजहन समाधि का अभ्यास

किया । यथा, सभी प्राणी सभी पापों से मुक्त हो जायँ । उन दोनों पुत्रों की माता राजमहिषी विमलदत्ता ने पूर्णबुद्धसंगीति एवं धर्म के सभी गुह्यस्थानों को जान लिया। तदनन्तर, हे कुलपुत्रो ! अपने उन दो पुत्रों के द्वारा तथागत के शासन में विनीत, अवतरित एवं परिपाचित अपने सभी स्वजनों के साथ राजा शुभव्यूह तथा वह राजमहिषी विमलदत्ता तथा बयालीस हजार प्राणियों, अन्तःपुर की स्त्रियों एवं मन्त्रियों के साथ वे दोनों लड़के राजा, शुभव्यूह के पुत्र, ये सभी मिलकर एक साथ जिधर तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ थे, उधर गये और निकट जाकर उन भगवान् के चरणों में शिरसाभिवादन करके तथा उन भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा करके एक ओर खड़े हो गये ।

अथ खलु कुलपुत्राः स भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो राजानं शुभव्यूहं सपरिवारमुपसंक्रान्तं विदित्वा धार्म्या कथया संदर्शयति समादापयति समुत्तेजयति संप्रहर्षयति । अथ खलु कुलपुत्रा राजा शुभव्यहस्तेन भगवता धार्म्या कथया साधु च सुष्ठु च संदर्शितः समादापितः समुत्तेजितः संप्रहर्षितस्तस्यां वेलायां तुष्ट उदग्र आत्तमनाः प्रमुदितः प्रीतिसौमनस्यजातः कनीयसो भ्रातुः पट्टं बद्ध्वा राज्ये प्रतिष्ठाप्य सपुत्रस्वजनपरिवारः सा च विमलदत्ता राजभार्या सर्वस्त्रीगणपरिवारा तौ च द्वौ दारकौ सार्धं तैर्द्वाचत्वारिंशद्भिः प्राणिसहस्रैः सर्वे सहिताः समग्रास्तस्य भगवतो जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य प्रवचने श्रद्धयागारादनगारिकां प्रव्रजिताः । प्रव्रजित्वा च राजा शुभव्यूहः सपरिवारश्चतुरशीतिवर्षसहस्राण्यभियुक्तो विजहार इमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं चिन्तयन् भावयन् पर्यवदापयन् । अथ खलु कुलपुत्राः स राजा शुभव्यूहस्तेषां चतुरशीतीनां वर्षसहस्राणामत्ययेन सर्वगुणालङ्कारव्यूहं नाम समाधिं प्रतिलभते स्म । सहप्रतिलब्धाच्चास्य समाधेरथ तावदेव सप्ततालमात्रं वैहायसमभ्युद्गच्छति स्म ।

तदनन्तर, हे कुलपुत्रो ! वह तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ राजा शुभव्यूह को सपरिवार आया जानकर धार्मी कथाओं के द्वारा (उनको) सन्दर्शित, समादापित, समुत्तेजित एवं सम्प्रहर्षित करने लगे । तदनन्तर, हे कुलपुत्रो ! राजा शुभव्यूह उन भगवान् के द्वारा धार्मी कथाओं से, अच्छी तरह से, पूर्णरूप से सन्दर्शित, समादापित, समुत्तेजित एवं सम्प्रहर्षित होकर उस समय तुष्ट, उदग्र, आत्तमना एवं प्रमुदित हुए तथा उनके हृदय में प्रीति और सौमनस्य उत्पन्न हुआ और (अपन) छोटे भाई के (मस्तक पर) पट्ट बाँधकर, उसको राज्य पर प्रतिष्ठित करके

अपने पुत्र एवं परिवार के साथ वह राजा शुभव्यूह तथा सभी स्त्रियों के साथ वह राजमहिषी विमलदत्ता तथा उन बयालीस सहस्र प्राणियों के साथ वे दोनों लड़के---ये सभी मिलकर एक साथ उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ के उपदेशों में श्रद्धा रखते हुए घर-द्वार छोड़कर अनगारिक रूप से प्रव्रजित हो गये। प्रव्रजित होकर राजा शुभव्यूह ने सपरिवार इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का चिन्तन, मनन एवं पर्यवदापन करते हुए चौरासी सहस्र वर्षों तक तत्परतापूर्वक विहार किया। तदनन्तर, हे कुलपुत्रो! उस राजा शुभव्यूह ने उन चौरासी सहस्र वर्षों के बीत जाने पर 'सर्वगुणालंकारव्यूह' नामक समाधि प्राप्त की। इस समाधि के प्राप्त करने के साथ ही (वह) आकाश में सात ताल की ऊँचाई पर उठ गया।

अथ खलु कुलपुत्राः स राजा शुभव्यूहो गगनतले स्थितस्तं भगवन्तं जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धमेतदवोचत्। इमौ भगवन् मम पुत्रौ शास्तारौ भवतो यदहमाभ्यामृद्धिप्रातिहार्येण तस्मान्महतो दृष्टिगताद्विनिर्वर्तितस्तथागतशासने च प्रतिष्ठापितः परिपाचितश्चावतारितश्च तथागतदर्शनाय च संचोदितः। कल्याणमित्रौ भगवन् मम तौ द्वौ दारकौ पुत्ररूपेण मम गृह उपपन्नौ यदुत पूर्वकुशलमूलस्मरणार्थम्।

तदनन्तर, हे कुलपुत्रो! वह राजा शुभव्यूह आकाश में स्थित उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ से यह बोला—हे भगवन्! ये दोनों मेरे पुत्र (मेरे) गुरु हैं। क्योंकि, इन्होंने ही अलौकिक प्रातिहार्य के द्वारा मुझे उस महान् दृष्टिगत (संसार) से हटाया है तथा (मुझे) तथागत के शासन में प्रतिष्ठित, परिपाचित, अवतारित एवं तथागत के दर्शन के लिए प्रेरित किया है। हे भगवन्! मेरे वे दोनों पुत्र कल्याणमित्र हैं। तथा मुझे पूर्वजन्मकृत कुशलमूल का स्मरण दिलाने के लिए मेरे घर पुत्र-रूप से उत्पन्न हुए।

एवमुक्ते भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तं राजानं शुभव्यूहमेतदवोचत्। एवमेतन्महाराजैवमेतद् यथा वदसि। अवरोपितकुशलमूलानां हि महाराज कुलपुत्राणां कुलदुहितॄणां च सर्वेषु भवगतिच्युत्युपपत्त्यायतनेषूपपन्नानां सुलभानि भवन्ति कल्याणमित्राणि यानि शास्तृकृत्येन प्रत्युपस्थितानि भवन्ति। यान्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ शासकान्यवतारकाणि परिपाचकानि भवन्ति। उदारमेतन्महाराज स्थानं यदुत कल्याणमित्रपरिग्रहस्तथागतदर्शनसमादापकः। पश्यसि त्वं महाराजैतौ द्वौ दारकौ। आह। पश्यामि भगवन् पश्यामि सुगत।

भगवानाह । एतौ खलु पुनर्महाराज कुलपुत्रौ पञ्चषष्टीनां गङ्गानदीवालिकासमानां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामन्तिके पूजां करिष्यत इमं च सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं धारयिष्यतः सत्त्वानामनुकम्पार्थं मिथ्यादृष्टीनां च सत्त्वानां सम्यग्दृष्टये वीर्यसंजननार्थम् ।

ऐसा कहने पर तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ उस राजा शुभव्यूह से यह बोले---हे महाराज ! ठीक है । जो तुम कहते हो, वह ठीक है; क्योंकि हे महाराज ! कुशलमूल की स्थापना करनेवाले कुलपुत्रों एवं कुलकन्याओं को ही सभी भवगति, च्युति, उपपत्ति तथा आयतनों में उत्पन्न होने पर (ऐसे) कल्याणमित्र सुलभ होते हैं । जो उनके गुरु के कार्य को करते हैं तथा जो श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि (के विषय में) उनके शासक, अवतारक एवं परिपाचक होते हैं । हे महाराज ! तथागत के दर्शन करानेवाले कल्याणमित्र का पद अत्यन्त श्रेष्ठ है । हे महाराज ! तुम इन दो लड़कों को देखते हो । शुभव्यूह ने कहा---भगवन् ! देखता हूँ, सुगत ! देखता हूँ । भगवान् ने कहा---हे महाराज ! ये दोनों कुलपुत्र गंगा नदी की बालुका के पैंसठगुना के समान तथागतों, अर्हतों, सम्यक् सम्बुद्धों की पूजा करेंगे तथा प्राणियों की भलाई के लिए, मिथ्यादृष्टि प्राणियों के हृदय में सम्यक् दृष्टि के लिए एवं उनमें शक्ति उत्पन्न करने के लिए इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय को धारण करेंगे ।

अथ खलु कुलपुत्राः स राजा शुभव्यूहस्ततो गगनतलादवतीर्य दशनखमञ्जलि प्रगृह्य तं भगवन्तं जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धमेतदवोचत् । तत् साधु भगवन् निर्दिशतु तथागत कीदृशेन ज्ञानेन समन्वागतस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो येन मूर्ध्न्युष्णीषो विभाति विमलनेत्रश्च भगवान् भ्रुवोर्मध्ये चोर्णा विभाति शशिशंखपाण्डराभा सा च समसहिता दन्तावली वदनान्तरे विराजति बिम्बोष्ठश्च भगवांश्चारुनेत्रश्च सुगतः ।

तदनन्तर, हे कुलपुत्रो ! वह राजा शुभव्यूह उस आकाश से उतरकर पूर्ण अंजलि बनाकर उन तयागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् जलधरगर्जितसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ से यह बोला---अतः, हे भगवन् ! तथागत ठीक से बतायें कि तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध किस तरह के ज्ञान से युक्त हैं । जिसके (फलस्वरूप उनके) मस्तक पर पगड़ी सुशोभित होती है , भगवान् की आँखें निर्मल हैं, भौहों के मध्य में ऊर्णा सुशोभित होती है, मुख के अन्दर चन्द्रमा एवं शंख के समान श्वेत आभावाली चौरस एवं मिली हुई दाँतों की पंक्ति सुशोभित होती है । भगवान् के ओष्ठ लाल हैं तथा सुगत के नेत्र सुन्दर हैं ।

अथ खलु कुलपुत्राः स राजा शुभव्यूह इयद्भिर्गुणैस्तं भगवन्तं जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धमभिष्टुत्यान्यैश्च गुणकोटीनयुतशतसहस्रैस्तं भगवन्तमभिष्टुत्य तस्यां वेलायां तं भगवन्तं जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धमेतदवोचत् । आश्चर्यं भगवन् यावन्महार्थमिदं तथागतशासनमचिन्त्यगुणसमन्वागतश्च तथागतप्रवेदितो धर्मविनयो यावत् सुप्रज्ञप्ता च तथागतशिक्षा । अद्याग्रेण वयं भगवन्न भूयश्चित्तस्य वशगा भविष्यामो न भूयो मिथ्यादृष्टेर्वशगा भविष्यामो न भूयः क्रोधस्य वशगा भविष्यामो न भूयः पापकानां चित्तोत्पादानां वशगा भविष्यामः । एभिरहं भगवन्नियद्भिरकुशलैर्धर्मैः समन्वागतो नेच्छामि भगवतोऽन्तिकमुपसंक्रमितुम् ।

तदनन्तर, हे कुलपुत्रो ! वह राजा शुभव्यूह इतने गुणों से उन तथागत अर्हत्, सम्यक्, सम्बुद्ध, भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ की स्तुति करके तथा अन्य कोटि नयुत शतसहस्र गुणों से उन भगवान् की स्तुति करके उस समय उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ से यह बोला--हे भगवन् ! आश्चर्य है कि तथागत का यह शासन महान् अर्थ से परिपूर्ण है एवं तथागतों के द्वारा बताया गया धर्मविनय अचिन्त्य गुणों से सम्पन्न है । और, यह तथागत की शिक्षा कितनी अच्छी तरह घोषित की गई है । हे भगवन् ! आज से आगे हमलोग पुनः मन के वशीभूत नहीं होंगे, न पुनः मिथ्या दृष्टि के वशीभूत होंगे, न पुनः रोष के वशीभूत होंगे और न पुनः चित्त के पापपूर्ण विचारों के वशीभूत होंगे । हे भगवन् ! मैं उन इतने अकुशल धर्मों से युक्त होकर आपके निकट नहीं आना चाहता हूँ ।

स तस्य भगवतो जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य पादौ शिरसाभिवन्द्यान्तरीक्षगत एवास्थात् । अथ खलु स राजा शुभव्यूहः सा च विमलदत्ता राजभार्या शतसहस्रमूल्यं मुक्ताहारं भगवत उपर्यन्तरीक्षेऽक्षैप्सीत् । समनन्तरक्षिप्तश्च स मुक्ताहारस्तस्य भगवतो मूर्ध्नि मुक्ताहारः कूटागारः संस्थितोऽभूच्चतुरस्रश्चतुःस्थूणः समभागः सुविभक्तो दर्शनीयः । तस्मिंश्च कूटागारे पर्यङ्कः प्रादुर्भूतोऽनेकदूष्यशतसहस्रसंस्तृतस्तस्मिंश्च पर्यङ्के तथागतविग्रहः पर्यङ्कबद्धः संदृश्यते स्म । अथ खलु राज्ञः शुभव्यूहस्यैतदभवत् । महानुभावमिदं बुद्धज्ञानमचिन्त्यगुणसमन्वागतश्च तथागतो यत्र हि नामायं तथागतविग्रहः कूटागारमध्यगतः संदृश्यते प्रासादिको दर्शनीयः परमशुभवर्णपुष्करतया समन्वागतः ।

वह उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ के चरणों में शिरसाभिवादन करके अन्तरिक्ष में ही खड़ा रहा। तदनन्तर, उस राजा शुभव्यूह तथा उस राजमहिषी विमलदत्ता ने सौ हजार (मुद्रा) की कीमतवाला हार भगवान् के ऊपर अन्तरिक्ष में फेंका। फेंकने के अनन्तर ही वह मोती का हार भगवान् के मस्तक पर चार अस्रों से युक्त, चार स्तम्भोंवाले, समभाग, सुविभक्त एवं दर्शनीय ऊँचे भवन के रूप में खड़ा हो गया। उस कूटागार में अनेक शतसहस्र वस्तुओं से सुशोभित एक पलंग प्रादुर्भूत हुआ और उस पलंग पर पर्यंक की मुद्रा में तथागत का विग्रह दिखाई पड़ा। तदनन्तर, राजा शुभव्यूह के मन में यह (विचार) आया—यह बुद्धज्ञान महान् प्रभावशाली है एवं तथागत भी अचिन्त्य गुणों से समन्वित है। क्योंकि, कूटागार के मध्य में स्थित अत्यन्त शुभ्र वर्ण के कमल की शोभा से सम्पन्न, आनन्ददायक तथा दर्शनीय तथागत का विग्रह दिखाई पड़ रहा है।

अथ खलु भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञस्तथागतश्चतस्रः पर्षदः आमन्त्रयते स्म। पश्यथ भिक्षवो यूयं शुभव्यूहं राजानं गगनतलस्थं सिंहनादं नदन्तम्। आहुः। पश्यामो भगवन्। भगवानाह। एष खलु भिक्षवः शुभव्यूहो राजा मम शासने भिक्षुभावं कृत्वा शालेन्द्रराजो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यति विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् विस्तीर्णवत्यां लोकधातावभ्युद्गतराजो नाम स कल्पो भविष्यति। तस्य खलु पुनर्भिक्षवः शालेन्द्रराजस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्याप्रमेयो बोधिसत्त्वसंघो भविष्यत्यप्रमेयः श्रावकसंघः। समा पाणितलजाता च वैडूर्यमयी सा विस्तीर्णवती लोकधातुर्भविष्यति। एवमचिन्त्यः स तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो भविष्यति। स्यात् खलु पुनः कुलपुत्रा युष्माकं काङ्क्षा वा विमतिर्वा विचिकित्सा वा अन्यः स तेन कालेन तेन समयेन शुभव्यूहो नाम राजाभूत्। न खलु पुनः कुलपुत्रा युष्माभिरेवं द्रष्टव्यम्। तत् कस्य हेतोः। अयमेव स पद्मश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तेन कालेन तेन समयेन शुभव्यूहो नाम राजाभूत्। स्यात् खलु पुनः कुलपुत्रा युष्माकं काङ्क्षा वा विमतिर्वा विचिकित्सा वा अन्या सा तेन कालेन तेन समयेन विमलदत्ता नाम राजभार्याभूत्। न खलु पुनः कुलपुत्रा युष्माभिरेवं द्रष्टव्यम्। तत् कस्य हेतोः। अयं स वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डितध्वजराजो नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तेन कालेन तेन समयेन विमलदत्ता नाम राजभार्याभूत् तस्य राज्ञः शुभव्यूहस्यानुकम्पायै तेषां च सत्त्वानां राज्ञः शुभव्यूहस्य भार्यात्वमभ्युपगतोऽभूत्। स्यात् खलु पुनः कुलपुत्रा युष्माकं काङ्क्षा वा विमतिर्वा विचिकित्सा

वा अन्यौ तौ तेन कालेन तेन समयेन द्वौ दारकावभूताम् । न खलु पुनः कुलपुत्रा युष्माभिरेवं द्रष्टव्यम् । तत्कस्य हेतोः । इमौ तौ भैषज्यराजश्च भैषज्यसमुद्गतश्च तेन कालेन तेन समयेन तस्य राज्ञः शुभव्यूहस्य पुत्रावभूताम् । एवमचिन्त्यगुणसमन्वागतौ कुलपुत्रा भैषज्यराजो भैषज्यसमुद्गतश्च बोधिसत्त्वौ महासत्त्वौ बहुबुद्धकोटीनयुतशतसहस्रावरोपितकुशलमूलावेतावुभावपि सत्पुरुषावचिन्त्यधर्मसमन्वागतौ । ये चैतयोः सत्पुरुषयोर्नामधेयं धारयिष्यन्ति ते सर्वे नमस्करणीया भविष्यन्ति सदेवकेन लोकेन ।

तत्पश्चात्, तथागत भगवान् जलधरगर्जितघोषसुस्वरनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ने चारों परिषदों से कहा—हे भिक्षुओ ! तुमलोग आकाशस्थित एवं सिंहनाद करते हुए राजा शुभव्यूह को देखो । (वे) बोले—हे भगवन् ! हम देख रहे हैं । भगवान् बोले—हे भिक्षुओ ! यह शुभव्यूह मेरे शासन में भिक्षुत्व ग्रहण करके इस लोक में विस्तीर्णावती लोकधातु में तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, ज्ञान और सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ दमनीय पुरुषों का नियन्ता, देवों और मनुष्यों का शास्ता शालेन्द्रराज नामक भगवान् बुद्ध होगा । उसका नाम अभ्युद्गतराज होगा । पुनः, हे भिक्षुओ ! उस तथागत, अर्हत्, सम्यक्, सम्बुद्ध, भगवान् शालेन्द्रराज का अप्रमेय बोधिसत्त्वसंघ होगा और अप्रमेय श्रावकसंघ होगा । वह विस्तीर्णावती लोकधातु हथेली के समान चौरस तथा वैदूर्य-निर्मित होगी और वह तथागत, सम्यक् सम्बुद्ध, अचिन्त्य होगा । पुनः, हे कुलपुत्रो ! शायद तुमलोगों को कांक्षा हो, विमति हो या विचिकित्सा हो कि उस काल में, उस समय वह शुभव्यूह नामक राजा कोई दूसरा व्यक्ति था । हे कुलपुत्रो ! तुमलोगों को ऐसा नहीं सोचना चाहिए । ऐसा क्यों (नहीं सोचना चाहिए) ? क्योंकि, महासत्त्व बोधिसत्त्व पद्मश्री उस काल में उस समय शुभव्यूह नामक राजा था । हे कुलपुत्रो ! शायद तुमलोगों को कांक्षा हो, विमति हो अथवा विचिकित्सा हो कि उस काल में उस समय वह राजमहिषी विमलदत्ता कोई दूसरी थी । हे कुलपुत्रो ! ऐसा तुम्हें नहीं सोचना चाहिए । ऐसा क्यों (नहीं सोचना चाहिए) ? यतः, यही वह महासत्त्व बोधिसत्त्व वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डितध्वजराज उस काल में उस समय विमलदत्ता नामक राजमहिषी था । उस राजा शुभव्यूह तथा उन प्राणियों की भलाई के लिए वह राजा शुभव्यूह की पत्नी बना था । हे कुलपुत्रो ! शायद तुमलोगों को कांक्षा हो, विमति हो, विचिकित्सा हो, उस काल में उस समय वे दो पुत्र दूसरे व्यक्ति थे । हे कुलपुत्रो ! तुमलोगों को ऐसा नहीं सोचना चाहिए । ऐसा क्यों (नहीं सोचना चाहिए) ? यतः, हे कुलपुत्रो ! भैषज्यराज तथा भैषज्यसमुद्गत ये दोनों ही उस काल में उस समय उस राजा शुभव्यूह के पुत्र थे । हे कुलपुत्रो ! इस प्रकार, भैषज्यराज एवं भैषज्यसमुद्गत ये दोनों बोधिसत्त्व महासत्त्व अचिन्त्य गुणों से सम्पन्न अनेक कोटि नयुत शतसहस्र बुद्धों के द्वारा कुशलमूल की

स्थापना करनेवाले एवं अचिन्त्य धर्मों से सम्पन्न सत्पुरुष थे। जो इन दोनों सत्पुरुषों के नाम स्मरण रखेंगे, वे सभी देवों से युक्त इस लोक के नमस्करणीय होंगे।

अस्मिन् खलु पुनः पूर्वयोगपरिवर्ते भाष्यमाणे चतुरशीतीनां प्राणिसहस्राणां विरजो विगतमलं धर्मेषु धर्मचक्षुर्विशुद्धम् ।

इस पूर्वयोगपरिवर्त के उपदेश के समय में ही चौरासी सहस्र प्राणियों की धर्मचक्षु धर्मों के विषय में विरज, निर्मल एवं विशुद्ध हो गई।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये शुभव्यूहराजपूर्वयोगपरिवर्तो नाम पञ्चविंशतिमः ।।२५।।

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का पच्चीसवाँ शुभव्यूहराजपूर्वयोगपरिवर्त्त समाप्त हुआ।

समन्तभद्रोत्साहनपरिवर्त

अथ खलु समन्तभद्रो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः पूर्वस्यां दिशि गणनां समतिक्रान्तैर्बोधिसत्त्वैर्महासत्त्वैः सार्धं परिवृतः पुरस्कृतः प्रकम्पद्भिः क्षेत्रैः प्रवर्षद्भिः पद्मैः प्रवाद्यमानैस्तूर्यकोटीनयुतशतसहस्रैर्महता बोधिसत्त्वानुभावेन महत्या बोधिसत्त्वविकुर्वया महत्या बोधिसत्त्वर्द्ध्या महता बोधिसत्त्वमाहात्म्येन महता बोधिसत्त्वसमाहितेन महता बोधिसत्त्वतेजसा जाज्वल्यमानेन महता बोधिसत्त्वयानेन महता बोधिसत्त्वप्रातिहार्येण महद्भिर्देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्यैः परिवृतः पुरस्कृत एवमचिन्त्यैर्ऋद्धिप्रातिहार्यैः समन्तभद्रो बोधिसत्त्वो महासत्त्व इमां लोकधातुं संप्राप्तः। स येन गृध्रकूटः पर्वतराजो येन च भगवांस्तेनोपसंक्रामदुपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरसाभिवन्द्य सप्तकृत्वः प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तमेतदवोचत्। अहं भगवंस्तस्य भगवतो रत्नतेजोऽभ्युद्गतराजस्य तथागतस्य बुद्धक्षेत्रादिहागत इह भगवन् सहायां लोकधातावयं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायो देश्यत इति तमहं श्रवणायागतो भगवतः शाक्यमुनेस्तथागतस्य सकाशममूनि च भगवन्नेतावन्ति बोधिसत्त्वशतसहस्राणीमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं श्रवणायागतानि। तत् साधु भगवन् देशयतु तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध इमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायमेषां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां विस्तरेण। एवमुक्ते भगवान् समन्तभद्रं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत्। उद्घटितज्ञा हि कुलपुत्रैते बोधिसत्त्वा महासत्त्वाः। अपि त्वयं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायो यदुतासंभिन्नतथता। ते बोधिसत्त्वा आहुः। एवमेतद् भगवन्नेवमेतत् सुगत। अथ खलु यास्तस्यां पर्षदि भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकाश्च संनिपतितास्तासां सद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये प्रतिष्ठापनार्थं पुनरपि भगवान् समन्तभद्रं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत्। चतुर्भिः कुलपुत्र धर्मैः समन्वागतस्य मातृग्रामस्यायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायो हस्तगतो भविष्यति। कतमैश्चतुर्भिः। यदुत बुद्धैर्भगवद्भिरधिष्ठितो भविष्यत्यवरोपितकुशलमूलश्च भविष्यति नियतराशिव्यवस्थितश्च भविष्यति सर्वसत्त्वपरित्राणार्थमनुत्तरायां सम्यक्संबुद्धौ चित्तमुत्पादयिष्यति। एभिः कुलपुत्र चतुर्भिर्धर्मैः समन्वागतस्य मातृग्रामस्यायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायो हस्तगतो भविष्यति।

एकबार पूर्वदिशा में जबकि क्षेत्र काँप रहे थे, कमलों की वर्षा हो रही थी एवं कोटीनयुत शतसहस्र तूर्य बज रहे थे, महासत्त्व बोधिसत्त्व समन्तभद्र गणना से परे महासत्त्व बोधिसत्त्वों से परिवृत एवं पुरस्कृत बोधिसत्त्व के महान् अनुभाव, बोधिसत्त्व की महती विकुर्वा, बोधिसत्त्व की महती ऋद्धि, बोधिसत्त्व के महान् माहात्म्य, बोधिसत्त्व के महान् समाहित, बोधिसत्त्व के महान् तेज, बोधिसत्त्व के जाज्वल्यमान तथा महान् यान एवं बोधिसत्त्व के महान् प्रातिहार्य से (सम्पन्न) बड़े-बड़े देव, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य तथा मनुष्येतर प्राणियों से परिवृत एवं पुरस्कृत तथा इस प्रकार की (अन्य) अचिन्त्य ऋद्धियों एवं प्रातिहार्यों से सम्पन्न (वे) महासत्त्व बोधिसत्त्व समन्तभद्र इस लोकधातु में आये । जिधर पर्वतराज गृध्रकूट था तथा जिधर भगवान् थे, उधर (वे) गये और जाकर भगवान् के चरणों में शिरसाभिवादन करके सात बार प्रदक्षिणा करके भगवान् से यह बोले—हे भगवन् ! मैं उन तथागत, भगवान् रत्नतेजोभ्युद्गतराज के बुद्धक्षेत्र से यहाँ आया हूँ ! हे भगवन् ! इस सहा लोकधातु में इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय की देशना होती है । ऐसा जानकर उसे सुनने के लिए तथागत भगवान् शाक्यमुनि के निकट आया हूँ । और, हे भगवन् ! ये इतने शतसहस्र बोधिसत्त्व भी इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय को सुनने के लिए आये हैं । अतः, हे भगवन् ! तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय की इन बोधिसत्त्व महासत्त्वों को अच्छी तरह विस्तारपूर्वक देशना करें । ऐसा कहने पर भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व समन्तभद्र से यह बोले—हे कुलपुत्र ! ये महासत्त्व बोधिसत्त्व धर्म को जाननेवाले हैं और यह सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय धर्म से असम्भिन्न और तद्वत् है । वे बोधिसत्त्व बोले—हे भगवन् ! यह ऐसा ही है । हे सुगत ! यह ऐसा ही है । तदनन्तर, उस परिषद् में जो भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक और उपासिका एकत्र थे, उनको सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय में प्रतिष्ठित करने के लिए भगवान् उन महासत्त्व बोधिसत्त्व समन्तभद्र से यह बोले—हे कुलपुत्र । चार धर्मों से सम्पन्न स्त्री का इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय पर अधिकार होगा । किन चार धर्मों से (सम्पन्न) ? (जो) भगवान् बुद्धों से अधिष्ठित होगी, जिसने कुशलमूल का आरोपण किया होगा, जो निरयराशि में व्यवस्थित होगी तथा जो सभी प्राणियों की रक्षा के लिए श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में अपना ध्यान लगायगी । हे कुलपुत्र ! इन चार धर्मों से समन्वित स्त्री का ही सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय पर अधिकार होगा ।

अथ खलु समन्तभद्रो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत् । अहं भगवन् पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां वर्तमानायामेवंरूपाणां सूत्रान्तधारकाणां भिक्षूणां रक्षां करिष्यामि स्वस्त्ययनं करिष्यामि दण्डपरिहारं करिष्यामि विषदूषणं करिष्यामि यथा न कश्चित्तेषां धर्मभाणकानामवतारप्रेक्ष्यवतारगवेष्यवतारं लप्स्यते न मारः पापीयानवतारप्रेक्ष्यवतारगवेष्यवतारं लप्स्यते न मारपुत्रा न मारकायिका देवपुत्रा न मारकन्या न मारपार्षद्या यावन्न

भूयो मारपर्युत्थितो भविष्यति । न देवपुत्रा न यक्षा न प्रेता न पूतना न कृत्या न वेताड़ास्तस्य धर्मभाणकस्यावतारप्रेक्षिणोऽवतारगवेषिणोऽवतारं लप्स्यन्ते । अहं भगवंस्तस्य धर्मभाणकस्य सततसमितं नित्यकालं रक्षां करिष्यामि । यदा च स धर्मभाणकोऽस्मिन् धर्मपर्याये चिन्तायोगमनुयुक्तश्चंक्रमाभिरूढो भविष्यति तदाहं भगवंस्तस्य धर्मभाणकस्यान्तिके श्वेतषड्दन्तं गजराजमभिरुह्य तस्य धर्मभाणकस्य चंक्रमकुटीमुपसंक्रमिष्यामि बोधिसत्त्वगणपरिवृतोऽस्य धर्मपर्यायस्यारक्षाय । यदा पुनस्तस्य धर्मभाणकस्यास्मिन् धर्मपर्याये चिन्तायोगमनुयुक्तस्य सत इतो धर्मपर्यायादन्तशः पदव्यञ्जनं परिभ्रष्टं भविष्यति तदाहं तस्मिन् श्वेतषड्दन्ते गजराजेऽभिरुह्य तस्य धर्मभाणकस्य संमुखमुपदर्शयित्वा इमं धर्मपर्यायमविकलं प्रत्युच्चारयिष्यामि । स च धर्मभाणको ममात्मभावं दृष्ट्वेमं च धर्मपर्यायमविकलं ममान्तिकाच्छ्रुत्वा तुष्ट उदग्र आत्तमनाः प्रमुदितः प्रीतिसौमनस्यजातो भूयस्या मात्रयास्मिन् धर्मपर्याये वीर्यमारप्स्यते मम च सहदर्शनेन समाधिं प्रतिलप्स्यते धारण्यावर्त्ता च नाम धारणीं प्रतिलप्स्यते कोटीशतसहस्रावर्ता च नाम धारणीं प्रतिलप्स्यते सर्वरुतकौशल्यावर्ता च नाम धारणीं प्रतिलप्स्यते ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व समन्तभद्र भगवान् से यह बोले—हे भगवन् ! मैं अन्तिम काल में, अन्तिम समय में, अन्तिम वर्त्तमान पाँच सौ वर्षों में इस प्रकार के सूत्रधारक भिक्षुओं की रक्षा करूँगा । उनका मंगलवाचन करूँगा । उनकी दण्ड से रक्षा करूँगा तथा उनके विष (पापों) को नष्ट करूँगा, जिससे कि उन धर्मभाणकों का कोई अवतारप्रेक्षी (या) अवतारगवेषी उनके अवतार को नहीं प्राप्त कर सकेगा । उनका अवतारप्रेक्षी (या) अवतारगवेषी पापी मार भी उनके अवतार को नहीं प्राप्त कर सकेगा, और न मार के पुत्र, न मार के कायिक देवपुत्र, न मार की कन्याएँ तथा न मार के सभासद ही उनके अवतार को प्राप्त करेंगे । यहाँतक कि मार का पुनः पर्युत्थान भी नहीं होगा । उस धर्मभाणक के अवतारप्रेक्षी एवं अवतारगवेषी न देवपुत्र, न यक्ष, न प्रेत, न पूतना, न कृत्या और न बैताल ही उनके अवतार को प्राप्त कर सकेंगे । हे भगवन् ! उस धर्ममाणक की मैं सदा, निरन्तर (एवं) नित्यकाल रक्षा करूँगा । जब यह धर्मभाणक इस धर्मपर्याय के चिन्तन में मग्न होकर चंक्रमाभिरूढ होगा, तब हे भगवन् ! मैं बोधिसत्त्वगण से घिरा हुआ छह श्वेत दाँतोंवाले श्रेष्ठ हाथी पर चढ़कर उस धर्मपर्याय की रक्षा के लिए उस धर्मभाणक की चंक्रमकुटी के पास जाऊँगा । इस धर्मपर्याय के चिन्तन में तन्मय वह धर्मभाणक जब इस धर्मपर्याय के शब्द एवं वर्ण को भूलने लगेगा, तब मैं छह श्वेत दाँतोंवाले हाथी पर चढ़कर इस धर्मभाणक के सम्मुख उपस्थित होकर इस सम्पूर्ण धर्मपर्याय का अविकल रूप से प्रत्युच्चारण कराऊँगा। वह धर्मभाणक

मेरे स्वरूप को देखकर (तथा) इस धर्मपर्याय को मुझसे अविकल रूप से सुनकर तुष्ट, उदग्र, आत्तमना एवं प्रमुदित होगा तथा उसके हृदय में प्रीति एवं सौमनस्य उत्पन्न होगा तथा (वह) विशेष मात्रा में इस धर्मपर्याय की प्राप्ति के लिए प्रयास करने लगेगा और मेरे दर्शन करते ही समाधि प्राप्त कर लेगा तथा 'धारण्यावर्त्ता' नामक धारणी प्राप्त करेगा, 'कोटीशतसहस्रावर्त्ता' नामक धारणी प्राप्त करेगा एवं 'सर्वरुतकौशल्यावर्त्ता' नामक धारणी प्राप्त करेगा ।

ये च भगवन् पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां भिक्षवो वा भिक्षुण्यो वोपासका वोपासिका वैवं सूत्रान्तधारका एवं सूत्रान्तलेखका एवं सूत्रान्तमार्गका एवं सूत्रान्तवाचका ये पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यामस्मिन् धर्मपर्याये त्रिसप्ताहमेकविंशतिदिवसानि चंक्रमाभिरूढा अभियुक्ता भविष्यन्ति तेषामहं सर्वसत्त्वप्रियदर्शनमात्मभावं संदर्शयिष्यामि । तमेव श्वेतं षड्दन्तं गजराजमभिरुह्य बोधिसत्त्वगणपरिवृत एकविंशतिमे दिवसे तेषां धर्मभाणकानां चंक्रममागमिष्यामि आगत्य च तान् धर्मभाणकान् परिसंहर्षयिष्यामि समादापयिष्यामि समुत्तेजयिष्यामि संप्रहर्षयिष्यामि । धारणीं चैषां दास्यामि यथा ते धर्मभाणका न केनचिद्धर्षणीया भविष्यन्ति न चैषां मनुष्या वामनुष्या वावतारं लप्स्यन्ते न च नार्योऽपसंहरिष्यन्ति । रक्षां चैषां करिष्यामि स्वस्त्ययनं करिष्यामि दण्डपरिहारं करिष्यामि विषदूषणं करिष्यामि । तेषां च वयं भगवन् धर्मभाणकानामिमानि धारणीपदानि दास्यामि । तानि भगवन् धारणीपदानि तद् यथा ।

अदण्डे दण्डपतिदण्डावर्तानि दण्डकुशले दण्डसुधारि सुधारि सुधारपति बुद्धपश्यने सर्वधारणी आवर्तनि संवर्तनि संघपरीक्षिते संघनिर्घातनि धर्मपरीक्षिते सर्वसत्त्वरुतकौशल्यानुगते सिंहविक्रीडिते अनुवर्ते वर्तनि वर्तालि स्वाहा ।

हे भगवन् ! अन्तिम काल में, अन्तिम समय में, अन्तिम पाँच सौ वर्षों में जो भिक्षु या भिक्षुणी, उपासक या उपासिका, सूत्रान्त के धारक, सूत्रान्त के लेखक, सूत्रान्त के खोजनेवाले एवं सूत्रान्त के वाचक होंगे तथा जो अन्तिम काल में, अन्तिम समय में, अन्तिम पाँच सौ वर्षों में इस धर्मपर्याय में तीन सप्ताह तक, इक्कीस दिनों तक निरन्तर चलते हुए रत होंगे, उनको मैं अपना सर्वसत्त्वप्रियदर्शन रूप दिखलाऊँगा । छह श्वेत दाँतोंवाले उसी श्रेष्ठ हाथी पर चढ़कर बोधिसत्त्वगण से परिवृत मैं इक्कीसवें दिन इन धर्मभाणकों के चंक्रम (भ्रमण के स्थान) पर आऊँगा और आकर इन धर्मभाणकों को प्रतिसंहर्षित, समादापित, समुत्तेजित एवं सम्प्रहर्षित करूँगा । मैं इन्हें धारणी दूँगा, जिससे ये धर्मभाणक किसी के द्वारा धर्षणीय नहीं होंगे और न मनुष्य या

न मनुष्येतर (प्राणी) इनका अवतार प्राप्त करेंगे और न स्त्रियाँ इनका अपसंहरण करेंगी। इनकी रक्षा करूँगा, (इनका) कल्याण करूँगा, (इन्हें) दण्ड से बचाऊँगा और इनके विष (पापों) को नष्ट करूँगा। हे भगवन्! उन धर्मभाणकों को मैं ये 'धारणीपद' दूँगा। हे भगवन्! धारणीपद ये हैं —

"अदण्डे दण्डपति दण्डावर्तानि दण्डकुशले दण्डसुधारि सुधारि सुधारपति बुद्धपश्यने सर्वधारणी आवर्तनि संवर्तनि संघपरीक्षिते संघनिर्घातनि धर्मपरीक्षिते सर्वसत्त्वरुतकौशल्यानुगते सिंहविक्रीडिते अनुवर्ते वर्तानि वर्तालि स्वाहा।"

इमानि तानि भगवन् धारणीपदानि यस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य श्रोत्रेन्द्रियस्यावभासमागमिष्यन्ति वेदितव्यमेतत् समन्तभद्रस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्याधिष्ठानमिति।

हे भगवन्! ये धारणीपद जिस महासत्त्व वोधिसत्त्व के कर्णेन्द्रिय के निकट आ जायेंगे, (उसे) समझना चाहिए कि यह महासत्त्व बोधिसत्त्व समन्तभद्र का अधिष्ठान है।

अयं च भगवन् सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायोऽस्मिन् जम्बुद्वीपे प्रचरमाणो येषां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां हस्तगतो भविष्यति तैर्भगवन् धर्मभाणकैरेवं वेदितव्यम्। समन्तभद्रस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्यानुभावेन यदस्माकमयं धर्मपर्यायो हस्तगतः समन्तभद्रस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य तेजसा। समन्तभद्रस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य चर्यायास्ते भगवन् सत्त्वा लाभिनो भविष्यन्ति बहुबुद्धावरोपितकुशलमूलाश्च ते सत्त्वा भविष्यन्ति तथागतपाणिपरिमार्जितमूर्धानश्च ते भगवन् सत्त्वा भविष्यन्ति। य इदं सूत्रं लिखिष्यन्ति धारयिष्यन्ति मम तैर्भगवन् प्रियं कृतं भविष्यति। य इदं सूत्रं लिखिष्यन्ति ये चास्यार्थमनुभोत्स्यन्ते लिखित्वा च ते भगवन्निदं सूत्रमितश्च्युत्वा त्रयस्त्रिंशतां देवानां सभागतायोपपत्स्यन्ते सहोपपन्नानां चैषां चतुरशीतिरप्सरसां सहस्राण्युपसंक्रमिष्यन्ति। भेरीमात्रेण मुकुटेन ते देवपुत्रास्तासामप्सरसां मध्ये स्थास्यन्ति। ईदृशः कुलपुत्रा इमं धर्मपर्यायं लिखित्वा पुण्यस्कन्धः कः पुनर्वादो य एतमुद्देक्ष्यन्ति स्वाध्यायिष्यन्ति चिन्तयिष्यन्ति मनसिकरिष्यन्ति। तस्मात्तर्हि कुलपुत्राः सत्कृत्यायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायो लिखितव्यः सर्वचेतः समन्वाहृत्य। यश्चाविक्षिप्तेन मनसिकारेण लिखिष्यति तस्य बुद्धसहस्रं हस्तमुपनामयिष्यति मरणकाले चास्य बुद्धसहस्रं संमुखमुपदर्शनं करिष्यति। न च दुर्गतिविनिपातगामी भविष्यति। इतश्च्युतश्च तुषितानां देवानां सभागतायोपपत्स्यते यत्र स मैत्रेय बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तिष्ठति द्वात्रिंशद्वरलक्षणो बोधिसत्त्वगणपरिवृतोऽप्सरःकोटीनयुतशत-

सहस्रपुरस्कृतो धर्मं देशयति । तस्मात्तर्हि कुलपुत्राः पण्डितेन कुलपुत्रेण वा कुलदुहित्रा वायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः सत्कृत्य लिखितव्यः सत्कृत्योद्देष्टव्यः सत्कृत्य स्वाध्यायितव्यः सत्कृत्य मनसिकर्त्तव्यः । इमं कुलपुत्रा धर्मपर्यायं लिखित्वोद्दिश्य स्वाध्यायित्वा भावयित्वा मनसिकृत्वैवमप्रमेया गुणा भविष्यन्ति । तस्मात्तर्हि तेन पण्डितेन भगवन् कुलपुत्रेण वा कुलदुहित्रा वायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायो धारयितव्य एतावन्तस्तेषां गुणानुशंसा भविष्यन्ति । तस्मात्तर्हि भगवन्नहमपि तावदिमं धर्मपर्यायमधिष्ठास्यामि यथा भगवन् ममाधिष्ठानेनायं धर्मपर्यायोऽस्मिन् जम्बुद्वीपे प्रचरिष्यतीति ।

हे भगवन् ! इस जम्बूद्वीप में फैलता हुआ यह सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय जिन महासत्त्व बोधिसत्त्वों को प्राप्त होगा, हे भगवन् ! उन धर्मभाणकों को ऐसा सोचना चाहिए कि यह धर्मपर्याय हमलोगों को महासत्त्व बोधिसत्त्व समन्तभद्र के प्रभाव से तथा महासत्त्व बोधिसत्त्व के तेज से प्राप्त हुआ है । वे प्राणी महासत्त्व बोधिसत्त्व समन्तभद्र की चर्या को प्राप्त करेंगे । वे प्राणी अनेक बुद्धों के द्वारा कुशलमूल को आरोपित करायेंगे तथा हे भगवन् ! उन प्राणियों का मस्तक तथागत के हाथ के स्पर्श से शुद्ध हो जायगा । जो इस सूत्र को लिखेंगे, धारण करेंगे, हे भगवन् ! वे मेरा प्रिय करेंगे । जो इस सूत्र को लिखेंगे तथा जो इसके अर्थ को समझेंगे वे इस सूत्र को लिखकर यहाँ से च्युत होकर त्रायस्त्रिश देवताओं के लोक में उत्पन्न होंगे और इनके उत्पन्न होते ही इनके निकट चौरासी सहस्र अप्सराएँ पहुँचेंगी । भेरी के समान (ऊँचे) मुकुट को धारण करके वे देवपुत्र उन अप्सराओं के बीच में रहेंगे । हे कुलपुत्रो ! इस धर्मपर्याय को लिखकर (जब) ऐसा पुण्य प्राप्त होता है, तब पुनः उनलोगों का क्या कहना, जो इसका उपदेश देंगे, स्वाध्याय करेंगे, चिन्तन करेंगे और उसे मन में धारण करेंगे । अतः, हे कुलपुत्रो ! इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय को आदरपूर्वक एवं पूर्ण ध्यान से लिखना चाहिए । जो एकाग्रचित होकर इसको लिखेगा, उसके हाथ को सहस्रों बुद्ध सहारा देंगे और मरण के समय सहस्र बुद्धों के प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त होंगे । वह दुर्गति और पतन का भागी नहीं होगा । यहाँ से च्युत होकर तुषित देवों के लोक में उत्पन्न होगा, जहाँ वत्तीस श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय रहते हैं तथा बोधिसत्त्व के गण से परिवृत तथा कोटीनयुत शतसहस्र अप्सराओं से पुरस्कृत होकर धर्म की देशना करते हैं । अतः, हे कुलपुत्रो ! चतुर कुलपुत्र या कुलकन्याओं को इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय को सत्कारपूर्वक लिखना चाहिए, (इसका) सत्कारपूर्वक उपदेश देना चाहिए, (इसका) सत्कारपूर्वक स्वाध्याय करना चाहिए तथा (इसको) सत्कारपूर्वक मन में धारण करना चाहिए । हे कुलपुत्रो ! इस धर्मपर्याय को लिखने, इसका उपदेश करने, इसको समझने और इसको मन में धारण करने से ही अप्रमेय गुण प्राप्त हो जायेंगे । अतः, हे भगवन् ! उस चतुर कुलपुत्र या कुलकन्या को इस सद्धर्मपुण्डरीक

(नामक) धर्मपर्याय को धारण करना चाहिए। इतने से ही उनको गुणों की चर्या होने लगेगी। अतः, हे भगवन्! मैं भी इस धर्मपर्याय का अधिष्ठाता बनूँगा, यतः हे भगवन्! मेरे अधिष्ठाता बनने से यह धर्मपर्याय इस जम्बूद्वीप में फैलेगा।

अथ खलु तस्यां वेलायां भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः समन्तभद्राय बोधिसत्त्वाय महासत्त्वाय साधुकारमदात्। साधु साधु समन्तभद्र यत्र हि नाम त्वमेवं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय प्रतिपन्नः एवमचिन्त्यधर्मसमन्वागतोऽसि महाकरुणासंगृहीतेनाध्याशयेनाचिन्त्यसंगृहीतेन चित्तोत्पादेन यस्त्वं स्वयमेव तेषां धर्मभाणकानामधिष्ठानं करोषि। ये केचित् कुलपुत्राः समन्तभद्रस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य नामधेयं धारयिष्यन्ति वेदितव्यं तैः शाक्यमुनिस्तथागतो दृष्ट इति। अयं च सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायस्तस्य भगवतः शाक्यमुनेरन्तिकाच्छ्रुतः शाक्यमुनिश्च तथागतस्तैः पूजितः शाक्यमुनेश्च तथागतस्य धर्मं देशयतः साधुकारोऽनुप्रदत्तः। अनुमोदितश्चायं धर्मपर्यायो भविष्यति। शाक्यमुनिना च तथागतेन तेषां मूर्ध्नि पाणिः प्रतिष्ठापितो भविष्यति। भगवांश्च शाक्यमुनिस्तैश्चीवरैरवच्छादितो भविष्यति। तथागतशासनपरिग्राहकाश्च ते समन्तभद्र कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा वेदितव्याः। न च तेषां लोकायते रुचिर्भविष्यति न काव्यप्रसृताः सत्त्वास्तेषामभिरुचिता भविष्यन्ति न नृत्तका न मल्ला न नर्लका न शौण्डिकौरभ्रिककौक्कुटिकसौकरिकस्त्रीपोषकाः सत्त्वास्तेषामभिरुचिता भविष्यन्ति। ईदृशांश्च सूत्रान्तान् श्रुत्वा लिखित्वा धारयित्वा वाचयित्वा वा न तेषामन्यदभिरुचितं भविष्यति। स्वभावधर्मसमन्वागताश्च ते सत्त्वा वेदितव्याः। प्रत्यात्मिकश्च तेषां योनिशो मनसिकारो भविष्यति। स्वपुण्यबलाधाराश्च ते सत्त्वा भविष्यन्ति प्रियदर्शनाश्च ते भविष्यन्ति सत्त्वानाम्। एवं सूत्रान्तधारकाश्च ये भिक्षवो भविष्यन्ति न तेषां रागो व्याबाधिष्यति न द्वेषो न मोहो नेर्ष्या न मात्सर्यं न म्रक्षो न मानो नाधिमानो न मिथ्यामानः। स्वलाभसंतुष्टाश्च ते समन्तभद्र धर्मभाणका भविष्यन्ति। यः समन्तभद्र पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां वर्तमानायामस्य सद्धर्मपुण्डरीकस्य धर्मपर्यायस्य धारकं भिक्षुं पश्येत् एवं चित्तमुत्पादयितव्यम्। गमिष्यत्ययं कुलपुत्रो बोधिमण्डं निर्जेष्यत्ययं कुलपुत्रो मारकलिचक्रं प्रवर्तयिष्यत्ययं धर्मचक्रं पराहनिष्यत्ययं धर्मदुन्दुभि प्रपूरयिष्यत्ययं धर्मशङ्खं प्रवर्षयिष्यत्ययं धर्मवर्षमभिरोक्ष्यत्ययं धर्मसिंहासनम्। य इमं धर्म-

पर्यायं पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां वर्तमानायां धारयिष्यन्ति न ते भिक्षवो लुब्धा भविष्यन्ति न चीवरगृद्धा न पात्रगृद्धा भविष्यन्ति । ऋजुकाश्च ते धर्मभाणका भविष्यन्ति त्रिविमोक्षलाभिनश्च ते धर्मभाणका भविष्यन्ति । दृष्टधार्मिकं च तेषां निर्वर्तिष्यति । य एवंसूत्रान्तधारकाणां धर्मभाणकानां भिक्षूणां मोहं दास्यन्ति जात्यन्धास्ते सत्त्वा भविष्यन्ति । ये चैवंरूपाणां सूत्रान्तधारकाणां भिक्षूणामवर्णं संश्रावयिष्यन्ति तेषां दृष्ट एव धर्मे कायश्चित्रो भविष्यति । य एवं सूत्रान्तलेखकानामुच्चग्घनं करिष्यन्त्युल्लपिष्यन्ति ते खण्डदन्ताश्च भविष्यन्ति विरलदन्ताश्च भविष्यन्ति बीभत्सोष्ठाश्च भविष्यन्ति चिपिटनासाश्च भविष्यन्ति विपरीतहस्तपादाश्च भविष्यन्ति विपरीतनेत्राश्च भविष्यन्ति दुर्गन्धिकायाश्च भविष्यन्ति गण्डपिटकविचर्चिदद्रुकण्ड्वाकीर्णशरीराश्च भविष्यन्ति। य ईदृशानां सूत्रान्तलेखकानां सूत्रान्तवाचकानां च सूत्रान्तधारकाणां च सूत्रान्तदेशकानां चाप्रियां वाचं भूतामभूतां वा संश्रावयिष्यन्ति तेषामिदमागाढतरं पापकं कर्म वेदितव्यम् । तस्मात्तर्हि समन्तभद्रास्य धर्मपर्यायस्य धारकाणां भिक्षूणां दूरत एव प्रत्युत्थातव्यं यथा तथागतस्यान्तिके गौरवं कर्त्तव्यं तथा तेषामेव सूत्रान्तधारकाणां भिक्षूणामेवं गौरवं कर्त्तव्यम् ।

तदनन्तर, उस समय तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि ने महासत्त्व बोधिसत्त्व समन्तभद्र को साधुवाद दिया। हे समन्तभद्र ! तुम धन्य हो । जो तुम इस प्रकार 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' लोक पर कृपा करने के लिए, महान् जनसमुदाय के लाभ, हित एवं सुख के लिए तत्पर हो एवं अचिन्त्य धर्मों से सम्पन्न हो, जो तुम महाकरुणासंगृहीत अध्याशय से (एवं) अचिन्त्यसंगृहीतचित्तोत्पाद से स्वयं उन धर्मभाणकों का अधिष्ठान करते हो। जो कुलपुत्र महासत्त्व बोधिसत्त्व समन्तभद्र के नाम को धारण करेंगे, उनके बारे में समझना चाहिए कि हमलोगों ने तथागत शाक्यमुनि को देखा है । इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय को उन भगवान् शाक्यमुनि के मुख से सुना है तथा उन लोगों ने तथागत शाक्यमुनि की पूजा की है तथा धर्म की देशना करते हुए तथागत शाक्यमुनि को उन्होंने साधुवाद दिया है । इनके द्वारा इस धर्मपर्याय का अनुमोदन किया जायगा, तथागत शाक्यमुनि उनके मस्तक पर हाथ रखेंगे तथा भगवान् शाक्यमुनि इनके द्वारा चीवरों से आच्छादित किये जायेंगे । हे समन्तभद्र ! उन कुलपुत्रों या कुलकन्याओं को तथागत के शासन के परिग्राहक समझना चाहिए । न उनकी लोकायत में रुचि होगी, न काव्य में लगे हुए प्राणी उनके प्रियपात्र होंगे और न नृत्तक, न मल्ल, न नर्त्तक, न शौण्डिक, न औरभ्रिक, न कौक्कुटिक, न सौकरिक और न स्त्रीपोषक ही उनके प्रेम के पात्र बनेंगे । इस प्रकार के सूत्रान्तों को लिखकर, सुनकर,

धारण करके या पढ़ करके उनको कोई भी अन्य वस्तु प्रिय नहीं लगेगी । उन प्राणियों को स्वाभाविक धर्म से समन्वित समझना चहिए । वे जन्म से ही प्रत्यात्मिक विचार-वाले होंगे । वे प्राणी अपने ही पुण्य के बल पर भरोसा रखनेवाले होंगे और अन्य प्राणियों को देखने में सुन्दर लगेंगे । इस प्रकार के सूत्र को जो भिक्षु धारण करेंगे, उनको न राग बाधा पहुँचायगा और न द्वेष, न मोह, न ईर्ष्या, न मात्सर्य, न म्रक्ष, न मान, न अभिमान और न मिथ्यामान (ही बाधा पहुँचायेंगे) । हे समन्तभद्र ! वे धर्मभाणक, जो कुछ उन्हें मिलेगा, उसी से सन्तुष्ट रहेंगे । हे समन्तभद्र ! जो अन्तिम काल में, अन्तिम समय में, अन्तिम पाँच सौ वर्षों में इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्म-पर्याय के धारक भिक्षुओं को देख ले, तो हमें ऐसा समझना चाहिए कि यह कुलपुत्र बोधिमण्ड को प्राप्त करेगा, यह कुलपुत्र मार एवं कलि के चक्र को जीतेगा । यह धर्मचक्र को प्राप्त करेगा, यह धर्मदुन्दुभि को बजायगा, यह धर्मशंख को फूँकेगा, यह धर्म की वर्षा करेगा और यह धर्मसिंहासन पर आरूढ होगा । जो इस धर्मपर्याय को अन्तिम काल, अन्तिम समय, अन्तिम पाँच सौ वर्षों में धारण करेंगे, वे भिक्षु लोभी नहीं होंगे, न चीवर के लालची और न पात्र के लालची होंगे । वे सरल धर्मभाणक होंगे । वे तीन विमोक्षाओं को प्राप्त करनेवाले धर्मभाणक होंगे । उनका दृष्टधार्मिक निर्वृत हो जायगा । जो इस प्रकार के सूत्रान्त को धारण करनेवाले धर्मभाणक भिक्षुओं को मोहित करेंगे, वे प्राणी जन्म से अन्धे होंगे । जो इस प्रकार के सूत्रान्तधारक भिक्षुओं को अपशब्द कहेंगे, वे इसी लोक में कायश्चित्र (श्वेतकुष्ठ) के भागी होंगे । इस प्रकार के सूत्रान्त-लेखकों का जो उपहास एवं निन्दा करेंगे, उनके दाँत टूट जायेंगे, उनके दाँत दूर-दूर हो जायेंगे, उनके होठ गन्दे होंगे, उनकी नाक चिपटी होगी, उनके हाथ-पैर उलटे होंगे, उनके उलटे नेत्र होंगे, उनके शरीर से दुर्गन्धि निकलेगी और उनका शरीर फोड़ा, फुंसी, विचर्चिका, दाद एवं खुजली से व्याप्त रहेगा। जो इस प्रकार के सूत्रान्तलेखकों को, सूत्रान्त वाचकों को सूत्रान्तधारकों को तथा सूत्रान्तदेशकों को सच्ची या झूठी या अप्रिय बात सुनायेंगे, उनका यह कार्य घोर पापकर्म समझा जाना चाहिए । अतः, हे समन्तभद्र ! इस धर्मपर्याय के धारक भिक्षुओं को दूर से ही देखकर उठ जाना चाहिए । 'जैसे तथागत का आदर किया जाना चाहिए, वैसे ही उन सूत्रान्तधारक भिक्षुओं का भी आदर करना चाहिए' ।

अस्मिन् खलु पुनः समन्तभद्रोत्साहनपरिवर्ते निर्दिश्यमाने गङ्गानदीवालिकासमानां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां कोटीशतसहस्रावर्ताया धारण्याः प्रतिलम्भोऽभूत् ।

जिस समय इस समन्तभद्रोत्साहनपरिवर्त्त का निर्देशन हो रहा था, उसी समय गंगा नदी की वालुका के समान असंख्य महासत्त्व बोधिसत्त्वों को कोटिशतसहस्रावर्ता नामक धारणी की प्राप्ति हुई ।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये समन्तभद्रोत्साहनपरिवर्तो
नाम षड्विंशतिमः ॥२६॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का छब्बीसवाँ समन्तभद्रोत्साहनपरिवर्त्त समाप्त हुआ ।

अनुपरीन्दनापरिवर्तः

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध उत्थाय तस्माद्धर्मासनात् सर्वांस्तान् बोधिसत्त्वान् पिण्डीकृत्य दक्षिणेन पाणिनर्द्ध्यभिसंस्कार-परिनिष्पन्नेन दक्षिणहस्तेष्वध्यालम्ब्य तस्यां वेलायामेतदवोचत् । इमामहं कुलपुत्रा असंख्येयकल्पकोटीनयुतशतसहस्रसमुदानीतामनुत्तरां सम्यक्संबोधिं युष्माकं हस्ते परिन्दाम्यनुपरिन्दामि निक्षिपाम्युपनिक्षिपामि । यथा विपुला वैस्तारिकी भवेत्तथा युष्माभिः कुलपुत्राः करणीयम् ।

तदनन्तर, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि उस धर्मासन से उठकर उन सभी बोधिसत्त्वों को एकत्र करके अलौकिक शक्ति से परिपूर्ण (अपने) दाहिने हाथ से (उनके) दाहिने हाथ को पकड़कर उस समय यह बोले—हे कुलपुत्रो ! असंख्य कोटि खर्व शतसहस्र कल्पों में प्राप्त की हुई इस श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को मैं तुमलोगों के हाथ में परिन्दित करता हूँ, अनुपरिन्दित करता हूँ, निक्षिप्त करता हूँ, उपनिक्षिप्त करता हूँ। हे कुलपुत्रो ! जैसे वह विपुल (एवं) विस्तृत हो, वैसा तुमलोगों को करना चाहिए ।

द्वैतीयकमपि त्रैतीयकमपि भगवान् सर्वावन्तं बोधिसत्त्वगणं दक्षिणेन पाणिनाध्यालम्ब्यैतदवोचत् । इमामहं कुलपुत्रा असंख्येयकल्पकोटीनयुतशतसहस्रसमुदानीतामनुत्तरां सम्यक्संबोधिं युष्माकं हस्ते परिन्दाम्यनुपरिन्दामि निक्षिपाम्युपनिक्षिपामि । युष्माभिः कुलपुत्रा उद्ग्रहीतव्या धारयितव्या । वाचयितव्या पर्यवाप्तव्या देशयितव्या प्रकाशयितव्या सर्वसत्त्वानां च संश्रावयितव्या । अमात्सर्योऽहं कुलपुत्रा अपरिगृहीतचित्तो विशारदो बुद्धज्ञानस्य दाता तथागतज्ञानस्य स्वयंभूज्ञानस्य दाता । महादानपतिरहं कुलपुत्रो युष्माभिरपि कुलपुत्रा ममैवानुशिक्षितव्यममत्सरिभिर्भूत्वेमं तथागतज्ञानदर्शनं महोपाय-कौशल्यमागतानां कुलपुत्राणां कुलदुहितॄणां चायं धर्मपर्यायः संश्रावयितव्यः । ये चाश्राद्धाः सत्त्वास्तेऽस्मिन् धर्मपर्याये समादापयितव्याः । एवं युष्माभिः कुलपुत्रास्तथागतानां प्रतिकारः कृतो भविष्यति ।

दूसरी तथा तीसरी बार भी भगवान् सम्पूर्ण बोधिसत्त्वगण को दाहिने हाथ से पकड़कर यह बोले—हे कुलपुत्रो ! मैं असंख्य कोटि खर्व शतसहस्र कल्पों में प्राप्त की हुई इस श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को तुमलोगों के हाथ में परिन्दित करता हूँ, अनुपरिन्दित करता हूँ, निक्षिप्त करता हूँ तथा उपनिक्षिप्त करता हूँ। हे कुलपुत्रो ! तुमलोगों को इसे

समझना चाहिए , धारण करना चाहिए, पढ़ना चाहिए, प्राप्त करना चाहिए, देशित करना चाहिए, प्रकाशित करना चाहिए एवं (इसे) सभी प्राणियों को सुनाना चाहिए । हे कुलपुत्रो ! मैं मात्सर्य से रहित एवं उदारचित्त होकर कुशलतापूर्वक इस बुद्धज्ञान को देनेवाला हूँ तथा स्वयम्भूज्ञान (रूप) तथागतज्ञान का भी देनेवाला हूँ । हे कुलपुत्रो ! मैं महादानपति हूँ । हे कुलपुत्रो ! तुमलोगों को भी मात्सर्य से रहित होकर महोपायकौशल्य (रूप) इस तथागतज्ञानदर्शन का (उन्हें) मेरी तरह उपदेश देना चाहिए एवं इस धर्मपर्याय को (समीप) आये हुए कुलपुत्रों एवं कुलकन्याओं को सुनाना चाहिए। जो श्रद्धा से रहित प्राणी हैं, उन्हें इस धर्मपर्याय में समादापित करना चाहिए । हे कुलपुत्रो ! इस प्रकार, तुमलोग तथागतों के ऋण से मुक्त हो सकोगे ।

एवमुक्तास्ते बोधिसत्त्वा महासत्त्वा भगवता शाक्यमुनिना तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन महता प्रीतिप्रामोद्येन स्फुटा अभूवन् महच्च गौरवमुत्पाद्य येन भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तेनावनतकायाः प्रणतकायाः संनतकायाः शिरांस्यवनाम्याञ्जलिं प्रगृह्य सर्व एकस्वरनिर्घोषेण भगवन्तं शाक्यमुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धमेतदूचुः । तथा भगवन् करिष्यामो यथा तथागत आज्ञापयति । सर्वेषां च तथागतानामाज्ञां करिष्यामः परिपूरयिष्यामः । अल्पोत्सुको भगवान् भवतु यथासुखविहारी । द्वैतीयकमपि त्रैतीयकमपिस सर्वावान् बोधिसत्त्वगण एकस्वरनिर्घोषणैवं भाषते स्म । अल्पोत्सुको भगवान् भवतु यथासुखविहारी । तथा भगवन् करिष्यामो यथा तथागत आज्ञापयति । सर्वेषां च तथागतानामाज्ञां परिपूरयिष्यामः ।

तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि के ऐसा कहने पर वे सभी महासत्त्व बोधिसत्त्व महान् प्रीति एवं आनन्द से परिपूर्ण हो गये और महान् गौरव की भावना से जिस ओर तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि थे, उस ओर (अपने) शरीर को अवनत करके, (अपने) शरीर को प्रणत करके एवं (अपने) शरीर को संनत करके, मस्तक झुकाकर, हाथ जोड़कर एक स्वर से शब्द करते हुए तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि से यह बोले---हे भगवन् ! (हमलोग) वैसा ही करेंगे, जैसा तथागत कहेंगे ? (हम) सभी तथागतों की आज्ञा को (धारण) करेंगे एवं परिपूर्ण करेंगे। भगवान् चिन्ता न करें, सुखपूर्वक विहार करें । दूसरी एवं तीसरी बार भी सम्पूर्ण ब्रोधिसत्त्वगण ने एक स्वर से शब्द करते हुए इस प्रकार कहा---हे भगवन् ! चिन्ता न करें । सुखपूर्वक विहार करें । हे भगवन् ! (हमलोग) वैसा ही करेंगे, जैसा तथागत आदेश देंगे । (हमलोग) सभी तथागतों की आज्ञा परिपूर्ण करेंगे ।

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः सर्वांस्तांस्तथागतानर्हतः सम्यक्संबुद्धानन्येभ्यो लोकधातुभ्यः समागतान् विसर्जयति स्म यथा-

सुखविहारं च तेषां तथागतानामारोचयति स्म यथासुखं तथागता विहरन्त्वर्हन्तः सम्यक् संबुद्धा इति । तं च तस्य भगवतः प्रभूतरत्नस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक् संबुद्धस्य रत्नस्तूपं यथाभूमौ स्थापयामास तस्यापि तथागतस्यार्हतः सम्यक् संबुद्धस्य यथासुखविहारमारोचयामास ।

तदनन्तर, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि ने अन्य लोकधातुओं से आये हुए उन सभी तथागतों, अर्हतों एवं सम्यक् सम्बुद्धों को विसर्जित कर दिया और सुख एवं आनन्दपूर्वक उन तथागतों से ऐसा बोले—(सभी) तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध सुखपूर्वक विहार करें । (उन्होंने) उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न के उस रत्नस्तूप को भूमि में ठीक स्थान पर रख दिया और उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध (प्रभूतरत्न) से भी सुखपूर्वक विहार करने के लिए कहा ।

इदमवोचद् भगवानात्तमनास्ते चाप्रमेया असंख्येयास्तथागता अर्हन्तः सम्यक् संबुद्धा अन्यलोकधात्वागता रत्नवृक्षमूलेषु सिंहासनोपविष्टाः प्रभूतरत्नश्च तथागतोऽर्हन् सम्यक् संबुद्धः स च सर्वावान् बोधिसत्त्वगणस्ते च विशिष्टचारित्रप्रमुखा अप्रमेया असंख्येया बोधिसत्त्वा महासत्त्वा ये पृथिवीविवरेभ्योऽभ्युद्गतास्ते च महाश्रावकास्ताश्च चतस्रः पर्षदः सदेवमानुषासुरगन्धर्वश्च लोको भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्निति ।

भगवान् ने यह कहा । अन्य लोकधातुओं से आये हुए तथागत रत्नवृक्ष के नीचे सिंहासन पर बैठे हुए उन अप्रमेय (एवं) असंख्य तथागतों, अर्हतों एवं सम्यक् सम्बुद्धों ने, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, प्रभूतरत्न ने, उस सम्पूर्ण बोधिसत्त्वगण ने, विशिष्ट आचरणवालों में प्रमुख, पृथ्वी के विवरों से निकले हुए उन अप्रमेय एवं असंख्य महासत्त्व बोधिसत्त्वों ने, उन महाश्रावकों ने, उन चार परिषदों ने एवं देवों, मनुष्यों, असुरों और गन्धर्वों के समेत (सम्पूर्ण) लोक ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया ।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्यायेऽनुपरीन्दनापरिवर्तो नाम
सप्तविंशतितमः समाप्तः ॥२७॥

Acc. 9053/1063

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का सत्ताईसवाँ अनुपरीन्दनापरिवर्त्त
समाप्त हुआ ।

ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत् ।
तेषां च यो निरोध एवं वादि महाश्रमणः ॥

जितने धर्म हेतु से उत्पन्न या हेतुमूलक हैं, उनके हेतु को तथागत ने कहा है और इसी प्रकार उन हेतुओं के निरोध को भी महाश्रमण ने कहा है ।